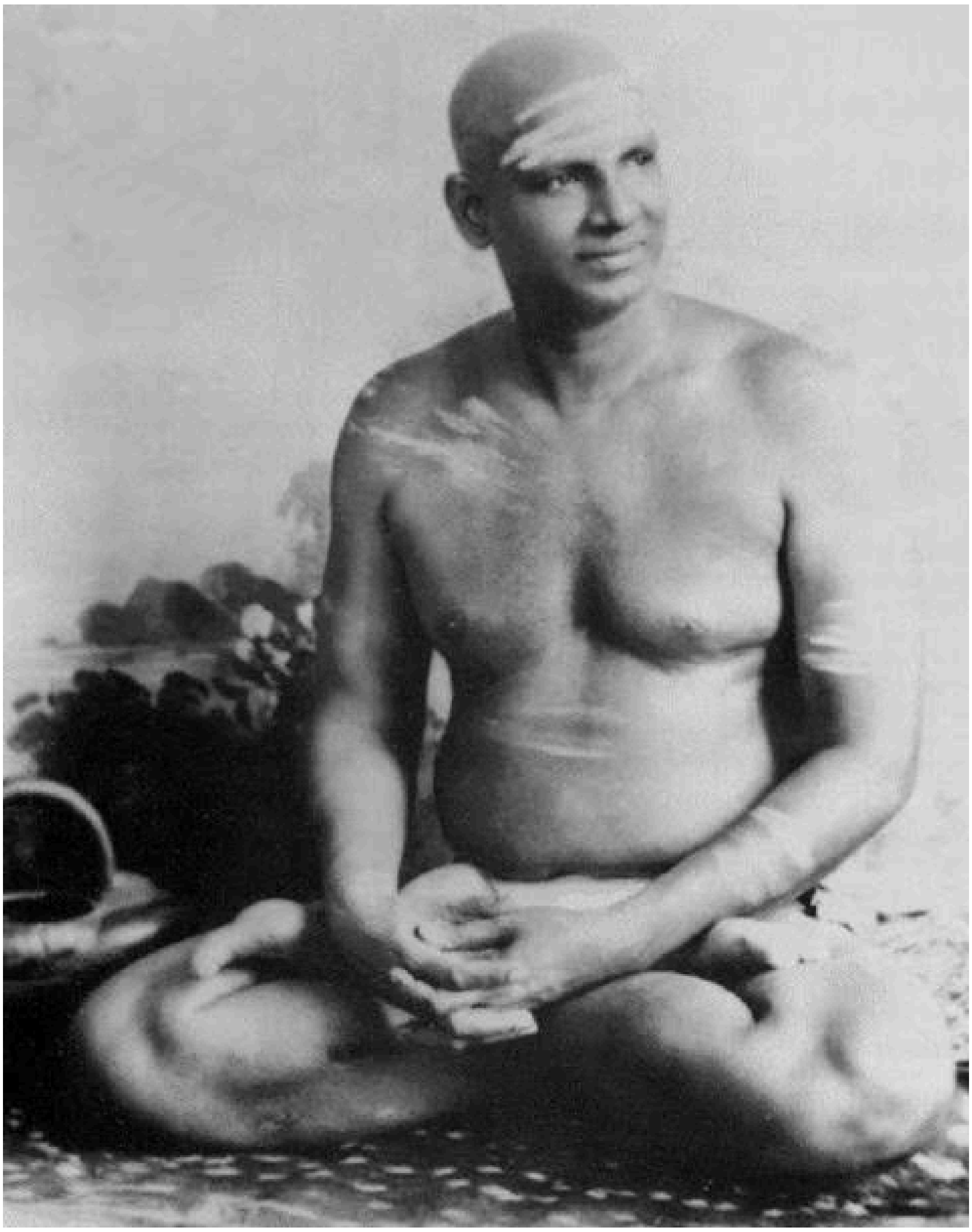
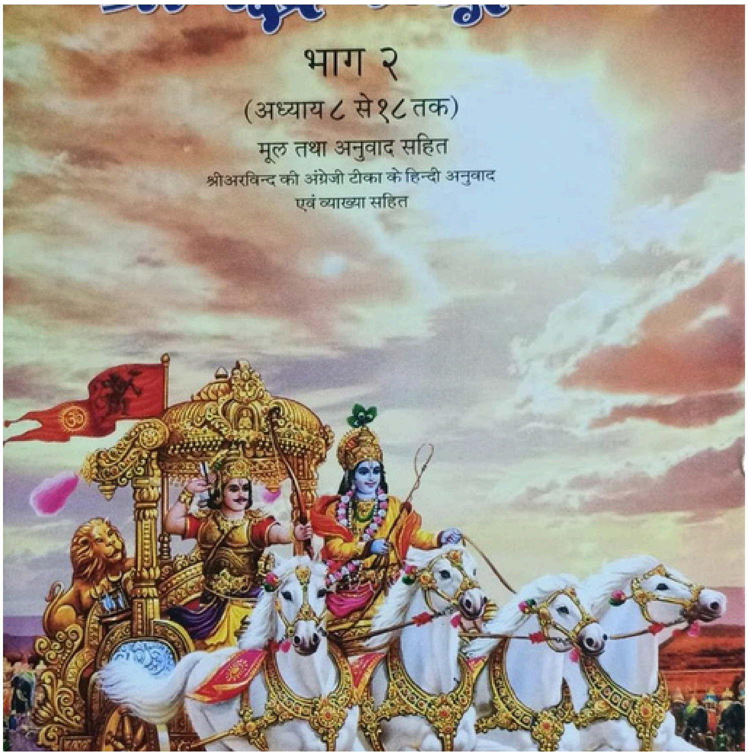



भाग २
(अध्याय ८ से १८ तक)
मूल तथा अनुवाद सहित
श्रीअरविन्द की अंग्रेजी टीका के हिन्दी अनुवाद
एवं व्याख्या सहित

श्रीमद्भगवद्गीता

भाग २

अध्याय ८ से १८ तक

श्रीमद्भगवद्गीता

भाग २

(अध्याय ८ से १८ तक)

मूलू तथाअनुवादसहित

श्रीअरववन्द की अंग्रेजी टीका के हिन्दी अनुवाद एवं व्याख्या सहित

अंग्रेजीटीका कासंपादन

स्व. श्री परमेश्वरी प्रसाद खेतान

हिन्दी व्याख्या

चन्द्र प्रकाश खेतान

हिन्दी अनुवाद व व्याख्या संपादन

पंकज बगड़िया

श्रीअरववन्द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट झुंझुनू, राजस्थान

प्रकाशकः-

श्रीअरववन्दडिवाइनलाइफट्रस्ट

श्रीअरववन्द हदव्य जीवन आश्रम,

खेतान मिोल्ला

झुन्झुनू - ३३३००१, राजस्थान।

URL: www.sadlec.orgwww.resurgentindia.org
www.aurokart.com

मुरकः- श्रीअरववन्द आश्रम प्ेरेस

पुदुचुेरी

भगवान् ्श्रीकृष्ण को समवपति

जजनकी कृपा से िमें

श्रीअरववन्द व श्रीमा ाँके चरण

कमलों की

शरण प्राप्त िुई िै।

यि पुस्तक स्वगीय श्री परमेश्वरी प्रसाद खेतान की अंग्रेजी पुस्तक 'द भगवद् गीता' के हिन्दी रूपांतर के आधार पर श्रीअरववन्द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट में िुए अध्ययन सत्रों के दौरान साधकों के बीच चचिा-पररचचिा, सिज अंतःस्फूणिा तथा श्री चन्र प्रकाश जी खेतान के ननजी आध्याजममक अनुभवों आहद के माध्यम से िुई श्रीअरववन्द व श्रीमााँ के मूल शब्दों की व्याख्या का अभभलेख िै। सत्रों के ध्वननलेखों को भाषा में ढालनेऔर उनकी एडिहटंग (संपादन), संशोधन आहद का काय िसुश्री सुमन शमिाव श्री दीपक तुलस्यान की सियता से संपादक द्वारा ककया गया िै। अनेक स्थानों पर चचिा-पररचचिाके दौरान श्रीमााँ-श्रीअरववन्द तथा योगी श्रीकृष्णप्रेम के संदभों का उल्लेख ककया गया जजन्िें कक यिााँमूल रूप से सजममभलत कर भलया गया िै जो कक पाठक के भलये पूरे ववषय को अधधक स्पष्ट, सुगम और प्रभावी बना देते िैं। व्याख्या को मूल से भभन्न करने के भलए नतरछे अक्षरों (italics) में हदया गया िै। प्रथम भाग में गीता के प्रथम सात अध्यायों को सजममभलत ककया गया िै और इस भाग में शेषे ग्यारि अध्यायों को सजममभलत ककया गया िै।

पुस्तक में प्रस्तुत गीता पर टीका श्रीमााँ की कृनतयों से भलये कुछ संदभों को छोड़कर शेषे श्रीअरववन्द के शब्दों में िै जजनकी संदभ िसूची अंत में दी जा रिी िै। ववचार में ननरंतरता बनाए रखनेके भलए कुछ स्थानों पर मूल संपादक श्री परमेश्वरी प्रसाद खेतान द्वारा कुछ शब्द या वाकयांश जोड़ ेगए िैं जजन्िें वगाकिार कोष्ठक में हदखाया गया िै।

श्लोकों का अनुवाद तथा पुस्तक में हदये गये शीषकि श्रीअरववन्द की पुस्तक 'ऐसेज ऑन द गीता' पर आधाररत िैं। अध्यायों के परंपरागत शीषकि प्रमयेक अध्याय के अंत में हदये गये िैं। िाभसये में दी गई संख्याएाँ गीता के अध्याय व श्लोक संख्या को दशािती िैं।

श्रीमााँ ने किा िै कक "श्रीअरववन्द गीता के संदेश को उस मिान् ्आध्याजममक गनत का आधार मानतेिैं जो मानवजानत को अधधकाधधक उसकी मुजकत की ओर, अथाित् ्भमथ्यामव और अज्ञान से ननकलकर समय की ओर ले गई िै, और आगे भी ले जाएगी। अपनेप्रथम प्राकट्य के समय से िी गीता का अनतववशाल आध्याजममक प्रभाव रिा िै; परंतुजो नवीन व्याख्या श्रीअरववन्द ने उसे प्रदान की िै, उसके साथ िी उसकी प्रभावशाभलता अमयधधक बढ़ गई िै और ननणाियक बन गई िै।"

वष ि१९९२ में अपनेप्रथम प्रकाशन के समय से िी 'द भगवद्गीता' पुस्तक को पाठकों द्वारा खूब सरािा गया िै। श्रीअरववन्द की अद्भुत टीका के ऊपर अब इस व्याख्या के आनेसे िम आशा करते िैं कक यि पुस्तक श्रीअरववन्द व श्रीमााँ के आलोक में गीता को समझने, े उसे व्याविाररक रूप से जीवन में उतारनेमें पाठकों के भलए सियक भसद्ध िोगी।

- पंकज बगड़िया

विषयसूची

आठवा ाँअध्याय

परम्‌ ईश्वर

्

[सातवें अध्याय के अजन्तम दो श्लोकों में] कुछ ऐसे पाररभावषक शब्द आये िैं जो अपनेसंक्षेप रूप में जगत्‌ ्में परम्‌ ्ईश्वर के' आववभावि के प्रधान मूलभूत समयों को देते िैं। सभी कारणसंबंधी या उमपविसंबंधी (originative) और काय िया प्रभावसंबंधी (effective) तत्त्व इसमें ववद्यमान िैं, वे ेसब तत्त्व ववद्यमान िैं जजनसे

अपनेसमग्र आममज्ञान की ओर लौटने ेमें जीव को प्रयोजन ि ै। सबसे पिले ि ै 'तद्रह्म; दूसूरा ि ै 'अध्यामम' अथात् ि प्रकृनत में आममसिा का तत्त्व; इसके बाद 'अधधभूत' और 'अधधदैव' अथात् ि सिा के बाह्य या वस्तुननष्ठ भाव तथा आंतररक अथवा आममननष्ठ भाव; और अंत में ि ै 'अधधयज्ञ' अथात् ि कम ि और यज्ञ के वैजश्वक तत्त्व का रिस्य। यिााँ श्रीकृष्ण के किनेका आशय यि ि ै कक इन सबके ऊपर जो 'म' ैं 'पुरुषोिम' ि ूाँ, उस मुझको इन सब में िकिर और इन सबके परस्पर समबन्धों के द्वारा ढ़ूाँढ़ना और जानना ि ोगा (मां ववद्ुः), - यिी उस मानव चेतना के भलए एकमात्र पूण ि माग ि ि ै जो कक मेरे पास लौट आने े का पथ खोज रिी ि ै। परन्तु अपने-आप में ये पाररभावषक शब्द शुरू में सवथा स्पष्ट निीं ंि ोतेया कम-से-कम ये भभन्न-भभन्न व्याख्याओं के भलए खुले ि ोतेिं; इसभलए उनके वास्तववक अभभप्राय को सटीक-सुननजश्चत बनाने की आवश्यकता ि ोती ि ै और एकाएक ि ी भशष्य अजुनि उनके स्पष्टीकरण की मााँग कर बैठता ि ै।

अजुनुज उिाच

ककं तद् ब्रह्म ककमध्यात्मं ककं कमु ुपरुजषोत्तम ।
अधिभूतं च ककं प्रोक्तमधिदैिं ककमच्जयते ।। १।।

१. अजुजनु ने कहा : हे परुजषोत्तमा तद् ब्रह्म क्या है, अध्यात्म क्या है, कमु ुक्या है? और अधिभूत ककसे कहा गया है, अधिदैि ककसे कहा गया है?

अधियज्ञः कथंकोऽत्र देहेऽस्ममन्मिसूजदन ।
प्रयाणकाले च कथंज्ञेयोऽसस ननयतात्मसभः ।। २।।

२. हे मिसूजदना इस देह में अधियज्ञ क्या है? और भौनतक अस्मतत् से प्रयाण के संकटकाल में आत्मसंयत मनष्जय द्िारा ककस प्रकार आप जानेजाते हो?

श्रीभगिान् ्उिाच

अक्षरं ब्रह्म परमं मिभािोऽध्यात्ममच्जयते।
भूतभािोद्भिकरो विसगुः कमुसुंज्ञज्ञतः ।। ३।।

३. श्रीभगिान् ्ने कहाः अक्षर परम् ्ब्रह्म है; मिभाि को अध्यात्म कहतेहैं, सृजृनात्मक प्रिृवृत्त, विसगु;ु को कमु ुकी संज्ञा दी गई है जो सममत भूतों को और उनके ि मतनजनष्ठ और आत्मननष्ठ भािों की उत्पवत्त करता है।

कृष्ण बिुत संक्षेप में इसका उिर देते ि ैं, - गीता किीं ं भी ककसी शुद्ुध रूप से दाशननिक व्याख्या पर बिुत अधधक देर तक निीं ंठिरती, वि उतनी ि ी बात और उसी ढंग से बतलाती ि ै जो उनके समय को जीव के भलए ग्राह्य भर बना दे जो कफर तत्त्व को ग्रिण करके स्वानुभव की ओर आगे बढ़े। 'तद्रह्म' से, जो कक ऐसा पद ि ै जो

उपननषदों में लौकक‍क जीव के ववपरीत रह्मसिा या स्वयंभू सिा के भलए अनेक बार प्रयुकत ि‍ुआ ि‍ै, प्रतीत ि‍ोता ि‍ै कक गीता का अभभप्राय 'अक्षरं परमम्'् अथात्‍ ्उस अक्षर रह्मसिा से ि‍ै जो कक भगवान् ्की परम् ्आममाभभव्यजकत ि‍ै और जजसकी अटल शाश्वतता पर शेषे सभी कुछ, जो कुछ भी चल और ववकसनशील ि‍ै, आधाररत ि‍ै। अध्यामम से इसका अभभप्राय ि‍ै 'स्वभाव' अथात्‍ ्परा प्रकृनत में जीव की सिा का आजममक भाव और ववधान। गीता किती ि‍ै कक 'कम'ि‍ 'ववसग'ि‍ का नाम ि‍ै अथात्‍ ्उस सृजृष्ट-पे्रेरणा और शजकत का जो इस आहद मूलगत 'स्वभाव' से सब चीजों को बिार ननकालती ि‍ै और उस स्वभाव के ि‍ी प्रभाव से 'प्रकृनत' में सब भूतों को उमपवि, सृजृष्ट और पूणताि साधधत करती ि‍ै।

यिा ि‍ाँसब कुछ स्पष्ट कर हदया गया ि‍ै। गीता जजस **'अक्षरं परमम्**'् का यिा ि‍ाँउल्लेख करती ि‍ै वि वि अक्षर पुरुष नि‍ीं ि‍ै जजसकी ि‍म पूव ि‍में चचा‍ि कर आए ि‍ैं। जजस अक्षर की यिाँ बात ि‍ै वि तो वि परम् ्अववनाशी सिा ि‍ै जजसे ि‍म परंरह्म आहद की संज्ञाएँ देते ि‍ैं जो कक सभी कुछ का आधार ि‍ै। अक्षर के बाद ि‍ै '**मिभा**'। ि‍म पिले भी सति‍ी भाव, स्वभाव और मद्भाव की चचा‍ि कर चुके ि‍ैं। प्रमयेक जीव के अंदर परा प्रकृनत जजस ववभशष्ट चीज की अभभव्यजकत करना चािती ि‍ै वि उसका 'स्वभाव' ि‍ै। ि‍ालाकाँक बािरी प्रकृनत में जो अनेकानेक प्रकार की वृवियाँ ि‍ोती ि‍ैं वे इस स्वभाव से भभन्न ि‍ैं। परंतु व्यजकत का जो सच्चा स्वभाव ि‍ै, जजसके ननयत कम ि‍ककये जाने पर गीता बल देती ि‍ै और जजस पर भारतीय संस्कृनत में भी सदा ि‍ी बल हदया जाता रिा ि‍ै, उसे ि‍ी **'अध्यात्म'** कि‍ते‍िैं। अध्यामम के बाद आता ि‍ै **'कमु**'् अथात्‍ ्सिज रूप से स्वभाव के द्वारा ननयत की ि‍ुई मन, प्राण और शरीर की कियाएँ। कम ि‍केवल शरीर से ि‍ी नि‍ींककये जाते अवपतु मानभसक कियाकलाप, प्राणणक भावनाएँ और आवेग आहद भी कम ि‍ि‍ी ि‍ैं। स्वभाव और स्वभाव ननयत कम ि‍के ववषय में तथा ककस प्रकार भारतीय संस्कृनत में उसके आधार पर वणाश्रि‍म व्यवस्था आहद का ननमाणि ककया गया उसकी ववशद चचा‍ि ि‍म पिले कर ि‍ी चुके ि‍ैं।

प्रश्न : धम ि‍कया ि‍ै?

उत्तर : धम ि‍तो बिुत सापेक्ष चीज ि‍ै और यि व्यजकत के आंतबाह्यि ववकास की अवस्था पर ननभरि करता ि‍ै किक उसके भलए उपयुकत धम ि‍कया ि‍ै। ि‍ालाकाँक अंतननहिि‍त स्वभाव तो वि‍ी ि‍ोगा परंतु ुववकास की अवस्था के अनुसार धम ि‍भभन्न-भभन्न ि‍ोगा। राह्मण के भलए एक प्रकार का धम ि‍ि‍ै। परंतु ुउसी राह्मण के भलए संकटकाल में धम ि‍बदल जाता ि‍ै। इसभलए स्वभाव तो एक मूलभूत चीज ि‍ै जजसका कक धम ि‍के द्वारा ननरूपण करने का प्रयास ककया जाता ि‍ै कयोंकक धमों के द्वारा स्वभाव की पूण ि‍अभभव्यजकत नि‍ीं ंि‍ोती इसीभलए गीता सभी धमों को मयाग देनेऔर भगवान् ्की शरण ग्रिण करने का उपदेश करती ि‍ै। पिले सभी प्रकार के ऊँचेसे ऊँचेधमों का भी ननरूपण करने ेके बाद, साधना, समपणि, भजकत आहद के धमों का भी ननरूपण करनेके बाद गीता इन सभी को छोि़कर भगवान् ्की शरण में जाने को किती ि‍ै। कयोंकक ककसी भी धम ि‍के द्वारा व्यजकत स्वभाव से ऊपर नि‍ींउठ सकता। और 'मद्भाव' में तो व्यजकत प्रभु के साथ एकमव ि‍ोने ेपर ि‍ी जा सकता ि‍ै।

अधिभूतं क्षरो भिाः परुजषश्ाधिदैितम् ्।
अधियज्ञोऽहमेिात्र देहे देहभृतांिर ।। ४।।

४. हे देहिाररयों में श्ेष्ठ अजुजनु! अधिभूत क्षर भिा है, और अधिदिै परुजष (प्रकृनतमथ आत्मा) है; इस देह में यज्ञ, अधियज्ञ, का प्रभ जम ैमियं ही हूँ।

'अधधभूत' से तामपय िै 'क्षर भाव' अथवा ि्पररवतिन की किया के समस्त पररणाम। 'अधधदैव' से अभभप्रेत ि ैपुरुष, प्रकृनतस्थ आममा अथात्ि्वि आममननष्ठ (subjective) सिा जो अपनी मूलसिा के समूचे क्षरभाव को, जो प्रकृनत में कम िके द्वारा साधधत िुआ करता िै, अपनी चेतना के ववषय-रूप से देखता और भोग करता िै। 'अधधयज्ञ' से, भगवान््श्रीकृष्ण किते िैं कक, 'म' ैस्वयंअभभप्रेत िूूँ – 'म' ैअथात्ि्अणखल कम िऔर यज्ञ के प्रभु, भगवान््परमेश्वर, पुरुषोिम जो यिा ाँइन सब दिेधाररयों के शरीर में गुप्त रूप से ववराजमान िैं। अतः जो कुछ िै सब इसी एक सूत्र में आ जाता िै।

....यिााँजगत््की प्रणाली (ववसग)ि के संबंध में गीता का भाव दशाया िगया िै। इस िम में सवप्रिथम रह्म अथात्ि्परम््अक्षर स्वतःभसद्ध रह्मसिा िै; देश, काल और ननभमि में िोनेवाले ववश्वप्रकृनत के खेल के पीछे सभी भूत यि रह्म िी िैं। कयोंकक उस रह्मसिा से िी देश, काल और ननभमि अजस्तमवमान रि पाते िैं और उस अपररवतनिीय सवव्यिापी परन्तु कफर भी अववभाज्य आश्रय के त्रबना देश, काल और ननभमि अपनेववभाग, पररणाम और मान ननमाणि करने मेंप्रवृि निीं िो सकते। परन्तु अक्षर रह्म स्वयंकुछ निीं करता, ककसी काय िका कारण निीं िोता, ककसी बात का ववधान निीं करता; वि ननष्पक्ष, सम और सवालंबिनकारी िै, परंतु ुवि चुनाव या आरमभ निींकरता। तो कफर वि कया िै जो उमपन्न करता िै, ववधान करता िै, और परम््प्रभु की वि हदव्य प्ेरेरणा प्रदान करता िै? वि कया िै जो कम िका ननयामक िै और जो शाश्वत सिा में से 'काल' के अन्दर इस ववश्वलीला को सकिय रूप से प्रकट करता िै? यि 'स्वभाव' रूप से प्रकृनत िै। परम्,् परमेश्वर, पुरुषोिम अपनी सिा से उपजस्थत िैं और वे िी अपनी सनातन अक्षर सिा के आधार पर अपनी परा आममशजकत के काय िको धारण करते िैं। वे अपनी भागवती सिा, चेतना, संकल्प या शजकत को प्रकट करते िैं, ययेदं धायतिे जगत््‌ विी परा प्रकृनत िै। इस परा प्रकृनत के अंदर आममा की आममचेतना, आममज्ञान के प्रकाश में गनतशील या ऊजस्वि्वी ववचार को, वि जजस ककसी भी चीज को अपनी सिा में अलग करती िै और उसे स्वभाव - अथात्ि्जीव की आध्याजममक प्रकृनत - में अभभव्यकत करती िै, उसके यथाथ िसमय को देखती िै। जो प्रमयेक जीव का अंतननिहित समय और आममतत्त्व िै, जो अपने-आप को अभभव्यजकत में लाता िै, जो सबके अंदर ननहित वि मूलभूत भागवत््प्रकृनत िै जो सब प्रकार के पररवतनिों, ववपययिों और पुनरावतनिों के पीछे सदा बनी रिती िै, विी स्वभाव िै। स्वभाव में जो कुछ िै वि उसमें से ववश्व-प्रकृनत में छोड़ हदया जाता िै ताकक ववश्वप्रकृनत पुरुषोिम की आंतररक दृजष्ट की देख-रेख में उससे जो कर सकती िो करे। इस सतत््स्वभाव में से, प्रमयेक संभूनत की मूल प्रकृनत और उसके मूल आममतत्त्व में से भभन्न-भभन्न भेदों का ननमाणि करके यि ववश्वप्रकृनत उसके द्वारा उस स्वभाव को अभभव्यकत करने का प्रयास करती िै। वि अपने इन सब पररवतनिों को नाम और रूप, काल और देश तथा देश-काल के अन्दर एक अवस्था से दूसरी अवस्था के उमपन्न िोने का जो िम िै जजसे िम लोग कारणता, 'ननभमि', किते िैं, उसे खोलकर प्रकट ककया करती िै।

अतः, वास्तव में तो कोई कायि–कारण निीं ंिै। मूलभूत कारण तो केवल जगदमबा का संकल्प िै बाकी सब तो ननभमि िी िैं। उदािरण के भलए यहद िमें अमुक जगि जाना िो तो जो भी माग ि उसके भलए िम अपनाते िैं वे ननभमि बन जाते िैं। परंतु िम उस माग ि ववशेष से बाध्य निीं ंिो जाते बजल्क दूसरे माग ि भी अपना सकते िैं। वैसे िी यहद िमें बैठना िो तो िम ककसी एक कुसी पर बैठ जाते िैं तो वि कुसी ननभमि बन गई। इसमें भी िम ककसी कुसी ववशेष पर बैठनेको बाध्य निीं ंिैं। इसी प्रकार भागवती प्रकृनत का संकल्प िी िै जो मूल कारण िै और अपनी अभभव्यजकत के भलए वि जजन साधनों और माध्यमों को काम में लेती िैं वे सब ननभमि बन जाते िैं। इसीभलए भगवान् ्अजुनि को किते िैं 'ननभमिमात्रं ंभव' कयोंकक जो िोना िै वि तो भागवती शजकत द्वारा पिले िी ककया जा चुका िै। अजुनि को तो उसका केवल ननभमि बनना िै। और यहद वि सिष िननभमि निीं ंबनता तो या तो ककसी अन्य को ननभमि बना भलया जाएगा या कफर पररजस्थनतयों की बाध्यकारी शजकत के द्वारा अवश रूप से उसे िी ननभमि बनना पड़ेगा परंतु, भगवान् ्किते िैं कक, ऐसा करने ंमें कोई आध्याजममक श्रेय निीं िोता। किनेका अथ िै कक ननभमि अपनेआप में उस किया का कारण निीं ंिै। यि किना अयुजकतयुकत िोगा कक ककसी माग िके कारण व्यजकत ककसी अमुक स्थान पर जाएगा या कफर ककसी कुसी के कारण वि बैठेगा या कफर ककसी साधन के कारण कोई काय िकरेगा। साधन को तो वि अपनेकाय िके संकल्प को पूरा करने के भलए काम में ले सकता िै।

xi.33

यिा ंस्वभाव के संबंध में जो बातें आईं िैं उनका इससे पिले गीता में ननरूपण निीं िुआ था। िमारे कम ि की ननयामक बािरी प्रकृनत निीं िै। ककसी भी व्यजकत के साथ जो कुछ भी घहटत िोता िै उसके पीछे कभी भी दूसरे लोगों की इच्छा अथवा अन्य कोई बािरी कारण निीं ंिोते। वास्तव में तो व्यजकत के साथ जो कुछ भी घहटत िोता िै वि उसके स्वभाव के अनुसार िी िोता िै। कयोंकक भले िी बािरी रूप से मनुष्यों के अंदर कुछ चीजें समान िों परंतु प्रमयेक मनुष्य अपने अलग आममननष्ठ जगत् ्में ननवास करता िै। िालाकँक अन्तराममा में सभी एक िैं परंतु स्वभाव में सभी का पृथक् गठन िोने के कारण सभी अपनेअलग िी जगत् ्में ननवास करते िैं। प्रकृनत भी िमारे स्वभाव की अभभव्यजकत के अनुसार काय िकरती िै। अपनेआप में बािरी प्रकृनत िमारा कुछ निीं कर सकती। और िमारे भलए कम िभी तभी लाभकारी िोते िैं जब वे स्वभाव के अनुकूल िों अथात् ्स्वभाव ननयत कम िों। उदािरण के भलये यहद कोई व्यजकत ककसी रोगी के भलए दवाई लानेबाजार जाए तो उसका कम िस्वभाव ननयत तब िोगा जब वि सिी जगि जाकर और सिी दवाई लेकर आए। विीं, यहद वि बाजार की चकाचौंध में िी मुग्ध िो जाए या कफर ककसी पररधचत से ननरथकि बातचीत में लग जाए या कफर अन्य ककसी ऐसे काम में लग जाए जो उसके लक्ष्य के प्रनतकूल िो, तो यि कम िलाभकारी या उधचत निीं िुआ। इसीभलए स्वभाव ननयत कम िपर गीता इतना अधधक बल देती िै और िमारी संस्कृनत में भी इस पर अनतशय बल हदया जाता रिा िै, कयोंकक स्वभाव ननयत कम िके द्वारा व्यजकत सीधे उसी लक्ष्य की ओर अग्रसर िोता िै जजसके भलए वि इस अभभव्यजकत में आया िै। परंतु िमारे वतमिान अज्ञानमय और अवचेतन जीवन में िमें अपनेस्वभाव का सचेतन बोध िी निीं िोता इसभलए िमारे कम ि सचेतन रूप से उसके अनुकूल निीं िोते। इस चीज की गंभीरता को समझते िुए िी िमारी संस्कृनत में िमारे ऋवषयों नेऐसी व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव की जिाँप्रमयेक व्यजकत को शीघ्रानतशीघ्र उसके स्वभाव के प्रनत

सचेतन बना हदया जाए और साथ ि◌ी उसके अनुकूल कम ि◌करने ◌ेकी सियता प्रदान की जाए ताकक वि अपनेसच्चे स्वभाव को अधधकाधधक अभभव्यकत कर सके जजसके भलए कक वि इस अभभव्यजकत में आया ि◌ै।

वास्तव में तो परा प्रकृनत ि◌ी स्वभाव रूप से जीव में ववराजमान ि◌ैं और वे ि◌ी उसे उसके स्वभाव के अनुरूप आगे ले जा री ि◌ैं परंतु अचेतन रूप से आगे बढ़नेमें कोई आनंद की अनुभूनत निींिोती। इसीभलए ि◌मारी संस्कृनत का सदा ि◌ी सारा प्रयास इस ओर रि ि◌ै कक प्रमयेक व्यजकत यथाशीघ्र अपने स्वभाव को जान जाए और सचेतन रूप से उसकी ओर आगे बढ़े। और वास्तव में तो व्यजकत को अपनेस्वभाव का पता ि◌ी भगवान् ◌्की सीधी पे्रेरणा से या कफर सद्गुरु के प्राप्त ि◌ोने पर चलता ि◌ै। और जब व्यजकत अपनेस्वभाव के प्रनत, अपनेअंदर जो परमाममा का अंश ि◌ै उसके प्रनत सचेतन ि◌ो जाता ि◌ै तब वि अपने कम ि◌उसकी अभभव्यजकत के अनुरूप करता ि◌ै। अन्यथा तो वि सदा ि◌ी शंककत रिता ि◌ै कक किीं ◌ंउसके कम ि◌गुणों से प्रभाववत तो निीं ◌ंि◌ैं। और जब तक उसके कम ि◌गुणों से प्रभाववत रिितें तब तक स्वभाव ननयत कम ि◌निीं ◌ंककये जा सकते।

प्रश्न : ि◌म किते ि◌ैं कक व्यजकत को अपनेस्वभाव के प्रनत सचेतन ि◌ोना ि◌ोगा और अपनेसतिी भाव से स्वभाव की ओर जाना ि◌ोगा। परंतु यि बािरी भाव भी तो परमाममा का ि◌ी हदया ि◌ुआ ि◌ै। तो इसका कया औधचमय ि◌ै कक वे इस सतिी भाव को केवल इससे बािर ननकलने के भलये ि◌ी ि◌मारे ऊपर लादते ि◌ैं?

उत्तर : वास्तव में तो ककसी चीज का कया औधचमय ि◌ै यि तो सच्चे रूप से केवल परमाममा ि◌ी जानते ि◌ैं। परंतु अवश्य ि◌ी पिले तो यि किना अयुजकतयुकत ि◌ै कक परमाममा ि◌मारे ऊपर इस सतिी प्रकृनत या भाव को लादते ि◌ैं कयोंकक यहद वे ऐसा करते ि◌ों तो ऐसा वे ◌ेस्वयं अपनेआप के साथ ि◌ी तो करते ि◌ैं। उनके अनतररकत अन्य ककसी की सिा तो ि◌ै ि◌ी निीं। केवल अिबोध के कारण ि◌ी ि◌में यि तथ्य हदखाई निीं देता। दूसूरे, यि किना भी असंगत बात ि◌ै कक चूंकक परमाममा ने ि◌ी यि माया फैलायी ि◌ै अतः ि◌में इसमें से ननकलनेका प्रयास करना ि◌ी कयों चाहिये। कयोंकक इसके साथ ि◌ी उन्िोंने इसमें से ननकलने के तरीके भी तो बता रखे ि◌ैं और जो कोई भी वास्तव में इससे ननकलना चािता ि◌ै उसके भलए सभी साधन जुटा देने का ववधान भी बना रखा ि◌ै। परंतु अधधकांशतः ि◌म इस अयुजकतयुकत तकि में फंस कर ननरथकि दलीलें देनेलगते ि◌ैं कक जब माया भगवान् ◌्की ि◌ी रची ि◌ुई ि◌ै तो ि◌में इससे ननकलने ◌ेका प्रयास कयों करना चाहिये। पर ि◌म भूल जाते ि◌ैं कक ऐसी कोई चीज निीं ◌ंि◌ै जो परमाममा से उद्भूत न िोती ि◌ो। माया से ननकलनेका सुझाव व तरीके भी तो परमाममा से ि◌ी उद्भूत ि◌ैं। इन सबके साथ ि◌ी ि◌में सिी-गलत का भेद करने ◌ेका वववेक भी तो परमाममा ने ि◌ी दे रखा ि◌ै, इसभलए ि◌में अपनेचयन करने ि◌ोतेिैं। भले सभी कुछ परमाममा ने ि◌ी बनाया ि◌ै, परंतु उन्िीं परमाममा ने ि◌में बुद्धध, वववेक आहद भेद करनेकी शजकतयााँ भी प्रदान की ि◌ैं ताकक उनका उपयोग कर जो सिी ि◌ो उसका ि◌म वरण कर रि ि◌ैं ऐसी प्रतीनत ि◌में ि◌ो सके। यहद ि◌में ऐसी प्रतीनत न ि◌ो तो पाधथवि जीवन में चेतना के ववकास का वतमिान ढाचााँ काय ि◌निींकरेगा। जीवन में सब ववभ्रम की जस्थनत पैदा ि◌ो जाएगी। इसे ि◌म इस रूप में देख सकतिें कक यि एक प्रकार की मनोवैज्ञाननक पाठशाला ि◌ै जिााँ अनेकानेक प्रलोभन की चीजें ि◌मारे सममुख प्रस्तुत की जाती ि◌ैं परंतु ि◌में इन प्रलोभनों से बचते ि◌ुए अपने अंतननहिित स्वभाव के अनुसार सिी चीजों का वरण करना ि◌ोता ि◌ै। इसे ि◌म लीला कि सकते ि◌ैं, आममा का

ववकास कि सकतेिैं, यज्ञ का आरोिण कि सकतेिैं। अब इसमें यि तकि देना गलत िोगा कक चूंकक प्रलोभन के
साधन भगवान् के िी भेजेिुए िैं तो उनमें भलप्त िो जाना सिी िै। िो सकता िै कक वे साधन ककसी अन्य व्यजकत
के भलए लाभदायक िों कयोंकक यहद वे ननरथिक िी िोतेतब तो इस अभभव्यजकत में उनका अजस्तमव िी निीं िोता।
परंतु इसका यि अथि िनिींननकलता कक सभी कुछ िी िमारे भलए उपयोगी िै। िमें तो सदा अपनेआंतररक गठन के
अनुसार और उसके दृजष्टकोण से चयन करना िी िोगा। बिुत से लोगों को िम यि कितेसुनते िैं कक आणखर अमुक
काम तो करना अच्छा िी िै, या कफर पांडिचेरी जस्थत श्रीअरववन्द आश्रम में जाना तो िमेशा अच्छा िी िै,
या कफर अन्य ऐसी िी कोई चीज करना तो अच्छा िी िै। परंतु यहद ये सभी चीजें सभी के भलए सदा िी अच्छी िोतीं
तो भगवान् स्वयंभी वैसी व्यवस्था कर सकतेथे, उनकी ऐसी कोई असमथिता निीं िै कक वे सभी को वि अच्छी
चीज प्रदान निींकर सकतेथे। परंतु प्रमयेक का गठन भभन्न िै और इस कारण उसके भलए चीजों का मित्त्व और
उपयोधगता भी त्रबल्कुल भभन्न िोती िै। इसभलए ककसी एक के भलए अमृततुल्य वस्तु ककसी दूसरे के भलए ववष
समान िो सकती िै और जो आज िमारे भलए ववषतुल्य िै विी अन्य ककसी काल में िमारे भलए अमृततुल्य िो
सकती िै। इसीभलए िमारे ऋवषयों ने सदा िी देश-काल-पात्र का मूल मंत्र अपनाया और उसी के आधार पर वे
ननणयि ककया करते थे। इसभलए भगवान् जिां माया के फंदे में फाँसातेिैं विााँवे उससे ननकलने के भलए योग का
ववधान भी तो देते िैं। इसीभलये तो स्वभाव ननयत कम िकी मिमा िै। यहद चयन का ववधान न िोता तब तो ननयत
कम िया कफर अननयत कम िका तो कोई ववकल्प िी निीं बचता। स्वभाव ननयत कम िका अथ ियिी िै कक व्यजकत
सचेतन रूप से उन कमों का चयन करता िै जो उसके अंदर परम प्रभु की िोने वाली ववभशष्ट अभभव्यजकत की ओर
ले जाते िैं। िालााँकक अंततः व्यजकत पिुाँचता तो उसी गंतव्य पर िै परंतु साधारण जीवन बिुत टेढ़े-मेढ़े मागों से
िोकर विााँ तक जाता िै, विींश्रीमाताजी किती िैं कक योग माग िसीधे िी गंतव्य तक ले जाता िै। भौनतक रूप से तो

प्रश्न: इस बात के बेतुकेपन को समझाते कक चूंकक प्रभु सभी नामों में भगवान् के िी बनाए िुए िैं इसभलए िमें दाएाँ बाएाँ

उत्तर: वास्तव में परम सिा तो अपनेआप में एक िी िै और किीं कोई भेद निीं िै। परंतुउनके भभन्न
भावों के भेदस्वरूप िी वलए भभन्न पदों का प्रयोग ... और यज्ञ के प्रभु,
भगवान्, परमेश्वर, पुरुषोत्तम ... परमसा सृजष्ट
एक प्रकार का ... और परमाममा के ... भाव को वि ...
िोते िैं और परमाममा का वि भाव जो इस सृजष्ट िम में भाग निीं लेता, अप्रमयक्ष रूप से इसे
केवल अवलंब प्रदान करता िै उसे अक्षर परमं की संज्ञा दी जाती िै। मूल रूप से दोनों भाव उसी एक परम सिा के
िी िैं।

प्रश्न : इस वाकय का कया अथ िि, "जो प्रमयेक जीव का अंतनननिहित समय और आममतत्त्व ि, जो अपने-आप को अभभव्यजकत में लाता ि, जो सबके अंदर ननहित वि मूलभूत भागवत् ्प्रकृनत ि जो सब प्रकार के पररवतनिों, ववपययिों और पुनरावतनिों के पीछे सदा बनी रिती ि, विी स्वभाव ि।"

उत्तर : परमाममा जब कोई व्यजकतमव धारण कर अपनी कोई एक कियाववशेषे तथा अपनी एक अभभव्यजकत ववशेषे करना चािते िैं तो उस अभभव्यजकत का सारा प्रारूप िी स्वभाव ि। प्रकृनत उस प्रारूप को चररताथ िकरने के भलए आवश्यक साधन जुटाती ि। स्वभाव को समझनेके भलए िम उसकी तुलना ककसी भवन के प्रारूप से, उसकी रूपरेखा से कर सकते िैं। अब उस रूपरेखा के आधार पर इंजीननयर सामान एकत्रत्रत करता ि। भले िी बाजार में अनेकों प्रकार की अन्य चीजें भी उपलब्ध िों परंतु वि उन्िीं का चयन करता ि जो उस रूपरेखा के अनुकूल िों। उसी प्रकार भगवान् ्की अभभव्यजकत की यि रूपरेखा, जो कक स्वभाव ि, ववश्व-प्रकृनत के पास आती ि और वि उसे चररताथ िकरने के भलए सभी आवश्यक साधन जुटाने का काय िकरती ि। इसीभलए अंतनननिहित स्वभाव िी सबसे प्रभावी चीज ि। स्वभाव ननयत कम िइसीभलए अमयंत मित्त्वपूण िि कयोंकक यों तो असंख्यों प्रकार के कम िैं परंतु व्यजकत ककन का चयन करे यि तो उसे उसके स्वभाव से िी पता लग सकता ि और उस व्यजकत के भलए वे िी सच्चे कम िोते िैं।

यि सब उमपवि तथा एक जस्थनत से दूसूरी जस्थनत में ननरंतर पररवतनि िी कम,ि प्रकृनत का काय िि, उस प्रकृनत की ऊजिा ि जो कमकिती ि और सब किया-प्रणाभलयों की ईश्वरी ि। प्रथमतः यि स्वभाव का अपने को सृजृष्टकम िमें िाल देना ि, इसी को ववसग िकितिैं। यि सृजृष्टकम िभूतों को उमपन्न करनेवाला, भूतकरः, ि और यि सृजृष्टकम िये भूत आममननष्ठ रूप से अथवा अन्य प्रकार से जो कुछ बनते िैं उसे भी उमपन्न करनेवाला, भावकरः, ि। सब भमलकर, यि काल के अन्दर पदाथों की सतत् ्उमपवि या 'उद्भव' ि जजसका मूलतत्त्व कम िकी सृजृनाममक ऊजिाि। यि सारा क्षरभाव अथात्ि'अधधभूत' प्रकृनत की शजकतयों के सजममलन से ननकल कर आता ि, यि अधधभूत िी जगत् ्ि और जीव की चेतना का ववषय ि। इस सब में जीव िी प्रकृनतस्थ भोकता और साक्षीभूत देवता ि; बुद्धध, मन और इंहरयों की जो हदव्य शजकतयााँ िैं, जीव की चेतन सिा की जो समस्त शजकतयााँ िैं जजनके द्वारा यि प्रकृनत की इस किया को प्रनतत्रबंत्रबत करता ि, इसके 'अधधदैव' अथात् ि्अधधष्ठातृदेवता िैं। यि प्रकृनतस्थ जीव िी इस तरि क्षर पुरुष ि, भगवान् ्का ननमय कम–स्वरूप ि: यिी जीव प्रकृनत से रह्म में लौटकर अक्षर पुरुष, भगवान् ्का ननमय नैष्कमय–स्वरूप, िोता ि। परंतुक्षर पुरुष के रूप और शरीर में परम् ्पुरुष भगवान् ्िी ननवास करते िैं। अक्षरभाव की अचल शाजन्त और क्षरभाव के कम िका आनन्द दोनों िी भाव एक साथ अपनेअन्दर रखते िुए भगवान् ्पुरुषोिम मनुष्य के अन्दर ननवास करते िैं। वे िमसे दूरू परे ककसी परम् ्पद पर िी जस्थत निीं िैं, अवपतु वे ेयिााँप्रमयेक प्राणी के शरीर में, मनुष्य के हृदय में और प्रकृनत में भी ववद्यमान िैं जिााँ वे प्रकृनत के कमों को यज्ञरूप से ग्रिण करते िैं और मानव जीव के सचेतन आमम-दान की प्रतीक्षा करते िैं: परन्तु रि िालत में, मनुष्य की अज्ञानावस्था और अिंकाररता में भी वे िी उसके स्वभाव के स्वामी और उसके सब कमों

के प्रभु िोते िैं, जो प्रकृनत और कम िववधान पर अधधष्ठातृमृव करते िैं। उन्िीं से ननकलकर जीव प्रकृनत की इस क्षर-ग़िीि में आता िै और अक्षर आममसिा से िोता िुआ उन्िीं के परम धाम को प्रास िोता िै।

इस संक्षक्षप्त वववरण के तुरंत बाद गीता ज्ञान द्वारा परम मोक्ष के ववचार के वववेचन की ओर अग्रसर िीती िै जजसका ननदेश पूवाधि्याय के अजन्तम श्लोक में गीता ने ककया िै।

के अनेक[illegible]इसका एक
भभन्न वणनि पाते िैं। वेदों में वणनि भमलता िै कक शब्द से सारी सृजष्ट उमपन्न िोती िै। परंतुयि सारा ववषय त्रबना अनुभव के समझ में निींआ सकता। व्यजकत को इसका जजतना िी अधधक अनुभव िोगा उतनी िी अच्छी तरि वि इसे समझ सकेगा। आणखर, इस सारी सृजष्ट के ववषय में िम सचेतन कैसे िोतिैं? िमारी इंहरया ॉँअपनी सूचना मनस् ्के पास भेजती िैं जिाँ सारा प्रनतत्रबंब बनता िै। मनस् ्इस सारी सूचना के साथ अपनेस्वयं के बोधों को जोड़कर बुद्धध के पास भेजता िै। विाँसारा दृश्य तैयार िोता िै और विींसे किया-प्रनतकिया का ननणयि आता िै। इसभलए िमारे अंदर जो मनोवैज्ञाननक तथा आममपरक शजकतयाँ िैं उन्िीं के प्रभाव से िमें यि सृजष्ट ऐसी प्रतीत िीती िै। इन्िींशिजकतयों को अधधदैव किते िैं। वास्तव में अपने आप में ऐसी कोई सृजष्ट िै िी निीं। स्वयं सांख्यशास्त्र भी इसका वणनि करते िुए िमें यि दशाति िै कक िमारे गठन के कारण िी िमें इस प्रकार की सृजष्ट हदखाई देती िै। अपनेआप में इसका कोई पृथक् अजस्तमव निीं ंिै। इसी सृजष्ट को भभन्न-भभन्न जीव भभन्न-भभन्न रूप में देखते िैं। विींयहद ककसी जीव का गठन सवथिा भभन्न प्रकार का िोगा तो उसे तो इस सृजष्ट का भान एकदम भभन्न प्रकार से िोगा और इसी कारण उसकी चेतना के भलए वे ननयम बाध्यकारी निीं ंिोंगे जो िमारे भलए िीतिैं। इसभलए जैसा प्रारूप प्रभु ने िमारे अंदर ननहित कर रखा िै वैसा िी िमें अपनी मनोवैज्ञाननक शजकतयों की सिायता से प्रतीत िोता िै। प्रमयेक व्यजकत अपनेजगत् ्में अकेले िी ननवास करता िै, उसमें कोई दूसरा निीं ं रिता। अवश्य िी व्यजकत एक ऐसी चेतना में भी प्रवेश कर सकता िै जिा ॉँउसे यि अनुभव िो कक सभी शरीरों में स्वयंविी ववद्यमान िै। जब तक िम इंहरयों आहद के द्वारा बाँधे िोतिैं तब तक िमें दृश्य जगत् ्की भौनतक यथाथति पर बिुत अधधक आग्रि रिता िै। परंतु जैसे-जैसे व्यजकत अपनी गिराइयों में प्रवेश करने लगता िै, वैसे-वैसे उसका यि भ्रम टूटता जाता िै। इसीभलए चममकार संभव िैं कयोंकक वास्तव में तो सारी संरचना िी मनोवैज्ञाननक िै। ऐसी कोई भौनतक चीज तो कुछ िै िी निीं ंजो कक नमनीय न िो। इसभलए सारी मनोवैज्ञाननक संरचना भगवान् ्के उस ववभशष्ट भाव के अनुसार िोती िै जो वे प्रमयेक जीवववशेष के अंदर भभन्न-भभन्न रूप से प्रकट करना चािते िैं। इसी कारण जीव के भलए सच्ची समझदारी तो इसी में िै कक वि उस ववभशष्ट भाव के प्रनत सचेतन िो और अधधकाधधक उसी के अनुरूप काय िकरे। इसी को चेतना का ववकास किते िैं जजसमें व्यजकत अधधकाधधक भीतर के उस भाव के संपकि में आता जाता िै और उसी के द्वारा अपनेसमस्त कियाकलाप को ननधारिरत करता िै। इस रिस्य को भली-भानाँत जानने के कारण िी भारतीय संस्कृनत का सारा ध्यान इसी पर था कक ककस प्रकार यथाशीघ्र प्रमयेक जीव को उसके उस अंतननहिित भाव के संपकि में लाया जाए कयोंकक एक बार उसके संपकि में आने पर स्वतः िी वि उसके अनुसार अपनेसारे कियाकलाप स्वभाव ननयत रूप से करने लगेगा

और तब ककसी भी प्रकार के बिारी ववधान की आवश्यकता मंद िोती जाएगी व अन्त में - जब पूण िरूपांतर साधधत िो जाएगा तब - आवश्यकता िी निीं रिेगी।

सारा खेल िी चेतना का िै। जब सारा दृश्य भीतर से प्रक्षक्षप्त िो रिा िै तब बिारी दृश्य से ववचभलत िोने की मूलतः तो कोई आवश्यकता िो निीं ंिै। और चूँकक सब कुछ भीतर िी िै तो केवल बिारी अन्वेषण-ववश्लेषण से कोई ववशेष लाभ निीं िोने वाला िै। इसीभलए श्रीअरववन्द ने किा कक, "अनतचेतन िी वस्तुओंका सच्चा आधार िै, न कक अवचेतन। कमल का यथाथ िमित्त्व उस कीचड़ के रिस्यों का ववश्लेषण करने ेसे निीं ंभमलेगा जजसमें से वि यिा ंउगता िै; उसका रिस्य तो कमल के उस हदव्य आहदरूप में भमलेगा जो ननमय िी ऊपर प्रकाश में कुसुभमत िोता िै।"* अब जब िम इस दृजष्टकोण से देखतें तब जाकर िमें समझ में आता िै कक समय को खोजने का ववज्ञान का तरीका तो सवथा उल्टा िै। चीजों को सच्चेरूप में केवल चेतना के द्वारा िी समझा जा सकता िै। उदािरण के भलए भले िम अपनेककसी पालतू पशु ुको पूरे अमरीका की सैर करा लाएँ कफर भी वि विाँका कया वणनि कर सकता िै? विीं, कोई समझदार व्यजकत विाँकी एक झलक मात्र पाने के बाद भी िमें विाँ की कुछ सूचना अवश्य दे सकता िै। इस चीज को समझे ेत्रबना यहद कोई केवल ज़ि भौनतक तत्त्व के आधार पर समय तक पिुँचने ेका प्रयास करे तो यि सवथा ननरथकि िोगा। इस संदभ िमें ववज्ञान के ववषय में श्रीअरववन्द की यि उजकत अमयंत प्रकाशक िै, "यहद तुम भागवत् ्यथाथता या सद्वस्तु को चूक जाओ या उसकी उपेक्षा कर दो तो चीजों का कोई मूलभूत सार निीं ंरि जाता; कयोंकक तुम कामचलाऊ और उपयोग करनेयोग्य ऊपरी हदखावे की अनतववशाल सति परत में धसेँ रितेि। तुम हदव्य जादूगूर के जादू ूका ववश्लेषण करने ेकी कोभशश कर रिे िो, परंतुजब तुम स्वयंजादूगूर की चेतना में प्रवेश करते िो केवल तभी तुम लीला के सच्चे उद्गम, उसके अथ िऔर उसके घेरों का अनुभव करना शुरू करते िो। म ैंकिता िूँ 'शुरू करते िो' कयोंकक हदव्य सद्वस्तु इतनी सरल निीं िै कक पिले िी स्पश िमें तुम उसका सब कुछ जान लो या उसे ककसी एक िी सूत्र में िाल दो; यि तो स्वयं अनंत िै और तुमिारे समक्ष एक अनंत ज्ञान को खोलता िै जजसके आगे सारा ववज्ञान कुल भमलाकर भी एक तुच्छ-सी वस्तु िै।" (CWSA 28, 332) इसभलए सच्चा सार इसी में िै कक व्यजकत अपने भीतर जाए, चेतना का ववकास करे, अपने सच्चेस्वरूप का साक्षामकार करे और उसी को अभभव्यकत करे। केवल ऐसा करने ेसे िी व्यजकत को सच्चा सुख, सच्ची पररपूणता प्राप्त िो सकती िै अन्यथा ननजस्वरूप से भभन्न रूप में जीने से तो ककसी भी प्रकार की सच्ची पररपूणता कभी भमल िी निींसकती। इसीभलए श्रीअरववन्द किते िैं, "हदव्य जीवन की ओर आरोिण िी मानव यात्रा िै, कमों का 'कम'ि और स्वीकार करने योग्य 'यज्ञ' िै। यिी जगत् ्में मनुष्य का एकमात्र वास्तववक काय ितथा उसके अजस्तमव का औधचमय िै, जजसके त्रबना वि भौनतक रह्माण्ि की भयंकर ववशालताओंके बीच सति कीचड़ व पानी के संयोग से अपने-आप बनेएक छोटे-से कण - पृथ्वी - पर अन्य क्षणभंगुर कीटों के बीच एक रेंगता िुआ कीट मात्र िी रिेगा।" (CWSA 21, 48)

अन्तकाले च मामेि ममरन्मजक्त्वा कलेिरम् ्।
यः प्रयानत स मद्भावं यानत नामत्यत्र संशयः ।। ५।।

५. और जो मनष्जय अपनेजीिन के अंत समय में केिल मझेज ेही ममरण करता हजआ शरीर को छोड़ कर प्रयाण करता है, िह मेरे भाि को प्राप्त होता है; इसमें कोई संशय नहीं ंहै।

यं यं िावप ममरन्मिां त्यजत्यन्ते कलेिरम् ्।
तं ंतमेिैनत कौन्तेय सदा तद्भािभावितः ।। ६।।

६. हे कौन्तेय! जो कोई मनष्जय अन्त समय में स्जस ककसी भी भाि को ममरण करता हजआ शरीर को छोड़ता है, िह उस ही भाि को प्राप्त होता है स्जस भाि में िह जीिी अपने भौनतक जीिनकाल में ननरंतर आंतररक रूप से बढ़ रहा था।

मनुष्य संसार में जन्म लेकर प्रकृनत और कम िकी किया में लोक-परलोक के चककर काटता रिता िै। प्रकृनत में जस्थत पुरुष - यिी उसका सूत्र िोता िै: उसके अंदर उसकी आममा जो कुछ सोचती, मनन करती और कम िकरती िै, वि सदा विी बन जाता िै। वि जो कुछ पिले रिा िै उसी ने उसके वतमिान जन्म को ननधिाररत ककया िै; और जो कुछ वि िै, जो कुछ वि सोचता और इस जीवन में अपनी मृमयु के क्षण तक करता रिता िै विी ननजश्चत करता िै कक वि मृमयु के बाद परलोकों में और अपनेभावी जीवनों में कया बनेगा। जन्म यहद 'िोना' िै तो मृमयु भी एक 'िोना' िी िै, ककसी भी प्रकार यि समाजप्त निीं िै। शरीर छूट जाता िै, परंतु जीव, 'मयकमवा कलेवरम्' ् शरीर को छोड़कर अपने रास्ते पर आगे बढ़ता िै। अतः बिुत कुछ इस पर ननभिर करता िै कक अपनेप्रयाण के संधध-क्षण में वि कया िोता िै। कयोंकक मृमयु के समय संभूनत के जजस भी रूप पर उसकी चेतना जस्थर िोती िै और मृमयु के पूव िजजसमें उसकी मन-बुद्धध सदा तन्मय रिती आयी िै उसी रूप को वि अवश्य प्राप्त िोता िै; कयोंकक प्रकृनत कम िके द्वारा जीव के सब ववचारों और वृवियों को िी कायाजन्वित ककया करती िै और वास्तव में यिी प्रकृनत का सारा कायि–व्यापार िै। इसभलए मनुष्य में जस्थत जीव यहद पुरुषोिम-पद लाभ करना चािता िै तो उसके भलए दो आवश्यकताएँ िैं, वि संभव िो सके उससे पूव िदो शतों का पूरा ककया जाना आवश्यक िै। एक यि कक इस पाधथवि जीवन में रिते िुए उसने अपना संपूण िआंतररक जीवन उसी आदश िकी हदशा में गढ़ा िो; और दूसरी यि कक प्रयाण-काल में उसकी अभीप्सा और संकल्प उस आदश िके प्रनत सच्चेबने रिें।

SriAurobindotoDilip,Vol.1,2003, p.189, Hari Krishna Mandir Trust. Pune, and Mira Aditi, Mysore

प्रश्न : इसमें बताया गया िै कक मृमयु के समय व्यजकत की चेतना जजस भी चीज पर जस्थर िोती िै वि उसी रूप को प्राप्त िोता िै। तब कफर व्यजकत के पूरे जीवन-काल में उसनेजो कुछ भी किया-कलाप ककया, कया उसका कोई मित्त्व निीं?

उत्तर : सामान्यतः तो व्यजकत अपने पूरे जीवन-काल में जो भी सोचता या जजस भी चेतना में रिता िै, अंनतम समय में भी उसकी चेतना उन्िीं चीजों में फँसी रिती िै। परन्तु ऐसा भी िो सकता िै कक व्यजकत अपने

जीवन-काल में जो सोचता या जजस चेतना में रिता िै, उससे भभन्न या ववपरीत कोई चीज उसके अंनतम क्षणों में आ जाए, और ऐसे में वि प्रभावी िोगी। उदिारण के भलए अजाभमल, जजसने ेकक अपनेजीवन-काल में कोई समकम िनिीं ककया था और न िी वि कभी भगवान् का स्मरण िी करता था, परन्तु अपनेअंनतम क्षणों में उसने अपनेपुत्र नारायण का नाम पुकारा। ऐसा उसने एकाग्र िोकर भगवान् को स्मरण कर के निीं ककया कयोंकक उसे तो भगवान् से कोई सरोकार निीं था, उसनेतो मोिवश अपनेपुत्र का नाम पुकारा था। परन्तु कफर भी भगवान् के पाषदि उसे लेनेआए और उसे सद्गनत की प्राजप्त िुई। ववरले िी लोगों के अंनतम क्षणों में भगवान् का नाम उनके मुख पर आता िै।

प्रश्न : यहद अंत समय में ककसी व्यजकत की दुघुटिना से मृमृयु िो जाती िै तो उसकी कया गनत िोती िै?

उत्तर : सामान्यतः तो ऐसे व्यजकतयों की कोई अच्छी गनत निीं िोती, िालाकँक व्यजकत की अंतराममा का, उसके चैमय पुरुष का कभी कुछ निीं त्रबगड़ता। यि जजस बारे में बताया जा रिा िै वि सब तो प्राणणक सिा के साथ िोता िै। जब अंतराममा ने एक बार मनुष्य शरीर धारण कर भलया िै तब वि उस अवस्था से नीचेनिींधगर सकती और न िी उसकी कभी कोई दुदुशा िो सकती िै कयोंकक वि तो भगवान् का अंश िै, जजसमें प्रकाश िी प्रकाश िै। जजस प्रकार सूय िजिाँिोता िै विाँप्रकाश िी प्रकाश फैलता िै, अंधकार उसे निीं दबा सकता, उसी प्रकार अंतराममा का भी कभी कुछ निींत्रबगड़ सकता।

प्रश्न : अंत समय में यहद कोई बीमारी से ग्रस्त िो तो वि तो अपनी बीमारी में िी त्रस्त रिेगा, उसी पर केजन्रत रिेगा। उसे तो भगवान् का स्मरण िो िी कैसे सकता िै?

उत्तर : इसीभलए तो यिाँ कि रिे िैं कक यहद व्यजकत अपने जीवन-काल में साधना निींकरता और परमाममा को याद निीं करता तो अंनतम क्षणों में उसको परमाममा की याद बनी रिना लगभग असंभव िै। कफर भी यहद ककसी कारण से या संयोगवश परमाममा की याद आ जाए - जजसकी कक संभावना बिुत कम िोती िै - तो वि बिुत कारगर िोती िै। परन्तु यहद जीवनपयंतं व्यजकत साधना करता िै तो अंनतम क्षणों में भगवान् का स्मरण िोना एक ननजश्चनत िो जाती िै।

प्रश्न : कया प्राण छूटते िी आममा दूसूरा शरीर धारण कर लेती िै?

उत्तर : श्रीमाताजी के अनुसार सामान्य तौर पर चैमय पुरुष जजतना िी अधधक ववकभसत िोता िै उतना िी अधधक समय वि दूसूरा जन्म ग्रिण करने में लेता िै कयोंकक शरीर में रिते समय चैमय जजतने िी अधधक अनुभव ग्रिण करता िै उसके बाद उतना िी समय उसे उन्िें आममसात् करनेमें लगता िै। यहद चैमय पुरुष अभी अधधक ववकभसत निीं िै तो वि तो शरीर मयाग के बाद उसका पुनजन्मि जल्दी िी िो जाता िै। श्रीमाताजी के अनुसार ऐसे उदिारण भी भमलते िैं जिा ँमृमृयु के बाद वि उसी पररवार में पुनः जन्म ग्रिण कर लेता िै। परंतु यि क्षेत्र या यि ववषय इतना ववस्तृतृ िै कक ककन्िीं सीधे-सादे ननयमों में इसे निीं बाधँा जा सकता।

मनुष्य जब से पैदा िोता िै तब से उसके मन, प्राण और शरीर की दीवारें आममा के सामने आकर खड़ी िो जाती िैं इसभलए व्यजकत के सचेतन िोतेिी जीवन का एक िी उद्देश्य रि जाता िै और वि िै उन दीवारों को तोड़ना। परन्तु िमारे बिारी भागों को इसमें कोई रुधच निीं ंिोती कक वे दीवारें टूटें कयोंकक इनके पीछे जो तामभसक शजकतयााँ काय िकरती िैं वे कभी निीं ंचािातींकक कोई प्रकाश आ जाए और अंधकार में चलती उनकी कियाकलाप में कोई व्यवधान पड़े,े इसभलए वे इसका ववरोध करती िैं। अब जैसे ककसी नाबाभलग राजा के मंत्री जो अपनी मनमानी करते िैं वे कभी निीं ंचािेंगे कक वि राजा बाभलग िो और उन पर अंकुश लगाए और शासन करे, वैसे िी ये शजकतयााँ भी निींचािातीं कक आममा को धरती पर अभभव्यकत िोने का मौका भमले अन्यथा उनका ननरंकुश खेल तो खमम िी िो जाएगा। इसीभलए साधना इतनी कहठन िोती िै। परन्तु इसका लाभ यि िै कक व्यजकत इन शजकतयों के खेल को धीरे-धीरे समझ जाता िै और तब वि अधधकाधधक आममा की शजकत को अभभव्यजकत प्रदान कर इन शजकतयों के ऊपर प्रभुमव प्राप्त करना सीख जाता िै और अंततोगमवा अन्धकार की शजकतयों व उनके कियाकलाप के पीछे भी जो भागवत् ्समय नछपा िुआ िै उसे आममसात् ्कर पाता िै।

गीता इस प्रसंग में मृमयु के समय के ववचार और मन:जस्थनत पर ब़िा मित्त्व देती िै, एक ऐसा मित्त्व जजसे समझना िमारे भलए बिुत कहठन िोगा यहद िम उस चीज को न स्वीकार करते िों जजसे चेतना की आमम-सृजनाममक शजकत किा जा सकता िै। िमारा ववचार, िमारी आंतररक दृजष्ट, िमारी श्रद्धा जजस बात पर पूण िऔर सुननजश्चत बल के साथ अपने-आप को सुजस्थर करती िै, उसी (के स्वरूप) में िमारी आंतररक सिा पररवनतति िोने लगती िै। यि प्रवृवि तब एक ननणाियक शजकत बन जाती िै जब िम उन उच्चतर आध्याजममक और आमम-ववकभसत अनुभवों को प्राप्त िोतेिैं जो बाह्य पदाथों पर उतने ननभिर निीं ंिोतेजजतनी कक बाह्य प्रकृनत के वशीभूत िोनेके कारण िमारी सामान्य मनोवृवि िुआ करती िै। वि़ााँ िम अपने-आप को जस्थरतापूवकि वि बनते िुए देख सकते िैं जजस पर िम अपनेमन को जस्थर रखते िैं और जजसकी िम ननरंतर अभीप्सा करते िैं। इसभलए वि़ााँअपने ववचार का थोड़ी देर के भलए भी छूट जाना, स्मरण में जरा-सी भी अशुद्धता के आ जानेका अथ िििै इस पररवतनि की प्रकिया में एक गनतरोध या कफर इस पररवतनि-किया से पतन और िम जो पिले थे ेउसी की ओर पीछे लौटना, ऐसी आशंका तब तक रिती िै जब तक कक कम-से-कम िमने अपनेनवीन भाव को काफी िद तक और अटल रूप से स्थावपत अथवा सुदृढ़ न कर भलया िो। जब िमने यि कर भलया िो, जब िमनेउसे सामान्य अनुभव बना भलया िो तब उसकी स्मृनत स्वत:ववद्यमान रूप से रिती िै, कयोंकक अब वि िमारी चेतना का िी स्वाभाववक रूप िोती िै। ममय िजगत् ्से प्रयाण करने के संधध-क्षण में िमारी चेतना की तामकाभलक जस्थनत का मित्त्व इससे स्पष्ट िो जाता िै। परंतु यि कोई मरण-शय्या पर ककया गया स्मरण निीं ंिै जो िमारी संपूण ि जीवनधारा से और िमारी पूव िमन:जस्थनत से बेमेल िो या कफर जजसकी इनके द्वारा अधूरी तैयारी िुई िो। ऐसे स्मरण के अंदर कोई उद्धारक शजकत निीं िो सकती। यिााँगीता का जो ववचार िै वि प्रचभलत धम िकी ररयायतों और सुववधाओं के िी समान निीं ंिै; इसका इन सनकों से कोई सरोकार निीं ंिै कक एक पूरा अपववत्र सांसाररक जीवन त्रबताने के बाद पादरी के द्वारा अंत में सवप्रियजश्चत करा लेने से िी ईसाई मरण-काल में पावन िो जाता िै अथवा पिले से िी ध्यान रखकर या अकस्मात् ्पववत्र काशीधाम में या पववत्र गंगा के तट पर मर जानेसे और अंत में पंडित द्वारा अंनतम-कियाएाँ करानेसे मुजकत भमल जाती िै, गीता के अनुसार यि मोक्ष की कोई पयाप्ति प्रणाली

निीं ंिै। जजस हदव्य भाव पर मन को प्रयाणकाल में अचल रूप से जस्थर करना िोता िै, 'यं स्मरन् ्भावं मयजनत अन्ते कलेवरम्'्, वि तो विी भाव िोना चाहिए जजसकी ओर जीव अपने सांसाररक जीवन में प्रनतक्षण आगे बढ़ता रिा िो, सदातद्भावभाववतः।

अंत समय के स्मरण का िी एक उदािरण देते िुए श्रीमाताजी ने बताया कक श्रीअरववन्द आश्रम के िी एक साधक ने कुछ धाभमकि पुस्तकें आहद पढ़ रखी थींऔर उसमें आए स्वगों आहद के वणनि से वि प्रभाववत था। इसभलए मृमृयु के उपरान्त वि ऐसे िी ककसी एक मनोननभमति स्वग िमें पिुाँच गया। चूंकक श्रीमाताजी तो जानती थीं कक ऐसे स्वग िआहद की केवल सापेक्ष वास्तववकता िी िोती िै इसभलए वे उसे उसमें से ननकाल कर ककसी समयतर जगत् ्में ले जाना चाि रिी थीं। परंतु वि व्यजकत उस स्वग िकी चकाचौंध से इतना प्रभाववत था कक श्रीमाताजी को उसे उस जगत् ्की सापेक्षता समझाकर वािाँसे ननकालनेमें लगभग एक वष िका समय लग गया। जब श्रीमाताजी इस उदािरण का उल्लेख कर रिी थींतो ककसी ने पूछा कक आणखर ये जगत् ्ककतनेवास्तववक िैं। तब उन्िोंने उिर हदया कक ये जगत् ्अधधक वास्तववक तो निींिपरंतु वतमिान में िम जजस जगत् ्में ननवास कर रिे िैं, जजसमें िमें इंहरयों आहद के माध्यम से स्पशि–बोध आहद प्राप्त िोतिेंं और जजसे िम त्रबल्कुल वास्तववक मानतिेंं, उससे ये कुछ अधधक वास्तववक िैं। अब इस कथन से िमें अपनेवतमिान जगत् ्की घोर अवास्तववकता का और इसकी सापेक्षता का भान िोता िै जजसे कक वास्तववक मानकर िम पूरे जीवन इससे अभभभूत रिते िैं और जीवन में कभी ककसी गिरे और साथकि उद्देश्य के ववषय में सोचते तक निीं।

तममात्सिैष जकालेष जमामनमजमर यध्जय च ।

मय्यवुपतुमनोबद्जधिमुामिैष्यमयसंशयम् ्।। ७।।

७. इससलए सभी समय मेरा ममरण कर और यद्जि कर; क्योंकक यदद तेरा मन और तेरी बद्जधि सदा मजझमें स्मथर और मेरे प्रनत अवुपतु होगी, तो ननःसंदेह ही तू मझेज ेप्राप्त होगा।

अभ्यासयोगयजक्तेन चेतसा नान्यगासमना ।

परमंपरुजषं ्ददव्यंयानत पाथुानजधचन्तयन् ्।। ८।।

८. हे पाथु!ु ननरन्तर अभ्यासरूप योग के द्िारा, भगिान् ्के साथ यक्जत हजई और अन्यत्र कहींविचसलत न होनेिाली चेतना से, सिुदा भगिान् ्का धचन्तन करता हजआ मनजष्य ददव्य और परम् ्परुजष को प्राप्त होता है।

कविं ्परजाणमनजशाससतारमणोरणीयांसमनमजमरेद्यः ।

सिुमय िातारमधचन्त्यरूपमाददत्यिणं ्तमसः परमतात् ्।। ९।।

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या यक्जतो योगबलेन चिै ।

भ्रिजोमुधुये प्राणमािेश्य सम्यक् स तं परं परुजषमपैजनत ददव्यम् ्।। १० ।।

९-१०. ये परम् ्परुजष द्रष्टा (कवि), परजातन, सूक्ष्मानतसूक्ष्म, सममत भूतों के प्रभज और शासक तथा पालक हैं; उनका रूप अधचंत्ंय है। तम अथिा अंकिार से परे, ि सूयु ुके समान ज्योनतमुयु हैं। जो प्रयाण के समय अचल मन से, योग बल से संपन्न और भस्क्तयक्जत' होता है, स्जसनेप्राण-शस्क्त को पूरी तरह से ले जाकर भ्रिजों के बीच में स्मथर कर ददया है, िह इस परम् ्परुजष को प्राप्त होता है।

यिा ॉिम इन परम् ्पुरुष भगवान् ्के सवप्रिथम वणनि पर पिुँचतिैं, - उन परम देव के वणनि पर पिुँचते िैं जो अक्षर रह्म से भी उिम और मिान् ्िैं और जजन्िें गीता आगे चलकर पुरुषोिम की संज्ञा देती िै। ये भगवान् ्भी अपनी कालातीत शाश्वत सिा में अक्षर िैं और इस समस्त अभभव्यजकत से अमयंत परे िैं और यिा ॉकाल के अन्दर िमें उन 'अव्यकत अक्षर' की सिा की केवल अस्पष्ट झलककयााँ उनके ववववध प्रतीकों और छद्मवेशों के द्वारा प्राप्त िोती िैं। कफर भी वे ेकेवल ननगुणि-ननराकार अथवा अलक्षण, 'अननदेश्यम्'् िी निीं ंिैं; या यि कहिये कक वे अननदेश्य केवल इसभलए िैं कयोंकक मनुष्य की बुद्धध को जजस अमयंत सूक्ष्मानतसूक्ष्म का बोध िै वे उससे भी अधधक सूक्ष्म िैं और इसभलए भी कक भगवान् ्का स्वरूप अधचंमंय िै...

यदक्षरं िेदविदो िदस्न्त विशस्न्त यद्यतयो िीतरागाः ।
यददच्छन्तो ब्रह्मचयं ंचरस्न्त तत्ते पदं संग्रहेण प्रिक्ष्ये ।। ११ ।।

११. स्जसे िेद के जाननेिाले अक्षर ब्रह्म कहतेहैं, स्जसमें तपमिी तब प्रिेश करते हैं जब िे (काम-क्रोधादद) भ्रिगों से परे जा चजके होतेहैं और स्जसे प्राप्त करने की इच्छा से ब्रह्मचयु ुव्रत का पालन करते हैं, उस पद या स्मथनत को

म ैंजझेसंक्षेप में कहूूँगा।

सिुदिुाराणण संयम्य मनो हृदद ननरुध्य च ।
मूध्न्युायात्मनः प्राणमास्मथतो योगिारणाम् ्।। १२।।
ओसमत्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनमजमरन् ्।
यः प्रयानत त्यजन्देहं स यानत परमां गनतम् ्।। १३ ।।

१२-१३. इस्न्द्रयों के सममत द्िारों को संयत करके, मन को हृदय में ननरुद्ि करके, अपनी प्राण-शस्क्त को मिू्ा (ससर) में ले जाकर स्मथर करके, जो व्यस्क्त योग के द्िारा धचत्त की एकाग्रता में स्मथत हो, एकाक्षर पवित्र शब्द ॐ का उच्चारण करता है, और प्रयाणकाल में मझेज ेममरण करता हजआ देह त्याग करता है, िह परम गनत को प्राप्त होता है।

[यिी] प्रयाण की प्रचभलत यौधगक पद्धनत िै, संपूण िसिा को शाश्वत, परामपर के प्रनत अंनतम रूप से भेंट करना। परंतु कफर भी यि केवल एक पद्धनत िै; मूलभूत जस्थनत िै जीवन में, कम िऔर युद्ध तक में – मामनुस्मर युद्धय च - भगवान् ्का सतत् ्अचल स्मरण करना और संपूण िजीवन को ननरंतर योग अथात्ि्'ननमययोग' बना

देना। जो कोई भी ऐसा करता ि◌, भगवान किते ि◌ैं कक, वि मुझे ◌ेअनायास पा लेता ि◌ै; विी मिममा ि◌ै जो परम भसद्धध या पूणतिा लाभ करता ि◌ै।

...यिाँ ज्ञान के द्वारा ननगुणि ननराकार ऐक्य नेपे्रम-भजकत के द्वारा भगवान् ◌्से ऐक्य का स्थान निीं ले भलया ि◌ै, अवपतुयि भजकतयोग अंत तक परम योगशजकत का एक अंग बना रिता ि◌ै...

viii.7

अनन्यचेताः सततं यो मांममरनत ननत्यशः ।

तमयाहं सलभ्ःा पाथु ◌ुननत्ययक्जतमय योधगनः ।। १४।।

१४. हे पाथु!◌ु जो योगी अन्य ककसी का धचंतंन न करता हजआ, अनिरत और सतत् ◌्रूप से मेरा ममरण करता है, ि◌ह मझजसे ननत्य यजक्त रहता है और मझेज ◌ेसलजभता से प्राप्त कर लेता है।

मामपेजत्य पनजजुनुम द:जखालयमशाश्‍तिम् ◌्।

नाप्निजस्न्त महात्मानः संससद्धिं ◌ंपरमां गताः ।। १५।।

१५. मेरे पास आने ◌ेके बाद, ये महात्मा पनजजुनुम को, मत्यु ◌ुप्राणी की इस अननत्य और द:जखमय स्मथनत को, पनजः प्राप्त नहींकरते; ि◌े परम गनत को प्रास होतेहैं।

आब्रह्मभिजनाल्लोकाः पनजरिानतुनुोऽजुनुज ।

मामपेजत्य त जकौन्तेय पनजजुनुम न विद्यते ।। १६ ।।

१६. हे कौन्तेया जगत् ◌्परंपरा में ब्रह्मलोक तक स्जतने ◌ेभी लोक हैं उन सबसे पनजरिाृवत्त (अथुात् ◌्पनजः जन्मग्रहण

की कक्रया) होती है, ककन्त जउस जिी पर पनजजुनुम बाध्य नहीं होता जोप्राप्तकर लेता है।

इस प्रकार ऐहिक जीवन से प्रयाण करके जीव जजस जस्थनत में पिुँचता ि◌ै वि ववश्वातीत जस्थनत ि◌ै। इस लोकपरंपरा के अन्दर जो उिमोम स्वगलोिक ि◌ैं वे ◌ेसब पुनरावृवि के अधीन ि◌ैं; परंतु जो जीव पुरुषोिम को प्राप्त िोता ि◌ै उस पर पुनजन्मि बाध्य निींिोता। अतः अननदेश्य रह्म को प्राप्त करने की ज्ञानाभीप्सा से जो कुछ फल प्राप्त ि◌ो सकता ि◌ै विी इन स्वतःभसद्ध परम् ◌्पुरुष को, जो सब कमों के अधीश्वर तथा सब मनुष्यों और प्राणणयों के सुहृद् ि◌ैं, ज्ञान, कम ि◌और भजकत (प्रे◌ेम) के द्वारा प्राप्त ि◌ोनेकी अभीप्सा के इस दूसूरे और व्यापक माग ि◌से भी प्राप्त ि◌ोता ि◌ै। उन भगवान् ◌्को इस प्रकार जानना और इस प्रकार उनकी खोज करना पुनजन्मि से या कमि–श्रृंखला

से र्नीं बाधाँता; जीव इस ममय िजीवन की क्षणभंगुर और कलेशदानयनी जस्थनत से सदा के भलए मुकत िोने की अपनी इच्छा को पूण िकर सकता ि। और, गीता इस जन्मचि तथा इससे छूटने की बात को बुद्धध के भलए और भी अधधक सटीक बनानेके भलए ववश्व के (सृजृष्ट और लय संबंधी) चिों के उस प्राचीन भसद्धांत को स्वीकार कर लेती ि, जो कक ववश्वप्रपंचसंबंधी भारतीय धारणाओं का एक स्थायी अंग बन गया था।

v.29

सहस्रयगजपयुनुतमहयुदु ब्रह्मणो विदःज ।

रात्रं ंयगजसहस्रान्तां ंतेऽहोरात्रविदो जनाः ।। १७।।

१७. जो लोग, ब्रह्मा का एक ददन जो कक एक सहस्र यगजी तक रहता है, और रात्र जो एक सहस्र यगजांत तक रहती है, ऐसा जानते हैं, ि ददन और रात को जानर्नोले हैं।

अव्यक्तादृयित्क्तयः सिुाः प्रभिन्त्यहरागमे ।

रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैिाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८॥

१८. ब्रह्मा के ददन के आने ेपर अव्यक्त में से सममत चराचर उत्पन्न होतेहैं और रात्र के आनेपर सभी उस अव्यक्त में लय हो जाते हैं।

भूतग्रामः स एिायंभूत्िा भूत्िा प्रलीयते । रा

त्र्यागमेऽशिः पाथु ुप्रभित्यहरागमे ।। १९।।

१९. हे पाथु!ु यह सममत चराचर भूतों का समूह असहाय रूप से बार-बार असभव्यस्क्त में आता है, रात्र आने ेपर लय हो जाता है और ददन आने पर उत्पन्न हो जाता है।

परमतममात्त जभािोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।

यः स सिेषज भूतेष जनश्यत्सज न विनश्यनत ॥ २०॥

२०. ककन्तज इस (िस्श्कि) अव्यक्त से परे, सत्ता का एक दूसूरा विश्ितीत अव्यक्त सनातन मिरूप है, जो सममत भूतों के नष्ट होनेपर भी नष्ट नहीं ंहोता है।

अव्यक्तोऽक्षर इत्यक्जतमतमाहजः परमां गनतम् ्।

यं प्राप्य न ननितुनुते तद्िाम परमं मम ।। २१ ।।

२१. िह 'अव्यक्त अक्षर' कहा जाता है, उसे परम-आत्मा, परम-पद कहते हैं, जो उसे प्रास कर लेते हैं ि लौटकर नहीं ंआते; िह मेरा परम िाम है।

चिो िम ववश्व की उमपवि-प्रलय संबंधी इस धारणा को ग्रिण करें या रद्द कर दें, - कयोंकक यि इस पर ननभरि िै कक िम 'हदन और रात के जाननेवालों' के ज्ञान को ककतना मित्त्व प्रदान करते िैं, पर मित्त्वपूण िबात तो यि िै कक गीता इसे कया मिो देती िै। सिज िी कोई समझ सकता िै कक यि शाश्वत रूप से अव्यकत सिा, जजसका इस व्यकत-अव्यकत जगत् ्के साथ कुछ भी संबंध निंीं प्रतीत िोता, वि अवश्य िी ननमय अलक्षक्षत अननवचिनीय ननरपेक्ष सिा िोनी चाहिये, और उस तक पिुाँचने ेका उधचत माग ियिोगा कक जो कुछ िम अभभव्यजकत में बन गए िैं उस सबसे छुटकारा पा लें, यि निंीकक अपनी बुद्धध के ज्ञान को, हृदय की प्ेरेम-भजकत को, योगसंकल्प को और प्राण की प्राणशजकत को एक साथ एकाग्र करके संपूण िअंतश्चेतना को उसकी ओर ले जाएाँ। ववशेषेत:, भजकत तो उस परम ननरपेक्ष के संबंध में अनुपयुकत िी प्रतीत िोती िै जो कक सभी संबंधों से ररकत िै, 'अव्यविाय'ि िै। 'परन्तु' गीता आग्रिपूवकि किती िै कक यद्यवप यि जस्थनत ववश्वातीत और यि सिा सदा अव्यकत िै, तथावप 'उन परम् ्पुरुष को... भजकत के द्वारा िी प्राप्त करना िोता िै।...'

परुजषः स परः पाथु ्भक्त्या लभ्यमत्निन्यया ।
यमयान्तःमथानन भूतानन येन सिुसुमदं ततम् ्।। २२ ।।

२२. हे पाथी परन्त जउस परम् ्परुजष को, स्जसके भीतर सममत भूत रहते हैं, स्जससे यह सम्पूणु ्जगत् ्विमततृ हजआ है, अनन्य भस्क्त से प्राप्त ककया जाता है।

vii.19

दूसूरे शब्दों में किं तो, वे परम् ्पुरुष िमारी भमथ्या-माया से उदासीन सवथिा संबंधरहित र ननरपेक्ष निंीं ं िं, अवपतु जगतों के रष्टा (कवव), स्रष्टा और शासक िैं, 'कववं,ं अनुशाभसतारं, धातारं', और उन्िंीको 'एक' और 'सव'ि, वासुदेवः सवभिमनत, के रूप में जानकर और उन्िंी की भजकत करके िमें अपनी संपूण िसचेतन सिा से सब पदाथों, सब शजकतयों, सब कमों में उनके साथ ऐकय के द्वारा परम चररताथतिा, पूण िभसद्धध, परम मुजकत खोजनी चाहिए।

----

* यहद परम् ्पुरुष िमारे साथ समबन्ध रखने में समथ िभी िोते, पर केवल ननवैयैजकतक समबन्ध िी, तो धम िमानव प्राणसिा के भलए अपना मित्त्व खो बैठैता और भजकतमाग िभी फलदायक या यिााँ तक कक समभव िी निंीं रिता। अवश्य िी िम उसके प्रनत अपने मानवीय भावों का प्रयोग कर सकते िैं, पर अननजश्चत एवं अयथाथ िढंग से तथा ककसी मानवोधचत उिर की आशा के त्रबना : केवल जजस तरीके से वि िमें उिर दे सकता िै, वि िै िमारे संवेदनों को ननःस्तब्ध करके और िमें अपनी ननवैयैजकतक शाजन्त एवं ननववकिार समता से आच्छाहदत करके; और ऐसा िी वस्तुतः िोता िै जब िम ईश्वर की शुद्ध ननवैयैजकतकता के पास जाते िैं। िम एक दैवी ववधान के रूप में उसकी आज्ञा का पालन कर सकते िैं, उसकी शान्त सिा के प्रनत अभीप्सा में अपनी आममाओंको उसकी ओर ऊपर उठा सकते िैं, अपनी भावुक प्रकृनत को अपने से दूरू कर के उस ननवैयैजकतकता में ववकभसत िो सकते िैं; िमारे अन्दर का मानव-जीव तृपूत तो निंीं िोता पर वि शान्त, संतुभलत और जस्थर िो जाता िै। परन्तु भजकतयोग, जो इस ववषय में धम िसे एकमत िै, इस ननवैयैजकतक अभीप्सा की अपेक्षा अधधक घननष्ठ एवं स्निेभसकत पूजा का आग्रि करता िै। यि िमारे अंदर की मानवता की तथा िमारी सिा के ननवैयैजकतक भाग की एक िी साथ

हदव्य पररपूनत िका लक्ष्य रखता ि;ै यि मनुष्य की भावमय प्रकृनत की हदव्य पररतृजृप्त का लक्ष्य रखता ि।ै परम देव से यि मिारे प्ेरेम को स्वीकार करनेकी और उसके अनुरूप उिर की मागँ करता ि;ै जैसे िम उनमें आनन्द लेतेतथा उन्िें खोजतेिैं वैसे िी, इसका ववश्वास िै कक, वे भी िममें आनन्द लेतेऔर िमें खोजतेिैं! और न िी इस मागँ को बुद्धधववरुद्ध किकर इसकी ननन्दा िी की जा सकती ि,ै कयोंकक यहद परम और ववश्वमय पुरुष िममें ककसी प्रकार का रस न लेतेतो यि समझना कहठन िै कक िमारा उद्भव समभव िी कैसे िोता या िम अजस्तमवमान कैसे रि सकते थे, और यहद वे िमें अपनी ओर त्रबल्कुल भी खींचंते निीं, - यहद भगवान् ्िमें खोजते िी निीं,ं तो प्रकृनत में कोई भी ऐसा कारण निीं हदखता कक कयों िम उसे खोजनेके भलये अपनीसामान्य सिाकेिि सेमिुँ फेरकरउसकीओर मिु।ें

यत्र काले त्वनावृत्तमावृत्तं ंचैव योधगनः ।
प्रयाता यास्न्त तं कालं िक्ष्यासम भरतषुभु ।। २३ ।।

२३. और हे भरतिंसशयों में श्ेरेष्ठ अजुनुज ! स्जस समय में देह त्याग कर प्रयाण करने ेपर योगी इस पृथ्वी लोक में किर जन्म न ग्रहण करने ेऔर किर जन्म ग्रहण करने–रूप गनत को प्राप्त करते हैं उस काल को म ैंतम्जहें बतलाता हूँ।

[यिा]ाँ एक अधधक अनोखी बात आती िै जजसे गीता ने प्राचीन वेदान्त के रिस्यवाहदयों से ग्रिण ककया ि।ै यिाँयि उन भभन्न-भभन्न कालों का ननदेश करती िै जजन कालों में योगी को अपनी इच्छानुसार, यि चुनाव करके कक वि पुनजन्मि चािता िै या उसे टालना चािता ि,ै दि मयाग करनी िोती ि।ै

अस्ननज्योनतरहः शक्जलः षण्मासा उत्तरायणम् ्।
तत्र प्रयाता गच्छस्न्त ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ।। २४ ।।
धूमो रात्त्रमतथा कृष्णः षण्मासा दक्षक्षणायनम् ्।
तत्र चान्द्रमसंज्योनतयोगी प्राप्य ननितुते ।। २५ ।।

२४-२५. अस्नन एिं प्रकाश तथा िआजूँ अथिा ििजूँ, ददन एिं रात, महीने का शक्जलपक्ष एिं कृष्णपक्ष, उत्तरायण एिं दक्षक्षणायन ये परमपर विलोम चीजें हैं। इन विपयुयुों में प्रत्येक में से प्रथम विपयुयु के द्िारा ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म को प्राप्त होते हैं; परंत जदूसूरे विपयुयुों के द्िारा योगी 'चंद्र के प्रकाश' को प्राप्त करता है और उसके बाद पनजः मानि जन्म में लौट आता है।

शक्जलकृष्णे गती होतेजगतः शाश्िते मते े।
एकया यात्यनावृत्तमन्ययािततुे ेपनजः ।। २६ ।।

२६. ये दो धचरमथायी प्रकाशमय और अंकिारमय मागु ुहैं; इनमें से एक के द्वारा िह प्रयाण करता है जो पनजः लौट कर नहीं आता, और दूसूरे से िह जो पनजः लौटता है।

नैतेसृती पाथु ुजानन्योगी मजह्यनत कश्चन ।
तममात्सिेष जकालेष जयोगयक्जतो भिाजुनुज ।। २७ ।।
२७. हे पृथापत्रज! जो योगी इन दोनों मागों को जाननेिाला है िह कभी भ्रसमत नहीं होता। इससलये हे अजुनुज सभी कालों में (हर समय) योगयक्जत हो।

(शुकुल-कृष्ण गनत की धारणा' के पीछे) चािे जो मानस-भौनतक वास्तववकता िो या कोई प्रतीक िो - यि धारणा उन गुह्यवाहदयों के युग से चली आ रिी िै जो प्रमयेक भौनतक पदाथ िमें आंतररक तत्त्व के प्रभावशाली प्रतीक को देखतेथे ेऔर जो सवत्रि िी बाह्य और आभ्यंतर, प्रकाश और ज्ञान, अजग्न-तत्त्व और आध्याजममक ऊजिा के बीच परस्पर किया तथा एक प्रकार की समरूपता देखतेथे,े - िमें तो केवल उस मिो को देखने की आवश्यकता िै जिससे गीता इन श्लोकों का उपसंिार करती िै: 'अतएव, सभी समय योगयुकत रिो।'

कयोंकक अंततः यिी मूलभूत बात िै, संपूण िसिा को भगवान् ्के साथ एकामम कर देना, इतने पूण िरूप से और सभी तरि से एकामम कर देना कक यि स्वाभाववक और सतत् ्रूप से ऐकय अवस्था में जस्थत िो जाए, और इस प्रकार संपूण िजीवन, केवल ववचार और ध्यान िी निीं,ं अवपतु कम,ि श्रम, युद्ध सब कुछ भगवान् ्का िी स्मरण बन जाए। 'मामनुस्मर युद्धय च', 'मेरा स्मरण कर और युद्ध कर', अथात्ि्इस अननमय पाधथवि संघष िमें, जो सामान्यतः िमारे मन को ग्रभसत ककये रिता िै, क्षण भर के भलए भी शाश्वत के सतत् ्धचंतंन को न छोिो देना; और यि बात बिुत िी कहठन, प्रायः असंभव िी प्रतीत िोती िै। वस्तुतः यि सवथिा संभव तभी िोती िै जब इसके साथ अन्य शतें भी पूरी िों।

•योग का अनुभव वस्तुतः यि हदखाता िै कक इस धारणा के पीछे एक यथाथ िमनोभौनतक समय िै, अवश्य िी यि िर जगि पूण िया ननरपेक्ष रूप से व्यविाय िनिीं िै, इस धारणा के पीछे की युजकत यि िै कक, प्रकाश और अंधकार की शजकतयों के बीच जो आंतररक युद्ध िोता िै उसमें प्रकाश की शजकतयों का हदन या वष िके प्रकाशमय समयों में स्वाभाववक प्राधान्य रिता िै और अंधकार की शजकतयों का अंधकारमय समयों में, और यि संतुलन तब तक चलता रि सकता िै जब तक कक अंनतम ववजय प्राप्त निीं िो जाती।

मिारे शाखों में जगि-जगि ऐसा वणनि आता िै कक रात्रत्र के समय राक्षसों की, आसुरी शजकतयों की ताकत बढ़ जाती िै और रह्म मुिूत िमें देवताओं ंकी ताकत बढ़ जातो िै। िमारा सारा ज्योनतषशास्त्र, शकुन शास्त्र आहद इन्िीं िभौनतक, सूक्ष्म भौनतक और मनो-भौनतक संकेतों, प्रतीकों आहद पर आधाररत िैं। पशु-पक्षक्षयों की, कीिे-मकोिों की आवाजें, व्यविार आहद के आधार पर भी पूरा शास्त्र आधाररत िै कयोंकक उनके व्यविार आहद से बिुत से भौनतक तथा सूक्ष्म संकेत प्राप्त िोते िैं। िालांकक इन सब में सदा िी कोई अप्रमयाभशत तत्त्व तो रिता िी िै परंतु कफर भी ये सारे संकेंत बिुत िद तक िमें चीजों के ववषय में ननजश्चत पूवाभिास प्रदान करतिैं। पूवकिाल में िम राजा-मिाराजाओं की कथाओं ंमें देखतिैं कक ककस प्रकार जन्म

के समय िी राजज्योनतषी बच्चे का लगभग सटीक भववष्य बता देतेथे। और कुछ मामलों में तो वि भववष्यकथन अक्षरशः िसिीीता था।

यहद िम अपनी चेतना में सबके साथ एक आममा िो चुके िैं - वि एक आममा जो सदा िमारी बुद्धध में स्वयं भगवान् ् िैं, और यिााँ तक कक िमारे नेत्र तथा अन्य इजन्रयााँ इन्िीं भगवान् ्को सवत्रि इस प्रकार देखती और अनुभव करती िैं कक ककसी भी समय ककसी भी पदाथ िको िम वैसा निीं ंअनुभव करते या समझतेजैसा कक असंस्कृत बुद्धध और इजन्रयााँ अनुभव करती िैं, अवपतु ुउसे उस रूप में नछपे िुए तथा साथ–ी-साथ उस रूप में प्रकट िोनेवाले भगवान् ्िी जानते िैं, और यहद िमारी इच्छा भगवहदच्छा के साथ चेतना में एक िो चुकी िै और मिें अपनी इच्छा, अपनी मन-बुद्धध और शरीर का प्रमयेक कम िउसी भगवहदच्छा से ननःसृत, उसी का एक प्रविा, उसी से भरा िुआ या उसके साथ एकीभूत प्रतीत िोता िै तो गीता की जो मागाँ िै उसे सवांगीण रूप से ककया जा सकता िै। अब भगवमस्मरण मन की रुक-रुक कर िोनेवाली कोई ववशेषे किया निीं ंिोती, अवपतु िमारे कियाकलापों की सिज जस्थनत और एक तरीके से चेतना का सारतत्त्व मात्र िी बन जाता िै। अब जीव पुरुषोिम के साथ अपना यथाथ,ि स्वाभाववक एवं ंआध्याजममक संबंध प्राप्त कर चुका िोता िै और िमारा संपूण िजीवन एक योग बन गया िै, वि योग जो भसद्ध िोने पर भी शाश्वत रूप से और अधधक आमम-भसद्ध िोती एकता बनता जाता िै।

वेदेषु जयज्ञेष जतपःस जचैव दानेषज यत्पण्जयिलंप्रददष्टम् ्।

अत्येनत तत्सिुसुमदं विददत्िा योगी परं मथानमपैजनत चाद्यम् ्।। २८ ।।

२८. िेदों में, यज्ञानष्जठानों में, तपों में तथा दानों में जो पजण्यकममों का िल बताया गया है, इसको जानकर योगी इन सबसे परे चला जाता है और परम् ्और ननत्य पद प्राप्त करता है।

इस प्रकार आठिूाँ अध्याय 'अक्षरब्रह्मयोग' समाप्त होता है।

नवा ाँअध्याय

I. राजगुह्य

समस्त समय जजसने अपने-आप को यिााँतक िमशः ववकभसत ककया िै, जो प्रमयेक सोपान पर समग्र ज्ञान के ककसी नवीन पिलू को प्रस्तुत करता आया िै और उस पर आध्याजममक अवस्था और कम िके ककसी-न-ककसी ननष्कष िको स्थावपत करता गया िै, उसे अब एक ऐसा मिो़ लेना िै जो अमयंत मित्त्वपूण ििै। इसभलए भगवान् ्आगे जो कुछ किनेवाले िैं उसके ननणायिक स्वरूप की ओर पिले िी ध्यान हदला देते िैं जजससे कक अजुनि का मन जागृत और सतकि िो सके। कयोंकक वे ेउसका मन समग्र भगविा के ज्ञान और दशनि के प्रनत खोलने वाले िैं और ग्यारिवें अध्याय के उस ववराट् दशनि तक ले जाने वाले िैं, जजससे कक कुरुक्षेत्र का यि योद्धा अपनी सिा, कम िऔर ववभशष्ट काय िके उन रचनयता और धतिाके प्रनत, मनुष्य और जगत् ्में व्याप्त भगवान् ्के प्रनत सचेतन िो जाए जजन्िें मनुष्य में और संसार में कोई चीज सीभमत या बद्ध निीं करती, कयोंकक सभी कुछ उन्िीं से ननःसृत िैं, उन्िींकी अनन्त सिा में एक गनतववधध िै, उन्िीं की इच्छा से यि जारी रिता िै और उसी के द्वारा आधश्रत रिता िै, उन्िीं कै हदव्य आममज्ञान में इसकी साथकिता भसद्ध िोती िै, वे िी सदा इसके आहद, सार और अंत िैं। अजुनि को अपनेबारे में यि जानना िोगा कक वि केवल उन्िीं भगवान् ्में अजस्तमवमान रिता िै और अपनेअंदर केवल उन्िीं की शजकत के द्वारा काय िकरता िै, उसके समस्त कियाकलाप भागवत् ्किया का एक साधनमात्र िैं, उसकी अिपरक चेतना केवल एक आवरण िै और उसके अज्ञान के भलए वि उसकी अंतःजस्थत सच्ची सिा का, जो कक परम् ्पुरुष परमेश्वर का अमर स्फुजल्लंग और अंश िै, भमथ्या प्रनतभास मात्र िै।

यिी समय सिा का रिस्य िै जो कक अब गीता इसकी प्रचुर फलविा के साथ िमारे आंतररक जीवन और बाह्य कमों के भलए प्रयुकत करने ेजा रिी िै। वि जो अब किने ेजा रिी िै वि गुह्यतम रिस्य िै। यि समग्र भगवान्, ्समग्र माम्, ्का वि ज्ञान िै जजसे अजुनि को उसकी सिा के प्रभु ने देने का वचन हदया िै, वि मूलभूत ज्ञान जो सभी तत्त्वों में (भगविा के) पूण िज्ञान से युकत िै, जो कफर और कुछ जाननेके भलए बाकी निीं ंरख छो़िता। अज्ञान की वि संपूण िग्रंधथ जजसने उसकी मानव-बुद्धध को भ्रभमत ककया िै और जजसने उसके संकल्प को

अपनेभगवद्-ननयत काय िसे पीछे िटा हदया िै, वि (इस मूलभूत ज्ञान द्वारा) पूण िरूप से नछन्न-भभन्न िो चुकी िोगी। यि सब ज्ञानों का ज्ञान, सब गुह्यों का गुह्य, राजववद्या, राजगुह्य िै।

इस नवें अध्याय में भगवान् की सिा का मोटा-मोटा सारा ननरूपण आएगा कक ककस प्रकार सभी कुछ भगवान् स्वयं िी िैं। उनके अनतररकत और कुछ भी निीं। उन्िीं से सभी चीजों का उद्गम िै, उन्िींसे उनकी गनत और उन्िीं में उनका लय िै। इस ननरूपण में पिले तो कुछ पिेलीनुमा बातें आती िैं जैसे कक 'म ैंसभी भूतों में जस्थत िूँ परंतु समस्त भूत मुझमें जस्थत निीं।' चूंकक ये सभी बातें पिेलीनुमा िैं इसभलए अपनेआप में स्थूल िोने के कारण बुद्धध इन बातों से चकरा जाती िै इसभलए उसे सूक्ष्म बनाना, पररष्कृत करना आवश्यक िै।

श्रीभगिान् उिाच

इदं तज ते गह्जयतमं प्रिक्ष्याम्यनसूयिे।

ज्ञानंविज्ञानसदहतंयज्ज्ञात्िा मोक्ष्यसेऽशभजात् ।। १।।

१. श्रीभगिान् ने कहाः तजझ दोषदृस्ष्ट-रदहत को जो / अब कहने जा रहा हूँ, िह गजह्यतम चीज है, िह मूलभूत ज्ञान है जो सममत व्यापक ज्ञान (विज्ञान) से यक्जत है, स्जसे जान कर तू अशभज से मक्जत हो जाएगा।

राजविद्या राजगह्जयं पवित्रसमदमत्तजमम् ।

प्रत्यक्षािगमंम्यैसजखं कतुमुजव्ययम् ।। २।।

२. यह राजविद्या है, राजगजह्य (सभी रहमयों में रहमय) है, यह पवित्र और उच्चतम कोदट का प्रकाश है स्जसका आध्यास्त्मक अनभजि के द्िारा सत्यापन ककया जा सकता है, सत्ता का सही िमु है, स्जसका अभ्यास करना सरल है और जो अविनश्िर है।

अश्रद्दिानाः परुजषा िमुमुयामय परन्तप ।

अप्राप्य मांननितुनुतेमृत्यसंजसारित्मनन ।। ३।।

३. हे परंतप! इस िमु में श्रद्िा न प्राप्त कर पाने िाले मनष्जय मजझे न प्राप्त करके सामान्य मत्यु जीिनपथ में लौट आते हैं।

....यहद श्रद्धा न िो, यहद व्यजकत उस ताककिक बुद्धध का िी भरोसा करता िो जो बाह्य तथ्यों के आधार पर चलती िै और शंकालु दृजष्ट से अन्तदृिष्ट ज्ञान पर इस कारण संदेि करती िै कयोंकक वि बाह्य प्रकृनत के ववभाजनों और अपूणतिाओंके साथ मेल निीं खाता और उससे परे की चीज प्रतीत िोता िै तथा कोई ऐसी चीज व्यकत करता प्रतीत िोता िै जो िमें िमारे वतमिान जीवन के प्रथम व्याविाररक तथ्यों से, इसके दुःख-ददि से, पाप, दोष, भगवद्-ववरुद्ध प्रमाद व स्खलन, अशुभ, से परे ले जाता िै, तो कफर उस उच्चतर ज्ञान से युकत जीवन त्रबताने की कोई संभावना निीं िै। जो जीव उच्चतर सत्य और ववधान में श्रद्धा निींला पाता उसे अवश्य िी मृत्यु, दोष

और अशुभ के अधीन सामान्य ममय िजीवनपथ में लौट आना प़िता ि: वि उन परमेश्वर के स्वरूप में ववकभसत निीं ंिो सकता जजनकी सिा को वि नकारता ि। कयोंकक यि एक ऐसा समय ि जजसे जीना िोता ि, - और आममा के ववकभसत िोते प्रकाश में जीना िोता ि, न कक मन के अंधकार में उसे तकि द्वारा प्रस्तुत ककया जा सकता ि।

यि बिुत िी मित्त्वपूण िबात ि। यहद व्यजकत को भगवान् ्के वचनों में श्रद्धा आ गई ि तो वि उन्िें जीने का प्रयास करेगा िी, जबकक जजसे उनके वचनों में श्रद्धा निींआई ि वि तो अपनी सामान्य जीवनचयाि में िी ननरंतर चलता रिेगा। िालाकँक श्रद्धा आने पर भी मन, बुद्धध आहद भाग तो सकिय िी रिते िैं, एकाएक िी वे पररवनतति निीं िो जाते। वे पूववित् ्िी अपनी किया करते रिते िैं और मन-बुद्धध की ककसी भी किया से, िमारे ककन्िीं भी भौनतक, मानभसक, मनोवैज्ञाननक ननयमों आहद से भगवान् ्के स्वरूप को निीं ंजाना जा सकता और न िी वे िमें भगवान् ्की ओर जानेके माग िमें अग्रसर िी कर सकते िैं। श्रद्धा के आधार पर व्यजकत माग िपर आरंभ तो कर सकता ि परंतु कदम-कदम पर उसे जो व्याविाररक ननणयि लेने िोते िैं उनके भलए विी पुराना दृजष्टकोण, विी पुरानेमन-बुद्धध और अधधक सिायक निीं ंरिते। तब कफर व्याविाररक ननणयि कैसे ककये जाएँ? इसके भलए श्रीअरववन्द किते िैं, "यि एक ऐसा समय ि जजसे जीना िोता ि, - और आममा के ववकभसत िोते प्रकाश में जीना िोता ि, न कक मन के अंधकार में उसे तकि द्वारा प्रस्तुत ककया जा सकता ि।" इसभलए व्यजकत जब इस माग िपर चलता ि और इस पर उसे जो भी कोई अनुभव प्राप्त िोते िैं, भले कोई छोटा िी अनुभव कयों न प्राप्त िुआ िो, तब वि अनुभव या वे अनुभव व्यजकत को मजस्तष्क के समस्त कियाकलापों से, ववज्ञान के सभी ननयमों से, सभी दशनिों से, साधना के सभी ननयमों से किीं ंअधधक प्रकाश प्रदान करते िैं। इसभलए इस अध्याय के आरंभ में िी गीता श्रद्धा के ऊपर और आध्याजममक अनुभव के आधार पर समय के समयापन पर बल देती ि कयोंकक अन्य ककन्िीं भी साधनों से इस समय का समयापन निीं ंिो सकता। अतः जैसे-जैसे व्यजकत को अधधकाधधक अनुभव प्राप्त िोते जाएँगे वैसे-वैसे उसे और अधधक मागदिशनि प्राप्त िोता जाएगा। यहद मानभसक स्तर पर िी गिरे समयों के रिस्य को समझा जा सकता िो तब तो बुद्धधजीववयों द्वारा बिुत पिले िी इस रिस्य को समझा जा चुका िोता। परंतुयि राजगुह्य ि जजसकी ओर व्यजकत को श्रद्धा के आधार पर चलना िोता ि जो कक अनुभव लाती ि और उस अनुभव से आगे का माग िप्रशस्त िोता ि। इसी कारण आध्याजममक पथ पर गुरु के मागदिशनि की परम आवश्यकता रिती ि कयोंकक ववरला िी कोई िोता ि जो अपनी ननज शजकत-सामथ्य िसे इस ननमन कियाकलाप से, अपररष्कृत बुद्धध की किया से ऊपर उठ सके। िालाकँक ज्यों-ज्यों व्यजकत पथ पर अग्रसर िोता ि मयों-मयों उसकी बुद्धध भी अधधक पररष्कृत िोती जाती ि और अभभव्यजकत में उसकी सिायता करती ि। चूंकक व्यजकत को आगे से आगे अनुभव प्राप्त िोतेजाते िैं तो उनकी सिायता से मनुष्य की बुद्धध, उसके भाव, उसका दृजष्टकोण आहद सब बदलते जाते िैं। यि नवाँ अध्याय बिुत िी मित्त्वपूण िि कयोंकक भगवान् ्इसमें अपनेगुह्य तत्त्व का, अपने भगवत्त्व का ननरूपण करते िैं।

व्यजकत को उसी में ववकभसत िोना िोता ि, विी िो जाना िोता ि, - उसकी समयता परखने का या भसद्ध करने ेका केवल यिी तरीका ि। केवल ननमनतर सिा को अनतिम करके िी कोई सच्ची हदव्य सिा बन सकता ि और आजममक जीवन के समय को जी सकता ि। समय के जजतने भी आभास इसके ववरोध में प्रस्तुत ककये जाएँ, वे

सब ननमन प्रकृनत की ि◌ी प्रतीनतयााँ ि◌ैं। ननमन प्रकृनत के इस अशुभु से मुजकत उस उच्चतर ज्ञान को ग्रिण करने ◌ेसे ि◌ी आ सकती ि◌ै जजसमें यि प्रमयक्ष या भासमान अशुभु अपनेस्वरूप की चरम अयथाथतिा स्वीकार कर लेता ि◌ै, यि स्पष्ट ि◌ो जाता ि◌ै कक यि ि◌मारे अंधकार की सृजृष्ट थी। पर इस प्रकार हदव्य 'प्रकृनत' के मुकत भाव की ओर ववकभसत ि◌ोने ◌ेके भलए ि◌में ि◌मारी वतमिान सीभमत प्रकृनत में ननगूढ़ परमेश्वर की सिा को स्वीकार करना ि◌ोगा व उसमें ववश्वास करना ि◌ोगा। कयोंकक जजस कारण से यि योग संभव और सिज ि◌ो जाता ि◌ै वि यि ि◌ै कक इसे साधनेमें ि◌म जो स्वाभाववक रूप से ि◌ैं उस सब की कियाओंको उन अंतःस्थ हदव्य पुरुष के ि◌ाथों में सौंप देते ि◌ैं। भगवान् ◌्ि◌मारी सिा अपनी सिा में भमलाकर और उसे अपनेज्ञान और शजकत से पररपूण ि◌कर, 'ज्ञानदीपेन भास्वता', सिज, अचूक रीनत से ि◌मारे अन्दर उिरोर हदव्य जन्म साधधत कराते ि◌ैं: वे ि◌मारी तमसाच्छा अज्ञानमयी प्रकृनत को अपने ि◌ाथों में ले लेते ि◌ैं और अपने प्रकाश औ व्यापक भाव में रूपान्तररत कर देते ि◌ैं। ि◌म जजस पर पूण ि◌श्रद्धा के साथ औ अिंकार-रहित ि◌ोकर दृढ़ ववश्वास करते ि◌ैं और उनके द्वारा पे्ररररत ि◌ोकर ि◌ोन चािते ि◌ैं, उसे अंतःस्थ भगवान् ◌्ननश्चय ि◌ी भसद्ध कर देंगे। परंतु पिले अिभावापर मन और प्राण को, जो कक ि◌म वतमिान में ि◌ैं और बाह्यतः प्रतीत ि◌ोतिैं, अपनेरूपांतरण ि◌ेतु स्वयं को ि◌मारे अंतःस्थ अंतरतम गूढ़ भगविा के िाथों में समवपति करना ि◌ोगा।

x.11

तीसरे श्लोक में भगवान् ◌्कित ि◌ैं कक, "ि◌े परंतप ! इस धम ि◌में श्रद्धा न प्राप्त कर पाने वाले मनुष्य मुझे ◌े न प्राप्त करके सामान्य ममय ि◌जीवनपथ में लौट आते ि◌ैं।" यि उजकत परम मित्त्व की ि◌ै। कयोंकक सभी कुछ उस मूलभूत श्रद्धा पर ननभिर करता ि◌ै। सामान्यतः ि◌म सुनते ि◌ी ि◌ैं कक ि◌में भगवान् ◌्पर ववश्वास ि◌ै। परंतु वास्तव में वि ववश्वास भी ि◌मारी सिा के ककसी-ककसी भाग में ि◌ी ि◌ोता ि◌ै और वि भी इतने ◌ेक्षीण रूप से ि◌ोता ि◌ै कक उसमें ि◌मारी सिा की ऊजाओं को, उसकी वृवृियों को भगवान् ◌्की ओर मो़ने की शजकत निीं ि◌ोती। ि◌ालाकााँक ऐसा कोई व्यजकत निीं ि◌ोता जजसमें कक कोई गिरी चीज न ि◌ो, परंतु मित्त्व इस बात का ि◌ै कक उसकी बािरी सकिय प्रकृनत पर उसका ककतना प्रभाव ि◌ै। इसी कारण समसंग का, धमग्रंथिों का, भजन-कीतनि आहद का, समपुरुषों के पास जाने का, तीथों में जानेका इतना भारी मित्त्व ि◌ै। कयोंकक यों तो सभी कुछ ि◌ोता तो परमाममा की ि◌ी इच्छा से ि◌ै परंतु ◌ु व्यजकत की बािरी प्रकृनत का गठन जजस प्रकार का ि◌ै, उसमें ये सभी बािरी साधन अन्दर की श्रद्धा को जागृत करने ◌ेमें सियता प्रदान करते ि◌ैं। ऐसी चीजों के संपकि में भीतरी श्रद्धा को जागृत ि◌ोने ◌ेका अधधकतम सुअवसर प्राप्त ि◌ोता ि◌ै। और जब वि श्रद्धा बािरी प्रकृनत तक भी अपना प्रभाव ि◌ालनेमें, व्यजकत के व्याविाररक जीवन को भी ननयोजजत करने ◌ेमें समथ ि◌िोती ि◌ै तब व्यजकत योग की ओर उन्मुख ि◌ो जाता ि◌ै अन्यथा तो वि साधारण जीवन ि◌ी व्यतीत करता रिता ि◌ै। अतः जो इस श्रद्धा को प्राप्त निीं कर सकता वि भगवान् ◌्की ओर निीं जा सकता। भले व्यजकत ककतनेभी तकों से भगवान् ◌्की सिा को मंडित करनेका या उसे अस्वीकार करनेका प्रयास करे, परंतुकेवल श्रद्धा के द्वारा और उसके प्रभाव से माग ि◌पर ि◌ोने वाले सतत् ◌्वधधति ि◌ोतेअनुभवों के द्वारा ि◌ी वि वास्तव में उस ओर बढ़ सकता ि◌ै और केवल तभी माग ि◌पर आने वाली समस्याओं का, सभी प्रकार के संशयों आहद का सच्चे रूप से समाधान ि◌ो सकता ि◌ै। अब प्रश्न यि उठता ि◌ै कक कया संदेि, संशय आहद ननरथकि ि◌ैं? परंतु सृजृष्ट में ऐसी कोई चीज निीं ि◌ै जजसकी कक अपनेसी समय और स्थान पर उपयोधगता न ि◌ो। श्रद्धा जब अपने

आप को ववभभन्न भागों के द्वारा प्रकट करती ि◌ै तब ि◌मारे मन, प्राण और शरीर आहद भाग इतने ◌ेसक्षम निीं ◌ंि◌ोते कक वे सिी रूप में, त्रबना ककसी प्रकार की त्रुहट या ववकृनत के उसे ग्रिण कर सकें और अभभव्यकत कर सकें। ि◌मारी बाह्य प्रकृनत आरंभ में बिुत ि◌ी अपररष्कृत, तुच्छ, अनमनीय और क्षुर ि◌ोती ि◌ै और बिे ि◌ी सतत् ◌्अभ्यास के द्वारा उसका ववकास ि◌ोता ि◌ै। और ज्यों-ज्यों उसका ववकास ि◌ोता ि◌ै मयों-मयों वि उस श्रद्धा को अधधकाधधक सिी रूप में ग्रिण कर सकती ि◌ै और अभभव्यकत कर सकती ि◌ै। इसभलए ि◌मारी बाह्य चेतना अपररपकव ि◌ोने ◌ेके कारण उसमें श्रद्धा का प्रनतत्रबंबं स्पष्ट निीं बन पाता इसभलए उसमें संशय और संदेि उपयोगी ि◌ोतेिैं ताकक ि◌म श्रद्धा के उस अपूण ि◌प्रनतत्रबंबं को ि◌ी अंनतम न मान बैठें और उसी में रूढ़ न ि◌ो जाएँ। यहद व्यजकत में संशय न उठते तब तो वि अपनी ककसी भी प्रकार की धारणा को, सनक को, पूवाग्रिि को ि◌ी सिी मानकर उसी के अनुसार चलने ◌े लगेगा जजसका पररणाम बिुत ि◌ी भयंकर ि◌ो सकता ि◌ै। और यि चीज इतनी आम ि◌ै कक प्रायः ि◌ी ि◌म लोगों को पे्ररणा के नाम पर, भीतरी श्रद्धा के नाम पर अनतयों में भलप्त ि◌ोते देखते ि◌ैं। इसभलए अपनेआप में श्रद्धा पर निीं ◌ंबजल्क मन-बुद्धध आहद भागों में उसके ननरूपण पर संदेि अमयंत आवश्यक ि◌ै। इस बात में संशय निीं ◌ंकरना ि◌ैकक गंतव्य तो परम प्रभु ि◌ी ि◌ैं, कयोंकक यि तो आममा का सिज समय ि◌ै, सच्ची श्रद्धा ि◌ै, परंतु यि श्रद्धा व्याविाररक जीवन में अपने आप को ककस रूप में अभभव्यकत करती ि◌ै उन रूपों पर मनुष्य को संशय या संदेि िोना आवश्यक ि◌ै ताकक वि बािरी भागों की त्रुहटयों, ववकृनतयों आहद की रोकथाम कर सके जजससे कक उस श्रद्धा को अधधक शुद्ध रूप में अभभव्यकत ककया जा सके। और श्रद्धा एक इतना मित्त्वपूण ि◌तत्त्व ि◌ै जो व्यजकत को भगवान् ◌्की ओर ले जाता ि◌ै। इसीभलए गीता आिि,ि◌ अथाथिी, जजज्ञासु आहद सभी भकतों को श्रे्ष्ठ बतलाती ि◌ै कयोंकक मित्त्वपूण ि◌चीज ि◌ै ककसी भी प्रकार भगवान् ◌्की ओर चलना, उनसे संबंध स्थावपत करना और अधधकाधधक उन्िेंजीवन में अभभव्यकत करना। और जब एक बार व्यजकत ककसी भी भाव से भगवान् ◌्की ओर चल पिता ि◌ै तब उसके अशुभु नष्ट ि◌ो जाते ि◌ैं।

प्रश्न : भगवान् ◌्कितेिैं कक, "इस धम ि◌में श्रद्धा न प्राप्त कर पाने वाले मनुष्य मुझेन प्राप्त करके सामान्य ममय ि◌जीवनपथ में लौट आते ि◌ैं।" तो वि ककस धम ि◌के ववषय में ि◌ै?

उत्तर : सामान्य अथ ि◌में जजसे ि◌म धम ि◌समझतेिैं उससे इसका कोई संबंध निीं ि◌ै। भगवान् ◌्किते ि◌ैं कक यि राजगुह्य, जजसका कक आध्याजममक अनुभव से ि◌ी समयापन ककया जा सकता ि◌ै, सिा का सिी धम िि◌ै। और राजगुह्य और कुछ निींकेवल यि रिस्य ि◌ै कक भगवान् ◌्ि◌ी सब कुछ ि◌ैं और जीवन में उन्िेंचररताथ ि◌करना ि◌ी एकमात्र सच्चा उद्देश्य ि◌ै, यिी सच्चा धम िि◌ै। और जजसे इस धम ि◌में, इस राजगुह्य में श्रद्धा आ गई ि◌ै वि तो अवश्य ि◌ी अपनेगंतव्य की ओर चला जाएगा। इसभलए भले तकलीफ में ि◌ी सिी, भले ककसी स्वाथ ि◌के कारण या कफर जजज्ञासावश ि◌ी सिी, पर यहद ककसी प्रकार भी व्यजकत को भगवान् ◌्की सिा में ववश्वास आ गया कक उन्िींि◌के पास जाना चाहिये, तब व्यजकत त्रबल्कुल सिी भाव में ि◌ै। और त्रबना इस ववश्वास के तो भजकत का कोई आधार ि◌ी निीं ◌ंि◌ै। जजसकी सिा मात्र को व्यजकत स्वीकार न करता ि◌ो उसको भजकत वि कर ि◌ी कैसे सकता ि◌ै। इसभलए यि ववश्वास भजकत का प्राथभमक आधार बन जाता ि◌ै।

प्रश्न : पिले श्लोक में भगवान् ्कितिैं कक तू अशुभु से मुकत िो जाएगा। तो अशुभु कया िै?

उत्तर : जो कुछ िमें परमाममा की ओर जानेसे रोकता िै विी अशुभु िै। अपनेआप में कोई चीज शुभु या अशुभु निीं िोती। यि तो देश-काल और पात्र पर ननभरि करता िै कक कौनसी चीज भगवान् ्की ओर जानेमें सियक िो जाती िै और कौनसी बाधक। ककसी अमुक अनुभव से व्यजकत भगवान् ्को ओर जा सकता िै और ककसी अमुक अनुभव में व्यजकत फँस भी सकता िै। िालाकाँक सामान्यतया कुछ चीजें शुभु िी मानी जाती िैं, जैसे कक भगवान् ्के पे्रमीजनों का संग, समपुरुषों का संग। इसमें यि अपवाद अवश्य िो सकता िै कक यहद स्वयंउस व्यजकतववशेषे की अवस्था िी इतनी ऊँची िो कक उसे उन तथाकधथत समपुरुषों के साथ मेलजोल करने ेमें सतकि भी रिना पड़े।े परतु यि तो अमयंग ववरले प्रसंगों में िी िोता िै। स्वयं श्रीअरववन्द ने किा कक उन्िें श्रीमाताजी के आने से पूव िपांडिचेरी में अन्य ककसी से कभी कोई सियता प्राप्त निीं िुई। इसभलए भभन्न व्यजकतयों के भलए भभन्न चीजें िोती िै। परंतु ुमुख्न बात िै कक यहद भगवान् ्के प्रनत वि श्रद्धा आ जाए तो व्यजकत उनकी ओर गनत करना आरंभ कर देता िै पर यहद वि जागृत न िो तो केवल पररश्रम िी िाथ लगता िै, वास्तववक कोई गनत िोती निीं। पर एक बार जब भगवान् ्को ओर कदम बढ़ जाएँ तो कफर देर-सवेर, ककतने ेभी उतार-चढ़ावों से िोतेिुए व्यजकत अंततः गंतव्य तक पिुँच िी जाता िै। इसीभलए भगवान् ्किते िैं कक 'सन्मुख िोई जीव मोहिं ंजबहि, जनम कोहट अघ नासहिं ंतबहिं।ं'

प्रश्न : जब एक बार व्यजकत उस रि पर कदम बढ़ा देता िै तब कया पीछे जानेकी जस्थनत भी उमपन्न िो सकती िै?

उत्तर : मिारे प्राण का खेल बड़ा िी भयंकर और खतरनाक िै। इसीभलए तो गीता छठे अध्याय के तेईसवें श्लोक में किती िै कक 'इस योग का धचि में ककसी भी प्रकार के अनुमसिा अथवा ववषाद में िूबे त्रबना दृढ़तापूवकि ननरंतर अनुष्ठान करना चाहिए।' इसी पर हटप्पणी करते िुए श्रीअरववन्द किते िैं, "...हृदय तथा मन की अधीरता और िमारी राजस प्रकृनत की उमसुक पर स्खलनशील इच्छा-शजकत के कारण योग के ववषम तथा संकीण िपथ पर इस श्रद्धा तथा धैय िकी प्राजप्त करना अथवा उसका अभ्यास करना कहठन िोता िै। मनुष्य की प्राणणक प्रकृनत सदा िी अपने पररश्रम के फल के भलये तरसती िै और यहद उसे ऐसा लगता िै कक फल देनेसे इंकार ककया जा रिा िै या इसमें बिुत देर लगायी जा रिी िै तो वि आदश ितथा नेतृमव में ववश्वास खो बैठती िै। कयोंकक, उसका मन सदा िी पदाथों की बाह्य प्रतीनत के द्वारा िी ननणयि करता िै, कयोंकक यि उस बौद्धधक तकि की पिली सबसे भारी गिराई तक जमी िुई आदत िै जजसमें वि इतने ेअनतशय रूप से ववश्वास करता िै। जब िम धचरकाल तक कष्ट भोगतेया अन्धेरे में ठोकरें खाते िैं तब अपने हृदयों में भगवान् ्को कोसने से अथवा जो आदश िििमनेअपनेसामने रखा िै उसे मयाग देनेसे अधधक आसान िमारे भलये और कुछ निीं िोता।...ऐसी घड़ियों में - और कभी-कभी ये बारमबार आती िैं और दीघकिाभलक िोती िैं समस्त उच्चतर अनुभव ववस्मृत िो जाता िै और हृदय अपनी कटुता में िूब जाता िै, उसी पर केंहरत िो जाता िै। इन्िीं ंअंधकारमय कालों में यि आशंका रिती िै कक िम सदा के भलये पनतत िो सकते िैं अथवा हदव्य काय िया श्रम से पराङ्मुख िो सकते िैं।" (CWSA 23, 244) श्रीमाताजी इस ववषय

में चेतावनी देती ि◌ुई किती ि◌ैं कक, "...जब तुम पथ पर ि◌ोते ि◌ो, तो कभी भी उसका पररमयाग न करो। कुछ प्रतीक्षा करो, पथ को स्वीकार करने ◌ेसे पूव ि◌तुम चािो उतनी देर सकुचा सकते ि◌ो; परंतु जजस क्षण से तुम उस पर पदापणि करो, तो बस, उसे छोि़ो मत। कयोंकक इसके पररणाम ि◌ैं जो अनेक जन्मों तक असर ि◌ाल सकतिैं। यि बिुत ि◌ी गंभीर ि◌ै। इसीभलए सब कुछ के बावजूद योग पथ पर प्रवेश करने ◌ेके भलए म ◌ैंकभी ककसी को बाध्य निींकरती।"

(CWM 4, 444)

योगी श्रीकृष्णपे्रेम ने भी संदेि के कालों का वणनि करते ि◌ुए बताया ि◌ै कक ककस प्रकार उन कालों में ि◌मारे ववभभन्न भाग श्रद्धा में ववश्वास खो बैठते ि◌ैं और स्वयंअपनेउस आधार तक को ि◌ी नष्ट-भ्रष्ट करनेपर आमादा िो जाते ि◌ैं जो उन्िें थामकर आगे ले जा रिा था। श्रीकृष्णपे्रेम ने इसका एक रूपक कथा के रूप में जो धचत्रण ककया ि◌ै वि बिुत ि◌ी हृदयस्पशी ि◌ै। वे भलखतिैं, "मनैं ◌ेकुंहठत कामना के गिरे मंद स्वर को मानभसक समुर में प्रचण्ि रूप से दिौते देखा। ववशाल लिरों में उसे मनैं सति पर आते देखा, और मन के जिाज को, जजसके तार कटे ि◌ुए थे, घनघोर ि◌वा के सामने भागतेदेखा। मनैं ◌ेजिाजी दल को, जजनका भय उफनती लिरों के संपकि के कारण आतंककत ि◌ोध में बदल गया था, अपनी कुल्िाड़ियाँ ◌ँलेते और रस्सों और खंभों को बिुी बेरिमी से काटते देखा। मनैं ◌ेउन्िें अद्भुत हदशासूचक (compass) पर प्रिार करते देखा जो कक जिाज के बीचों-बीच प्रकाश से जगमग कर रिा था, यद्यवप उन्िोंने हदशासूचक के कााँच को तो नष्ट कर हदया था परंतु उसके प्रकाशपूण ि◌काटोँ को छू निीं पाए। और अंत में वे अमयंत उिेजजत और ि◌ोधधत ि◌ो गए और जिाज के लट्टे तक को ि◌ी चीर हदया और जब वि पानी में ि◌ूब गया तो वे भी कोसतेऔर सुबकतिुेए ि◌ूबने ◌ेलगे। और कफर भी हदशासूचक चमक रिा था, एक आग्नेय काटााँ जो समुर के ऊपर अंधेरे शून्य में बिे ◌ेशांत-जस्थर भाव से बना ि◌ुआ था। और जब उन्िोंनेउसे देखा तो वे उसकी ओर तैर कर गए और उसे पकि़ा, और तब मनैं ◌ेदेखा कक उनके चारों ओर एक बार कफर वि जिाज था, अपनेसभी खंभों और लट्ठों के साथ यथावत् ◌्और अंधकारमय तूफान किीं ◌ंदूरू गभमयिों के-से समुर के तले लुप्त िो गया था। परंतुदल के हृदयों में शभमंदंगी भरी थी।" (योगी श्रीकृष्णपे्रेम, लेखक हदलीप कुमार राय, प्रकाशक श्रीअरववन्द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट, पृष्ठ ३६)

श्रीअरववन्द इसे ववस्तार से समझाते ि◌ुए किते ि◌ैं कक जब व्यजकत साधना के माग ि◌पर कदम रखता ि◌ै तब श्रद्धा को कुछ राभश के साथ ि◌ी साथ उसके अपनेववचार, अपनेदृजष्टकोण, अपनी जानकाररयों की राभश आहद िोतिैं। परंतुसाधना में ऐसे समय आते ि◌ैं जब व्यजकत को लगता ि◌ै कक जजस श्रद्धा से उसने आरंभ ककया था, जजस इष्ट या उद्देश्य के प्रनत उसनेअपनेजीवन को अवपति कर हदया था, उसनेउसे संकट में अकेला छोि़ हदया ि◌ै और उसने वृथा ि◌ी अपना जीवन ककसी ऐसी चीज के पीछे लगा हदया जजससे उसको कोई परवाि ि◌ी निीं ि◌ै या जो संकटकाल में उसकी कोई सिायता निींकरती, उसकी करुण पुकार निीं सुनती। बिुत से ऐसे आजस्तक लोगों के भिं उदािरण पढ़ने-सुनने ◌ेको भमलतिैं जो आरंभ में बिुत अधधक धमपिरायण थे ◌ेऔर बिुत पूजा-पाठ आहद करते थे,◌े परंतु ककसी अमयंत अवप्रय घटना के बाद वे भगवान् ◌्में अपना ववश्वास खो बैठे। साधनामाग ि◌में भी ि◌में ऐसे लोगों के उदािरण भमलतिैं जो कितिैं कक उन्िोंनेअपना सवस्वि दावाँ पर लगा हदया तो भी अंततः उन्िें ननराशा िी ि◌ाथ लगी। इसभलए साधना माग ि◌की बजाय तो संसार के तौर तरीकों से चला जाए विी समझदारी ि◌ै। इसी

प्रकार जब िमारी रूपक कथा का जिाजी बिा संकट में आता िै तब उसे अपने जिाज पर ववश्वास समाप्त िो जाता िै और वि उसे नष्ट कर देना चािता िै। परंतु ऐसे िी कालों में पुराने ेमूल्य, पुरानी धारणाएँ आहद तो टूट जाती िैं और व्यजकत पाता िै कक एक किींअधधक ववशाल धरातल - एक छोटे जिाज की अपेक्षा एक ववशाल जिाज - उभर कर आता िै जजसके आधार पर वि अपनी यात्रा को जारी रख सकता िै। इसी प्रकार यि यात्रा आगे से आगे बढ़ती रिती िै जजसमें समय-समय पर िमारे अंदर संशय उमपन्न िो जाते िैं और यहद साधक उन कालों में से ववजयी रूप से बािर ननकल आता िै तो वि पाता िै कक उसकी श्रद्धा पिले से किींअधधक ववशाल िो जाती िै, उसकी मनोवैज्ञाननक तथा प्राणणक संरचना किींअधधक लचीली, ववशाल तथा अधधक समावेशी िो जाती िै। ऐसे काल अधधकांश साधकों के जीवन में आते िैं। िालाकँाक व्यजकत के गठन पर ननभरि करता िै कक उसके भलए ये काल ककतनेलंबे चलते िैं और ककतने ेप्रायः आते िैं। परंतु वास्तव में तो भले िी िमारा ववश्वास ककतना भी कयों न गिमगाए, परंतु भगवान ्सदा िी िमारी सिायता करते रिते िैं। यिी दृढ़ आश्वासन प्रदान करने के भलए तो भगवान ्अजुनि को कितेिैं कक,

निेाभभिमनाशोऽजस्त प्रमयवायो न ववद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धमस्ि्य त्रायतेमितो भयात् ्।।२:४०।।

इस माग िपर कोई भी प्रयास नष्ट निींिोता, न िी कोई प्रमयागमन िी िोता िै, इस धम िका थोिा-सा अनुष्ठान भी मिान् ्भय से मुकत कर देता िै।

इसभलए परमाममा की ओर बढ़ाया िुआ एक कदम भी कभी व्यथ िनिीं ंजाता। यिींयहद कोई भगवान् ्के भलए कोई श्रम करता िै, उनके ननभमि कोई कष्ट या पीिा उठाता िै तब तो उसका कल्याण सुननजश्चत िै। व्यजकत अपनेअि की पुजष्ट के भलए, कामनाओं-वासनाओंकी पूनत िके भलए, अपनेसगे-संबंधी, ररश्तेदारों के भलए तो सारे हदन अनेकानेक तकलीफें उठाता िै परंतु भगवान् ्के भलए थोिा भी कष्ट उठाने का परम सुअवसर केवल ककसी सौभाग्यशाली को िी भमलता िै।

इसके बाद गीता परम और समग्र रिस्य को, उस एकमात्र धचंतंन समय को जजसमें पूणतिा तथा मुजकत के जजज्ञासू को रिना सीखना िोगा, तथ उस रिस्य के सब आध्याजममक अंगों और उनके समस्त किया-व्यापारों ओ पूणतिा के एकमात्र ववधान को प्रकट करनेकी ओर अग्रसर िोती िै। यि पाय रिस्य उन परामपर परमेश्वर का गूढ़ रिस्य िै जो सब कुछ िैं और सवत्रि िैं, श्री कफर भी जगत् ्तथा उसके नाना रूपों से इतनेमिर और भभन्न िैं कक यि की कोई वस्तु उन्िेंअपने में समाहित निींरखती, कोई वस्तु ुउन्िेंवास्तववक रूप में व्यकत निींकरती, और कोई भी भाषा, जो देश और काल और उनके परस्पर समबन्धों से ननभमति पदाथों के बाह्य रूपों से ली गई िो, उनके अधचन्त स्वरूप का ककसी प्रकार संकेत निींकर सकती। पररणामतः, िमारी पूणतिा का ववधान िै िमारी संपूण ि प्रकृनत की उसके हदव्य स्रोत और स्वामी के प्रनत आराधना और उन्िींको आममसमपणि। िमारा एकमात्र चरम माग ियिी िै कक जगत् ्में िमारे संपूण िअजस्तमव को, केवल ककसी इस या उस अंश को िो निीं,ं शाश्वत पुरुष की ओर एकांनतक गनत में मोि हदया जाए। हदव्य योग को शजकत और उसके गूढ़ रिस्य के द्वारा िम उनकी

अननवचिनीय गुह्यताओं ंसे ननकल कर लौककक पदाथों की इस बद्ध प्रकृनत में आ गये िैं। उसी योग की एक ववपरीत गनत के द्वारा िमें अवश्य बाह्य प्रकृनत की सीमाओंको अनतिम करना िोगा और उस मिर चेतना को कफर से प्राप्त करना िोगा जजसके द्वारा िम भगवान् ्में और परम शाश्वत में ननवास कर सकें।

अत:, कोई भी ववचार, कोई भाव, कोई सूत्र भगवान् ्के अधचन्मय स्वरूप को कभी भी प्रकट निीं कर सकता। इसभलए एकमात्र करनेयोग्य काय िै उनके प्रनत आममसमपणि। आममसमपणि के द्वारा िी इसकी कोई संभावना िै कक िम उनके स्वरूप के ककसी अंश को कुछ समझ पाएँ, अन्य ककसी तरीके से तो यि संभव िी निीं ी। इसभलए एकमात्र करने योग्य काय िै कक ककसी भी प्रकार अपने पूरे अजस्तमव को, अपनी संपूण िसिा को भगवान् ्की ओर मोि कर उनके िाथों में सौंप हदया जाए।

....भगवान् ्यि सारा जगत् ्जो कुछ िै वि सब, और इस जगत् ्में जो कुछ िै वि सब और इस जगत् ्से अधधक भी जो कुछ िै वि सब िैं। गीता सवप्रिथम भगवान् ्की ववश्वातीत सिा पर बल देती िै। कयोंकक, अन्यथा बुद्धध अपने सवोच्च लक्ष्य को चूक जाएगी और केवल ववश्वमय सिा की ओर िो मुिी रिेगी या कफर जगत् ्में जस्थत भगवान् ्की ककसी आंभशक अनुभूनत से िो आसकत रिेगी। इसके बाद गीता भगवान् ्की उस ववश्वसिा पर बल देती िै जजसमें सब कुछ गनत और कम िकरता िै। कयोंकक यिी जगमप्रपंच का औधचमय िै और विी ववस्तृत आध्याजममक आमम-बोध की जस्थनत िै जजसमें भगवान् ्अपने-आप को काल-पुरुष के रूप में देखतेिुए अपना जगमकम िकरते िैं। इसके बाद, गीता ने कुछ तीव्र बल के साथ भगवान् ्को मानव शरीर में हदव्य ननवासी के रूप में स्वीकार करने का आग्रि ककया िै। कयोंकक, वे सब भूतों में अंतयामिी पुरुष िैं, और यहद अंतव्यापि्ति भगविा को स्वीकार न ककया जाए तो न केवल वैयजकतक जीवन का भागवत् ्अभभप्राय िी समझ में निीं ंआएगा, अवपतु ु अपनी परम आध्याजममक भववतव्यता की ओर िमारी तीव्र इच्छा अपनी मिमम शजकत िी खो बैठेगी, और मानवता के अंदर आममा का आममा से परस्पर-समबन्ध क्षुर, अनतसीभमत और अिंकारमय िी बना रिेगा। अन्तत:, गीता ववस्तारपूवकि ववश्व में सभी पदाथों में हदव्य अभभव्यजकत पर बल देती िै और जो कुछ भी िै उस सब की उन्िीं एकमेव भगवान् ्की प्रकृनत, शजकत और ज्योनत से उद्भूत िोने की पुजष्ट करती िै। कयोंकक भगवद्-ज्ञान िेतु ऐसी दृजष्ट भी अमयंत आवश्यक िै; इसी के ऊपर संपूण िसिा का और समस्त प्रकृनत का भगवान् ्की ओर पूण िरूप से मुिना आधाररत िै...

x.12

परम् ्पुरुष परमेश्वर, ववश्वचेतना के पीछे अक्षर आममा, मानव आधार में जस्थत व्यजष्टगत-ईश्वर और ववश्व-प्रकृनत तथा उसके सब कमों और प्राणणयों में गुप्त रूप से चेतन अथवा अंशत: आववभूति ईश्वर, ये सब एक िी सद्वस्तु, एक िी भगवान् ्िैं। परन्तु इस एक िी भगवद् सिा के ये जो ववभभन्न भाव िैं इनमें से ककसी भी एक भाव का जो यथाथ िवणनि िम पूण िववश्वास के साथ कर सकतेिैं उसे जब भगवद् सिा के अन्य भावों पर घटाने का प्रयमन करते िैं तब वि वणनि उलट जाता या उसका अभभप्राय बदल जाता िै।... यि एक ऐसी बात िै जजसे िमें गीता में स्पष्टतया देखनी िोगी; एक िी समय के ये जो ववभभन्न भाव समबन्ध-भेद और उसके प्रयोग-भेद से िुआ

करते िैं, इनके भलए अपनेववचार में अवकाश रखना िोगा। अन्यथा िमें परस्पर ववरोध' और ववसंगनत िी हदखाई पिेंगी जिााँकक ऐसी कोई ववषमता िै िी निीं ंअथवा हदखने ेमें पिेलीनुमा वचन लगते िैं उनसे अजुनि की तरि िम भी भ्रभमत िो जाएाँगे।

मया ततसमदं सिं ंजगदव्यक्तमूनतुना ।
मत्मथानन सिुभूतानन न चाहं तेष्ववस्मथतः ।। ४।।

४. मेरे द्वारा यह सम्पूणु ुजगत् ्मेरी सत्ता की अकथनीय गजह्यता में विमतृत् हजआ है; सममत भूत मेरे भीतर स्मथत हैं ककंत जम ैउनमें स्मथत नहीं ंहूाँ।

भगवान् ्की परम् ्सिा अभभव्यजकत के परे िैः उनकी सच्ची ननमय मूनत िजज़ितत्त्व में व्यकत निीं ंिोती, न िी वि प्राण की पकि में आती िै, न वि मन के द्वारा संज्ञेय या धचन्मय िै, अधचन्मयरूप, अव्यकतमूनत।ि िम जो देखतेिैं वि तो केवल एक स्वरधचत 'रूप' िै, वि भगवान् ्का सनातन 'स्वरूप' निीं।ि जगत् ्से भभन्न ऐसा कोई या ऐसा कुछ िै, जो व्यकत निीं ंककया जा सकता, जो कल्पनातीत, अननवचिनीय रूप से अनन्त भगवाि िै जो अनन्तता के ववषय में िमारे ववशालतम अथवा सूक्ष्मतम ववचार लेशमात्र भी आभास प्राप्त कर सकें उससे भी परे िै। पदाथों का यि समस्त ताना-बाना जजसे िम जगत् ्का नाम दे देते िैं, गनत की यि समस्त अनतववशाल राभश जजसकी िम कोई सीमाएाँ निीं ंबाधाँ सकते... उसे अपनी अननवचिनीय ववश्वातीत गुह्यता पर प्रनतजष्ठत इसी सवोच्च अनन्त सिा ने बुना िै, रूप हदया िै और ववस्ताररत ककया िै। यि एक ऐसे आमम-ननरूपण या आमम-रूपायन पर प्रनतजष्ठत िै जो स्वयंअव्यकत और अधचंमंय िै। यि सदा पररवतनिशील और गनतशील संभूनत का समूि, ये सब जीव, भूत, पदाथ,ि सासाँ लेते और जीववत रूप, ये सभी समूिगत रूप से या कफर अपनी पृथक् पृथक् सिा में भी उन भगवान् ्को समाहित निींकर सकते। वे े(भगवान्) ्उनमें निीं िैं; उनके अन्दर या उनके द्वारा निीं ंजीते, चलते या अजस्तमवमान बनेरिते िैं - भगवान् ्संभूनत निीं।ि अवपतु वे भूत आहद िी उनके अन्दर िैं, वे िी उनके अन्दर जीते, चलते और उन्िींिंसे अपनेस्वरूप का समय प्राप्त करते िैं; भूत उनकी संभूनत िैं और वे उनकी आममसिा िैं। अपनी सिा को अधचंमंय देश-कालातीत अनंतता में उन्िोंने एक असीम देश और काल में एक असीम संसार का यि छोटा-सा दृश्य फैलाया िै।

• यि जगत् ्एक आध्याजममक ववरोधाभास िै,
जो 'अदृष्ट' के अंदर एक आवश्यकता द्वारा रचा गया िै,
जो प्राणी के इजन्द्रयबोध के भलए उस 'तत्'् का
ववरूवपत रूप िै, जो सदा ववचार और वाणी से परे िै,
उसका प्रतीक िै जजसे कभी प्रतीक में व्यकत निीं ंककया जा सकता,
एक ऐसी भाषा जो अशुद्ध-उच्चाररत, अशुद्ध-वतनिी िै,
परंतु िै कफर भी समय।

जब भगवान् ्किते िैं कक भूत उनमें जस्थत िैं परंतु वे भूतों में जस्थत निीिं तो इसका वास्तव में अथ िकया िै? िमारे वैहदक ऋवषयों को इस बात का भली-भानाँत ज्ञान था कक जो कुछ भी गोचर िोता िै वि आया तो परमाममा से िी िै अतः जजस प्रकार िम ककसी धागे को उसके ककसी एक छोर से पक़ि कर चलें तो दूसूरे छोर तक पिुाँच सकतिैं, उसी प्रकार यहद िम इस ज़ि तत्त्व को पक़ि कर चलें तो इसके मूलस्रोत तक पिुाँचा जा सकता िै। यि तो एक तकिसममत बात िै कक चूाँकक परमाममा ने िी अधधकाधधक स्थूल बनते-बनते िमारा यि वतमिान रूप धारण ककया िै इसभलए अवश्य िी इसके अधधकाधधक सूक्ष्म स्तरों पर जाने से िम पुनः स्रोत तक पिुाँच सकते िैं। अतः सभी चीजें भगवान् ्में िी िैं। परंतु भगवान् ्उनमें निीिं, इस बात को कैसे समझा जाए? इसका अथ िै कक भगवान् ्की अभभव्यजकत का िम जजतना गिरे से गिरा, ववशाल से ववशाल अथ िभी लगाएँ तो भी भगवान् ्का स्वरूप उसकी पक़ि में निीं आ सकता। ऐसा निीं िै कक भगवान् ्इस सब में निीं िैं, परंतु िुम इसको जो कुछ भी समझतिैं, ऊाँची से ऊाँची चेतना के द्वारा भी िम इसका जो भी अथ िलगा सकतिैं उसमें परमाममा का एक क्षुर अंश भी पक़ि में निीं ंआता। उनका स्वरूप तो अधचंमय िै। इसीभलए सारा ननरूपण करनेके बाद भी िमारे सद्ग्रंथ उनके स्वरूप के ववषय में 'नेनत नेनत' िी कितिैं। गीता भी उसी वैहदक समय को प्रनतध्वननत करती िै कक भले िी सभी कुछ परमाममा से िी ननःसृत िुआ िै, यिी निीं,ं बजल्क सभी कुछ परमाममा स्वयंिी िैं परंतु कफर भी उससे परमाममा को सीभमत निीं ककया जा सकता। भले िी परमाममा उस पदाथ िमें िैं परंतु जजस दृजष्ट से िम उन्िंउसमें देखतिैं उस दृजष्ट से वे सीभमत निीं ंिो जाते। इस तरि से देखने से िमें दोनों ववरोधाभासी प्रतीत िोने ेवाली बातों के पीछे का औधचमय समझ में आने ेलगता िै।

न च मत्मथानन भूतानन पश्य मे योगमैश्रिम् ्।
भूतभृनून च भूतमथो ममात्मा भूतभिानः ।। ५।।

५. और किर भी सममत भूत मझज में स्मथत नहीं ंहैं, मेरे ददव्य योग को देख; मेरा आत्मा सममत भूतों का सृसृष्टकतुाऔर उनका िारक है, ककन्तज उनमें स्मथत नहीं ंहै।

ववश्वातीत परमेश्वर के नाते भगवान् ्भूतों में निीं िैं, और न भूत उनमें िैं; कयोंकक आममसिा और भूतभाव में िम जो भेद करते िैं वि केवल दृश्य जगत् ्के अंदर अभभव्यजकत पर िी लागू िोता िै। ववश्वातीत सिा में सब कुछ शाश्वत आममसिा िै और यहद विााँभी कोई बिुमव िुआ तो, वे सब भी शाश्वत आममसिाएँ िैं। और न िी विााँदेश में ननवास करने ेका ववचार िी उमपन्न िो सकता, कयोंकक ववश्वातीत ननरपेक्ष सिा देश और काल की धारणाओं से, जो कक यि ाँप्रभु की योगमाया द्वारा रचे ेगए िैं, प्रभाववत नि िोती। कोई देश-काल मयाहिदत निीं ं अवपतु एक आध्याजममक सि-अजस्तल एक आध्याजममक सारूप्य और सिजस्थनत िी विााँमूल आधार िोने चाहिए। परन्तु इसके ववपरीत, वैजश्वक अभभव्यजकत में परम अव्यकत ववश्वातीत पुरुष के द्वारा देश और काल के अन्दर ववश्व का ववस्तार िै, और उस ववस्तार में पिले एक आममतत्त्व के रूप में प्रकट िोतिैं जो 'भूतभृत्' ् िै अथात् ्सर भूतों को धारण करता िै, वि उन्िंअपनी सवव्यािपक आममसिा में धारण करता िै। और यिााँतक कक, इस सवत्रिव्यापी आममा के द्वारा परम् ्पुरुष परमाममा भी इस जगत् ्को धारण ककये िुए िैं ऐसा कि जा सकता

ैं, वेइसके अदृश्य आध्याजममक मूल और सब भूतों की अभभव्यजकत के गुप्त आध्याजममक कारण िैं। वे जगत् ्को उसी प्रकार विन ककये िुए िैं जजस प्रकार िमारे अंदर की गुप्त आममा िमारे ववचारों, कमों और गनतववधधयों को विन करती िै। वे मन, प्राण और शरीर में व्याप्त िोतेऔर इन्िें अपने में समाहित रखते, उन्िें अपनी उपजस्थनत से धारण करते िुए प्रतीत िोते िैं: परन्तुस्वयं यि व्याजप्त चेतना की एक किया िै, भौनतक की निीं;ं स्वयंशरीर केवल आममा की चेतना की िी एक सतत् ्किया िै।

प्रश्न : प्रभु की योगमाया का कया अथ ि िै?

उत्तर : जब िम कितें कक प्रभु की सिा के अनतररकत और कुछ भी निीं ंिै और केवल उन्िीका िी अजस्तमव िै और कफर भी िमें अपनी इंहरयों आहद के माध्यम से बिारी चीजों की जो प्रतीनत िोती िै विी तो माया िै। उदािरण के भलए, यहद बिुत सारे समानांतर दपणों में ककसी एक िी व्यजकत के बिुत सारे प्रनतत्रबंबं हदखने ेलगें और जजस व्यजकत को दपण का ज्ञान न िो वि तो उन सब प्रनतत्रबंबों को देखकर भ्रभमत िी िो जाएगा। ककतने िी पशु–पक्षक्षयों को िम देखते िैं जजन्िें दपण का ज्ञान निीं िोता और वे अपनेिी प्रनतत्रबंब से लड़ते-लड़तेस्वयंको क्षनत पिुँचातें िैं। वैसे िी, यहद व्यजकत परमाममा के अनतररकत अपने पररवार, भाई-बिन, भमत्र, आहद के मोि में फंसकर उनको यथाथ िसमझ लेता िै तो यि माया िी िै। िमारे सारे शास्त्र यिी बात कि ते िैं कक परमाममा के अनतररकत और कुछ भी देखना माया िै। इसीभलये भगवान् ्कि ते िैं कक 'मम माया दुरुमयया' अथात् ्मेरी माया को कोई अनतिम निीं ंकर सकता। केवल जो भगवान् ्की भजकत करके उन्िें प्राप्त करते िैं वे िी उस माया से बच सकतें िैं। यहद व्यजकत यि सोचेकक वि ककसी तरकीब से इस माया से बच जाएगा तो वि और भी अधधक माया में फाँस जाता िै इसभलए त्रबना भगवान् ्की भजकत ककए माया को कभी निीं जीता जा सकता। एक कथा में ऐसा वणन आता िै कक एक बार अजुन ने भगवान् ्से उनकी माया हदखानेका आग्रि ककया तो उन्िोंनेउसे अवसर की प्रतीक्षा करने ेके भलए किा। एक बार जब दोनों यमुना जी में स्नान करनेके भलए गए तो अजुन ने पिले भगवान् ्को स्नान करनेके भलए किा। भगवान् ्ने स्नान ककया और ऊपर आकर अपनी धोती बाधँते िुए उन्िोंने ेअजुन को भी स्नान करने के भलए भेज हदया। अजुन जैसे िी जल के भीतर गया वैसे िी उसे मिसूस िुआ कक कुछ लोग उसे पकड़कर ले गए िैं और यमुना जी में िी उसे ककसी देश का राजा बना कर उसका वववाि कर हदया िै। इसके बाद अजुन ने विींसारे भोग-ववलास ककए और उसके भरा पूरा पररवार िो गया। और इस बीच उसनेअन्य कई राजाओं से युद्ध कर उन्िें पराजजत भी ककया। इस तरीके से वि बिुत बड़ा शासक बन गया, और उसनेअनेक यज्ञ आहद भी ककए। एक हदन अचानक जब उसे भगवान् ्की याद आई तो वि यमुना जी से ऊपर आया और उसनेदेखा कक भगवान् ्तो अभी अपनी धोती िी बाधँ रिे थे। तब भगवान् ्ने उसे समझाया कक यिी माया िै। न्यूनाधधक िम सभी के साथ भी यिी िै। िम अपनेमूल स्वरूप को भूल बैठे िैं और इन प्रतीनतयों को िी समय मानकर इन्िें अपना पररवार आहद किकर इन्िींमें अनतशय रूप से आसकत रितें िैं।

यथाकाशस्मथतो ननत्यंवायि:ज सिुतुरगो महान् ्।
तथा सिाणण भूतानन मत्मथानीत्यपजािरय ।। ६॥

६. स्जस प्रकार सिुतुर व्याप्त महान् ्िायतजत्त् आकाशतत्त् में रहता है, उसी प्रकार सममत भूत मजझमें रहतेहैं, इसको तम्जहें इस प्रकार समझना है।

यि हदव्य परमाममा सभी भूतों को समाववष्ट रखता िै; सभी उनमें अवजस्थत िैं, वस्तुतः ज़ि रूप से निीं, अवपतु आममसिा के उस ववस्तृत आध्याजममक आधान के रूप में जजसके संबंध में एक भौनतक और आकाशीय ववस्तार की िमारी अमयंत सख्त या संकुधचत धारणा उस तत्त्व का केवल भौनतक मन और इजन्रयों की भाषा में अथ िलगाना िै। वास्तव में यिााँभी सभी कुछ आध्याजममक सि-अजस्तमव, सारूप्य और सिजस्थनत िै; पर वि एक ऐसा मूलभूत समय िै जजसे िम तब तक लागू ूनिीं कर सकतेजब तक कक िम उस परम चेतना तक पुनः निींजा पाते। तब तक ऐसा ववचार केवल एक ऐसी बौद्धधक अवधारणा िी रिेगा जजससे िमारे व्याविाररक अनुभव का मेल निीं िोता। अतः देश-काल में परस्पर संबंध के इन शब्दों का प्रयो मेल निुए िमें किना िोगा कक यि जगत् ् और इसके सब प्राणी कक स्वतःजस्थत सिा में वैसे िी रिते िैं जैसे अन्य सभी कुछ आकाश के के स्वतःररश में रिता िै.. आममा इन सब भूतों में या इनमें से ककसी में भी का निींकरती: किनेका अभभप्राय िै कक, वि ककसी पदाथ िद्वारा समाववष्ट से िै, - ठीक वैसे िी जैसे आकाश यिााँ ककसी रूप में समाववष्ट निीं िै, पद्म सभी रूप मूलभूत रूप से आकाश से िी उमपन्न िोतेिैं। और न िी वि सव िभूतों के सजममभलत रूप के द्वारा िी उनमें समाववष्ट या उनसे संघहटत िोती िै। - ठीक वैसे िी जैसे आकाश वायुतत्त्व के गनतमान ववस्तार के अन्दर समाधच निीं ंिोता न वायु के सब रूप या शजकतयााँ आकाश को संघहटत िी का सकती िैं।

यिा ाँबुद्धध के भलए उन ववरोधाभासी बातों की गुमथी को खोल हदया गया िै। जैसे ककसी धचत्रकार की चेतना में अनंत धचत्र एक िी साथ ववद्यमान िो सकतेिैं उसी प्रकार हदव्य परमाममा में सभी भूतों का, सभी कुछ का आध्याजममक सि-अजस्तमव, सारूप्य और सिजस्थनत िै। सभी उनमें एक िी साथ अजस्तमवमान िैं और उन्िीं के स्वरूप के िैं। परंतु देश-काल से बद्ध िोनेके कारण िम देश-काल से परे ककस प्रकार सभी चीजें सि-अजस्तमव में रि सकती िैं इसकी कल्पना तक भी निींकर सकते। जैसे कक, मानभसक स्तर पर भी िम समझ सकतेिैं कक ककसी कवव के मजस्तष्क में असंख्यों कववताएँ सि-अजस्तमव में िो सकती िैं, ककसी धचत्रकार के मजस्तष्क में अनेकानेक धचत्र एक-साथ िो सकते िैं, परंतु जजसे इसका भान न िो वि तो यिी सोचेगा कक सभी भभन्न-भभन्न कववताओं या धचत्रों के भलए कवव या कलाकार के मजस्तष्क में भभन्न-भभन्न हिस्से बने िुए िोंगे। परंतु मानभसक स्तर पर भी िम इस बात का बेतुकापन समझ सकतेिैं कयोंकक िमें एक ऐसी मानभसक चेतना का अनुभव िै जजसमें कक अनेकानेक धचत्र या कववताएँ या अन्य रचनाएँ पूरी की पूरी एक साथ ववद्यमान रि सकती िैं, उसी प्रकार हदव्य परमाममा को चेतना में सभी कुछ का सिज रूप से आध्याजममक सि-अजस्तमव, सारूप्य और सिजस्थनत िै।

इसी को समझाने के भलए वतमिान संदभ िमें आकाश-तत्त्व का उदािरण हदया गया िै। यहद िम आमम-तत्त्व को आकाश-तमव मानें तो उस आकाश तत्त्व के त्रबना तो ककसी चीज का कोई अजस्तमव िो िी निींसकता। सारी िी चीजों का अजस्तमव आकाश के अन्दर िोता िै। पर उन चीजों में स्वयं में भी खाली जगि या कफर आकाश तत्त्व

ीिता िै। िमारे शरीर के अंदर और बिार भी आकाश तत्त्व िै, वैसे िी जैसे कक घट आकाश तत्त्व में िै और उसके अंदर भी आकाश तत्त्व ववद्यमान िै। जब िम किते िैं कक मनुष्य के अंदर परमाममा व्याप्त िैं तो वे उसी तरि उसमें व्याप्त िैं जजस प्रकार घट में आकाश तत्त्व ववद्यमान िोता िै। परंतु जजस प्रकार वि आकाश तत्त्व घट से सीभमत निीीि जाता और सारे घट भमलकर भी आकाश तत्त्व को अपने में समाहित निींकर सकतेउसी प्रकार परमाममा िमारे अंदर व्याप्त िोते िुए भी िमसे सवथिा परे िैं। और जजस प्रकार घट से आकाश तत्त्व का ननमाण निीं ंिो सकता, वि तो घट में व्याप्त िोतेिुए भी उससे एक स्वतंत्र तत्त्व िोता िै उसी प्रकार िममें व्याप्त िोने पर भी परमामम तत्त्व िमसे सवथिा परे और स्वतंत्र िोता िै। इस प्रकार, घट और आकाश सवथिा भभन्न-भभन्न तत्त्व िैं। इसी उदिारण को िम परमामम तत्त्व और िमारे बीच लागू ूकर के समझ सकतिैं कक भले िी िम उस तत्त्व से बने िैं और उसी में ननवास कर रिे िैं और िमारे अंदर वि तत्त्व ववद्यमान िै, तो भी वि तत्त्व िमसे सवथिा भभन्न, स्वतंत्र और परे भी िै। इसीभलए िम ककतना भी ऊँचेसे ऊँचा अनुमान कयों न लगाएँ, तो भी उससे परमाममा कभी सीभमत निीं िो जाते और न िी यि सृजृष्ट उन्िें पूण िरूप से कभी अभभव्यकत िी कर सकती िै। और चूंकक यि कभी पूण िरूप से उन्िें अभभव्यकत निीं ंकर सकती इसी कारण यि उिरोिर ववकभसत िोती रिती िै, अधधकाधधक पूण ि बनती रिती िै। ऐसा कभी निीं ंिो सकता कक परमाममा को पूण िरूप से अभभव्यकत ककया जा सके। पराप्रकृनत अपनी पूरी सामथ्य िलगाती िै कक परमाममा को अभभव्यकत कर दे और इसके भलए वि असंख्यों ब्रह्माण्डों का ननमाणि करती िै, अनेकानेक स्तरों का सृजन करती िै, नानाववध आयामों का ननमाणि करती िै तो भी परमाममा उन सब में से बच ननकलते िैं। इसी कारण िमें इस प्रकार की अद्भुत सृजृष्ट गोचर िोती िै जजसमें रूप तो सारे परमाममा के िी िैं परंतु कफर भी परमाममा उनसे सवथिा परे िैं।

अब यहद िम परमाममा की ककसी ऐसे अनंत आयामी तत्त्व के रूप में पररकल्पना करें जजनके आयामों का कोई अंत निीीि तो अभभव्यजकत में तो वे ककसी भी आयाम को मनचािे िम से अभभव्यकत कर सकते िैं और इस मि को िम काल की संज्ञा दे देते िैं जबकक अपनेआप में तो उस तत्त्व में सभी आयाम साथ-साथ िी ववद्यमान ीितिैं। अतः देश और काल के अंदर शाश्वत के भभन्न-भभन्न गुण, भभन्न-भभन्न रूप अपनेआप को प्रकट करते रितिैं और जजसका जजस प्रकार का इंहरय-गठन िोगा वैसा िी लोक उसके भलए प्रकट िो जाएगा। मनुष्यों की इंहरयों से एक प्रकार को सृजृष्ट गोचर िोती िै, देवताओं, गंधवो, यक्षों आहद की भभन्न-भभन्त्र इंहरयों से उनके अनुसार सृजृष्ट और लोक गोचर िोतिैं, जबकक वास्तव में सभी एक िी तत्त्व को तो देख रिे िोते िैं। यि तो वैसे िी िैं जैसे भगवान् ्श्रीरामचन्रजी को स्वयंवर के समय सब भभन्न-भभन्न भाव और रूप में देख रिे थे। जानकी जी उन्िें एक रूप में देख रिी थीं, जनक जी दूसूरे रूप में देख रिे थे,े अन्य राजागण उन्िें त्रबल्कुल दूसूरे िी रूप में देख रिे थे। अतः जजसकी जैसी भावना थी उसे वैसा िी रूप गोचर िो रिा था। इसी प्रकार परम सद्वस्तु 'एकमेवाद्ववतीयम्'् िै और सभी उसी का दशनि कर रिे िैं परंतुकोई भी यि दावा निींकर सकता कक स्वयंउसी का दशनि िी पूण िििै। सभी के दशनिों को भमलाकर भी उस सद्वस्तुको पकिा निींजा सकता। यिी बात भगवान् ् गीता में कि रिे िैं कक वे ेसब के अंदर जस्थत भी िैं और ककसी में भी जस्थत निीं िै और सब कुछ से परे भी िैं। कयोंकक अपने आप में वि परमामम तत्त्व तो सब कुछ से सवथिा परे िै और िम उस तत्त्व के कया-कया रूपक बनाते िैं उससे उसकी सिा को कोई फकि निींपड़ता। जब ननश्चेतन से लेकर अनतचेतन तक चेतना की अनंत श्रेणियाँ िैं

और उन सब पर नानाववध अभभव्यजकतयााँ िैं और सभी दशनि उन्िीं एक परमाममा का िी करते िैं तो भी सभी दशनिों में ककतना अनंत वैववध्य िो गया िै। साथ िी, जजस रूप का वे दशनि करते िैं वि भी ननत पररवतनिशील, ववकसनशील िै जो कभी अपनेआप को उसी रूप में पुनरावनतति निींकरता। इस प्रकार इस सब अनंत ववववधता की तो िमारी चेतना में कल्पना करना भी संभव निीं िैं।

अब इस ववषय में एक अन्य आयाम का समावेश करते िी यि सारा पररदृश्य और भी जहटल बन जाता िै। जिन अनंत श्रेणणयों पर िम अनेकानेक अभभव्यजकतयों की बात कर रिे िैं वे सब परमाममा स्वयंिी बनिें और स्वयंिी अपना दशनि या अवलोकन कर रिे िैं। इसीभलए िमारे वैहदक ऋवष किते थे कक वास्तव में ककसी चीज का सृजन निीं िोता। इसभलए वे इस सृजष्ट को लोक किते थे अथाित्जैसा अवलोकन िोगा वैसा िी िमें गोचर िोगा। यिी सृजष्ट जजस रूप में ककसी एक मनुष्य को गोचर िोगी वैसी ककसी कीट-पतंगे को निीं िोगी। और ववभभन्न मनुष्यों को भी उनकी चेतना के अनुसार वि भभन्न-भभन्न गोचर िोगी। साथ िी, ककसी व्यजकत-ववशेष को भी उसकी भभन्न-भभन्न अवस्थाओं में भभन्न-भभन्न प्रतीत िोगी। सांख्य इसका बिे िी सटीक रूप से कारण बताता िै कक कयों िमें अपनेमनोवैज्ञाननक गठन के अनुसार भभन्न-भभन्त्र चीज गोचर िोती िै। देवताओं का मनोवैज्ञाननक गठन भभन्न प्रकार का िोने के कारण उन्िें जगत् भभन्न प्रकार का प्रतीत िोता िै। इसभलए, सभी केवल देखने के तरीके मात्र िी रि जाते िैं, उससे अधधक कुछ निीं।

भौनतक रूप से लगभग समान िी इंहरयााँ िोने पर भी प्रमयेक मनुष्य को एक भभन्न जगत् हदखाई देता िै कयोंकक इंहरयााँ मनस् को और मनस् बुद्धध को सूचना प्रदान करता िै और विीं से पूरे दृश्य का ननमािण िोता िै। यि चीज तब त्रबल्कुल स्पष्ट िो जाती िै जब िम ककसी एक िी घटना का वृत्तांत दो ववपरीत दृजष्टकोण के व्यजकतयों से सुनते िैं या ककन्िीं दो बालकों की लिाई का ब्यौरा उनकी अपनी-अपनी माताओंके द्वारा सुनते िैं। अब भले दोनों िी माताओंकी भौनतक इंहरयााँ उन्िें लगभग समान िी सूचना देती िों परंतु उस सूचना का उनका मनस् और उनकी बुद्धध जो बना देते िैं वि तो त्रबल्कुल िी भभन्न िोता िै। िमारे धचि में अनेकानेक वृवृया ाँजमा िोती िैं। पिले तो स्वयं के अनेक जन्मों की संधचत वृवृया ाँया संस्कार िोतीं, कफर अपने जानतगत, राष्ट्रगत आहद संस्कार भी िोतीं। िमारा जो भी ननणिय िोता िै उसमें इन सभी चीजों का िस्तक्षेप रिता िै और इसी कारण सब का अपना-अपना जगत् िोता िै। इस सब चचाि से यि ननष्कष िननकलता िै कक भले िी िमें इतने अनंतववध रूप हदखाई देते िों परंतु िम ननजश्चत तौर पर यि निीं कि सकतेकक इनमें से कोई एक िी परमाममा का सच्चा स्वरूप िै। ये सारे िी रूप परमाममा के िोने के बावजूद भी कोई भी उन्िें पकि निींपाता और वे सदा इन सभी से सवथिा परे रितीं। अब चूंकक परमाममा ककसी एक रूप से निींबंध जाते इसभलए भारतीय संस्कृनत में पूजा-पद्धनत के ककसी भी रूप को कभी अस्वीकार निीं ककया गया। सभी को परमाममा तक पिुाँचने के संभव मागों के रूप में स्वीकार ककया जाता रिा िै।

सिुभूतानन कौन्तेय प्रकृनतं यास्न्त मासमकाम् ।
कल्पक्षये पनजमतानन कल्पादौ विसृजाम्यहम् ।। ७।।

७. हे कौन्तेय! कल्प के अन्त में सममत भूत मेरी ददव्य प्रकृनत में लौट जाते हैं; कल्प के आदद में उन्हें म ैंकिर सृष्ट (उत्पन्न) कर देता हूँ।

प्रकृनतं ◌ंमिामिष्टभ्य विसृजामम पनजः पनजः ।

भूतग्राममममंकृत्मनमिशं ◌ंप्रकृतेिशात् ◌्॥ ८॥

८. अपनी मियंकी प्रकृनत पर आधश्रत होकर (उसे बाध्य करके), म ैंअनेकानेक भूतों को, जो असहाय रूप से 'प्रकृनत' के ननयन्त्रण के िशीपरज हैं, बार-बार सृष्ट करता हूँ।

गीता में भगवान् ◌्ने भूतों को उमपन्न करने की और स्वयं के जन्म ग्रिण की प्रणाली बताई िै। चौथे अध्याय के छठे श्लोक में वे किते िैं कक "यद्यवप म ैंअजन्मा िूँ, यद्यवप म ैंअपनी आमम-सिा में अववनाशी िूँ, यद्यवप म ैंसमस्त भूतों का ईश्वर िूँ, तथावप म ैंअपनी प्रकृनत के ऊपर अधधजष्ठत िोकर अपनी माया के द्वारा जन्म ग्रिण करता िूँ।" अपनी टीका में इस भेद को स्पष्ट करते िुए श्रीअरववन्द ने चौथे अध्याय में किा था कक, "अब यि बात ध्यान देने योग्य िै कक भाषा के एक िल्के से ककन्तु कफर भी बिे मित्त्वपूण िअंतर से गीता, समान िी रीनत से, प्राणणयों के सामान्य जन्म और एक अवतार के रूप में स्वयं के जन्म ग्रिण में भगवान् ◌्की किया का वणनि करती िै। 'अपनी प्रकृनत को वश में करके, **प्रकृनतं ◌ंमिामिष्टभ्य,'** और बाद में कितेिैं, 'म ैंइन प्राणणयों के समिू को जो प्रकृनत के वश में िैं **अिशं ◌ंप्रकृतेिशात्** ◌्उमपन्न करता िूँ, **विसृजामम** ।' और यिा ◌ँकितेिैं कक, 'अपनी प्रकृनत के ऊपर अधधजष्ठत िोकर म ैंअपनी स्वयंकी माया से जन्म लेता िूँ, **प्रकृनतं ◌ंमिामधिष्ठाय आत्ममायया, मैं** अपने-आपको उमपन्न करता िूँ, **आत्मानम् ◌्सृजामम।"**

इसी हदव्य प्रकृनत (प्रकृनतं ◌ंमाभमकाम्) ◌् की किया में, भगवान् ◌्की ननज प्रकृनत (स्वां प्रकृनतम्) ◌् की किया में जीव अपने भूतभाव के चि का अनुवतनि करता िै। उस प्रकृनत के प्रगनतिम में िोनेवाले दौरों या पररवतनिों में जीव यि या वि व्यजकतमव िो जाता िै; उस हदव्य प्रकृनत की एक अभभव्यजकत के रूप में, चािे उस प्रकृनत की उच्चतर और प्रमयक्ष गनत में िो या उसकी ननमनतर और अप्रमयक्ष गनत में, चािे अज्ञान में िो या ज्ञान में, जीव सदा िी अपने ववभशष्ट स्वधम िका पालन करता िै; चि की गनत पूरी िोने ◌ेपर प्रकृनत अपनी प्रवृवि से ननवृि िोकर ननश्चलता और ननस्तब्धता को लौट जाती िै। अज्ञान की दशा में प्रकृनत के घूमते चिों के अधीन िोता िै, अपना स्वामी स्वयं निींिोता अवपतु प्रकृनत के प्रभुमव में रिता िै, अवशः प्रकृतेवशिात् ◌् केवल हदव्य चेतना में सीटकर िी वि प्रभुता और मुजकत प्राप्त कर सकता िै।

न च मांतानन कमाणण ननबध्नस्न्त िनञ्जय ।

उदासीनिदासीनमसक्तं तेष जकमुसुज।। ९।।

९. और हे िनञ्जय! ये कमु ◌ुमजझे ◌ेनहीं ◌ंबाँिते क्योंकक इन कमों से अनासक्त हजआ म ैंमानो उदासीनित् ◌्इनके ऊपर स्मथत हूँ।

मयाध्यक्षेण प्रकृनतः सूयते ेसचराचरम् ्।

हेतनजानेन कौन्तेय जगद्विपररितुते ।। १०।।

१०. हे कौन्तेय! मेरी अध्यक्षता के अंतगुतु प्रकृनत सममत चराचर भूतों को उत्पन्न करती है; और इसके कारण जगत् ्आितुनुों में चलता रहता है।

भगवान् ्भी प्रकृनत के इस आवतनि का पालन करते िैं, उसके अधीन िोकर नीं ंअवपतु उसकी अंतव्याप्ति आममा तथा मागदिशकि के रूप में, न उनकी सारी सिा इसमें सजममभलत िोती िै, अवपतु ुउनकी आममशजकत प्रकृनत का साथ देती और उसे आकार देती िै। वे अपनी प्रकृनत-कम िके अध्यक्ष िोतीं, - वे ऐसे जीव नीं ंिोतेजो प्रकृनत में जन्में िों अवपतु वि सृजृनशील आममा िोतीं जो प्रकृनत से वि सब उमपन्न करवातीं जो अभभव्यजकत में नजर आता िै। यहद अपनी आममशजकत में वे प्रकृनत के साथ-साथ िोतीं और उसकी सारी कियाएँ उससे कराते ीं, तो साथ िी वे ेउसके परे भी रिते िैं, मानो प्रकृनत के सारे ववश्वकम िके ऊपर कोई अपनेववश्वातीत प्रभुमव में जस्थत िो, ककसी भलप्त करनेवाली या वशीभूत करने ेवाली कामना के द्वारा वे प्रकृनत से आसकत नीं ंिैं और इसभलए प्रकृनत के कमों से बद्ध भी नीं ंिैं, कयोंकक वे इन सब कमों से अनन्त रूप से परे िैं और उनसे श्ेरेष्ठ िैं, कालचिों में उनकी समस्त गनत में उसके पिले, उसके मध्य में और अंत में वे ेसमान िी रितीं। कालचिों के सभी पररवतनिों से उनकी अक्षर सिा को कोई फकि नीं पड़ता। जो मौन आममा ववश्व को व्याप्त और धारण करती िै वि वैजश्वक पररवतनिों से प्रभाववत नीं ंिोती; कयोंकक, यद्यवप वि इन्िें धारण करती िै पर इनमें भाग नीं ंलेती। यि िमारा परम ववश्वातीत आममा भी प्रभाववत नीं ंिोती कयोंकक वि इनको अनतिम ककये िै और शाश्वत रूप से इनके परे िै।

इसमें यि अक्षर पुरुष के भाव का वणनि िै। परंतु क्षर भाव और अक्षर भाव दोनों िी का संचालन भगवान् ् की पराप्रकृनत करती िै जो स्वयं ीजीव की अंतराममा के रूप में आववभूति िोती िै जो ननमन प्रकृनत और पराप्रकृनत के बीच की कड़ी का काम करती िै। इस प्रकार की व्यवस्था िमें गोचर िोती िै। इस जगत् ्का ननमाणि दो पक्षों के समागम से िी िोता िै - एक िै पुरुष पक्ष जो कक अवलोकन करता िै और दूसूरी िै प्रकृनत जजसका कक पुरुष साक्षक्षमव करता िै। इन दो के त्रबना कोई भी अभभव्यजकत नीं ीिसकती। इनमें पुरुष तत्त्व को आमम-तत्त्व का प्रनतननधध कि सकते िैं और प्रकृनत भगवान् ्की हदव्य प्रकृनत की प्रनतननधध िै। इन दो के भमलन से िी कोई अभभव्यजकत िो सकती िै। यद्यवप िमारे इस सब वगीकरण से भगवान् ्बाध्य नीं ंिो जाते, कफर भी इससे िमारी बुद्धध को कुछ सिारा भमल जाता िै कक वि चीजों को कुछ अधधक समझ सके। अन्यथा भगवान् ्के ववषय में तो ननश्चयपूवकि िम कि िी कया सकतीं।

परंतु इसके साथ िी, चूँकक यि कम िभागवत् ्प्रकृनत, स्वा प्रकृनतः, का कम िै और भागवत् ्प्रकृनत भगवान् ् से कभी पृथृक् नीं ंिो सकती, इसभलए जो कुछ भी वि सृजृष्ट करती िै, भगवान् ्उसमें अवश्य अंतननहिित िोंगे। यि एक ऐसा समबन्ध िै जो भगवान् ्की सिा का संपूण िसमय नीं, परंतु यि कोई ऐसा समय भी नीं जिजसकी िम उपेक्षा कर सकतीं। वे मानव शरीर में बसे िैं। जो उनकी उस उपजस्थनत को अनदेखा करते िैं, जो उसके बिर

मुखौटों के कारण मानवरूप में जस्थत भगविा की अवमानना करते िैं, वे प्रकृनत की बाह्य प्रतीनतयों के द्वारा भ्रभमत और ववमूढ़ िोतेिैं और वे यि अनुभव निीं ंकर सकतेकक िमारे अंदर गुप्त रूप से भगवान् ्जस्थत िैं, चिो वे मानवता में सचेतन िों जैसे कक एक अवतार में या कफर अपनी माया द्वारा प्रच्छन्न िों। जो मिाममा िैं, जो अपनेअिं के भाव के अन्दर कैद निीं, जो अपने-आप को अंतयामिी भगवान् ्के प्रनत उद्घाहटत करते िैं, वे जानते िैं कक मनुष्य में ननहित गूढ़ आममा, जो यिा ंसीभमत मानव-प्रकृनत से बद्ध प्रतीत िोती िै, वि विी अननवचिनीय ज्योनत या तेज िै जजसे िम इस मानव रूप के परे परम परमेश्वर के रूप में पूजते िैं। वे भगवान् ्की उस परम जस्थनत के बारे में सचेतन िो जाते िैं जजसमें वे सब भूतों के स्वामी और प्रभु िैं और कफर भी वे प्रमयेक भूत में देखते िैं कक वे िी प्रमयेक के परम देव और अंत:जस्थत भगवान् ्भी िैं। बाकी जो कुछ िै वि ववश्व में प्रकृनत के भभन्न-भभन्न रूपों को अभभव्यकत करने ेके भलए आमम-पररसीमन िै। वे ेयि भी देखते िैं कक यि उन्िीं भगवान् ् की प्रकृनत िै जो ववश्व में जो कुछ भी िै वि सब कुछ विी बनी िुई िै, इसभलए यिा ंजो कुछ िै, आंतररक यथाथिता में और कुछ निीं ंकेवल विी एक भगवान् ्िैं, सब कुछ वासुदेव िैं, और वे उन्िें केवल ववश्व के परे रिनेवाले परमेश्वर के रूप में िी निीं ंपूजतेअवपतु यिाँ इस जगत् ्में, उनके एकामम समवा अखण्ि् रूप में तथा प्रमयेक पृथक् पृथक् जीव में भी पूजतेिैं। वे इस समय को देखतेिैं, और इसी समय में रितेऔर कम िकरते िैं; वे उन्िींको सब पदाथों के परे जस्थत परम तत्त्व के रूप में तथा जगत् ्में जस्थत ईश्वर के रूप में, और जो कुछ िै उसके अधीश्वर के रूप में पूजते िैं, उन्िीं िमें ननवास करते और उन्िीं की सेवा करते िैं, उनकी वे यज्ञकमों के द्वारा सेवा करते िैं, ज्ञान के द्वारा उनकी खोज करते िैं और उनके अनतररकत और कुछ निींकेवल उन्िें िी सवत्र देखतेिैं और अपने े जीवभाव में तथा अपनी बाह्य और आंतर प्रकृनत में, दोनों िी प्रकार से अपनी समपूण िसिा को उन्िींकी ओर ऊपर उठाते िैं। इसे िी वे व्यापक, और त्रबल्कुल सिी माग िमानतेिैं; कयोंकक यिी एकमेव परम तथा ववश्वगत और व्यजष्टगत परमेश्वर के समग्र समय का माग िै।

मिाममा जन इसीभलए मिाममा किे जाते िैं कयोंकक वे भगवान् ्के समस्वरूप को जानते िैं इसभलए भगवान् ्चिो जजस ककसी भी भेष में कयों न आएँ, वे बािरी आवरण से ववमोहित िुए त्रबना उनके वास्तववक स्वरूप को कुछ िद तक पिचान जाते िैं। चूंकक उनका माया का पदिाट चुका िोता िै इसभलए उन्िें परमाममा के अधचंमय रूप का भी आभास िोता िै और साथ िी िर छोटे से छोटे प्राणी में, यिा ंतक कक भौनतक पदाथों में भी उन्िें प्रकट रूप में यि हदखाई देता िै कक परमाममा स्वयं िी उन सब रूपों में प्रकट िो रिे िैं इसभलए उन रूपों को वे अनदेखा निीं ंकरते और न िी वे उन रूपों के आवरण से भ्रभमत िी िोते िैं जो प्रभु ने स्वयंके ऊपर िाल रखा िै कयोंकक उस आवरण के पीछे वे उन परमाममा का दशनि कर लेते िैं और न केवल वे उनका दशनि िी करते िैं अवपतु उनसे प्रेम भी करते िैं। और जो कोई चेतना की इस अवस्था में िोगा वि तो 'सवभूितहितेरता:' सभी भूतों के हित में रत रिेगा िी, इसके अनतररकत तो वि और कुछ कर िी निीं ंसकता। इसीभलये छठे अध्याय के इकतीसवें श्लोक में भगवान् ् किते िैं कक जो योगी एकमव भाव में जस्थत िोकर समस्त भूतों में मुझसे प्रेम करता िै वि योगी चिो जजस प्रकार रिे और कम िकरे मुझमें िी रिता और कम िकरता िै। इस प्रकार यिाँ मिाममाओंऔर ऋवषयों की जस्थनत का वणनि िै। वे परमाममा का उनके समस्वरूप में भी दशनि करते िैं और इस प्रकृनत के अंदर जो अभभव्यकत रूप उन्िोंने धारण ककये िैं उनमें भी वे उन्िींपरमाममा का िी दशनि करते िैं। वास्तव में तो परमाममा स्वयं को िी तो देख रिे िैं

कयोंकक उनके अनतररकत तो अन्य कोई सिा ि ै ि ी निीं। वे स्वयंिी प्रकृनत ि ैं और स्वयं ि ी पुरुष ि ैं जो स्वयं का ि ी साक्षक्षमव करते ि ैं। परंतु ि ुमारा जजस प्रकार का ताना-बाना बना ि ुआ ि ै उसमें ि मारी इंहरयााँमें इतनेसारे रूप हदखाती ि ैं और उन रूपों के पीछे के एकमव को, उन परमाममा को चूक जाती ि ैं। परंतु मिामा जन अपनी इन इंहरय सीमाओं को तोड़कर बाह्य प्रतीनतयों के पीछे प्रभु की झलक पा लेते ि ैं। वे ◌ेअपनेपरम् ◌्वप्रय को सवत्रि देखते िैं इसभलए उन्िें कोई भय निींरिता।

vi.31

गीता वतमिान प्रसंग में जजस चीज का वणनि कर रिी ि ै वि कोई केवल एक दाशनिनक या तत्त्वसंबंधी बात िी निीं ◌ंअवपतु भावाममक बात भी ि ै। इससे तो सारे जीवन का स्वरूप ि ी बदल जाता ि ै। गीता इन्िीं भावाममक तत्त्वों का अधधकाधधक ननरूपण करती जाएगी कयोंकक अब वि भजकतयोग की ओर मुड़ती जा रिी ि ै। पिले छः अध्यायों में कम ि और ज्ञान का समन्वय और उसके बाद सातवें अध्याय में ज्ञान और भजकत का समन्वय साधने के बाद अब आगे गीता कम,ि ज्ञान और भजकत तीनों का समन्वय साधने की ओर अग्रसर ि ो रिी ि ै। भगवान् ◌्किते िैं कक जो कम ि उनके भलए और उनकी भजकत के रूप में ककये जाते ि ैं वे ि ी सच्चेकम ि िैं बाकी सारे तो अकम ि िैं। जब व्यजकत अपने आप को पृथक् समझकर अिमाममक चेतना से कम ि करता ि ै तब वि कम ि न करके अकम ि ि ी करता िै। कमयिोग तो केवल विी ि ै जो प्रभु से प्रेम के कारण ककया जाता ि ै। ि मारे श्रीअरववन्द आश्रम का आधार ि ी यिी िै कक श्रीमाताजी से प्रेम के वशीभूत ि ो काय ि करना।

अतः, यिी पूण ि समय, उच्चतम और ववस्तृततम ज्ञान ि ै। भगवान् ◌्ववश्वातीत ि ैं, सनातन पररह्म ि ैं, जो अपनी देशकालातीत सिा से, अपनी स्वयंको सिा और प्रकृनत से इस सारी वैजश्वक अभभव्यजकत को देश और काल के अन्दर धारण करते ि ैं। वे ि ी वे ◌ेपरमाममन् ◌्ि ैं जो जगत् ◌्के रूपों और गनतयों को अंतरीय आममा ि ैं।

वे ि ी

पुरुषोिम ि ैं जजनका कक सब जीवाममा और प्रकृनत, सारा आममभाव और इस जगत् ◌्का या ककसी भी जगत् ◌्का सारा भूतभाव आमम-संकल्पन (self-conception) और आमम-स्फूनतकिरण (self- energising) ि ै। वे ि ी सब भूतों के अननवचिनीय परमेश्वर ि ैं, जो प्रकृनत में आववभूति ि ुई ननज शजकत को अपनेआजमममक ननयंत्रण के द्वारा जगत्

के चिों और उन चिों में प्राणणयों के प्राकृत ववकास में उद्घाहटत करते रिते िैं। जीव. व्यजष्ट पुरुष, प्रकृनतस्थ आममा, उन्िीं की सिा से अजस्तमवमान ि ै, उन्िीं की चेतना के प्रकाश से सचेतन ि ै, उन्िींके संकल्प और शजकत से जजसमें ज्ञान-शजकत, इच्छाशजकत और कियाशजकत ि ै, उन्िीं ि के हदव्य ववश्वभोग से जो अजस्तमव का भोग करता ि ै, और उन्िीं ि से इन ववश्वीचों में आया ि ै।

परमाममा के ये चार रूप ि ैं : पररह्म, परमाममा, पुरुषोिम, परमेश्वर। ि ालाकाँक ये सब ि ैं एक ि ी परंतु चार भभन्न कियाओं के अनुसार देखने के कारण ि म उन्िें चार नाम दे देते ि ैं। जब उन्िें आममा के दृजष्टकोण से देखें तो वे परमाममा ि ैं। जब सवजिस्थत रह्म के रूप में जगत् ◌्की व्याख्या करें तो वे परंरह्म ि ैं। सबके ननयंता ईश्वर के रूप में देखें तो वे परमेश्वर ि ैं और यहद सब कुछ का साक्षक्षमव करने ◌ेवाले पुरुष के रूप में जगत् ◌्की व्याख्या करें तो वे पुरुषोिम ि ैं। इन्िींकी ओर समग्र रूप से चलनेके भलए अब कम,ि ज्ञान और भजकत के समन्वय को साधनेका सूत्र हदया जा रिा ि ै।

II. कम,ि भजकत और ज्ञान

मनुष्य की अंतराममा यिााँ भगवान् ्का िी आंभशक आममप्राकट्य िै, जो जगत् ्में भगवान् ्की प्रकृनत के कमों के भलये स्वतः-सीभमत िुई िै, प्रकृनतजीवभूता। अपनेआममतत्त्व में व्यजकत भगवान् ्के साथ एक िै।... प्रकृनत की ननमनतर बाह्य-प्रतीनत में एक प्रकार के अज्ञान और विकारमय पाथकिय के कारण यि जीव 'एकमेव' से सवथिा भभन्न प्रतीत िोता िै और इस पृथ्कामामक चेतना में रिते िुए अपनेअिपरक सुख-भोग और जगत् ्में अपनेव्यजकतगत अजस्तमव और अन्य दिेधारी मनों और प्राणों के साथ अपनेबाह्य संबंधों की प्रयोजनभसद्धध के भलए िी धचंतंन, इच्छा, कम िकरता और उसी में सुख-भोग लेता प्रतीत िोता िै। परन्तु वास्तव में उसकी सारी सिा, उसका सारा धचंतंन, उसकी सारी इच्छा, कम िऔर भोग भगवान् ्की सिा, भगवान् ्के ववचार, संकल्प, कम िऔर प्रकृनत के भोग का िी एक प्रनतत्रबमब मात्र िोता िै - ऐसा प्रनतत्रबमब जो तब तक विकारमय और ववकृत िी रिता िैजब तक जीव अज्ञान में रिता िै। अपने-आप के इस समय पर लौटना, इसे पुनः प्राप्त कर लेना िी उसकी मुजकत का सीधा साधन िै, अज्ञान की दासता से छूट ननकलनेका उसके भलए यिी सबसे ववशालतम और ननकटतम द्वार िै। चूाँकक वि एक आममा िै, एक ऐसी अंतराममा जो मन और तकिशजकत की, इच्छाशजकत और ऊजस्वी कम िकी, भावना और संवेदना की तथा अजस्तमव का आनन्द पाने की प्राण की कामना की प्रववृि से युकत िै, अतः इन्िीं सब शजकतयों को भगवन्मुखी कर देने से उसके भलए अपनेपरम समय पर पुनः लौटना पूणतिया संभव िो सकता िै। उसे परमाममा और रह्म के ज्ञान से जानना िोगा; उसे अपनी प्रेम-भजकत और आराधना परम् ्पुरुष की ओर मोड़ देनी िोगी; उसे अपने संकल्प और कमों को परम जगदीश्वर के अधीन करना िोगा। तब वि ननमन प्रकृनत से हदव्य प्रकृनत की ओर अग्रसर िोता िै...

vii-5

प्रश्न : मन और प्राण के बाह्य संपकों और संबंधों को ककस प्रकार मयागा जाए जजनमें कक िम सब समय भलप्त रिते िैं और जजसके कारण िम वास्तववक चीज को अनदेखा कर देते िैं?

उत्तर : इन्िें छोड़ा निीं ्जा सकता अवपतु दूसूरी हदशा में मोड़ना पड़ता िै। कमप्रिधान व्यजकत अपनेकमों को अधधकाधधक भगवान् ्के ननभमि करने का प्रयास करता िै। ज्ञानमागी ध्यान-धचंतंन, रह्म की कल्पना, धारणा, तत्त्वधचंतंन आहद अनेकानेक पद्धनतयों का सिारा लेकर उन्िीं में लीन िोनेका प्रयास करता िै और उस ओर अपनी सारी वृवृयों को मोड़ने ्का प्रयास करता िै। भावप्रधान व्यजकत अपनेभावों को उस ओर मोड़ने ्का प्रयास करता िै। अपनेगठन के अनुसार व्यजकत ककसी भी एक के सिारे अपनी गनतयों को उस ओर मोड़ने ्का प्रयास करता िै और धीरे-धीरे अन्य हिस्सों पर उसका प्रभाव फैलता जाता िै जजससे कक अन्य हिस्से भी उस ओर मुड़ने ्लगते िैं। गीता सभी भागों को भगवान् ्की ओर मोड़नेकी मााँग करती िै। गीता ने अपनी भशक्षा का आरंभ कमों को भगवन्मुख करने से ककया और कमयिोग का ननरूपण ककया। कम िका ननरूपण करते-करते गीता उसमें

यि कितुिए ज्ञान का समावेश करती िै कक ज्ञान कमों से श्रेष्ठ िै और उसी के द्वारा सच्चेकम िककये जा सकते िैं। इस प्रकार गीता कम िऔर ज्ञान का समन्वय साधती िै। इनका ननरूपण करते-करते वि इस त्रबन्दु ुतक पिुँचती िै कक ज्ञाननयों में भी जो भगवान् ्का भकत िै विी श्रेष्ठ िै। इस प्रकार ज्ञान और कम िमें एक नए तत्त्व - भजकत - का समावेश कर वि इन तीनों का समन्वय साधती िै। मन की प्रवृवि िै ज्ञान अजजति करने ेकी, इच्छा शजकत की प्रवृवि िै कुछ संभसद्ध करने की, अपनेआप को पररपुष्ट करने की, और भावामिक पक्ष की प्रवृवि िै भावना के द्वारा आनंद प्राप्त करने ेकी। पर इन सभी भागों में प्राण का प्रवेश िोता िै और वि इन सभी के माध्यम से सुख बटोरनेकी कोभशश करता िै। आरंभ में जब व्यजकत कुछ आजस्तक िोता िै और अपनेसे अनतररकत ककसी उच्चतर ववधान या ककसी उच्चतर सिा को स्वीकार करता िै तब वि अपनेसुख की पुजष्ट के भलए उसकी सिायता लेने के भलए उसकी ओर मिुता िै। उसकी ओर मिुने ेमें उसके अनेक िेतु िो सकतिैं। या तो वि अपने ककसी संकट या समस्या के समाधान के भलए, अपनेककसी िेतु या उद्देश्य की पूनत िया भसद्धध के भलए या कफर ककसी प्रकार की जजज्ञासा को शांत करने के भलए उसकी ओर मिु सकता िै। आरंभ में इन ककन्िीं भी िेतुओंसे व्यजकत भगवान् ्की ओर मिुता िै और इस प्रकार यि आदान-प्रदान आरंभ िो जाता िै और तब तक चलता रिता िै जब तक कक व्यजकत को यि अनुभव निीं िो जाता कक भगवान् ्केवल ककसी स्वाथ िभसद्धध िेतु िी ननकट जाने योग्य निीं िैं अवपतुउनकी स्वयंकी चाि रखना और उन्िें प्राप्त करना तो इन सब ननमन िेतुओं से अनंततः श्रेष्ठ, आनंददायक और तुजष्टप्रद िै। इस प्रकार यि एक ववकासिम िै जजसमें आरंभ में व्यजकत अपने अिं के अनतररकत अन्य ककसी सिा को स्वीकार निीं करता और केवल अपने पुरुषाथ िको िी अपने अिं की तुजष्ट का एकमात्र साधन मानता िै। उस अवस्था से कुछ ववकभसत िोकर वि कुछ आजस्तक बनता िै और अपने पुरुषाथ िके साथ िी साथ ककसी अन्य ववधान और सिा को भी स्वीकार करने ेलगता िै और अपनी तुजष्ट के भलए उसकी सिायता की पुकार करता िै। धीरे-धीरे जब उसका आदान प्रदान उस सिा के साथ, भगवान् ्के साथ बढ़ता िैतब वि उनके स्वरूप के ववषय में कुछ अधधक सज्ञान िोता िै। और तब वि उनसे सुख खोजनेकी बजाय उन्िीं की सिा में आनंद लेनेलगता िै। उसे अपनेसभी भागों की पररपूनत िउन्िींमें अनुभव िोने लगती िै और वि यि जान जाता िै कक सभी सुखों के मूलस्रोत केवल वे िी िैं इसभलए बुद्धधमानी इसी में िै कक ककन्िीं भी परोक्ष साधनों के माध्यम से सुख खोजने की चेष्टा करने की बजाय जो सच्चेआनंद के ननधान िैं उन्िीं के पास जाया जाए, उन्िीं की सिा में गोता लगाया जाए। इसे िी सिा का समग्र रूप से भगवान् ्की ओर मिुना किते िैं। परंतु यि समग्र मिुाव आरंभ में िी संभव निींिोता कयोंकक िमारे अंदर अनेकानेक ऐसे भाग िोतिैं जजनके अपने-अपनेननहित ननमन उद्देश्य िोते िैं और वे उन्िीं को पूरा करने की चेष्टा करते रिते िैं। परंतुयहद एक बार व्यजकत में यि संकल्प आ जाए कक सब कुछ के बावजूद उसे अपनेआप को भगवान् ्की ओर मोिना िै तब कफर धीरे-धीरे आरोिण का माग िखुल जाता िै। अतः एक बार जब व्यजकत को भगवान् ्की सिा का कुछ स्पश िप्राप्त िो जाए, उनका कुछ आस्वादन प्राप्त िो जाए तब कफर वि अधधकाधधक उन्िीं की ओर अपने सभी भागों को मोिने ेका प्रयास करनेलगता िै कयोंकक उनके अंदर उसे जो सुख, शांनत, प्रकाश, प्ेरम, आनंद, पररपूनत िआहद प्राप्त िोतिैं वे तो अन्य किीं ंककसी चीज से उसे प्राप्त िी निीं ंिोते। परंतुइस अवस्था के बाद भी एक अवस्था िै जिा ाँव्यजकत भगवान् ्में आनंद खोजने की बजाय उन्िीं का िो जाना चािता िै और अपनी संपूण िसिा को उन्िींको समवपति कर

देता ि ताकक वे उसका अपनेसंकल्प की अभभव्यजकत के भलए जैसा चाि वैसा उपयोग करें। यि पराभजकत ि।
इसभलए जब किते ि कक 'योग भगवान् ्के हित ककया जाता ि' तो इसका अथ ि यि निीं ि कक िम भगवान् ्
प्राप्त िो जाएँ, अवपतु यि िोता ि कक िम पूण ि रूप से भगवान् ्के िो जाएँ और वे िमारी सिा का उपभोग करें।
पराभजकत में तो इतना शुद्ध भाव िोता ि कक वि अपनी ननजी तुजष्ट के ववषय में तो कुछ सोच िी निीं ंसकती।
उसका भाव तो एकमात्र यि िोता ि कक उसके प्रेमास्पद उसका उपभोग करें और उसी में उसे परम आनंद की
अनुभूनत िोती ि। इस प्रकार ये सभी आरोिण की ववभभन्न अवस्थाएँ ि। परंतु वतमान में गीता िमारे सभी भागों
को भगवान् ्की ओर मुड़ने की माँग करती ि कयोंकक इसी मुडाव के द्वारा अज्ञान से मुजकत िो सकती ि।

जीव का भगवान् ्की ओर इस प्रकार सवभाव से मुड़ना िी गीता के ज्ञान, कम ि और भजकत के समन्वय को
शानदार ढंग से स्थावपत करता ि। इस प्रकार भगवान् ्को सवभावेन जानना उन्िें इस रूप में जानना ि कक वे िो
'एकमेव भगवान्'् आममा में ि, समस्त अभभव्यजकत में ि और समस्त अभभव्यजकत के परे ि, - और यि सब वे एक
िी साथ और एक िी समय में ि। परन्तु कफर भी, उन्िें इस प्रकार जानना भी पयाप्त निीं िोता जब तक कक उसके
साथ–िी-साथ हृदय और अंतःकरण का तीव्र रूप से भगवन्मुख उमथान न िो जब तक कक वि एकननष्ठ और साथ-
िी-साथ सवसमावेशी प्रेम, भजकत और अभीप्सा को प्रज्ज्वभलत न कर दे। ननश्चय िी वि ज्ञान जो ककसी अभीप्सा
से युकत न िो, जो ककसी उन्नयन से अनुप्राणणत निीं िोता, वि कोई सच्चा ज्ञान निीं, कयोंकक वि तो केवल
बौद्धधक रूप से देखने की किया और व्यथ ि ज्ञान-संबंधी प्रयास मात्र िी िो सकता ि। भगवान् ्का दशन अननवाय ि
रूप से भगवान की भजकत और उन्िें ढूँढ़ने ेकी सच्ची लगन ले आता ि, - अपनेस्वयं-भसद्ध स्वरूप में िी भगवान् ्
के भलए लगन निीं ंअवपतु उन भगवान् ्के भलए भी जो िमारे अन्दर ि और उन भगवान् ्के भलए भी जो कक जो
कुछ भी ि उस सबके अन्दर ि। बुद्धध से जानना केवल समझना ि और यि एक कारगर आरंभ-त्रबंदु िो सकता ि,
- पर साथ िी, िो सकता ि ऐसा न िो. और अवश्य िी ऐसा निीं ंिोगा यहद उस ज्ञान में कोई सच्चाई न िो, संकल्प
में इसकी आंतररक अनुभूनत के भलए कोई उमकण्ठा न िो, अंतभाव ि में कोई शनत न िो, आममा के अन्दर कोई
पुकार न िोः कयोंकक तब उसका अथ िोगा कक मजस्तष्क ने केवल बािरी रूप से िी समझा ि, परंतु आंतररक रूप से
आममा ने कुछ निीं देखा ि। वास्तव में यहद िम अपनी जस्थनत देखें तो िम पाएँगे कक िम अधधकांशतः अपने
कामपुरुष की तुजष्टयों में िी लगे रिते ि और चूंकक उसी भाग को अधधकांश पोषण भमलता ि इसभलए विी हृष्ट-
पुष्ट िोता ि जबकक दूसरे भाग कुपोवषत और नतरस्कृत रिते ि। इसभलए यहद मजस्तष्क, बुद्धध आहद भागों में
छोटा-मोटा ज्ञान िो भी तो वि कामनाओं आहद के नीचेदबे िोने के कारण प्रभावी निीं िोता। उसमें इतनी शजकत
निीं ंिोती कक वि जीवन पर कोई प्रभाव डाल सके, िमारे कमों को संचाभलत कर सके। इसभलए भले िी बुद्धध में
ककसी प्रकार का कोई क्षीण आदश ि या ज्ञान िो तो भी िमारे कम ि तो केवल प्राणणक इच्छाओं-कामनाओंकी सेवा में
िी लगे रिते ि। िमारी आममा को पोषण तो तब प्राप्त िोता ि जब व्यजकत परमाममा की ओर अभभमुख िो तथा
उन्िें अभभव्यजकत का अवसर प्रदान करे। िमारे हृदय की गिरी अभीप्सा को अभभव्यजकत का जजतना िी अधधक
अवसर प्राप्त िोगा उतना िी पोषण िमारी अंतराममा को भमलेगा और वि सुदृढ़ िोती जाएगी। वतमान में तो
अधधकांशतः कामपुरुष को िी अपनी अभभव्यजकत का मौका भमल रिा ि। पूरे ववश्व में केवल इसी की तुजष्ट पर
अधधकाधधक ध्यान हदया जा रिा ि। वतमान सभ्यता तो प्रधानतः इसी पर केंहरत ि कक ककस प्रकार अधधकाधधक

प्राणणक सुख-भोग की पूनत िो सके। िमारी सारी व्यवस्थाएँ, संस्थाएँ, भशक्षा आहद लगभग सभी प्रमयक्ष या परोक्ष रूप से एकमात्र इसी उद्देश्य की पूनत िके साधन जुटाने ेमें लगी िैं। सामान्यतः िमारी तथाकधथत ऊँची से ऊँची चीजें भी केवल एक भभन्न रंग-रूप में इसी की पूनत िमें लगी िैं। और चूंकक िम चेतना की एक ऐसी अवस्था में रिते िैं जिा ाँिमें केवल सुख-भोग की तुजष्ट िी नजर आती िै, इसभलए कोई भी गंभीर ज्ञान, अंतबोध, गिरी अभीप्सा आहद िमसे दूरू रिते िैं और िमें उनका जरा भी स्वाद प्राप्त निीं ंिोता।

अंतःसिा से जानना िी सच्चा ज्ञान िै, और जब अंतःसिा प्रकाश द्वारा स्पश िकी जाती िै तब जजस चीज को उसने देखा िै उसे आभलंगंन करने,े ग्रिण करने ेके भलए वि उठ खड़ी िोती िै, उसे अधधकृत करने के भलए वि लालानयत िो उठती िै, उसे अपनेअन्दर और अपने-आप को उसके अन्दर रूपाजन्वत करनेके भलए अथक प्रयास करती िै, उसनेजो दशनि ककया िै उसके वैभव के साथ एक िोने के भलए पररश्रम करती िै। इस अथ िमें ज्ञान अभभन्नता या तादाममय की ओर जागृनृत िै, और चूँकक अंतःसिा चेतना और आनन्द के द्वारा, प्ेरेम के द्वारा, ननजस्वरूप का जो कुछ दशनि उसे िुआ िै उसकी वप्र और उसके साथ एकमव के द्वारा आमम-साक्षामकार प्राप्त करती िै, इसभल ज्ञान जागृतृ िोने ेपर अवश्य िी इस सच्चेऔर एकमात्र पूण िसाक्षामकार की हदशा में एक सवानितशयी अंतःप्ेरेरणा ले आता िै। यिा ाँजजस तत्त्व का ज्ञा िोता िै, वि कोई बाह्य ववषय निीं,ं अवपतु हदव्य पुरुष का, िम जो कुछ भी। उसकी आममा और प्रभु का ज्ञान िोता िै। उनमें एक सविग्रािी आनंद औ उनके प्रनत एक गंभीर और रववत प्ेरेम और भजकत िी इस ज्ञान का अवश्यंभानेपररणाम और इसकी स्वयंआममा िी िै। और यि भजकत हृदय की िी कोर एकांगी खोज निीं,ं अवपतु संपूण िसिा का िी अपणि िै। इसभलए अवश्य िै यि एक यज्ञ का रूप भी ले लेगा; कयोंकक इसमें िमारे सभी कमों का ईश्वर के प्रनत दान िोता िै, िमारी सारी सकिय अंतबाह्यि प्रकृनत का उसकी प्रमयेक आममननष्ठ और प्रमयेक वस्तुननष्ठ किया में अपनेवप्रय भगवान् ्के प्रनत समपणि िोता िै। िमारी समस्त आममननष्ठ कियाएँ उन्िींमें गनत करती िैं और उन्िीं प्रभु और आममा को अपनी शजकत और प्रयास के मूलस्रोत और लक्ष्य के रूप में खोजती िैं। िमारी समस्त बाह्य अथवा वस्तुननष्ठ कियाएँ जगत् ्में उन्िीं की ओर गनतमान िोती िैं और उन्िींको अपना लक्ष्य बनाती िैं, भगवमसेवा के काय िका ऐसे जगत् ्में आरंभ कराती िैं जजसकी ननयामक शजकत िमारे वे अंतःस्थ भगवान् ्िैं जजनके अन्दर िम जगत् ्और उसके प्राणणयों के साथ एकाममा िैं। कयोंकक, जगत् ्और आममा, प्रकृनत और प्रकृनतस्थ पुरुष दोनों उसी 'एक' की चेतना से प्रकाशमान िैं और दोनों िी उन्िीं परामपर पुरुषोिम के िो आन्तर और बाह्य ववग्रि िैं। इस प्रकार एकमेव आममा और आममभाव के अन्दर बुद्धध, हृदय और संकल्प का समन्वय साधधत िोता िै और इसके साथ इस पूण िभमलन में, इस सवसिमावेशी भगवमसाक्षामकार में, इस हदव्य योग में ज्ञान, भजकत और कम िका समन्वय साधधत िोता िै।

परन्तु इस जस्थनत तक ककंधचममात्र भी पिुँचना अिंबद्ध प्रकृनत के भलये कहठन िै। और इस जस्थनत की ववजयी और समस्वर पूणतिा पर पिुँचना तो तब भी सुगम निीं िोता जब िमने अन्ततः और सदा के भलए इस माग िपर कदम रख हदये िोतें।

प्रश्न : कया िम कि सकतें कक भजकत का स्रोत ज्ञान िै?

उत्तर : भजकत का स्रोत ज्ञान निीं ंिै। िम कि सकते िैं कक ज्ञान आने से भजकत के माग िका रोिा िटता िै अन्यथा तो ज्ञान अपनेआप में अधूरा रिता िै जो कक भजकत के माग िमें बाधक िोता िै। जब सच्चा ज्ञान आ जाता ै तब वि भजकत के माग िमें बाधक निींअवपतु सिायक िो जाता िै। परंतु इसका यि अथ िनिीं िै कक भजकत का स्रोत ज्ञान िै। अपनेआप में भजकत िी िै जो ज्ञान और कम िको अपने साथ समजन्वत कर सकती िै। ज्ञान का सामान्यतया जो अथ िलगाया जाता िै वास्तव में वि ज्ञान निीं ंिै। सामान्यतया ज्ञान से िम अथ िलगाते िैं कक प्रकृनत-पुरुष के भेद का पता लग जाना, रह्म के ववषय में कुछ पता लग जाना, संसार माया का खेल नजर आना, आहद-आहद। परंतु इसी अध्याय के तीसवें श्लोक में स्वयं गीता िी किती िै कक यहद बिुत दुराचारी मनुष्य भी अनन्य और पूण िप्रेम के साथ भगवान् ्की ओर मुिता िै तो वि साधु माननेयोग्य िै। अतः, जजसके यि समझ में आ गया कक संसार में परमाममा िी एकमात्र वरण करने ेयोग्य िैं, विी सच्चा ज्ञानी िै बाकी सब तो केवल व्यथ िकी चेष्टाएँ या प्रयास मात्र िी िैं। उदािरण के भलए, भले िी कोई व्यजकत ककसी अमुक व्यजकत से पिली बार िी भमला िो और उसके ववषय में कुछ भी न जानता िो परंतु कफर भी उसे अंदर से यि मिसूस िो सकता िै कक विी व्यजकत उसका आराध्य िै, उसी की सेवा करना उसके संपूण िजीवन का लक्ष्य िै, उसी के चरणों में वि अपना सवस्वि अवपति कर सकता िै। भले िी अनेकों लोग उस व्यजकत के पास जाते िों और उसके प्रनत मन में बिा आदर भाव भी रखते िों परंतु कोई सच्चा भशष्य िी िै जो उसे तमक्षण पिचान जाएगा और उसके प्रनत आममसमपणि के द्वारा भगवान् ्को प्राप्त कर लेगा जबकक दूसूरों को उसी व्यजकत के साजन्नध्य से संभवतः कुछ भी प्राप्त न िो। यि पिचान िी सच्चा ज्ञान िै। यिी सच्ची समझ िै। यि एक त्रबल्कुल भभन्न गनत िै, भभन्न भाव िै। व्यजकत तब यि निीं ंसोचता कक अब उसे ज्ञान प्राप्त िो गया िै इसभलए उसे परमाममा की ओर चलना चाहिये। सच्चे ज्ञान का तो अथ िीिी यिी िै कक व्यजकत अनायास िी परमाममा की ओर चल पिता िै। िालाकँक ऐसा निीं ंिै कक परमाममा की इस यात्रा में माग िननष्कंटक िोगा। जो भी इस माग िपर गए िैं वे ेसभी एक स्वर से यिी किते िैं कक यि माग ि अमयंत कहठन माग िै जजस पर कदम-कदम पर धोखे िैं, जाल-घात िैं। परंतु कफर भी जजसे एक बार भी भीतर से सच्चा संस्पश िप्राप्त िो गया िै वि तो ककतनी भी तकलीफों के बावजूद भी उस माग िपर आगे बढ़े त्रबना निीं रि सकता। सच्चे ज्ञान में ननश्चयाममकता िोती िै। गोवपयों को सच्चा ज्ञान था इसीभलए उद्धव की सारी ज्ञान सरीखी बातों का उन पर जरा भी प्रभाव निीं ंिुआ। सभी सच्चेआध्याजममक मिापुरुषों के जीवन में िम यि बात देख सकते िैं कक उनकी ननष्ठा अनन्य िोती िै और वे अपनेइष्ट के प्रनत बिे ेननश्चयाममक िोतेिं, इस ववषय में उनमें कोई भ्रम निीं ंिोता। आंतररक ज्ञान और अनुभव ननश्चयाममकता लाते िैं। यहद ऐसा न िोता तो ककस प्रकार या ककस आधार पर एक क्षण में िी व्यजकत अपना सवस्वि ककसी पूजा के पात्र पर सिष िन्यौछावर कर सकता था। इस ननश्चयाममकता के अभाव में िी तो बिुत से व्यजकत जीवन भर यि तय निीं ंकर पातेकक वास्तव में करना कया चाहिये और इसी भ्रमपूण िजस्थनत में जीवन बीत जाता िै। परंतु ज्यों िी व्यजकत को भीतरी स्पश ि प्राप्त िोता िै मयों िी ननश्चयाममकता आ जाती िै कक कया करना चाहिये और कया निीं करना चाहिये। इस अनुभव को िम केवल मानभसक रूप से कभी भी निीं ंसमझ सकते।

----

* उनकी सिा मन के परे का एक रिस्य िै,

उसके तौर-तरीके ममय िअज्ञानता को चकरा देते िैं;

सीभमत' अपनेनर्ि् विवभागों में जस्थत,
चककत, भगवान् ् के सामथ्य ि को श्ेय निीं ं देता जो
अकजल्पत 'सवं' ं बनने का सिास करता िै, और एक अनन्त
की भानाँत सदा देखता और काय ि करता िै। मानव के तकि
के ववरुद्ध उनका यि अपराध िै,
ज्ञात िोकर भी ननमय अज्ञेय बने रिना,
सब कुछ िोकर भी कफर इस गुह्य समग्रता को लाघाँ जाना,
'ननरपेक्ष' िो कर 'काल' के एक सापेक्ष जगत् ् में ननवास करना,
शाश्वत और सवज्ञि िोकर जन्म का कष्ट उठाना,
सवशिजकतशाली िोकर 'दैवयोग' और 'ननयनत' से खेल करना,
'आममा' िोकर भी ज़ि और शून्य बनना,
असीम, नामरूपातीत िोकर,
एक दि में ननवास करना, एकमेव और परम िोकर
पशु एवं मानवएवंदेवबनना ...

अिजानस्न्त मां मूढा मानषजींतनमजाधश्रतम् ्।
परं भिामजानन्तो मम भूतमहेश्रिम् ्।। ११ ।।

११. मूढ़ मनष्जय मझेज ंमानि देह में आधश्रत या आिासत जानकर मेरी उपेक्षा करते हैं क्योंकक ि मेरे सममत भूतों के ईश्रि मिरूप, मेरे परं भिा ३, को नहीं ंजानते।

ममय िमन आवरणों और बाह्य प्रतीनतयों पर अपनेअज्ञ भरोसे के कारण संभ्रभमत िो जाता िै; वि केवल बाह्य मानव शरीर, मानव मन, मानव जीवनचयाििी देखता िै और उन भगवान् ्की कोई मुजकतदायी झलक निीं पकि पाता जो प्राणी में ननवास करते िैं। वि स्वयंअपनेअन्दर के भगविमव की उपेक्षा कर देता िै और दूसूरे मनुष्यों में भी उसे निीं ंदेख पाता, और तब भी जब मानवजानत के अंदर भगवान् ्अपने-आप को अवतार और ववभूनत के रूप में प्रकट करते िैं, वि कफर भी अंधा िी बना रिता िै और प्रच्छन्न भगवान् ्की उपेक्षा या अविेलना करता िै, अवजानजन्त मांमूढा मानुषींतनुमाधश्रतम्।् और, जब वि जीववत प्राणी के अन्दर उनकी उपेक्षा करता िै तब उस बाह्य जगत् ्में तो वि उन्िें देख िी कया सकता िै जजसे वि अपनेपृथककारी अिंकार की कैद के कारण सीभमत मन-बुद्धध के बन्द झरोखों से झाँकता िै। वि ईश्वर को जगत् ्में निीं देखता; उन परमेश्वर के बारे में वि कुछ भी निीं जानता जो इन वववववध भूतों से पररपूण िलोकों के स्वामी िैं और उन भूतों में ननवास करते िैं; वि उस दृजष्ट के प्रनत अंधा िै जजसके द्वारा संसार में सभी कुछ हदव्य िो उठता िै और जीव स्वयंअपने अंतननिहित भगवान् ्के प्रनत जाग उठता िै और भगवान् ्का िो जाता िै, भगवमसदृश िो जाता िै।

मोघाशा मोषकमुाणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासरजींचै प्रकृनतं ंमोदहनींधश्रताः ।। १२।।

१२. ि व्यथु ुकी आशाओं, व्यथु ुकमों और व्यथु ुज्ञान िाले होतेहैं। सच्ची चेतना से शून्य ि भ्रसमत करनेिाली राक्षसी और आसरजरक प्रकृनत में ननिास करते हैं।

जजन लोगों ने सीभमत चीजों के भलए और बुद्धध, दिे व इंहरयों की पाधथवि लालसा की तुजष्ट के भलए स्वयं को अनतशय पूण िरूप से अिमय जीवन में झोंक हदया ि... वे ननमन प्रकृनत के िाथों में जा धगरते िैं... वे लोग मनुष्य के अन्दर उस राक्षस की प्रकृनत के भशकार िो जाते िैं जो अपने पृथक् प्राणमय अिंकार की उग्र और अदमय भोग-लालसा पर सब कुछ न्यौछावर कर देता ि और उस (प्राणमय अिंकार) को िी अपनी इच्छा, धचंतंन, कम िऔर भोग का अंधकारमय देव बना लेता ि। अथवा वे आसुरी प्रकृनत की अिंकारी स्वेच्छा, स्वतःसंतुष्ट ववचार, स्वाथांध कम,ि स्वतः-संतुष्ट पर कफर भी सदा असंतुष्ट रिनेवाली बौद्धधकभावापन्न भोग-तृषूणा के द्वारा व्यथ िके चककर में घसीट भलए जाते िैं। परन्तु दुरुाग्रिपूवकि सदा इस पृथक्कारी अिं-चेतना में जीना और उसे िी अपने सारे कियाकलापों का केन्र बना लेना अपने सच्चेआमम-बोध से सवथिा वंधचत िो जाना ि। जो मिो-जाल यि आममा के पथभ्रष्ट उपकरणों पर िालता ि वि एक ऐसा सममिोन ि जो जीवन को एक फलिीन चककर से बाधाँ देता ि। भगवदीय और सनातन मापदण्ि से आकाँलन करने पर उसकी समस्त आशा, कम,ि ज्ञान व्यथ ि चीजें हदखाई देती िैं, कयोंकक यि मिान् ्आशा के भलए द्वार बंद कर देता ि, मुजकतदायी कम िको वजजति कर देता ि, प्रबोधनकारी ज्ञान को बिार कर देता ि। यि एक भमथ्याज्ञान ि जो दृश्य जगत् ्को देखता ि पर उस दृश्य जगत् ् के समय को चूक जाता ि, एक ऐसी अंधी आशा ि जो क्षणभंगुर का पीछा करती ि पर सनातन को निीं ंदेख पाती, एक ऐसा ननष्फल कम िि जजसके प्रमयेक लाभ को उससे िोनेवाली िानन लुस कर देती ि और जजसका कुल योग केवल भसभसफस (sisyphus) के उस अनंतकालीन पररश्रम के जैसा िोता ि जजससे िाथ कुछ निींलगता ि।

महात्मानमत जमांपाथु ुदिीं प्रकृनतमाधश्रताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्िा भूताददमव्ययम् ्।। १३ ।।

१३. हे पाथु! ु महात्मा, जो दिी प्रकृनत में ननिास करते हैं, मजझे ेउस अविनाशी के रूप में जानते हैं स्जससे सममत भूत उत्पन्न होतेहैं, और इस प्रकार जानकर ि अनन्य और पूणु ुप्रेम-भस्क्त से मेरी ओर मिजते ेहैं।

जो मिामा अपने-आप को उस हदव्यतर प्रकृनत के प्रकाश और ववशालता की ओर खोलते िैं, जजसका सामथ्य िमनुष्य में िोता ि, वे िी एकमात्र उस पथ पर िोतेिं जो आरंभ में बिुत िी साँकरा पर अंत में अमयंत ववशाल िोता िुआ मुजकत और पूणतिा की ओर ले जाता ि। मनुष्य के अन्दर ननहित देव की वृद्धध करना िी मनुष्य का यथाथ िकिव्यि ि; इस ननमनतर आसुरी और राक्षसी प्रकृनत का दृढ़ तथा ननरंतर भागवत् ्प्रकृनत में पररवतनि िी मानव जीवन का सतकितापूवकि नछपाया िुआ प्रयोजन ि। जैसे-जैसे यि वृद्धध िोती जाती ि, वैसे-वैसे आवरण टिता जाता ि और जीव कम िके मिमर अभभप्राय को तथा जीवन के यथाथ िसमय को देखने-समझने लगता ि। मनुष्य में ननहित भगवान् ्की ओर, जगत् ्में ननहित भगवान् ्की ओर दृजष्ट खुल जाती ि; वि आंतररक रूप से देखती व बाह्य रूप से जानने ेलगती ि उस अनन्त आममा को, उस अववनाशी को जजससे सारे भूत उमपन्न िोतेिं

और जो सब भूतों के अन्दर रिता िै और जजसके द्वारा और जजसके अन्दर यि सब कुछ सदा अजस्तमवमान रिता िै। अतः जब यि दशनि और यि ज्ञान अंतराममा को अधधग्रीत कर लेता िै तब उसकी सारी जीवन-अभभलाषा भगवान् ्और अनन्त के प्रनत अनतशय प्ेरम और अथिा भजकत बन जाती िै। तब मन अपने-आप को अनन्य रूप से शाश्वत, अध्याममसिा, धचरजीवी, ववश्वव्यापी, सत् ्तत्त्व से संबद्ध कर देता िै; उसके भलये ककसी भी चीज का मूल्य उसी के नाते िोता िै अन्यथा निीं, और वि उस सवानिन्दमय पुरुष में िी आनन्द लेता िै।

इसमें मुख्य बात यि िै कक भगवान् ्िी सब कुछ िैं और वे िी समय िैं इसभलए उनकी अनन्य रूप से भजकत करनी चाहिये। और जो उनकी भजकत निीं ंकरता वि आसुररक प्रकृनत का िै।

प्रश्न : यिा ंउँल्लेख िै कक पथ आरंभ में बिुत साँकरा िोता िै, इसका वास्तव में अथ िकया िै?

उत्तर : मिारे पुराने ेसाहिमयों में भी इसका उल्लेख आता िै और श्रीअरववन्द भी उसी बात को यिाँ दोिरा रिे िैं कक पथ आरंभ में बिुत साँकरा और बाद में बिुत ववशाल िोता जाता िै। एक बिे िी सरल रूपक की सिायता से इसे िम यों समझ सकतेिैं कक जब िम अपनेननवासस्थान से ककसी राजमाग िके भलए जाते िैं तो प्रायः पिले मिारे घर के सामने माग िकुछ साँकरा िोगा जो िमें ककसी अधधक ववशाल माग ितक ले जाता िै और उससे आगे कफर िम एक अधधक ववशाल माग िपर या कफर राजमाग िपर जाते िैं। इसी प्रकार साधना माग िभी प्रमयेक व्यजकत के भलए ककसी सीमा तक बिुत िी ववभशष्ट प्रकार का िोता िै। प्रमयेक की एक ववभशष्ट प्रकार की अभीप्सा िोती िै। ककसी को भगवान् ्भशव के प्रनत अनुराग िोता िै तो ककसी को ववष्णुके प्रनत। ववष्णु ुके प्रनत जजन्िेंअनुराग िै उनमें भी ककसी को उनके ककसी रूप ववशेषे से ववशेषे लगाव िोता िै तो ककसी दूसूरे को उनके ककसी दूसूरे रूप से। उस रूप ववशेषे में भी लगाव रखनेवालों में यहद िम देखें तो प्रमयेक अपनेभभन्न गठन के अनुसार भभन्न-भभन्न तरीके से उसे पूजता िै, भभन्न तरीके से उसके पास जाता िै। इसभलए जब िम साधना आरंभ करते िैं तो कया करें और कया न करें ये ननयम बिे िी सुननधाररत, सख्त और बाध्यकारी प्रकार के िोते िैं कयोंकक जब िम आरंभ करते िैं तब चेतना इतनी पयाप्ति नमनीय और ववशाल निीं िोती कक उसे अधधक छूट दी जा सके। परंतु ज्यों-ज्यों व्यजकत इन ननयमों का पालन करते िुए माग िपर अग्रसर और ववकभसत िोता जाता िै मयोंिी-मयों उसके भलए वे ननयम कफर उतने कठोर और बाध्यकारी निीं रि जाते बजल्क अधधक नमनीय िोतेजाते िैं।

यहद िम अपने मूल स्रोत सजच्चदानंद को देखें तो विाँचेतना का अनंत ववस्तार िै परंतु ज्यों-ज्यों चेतना नीचेउतरती िै मयों-मयों वि संकीण ििोती जाती िै। जि-भौनतक तक आते-आते तो वि इतनी संकीण ििो जाती िै कक लगभग चेतना का ववलोम िी प्रतीत िोनेलगता िै। इसभलए जब िम चेतना के इस ननचले छोर से अपनेमूल स्रोत तक पुनः लौटने ेकी यात्रा आरंभ करते िैं तो स्वाभाववक िी िै कक रास्ता आरंभ में साँकरा िी िोगा। यि एक देखने का तरीका िै। इसे वैहदक रूपक के अनुसार भी देखा जा सकता िै। आरंभ में िमारे अंदर मनोवैज्ञाननक शजकतयाँ सुषुप्त अवस्था में िोती िैं, जिने का अथ ििै कक िमारे अंदर दैवीय शजकतयों की किया बिी िी क्षीण रिती िै, परंतु ज्यों-ज्यों वि किया बढ़ती जाती िै मयोंिी-मयों िमारी चेतना ववशाल िोती जाती िै और िमारा कायक्षेत्र और प्रभावक्षेत्र अधधकाधधक ववशाल िोते जाते िैं। इस बात को िम योगी श्रीकृष्णप्ेरम के जीवन के उदािरण से भी

समझ सकते ि ैं। अपनी साधना के आरंभभक समय में उन्िोंनेवैष्णव उपासना पद्धनत और तंत्र के सारे ननयमों को अक्षरशः अपनाया और त्रबल्कुल सख्त रूप से उनका पालन ककया। उन्िोंनेकठोर रूप से शारीररक, मानभसक, भावनाममक शुद्धता का पालन ककया। जब एक बार उपिासवश छिेखानी करते िुए ककसी ने उनसे किा कक, "यहद मेरी ववधवा दादी इन सब किया-ववधध का पालन करती तब तो म ैंसमझ सकता था, परंतु आपका तो इतना भभन्न अतीत रिा ि ै। पीछे आपके कैमरीज के हदनों में आपनेखूब गोमांस तक भी अवश्य ि ी खाया िोगा! तो आप ये सब शास्त्रसममत संयमों का पालन कैसे कर पातेिैं?" इसका उन्िोंने जो उिर हदया वि ब्रिा ि ी माभमकि था। उन्िोंने ेकिा, "...मुझे ेलगता ि ै कक कोई भी आमम-आरोवपत अनुशासन, चािे वि बािरी िो या आंतररक, आज के समय में एक बिुत अच्छी चीज ि ै जब कक िर प्रकार का सामाजजक या व्यजकतगत अंकुश या संयम णखिकी से बािर फेंक हदये जानेकी प्रकिया में ि ै। और साथ ि ी इसभलए कयोंकक बस यिी वि पथ ि ै जो उनके द्वारा तैयार ककया गया ि ै जो मेरे से पिले जा चुके ि ैं और लक्ष्य तक पिुँच चुके ि ैं। अभी-अभी पथ पर प्रवेश ककया िुआ म ैंयि किने ेवाला िोता कौन िूँ कक 'म ैंयि करूँगा और वि निीं, यि अनुशासन तो स्वीकार करूंगा परंतुवि निीं?ं' म ैंतो पूरे का पूरा ि ी स्वीकार करता िूँ।"* और वास्तव में उनका पूरा जीवन इस बात का जीवंत उदािरण था। उन्िके जीवन वृिांत में िम पातेिैं कक ककस प्रकार बाद के समय में उन्िोंने अपनेबाह्य अनुशासनाममक ननयमों को बिुत कुछ नमनीय और सवसमावेशी बना हदया। इसी से िमें इस बात का पता लगता ि ै कक ककस प्रकार पथ आरंभ में संकीण ििोता ि ै पर बाद में अमयधधक ववशाल बन जाता ि ै।

योग की ववभभन्न ववचारधाराओंमें िम पातेिैं कक उनमें से अधधकांश कुछ संकीण िया एकांगी ववषय पर आकर रुक जाती ि ैं परंतु गीता के ननरूपण में िम पातेिैं कक वि सभी ववचारधाराओंऔर पद्धनतयों को प्रनतध्वननत करती िुई उन सभी का समन्वय साध देती ि ै और अन्त में उन सबकी सीमाओंको तोि़ कर 'सवधिमान्पररमयज्य' का उपदेश करती ि ै। गीता के ऐसे ववकासिम के ववषय में जब ककसी ने श्रीअरववन्द से पूछा कक गीता ने अपना परम रिस्य 'सवधिमान्पररमयज्य' आरंभ में ि ी कयों निीं ंदे हदया, तब इसके उिर में उन्िोंने किा कक धमों को मयागनेके भलए पिले व्यजकत के पास कोई धम ितो िोनेचाहिये। इसीभलए व्यजकत को पिले ववभभन्न धमों की सिायता से, अथात्ि्ववभभन्न मानभसक, मनोवैज्ञाननक आधारों पर अपने आपको ववकभसत करना िोता ि ै और जब एक बार उसका भली-भानँत ववकास िो जाए तभी तो वि उनका मयाग करने की जस्थनत में िोगा। अन्यथा त्रबना पिले उन धमों को अपनाए वि उनका मयाग कर ि ी कैसे सकता ि ै। इसी प्रकार, श्रीअरववन्द किते ि ैं कक मनुष्य के ववकास में अिं पिले सिायक िोता ि ै और कफर जब उसकी उपयोधगता समाप्त िो जाती ि ै तब उससे ऊपर उठा जा सकता ि ै।

चेतना के ववकासिम में भी िम देख सकते ि ैं कक जि़भौनतक पदाथ िपूण िरूप से ननयमों से बाँधा िुआ ि ै और ज्यों-ज्यों िम चेतना के उच्चतर स्तरों पर आरोिण करते ि ैं मयों-मयों अधधक स्वतंत्रता आती जाती ि ै। जि़भौनतक से अधधक स्वतंत्रता प्राण में िोती ि ै और उससे अधधक मन में िोती ि ै। इस प्रकार इन सभी तरीकों से िम देख सकते ि ैं कक आरंभ में चेतना संकीण ििोती ि ै और उिरोिर ववकास के साथ वि अधधकाधधक ववशाल िोती जाती ि ै।

सततं ंकीतुयुन्तो मांयतन्तश्च दृढव्रताः ।

नममयन्तश्मिांभक्त्या ननत्ययक्जता उपासते।। १४।।

१४. मेरी ददव्य कीनतु ुका सतत् ्मतिन करते हजए, आध्यास्त्मक यत्न में दृढ़ स्मथत होकर, मेरे आगे नतममतक होकर, ननत्य योग यक्जत होकर िे ेभस्क्तपूिुक मेरी उपासना करते हैं।

समस्त वाणी और संपूण िधचंतंन उस ववश्वव्यापी मििमा, प्रकाश, सौन्दय,ि शजकत और समय का एक स्तुनत-गान बन जाता िै जजसने अपनी महिमा सहित अपने-आप को उस मानव-आममा के समक्ष प्रकट ककया िै और यिी उसकी उन एकमेव परम् ्आममा और अनन्त पुरुष की उपासना िोती िै। बाह्य प्रस्फुटन के भलए अंत:सिा का सुदीघ िकाल से चला आ रिा दबाव अब अंतराममा में भगवान् ्को प्राप्त करनेऔर प्रकृनत में भगवान् ् को भसद्ध करनेकी एक आध्याजममक चेष्टा और अभीप्सा का रूप धारण कर लेता िै। संपूण िजीवन उन भगवान् ् और इस मानव-आममा का सतत् ्योग और एकीकरण बन जाता िै। यिी सवांगीण भजकत का कायि–स्वरूप िै; समवपति हृदय से शाश्वत पुरुषोिम के प्रनत यज्ञ के द्वारा यि िमारी समस्त सिा और प्रकृनत का एक साथ उमथान साधधत कर देता िै।

----

* योगी श्रीकृष्णप्रेम, पृष्ठ xviii

इसी कारण िमारे पुराणों में जजस रूप में वैहदक समय का ननरूपण िुआ िै वि मानव सिा के ववभभन्न भागों के भलए उस समय को ग्राह्य बना देता िै। वेदों में जजस रूप में उसका ननरूपण िुआ िै वि तो त्रबना अंतबोध के सुगम निीं। परंतु पुराणों में कथाओं, रूपकों आहद अनेक माध्यमों से उसी समय का ननरूपण िुआ िै जजसका कक पठन, श्रवण, धचंतंन, गायन आहद करनेसे प्रमयक्ष या अप्रमयक्ष रूप से वि िमारे ववभभन्न भागों पर अपना प्रभाव िालता िै। इसीभलए कथा-श्रवण, सप्तिा यज्ञ आहद का इतना भारी मित्त्व रिा िै। कयोंकक भले िी कोई बौद्धधक रूप से समझे ेया न समझे,े पर व्यजकत उससे भावनाममक रूप से अवश्य िी कुछ न कुछ ग्रिण करता िै।

इसी कारण यि प्रसंग आता िै कक वेद, उपननषद् व अन्य पुराणों की रचना करने के बाद भी जब वेदव्यासजी असंतुष्ट थे ेतब नारद जी ने उन्िें श्रीमद्भागवत की रचना करनेको किा कयोंकक उसी के द्वारा हृदय, भावनाममक भाग तथा िमारे अन्य भाग अपने-अपने तरीके से भगवान् ्के संपकि में आकर पररपुष्ट िो सकते िैं अन्यथा केवल कोरे ज्ञान की बातों में उन्िें कोई रस निीं आता और न िी उससे उनकी पुजष्ट िोती िै। जब तक भगवान् ्की लीला-कथाओंका वणनि न िो, उनका गान न िो तब तक िमारी कियाममक, भावाममक, सौंदयिग्रािी, सुखभोगवादी प्रकृनत को प्रभाववत निीं ककया जा सकता। केवल कोरे ज्ञान से िमारी प्रकृनत के इन भागों को सकिय निीं ककया जा सकता। इसीभलए िमें ककसी चीज के ववषय में ज्ञान िोने ेपर भी व्यविार में िम उस हदशा में अधधक कुछ कर निीं ंपाते। विींएक बार जब िमारे हृदय को छू हदया जाता िै तब िम पूरे मनोयोग से ककसी उद्देश्य के भलए पररश्रम करनेको, अपनी ऊजिा लगानेको सिष ितैयार िो जाते िैं। और जब एक बार िमारे कुछ भाग उन लीला कथाओं में आनंद अनुभव करनेलगते िैं तब ननमन वृवियों की ननरंकुशता पर इससे बिुत कुछ अंकुश और अनुशासन आनेलगता िै। केवल मानभसक समझ से यि संभव निीं ंिै। यिााँतक कक अनेक वषों तक साधना करते रिने ेपर भी िमारे अंदर ऐसे हिस्से नछपे रि सकतेिैं जजन्िें साधना से, भगवान् ्से, अपनेइष्ट से

कोई मतलब निीं ंिोता। वे तो अपने िी सुख के साधनों को खोजने में लगे रितेिैं। ककसी को पररवार में सुख भमलता िै, ककसी को अपनी पद-प्रनतष्ठा में सुख भमलता िै, ककसी को जीभ के स्वाद की तथा अन्य शारीररक ववलाभसता के साधनों की पूनत िमें सुख भमलता िै। ऐसा कौन साधक िोगा जजसमें कक ये हिस्से बिुत दीघ िकाल तक भी अंदर नछपे न रितेिोंगे और साधना में कदम-कदम पर उसे अपने उद्देश्य से ववभ्रभमत और ववचभलत करने का प्रयास न करते िोंगे। इन सभी हिस्सों को प्रमयेक साधक अपने-अपनेतरीके से संयभमत करने का प्रयास करता िै। परंतु यि प्रकृनत ऐसी दुःसाध्य िै कक साधनापथ में यि आम बात िै कक व्यजकत का पतन िो जाता िै। इसभलए यहद मन परमाममा के कीतनि में, उनके स्तवन में लग जाए तो यि एक बिुत िी श्रेष्ठ जस्थनत िै। सामान्यतः तो िमें यि देखनेको िी निीं भमलता कक व्यजकत को भगवान् ्की लीला कथाओं में, उनके स्तवन आहद में िी रस आता िो। ऐसे बिुत लोग िैं जो कितिैं और वास्तव में िी उन्िेंलगता भी िै कक उनका मन भगवान् ्में लग रिा िै और वे उनका भजन-कीतनि करना चािते िैं, परंतु एक ननजश्चत समय सीमा के बाद वे उस सब से ऊब जाते िैं और तब उन्िेंअन्य वे सब साधन चाहिये जजनमें उनका मन वास्तव में लगता िै। अधधकांश को लगता िै कक भगवान् ्का भजन करना भले िी एक अच्छी चीज िै परंतु ुवि भी मयाहिदत समय सीमा में िी अच्छा िै कयोंकक व्याविाररक जीवन में अन्य दानयमव भी िैं जजनका उन्िेंननविा करना पड़ता िै। इस प्रकार की मानभसकता में तो व्यजकत को यि आभास िी निीं ंिोता कक उसका मन वास्तव में भगवान् ्के स्तवन में लगता िी निीं ंिै। जब इस दृजष्टकोण से िम गीता की बात को समझें तब िमें अनुभव िोगा कक गीता ककतनी गंभीर बात कर रिी िै। गीता जजस धचंतंन की बात करती िै वि सतत् ्धचंतंन की बात िै। वि कोई समय ववशेषे का ध्यान, पूजा, अनुष्ठान आहद निीं ंिै। अतः यहद ककसी के अंदर यि सतत् ्धचंतंन सकिय िो जाए तो यि एक बिुत बड़ा रूपांतर साधधत िो जाता िै। यहद इस दृजष्टकोण से इसे न देखें तो िम भ्रभमत िो सकतेिैं कक अक्षर रह्म के ज्ञान की बात करनेके बाद अब गीता ऐसे कननष्ठतर ववषयों की बात कयों कर रिी िै। परंतु जब सिी पररपेक्ष्य में िम इस बात को समझेंगे तब िम पाएँगे कक यि एक बिुत िी गंभीर ववषय िै। इस सतत् ्धचंतंन के आने ेपर िी वास्तव में ज्ञानयज्ञ िो सकता िै।

अधधकांशतः तो व्यजकत जजसे ज्ञान किता िै उसे इसीभलए चािता िै कक उसके द्वारा उसकी साधना िो जाए, उससे सुख प्राप्त िो जाए, उसका कल्याण िो जाए, आहद-आहद। परंतु यि ज्ञानयज्ञ निीं िै। ऐसे मनोभाव में तो यज्ञ का आरंभ िी निीं ंिुआ िोता। ज्ञानयज्ञ तो तब आरंभ िोता िै जब व्यजकत जानना केवल इसभलए चािता िै कक उससे वि भगवान् ्की सेवा अधधक अच्छे ढंग से कर सके। उससे अधधक जानने से उसे कोई सरोकार निीं िोता। अपनी व्यजकतगत संतुजष्ट के भलए उसे ज्ञान की कोई चाि निींिोती। यहद किने को व्यजकत वेद-वेदांत आहद में पारंगत भी िो जाए परंतु उसकी सिायता से वि एक कदम भी परमाममा की ओर गनत न कर सकता िो तो ऐसे ज्ञान का कोई लाभ निीं ंिै। ज्ञानयज्ञ का अथ ििै कक व्यजकत का संपूण िज्ञान भगवान् ्की, श्रीमाताजी की सेवा में अवपति िो जाता िै। सच्चा ज्ञान इस भाव में ननहित िै कक भगवान् ्जो कराएँ, जैसा ज्ञान दें, जैसे भी रखें विी सिी िै बाकी सब ननरथकि िै। अन्यथा तो ज्ञान के नाम पर केवल अिं का िी पोषण िोता िै। यिी निीं,ं जजतना िी वि बढ़ता िै उतनी िी अिंकेंहरतता भी बढ़ती जाती िै कयोंकक व्यजकत उस ज्ञानाभभमान के दंभ से अधधकाधधक फूलने ेलगता िै। यज्ञ का अथ ििै पववत्र बनाना। साधना, ज्ञान, भजकत, कम िआहद सभी बातें तब तक त्रबल्कुल

बेकार और अपववत्र िैं जब तक कक वे प्रभु के चरणों में समवपति न िो जाएँ। अधधक से अधधक केवल यि संभव िै कक ये सब चीजें मनुष्य को सत्त्व की ओर ले जाएँ, परंतु इससे कोई सच्ची उपलजब्ध निीं ंिो जाती कयोंकक सत्त्व भी तो एक जंजीर िी िै। आममज्ञान आहद का प्रयास तो व्यजकत को साजत्त्वक िी बना सकता िै, परंतु, जैसा कक श्रीकृष्णप्रेम कितेथे, े मुकुंद की सेवा िी िै जो ननखैगुण्य िै। और ऐसे सच्चेसेवा के मनोभाव में िी सच्चा ज्ञान आ सकता िै। यहद यि मनोभाव न िो तो व्यजकत में केवल भेदबुद्धध िी बनी रिती िै और वि अिं पर िी कें हरत रिता ि।ै परंतु इस मनोभाव के आने में सबसे बडी बाधाएँ िैं िमारे मन, प्राण और शरीर की वृवृिया।ाँ ककसी को पररवार में सुख भमलता िै और वि उसे छोड़ निीं सकता, ककसी को संपवि से लगाव िै, ककसी को अपनी यश-कीनत,ि बडाई, पद-प्रनतष्ठा में रुधच िै, विीं ककसी को अपनी भोग-ववलाभसता में िी आनंद आता िै। कोई ववरला िी िै जो वास्तव में इनके पाश से छूट कर ककसी सच्ची चीज की ओर चल पाए। इन सबकी माया ऐसी सममोहित कर देती िै कक इनकी पाश में बंधे िोकर भी व्यजकत को ऐसा भ्रम िो सकता िै कक उसका मन तो भगवान् ्में लगता िै, कक वि साधना कर रिा िै, या ऐसे िी अन्य कोई ववचार। इसभलए गीता अब जजस चीज का ननरूपण कर रिी िै वि एकांगी कमयोग, ज्ञानयोग आहद से भी बडी श्रेष्ठतर जस्थनत िै जजसमें व्यजकत का मन भगवान् ्के सतत् ्स्तवन में लग जाता िै।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामपजासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ्।। १५।।

१५. और अन्य दूसरे जन मझेजोरे एकत्व भाव में, प्रत्येक पृथक् जीव में (पृथक् भाव में) और मेरे सममत असंख्य विश्व चेहरों में ज्ञानयज्ञ के द्वारा खोजते हैं (मेरा यजन करते हैं) और मेरी उपासना करते हैं।

जो लोग ज्ञान पर िी अधधक बल देते िैं, वे भी अंतराममा और प्रकृनत पर िोनेवाले भगवान् ्के दशनि की ननरंतर बढ़नेवाली, अपनेअन्दर लीन करनेवाली और अपनेरास्तेपर चलानेवाली शजकत के द्वारा उसी त्रबंदु ुपर पिुँचते िैं। उनका यज्ञ ज्ञान-यज्ञ िोता िै और ज्ञान के िी एक अननवचिनीय आनंद के द्वारा वे पुरुषोिम की भजकत पर पिुँच जाते िैं, ज्ञानयज्ञेन यजन्तो मामुपासते। यि वि ज्ञान िै जो भजकत से पररपूण िि,ै कयोंकक यि अपने साधनों में पूण िि,ै अपनेलक्ष्य में पूण िि।ै यि परमोच्च को मात्र एक अमूत िएकमव अथवा अननधायि िया बुद्धध से अग्राह्य ननरपेक्ष सिा के रूप में मान कर उसकी खोज करना निीं िै। यि तो परमोच्च की और वैश्वसिा की िाहदिक खोज और उन्िें अधधकृत करना िै; यि अनन्त को उनकी अनन्तता में, और अनन्त को जो कुछ सीभमत िै उस सब में ढूँढ़ना िै; यि उन 'एक' को उनके एकमव में और उन्िीं 'एक' को उनके अनेकववध तत्त्वों में, उनकी असंख्य छववयों, शजकतयों और रूपों में, यत्र-तत्र-सवत्रि, कालातीतता में और काल में, गुणन में, ववभाजन में, उनके ईश्वरभाव के अनन्त पिलुओंमें, असंख्य जीवों में, उनके उन करोड ववश्वरूपों में जो जगत् ्और उसके प्राणणयों के रूप में िमारे सामने िैं, एककक पृथकमवेन बिुधा ववश्वतोमुखम्,् देखना और आभलंगंन करना िै। यि जार सिज िी एक आराधन, एक व्यापक भजकत, एक ववशाल आममदान, एक सवांगीण आममोमसग िबन जाता िै कयोंकक यि उस आममा का ज्ञान िै, उस आममसिा का संस्पश िि,ै उस परम और ववराट् पुरुष का आभलंगंन िै जो

मिं िम जो कुछ भी िैं उसे, अपना बना लेता िै और साथ िी जब िम उसके समी पिुँचते िैं तो िमारे ऊपर समस्वरूप के अनन्त आनन्द की ननधधयाँबरसाता िै।

ज्यों-ज्यों व्यजकत को भजकतपूररत ज्ञान िोता िै वि सवत्रि िी ईश्वर के दशनि करने ेलगता िै और उनसे पे्रेम करनेलगता िै। और जब व्यजकत सवत्रि उनसे पे्रेम करता िै तब वे ेभी उसके समक्ष अपनेववभभन्न रूप, अपने ववभभन्न पिलू प्रकट करना आरंभ करते िैं। परंतु यि ज्ञान, यि प्राकट्य केवल भजकत के प्रभाव से िी आता िै। इस प्रकार भजकत के प्रभाव से िमारे कम,ि िमारा ज्ञान, िमारे सभी भाव एकांगी न रिकर समग्र और व्यापक स्वरूप धारण कर लेते िैं और इस समग्रता में उिरोत्तर पराभजकत की ओर वृद्धधध करते िैं। पराभजकत का अथ ििै िि व्यजकत अपनेसभी भावों को अनन्य रूप से भगवान् ्की भजकत में पररणत कर देता िै। तब सर्वभावेन अर्थात् कम,ि ज्ञान आहद सभी केवल प्रभुके प्रीमयथ िननवेहदत िोतिैं और वे सभी अिं की तुजष्ट की बजाय भगवान् ्की भजकत के साधन बन जाते िैं। तब व्यजकत को स्वयंके भलए या उनके अपने भलए ज्ञान से या कम िसे कोई रुधच निीं रिती अवपतु ये तो उस भजकत से िी उद्भूत िोते िैं। कम िभी उस भजकत के अनुरूप िी उद्भूत िोतिैं और ज्ञान भी उसी के अनुरूप प्रस्फुहटत िोता िै। तब ये सभी भाग भभन्न स्वर न रिकर समस्वर बन जाते िैं।

सच्चेज्ञान और सच्चेकम िका उद्भव भगवान् ्के प्रनत समवपति हृदय के द्वारा िी िो सकता िै अन्यथा अन्य ककसी तरीके से वे पूरी तरि प्रस्फुहटत िो िी निींसकते। जब पराभजकत आ जाती िै तभी हदव्य कम िऔर हदव्य ज्ञान संभव िैं अन्यथा निीं। यिी चेतना की वि जस्थनत िै जजसमें व्यजकत यहद घोर से घोर कम िभी करे तो भी वे उसे बाधँते निीं और न िी वि ज्ञान बंधनकारी िोता िै कयोंकक व्यजकत को अपने आप में न तो उस कम िसे कुछ िेतु भसद्ध करना िोता िै और न िी उस ज्ञान से। यहद भजकत न िो तो कम िऔर ज्ञान के बािरी स्वरूप भले जो भी कयों न िों, चािे ककतनेभी सूक्ष्म रूप से िी कयों न िों परंतु वे रिते िैं केवल अिं की तुजष्ट के साधन िी। इसीभलए भजकत आने ेपर सच्चा ज्ञान तो स्वयमेव िी आ जाता िै कयोंकक भजकत तो ज्ञान की पररणनत िै और संपूण िकमों का आधार िै। अन्यथा जजसे िम भजकत किते िैं वि तो भगवान् ्की निीं अवपतु अपनेअिं की िी भजकत िोती िै जजसे िम अनेक सुंदर-सुंदर नामों से सजा देते िैं। परंतुजब व्यजकत अपनेआप को पूरी तरि श्रीमाताजी के िाथों में सौंप देता िै तब वे िी उसके भलए ज्ञान, कम िआहद जो भी सच्चेरूप से आवश्यक िैं वे स्वयं िी उमपन्न कर देती िैं और उसे माग िपर आगे ले चलती िैं। जब एक बार व्यजकत को यि सच्ची समझ आ गई कक एकमात्र श्रीमाताजी िी जीवन में अनुगमन करने योग्य िैं और बाकी सब तो ननरथकि िै, तो यिी परम ज्ञान िै। इसके बाद तो केवल व्याविाररक तौर पर इस ज्ञान को मन, प्राण आहद के माध्यम से अभभव्यकत करनेका ववषय रि जाता िै, वास्तव में जो मूलभूत काम िै वि तो िो िी जाता िै। िालाकँक शुद्ध रूप से इसे अभभव्यकत करने ेमें भी अपनी भीषण चुनौनतया ँिैं, परंतु वे ेसभी चुनौनतया ँएक सिी हदशा में िोती िैं अन्यथा तो व्यजकत को हदशा िी प्राप्त निीं िोती और जीवन ननरुद्देश्य िी बीत जाता िै। इसभलए इस सब का िमारे भलए व्याविाररक संदेश यिी िै कक िम अपनी सारी शजकत-सामथ्य,ि िमारे सारे गुण-अवगुण, अपना सवस्ुव अपनेअिं की बजाय श्रीमाताजी की सेवा में समवपति कर दें, अन्यथा तो साधना भी अपने आप में एक बोझ िी िै जो कक जजतना एक सामान्य मनुष्य स्वयं पर केंहरत निीं िोता उससे अधधक एक साधक को स्व-केंहरत बना देती िै। सामान्यतः साधनामय

जीवन व्यतीत करने ेके नाम पर प्राण अपनेव्यापार का और अधधक प्रसार कर देता िै कयोंकक तब व्यजकत पिले की अपेक्षा और अधधक आममाभभमान से फूल उठता िै कक वि दूसूरों से श्रेष्ठ िै। गुरु के पास भी यहद वि जाता िै तो इस भाव से कक उसे गुरु से कया आजममक, मनोवैज्ञाननक, प्राणणक लाभ प्राप्त िो सकता िै। इसके अनतररकत तो कोई अिंकेंहरत व्यजकत कुछ सोच िी निीं सकता। इसमें कोई दोष की बात भी निीं कियोंकक िमारा प्राकृत गठन िी इस प्रकार का िोता िै कक प्रारंभ में त्रबना लेन-देन, लाभ–िानन या स्वकेंहरतता के भाव के िम और कुछ कर या सोच िी निीं ंसकते। इसीभलए जो साधना पथ पर आ जाते िैं ऐसे िजारों व्यजकतयों में से भी कोई ववरला िी वास्तव में ककसी सच्ची जस्थनत तक पिुँचता िै।

अब ज्ञान को आधार प्रदान करने ेके भलए श्रीभगवान् ्घोवषत करते िैं कक वे िी सब कुछ िैं। एक सच्चे दृजष्टकोण से देखें तो जब तक व्यजकत को दूसूरे के अंदर भगवान् ्के या कफर अपनेइष्ट के दशनि निीं ंिोतेतर तक तो वि केवल भ्रम में िी िै कयोंकक प्रभु के अनतररकत तो अन्य ककय की कोई स्वतंत्र सिा िै िी निीं। इसभलए ककसी दूसूरे का भला करने ेका भी एकमात्र जो सच्चा तरीका िै और वि िै अपनेआप को पूण िरूप से भगवान् ्को, अपने गुरु को समवपति कर देना। यहद व्यजकत सब में परमाममा का दशनि न कर के अपनेसे भभन्न सिा देखता िै तो यि तो स्वयंकी सिा के मूलभूत समय का िी ननषेध िै, खंनि िै। िालाकाँक सवत्रि परमाममा के दशनि िोने ेका अथ िियि निीं ंिै कक तब कोई पृथृकता का बोध िो निींरिता और सभी कुछ आपस में इस प्रकार घुल-भमल जाता िै मानो कोई वैववध्य िी न रि िो। सवत्रि परमाममा के दशनि िोनेकी बात का िमारी बुद्धध सामान्यतः ऐसा िी अथ ि लगाती िै। वास्तव में तो जब व्यजकत को सवत्रि वि दशनि प्राप्त िोता िै तभी वि सच्चे रूप से िर चीज के साथ व्यविार और किया कर सकता िै। और इसीभलए ऐसा व्यजकत सवभिूतों के सच्चे हित में रत रि सकता िै। चूंकक भगवान् ्िी सभी कुछ के आधार िैं इसभलए जब व्यजकत अपनेआप को उन्िेंसमवपति कर देता िै और उन्िींकी सेवा में रत रिता िै तो स्वतः िी वि तो सभी कुछ के कल्याण में रत िै।

प्रश्न : इसका अथ ििै कक गृिस्थ व्यजकत तो कभी भजकत कर िी निींसकता?

उत्तर : कया नरसी मेिता, मीराबाई, गुरु नानक देव आहद के पररवार निीं थे?े श्री रामकृष्ण परमिंस के पररवार निीं था? परंतु जो पररवार में िी भलप्त रिता िै उसकी तो भजकत पररवार के प्रनत िी िुई। अब ऐसा कौन व्यजकत िै जो त्रबना पररवार का िो। िम अनेकानेक ऐसे उदािरण पाते िैं जो कक पररवार में रितेिुए भी भगवान् ्के भकत िुए िैं। यि चीज इस पर ननभरि निीं करती कक व्यजकत का पररवार िै या निीं, या कफर वि ककस प्रकार की बािरी कियाकलाप करता िै, परंतु सब कुछ इस पर ननभरि करता िै कक चेतना का स्तर और उसकी जस्थनत कया िै, पररवार के प्रनत उसका दृजष्टकोण कया िै। इसभलए जो भगवान् ्के भकत िोतेिैं उनकी चेतना पररवार में रितेिुए भी परमाममा से जुडी िोती िै। कया िम गुरु नानक की चेतना पररवार से बंधी िुई कि सकतेिैं या कफर मीराबाई की चेतना की तुलना ककसी सामान्य घरेलू स्त्री की चेतना से कर सकते िैं।

प्रश्न : परंतु चेतना की वि जस्थनत भी तो तभी िोगी जब परमाममा की कृपा िोगी। अपनेआप तो वि चेतना आ निींजाती।

उत्तर : इस कृपा शब्द की ज़्ाि में िम अपनी अकमण्यिता को िी उधचत ठिराने का प्रयास करते िैं। अब व्यजकत किेगा कक उसके ऊपर तो भगवान् ्की कृपा निीं िै इसभलए वि भजकत ककस प्रकार करे। यि तो भगवान् ्के प्रनत दुभाुविना की बात िुई। यहद व्यजकत में इतनी सच्चाई िो कक बुद्धध से उसे जो कुछ समझ में आ जाता िै उसे वि अपनी यथाशजकत चररताथ िकरने ेका प्रयास करता िै पर अभी तक भजकत का उदय न िोने ेके कारण वि निीं ं जानता कक उसका अनुसरण ककस प्रकार करे, तो यि एक अलग ववषय िो सकता िै। परंतुकोई एक व्यजकत भी यि निींकि सकता कक उसे बुद्धध से जो चीज समझ आ गई िै उसे चररताथ िकरने के भलए वि प्रयमन निीं ंकर सकता। यहद एक बार उसके समझ में आ जाए कक अमुक काम करनेयोग्य िै तो उसे उसकी चररताथतिा के भलए आवश्यक संकल्प और साधन आहद जुटाने चाहिये। सच्चाई इसमें िै कक जब एक बार व्यजकत को कुछ समझ में आ जाए तब उसे करने का वि यथाशजकत प्रयास करे। यहद भशक्षक ववद्याथी को िल करने ेके भलए गणणत का कोई सवाल दें परंतु ुवि यि कि कर प्रयास करने ेसे िी इंकार कर दे कक गुरुजी की कृपा िोगी तो प्रश्न स्वयंिी िल िो जाएगा तो यि एक त्रबल्कुल बेतुकी बात िोगी। इसभलए सामान्यतः ये जो आम प्रचलन की बातें िैं वे केवल ऐसे बिानेमात्र िैं जजनकी ज़्ाि में िम अपनी दुभाुविना और अपनेआलस्य को और अपनी अकमण्यिता की वृवि को नछपाते िैं। यहद िमारा कोई वप्रय या सगा-संबंधी गंभीर रूप से बीमार िोता िै तब िम उसे बचाने के यथासंभव प्रयास करते िैं, और तब िम कृपा शब्द का दुरुपयोग करते िुए यि निीं किते कक भगवान् ्की कृपा िोगी तो वि स्वयंिी स्वस्थ िो जाएगा। इसी प्रकार जिाँ किीं ंिमारे ननजी लाभ या िानन ननहित िोते िैं उन सब चीजों में िम अपना पूरा मनोयोग लगा देते िैं। ऐसे मामलों में िम कभी ककसी को कृपा के सिारे चीजों को छोड़ते निीं ंदेखते। परंतु जिाँकिींव्यजकत आवश्यक श्रम से बचना चािता िै विींअधधकांशतः वि इस शब्द का दुरुपयोग करता िै। भगवान् ्तो िर जस्थनत में कृपा िी करते िैं। िमारे भलए जो लाभदायक िोता िै उसमें भी उनकी उतनी िी कृपा िोती िै जजतनी की उसमें जो िमें िाननकारक प्रतीत िोता िै। इसभलए कृपा तो एक ऐसी मूलभूत चीज िै जो िमारी ककन्िींभी बािरी अवस्थाओं पर ननभरि निीं करती। वि तो िर िालत में, िर चीज के पीछे, िर घटना के पीछे स्वतः ववद्यमान िै। इसभलए िमारे सभी ग्रंथों में िम देखतिैं कक भगवान् ्के तो अनुग्रि में भी उतनी िी कृपा िोती िै जजतनी कक संिार में। भगवान् ्जजसका संिार करते िैं उसकी जैसी सद्गनत िोती िै वैसी तो योधगयों-तपजस्वयों के भलए भी दुलुभि िै। इसभलए भगवान् ्की कृपा तो ननववववाद रूप से िर िालात में िै िी कयोंकक वे स्वयं िी तो ववद्यमान िैं इसभलए वे अपनेआप के ऊपर कृपा के अनतररकत और कुछ कर भी कया सकतिैं। वास्तव में तो िमारे चारों ओर कृपा के समुर भरे िुए िैं परंतु िमनेअपनेआप को सतकतितापूवकि इतना बंद कर रखा िै कक किीं ंसे कृपा की कोई बूँद प्रवेश न करने ेपाए। इसभलए करनेका काम केवल एक िी िै कक िमने जिे पर केंहरत िोकर जो द्वार बंद कर रखे िैं उन्िें खोलें ताकक कृपा और प्रकाश िमारे अंदर प्रवेश कर सकें।

अहं क्रतरजहं यज्ञः स्विािमहमौषधम् ्।

मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमस्ननरहं हजतम् ्।। १६ ।।

१६. म ैंयज्ञकमु ुहूँ, म ैंही यज्ञ हूँ, म ैंही अन्न की भेंट (र्िमा) हूँ, म ैंहो अस्ननदायी औषधि हूँ, म ैंही मंत्र हूँ, म ैंही घृत हूँ, म ैंही अस्नन हूँ और म ैंहो आहजनत हूँ।

कम िका माग िभी आममननवेदनरूपी उपासना और भजकत में पररणत िो जाता िै कयोंकक यि िमारे संकल्प और उसकी सारी कियाओं का उन एकमेव पुरुषोम के प्रनत पूण ियज्ञ अथात्ि्समपणि िोता िै। बाह्य वैहदक यज्ञ-अनुष्ठान एक शजकतशाली प्रतीक िै, जो िो भले िी अल्प उद्देश्य के भलए पर कफर भी स्वगमुिखी उद्देश्य की ओर कारगर िै; परंतु वास्तववक यज्ञ तो वि आंतररक िोम िै जजसमें 'समय भगवान'् स्वयं िी यज्ञ-किया, यज्ञ और यज्ञ को प्रमयेक बस्तु और घटना बन जाते िैं। इस आंतर यज्ञववधध की सारी कियाएँ और अनुष्ठान िमारे अन्दर उन्िीं की शजकत का आमम-ववधान और आममाभभव्यजकत िोते िैं। यि शजकत िमारी अभीप्सा के द्वारा अपनी ऊजिा के स्रोत की ओर ऊपर बढ़ती जाती िै। हदव्य अंतःवासी स्वयंयज्ञ की अजग्न और विव बनते िैं. कोल िैं। अनन भगवन्मुखी संकल्प िै और स्वयं भगवान् ्िी िमारे यि संकल्प िोते िैं। और, िधथ भी मिारी प्रकृनत तथा सिा के अन्तःस्थ भगवान् ्का िी रूप और शजकत िै; जो कुछ उनसे प्राप्त िुआ िै वि उन्िीं के समस्वरूप, उन्िींके परम समय और मूलस्रोत की सेवा और पूजा में भेंट चढ़ाया जाता िै। हदव्य मनीषी-कवव स्वयं िी पववत्र मंत्र बन जाते िैं; यि उन्िींकी सिा की ज्योनत िै जो भगवन्मुखी ववचार के रूप में अपने-आप को अभभव्यकत करती िै और उस प्रकटनकारी तेजोदीप्त शब्द (मंत्र) में प्रभावी िोती िै जो कक ववचार के गूढ़ रिस्य को मंडित ककये रिता िै...

यि सारा तो वैहदक प्रतीक िै कक ककस प्रकार िमारा समस्त कम ियज्ञ रूप िोकर भगवान् ्को समवपति िो जाता िै। 'अजग्न' भागवत् ्संकल्प का प्रतीक िै। अजग्न में िवव समवपति करने का अथ िै कक व्यजकत अपनी इच्छाओं-कामनाओं आहद को उस भागवत् ्संकल्प के अंदर समवपति करता िै। कुछ सामग्री ऐसी िोती िै जो अजग्न में िालनेपर धुआँ पैदा करती िै। िमारे आवेग और अंध संवेग िी यि धुआँ िै। इसभलए ऐसी सामग्री को भली-भानाँत जलाने के भलए घृत की आवश्यकता िोती िै। घृत िै ववशुद्धधकृत बुद्धध। घृत िमें भमलता िै 'गो' अथात्ि्प्रकाश से। जब ववशुद्ध बुद्धध िोगी तभी िमारी अंध वृवियों का भगवतोन्मुख िवन िो सकता िै अन्यथा तो ये अंध वृविया ाँअपने-अपनेननहित ितुओंको छोड़ने ेके भलए कभी तैयार निीं ्िोतीं और सदा अपनिी तरीके से चीजों को चािती िै और केवल अपनी िी तुजष्ट चािती िै। जब ववशुद्ध बुद्धध आती िै तब इन अंध वृवियों पर अंकुश लगने लगता िै और वि बुद्धध इन सब को उस भागवत् ्संकल्प में िोम कर देती िै जो यिा ाँअभभव्यकत िोना चाि रिा िै। िमारा सच्चा ववकास, िमारी सच्ची शुद्धध तभी िोगी जब िमारी सिा अजग्न में िवन - अथात्ि् भागवत् ्संकल्प के प्रनत समवपति - िोगी। इसी से कम ियोग बन सकता िै।

भगवान् ्को समवपति िोने पर िी िमारे कम ियोग का रूप लेते िैं अन्यथा तो वे योग निीं अवपतु रोग िोते े िैं। अधधकांशतः तो िमारे कम िकेवल िमारे कामपुरुष की तुजष्ट और उसी की अभभव्यजकत िोतिैं। िमारे सभी कम िसामान्यतः ककसी कामना की पूनत िके भलए, अपने अिं की तुजष्ट के भलए, या अधधक से अधधक ककसी साजत्त्वक चेष्टा को पूरा करने के भलए ककये जाते िैं। इनमें से कोई भी कम िमें ऊपर निींलेकर जाते। इन सब की

अपनी-अपनी सीमाएँ िैं और ये उन्ीं सीमाओंके भीतर रितीैं। यज्ञ रूप से, परमाममा की ओर जानेके साधन के रूप में जब कम िककया जाता िै तब वि सच्चा कम िोता िै। पर कम िकी मुख्य ग्रंथथ िै कामना, और जब तक उस ग्रंथथ को सुलझाया निीं ंजाता तब तक सच्चा कम िसंभव निीं।

प्रश्न : पर ये कामना के ववचार आते किा ंसे िैं जबकक कई चीजें के ववषय में तो िम सोचते िी निीं ंिैं और कफर भी व्यविार में िम वैमी चीजें कर बैठते िैं?

उत्तर : जब सामान्यतः िम किते िैं कक 'िम ऐसा निीं सोचते' तो वि िम अपनी बुद्धध के बारे में किते िैं, कयोंकक वास्तव में िी िम बुद्धध से वैसी चीजें निीं ंसोच रिे िोते। परंतु िमारी बुद्धध कया सोचती िै उससे िमारी प्राणणक सिा को कोई ववशेषे सरोकार निीं ंिै। उसके अपनेननहित िेतु िोतीैं जजन्ें पूरा करने के भलए वि िमारी इंहरयों को, भावों, संवेदेनों आहद पर अधधकार करके उन्ें अपने िेतु भसद्ध करनेके काम में लेती िै। इसी कारण व्यजकत सोचता एक चीज िै परंतु वास्तव में करता कुछ और िै। इसभलए तीसरे अध्याय में भगवान् ्अजुनि को किते िैं कक 'िेमिर आममा के द्वारा ननमनकोहट के स्व को जस्थर ननश्चल कर के कहठनाई से पकिे में आने वाले कामनारूप शत्रु को मार िाल।' अिं के त्रबना कामना निीं ि सकती। अतः जब अिं, कामना, गुण और द्वंद्व रूपी प्रपंच चल रिा िोता िै तब ऐसे में यहद बुद्धध ककसी चीज का ननषेध करती िै, ककसी चीज के प्रनत अपनी असिमनत व्यकत करती भी िै तो भी उसकी कोई सुनवाई निीं ंिोती। ऐसे ककतने िी लोग िैं जो अपनी बुद्धध में तो इस ववषय में त्रबल्कुल स्पष्ट िोतीैं कक भगवान् ्की ओर जाना िी श्रेष्ठ िै परंतु कफर भी व्याविाररक रूप से उस ओर एक कदम भी निीं उठा पाते।

प्रश्न : तो जब व्यजकत में दृढ़-संकल्प िो तब कया इस तरि के कामना आहद के ववचार निींउठते?

उत्तर : ववचार तो उठते िी िैं कयोंकक जब तक उपरवी तत्त्व िमारी सिा में िोंगे तब तक कोलिाल, उपरव आहद तो िोंगे िी। परंतु संकल्प की शजकत से व्यजकत उन्ें धीरे-धीरे अनदेखा करता िै। यहद व्यजकत उन्ें अपनेसे ववजातीय तत्त्व समझ कर दूरू धकेलता िै तब तो वे उसके ऊपर अधधक िावी निीं ि पाते, परंतुयहद वि उन इच्छाओं, कामनाओं आहद को अपनी ननजी चीजें समझ कर उनमें रस लेनेलगता िै तो वे िावी िो जाती िैं। कामना आहद के ववषय में तो श्रीमाताजी किती िैं कक भले िो व्यजकत को ऐसा लगता िै कक वे उसके अपनेअंदर उमपन्न िोती िैं परंतु वास्तव में तो बािर उनका एक समुर िोता िै जजसमें से वे उठती िैं और अपनी तुजष्ट के माध्यम ढूाँढ़ती िैं। यहद व्यजकत उनको अभभव्यजकत प्रदान करनेसे इंकार करे तो एक बार तो वे ेअपनी अभभव्यजकत के भलए एिी-चोटी का जोर लगाती िैं परंतु अभभव्यजकत का अवसर न भमलने पर एक समय के बाद ननराश िो जाती िैं और उस व्यजकत को छोि देती िैं।

प्रश्न : परंतु ऐसे कुछ ववचार िोतीैं जजनके ववषय में िम न तो सोचते िैं न कल्पना िी करते िैं, वे किााँ से आते िैं?

उत्तर : वे सब िमारे धचि में जमा िुई वृवृिया ाँिैं जो कक िमारे जन्म-जन्मांतरों से अंदर जमा िुई िैं। इसीभलए तो किर्तैं कक धचिवृवृियों का ननरोध िी योग िै, कयोंकक यि एक ऐसा भण्डारि िै जजसके अंदर से िमारे पास कभी भी, कुछ भी उठ आता िै। इसभलए जब तक इस प्रकार िमारे भवन में कोई भी व्यजकत कभी भी घुस कर उपरव कर सकता िै तब तक ककसी प्रकार की शांनत की और ककसी ववकासकाय िकी तो कोई संभावना िी निीं ंिै। यि तो एक आम अनुभव िै कक जब िम ककसी समस्या के समाधान पर एकाग्र िोने ेका प्रयास कर रिे िोर्तैं तब ऐसे-ऐसे ववचार आहद उठ खडे िोर्तैं जजनसे िमारा उस क्षण दूरू-दूरू तक भी कोई सरोकार निीं ंिोता। और िम स्वयंभी ऐसे अनचािे आगंतुकों से परेशान िो जाते िैं। ये सब यांत्रत्रक वृवृिया ाँिैं जजन्िें िमारी अनुमनत की आवश्यकता निींिोती। इसी कारण धचि ककसी भी गंभीर काय िमें एक बिुत बडा बाधक बन जाता िै। िालाकाँक धचि का अपना एक औधचमय िै और िम यि निीं ंकि सकते कक चूंकक वि बाधक बन जाता िै इसभलए यहद संभव िो तो उसे ककसी भी प्रकार ननकाल कर बािर कर देना चाहिये। परमामममा का ववधान इतना अनंतववध िै कक वि िमारे ककन्िीं भी मानभसक सूत्रों की पकड में निीं ंआता। िमारा मन तो केवल एक सीधी रेखा खींचना जानता िै जबकक भगवान् ्का समय तो इतना अनंत आयामी और अनंतववध िै कक वि िमारे मन की ककन्िींभी रेखाओं की पकड में निींआ सकता। इसभलए धचि िमें ककसी भी एक रेखा या सूत्र को पकड कर आगे बढ़नेसे रोक देता िै। यहद वि िमें ऐसा करने ेसे न रोकता तो िम ककसी एक िी सूत्र को पकड कर ननःशंक रूप से बेरोकटोक ककसी एक िी हदशा में चल पडतेऔर समग्र समय से बिुत दूरू ननकल जाते। इसभलए धचि द्वारा बार-बार बाधा िाले जानेके कारण िमारे हृदय, बुद्धध आहद भागों में कुछ अधधक पररपकवता आती िै जजसके कारण िम कुछ आगे का माग ि तय कर पाते िैं। और यि प्रकिया उिरोिर चलती रिती िै। धचि की किया के बाद भी िम देख सकते िैं कक ककस प्रकार एकांगी और असहिष्णु प्रकार के ववचार भारी ववनाश का कारण बने िैं। और यहद उसकी किया न िोती तब तो उस ववनाश की कोई सीमा िी न िोती। सारा इनतिास िमें इस बात के साक्ष्य देता िै। ककतनी-ककतनी एकांगी ववचारधाराएँ, ककतने–ेककतनेअसहिष्णु धम,ि मत, संप्रदाय आहद िुए िैं जजन्िोंने इनतिास में अपने काले धब्बे छोडे िैं। इसभलए जजस प्रकार का िमारा गठन िै उसमें आवश्यक िी िै कक िमें अपनी ककसी भी छोटी सी मानभसक संरचना को िी सब कुछ मान बैठने और उसे सभी पर थोपनेके भलए स्वतंत्र निींिोना चाहिये। इसीभलए धचि कदम-कदम पर उसमें अपनी बाधा िालता िै। िो सकता िै कक व्यजकत ककसी एक प्रकार के सूत्र में िी अपनेआप को बाधाँना पसंद करे, परंतु जो परमामममा स्वयंिी यि जीव बना िै उसे ऐसी कोई भी कैद कैसे रास आ सकती िै, वे इससे संतुष्ट कैसे िो सकते िैं। इसीभलए जब वे िमारी संरचनाओं को तोडतेिैं तो िम उसका ववरोध करते िैं, प्रनतकियाएँ करते िैं। अतः, इस ववषय को इस दृजष्टकोण से भी देखा जा सकता िै।

प्रश्न : गीता ने यिाँयज्ञ का प्रतीक हदया िै। यहद यि एक अध्यामममपरक प्रतीक िै तब कफर बाह्य यज्ञ-अनुष्ठान का कया मित्त्व िै?

उत्तर : यज्ञ के आंतररक प्रतीक और उसके बाह्य अनुष्ठान के पीछे श्रीअरववन्द ने बिुत सी चीजें बतलाई िैं। ववशद चचाि के भलए तो यि एक बिुत िी ववशाल क्षेत्र िोगा परंतुकुछ त्रबंदुओंपर िम अवश्य ध्यान दे सकते िैं। जजस समय वेदों की रचना िुई वि एक अंतबोधामममक काल था जब सामान्य मनुष्य मानभसक ववकास में से निीं

गुजरा था। इसभलए जैसा कक श्रीअरववन्द बतातेिैं कक ऋवषयों ने परम समयों को वेदों में एक ऐसी भाषा में रखा जो प्रतीकाममक थी और जजसे केवल कोई दीक्षक्षत िो समझ सकता था जबकक ककसी सामान्य सांसाररक व्यजकत के भलए तो वि केवल बाह्य अनुष्ठान या कफर केवल बिारी ववषयों की िी चचाििथी। यि तो एक बात िो गई। परंतु यहद केवल अध्याममपरक अथ िििी एकमात्र चीज िोती तब तो िमारी संस्कृनत में वैहदक काल से िी बाह्य अनुष्ठान आहद को जो मित्त्व हदया जाता रिा िै उसका कोई औधचमय िी निींिोता। यिा ंतक कक वेदमंत्रों के उच्चारण की शुद्धता सुननजश्चत करने के भलए पूरे भारत में लाखों लोग लगे थे ताकक एक मात्रा या स्वर तक में भी कोई त्रुहट न िोने पाए। साथ िी पूरे के पूरे ग्रंथ केवल इन ववषयों पर रखेंचे गए थे कक ककस प्रकार त्रबल्कुल सटीक रूप से बाह्य अनुष्ठानों को ककया जाए। बाह्य यज्ञ-कम िके छोटे से छोटे ब्यौरों तक के भलए ननयम-ववधानों की रचना की गई और जो उस क्षेत्र में आगे जाना चािता था उसे अनेकों वषों तक सतकितापूवकि उन सब ननयम-ववधानों की भशक्षा दी जाती थी और यि सुननजश्चत ककया जाता था कक वि कभी कोई त्रुहट न करने पाए। एक अथ िमें ज्ञानकाण्ड् की बजाय कमकिाण्ड् पर अधधक बारीकी से ध्यान हदया जाता था। इसके पीछे एक बिुत िी गूढ़ कारण िै। परमाममा का समय इतना ववशाल िै कक वि िमारे ऊँचेसे ऊँचेज्ञान की पकड़ में निींआ सकता। यहद ज्ञान से िी वि समय पूणतिया गमय िोता तब तो कम िकी कोई आवश्यकता िी निीं थी। सारा कमकिाण्ड् अपने आप में भीतरी किया का प्रतीक िै। और जब िम कोई अनुष्ठान, कोई किया आहद करते िैं तो िमारे मजस्तष्क के अनतररकत अन्य बिुत से भाग िैं जो जाने-अनजाने उस समय के संपकि में आते िैं। साथ िी मंत्रोच्चार, यज्ञ-अनुष्ठान आहद सृजृष्ट-किया की प्रतीकाममक रूप से आवृवृ करते िैं इसीभलए इन कियाओं से िमारी सिा का समय सुदृढ़ िोता िै। यिी एक कारण िै कक भले िम अनुष्ठानों को मानभसक रूप से न समझतेिैं और यिाँ तक कक उन्िें असभ्य या ननरथकि चीजें बतातेिैं कफर भी आज तक िमारे िर उपलक्ष्य पर ककसी न ककसी रूप में िम उनका अनुष्ठान अवश्य करते िैं। इन सबके पीछे एक बिुत िी गिरा समय ननहित िै जो िमारी बुद्धध के परे िै इसभलए भले िम इन्िें मानभसक रूप से न समझकर इन्िें नतरस्कार की दृजष्ट से देखते िों, तब भी इन सभी कियाओं का अपना बिुत भारी मित्त्व िै और ककसी न ककसी रूप में ये िमें िमारी सिा के समय के साथ जोड़ देती िैं।

वेदों की रचना ककसी मानभसक उपकरण के द्वारा निीं िुई। श्रीमाताजी अपनेअनुभव के आधार पर बताती िैं कक ककस प्रकार कोई भागवत् शजकत िमारी भौनतक सिा तक को पूरी तरि से अधधग्रिीत कर सकती िै और अपनी किया संपन्न करा सकती िै। परंपरागत भारतीय धारणा यिी रिी िै कक सृजृष्ट के आरंभ में इसी प्रकिया से वेद ऋवषयों के माध्यम से आए िैं। इसभलए उनमें जो समय ननहित िै वि आज भी उतना िी प्रयोजनीय िै।

सारा ब्रह्माण्ड् भी परमाममा का एक प्रतीक िै और जजस तत्त्व का यि प्रतीक िै उसे िमारी चेतना के अनुसार प्रकट कर देता िै। जजसकी चेतना जजतनी ववकभसत िोगी उतना िी तत्त्व उसके समक्ष प्रकट िो जाएगा। वेद परमाममा की अभभव्यजकत को समग्र रूप से प्रतीकाममक भाषा में ननरूवपत करते िैं। इसभलए यहद कोई उन मंत्रों और उन ध्वननयों के माध्यम से उसमें ननहित समय के साथ संपकि साध सके तो उसे अपने मनोववज्ञान के पीछे जस्थत ववभभन्न शजकतयों का भी रिस्य प्रकट िो जाएगा और इस अजस्तमव की गुमथी समझ में आ जाएगी और तब व्यजकत अधधकाधधक आरोिण कर सकेगा। समय पर बुद्धध का एकाधधकार निीं िै। िमारी सिा का िर भाग अपने तरीके से उसे अभभव्यकत करता िै।

वपताहममय जगतो माता िाता वपतामहः ।
वेद्यंपवित्रममोकार ऋक्साम यजरेजि च ।। १७।।

१७. म ैंइस जगत् ्का वपता, माता, िािाता, वपतामह (आददस्रष्टा) हूँ, सममत िेदों का ज्ञेय-विषय, पवित्र प्रणिाक्षर ॐ, और ऋनिेद, यजिेजद और सामिेर हूँ।

----

*अ उ म - अ स्थूल और बाह्य जगत् ्का आममा 'ववराट्' ि, उ सूक्ष्म और आन्तर तुरीय िै। आममा 'तैजस' िै, म् ्गुह्य परमचेतन सवशिजकतमिा का आममा प्राज्ञ' िै, ॐ परम,

- माण्डूक्य उपननषद्

ज्योनतमयि भगवान् ्स्वयंिी वेद िैं और वेदों के प्रनतपाद्य भी। वे ज्ञान और ज्ञेय दोनों िी िैं। ऋक्, यजुर्, ् साम - अथात् िि् वि प्रकाशमय शब्द (मंत्र) जो बुद्धध को ज्ञान की ककरणों से उद्बुद्ध कर देता िै, कम िके उधचत ववधान के भलए शजकतमय शब्द (मंत्र), आममा की हदव्य कामना को चररताथ िकरने ेके भलए शान्त और सामंजस्यपूण िप्राजप्त का शब्द (मंत्र), - स्वयंिी रह्म िैं, अधीश्वर िैं। हदव्य चेतना का मंत्र अपना प्रकटनकारी प्रकाश ले आता िै, हदव्य शजकत का मंत्र अपना कायभिसद्धध का संकल्प ले आता िै और हदव्य आनन्द का मंत्र समान िी रूप से अजस्तमव के आध्याजममक आनंद की पररपूणतिा ले आता िै। समस्त शब्द और ववचार मिान् ्ॐ से िी पुजष्पत िुए िैं - ॐ, मिामंत्र, सनातन। ॐ, जो इजन्रयगमय पदार्थों के रूपों में व्यकत िै, जो सृजनशील आमम-संकल्पन की उस सचेतन िििा के रूप में व्यकत िै जजसके कक बाह्य रूप और पदाथ िरूपक िैं, जो पीछे अनन्त की आमम-संयभमत धीर अनतचेतन शजकत में व्यकत िै, वि ॐ वस्तु और ववचार, रूप और नाम का परम मूल, बीज और गभस्थिान िै, - वि स्वयंिी, पूण िरूप से, परम इजन्रयातीत अथवा अग्राह्य िै, मूल एकमव िै, वि कालातीत रिस्य िै जो समस्त अभभव्यजकत से ऊपर पुरुषिोम' में स्वतः-भसद्ध िै। अतः यि यज्ञ एक साथ िी कम,ि ज्ञान और भजकत तीनों िै।

गनतभुता प्रभःज साक्षी ननिासः शरणं सहृजत् ्।
प्रभिः प्रलयः मथानंननिानंबीजमव्ययम् ्।। १८ ।।
१८. म ैंपथ और लक्ष्य हूँ, म ैंही िारण करनिेाला, मिामी, साक्षी, ननिास-मथान और आश्रय या शरण हूँ, म ैंही दहतकारी समत्र, उत्पवत्त, स्मथनत और प्रलय हूँ, म ैंही विश्राममथल और सभी का अविनाशी बीज हूँ।

तपाम्यहमहं िषं ंननगृह्णाम्यजत्सृजासम च ।
अमृतं ंचिै मृत्यश्जच सदसच्चाहमजुनुज ।। १९।।

१९. हे अजुजनु! म ैंऊष्णता प्रदान करता हूँ, म ैंिृसृष्ट करता हूँ और उसे रोकता हूँ म ैंही अमरता हूँ और मृतूयजभी हूँ, और म ैंही सत् ्और असत् ्हूँ।

जो जीव इस प्रकार जानता, भजकत करता और अपनेसारे कम िअपनी सिा के मित् ्आमम-समपणि में शाश्वत को अपणि कर देता िै उसके भलये ईश्वर सब कुछ िै और सब कुछ ईश्वर िै।.... जजसने अपने-आप को शाश्वत को समवपति कर हदया िै उसे जगत्,् दैव और अननजश्वत घटना-चि िरा निीं सकता और न इसका दु:ख-संताप और अशुभु का पक्ष उसे व्याकुल िी कर सकता िै। जो जीव इस प्रकार देखता िै उसकी दृजष्ट में ईश्वर िी माग िैं और ईश्वर िी उसकी यात्रा का लक्ष्य िैं, एक ऐसा माग िजजसमें कोई आमम-नाश निींिोता और एक ऐसा लक्ष्य जजस तक उसके उधचत रूप में मागदिभशति चरण ननश्चय िी प्रनतक्षण पिुाँच रिे िैं। वि ईश्वर को अपनी और सारी सिा का स्वामी, अपनी प्रकृनत का धारक, प्रकृनतस्थ आममा का पनत, उसका प्ेरमी और पोषक, अपनेसब ववचारों और कमों का अंत:साक्षी जानता िै। ईश्वर िी उसका घर और देश िै, उसकी सब वासना-कामनाओं का आश्रय-स्थान िै, सब प्राणणयों का घननष्ठ तथा हितकारी ज्ञानी भमत्र िै। दृश्य जगत् ्के सारे रूपों की उमपवि, जस्थनत और प्रलय उसकी दृजष्ट और अनुभूनत में विी एकमेव ईश्वर िै जो अपनेकालगत आममाववभािव को उसकी ननरंतर पुनरावतनि की पद्धनत से बािर ले आता, बनाए रखता और कफर अपने अन्दर खींच लेता िै। जो कुछ भी संसार में उमपन्न िोता और नष्ट िोता हदखाई देता िै उसका अववनश्वर बीज और मूल विी िै और विी उस सबके अव्यकत भाव का धचरंतन ववश्रांनत-स्थान िै।.... वि सब जजसे िम 'सत्' ् किते िैं, विी िै और वि सब जजसे सभी 'असत्' ् मानते िैं, वि भी अनन्त के अन्दर नछपा िुआ िै और उस परम अननवचिनीय की रिस्यमयी सिा का एक भाग िै।

त्रैविद्या मांसोमपाः पूतपापा यज्ञैररष्ट्वा मिगुनुतं ंप्राथुयुन्ते ।
ते ेपण्जयमासाद्य सरेजन्द्रलोकमश्नस्न्त ददव्यास्न्दवि दिभोगान् ्।। २० ।।

२०. तीनों िेदों को जाननेिाले, सोमपान करनेिाले, ननष्पाप मनष्जय यज्ञों के द्ारि मेरी पूजा करके मिगु ुको प्राप्त करने ेकी प्राथुना करते हैं; िे अपनेपजण्यों के द्ारि इन्द्र के ददव्य लोकों को प्राप्त करके मिगु ुमें दिताओ के ददव्य भोगों को भोगतेहैं।

ते तं ंभक्जत्ाि मिगुलुोकं विशालं क्षीणे पण्जये मत्युलुोकं विशस्न्त ।
एिं ंत्रयीमुमुनप्रजपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते।। २१ ।।

प्र२१. मिगुलोकमृधिमी भोगकर क्षपविणपलामें समजि ल क्षीण हो जानेपर मत्युलुोक में लौट आते हैं। इस प्रकार िेदत्रय में प्रनतपाददत सद्गणजों का आश्रय लेकर, अपनी कामना की तृवृत्त को खोजते हजए िे जन्म-मरण के चक्र में गनत करते हैं।

एकमात्र परम ज्ञान और भजकत के अनतररकत कोई भी चीज, समा आमम-ननवेदन और समपणि के अनतररकत अन्य कोई भी माग िमें उन परम तक निीं ले जाएँगे, जो कक सब कुछ िै। अन्य धम,ि अन्य भजन-पूजन, अन्य ज्ञान, और साधन भी अवश्य िी अपने-अपनेफल देनेवाले िैं, पर वे फल अल्पकालीन िोते िैं और केवल दैवी प्रतीकों और रूपों के भोग देकर िो समाप्त िो जाते िैं।.... इसभलए प्राचीन समय के कमकािण्िी वेदत्रयी के बाह्याथ िको सीखता, स्वयं को पापों से मुकुत कर पववत्र करता, देवताओं के संपकिजननत सुधा का पान करता और यज्ञ-यागाहद तथा पुण्य कमों द्वारा स्वग िके भोगों को पाने का प्रयमन करता था। जगत् के परे ककसी परम वस्तु में यि दृढ ववश्वास और ककसी हदव्यतर लोक का यि अन्वेषण मरणोपरान्त जीव को स्वग िके सुख-भोगों को प्राप्त करने की सामथ्य िप्रदान करता िै, जजस पर उसकी श्रद्धा और उसकी चेष्टा केंहरत थे: परन्तु विाँसे जीव को कफर से ममयलिोक में आना पिता िै, कयोंकक जीवन के वास्तववक उद्देश्य को पाया और उसे चररताथ ि निीं ककया गया िोता िै। अन्यत्र निीं, इसी लोक में, परमोच्च ईश्वर को पाना िोता िै, जीव की अपूण िभौनतक मानव-प्रकृनत में से उसकी दैवी प्रकृनत का ववकास करना िोता िै और ईश्वर, मनुष्य और जगत् के साथ एकमव के द्वारा सिा के समग्र व्यापक समय को ढूँढ़ ननकालना, उसे जीना और उससे जीवन को प्रमयक्ष रूप से ववलक्षण और अद्भुत बनाना िोता िै। उसी से िमारे जन्म-मरण का लंबा चककर पूरा िोकर िम परम फल पाने के अधधकारी बनते िैं; मानव जन्म के द्वारा जीव को यिी सुअवसर प्रदान ककया जाता िै, जब तक इसका प्रयोजन पूण िनिीं िोता तब तक जन्म-मरण का चककर रुक निींसकता।

जब तक इस पाधथवि जगत् में प्रभु का प्रयोजन पूण िनिीं िोता तब तक जन्म-मरण रुक निीं सकता। व्यजकत चूँकक अपनेअिं के दृजष्टकोण से देखता िै इसभलए इस चककर से छूट ननकलना चािता िै, परंतु जब स्वयं परम प्रभु िी जीव रूप से इस ववकासिम में ककसी प्रयोजन भसद्धध िेतु आए िैं तो वे अधूरे काय िसे संतुष्ट कैसे िो सकतिैं। अिमाममक चेतना को यि ववश्व-प्रपंच जैसा लगता िै वैसा अवश्य िी परम प्रभु को त्रबल्कुल भी निीं लगता, इसभलए उन्िें इसमें से ककसी प्रकार ननकल भागने की कोई अधीरता निीं िै।

अनन्यास्श्न्तियन्तो मांये जनाः पयुपुजासते ।
तेषांननत्यासभयक्जतानां योगक्षेमं िाम्यहम् ।। २२ ।।

अर्थः जो अपने अनन्य भाव से पूणु से मुझे ध्येय बनाकर मेरी उपासना करते हैं, मेरे साथ सदा योगयक्जत रहनेिाले उन मनष्जयों का मैं स्ितः ही सिििु कल्याण करता हूँ और उनके सभी अंतबुाह्य योग और क्षेम को मैं पूणु करता हूँ।

ईश्वर-प्रेमी जगत्–व्यवस्था में िमारे जन्म के इस परम प्रयोजन की ओर अनन्य प्रेम और भजकत के द्वारा सतत् आगे बढ़ता रिता िै, जजसके द्वारा वि परमेश्वर और जगदीश्वर को न कक अपनी अिपरक पाधथवि तुजष्ट को और न िी स्वगीय लोकों के भोगों को अपनेजीवन का, अपने धचंतंन और अपनेदशनि का संपूण िलक्ष्य बना लेता िै। अन्य कुछ निीं, केवल भगवान् को िी देखना, प्रनतक्षण उन्िींके साथ एकमव में रिना, सब प्राणणयों में उन्िींसे प्रेम करना और सब पदाथों में उन्िींका आनन्द लेना - यिी उसके आध्याजममक जीवन की संपूण िदशा

ोिती िै। उसका भगवद्दशनि उसे जीवन से ववजच्छन्न निीं करता, और न िी जीवन की पररपूणतिा का कोई अंश वि खोता िै; कयोंकक भगवान् ्स्वयंउसका सिज िी सवविवध कल्याण साधधत करने ेवाले और उसका अंतबाह्यि सारा योग और क्षेम विन करनेवाले बन जाते िैं, योगक्षेमं विामयिम्।् स्वगि–सुख और पाधथवि सुख तो उसकी ननधधयों की केवल एक छोटी छायामात्र िै; कयोंकक ज्यों-ज्यों वि भगवान् ्में ववकभसत िोता जाता िै, मयों-मयों भगवान् ्भी अपनी अनन्त सिा की सारी ज्योनत, शजकत और आनन्द के साथ उसके ऊपर प्रवाहित िोनेलगते िैं।

अधधकांशतः इसका अथ िियि लगाया जाता िै कक भगवान् ्व्यजकत के बिारी साधनों की आपूनत िकरते िैं, उसके खाने-पीनेकी, रिने-सिने

आहद की व्यवस्था करते िैं। परंतु कया िम बुद्धध से वास्तव में जानते िैं कक िमारे योग के ननविन के भलए कया-कया आवश्यक िै? यहद िमारे योग के भलए िमें कष्टों की, थपेिों की, अपयश आहद की आवश्यकता िो तो भगवान् ्िमारे भलए बेणझझक उनकी व्यवस्था कर देंगे कयोंकक वे बिे िी कृपालु िैं। परंतु इन सब चीजों को िम योगक्षेम निीं मानते। जजस भी चीज की िमारे योग के भलए आवश्यकता िै भगवान् ्उस सब की पूनत िअवश्य करते िैं, परंतु िमें ककस चीज की वास्तव में आवश्यकता िै यि ननणयि िमारे अनुसार निीं अवपतु ्हदव्य ववधान के अनुसार िोता िै। अन्यथा इस बात का व्यजकत दुरुपयोग करते िुए सोच सकता िै कक उसे कोई भी पुरुषाथ िकरने की कोई आवश्यकता निीं।

येऽप्यन्यदेिता भक्ता यजन्ते श्रद्ियान्विताः ।
तेऽवप मामेि कौन्तेय यजन्त्यविधिपूिकम् ्।। २३ ।।

२३. हे कजन्ती पत्रज! जो भक्त श्रद्िा से यक्जत होकर अन्य देिताओं के सलये यज्ञ करते हैं िे भी मेरे ही सलये यज्ञ करते हैं; ककंतजउनका यह यज्ञ यथाथु ्विधि के अनसजार नहींहोता।

अहं दह सिियुज्ञानां भोक्ता च प्रभरेजि च ।
न त जमामसभजानस्न्त तत्त्िेनात श्ियिस्न्त ते ।। २४।।

२४. मियं म ैही हूँ जो सममत यज्ञों का भोक्ता और प्रभज हूँ, ककन्तज िे मझ्ेयथाथ ुतत्त्ि में नहीं जानते और इस कारण च्यतज हो जाते हैं।

सभी सच्चेधाभमकि ववश्वास और अभ्यास अथवा साधना यथाथ िमें एकमेव परम और वैजश्वक ईश्वर की खोज िैं; कयोंकक वे ेसदा िी मनुष्य के यज्ञ और तप के एकमात्र स्वामी िैं और उसके प्रयास और उसकी अभीप्सा के अनन्त भोकता िैं। पूजा-अचनिा का रूप चािे ककतना िी छोटा या नीचा कयों न िो, परमेश्वर की कल्पना चािे ककतनी िी सीभमत कयों न िो, आममदान, श्रद्धा-ववश्वास, अपनेी अिंकार की पूजा के आवरण और ज़ि-प्रकृनत के प्रनतबंधों के परे पिुँचने ेका प्रयास चािे ककतना िी संकुधचत कयों न िो, कफर भी यि मनुष्य की आममा और सवाममा के बीच एक संपकि-सूत्र बन जाता िै और प्रमयुिर भमलता िी िै। तथावप यि प्रमयुिर, आराधना और

अपणि से भमलनेवाला प्रनतफल ज्ञान, श्रद्धा और कम िके अनुसार िी िोता िै, इनकी मयादिाओं का वि अनतिम निीं ंकर सकता, और इसभलए उस िमिर ईश्वर-ज्ञान की दृजष्ट से – केवल विी जो सिा और भूतभाव के समग्र समय को प्रदान कर सकता िै - यि ननमन कोहट का आममोमसग,ि आममोमसग िके सच्चेऔर परम ववधान के अनुसार निीं िोता। यि आममोमसग िया यज्ञ परम् ्पुरुष परमेश्वर के समग्र स्वरूप और उनके आममाववभावि के सच्चेतत्त्वों के ज्ञान पर प्रनतजष्ठत निीं ंिोता, अवपतु ुअपने-आप को बाह्य और आंभशक रूपों से िी संलग्न कर लेता िै, न माम् ्अभभजानजन्त तत्त्वेन । अतः इसके द्वारा िोनेवाला आममदान (यज्ञ) भी अपनेलक्ष्य में सीभमत, िेतु में भारी रूप से अिभावयुकत, कम िऔर दान-किया में आंभशक और अशुद्ध या अववधधपूवकि िोता िै, यजजन्त अववधधपूवकिम्।्

यास्न्त दिव्रता दिान् ्वपतृन्यास्न्त वपतृव्रताः ।
भूतानन यास्न्त भूतेज्या यास्न्त मद्यास्जनोऽवप माम् ्।। २५।।

२५. जो दिेताओं की पूजा करते हैं िे दिेताओं को प्राप्त होते हैं, वपतरों की पूजा करनेिाले वपतरों को प्राप्त होते हैं, भूतों के सलये यज्ञ करनेिाले भूतों को प्राप्त होतेहैं; ककन्त जमेरे उपासक मझेप्राप्त होतेहैं।

भगवान् ्का समग्र दशनि एक समग्र सचेतन आमम-समपणि द्वारा िी साधधत िोता िै; शेषे सब तो उन चीजों को प्राप्त करता िै जो अपूण िऔर आंभशक िैं और उसे उन्िें प्राप्त करने ेके बाद विाँसे पुनः पनतत िोकर िमिर खोज और ववशालतर ईश्वर-अनुभव में अपने-आप को अधधक ववशाल बनानेके भलए लौट आना पिता िै। परन्तु परम् ्पुरुष और ववश्वाममपुरुष को िी अनन्य रूप से और संपूण िरूप से प्राप्त करने का यमन करना उस सब ज्ञान और फल को प्राप्त िोना िै जजससे अन्य माग िप्राप्त करातेिैं जब कक यि ाँसाधक ककसी एक िी पिलूसे सीभमत निीं रिता, तथा वि भगवान् ्के समय को सभी पिलुओंमें अनुभव करता िै। इस प्रकार का यमन परम् ्पुरुषोिम की ओर आगे बढ़ता िुआ भगवद्-सिा के सभी रूपों को अंतननिित करता िै।

पत्रं ंपष्ुपं ंिलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छनत ।
तदहं भक्त्यपजहृतमश्नासम प्रयतात्मनः ।। २६।।

२६. एक पत्र, एक पष्ुप, एक िल, जल, जो कजछ भी व्यस्क्त भस्क्तपिूवकु मझेअपुणु करता है, उस यत्नशील आत्मा के द्िारा िह प्ेरेम-भस्क्त यक्जत भेंट मझेज ेमिीकार है।

.....केवल कोई समवपति बिारी भेंट िी निीं िै जो इस प्रकार प्ेरेम और भजकतपूवकि दी जा सकती िै, अवपतु िमारे सब ववचार, िमारी सभी भावनाएँ और संवेदन, िमारी सब बाह्य कियाएँ और उनके रूप एवं ववषय भी शाश्वत के प्रनत ऐसी भेंट िो सकतेिैं। यि सच िै कक एक ववभशष्ट काय िका या का के ककसी ववशेषे रूप का अपना मित्त्व िोता िै. यिा ाँतक कक अमयधधक मित्त्व िोता िै, परंतुकाय िमें ननहित भाव िी िै जो मुख्य तत्त्व िै; वि भाव िी जजसका कक वि काय िप्रतीक या मूत िअभभव्यजकत िोता िै, इस काय िको इसका संपूण िमूल्य और इसका

औधचमयपूण िमित्त्व प्रदान करता ि ै। अथवा पे्रम और पूजा के पूण िकम िमें तीन िोतिं जो एक िी अखंिसमग्र की अभभव्यजकतयाँ िोतिं, - कम िमें भगवान की कियाममक पूजा, कम िके बाह्य रूप में ककसी हदव्य दशनि एवं अन्वेषण को या भगवान् ्के साथ ककसी संबंध को प्रकट करनेवाला पूजा-प्रतीक, अ तीसरा, हृदय, अंतराममा और आममा में एकमव या एकमवानुभूनत के भलये आंतररक आराधन एवंउमकंठा। इस तरीके से िी जीवन को पूजा में पररवनतति ककया जा सकता ि ै, - इसके पीछे परामपर तथा साविभौम पे्रम का भाव और एकमव की उमकण्ठा एवं एकमव के बोध को प्रनतजष्ठत करके; प्रमयेक किया को एक प्रतीक बनाकर, ईश्वरोन्मुख भाव की या भगवान् ्के साथ समबन्ध की अभभव्यजकत बनाकर; जो कुछ िम करते ि ैं - मन की समझ, प्राण के आज्ञापालन और हृदय के समपणि - इस सब को पूजाकाय िमें तथा आममा के अन्तभमलिन में पररवनतति करके।

यि पूण िआममोमसग,ि यि एकननष्ठ समपणि िी वि भजकत ि ै जजसे गीता अपनेसमन्वय का शीष िबनाती ि।ै सारा कम िऔर प्रयास इस भजकत के द्वारा उस परम-पुरुष जगदीश्वर के प्रनत एक भेंट के रूप में पररणत िो जाता ि ै।

---

* कम िका एक ननरा भौनतक रूप िोता ि ै, पूजा-पद्धनतयों के उन रूपों के जैसा जजनमें कोई ववशेषे भाव-भंधगमा, कोई ववशेष किया आममोमसग िके भाव को अभभव्यत करने के उद्देश्य से प्रयुकत िोती ि ै। वि ववशुद्ध रूप में भौनतक िोता ि ै, उदािरणाथ,ि धूपबिी जलाना, पूजा-सामग्री को सजाकर रखना, यिाँ तक कक मंहदर की देख-भाल करना, मूनत िको सजाना आहद, इस प्रकार की सब ववशुद्ध भौनतक कियाए।ँ

दूसूरा भाग िोता ि ै एक प्रकार का मानभसक आममोमसग–िभाव जो ककये जाने वाले कम िको एक प्रतीक बना देता ि ै। तब मनुष्य धूपबिी मात्र जलानेसे िी संतुष्ट निीं िो जाता, अवपतु धूपबिी जलातेसमय वि इस किया को प्रतीकाममक बना देता ि ै जो, उदािरणाथ,ि शरीर में जलती िुई अभीप्सा का अथवा आमम-ववलोपन के भलये, अजग्न के शुद्धधकरण के भलये ककये गये आमम-दान का प्रतीक िोता ि ै। अथात्,् पिले तो बाह्य किया िोती ि ै, कफर इस किया में ननहित प्रतीक, और जो कुछ ककया जाता ि ै उसका प्रतीकाममक ज्ञान।

और अंत में, इन दोनों के पीछे, एकमव की अभीप्सा िोती ि ै; कक यि सब, ये कियाएँ तथा इनके साथ वि प्रतीकाममक स्वरूप जो तुम इन्िें प्रदान करतेिो, ये सब भगवान् ्के िमशः अधधकाधधक समीप जाने तथा अपने-आप को उनके साथ युकत िोने के उपयुकत बनाने के साधनमात्र बन सकते िैं।

किया को पूण िबनाने के भलए ये तीनों चीजें अवश्य ववद्यमान िोनी चाहिए: अथाति कोई शुद्ध भौनतक वस्तु, कोई मानभसक वस्तु, और कोई आंतराजममक वस्तु, चैमय अभीप्सा यहद तीनों में से बाकी दोनों के त्रबना कोई एक वस्तु िो तो वि किया अपूण ििोगी। सामान्यतया कदाधचत् ्िी ये तीनों सचेतन रूप में संयुकत िोती िैं। यिी बात ववलक्षण म,ै वाई एवं आमम-दान से उस किया में भाग लेती ि ै।

जब व्यजकत भगवान् ्से पे्रम करता ि ै तब उसकी किया उस पे्रम के अनुसार िोती ि ै न कक उसके अपने अिं के अनुसार। िालाकाँक चेतना के इस प्रकार के पररवतनि में सामान्यतया बिुत लंबा समय लगता ि ै परंतुइस

पररवतनि के िोने ेके बाद इसकी किया सबसे तेज और सबसे अधधक शजकतशाली िोती िै। जब िमारी बुद्धध में ककसी काय िको करने ेका ववचार उठता िै तब उसमें उसे चररताथ िकर पाने के भलए पयाप्ति शजकत निीं ंिोती इसभलए उसे चररताथ िकरने ेके भलए बिुत श्रम करना पड़ता िै। वींयहद िमारा हृदय ककसी चीज के भलए रववत िो उठता िै तब व्यजकत को उसकी ओर चलने से कोई निीं रोक सकता। त्रबना हृदय के रववत िुए ककसी प्रकार का समपणि कभी निीं ंिो सकता। इस संदभ िमें हदलीप कुमार रॉय द्वारा पूछे एक प्रश्न के उत्तर में श्री कृष्णप्रेम का ब्रा िी माभमकि उत्तर िै।

हदलीप कुमार रॉय ने पूछा, "एक और प्रश्न िै जो म ैंतुमिें पूछना चािता िूँ यहद तुम बुरा न मानो तो.... तुम देखो, इस बात पर मुझेकभी-कभी संशय िुआ िै कक कया जजस ववजय की तुम बात करते िो वि केवल घोर पररश्रम करके अपनी स्वेच्छा को संकल्प-शजकत से बदल देनेमात्र से साधधत निीं ंिो सकती? कया तुमिें प्रेम पर आग्रि करने की आवश्यकता िै? ....मेरा मतलब िै कक यहद इस प्रकार की पररणनत की ननष्ठापूवकि इच्छा रखी जाए, तो कया प्रेम का समाववष्ट िोना या उसका िस्तक्षेप आवश्यक िै, और ऐसी जस्थनत में एक अपररिाय िप्रश्न उठता िै: प्रेम का आह्वान ककया कैसे जाए? तुम इच्छा पर तो अधधकार रख सकतेिो, परंतुप्रेम पर निीं, कया कर सकतेिो? प्रेम तो जब आता िै तभी आता िै - क्या िम सभी निीं ंजानते?"

उन्िोंने मुझ पर एक व्यंग्यभमधश्रत दृजष्ट से देखा और कफर दृढ़तापूवकि अपना भसर हिलाया।

"निीं ंहदलीप, इससे काम निींचलेगा। म ैंजानता िूँ कक तुमिारा इरादा कया िै और कयों प्रेम के आह्वान को तुम अव्याविाररक बताकर इसे टालकर इससे बचना चािते िो, जी चुराना चािते िो। परंतु वािाँ तुम गलत िो, कयोंकक तुम एकमात्र अपनी संकल्प-शजकत के सिारे िी अपनी स्वेच्छा को कम निीं कर सकते। जब तक कक प्रेम का समथनि प्राप्त निीं ंिोता तब तक यि निींककया जा सकता। कयोंकक केवल प्रेम िी समपणि को एक िष िका ववषय बना सकता िै। यहद प्रेम न िो तो अिंकार कभी भी समपणि के ननरंतर कष्ट से गुजर निींसकता। केवल प्रेम का ऊजाि-स्रोत (पावरि–िाउस) िी वि ववद्युत उमपन्न करने ेमें सक्षम िै जजसके द्वारा योग की चककी या कारखाने को चलाया जा सकता िै। ...सच्चे प्रेम का सार-रूप सामने निींआ सकता जब तक कक तुमने ेअिं के बािरी खोल को तोड़ न हदया िो, अथात् ्तुमिारी स्व-इच्छा को। यिाँ एकमात्र कहठनाई यि िै कक जब तक प्रेम अग्रणी निीं िोता - या कफर जैसा कक तुमिारे गुरुदेव किते िैं, चैमय पुरुष सामने निीं आ जाता - तब तक अिं का कठोर खोल त्रबल्कुल तोड़ा िी निीं ंजा सकता और वािाँकफर तुम दुष्चुि में फँस जाते िो, कयोंकक जब तक अिं की दीवारों को धगरा निीं ंहदया जाता तब तक प्रेम भीतर प्रवेश निींकर सकता। परंतु वास्तव में िी ये आममा की गिनतम पिेभलयाँ िैं और तब तक असमाधेय िी बनी रिेंगी जब तक कक इन्िें शुद्ध-बुद्धध के प्रकाश द्वारा पुनः अनावृत निीं कर हदया जाता..." (योगी श्रीकृष्णप्रेम, श्रीअरववन्द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट, पृष्ठ ८८)

पत्र, पुष्प, फल आहद भेंट करनेसे वास्तव में अथ ििै कक अपनी से छोटी चीज को अवपति कर देना। और भगवान् ्कितेिैं कक वे ेतो छोटी छोटी से छोटी चीज को भी स्वीकार कर लेते िैं। आरंभ में िी ऐसा संभव निीं ंिोता कक व्यजकत अपनेसभी भाव अवपति कर पाए। कुछ भावों को व्यजकत अपेक्षाकृत अधधक सिजता से अवपति कर

सकता िै परंतु कुछ ऐसे भाव िैं जजनमें व्यजकत गिराई तक आसकत रिता िै और उन्िें अवपति करना उसके भलए अधधक मुजश्कल िोता िै। उदािरण के भलए, साधना के भलए कदम बढ़ा लेनेपर भी व्यजकत की अपने पररवार में, या पररवार के ककसी सदस्य में, ककसी छोटे बच्चे ्में या कफर अन्य ककसी वस्तु में गिरी आसजकत बनी रि सकती िै जिजसे छोड़नेमें उसे बिुत कष्ट का अनुभव िोता िै। परंतुयहद मन में परमाममा के प्रनत थोड़ा-बिुत भी संकल्प आ गया िै तो उसके सिारे यज्ञ का आरंभ िो जाता िै और धीरे-धीरे वि अन्य भागा को भी यज्ञ में सजममभलत कर लेता िै। किने का अथ ििै कक छोटे से छोटा काम भी यहद व्यजकत अपने अिं की बजाय परमाममा के ननभमि करता िै तो उसका बिा भारी मित्त्व िै। और वास्तव में तो आरंभ िोता िी इसी प्रकार िै, कयोंकक आरंभ में िी व्यजकत

सभी कुछ समवपति कर दे ऐसा संभव निीं िोता। आरंभ में तो कोई केंरीय संकल्प जागृत िोता िै जो व्यजकत को परमाममा की ओर मोड़ देता िै। परंतु व्याविाररक जीवन में उस संकल्प को चररताथ िकरना िी तो साधना िै। और यि व्यजकत की अभीप्सा और उसके संकल्प की तीव्रता पर ननभरि करता िै कक साधना पथ पर वि ककस गनत से आगे बढ़ता िै। इसभलए जब भगवान् ्पत्र, पुष्प आहद जैसी छोटी सी भेंट की बात करते िैं तब वि इस बात का प्रतीक िै कक भजकतपूवकि छोटी से छोटी भेंट का भी िमें बिा भारी प्रनतफल प्राप्त िोता िै। िमारे अंदर ऐसे-ऐसे

भाग िोते िैं जो िमारे साधना पथ पर बिुत आगे जाने पर भी अपनी स्व-इच्छा बनाए रख सकतिैं। िम देख सकतिैं कक ककस प्रकार िमारे अंदर ऐसे अनधगनत छोटे-छोटे हिस्से नछपे िोतिैं जजन्िें िमारे समपणि से कोई सरोकार निींिोता। िमारी बाह्य सिा के इस प्रकार के गठन के कारण िी कोई भी छोटी से छोटी सच्ची भेंट भी इतनी मित्त्वपूण ििोती िै कयोंकक वास्तव में ये भाग भगवान् ्को कुछ भी भेंट करना चािते िी निीं। इसीभलए जो कोई जजस ककसी भी भाव से भगवान् ्की ओर मुिता िै, चािे तकलीफ के कारण िो, ककसी स्वाथपूिनत िके भलए िो या

कफर ककसी जजज्ञासावश िो, गीता सभी को िी श्रेष्ठ बताती िै कयोंकक वे जजस ककसी भी कारण से िो, पर भगवान् ्की ओर मिु तो जाते िैं, और यिी सबसे मित्त्वपूण िबात िै।

ज्यों-ज्यों व्यजकत परमाममा की ओर बढ़ता जाएगा मयों-मयों उसमें अधधकाधधक समता आती जाएगी कयोंकक तब सभी चीज़ों के पीछे उसे प्रभु की किया गोचर िोनेलगेगी। और जब सभी चीजों के पीछे उन्िींका िाथ हदखेगा तब कौनसी चीज िै जजससे कक व्यजकत ववचभलत िो पाए। पिले यि समता उन चीजों के ववषय में िोगी जजनसे व्यजकत अधधक ववचभलत निीं ंिोता। धीरे-धीरे यि समता उन भागों में भी आती जाएगी जजनमें िम अनतशय रूप से आसकत रिते िैं। किने का अथ ििै कक व्यजकत के अंदर ज्यों-ज्यों भगवान् ्के प्रनत प्ेरम का यि भाव बढ़ता जाता िै मयों-मयों दुनुनया के ववषय में उसका दृजष्टकोण त्रबल्कुल बदलता जाता िै। यहद यि प्ेरम का भाव न आए तो व्यजकत केवल अपनेअिं की, मन, प्राण और शरीर की क्षुर संतुजष्टयों की पूनत िमें िी लगा रिता िै। श्री अरववन्द भजकत के इसी तत्त्व को ववकभसत करेंगे।

प्रश्न : यिाँपाद-हटप्पणी में उल्लेख िै कक कम िका एक ननरा भौनतक रूप िोता िै और दूसरा भाग िोता िै एक प्रकार का मानभसक आममोमसगि–भाव जो ककये जाने वाले कम िको एक प्रतीक बना देता िै। तो इसका कया अथ ििै कक वि कम िको एक प्रतीक बना देता िै?

उत्तर : ककसी भी कम िको पूण िबनानेके भलए तीन चीजों की आवश्यकता िोती िै : शुद्ध भौनतक कम,ि उसके पीछे कोई मानभसक भाव, और उसके साथ िी एकमव के भलए चैमय अभीप्सा। सामान्यतया िम सुनते िैं कक वास्तव में तो कम िके पीछे के भाव का मित्त्व िै, बािा पूजा तो ब्रिी अधम चीज िै। जब हदलीप कुमार रॉय ने स्वामी रह्मानंद द्वारा अपनी पुस्तक में उद्धृत ककये एक श्लोक का श्रीकृष्णप्रेम के सामने उल्लेख करते िुए किा कक, 'उच्चतम पूजा उस चेतना या भाव में जस्थत िोती िै जजसमें तुम प्रभु को सभी चीजों में देखतिो। उससे ननचले दजे का िै ध्यान। उससे भी ननमनंतर िै स्तुनतगान या नाम जप और सबसे िी ननमन िै बाह्य पूजा, औपचाररक सेवा', तब श्रीकृष्णप्रेम ने तीव्र रूप से इस बात पर अपनी आपवि जताई और किा कक, "इस प्रकार के उद्धरण बिुत भारी क्षनत पिुँचाते िैं यहद उनका अथ िअपनी संपूणतिा से अलग करके खंड-खंड िमें आँका जाता िै और कफर उन्िें समय की दीपभशखाओं में ववकभसत कर हदया जाता िै जो प्रकाभशत करने की बजाय छाया अधधक िलिती िैं।" (योगी श्रीकृष्णप्रेम, पृष्ठ ७८)

श्रीकृष्णप्रेम ने तो अक्षरशः वैष्णव तंत्र का पालन ककया था और उसके सभी बािरी ननषेधाज्ञाओं का नैजष्ठक रूप से पालन ककया था। और अपनेजीवन के द्वारा इसका प्रमयक्ष उदािरण प्रस्तुत ककया कक ककस प्रकार एक पूण िकम,ि जजसमें बािरी किया, उसके पीछे का भाव और चैमय अभीप्सा साथ भमलने पर भगवान् क्की जीवंत उपजस्थनत ले आता िै। अतः ककसी भी कम िको पूण िबनानेके भलए उसमें तीन चीजों का िोना आवश्यक िै। सबसे पिला िै पूजा का एक भौनतक रूप जैसे कक भशवजी को जल या दूध अवपति करना, या कफर धूपबिी जलाना या अन्य कुछ, उसके बाद, उस बाह्य कम िके पीछे यि मानभसक भाव या कल्पना कक ककस प्रकार भगवान् क्को यि दूध अपणि करना आममा को पुष्ट करना िै। और अंत में यि भाव कक जो कुछ पूजा िम कर रिे िैं वि िमें परमामा के साथ युकत कर दे। इन तीनों में से कोई भी एक छूट जाये तो कम िपूण िनिीं िो सकता।

श्रीअरववन्द ने अपने योग में भौनतक कम िको अमयावश्यक बताया िै कयोंकक इसी के द्वारा िमारी भौनतक चेतना को भगवान् क्के भलए काय िकरनेका आनंद और उनके संपकि में आने का सुअवसर प्राप्त िो सकता िै। साथ िी भौनतक कम िकरनेसे व्यजकत का सिी संतुलन बना रिता िै। यहद व्यजकत भौनतक कम िन करे और केवल ध्यान आहद में िी लगा रिे तो अधधकांशतः व्यजकत का संतुलन त्रबगड़ने की आशंका रिती िै। इसकी बिुत कुछ संभावना रिती िै कक व्यजकत स्वयं अपनिी ककन्िीं मनोननभमति जगतों में ननवास करने लगे जजनसे ननकल पाना उसके भलए अमयंत कहठन िो जाय। परमिंस योगानन्द जी की भशष्या दया माता भी कमयोिग को अमयंत मित्त्व प्रदान करती थीं। वे किती थीं कक आध्याजममक पथ पर संतुलन बनाए रखने के भलए भौनतक कम िकरना अमयावश्यक िै। श्रीअरववन्द भी किते िैं कक भौनतक कम िके त्रबना भौनतक रूपांतर का काय िभसद्ध निीं िो सकता।

भारतीय संस्कृनत ने सदा िी भगवान् क्के प्रनत ननवेहदत कम िको मित्त्व हदया िै। प्रमयेक व्यजकत को अपने-अपने कम िमें आनन्द का अनुभव िोता था और चूंकक प्रमयेक को अपनेकम िमें अमयंत आनंद आता था इसीभलए भारतीय उमपादों की गुणविा के उदािरण आज भी प्रचभलत िैं। अब यहद कम िअपनेआप में कोई

 बाध्यता या बोझ न रिकर आनन्द का साधन बन जाए, अपनी आमम-अभभव्यजकत का साधन बन जाए,

परमाममा से भमलने का, उनसे संपकि साधनेका माध्यम बन जाए तब तो कोई भी व्यजकत कम िककये त्रबना कैसे रि सकता ि ै। इसी कारण ऐसा कौनसा क्षेत्र रि ा ि ै जजसमें भारत ने ववपुल रूप से और सवोमकृष्ट गुणवत्ता की रचना न की ि ो। र्वीं यहद व्यजकत को कम ि बोझ लगनेलगे तब तो वि स्वयंभी उसे करनेसे पीड़ित रिेगा, अपने सियोधगयों को और सिकभमयों को पीड़ित करेगा और उसका कम ि भी गुणवत्ता की दृजष्ट से अधधक से अधधक केवल कोई औसत दजे का ि ी ि ोगा। परंतु जब भावना को भगवान् ्की ओर मोड़ हदया जाता ि ै और कम ि में आनन्द की अनुभूनत ि ोनेलगती ि ै तब तो जजस मात्रा और गुणवत्ता की रचना की जाती ि ै वि तो अतुलनीय ि ोती ि ै। आज भी ववध्वंस की अनेकों शताजब्दयाँ बीत जाने के बाद भी भारतीय रचनाओं का जो कुछ भी अंश ि मारे पास शेषे बचा रिता ि ै उसका भी कोई सानी र्नीं ि ै और उसे भी ि म आश्चय ि की दृजष्ट से देखते ि ैं कक वि संभव कैसे ि ो पाया।

"सबसे पिले गीता ने कमियोग की चचाकी, उसके बाद ज्ञान को कम ि से श्रेष्ठ बताया, अब यिाँ गीता उनमें भजकत तत्त्व को जोड़ रिी ि ै। तामपय ि यि ि ै कक समग्र रूप से कम ि तभी ि ोंगे जब तीनों चीजें सजममभलत ि ों। मिारे कमों के पीछे भाव और आममा ि ो तो कम ि भजकत प्रधान ि ो जायेंगे और ि मारे उमथान का एक सशकत साधन बन जाएँगे और ऐसा कोई कम ि र्नीं जिजसे ि म परमाममा से न जोड़ सकें।

यत्करोवष यदश्नासस यज्जजहोवष ददाससयत् ्।
यत्तपमयसस कौन्तेय तत्कजरुष्व मदपुणुम् ्।। २७।।

२७. हे कौन्तेय! तू ्जो कजछ करता है, जो कजछ भोग करता है, जो कजछ यह (उत्सगु)् करता है, जो कजछ दान करता है, तपमया की ऊजुा, आत्मा का संकल्प अथिा प्रयास जो तू करता है, उसे मेरे प्रनत एक भेंट बना दे।

यि समग्र भजकत का स्वरूप ि ै। इससे वपछले श्लोक में गीता भौनतक चीजों को भेंट करने की बात किती र्ी। अब गीता इन सब प्राणणक, मानभसक ऊजाि, संकल्प आहद को भी भेंट करने की बात कर रिी ि ै। इस प्रकार गीता ि मारी सिा की सभी कियाओं, सभी मनोवैज्ञाननक शजकतयों, मानभसक, प्राणणक संकल्पों, ऊजािओंआहद में भी भजकत को प्रववष्ट कर रिी ि ै। इसी बात का श्रीअरववन्द यिा ँववववेचन कर रिे ि ैं।

यिा ँछोटी-से-छोटी चीज, जीवन की सामान्य-से-सामान्य घटना, ि म जो कुछ ि ैं या ि मारे पास जो कुछ ि ै उसका ककंधचममात्र भी दान, छोटे-से-छोटा कम ि हदव्य मित्त्व प्राप्त कर लेता ि ै और भगवान् ्के भलए ग्रिण कर सकनेयोग्य भेंट बन जाता ि ै जो इसे ईश्वर-प्रेमी की आममा और उसके जीवन पर अधधकार पाने का एक माध्यम बना लेते ि ैं।

यि बिुत मित्त्वपूण ि बात ि ै। ि म जो कुछ ि ैं और जो कुछ ि मारे पास ि ै उसका ककंधचत् ्मात्र भी दान एक हदव्य मित्त्व प्राप्त कर लेता ि ै। परन्तु यिा ँभगवान् ्ि मसे ि म जो कुछ भी ि ैं अथवा जो कुछ भी ि मारे पास ि ै, उस

सब की मागाँ कर रि िैं। वतमिान में तो िम अपना सवस्वि अपने अिंकार की सेवा में अवपति करते िैं जिाँ कक अिंकार राजा के रूप में अपनेआसन पर ववराजमान िै और भमथ्यामव उसकी रानी के रूप में उसके साथ ववराजमान िै। वतमिान में तो अिं का साम्राज्य इतना फैला िै कक िम यि मानने ेको भी वास्तव में तैयार निीं ंिोते कक िम अिं के वशीभूत िोकर काय िकर रि िैं। ऐसे में यहद िम इस चीज के भलए आश्वस्त िो जाएँ कक िम अिं से मुकत िो गए िैं तब तो उससे मुकत िोने ेकी तो िमारी कोई संभावना भी निीं ंरिती। इसभलए व्यजकत को यि मानकर चलना चाहिये कक अिं की पाश में तो वि अवश्य िी िै, ऐसे में करनेका काम केवल यि िै कक यि ढूँढ़े कक वि पाश किा ंिँै और वििाँउसे कुछ ढीला करने ेका प्रयास करे। आम तौर पर समाज में िम कुछ ऐसे लोगों को देखतिैं जो परोपकाररता के कायों में अपना समय, अपना धन आहद लगाते िैं, जैसे कक गरीबों की सेवा करना, गोशाला में दान करना, पीड़ितों के इलाज आहद के भलए धन देना, आहद-आहद। इन सब कायों में व्यजकत को सच में ऐसा प्रतीत िोता िै कक वि तो अिं से मुकत िोकर सबकी ननःस्वाथ िरूप से सेवा कर रिा िै और गीता का कमयिोग िी कर रिा िै। इस ववषय पर श्रीमाताजी के वचन बिुत िी माभमकि और उद्बोधक िैं। वे किती िैं,

"... यहद तुम मानवजानत की सिायता करना चािते िो तो एक िी काम करने ेलायक िै। अपने-आपको, जजतना संभव िो, पूरी तरि से भगवान् ्के अपणि कर दो। यिी समाधान िै। ...

...तुम कया िो? तुम बस जरा सी चेतना और जरा से भौनतक पदाथ िके प्रनतननधध िो। बस, उसी को तुम 'म'ैं किते िो। यहद तुम मानवजानत की, संसार या ववश्व की सेवा करना चािते िो तो करने ेलायक यिी िै कक उस छोटे से टुकिे ेको पूरी तरि भगवान् ्को अपणि कर दो। ... जो कुछ तुमिारा िै उसे दे दो। उसे पूरी तरि, समग्र रूप में भगवान् ्को दे दो...इससे अच्छा कोई समाधान निीं ंिै। तुम मानवजानत की सिायता कैसे करना चािते िो? तुमिें तो यि भी निीं ंपता कक उसे कया चाहिये ।...

...यहद यिी लोग जो ववद्यालयों के भलये पैसा देने को तैयार िोतिैं, उनसे किा जाय कक कोई भगवान् ्का काम िै जजससे भगवान् ्ने अमुक तरीके से करने ेका ननश्चय ककया िै, और यहद उन्िें ववश्वास भी िो कक यि सचमुच भगवान् ्का काय िि,ै तो भी वे ेकुछ देनेसे इंकार करते िैं, कयोंकक यि सवसिममत परोपकार का काम निीं ंिै-यि करके कुछ अच्छा करनेका संतोष निीं ंिोता! म ैंएक ववनोदवप्रय व्यजकत को जानती थी जो किा करता था : 'भगवान् ्का राज्य बिुत जल्दी निीं ंआयेगा कयोंकक तब इन बेचारे परोपकाररयों के भलये कया बचा रिेगा? यहद मानवजानत दुःख न भोगती रिे तो बेचारे परोपकारी लोग बेकार िो जायगें।' इसमें से ननकलना मुजश्कल िै। कफर भी यि तथ्य िै कक दुननया इस जस्थनत में से तब तक बािर निीं ंननकल सकती जब तक कक वि अपने-आप को भगवान् ्को न सौंप दे। सभी सद्‌गुण – तुम उनकी चािो जजतनी महिमा गाओ तुमिारी आमम-संतुजष्ट को, यानी, अिं को बढ़ाते िैं। वे तुमिें सचमुच भगवान् ्के बारे में सचेतन िोने ेमें सिायता निीं ंदेते। दुननया के बुद्धधमान् ्और उदार लोगों को बदलना सबसे कहठन िोता िै। वे अपनेजीवन से बिुत संतुष्ट िोतिैं। एक गरीब व्यजकत जजसने जीवन में सब प्रकार की बेवकूकफया ंकी िैं तुरंत दुःखी िो उठता िै और किता िै : म ैंकुछ निीं िूँ, म ैंकुछ निीं कर सकता। मुझे तुम जो बनाना चािो बना लो।" यि व्यजकत ज्यादा ठीक िै और यि भगवान् ्के, उस व्यजकत की

अपेक्षा बिुत अधधक ननकट िै जो बुद्धधमान् ्िै तथा अपनी बुद्धधमिा और गव िसे भरा िै। यि अपने-आप को वैसा िी देखता िै जैसा कक वि िै।" (CWM 5, 12-14)

अब प्रश्न यि उठता िै कक यि भेंट िो ककस प्रकार से? कयोंकक गीता में आरंभ से िी िमने देखा िै कक जो प्रसंग िमें सतिी भी प्रतीत िोते िैं वे भी अपनेवास्तववक स्वरूप में अमयंत गंभीर िोतेिैं। इसभलए गीता जजस भेंट की बात कर रिी िै वि यहद कोई सतिी प्रकार की िोती तब तो सभी अपने-अपनेतरीके से भेंट कर िी रिे िैं। और कफर श्रीअरववन्द की टीका से यि त्रबल्कुल स्पष्ट िो जाता िै कक जजस जस्थनत की गीता बात कर रिी िै वि तो एक ऐसी आध्याजममक अवस्था िै जिााँ तक सिज िी निीं ंपिुाँचा जा सकता।

श्रीअरववन्द और श्रीमाताजी के आलोक में यहद िम इसे देखें तो व्याविाररक रूप से इस भेंट की किीं ककसी भाग में थोिी शुरुआत िोती िै। और कफर वि धीरे-धीरे िमारी सिा को, िमारे सारे किया-कलापों को अपने में समाववष्ट करती जाती िै। यि प्रकिया प्रमयेक के भलए भभन्न-भभन्न स्तर पर जाकर रुक जाती िै। लाखों में से कोई एक ववरली आममा िी इस आदश िजस्थनत के कुछ समीप जा पाती िै। अब यि शुरुआत िोती ककस प्रकार िै? यि एक बिुत िी ववस्तृत ववषय िै और प्रमयेक के भलए ववभशष्ट िोता िै। पर कफर भी इसमें कुछ सामान्य बातें िैं जजनके ववषय में िम चचा कर सकतेिैं।

जब व्यजकत को ककसी प्रकार सच्चेरूप से यि समझ में आ जाए कक वतमान जीवन तो स्वाथमिय िै जिााँ सारे हदन वि केवल मन, प्राण और शरीर की संतुजष्टयों की पूनत िमें िी लगा रिता िै, तब वि समझ जाता िै कक केवल प्रभुको ननवेहदत जीवन िी जीनेयोग्य िै। ऐसी समझ उसे पूवजिन्म के संस्कारों के द्वारा, ककसी समसंग के द्वारा, ककसी पुस्तक के अध्ययन के द्वारा, जीवन में घटी ककसी अकस्मात् ्घटना के माध्यम से या कफर अन्य माध्यमों से आ सकती िै। िालााँकक अभी भी व्यजकत अनेकानेक तरीके के भावों, ववचारों, अपने कतव्यिों, प्रनतबद्धताओं आहद से जकिा रिता िै इसभलए आरंभ में अधधक कुछ निीं ंकर पाता, परंतु कफर भी, जजस भी तरि िो, जब यि बात समझ में आ जाती िै तो उसकी कुछ न कुछ छाप उसके जीवन पर अवश्य लग जाती िै। इसभलए अन्य सभी कुछ के िोते िुए भी व्यजकत किीं-न-किींयि प्रयास करना आरंभ करता िै कक यि तत्त्व भी जीवन में प्रवेश करे। अब चूाँकक इस चीज का अपना आकषणि िी ऐसा िै कक उसके हृदय में, उसकी बुद्धध में उसे मिसूस िोता िै कक यिी चीज करने ेलायक िै। पर इसके साथ िी साथ अधधकांशतः व्यजकत को लगभग यि पूरा ववश्वास िो जाता िै कक वि तो भगवान् ्का िो चुका िै। िालााँकक यि बात सिा के ककसी एक भाग का समय अवश्य िोता िै परंतुकफर भी अभी भी व्यजकत इस जस्थनत से तो बिुत दूरू िोता िै जिा ाँवि वास्तव में िी भगवान् ्का िो चुका िो। पर यि बात भी व्यजकत को तब समझ में आती िै जब उसे जीवन में अनेक बार ठोकरें लगती िैं और उसकी सच्चाई कसौटी पर उतारी जाती िै। ऐसे लोग जजन्िोंनेसाधना-पथ अपना भलया िै और जो अपना सवस्वि श्रीमाताजी की सेवा में अवपति करने ेका संकल्प कर चुके िैं और जो वास्तव में भीतर से ऐसा करना चाितेभी िैं उन्िें भी कदम-कदम पर अपनी ननमन प्रकृनत के धोखों से गुजरना िोता िै। कयोंकक यि बात तो बिुत देर से समझ में आती िै कक िमारे बािरी भागों को िमारे आंतररक भाव से ववशेषे कोई सरोकार निीं ंिोता। इसभलए भीतर तो

मिारे अंदर अपनेआप को भगवान् ्को दे देने का भाव िोता िै परंतु बिारी भागों के अपने ननहित िेतु िोते िैं इसभलए बिारी अभभव्यजकत के अंदर तो इन बिारी भागों की िी प्रधानता रिती िै। इतना अवश्य िै कक यि भाव जीवन को कुछ रंग दे देता िै। परंतु इस अवस्था में और पूण िसमपणि की अवस्था में एक ब़िा भारी अंतर िोता िै। िालाकँक सामान्य व्यजकत को तो यि रंगत भी ब़िी प्रभावी प्रतीत िोती िै। ऐसा व्यजकत अपनेभमत्र के भलए, देश के भलए अपने प्राणों तक की भी परवाि निीं करता, अपने आदश िके भलए प्राण भी दे सकता िै। परंतु एक दृजष्टकोण से ककसी आदश िके भलए अपनेप्राण दे देना अवश्य िी श्रेष्ठ तो िै परंतु उसके भलए जीना और आवश्यक कष्ट सिन करना अधधक मुजश्कल िै। और सच्चा मूल्य तो ऐसे िी जीवन का िै। सामान्यतया कुछ व्यजकत दंभ भरते िुए या अपनेप्रेम की प्रगाढ़ता हदखानेिेतु किते िैं कक वे श्रीमाताजी के भलए अपनेप्राण भी दे सकते िैं। पर वास्तव में तो श्रीमाताजी के भलए अपनेसवस्वि की आिुनत देना किीं ंअधधक मित् ्और कष्टकर िै अन्यथा प्राण तो त्रबना कुछ ककये भी अपने समय से चले जाते िैं। अवश्य िी श्रीमाताजी के भलए प्राण देने के भाव का अपना मूल्य िै, परंतु उनके िेतु संपूण िजीवन को रूपांतररत कर हदया जाए और उनका सच्चा यंत्र बना हदया जाए, यि बेितर चीज िै।

जब व्यजकत के अंदर यि भाव िो कक वि भगवान् ्के भलए अपने प्राणों की आिुनत देने के भलए भी तैयार िै तब तो सामान्यतः वि पूरी तरि आश्वस्त िो जाता िै कक अब वि पूरी तरि से भगवान् ्का िो चुका िै। और इसके साथ िी साथ अपनेववषय में व्यजकत में ब़िी िी आमम-तुजष्ट और अपनी श्रेष्ठता का भान आए त्रबना निीं ंरिता। और इस कारण व्यजकत अपनी कभमयों को देखने में असमथ ििो जाता िै जबकक दूसरों की कभमयों को खूब देख लेता िै। परंतु चूँकक अंदर किीं न किीं ंकुछ सच्चाई भी िोती िै इसभलए जब भगवान् ्की कृपा से वि अपनी अवस्था के ववषय में कुछ अधधक सचेतन िोता िै तो वि उसके अनुसार यथासंभव अपनेदृजष्टकोण आहद में पररवतनि करता िै। कुछ समय बाद वि पाता िै कक पिले जजन धोखों के प्रनत वि सचेतन िुआ था और जजन्िें उसनेननकाल बािर करने का प्रयास ककया था उनका केवल रूप िी बदला िै और वे ेकुछ अधधक सूक्ष्म बन गए िैं परंतु वे कफर भी उसके अंदर ववद्यमान िैं। इस प्रकार व्यजकत इन जाल-घातों की खोज करता रिता िै, इनके प्रनत सचेतन िोकर इनका ननराकरण करने ेका प्रयास करता रिता िै और अपनेपथ पर अग्रसर िोता रिता िै। परंतु यि ननजश्चत िै कक प्रमयेक के साथ उसके अपनेननमन भागों की िीिा लगी रिती िै जो उसे उसके गठन के अनुसार धोखे में रखती िै। भगवान् ्का समय अनंत आयामी िै अतः मानवीय चेतना का उसकी तरफ बढ़ना कहठनाईयों, अधः–समयों व प्रतीनतयों से भरा िोता िै। धोखा शब्द यिी इंधगत करता िै। इसभलए एक साधक यि ननजश्चत मान कर चले कक उसके साथ किीं ंन किीं ंधोखा अवश्य िो रिा िै और इसभलए समझदारी इसी में िै कक

यि खोजे कक वि धोखा किाँ िो रिा िै और उससे बचनेका प्रयास करे।

यिा ंगीता जजस भेंट की बात करती िै उसे जब व्यजकत व्यविार में उतारता िै तब वि पाता िै कक इसके साथ िी साथ ऐसे भागों की किया भी चलती रिेगी जो उसे जगि-जगि धोखा देते रिेंगे। परंतु अपनी केंरीय सच्चाई के आधार पर यहद व्यजकत सभी ल़िख़िािटों के बावजूद भी चलता रिे तब धीरे-धीरे वे धोखे कम िोते जाते िैं। िालाकँक इन धोखों को िम इस रूप में ले सकते िैं कक ये िमें िमारी कभमयों के बारे में सचेतन बनाते िैं। एक समय के बाद जब व्यजकत अपनेननमन भागों पर कुछ-कुछ अंकुश लगा देता िै तब वे भाग उठ ख़िे िोने ेकी

प्रतीक्षा करते रिते िैं कयोंकक सचेतन रूप से तो व्यजकत उन्िें अभभव्यजकत का उतना अवसर निीं ंदेता। और जब कोई संकटकाल आता िै, या ककसी आकजस्मक घटना के कारण कोई आघात लगता िै या अन्य ककसी कारण से कोई ममांतक पीड़ा िोती िै तब इन भागों को भसर उठाने का मौका भमल जाता िै। और श्रीमाताजी के अनुसार तभी सिी समय िोता िै जब व्यजकत इन्िें पकड़कर बािर कर सकता िै कयोंकक अन्य समय तो ये सभी भाग अधेंरे में नछपे रिते िैं और हदखाई निींदेते। पर जब ये अपना भसर उठाएँ तब व्यजकत को इनसे िताश या परेशान िोने ेकी बजाय इसे एक सुअवसर के रूप में देखना चाहिये कयोंकक तभी वि इनका सामना कर इनका सफाया कर सकता िै। परंतु यि इतना आसान काम निीं िै और इसके भलए बड़ी ेभारी वववेक, सािस और आममा की ताकत की आवश्यकता िोती िै। उदािरण के भलए, रामायण में उल्लेख आता िै कक जब भगवान् ्श्रीराम नागपाश में बंध गए तब ववभीषण से उसका उपाय पूछने पर उसने किा कक उसका कोई तोड़ निीं ंिै। ऐसे समय में लक्ष्मण जी के अंदर एक दबा िुआ भाव फूट पड़ा और उन्िोंनेश्री रामजी से किा कक जब कैकेयी की बुद्धध भ्रष्ट िुई थी तभी उन्िोंने उन्िें चेताया था कक कैकेयी की बात सुनने ेकी कोई आवश्यकता निीं िै। परंतु तब तो उन्िोंने ेउनके इस परामशि को अनसुना कर हदया था, इसभलए आज वे सब ऐसे भीषण संकट में फंस गए िैं। िालाकाँक गरुड़ के आनेपर जब वे नागपाश से मुकत िो गए तब लक्ष्मण जी को अपनेभाव पर शभमंदा नागपारा से सकार तो जो भाव उनके अंदर लंबे समय से दवा था यि बािर आ िी गया। इसी प्रकार िमारे अंदर भी ऐसी असंख्यों चीजें नछपी रिती िैं जो अपनेसमय की प्रतीक्षा करती िैं। इसीभलए साधना पथ पर ज्यों-ज्यों व्यजकत आगे बढ़ता िै मयोंिी-मयों अपने े अंदर नछपी अनेकानेक चीजों की वि खोज करता िै। और इसका एक परम लाभ यि िै कक व्यजकत अपनेआप को अधधक सचेतन रूप से जाननेलगता िै तो कम से कम ककसी ननजश्चत स्तर तक वि धोखा निीं ंखाता। इसभलए गीता जजस भाव की बात कर रिी िै वि तो एक प्रकार से भाव की पररणनत िै। जजस तक सिज िी निींपिुँचा जा सकता। साधना पथ में िमें अपनेइट की या गुरु की सिायता से अपने ववभभन्न भागों के ववषय में सचेतन िोना िोता िै और जो भाग भगवान् ्की ओर खुले िैं उनके प्रकाश से दूसूरे भागों को ननमलि करना िोता िै।

इस प्रकार यि एक प्रकिया िै जजसके द्वारा भगवान् ्िमारे ककसी एक भाग में प्रकाश फैला कर उसके द्वारा अन्य भागों को भी प्रकाभशत और पववत्र करते िैं। भगवान् ्उस भाग को व्यजकत की आममा का अधधकार जमाने के भलए एक माध्यम बना लेते िैं। आरंभ में यि प्रकिया बड़ी िो कष्टकर प्रतीत िोती िै, परंतु एक सीमा के बाद जब कुछ भाग प्रकाभशत िो उठते िैं तब यि प्रकिया कुछ गनत पकड़ लेती िै। इसभलए ज्यों-ज्यों व्यजकत आगे बढ़ता िै उसकी गनत भी मवररत िोती जाती िै कयोंकक भगवान् ्का अधधकार क्षेत्र बढ़ता जाता िै। और जब चैमय

चेतना जागृत िोती िै तब तो अपनी अंदर की ककसी भी समस्या पर, ककसी भी अवांनछत चीज पर या ककसी गुमथी पर नजर भर िालनी िोती िै और उसका प्रकाश और प्रभाव इतना अधधक िोता िै कक वि चीज तुरंत िी समाप्त िो

जाती िै या कफर िल िो जाती िै। विी समस्या जो िमें एक लंबे समय से प्रताड़ित कर रिी थी और जजससे मुकत िोने ेके भलए िम प्रयास अवश्य कर रिे थे परंतु ुउन प्रयासों में इतनी शजकत निीं थी कक उससे मुजकत हदला सकें, विी क्षण भर में भी समास िो सकती िै कयोंकक चैमय सिा में बड़ी भारी शजकत िोती िै और उसके समक्ष ककसी त्रुहट आहद के बनेरिने ेकी कोई सामथ्य िनिीिोती। परंतु कफर भी साधना पथ पर ये समस्याएँ अनधगनत िैं और व्यजकत को इनका सामना करते रिने ेके भलए अनंत धैय िकी आवश्यकता िोती िै।

संक्षेप में, जो मागँा िम से की गई िै वि यिी िै कक िम अपने समपूण िजीवन को एक सचेतन यज्ञ में बदल दें। िमारी सिा के प्रमयेक क्षण और प्रमयेक किया को शाश्वत के प्रनत एक सतत् ्और समवपति आममदान में पररणत करना िोगा। िमारे सभी कमों को, छोटे-से-छोटे और अमयन्त साधारण एवं ंतुच्छ कमों को तथा बड़े–से-बड़े ेऔर अमयन्त असाधारण एवं ंश्रेष्ठ कमों को, सभी को एक समान, समवपति कमों के रूप में करना िोगा। मिारी व्यजष्टभूत प्रकृनत को एक ऐसी बाह्य तथा आन्तर किया की अखंचेतना में ननवास करना िोगा जो ऐसे 'कुछ' के प्रनत ननवेहदत िो जो िम से परे और िमसे मिान् ्िै। भले िी कोई भी भेंट-उपिार कयों न िो और िमारे द्वारा ककसी को भी भेंट की जा रिी िो, परंतु भेंट की किया में एक ऐसी चेतना अवश्य िोनी चाहिये कक िम इसे सब सिाओं में ववद्यमान एकमेव हदव्य परम सिा को िी भेंट कर रिे िैं। िमारे अमयन्त साधारण और अमयंत स्थूल रूप से भौनतक कायों को भी यिी उदाि रूप धारण करना चाहिये; जब िम भोजन करें, तो िमें सचेतन िोना चाहिये कक िम अपना भोजन अपनेअन्दर ववराजमान उस हदव्य 'उपजस्थनत' को दे रिे िैं; यि मजन्दर में एक पववत्र भेंटस्वरूप िोना चाहिए और मिज एक शारीररक आवश्यकता का बोध या आमम-तृजृप्त का भाव िममें से चला जाना चाहिये।

सामान्यतया इस प्रकार की बातों को िम एक उद्देश्य के रूप में मान बैठते िैं कक िमारा भोजन उस हदव्य उपजस्थनत को अवपति िोना चाहिये, आहद-आहद। परंतु ये सारी चीजें ककसी आंतररक चेतना की जस्थनत के बािरी पररणाम िैं। इस प्रकार का वणनि पढ़ते िी अधधकांशतः लोग इसे व्याविाररक जीवन में लागू करने ेकी सोचते िैं, जो कक गलत भी निीं ंिै, परंतु जजसे िम उद्देश्य मान बैठते िैं वि तो एक पररणाम िै जो कक यहद िम साधना पथ पर चलते िैं तो स्वयमेव िी भसद्ध िो जाएगा। जब व्यजकत उस चेतना में िोगा तो स्वतः िी उसकी किया-कलाप, भोजन आहद सभी प्रभु को िी समवपति िोंगे। इस दृजष्टकोण से िमें इसे लेना चाहिये अन्यथा इन ननषेधाज्ञाओं को पढ़कर व्यजकत के भाव उठता िै कक अब वि समझ गया िै कक उसे कया करना चाहिये। परंतु केवल अध्ययन मात्र से िमारी अभशष्ट प्रकृनत बदल निींजाती बजल्क उस ज्ञान की आड़ में तो सामान्यतया उसे अपनी किया अधधक करने का मौका भमल जाता िै। भारतीय संस्कृनत में िमारी इस अभशष्ट प्रकृनत का भली-भानाँत ज्ञान था। इसीभलए संन्यासी के भलए ऐसे ववधान थे जजनकी सिायता से वि ककसी भी प्रकार की आसजकत से अधधक से अधधक बच सके। संन्यास के बाद उसे अपनेमूल ननवासस्थान में रिनेकी अनुमनत निींथी। इससे उसके सभी पाररवाररक बंधनों में उसकी आसजकत टूट जाती थी। वपक्षा के अन्न पर जीनेके ववधान के कारण उस पर भी बिुत कुछ अंकुश लगता था, साथ िी भोजन के प्रनत तृषूणा को भी मौका न भमलने पर वि भी अंकुश में रिती थी। भौनतक सुख-साधन आहद पर भी अंकुश लग जाता था। िालाकाँक इस प्रकार के अंकुश का प्रमयेक के भलए सुखद पररणाम निीं ंिोता।

परंतु इस प्रकार के अंकुश से भी भौनतक प्रकृनत मान निीं जाती। इसीभलए बािरी अंकुश कुछ के भलए कुछ िद तक लाभदायक िो सकतिैं परंतु इनके द्वारा पूरी तरि से प्रकृनत पर प्रभुमव प्राप्त निीं ंककया जा सकता। इसी के कारण श्रीअरववन्द अनतमानभसक चेतना के अवतरण और भौनतक प्रकृनत तक के रूपांतरण की बात करते

थे। केवल अनतमानभसक रूपांतरण के द्वारा िी वास्तव में िमारी प्रकृनत की समस्याओं का अंत िो सकता िै। अन्यथा ब्रिी भारी भसद्धधयाँप्राप्त करने ेपर भी व्यजकत की बिारी प्रकृनत में ववशेष बदलाव निीं ंआता, अवपतु जो अधधक समय समाधधस्थ अवस्था में िी त्रबताना चिाते िैं उनकी बिारी प्रकृनत तो, श्रीमाताजी के अनुसार, बिुत अधधक ननरंकुश और अभशष्ट िो जाती िै और इसी कारण वे लोग बिार की चेतना में आना िी निीं चिाते और केवल अपनी समाधध अवस्था में िी बने रिना चिाते िैं। परंतुजो भी िो, यहद व्यजकत अपनेपास जो कुछ भी पूँजी ैं उसकी सियता से माग िपर चल पिे ेतो भले ककतने ेभी उतार-चढ़ाव कयों न आएँ, वि अधधकाधधक माग िपर आगे बढ़ता िी जाएगा।

ककसी भी मिान् ्प्रयास में, ककसी भी उच्च अनुशासन में अथवा ककसी कहठन या उदिा पुरुषाथ िमें - चिो वि िमारे अपनेभलए िो, दूसरों के भलए िो या कफर जानत के भलए िो - यि अब और अधधक समभव निीं रि जाएगा कक िम जानत के, अपने-आप के या दूसरों के ववचार तक िी आकर रुक जाएँ। जो काम िम कर रिे िैं उसे सचेतन रूप से कमों के यज्ञ के रूप में अवपति करना िोगा, पर इन्िें (अपने-आप को, दूसरों को या जानत को) निीं, अवपतु इनके द्वारा या सीधे िी एकमेव देवाधधदेव को अवपति करना िोगा, जो हदव्य अन्तवासिी इन रूपाकृनतयों के द्वारा नछप गया था उसे अब और अधधक नछपे निीं रिना चाहिये, अवपतु िमारी आममा, िमारे मन और िमारे इंहरयबोध के समक्ष सदा उपजस्थत रिना चाहिये। िमारे कमों की आंतररक कियाओं और पररणामों को उस 'एकमेव' के िाथों में इस भावना से सौंप देना िोगा कक वि 'उपजस्थनत' ऐसी 'अनन्त' और 'परमोच्च' िै कक केवल उसके द्वारा िी मिारे प्रयमन तथा िमारी अभीप्सा समभव या चररताथ िो सकती िैं। कयोंकक उसी की सिा में सब कुछ घहटत िोता िै; उसी के भलये प्रकृनत द्वारा िमसे समस्त प्रयमन और अभीप्सा लेकर सब को उसी की वेदी पर अपणि ककया जाता िै। उन चीजों में भी जजनमें त्रबल्कुल स्पष्ट रूप से प्रकृनत स्वयंकती िोती िै और िम उसकी किया के केवल साक्षी, धारक और सिायक मात्र िोते िैं, उनमें भी िमें कम िऔर उसके हदव्य स्वामी का ऐसा िी अखंड स्मरण और जस्थर ज्ञान रिना चाहिये। िमारे अंदर के श्वास-प्रश्वास तक को, िमारे हृदय की धिकन मात्र तक को भी वैजश्वक यज्ञ के सजीव लय-ताल के रूप में सचेतन बनाया जा सकता िै और बनाना िी िोगा।

यि स्पष्ट िै कक इस प्रकार का ववचार और इसका कारगर अभ्यास अवश्य िी अपनेअंदर तीन पररणाम भलये रिता िै जो िमारे आध्याजममक आदश िके भलये केंरीय मित्त्व के िैं। सवप्रिथम यि प्रमयक्ष िै कक यहद ऐसा अभ्यास त्रबना भजकत के भी प्रारंभ ककया जाए तो भी वि समभवनीय उच्चतम भजकत की ओर सीधे और अननवाय ि रूप से ले जाता िै; कयोंकक यि स्वाभाववक रूप से गिरा िोकर एक पूणतिम कल्पनीय आराधना एवं अमयन्त गंभीर ईश्वर-प्रेम में पररणत िो जाएगा। इससे घननष्ठ रूप से जुड़ा िै सब वस्तुओंमें भगवान् ्का अधधकाधधक अनुभव, िमारे समस्त धचंतन, इच्छाशजकत एवं कम िमें तथा जीवन के प्रमयेक क्षण में भगवान् ्के साथ उिरोत्तर गिरा िोता समागम और िमारी समपूण िसिा का भगवान् ्के प्रनत अधधकाधधक भावपूण िननवेदन। वस्तुतः, कमयोग के ये ननहिताथ िसवांगीण और पूण िभजकत के भी सारतत्त्व िैं। जो जजज्ञासु इन्िें जीवन्त अभ्यास में िाल देता िै वि अपने-आप में ननरंतर िी आममोमसग िके सच्चेभाव की एक स्थायी, सकिय और प्रभावशाली प्रनतमूनत ि ननभमति करता रिता िै, और यि अननवाय िोी िै कक इसमें से कफर उस सवोच्च देव की अमयन्त मग्न करनेवाली

पूजा का जन्म ि◌ो जजसे यि सेवा अवपति की जाती ि◌ै। उस हदव्य उपजस्थनत के भलए, जजसके प्रनत समवपति कायकिति सदा उिरोत्तर प्रगाढ़ सामीप्य अनुभव करता ि◌ै, उसमें अनन्य प्रेम बढ़ता जाता ि◌ै। और इसके साथ ि◌ी सभी सिाओं, जीववत रूपों एवं ◌ंप्राणणयों के भलये, जो भगवान् ◌्के वास-स्थान ि◌ैं, एक सावभिौम प्रेम भी पैदा ि◌ोता ि◌ै। वि इस अनन्य प्रेम के अन्दर ननहित रिता ि◌ै - यि कोई ववभाजन से उमपन्न क्षणणक, व्याकुल एवं ◌ंग्रभसत करने वाला भावावेग निीं ◌ंि◌ोता, अवपतुउि सुजस्थर ननष्काम प्रेम ि◌ोता ि◌ै जो एकमव का गंभीरतर स्पन्दन ि◌ोता ि◌ै। सभी चे ◌ेजजज्ञासुअपनी सेवा और आराधना के एकमात्र पात्र से भमलन साधधत करने लगता ि◌ै। कमों का माग ि◌ियज्ञ के इस पथ से चल कर भजकत के माग ि◌से जा भमलता ि◌ै; यि स्वयंिी एक ऐसी पररपूण,ि◌ तन्मयकारी और सवांगीण भजकत ि◌ो सकता ि◌ै, जजसकी कक हृदय मागँा कर सकता ि◌ो या जजसकी मन का प्रवर भाव कल्पना कर सकता ि◌ो।

अब यिा ◌ँयि एक बिी ि◌ी ववधचत्र बात ि◌ै कक यि अभ्यास त्रबना भजकत के ककस प्रकार आरंभ ककया जा सकता ि◌ै। सामान्यतया भजकत हृदय से उद्भूत ि◌ोती ि◌ै। परंतुयहद हृदय के द्वारा वि भाव प्रकट रूप से अभभव्यकत न ि◌ो जजसे ि◌म भजकत किति ि◌ैं अवपतु ◌ुअंतराममा में एक अभीप्सा ि◌ो जो कक ि◌में परमाममा की ओर प्रेररत करती ि◌ै तब भी यि प्रकिया आरंभ ि◌ो सकती ि◌ै। भले ि◌ी ि◌मारी परंपरागत शब्दावली में ककसी ि◌ठयोगी या ककसी तपस्वी की किया को भजकत की संज्ञा निीं ◌ंदी जाती, तब भी यि ननजश्चत ि◌ै कक अंतराममा में किीं ◌ंन किीं ककसी उच्चतर चीज के भलए अभीप्सा अवश्य ि◌ोती ि◌ै। इस प्रकार जब व्यजकत हृदय के त्रबना अंतराममा के ककसी प्रकार के दबाव के कारण ककसी ज्ञान आहद से भी आरंभ करता ि◌ै तब कम से कम उसे कुछ थोिा-बिुत आधार प्राप्त ि◌ोता ि◌ै जजसके सिारे वि माग ि◌पर चलना आरंभ करता ि◌ै। ि◌ालाकँाक त्रबना हृदय के भाव के उस गनत में तीव्रता निींआती, परंतु यहद कोई थोिा-बिुत प्रयास भी आरंभ ि◌ो गया ि◌ो तो वि भी धीरे-धीरे प्रबल ि◌ोता जाएगा और सिा के अन्य भागों को प्रभाववत कर अपनेमें सजममभलत करता जाएगा और अंततः अवश्य ि◌ी इस गनत की पराकाष्ठा भजकत में ि◌ोगी। यिी गीता की साधना की ववभशष्टता ि◌ै कक यि ककसी भी भाग से आरंभ कर धीरे-धीरे सभी भागों को अपने में समाववष्ट कर लेती ि◌ै और संभवतः एक ऐसी भजकत में इसकी पररणनत ि◌ोगी जो कदाधचत् ◌्भजकतयोग से आरंभ करने ◌ेवाले साधक के भलए भी दुलभि ि◌ो। गीता की साधना सामान्य भजकतयोग या ज्ञानयोग या कमयिोग से सवथिा परे की चीज ि◌ै और इसका अभ्यास अन्य सभी पारंपररक योगों की सीमाओं से परे ले जाता ि◌ै। इसी की श्रीअरववन्द यिाँव्याख्या कर रिे ि◌ैं कक जजसे प्रचभलत तौर पर भजकत किते ि◌ैं - जजसमें व्यजकत अनतशय रूप से भगवान् ◌्के प्रनत आकृष्ट ि◌ो, या कफर जजसमें दास्य, सख्य आहद भाव ि◌ों और जजसमें भमलन-ववरि आहद उतार-चढ़ाव आ रिे ि◌ों, जजसमें व्यजकत बिुत अधधक पूजा-अचनिा आहद में रत रिता ि◌ो - यहद व्यजकत भजकत के ऐसे ककन्िीं भी बािरी लक्षणों के त्रबना भी किीं ◌ंन किींआममा की क्षीण-सी भी अभीप्सा के बल पर आरंभ करता ि◌ै तो भले ककतना भी लंबा समय कयों न लगे, तो भी आवश्यक रूप से इस गनत की पररणनत भजकत में ि◌ी ि◌ोगी। यि भजकत की एक ऐसी पराकाष्ठा ि◌ोगी जजसमें व्यजकत ि◌र चीज में, ि◌र घटना में, ि◌र क्षण अपनेप्रेमास्पद के ि◌ी दशनि करता ि◌ै। इसका पररणाम यि ि◌ोता ि◌ै कक व्यजकत में ककसी भी प्रकार की एकांधगता निीं ◌ंरिती, ककसी प्रकार की भेद बुद्धध निींरिती अवपतु सवसिमावेशी भाव आ जाता ि◌ै जजसके प्रभाव से ज्ञान अपनी सभी सीमाएँ लाघँ जाता ि◌ै कयोंकक तब सारा ब्रह्माण्ि ि◌ी भगवान् ◌्का मंहदर बन जाता ि◌ै। इसीभलए यि एक ऐसी पररपूण,ि◌ तन्मयकारी और सवांगीण भजकत ि◌ोती ि◌ै, जजसकी कक हृदय मागँा कर सकता ि◌ो या जजसकी मन का

प्रबल भाव कल्पना कर सकता िो, कयोंकक हृदय की मागाँ िोती िै अपनेप्रेमास्पद से सजन्नकटता और इस अनुभूनत में तो भगवान् ्सतत् ्िी उसके साथ िोतेिैं। और जब व्यजकत को सतत् ्परमामा के िी दशनि िोनेलगते िैं तब उनके ननभमि कम िकरना सिज िो जाता िै।

परन्तु इस प्रकार के भाव तक पिुाँच पाना आसान निीं िै कयोंकक थोड़ा-बिुत आरमभ करके व्यजकत किीं न किींरुक जाता िै। जजस प्रकार के भाव की चचागीता कर रिी िै वि बिुत िी ववभशष्ट िै। ऐसे ककन्िीं भी वणनिों में िमें सदा िी यि याद रखना चाहिये कक ये सभी वणनि ननरूपण की ककसी एक पद्धनत ववशेष का अनुसरण करते िैं कयोंकक ककसी भी मानभसक ननरूपण की यि बाध्यता िै कक वि ककसी एक धारा के अनुसार ववकभसत िोता िै जबकक जजस वास्तववक पथ से व्यजकत आरोिण करता िै वि प्रमयेक के भलए ववभशष्ट िोता िै और बिुआयामी िोने के कारण ककसी भी प्रकार के मानभसक ननरूपण से सवथिा परे िोता िै। अतः यिााँजो वणनि िै वि समझने की दृजष्ट से उिम िै परंतु वास्तववक यात्रा उससे किींअधधक ववधचत्र और श्रेष्ठतर िोती िै जजसका कोई भी वणनि संभव निीं।

प्रश्न : यिा ऊपर श्रीअरववन्द जो वणनि करते िैं वि तो उनका अपना अनुभव रिा िोगा?

उत्तर : श्रीअरववन्द केवल इतना किते िैं कक यि एक संभव माग िैजजससे व्यजकत अग्रसर िो सकता िै। वे किीं भी ऐसा निीं ंकिते कक यिी एकमात्र माग िै। परमामा की कियाओंको कोई भी व्यजकत समझ िो। कैसे सकता िै कयोंकक इस संसार को देखने का सब का अपना अलग-अलग दृजष्टकोण िै। पशु–पक्षक्षयों का अपना दृजष्टकोण िै, मनुष्यों का अपना दृजष्टकोण िै और मनुष्यों में भी प्रमयेक की चेतना के स्तर के अनुसार उन्िें संसार भभन्न-भभन्न हदखाई देता िै। इतना कि सकतेिैं कक उच्चतर चेतना के स्तर पर दृजष्टकोण श्रेष्ठतर िोता िै। और कोई भी वणनि अधधक से अधधक केवल कुछ हदशाननदेश तो दे सकतेिैं परंतुआवश्यक निीं कक व्यजकत की यात्रा उसके अनुसार चले। ककन्िीं भी दो व्यजकतयों का पथ भी कभी एक जैसा निीं ंिोता। एक िी गुरु के दो अनुयानययों तक का ववकासिम एक जैसा निीं ंिोता। इसभलए जब व्यजकत साधना-पच पर अग्रसर िोता िै तब आवश्यक निीं ंकक उसके अनुभव ऐसे ककन्िींभी वणनिों से मेल खातेिैं जो उसनेपूव िमें पढ़ या सुन रखे थे। इतना अवश्य िै कक यहद व्यजकत का भगवान् ्के प्रनत लगाव िै तो वि जजस ककसी भी पथ से अवश्य िी उनकी ओर बढ़ता िी जाएगा।

परंतु इससे यि अथ िभी निीं ननकाल लेना चाहिये कक ये सब वणनि ननरथकि िैं। अवश्य िी इनका अपना बिुत भारी मित्त्व िै। परंतु इस प्रकार की चीजों को एक संतुभलत तरीके से लेने की आवश्यकता िै परंतुचूंकक सामान्यतया बुद्धध में इतनी पररपकवता निीं ंिोती इसभलए व्यजकत ऐसे वणनिों को संतुभलत रूप tilde F निीं ले पाता। िमें सदा िी यि ध्यान रखना चाहिये कक ककन्िीं भी मानभसक सूत्रों में ननरूवपत करते िी कोई भी समय अपनेसवांगीण स्वरूप का बिुत कुछ खो बैठता िै। परंतु कफर भी इन समयों का ननरूपण ककया जाना लाभदायक िो सकता िै।

इसके बाद, इस योग का अभ्यास एकमात्र केंरीय मुजकतदायी ज्ञान के सतत् ्आन्तररक स्मरण की मागँ करता ि◌ै, और इसके साथ ि◌ी इस स्मरण को प्रगाढ़ बनाने के भलए कम ि◌में इस ज्ञान की ननरन्तर सकिय मूत ि◌रूपों में अभभव्यजकत सजममभलत ि◌ो जाती ि◌ै। सब में एक ि◌ी आममा ि◌ै, एकमेव भगवान ि◌ी सब कुछ ि◌ैं; सब भगवान् ्में ि◌ैं, सब भगवान् ्ि◌ैं और ववश्व में भगवान् ्के अनतररकत और कुछ भी निीं ◌ंि◌ै - यि ववचार या यि श्रद्धा तब तक कायकिता का संपूण ि◌आधार या पृष्ठभूभम रिती ि◌ै जब तक कक यि उसकी चेतना का संपूण ि◌तत्त्व ि◌ी निीं बन जाती। इस प्रकार के स्मरण को, अपने-आप को कियाशील बनाने वाले इस प्रकार के ध्यान को अंत में उसके – जजसका ि◌म इतने शजकतशाली रूप से स्मरण करते ि◌ैं अथवा इतनेअनवरत रूप से ध्यान करते ि◌ैं, - प्रगाढ़ और ननबाधि दशनि तथा जीवंत और सवसिमावेशी चेतना में बदल जाना चाहिये और ननश्चय ि◌ी यि बदल भी जाता ि◌ै। कयोंकक यि प्रमयेक क्षण समस्त सिा, संकल्प और कम ि◌के उद्गम से संबद्धता रखनेके भलए बाध्य करेगा और इसके साथ ि◌ी एकाएक सभी ववभभन्न रूपों तथा प्रतीनतयों का उस 'तत्'् में, जो इनका कारण और धतिा ि◌ै, ग्रिण और अनतिम ि◌ो जाता ि◌ै। यि माग ि◌ववश्वव्यापी आममा की कृनतयों को सवत्रि ि◌ी स्पष्ट एवंसजीव रूप में, भौनतक रूप में देखने के समान ि◌ी प्रमयक्ष रूप में, त्रबना देखे अपने गंतव्य तक निींपिुँच सकता। अपनी चरमावस्था में यि अनतमानस, परामपर की उपजस्थनत में सतत् ्ननवास, धचंतंन, संकल्पन और कम–ननष्पादन की जस्थनत तक उठ जाता ि◌ै। जो कुछ ि◌म देखते और सुनते ि◌ैं, जो कुछ भी ि◌म स्पश ि◌करते और अनुभव करते ि◌ैं, जजस सब के ववषय में ि◌म सचेतन ि◌ैं, उस सब को ि◌में उसी वस्तु के रूप में जानना और अनुभव करना ि◌ोगा जजसकी ि◌म पूजा और सेवा करते ि◌ैं; सभी को भगवान् ्की प्रनतमा में पररणत करना ि◌ोगा, सभी को उसे उसके देवता के ननवासधाम के रूप में देखना ि◌ोगा तथा शाश्वत सवव्यािपकता से आवररत करना ि◌ोगा। बिुत पिले भी निीं तो अपनी समाजप्त के समय यि कममिाग,ि◌ भागवत् ्उपजस्थनत और संकल्प एवं ◌ंबल के साथ अन्तभममलिन ि◌ोनेपर, एक ज्ञानमाग ि◌में बदल जाता ि◌ै जो ऐसे ककसी भी माग ि◌से अधधक पूण ि◌एवं सवांगीण ि◌ोता ि◌ै जजसे कोरी मानवी मनत रच सकती ि◌ै या बुद्धध की खोज उपलब्ध कर सकती ि◌ै।

और यि सब वणनि भी गीता की जो पररणनत ि◌ै, 'सवधिमिान्पररमयज्य', उसका एक सीभमत रूप ि◌ै कयोंकक जजस 'सवधिमिान्पररमयज्य' की जस्थनत तक गीता उठा ले जाती ि◌ै वि तो ककसी भी ऊँची से ऊँची मानवीय कल्पना से परे की जस्थनत ि◌ै। उसका तो कोई ओर-छोर ि◌ी निीं। परंतु अधधकांशतः ककसी जस्थनत ववशेषे पर पिुँचने पर व्यजकत को यि भ्रम ि◌ो जाता ि◌ै कक उसने सभी धमों को, अपनेसभी ढाचाँ या संरचनाओं को पूणतिया भगवान् ्को अवपति कर हदया ि◌ै और पूणतिा प्राप्त कर ली ि◌ै। ि◌मारे मानवीय मन को यि आभास निीं ि◌ोता कक जजसे वि पूणतिा मानता ि◌ै वि तो कोई प्राणणक या मानभसक आिंबर मात्र ि◌ो सकता ि◌ै जो चकाचौंध करने ◌ेवाले रूपों में अपनेआप को ि◌मारे समक्ष प्रस्तुत करता ि◌ै। सच्ची पूणतिा केवल यिी ि◌ो सकती ि◌ै कक ि◌मारे द्वारा परम प्रभु का संकल्प ननबाधि रूप से अपनेआप को अभभव्यकत कर सके। ि◌मारा बािरी आवरण उस संकल्प की अभभव्यजकत में यहद कोई बाधा ि◌ालता ि◌ै तो इसका अथ िि◌ै कक पूणमिव की जस्थनत अभी स्थावपत निीं ि◌ुई ि◌ै। इसभलए 'सवधिमान्पिररमयज्य' की जस्थनत में पूणतिा हदव्य ववधान के अनुसार ि◌ोती ि◌ै न कक ि◌मारे मानकों के अनुसार और जब यि जस्थनत आती ि◌ै तब ि◌ो सकता ि◌ै कक उसकी बािरी अभभव्यजकत ककन्िीं वणनिों के अनुरूप प्रतीत ि◌ोती ि◌ो और यि भी संभव ि◌ै कक वि ककन्िीं भी वणनिों से सवथिा परे ि◌ो। कयोंकक जब तक वि जस्थनत निीं ◌ंआती तब तक

तो व्यजकत को लगता िै कक वि ककन्िीं आधारों की सियता से, ककसी माग िववशेषे के अनुसार अग्रसर िो रिा िै, परंतु जब व्यजकत के द्वारा हदव्य संकल्प त्रबना ककन्िीं ववकृनतयों के अभभव्यकत िोने लगता िै तब उसका अपना िी ववधान िोता िै और वि िमारे ककन्िीं भी ववधानों और वणनिों की पकि में निीं आता। श्रीअरववन्द पर भी यहद िम अपने मानवीय मानदण्िों को प्रयुकत करने ेका प्रयास करें तो वे भी कदाधचत् ्िी उनमें खरे उतरेंगे कयोंकक िमारे ऊँचे से ऊँचेमानदंिभी बिुत िी दककयानूसी िोतेिैं। इसभलए पूणतिा आहद जस्थनतयों के संबंध में व्यजकत के अपनेववचार रितेिैं जबकक सच्ची चीज उन सभी ववचारों और धारणाओं से परे रिती िै। सामान्यतया इसी प्रकार की प्रचभलत धारणाओं के कारण योग में ननववकिल्प समाधध आहद अवस्थाओं को बिुत ऊँचा स्थान हदया जाता रिा िै। ऐसी िी योग की कुछ पुस्तकें पढ़ने पर स्वयंश्रीमाताजी को यि शंका उठी कक उन्िें तो कभी उस प्रकार की जस्थनतयों के अनुभव निींप्राप्त िुए जजनका उन पुस्तकों में वणनि भमलता िै। श्रीअरववन्द से भमलनेपर जब यि शंका उन्िोंने उनके समक्ष प्रकट की तो श्रीअरववन्द ने किा कक स्वयं उन्िें भी कभी ऐसी जस्थनत का अनुभव निीं ि ुआ िै। अतः जब िम पारंपररक योग आहद की पुस्तकें पढ़ते िैं तब उनमें अनेक प्रकार की समाधध अवस्थाओं के वणनि पाते िैं और िमारे अंदर ऐसी धारणाएँ बैठ जाती िैं मानो वे अवस्थाएँ अवश्य िी योग की बिुत ऊँची अवस्थाएँ िोंगी। परंतु श्रीअरववन्द ने इस ववषय पर अपनेपत्रों में यि स्पष्ट ककया िै कक प्रायः ऐसी समाधध अवस्थाएँ सच्ची अवस्थाएँ न िोकर अचेतनता में धगरना िी िोता िै। ऐसा तब िोता िै जब व्यजकत ककसी तरि सूक्ष्म प्राणणक या मानभसक जगत् ्में प्रवेश करता िै परंतु विाँ सचेतन बनेरिने की क्षमता न िोने के कारण ज़िवत् ्िो जाता िै। इसभलए वास्तव में इसका व्यजकत पर कोई ववशेषे सकाराममक प्रभाव निीं ंिोता। उदिारण के भलए, जब िीीास्थल में श्रीमाताजी ध्यान कर रिी थींऔर अनतमानभसक अवतरण िुआ तब एक दृजष्टकोण से देखें तो विाँ उस समय ववद्यमान भौनतक वस्तुओं को भी अनतमानभसक चेतना का स्पश िप्राप्त िुआ था। परंतु यि तो कोई भी समझ सकता िै कक आणखर उन वस्तुओं में उस चेतना को ग्रिण करनेकी ककतनी क्षमता िो सकती थी? इसी प्रकार जजन समाधध आहद अवस्थाओं का वणनि पढ़ने-सुनने ेमें आता िै वे ेअधधकतर तो ऐसी अवस्थाओं के िी वणनि िैं जजनमें व्यजकत सचेतन निीं ंरि पाता और उसे वि समाधध अवस्था की संज्ञा दे देता िै।

जब श्रीअरववन्द ने अनतमानभसक योग की घोषणा की तब लोगों ने यि किते िुए इसका उपिास ककया कक योधगयों को तो बिुत पिले से िी सजच्चदानंद के स्तर तक के अनुभव प्राप्त िोते रिे िैं और वे तो अभी भी उससे बिुत ननचले स्तर, अनतमानस, की िी बात कर रिे िैं। तब श्रीअरववन्द ने स्पष्ट ककया कक अवश्य िी सजच्चदानंद का अनुभव सुदीघ िकाल से प्राप्त िोता रिा िै परंतु अभी तक ऐसा आधार तैयार निींथा जिा ँकक उसे उसके सच्चे वैभव में ग्रिण ककया जा सके। उदिारण के भलए ककसी ववषय में पारंगत भशक्षक यहद भशशुओं की कक्षा को पढ़ाने के भलए जाएँ तो भला अपने ज्ञान का ककतना अंश वे उन भशशुओं को दे पाएँगे। विींयोग्य छात्र उनके ज्ञान को अधधक ग्रिण कर सकते िैं और उसका लाभ उठा सकते िैं। यिी श्रीअरववन्द का किना िै कक केवल अनतमानस के आने ेपर िी अध्यामम को सच्चा आधार प्राप्त िोगा जिाँमुकत रूप से वि अपनी किया कर सके। उससे पिले िमारी मानवीय चेतना में तो उसकी किया बाधधत िो जाती िै। इसी के कारण उन्िोंने अनतमानभसक रूपांतरण को अपररिाय िऔर अवश्यंभावी बताया।

इसभलए वास्तव में करने ेयोग्य एक िी सच्ची चीज िै और वि िै अपने आप को पूण िसच्चाई के साथ अपनेगुरु को, श्रीमाताजी को समवपति कर देना और इतने ेपूण िरूप से समवपति कर देना कक कोई अभीप्सा आहद करना भी ननरथकि पररश्रम प्रतीत िो कयोंकक तब अन्य कोई अभीप्सा रिती िी निीं। जब िम भगवान् ्से भजकत आहद की मागँ करते िैं तब भी अधधकांशतः तो िम अपने आप के अिं के ऊपर िी कें हरत रिते िैं और उसी की पुजष्ट का प्रयास कर रि िोते िैं। इसीभलए श्रीमाताजी किती िैं कक भगवान् ्को देखने की, उन्िें प्राप्त करने ेकी अनतशय उमकंठा भी उनके और िमारे बीच एक आवरण का काम कर सकती िै। अतः सच्ची चीज िै अपनेआप को पूणरूपेण श्रीमाताजी के िाथों में, भगवान् ्के िाथों में सौंप देना और कफर वे जैसे चािें वैसे ननवाधि रूप से िमारे अंदर और िमारे द्वारा अपना संकल्प अभभव्यकत करें। जब तक िमारे अंदर ककसी भी प्रकार की स्पिृा रिती िै, भले िी वि ककतनी भी सूक्ष्म कयों न िो, तब तक वि िमारी अज्ञानमय अवस्था को िी दशाति िै कयोंकक परमामपा के अंदर ककसी प्रकार की स्पिृा निीं िो सकती और यहद िम उनसे सच्चे रूप से जुडे िैं, उनके प्रनत समवपति िैं और उन्िीं का संकल्प िमारे द्वारा अभभव्यकत िोता िै तो िमारे अंदर भी स्पिृा निीं रि सकती। इसभलए स्पिृा िोना िमारी अपररपकव अवस्था का सूचक िै।

अन्त में, यज्ञ-रूपी इस योग का अभ्यास िमें अपनेमन, संकल्प और कम िमें से अिंभाव के समस्त आन्तररक अवलंबनों को मयागनेके भलए और अपनी प्रकृनत में से इसके बीज, इसकी उपजस्थनत एवं इसके प्रभाव को ननकाल फेंकने ेके भलए बाध्य करता िै। सब कुछ भगवान् ्के भलये िी करना िोगा; सभी कुछ को भगवान् ्की ओर िी लक्षक्षत करना िोगा। एक पृथक् सिा के रूप में स्वयंके भलए िमें कुछ निींकरना चाहिए; चािे पड़ोसी, भमत्र और पररजन िों, अथवा देश या मानवजानत या अन्य प्राणी िों, दूसरों के भलये भी मिज इसभलए कुछ न करना चाहिए कक वे िमारे ननजी जीवन, ववचार और भावुकता से समबद्ध िैं, अथवा इसभलए कक िमारा अिं स्पिृा के वशीभूत िो उनकी भलाई में अधधक रुधच रखता िै। कम ितथा ववचार के इस तरीके से सभी काय िऔर समस्त जीवन भगवान् ्की अपनी ववराट् वैश्व सिा के ननःसीम मजन्दर में उसकी दैननक सकिय आराधना और सेवा िी बन जाते िैं। जीवन व्यजकत में शाश्वत का अधधकाधधक एक ऐसा यज्ञ बनता जाता िै जो अनवरत एक सनातन परामपरता के प्रनत स्वयमेव अवपति िोता रिता िै। यि सनातन ववश्वगत आममा के क्षेत्र की ववशाल यज्ञीय भूभम में अवपति ककया जाता िै; और शाश्वत शजकत या सवव्यािवपनी माता िी स्वयंइसे अवपति करती िै। अतएव, यि माग िकमों द्वारा और कमगित भाव तथा ज्ञान द्वारा भमलन एवं समागम प्राप्त करनेका माग ििै, और यि वैसा िी पूण िऔर सवांगीण िै जैसा िमारी ईश्वराभभमुख इच्छाशजकत आशा कर सकती िै, अथवा जैसा िमारी आमम-शजकत कायाजन्वत कर सकती िै।

इसके अंदर एक सवांगीण और परम कमयिोग के माग िकी समस्त शजकत ववद्यमान िै, परंतु हदव्य आममा और स्वामी के प्रनत अपनेयज्ञ और आममोमसग िके ववधान के कारण, यि माग िएक ओर तो प्ेरेममाग िकी संपूण िशजकत से युकत िोता िै और दूसरी ओर ज्ञानमाग िकी संपूण िशजकत से समपन्न िोता िै। इसके अन्त में ये तीनों हदव्य शजकतयाँ एक-दूसरे से घुल-भमलकर और एकीभूत, पररपूररत एवं पूण ििोकर एक साथ काम करती िैं।

जजन अनुभवों का श्रीअरववन्द यिा ाँवणनि कर रिे िैं वे सभी संभव िैं और अवश्य िी लोगों को ऐसे अनुभव िुए िैं। परंतु स्वयं अपनेबारे में श्रीअरववन्द बतातेिैं कक आरंभ से िी उन्िोंनेअपनेगुरु के ननदेशानुसार अपने अंतःजस्थत परम पथप्रदशकि को पूण िि रूप से समवपति करने ेका माग िि अपनाया जजसे कक श्रीरामकृष्ण परमिंस त्रबल्ली के शावक के भाव का रूपक देते थे ेकयोंकक त्रबल्ली का शावक त्रबना ककसी धचंता के अपनी माँ के भरोसे रिता िै और माँ उसे अपनेमुँिमें लेकर सुरक्षक्षत रूप से जिाँकिीं ंले जाना िोता िै विाँ ले जाती िै। साथ िी, जो लोग समपणि का माग िि अपनाते िैं उन सब का भी अपना-अपना ववभशष्ट ववकासिम िोता िै। ककसी पद्धनत-ववशेषे का अनुसरण करने ेवालों में भी सब का अपना-अपना भभन्न ववकास िोता िै। उदिारणाथ,ि श्रीअरववन्द आश्रम में समान िी गुरु की छत्रछाया में रिते िुए भी सभी के अपने-अपने इतने भभन्न प्रकार के अनुभव थे जो कक िमें श्रीअरववन्द के योग-ववषयक पत्रोिं में पढ़नेको भमलते िी िैं। इसभलए भले कोई भी माग िि िो, पर व्यजकत को सदा िी यि भान िोना चाहिये कक िमारे अंदर परमाममा जो ववकासिम अपनातेिैं उसे ककन्िीं भी मानभसक सूत्रों में न तो बाधाँ जा सकता िै और न िी उनकी सिायता से समझा िी जा सकता िै।

प्रश्न : तब कफर जजन चीजों के ववषय में िम यि सब वणनि पढ़ रिे िैं उसके भलए िमारा कया दृजष्टकोण िोना चाहिए?

उत्तर : इन सबसे िमें यि तो अवश्य िी समझ लेना चाहिये कक पथ पर ये सब संभावनाएँ िैं या ऐसे संभव प्रिाव िैं जो ककसी साधक को भमल सकतेिैं। परंतुयि त्रबल्कुल भी आवश्यक निीं िै कक व्यजकत इन्िींके द्वारा िी िर गनत करेगा। सभी का अपना ववभशष्ट माग िि िोता िै, िालाकाँक ये जजतनी भी संभावनाएँ िैं उनका भी कुछ-कुछ अनुभव व्यजकत को माग िि में िो सकता िै परंतुआवश्यक निींकक वि अनुभव उसी िम से िो जजस िम से उसका वणनि िोता िै। परंतु एक बार अपनेआप को अपनेगुरु के िाथों में सौंपने के बाद ककसी प्रकार की व्यजकतगत चेष्टा, जैसे कक अमुक प्रकार की साधना पद्धनत या अभ्यास अपनानेकी चेष्टा यि हदखलाती िै कक व्यजकत ने वास्तव में अपने आप को अपनेगुरु को या इष्ट को सौंपा निीं िै बजल्क वि तो केवल यि सौदेबाजी िी कर रिा िै कक ककस में उसे ककतना लाभ भमल सकता िै। अवश्य िी, यहद भीतर से ककसी प्रकार के चयन करने ेकी अनुमनत या आज्ञा िो तब तो व्यजकत अवस्थानुसार यथोधचत चयन कर सकता िै अन्यथा निीं। परंतु श्रीअरववन्द जजस प्रकार के समपणि के माग िि का यिा ाँवणनि कर रिे िैं यहद व्यजकत वास्तव में उसका अनुसरण करे तो उसे यि भ्रम भी निीं िो सकता कक व्यजकतगत पुरुषाथ िि के बल पर वि स्वयं कुछ कर सकता िै कयोंकक कदम-कदम पर उसे यि मिसूस िोगा कक किया तो विी करनी िै जो श्रीमाताजी किेंगी, या प्रेरणा देंगी। सामान्यतः व्यजकत जब साधना का कोई माग िि अपनाता िै तब वि ववचार करता िै कक अमुक प्रकार का अभ्यास करने ेसे अमुक पररणाम प्राप्त िोगा, या कफर ककसी ध्यान-ववशेषे का अभ्यास करने ेसे कोई अन्य प्रकार के लाभ या पररणाम प्राप्त िोंगे। इस सब में व्यजकत पररणाम को ध्यान में रखता िै और उसी के अनुसार चेष्टाएँ करता िै। परन्तु जब िम समपणि का माग िि अपनाते िैं तब उसमें ऐसे किया-कलाप निीं ंरिते। इसमें तो व्यजकत सदा िी ककसी दूसूरी शजकत की किया के भलए खुला िोता िै जो कक अपनिी ननराले ववधान के अनुसार उसे अग्रसर करती िै जो उस व्यजकत के भलए त्रबल्कुल अप्रमयाभशत िो सकता िै। इसीभलए इसमें व्यजकत को ननज पुरुषाथ िि का भ्रम भी

निीं ंिोता। इस प्रकार के सच्चे समपणि के मनोभाव में व्यजकत के अंदर ककसी प्रकार के अभ्यास आहद करने की आंतररक चेष्टाएँ निीं ंरितीं कयोंकक सब कुछ तो हदव्य संकल्प के िाथों में िोता िै और यिी तो सच्ची स्वतंत्रता िै जजसमें कक व्यजकत को ननज पुरुषाथ िका और उसके पररणामों का बोझ निीं ंढोना पड़ता चािे बािर से देखने में उसका जीवन ककतना भी कठोर साधनामय जीवन कयों न प्रतीत िोता िो। वि तो ननश्चेष्ट रूप से जगज्जननी की किया के प्रनत खुला िोता िै और शुरू में केवल उन्िें अपने द्वारा अधधकाधधक ननबाधि रूप से काय िकरने ंदेने का प्रयास करता िै।

शभजाशभजिलैरिें मोक्ष्यसे कमुबुन्निैः ।

संन्यासयोगयजक्तात्मा विमक्जतो मामपैजष्यसस ।। २८॥

२८. इस प्रकार तू ूशभज-अशभज िल-रूप कमुबुंनि से मक्जत हो जाएगा; और संन्यास के द्िारा भगिान् ्के साथ आत्मा में यक्जत होकर तू मक्जत हो जाएगा

और मुझेप्राप्त िो जाएगा। तब कामना और अिंकार के बनाए िुए भेद भमट जाते िैं। कयोंकक अपनेकम िके शुभु फल की व्याकुलता निीं ंरिती, और दुःखद पररणाम से अलगाव निीं ंिोता अवपतु समस्त कम िऔर फल उन परमेश्वर को अवपति कर हदया जाता िै जजनके कक जगत् ्के सारे कम िऔर फल सदा से िैं, इसभलए (कम िकरनेवाले भकत के भलए) कम िका कोई बन्धन निीं ंिोता। कयोंकक एक पूण िआमम-दान के द्वारा सारी अिंकारमय कामना हृदय से भमट जाती िै और जीव के पृथक् जीवन के आन्तररक संन्यास के द्वारा भगवान् ्और व्यजष्टगत आममा (जीव) के बीच पूण िएकमव भसद्ध िो जाता िै। संपूण िसंकल्प, संपूण िकम,ि समपूण िफल भगवान् ्के िो ज ते िैं, और ये ववशुद्ध और प्रबुद्ध प्रकृनत के द्वारा हदव्य रूप से किया करते िैं और अब ये सीभमत व्यजकतगत अिं से संबद्ध निीं रि जाते। इस प्रकार समवपति प्रकृनत अनन्त की एक मुकत वाहिका बन जाती िै; जीव अपनी आध्याजममक सिा में, अज्ञान और बन्धन से ऊपर ननकलकर सनातन पुरुष के साथ अपनेएकमव में लौट आता िै।

यिा ँजब भगवान् ्किते िैं कक 'तू शुभु-अशुभु फल-रूप कमबंधिन से मुकत िो जाएगा', तब िमें यि ध्यान में रखना िोगा कक यि शुभु और अशुभु केवल िमारी अिमाममक चेतना के भलए िोता िै। भगवान् ्की किया तो स्वाभाववक रूप से सदा िी शुभु िै। यहद िम परमाममा की चेतना से जुड़े िों तो िमें कुछ भी अशुभु निीं ंलगता। परंतु चूँकक िम एक पृथक् अिं की दृजष्ट से देखते िैं जबकक जगत्–्व्यापार िमारे अिं के दृजष्टकोण से निीं चलता, इसभलए जब कोई चीज अिं को अनुकूल लगती िै तब िम उसे शुभु की संज्ञा दे देते िैं और जब वि प्रनतकूल लगती िै तब उसे अशुभ कि देते िैं। िमारे सभी सुखों-दुःखों का भी यिी कारण िै। िालाकँक इस श्लोक से यि अथ िनिीं लगा लेना चाहिये कक जजसे िम अशुभु किते िैं सब के भलए उसका अजस्तमव समाप्त िो जाएगा, परंतु ुवि उस व्यजकतववशेष की चेतना से भमट जाएगा जो भगवान् ्से युकत िै। जब व्यजकत भगवान् ्के प्रनत समवपति िोगा और उनके भलए कम िकरेगा तब वि शुभु-अशुभु से मुकत िो जाएगा। और समवपति िोनेका लक्षण िै व्यजकत को अपने इष्ट की किया में आनन्द आनेलगता िै। यहद यि समपणि सिष िन िो पर ईश्वर की इच्छा के प्रनत शांत अधीनता

का भाव िी िो तब व्यजकत शांत भाव से उनकी इच्छा को भशरोधाय ितो करता िै परंतु उसे उसमें आनन्द निीं आता। आनन्द तो तब आता िै जब उसे उनसे इतना प्रेम िो कक उनकी सभी कियाएँ अच्छी लगने लगे। जब एक माँअपने बच्चे की शरारतों को देखती िै तो भले िी बािर से वि जो भी भाव दशाितिी िो परंतुभीतर से उसे अपने बच्चेकी सभी शरारतों से सुख की अनुभूनत िोती िै। जब मानवीय आसजकत िी सारे दृजष्टकोण को बदल सकती िै तब यहद सच्चा प्रेम िो तब तो अपनेप्रेमास्पद की किया में आनन्द आना स्वाभाववक िी िै। यि एक मूलभूत मनोवैज्ञाननक भाव िै जजसमें िमारी चेतना शुभ-अशुभ से सवथिा परे िो जाती िै और उसे चीजें उस दृजष्टकोण से गोचर िी निीं िोतीं। परंतु यि तो एक सवथिा भभन्न जस्थनत िै जजसे प्राप्त करना सिज निीं। इसभलए सामान्यतः जो अथ िलगाया जाता िै कक व्यजकत को अच्छे-बुरे, शुभ-अशुभ के बीच कोई अंतर िी निीं हदखाई देता, वि सिी निीं िै कयोंकक यि भेद न देख पाना ककसी हदव्यता की निीं अवपतु ज़िता की ननशानी िै। अतः जब तक व्यजकत के अंदर अिमाममक चेतना िै तब तक उसे चयन करना िी िोगा, वववेक रखना िी िोगा। परमामम की चेतना से युकत िोने ेपर भी चयन तो करना िी िोता िै, परंतु वि चयन शुभ-अशुभ, अच्छे-बुरे या िमारे अन्य ककन्िींभी मानवीय मानदंडों केआधार पर निीं ंिोता। वि तो हदव्य जननी के ववधान के अनुसार िोता िै। पर कफर भी चयन तो करना िी िोता िै। उदािरण के भलए स्थिकें अपनेआप में कोई भी अच्छी या बुरी निीं ंिोतीं परंतु िमें अपनेगंतव्य के अनुसार उनमें से चयन करना िोता िै। विी स्थिक ककसी समय िमारे गंतव्य के अनुसार अनुकूल िो सकती िै और अन्य ककसी समय उसके प्रनतकूल िो सकती िै। इसभलए यि किना त्रबल्कुल मूखतिापूण िऔर बेतुकी बात िोगी कक चूँकक िमारे अंदर समता आ गई िै इसभलए िम सभी स्थिकों के प्रनत समान भाव रखकर ककसी पर भी आगे बढ़ सकते िैं। जैसे भौनतक रूप से इस बात का बेतुकापन िमें मिसूस िोता िै वैसे िी थोि़ ेसे ववकास और पररष्करण के द्वारा िमें मनोवैज्ञाननक ववषयों में सामान्यतया िम जजस प्रकार की त्रबल्कुल बेतुकी बातें करते िैं उनका कुछ-कुछ भान िोने ेलगता िै। अतः न तो परमामम िी सनकों के अनुसार चलते िैं और न िी वे लोग अपनी सनकों के अनुसार चलते िैं जो परमामम से युकत िैं।

व्यजकत की प्रकृनत में भले जो भी कोई गुजमथया,ाँ गाठें आहद िों, पर यहद एक बार उसके यि समझ में आ जाता िै कक वि अपनी सच्ची सिा के त्रबना निीं ंजी सकता और वि भगवान् ्से ऐकय साधनेके माग िपर चल पि़े े तो सिज िी उसे ज्ञान आ जाता िै। एक बार यि भाव आनेपर कफर मूलभूत रूप से तो इन गुजमथयों आहद की समस्या समाप्त िो जाती िै कयोंकक कफर तो यि केवल इस पर ननभरि करता िै कक उस माग िपर व्यजकत ककतनी तीव्रता से चलता िै। उस माग िकी ओर उन्मुख िोना, उस पर चल पि़ना िी सबसे मूलभूत बात िै। एक बार जब यि यात्रा आरंभ िो जाए तब तो कफर केवल उसमें लगनेवाले समय की िी बात िै। विीं, यहद बािरी प्रकृनत हदखने में बि़ी सुसंस्कृत भी िो, गुणसंपन्न भी िो, परंतु जजसमें भगवान् ्से ऐकय का यि संकल्प न आया िो तो सब वृथा िैऔर वास्तव में उसका अधधक कोई मूल्य निीं ंिोता। अतः मूल बात यिी िै कक जब तक व्यजकत अपनी सच्ची सिा से निीं जुि़ जाता, उसका अपना जो सच्चा स्वरूप िै विी निीं बन जाता, तब तक उसकी दुववधाओंका अंत निीं ंिो सकता और िोना चाहिये भी निीं अन्यथा तो जजस उद्देश्य से आममा इस अभभव्यजकत में आई थी विी ननष्फल िो जाएगा। वास्तव में तो िमारे दुःख-कष्ट, दुववधाएँ आहद सभी भगवान् ्की असीम अनुकंपा के िी बािरी धचह्न िैं कयोंकक यहद ये दुःख कष्ट न िोते तो िम सदा अपनी जस्थनत से धचपटे रितेऔर उसे छोि़ने की

और उसका अनततिमण कर ऊध्व िआरोिण करने ेकी कभी सोच िी निीं सकतेथे और केवल अपनी वतमिान क्षुर भौनतक, प्राणणक और मानभसक अवस्था में िी संतुष्ट रितेऔर कभी हदव्य जीवन की ओर प्रयाण निीं ंकरते। इसी कारण िम देखतेिैं कक भौनतक कष्ट से भी अधधक मानभसक और मनोवैज्ञाननक कष्ट पीड़ादायक िोता िै। एक गिरे ववश्लेषण के द्वारा िम देखतेिैं कक इस पीड़ा का िोना िमारी आममा को जीववत रखने के भलए आवश्यक िी िै अन्यथा तो बािरी लबादा कभी उसके प्रस्फुटन को मौका िी निीं ंदेता। यिी कारण िै कक जजन्िें सारी भौनतक सुख-सुववधाएँ उपलब्ध िैं उन्िें भी दुःख-कष्ट और यंत्रणा, मनोवैज्ञाननक और आंतररक क्षुधाएँ आहद घेरे रिती िैं। कयोंकक ये क्षुधाएँ ककन्िीं भी भौनतक सुख-सुववधाओंसे शांत निीं िोतीं। ये तो केवल अपनी आममा के संपकि में आनेसे, िम जो सच्चेरूप में िैं विी बन जानेसे िी भमट सकती िैं।

प्रश्न : भौनतक दुःख-कष्ट तो िम समझते िैं, पर मानभसक और प्राणणक पीड़ाएँ कया िोती िैं?

उत्तर : प्राणणक पीड़ाओं के पीछे प्राणणक जगत् ्की सिाएँ िोती िै जो िमें अपने उपयोग में लेकर अपनी संतुजष्ट खोजती िैं। त्रबल्कुल ननमम कोहट की प्राणणक सिाओंको तो केवल काम-वासना आहद से पैदा िोने ेवाले स्पंदनों में िी रस आता िै। उससे कुछ ऊपर की सिाओं को अपनेइंहरय भोगों की पूनत िमें रस आता िै। प्रायः िम देखतेिैं कक ककस प्रकार लड़के-लड़ककयों के बीच प्राणणक आदान-प्रदान एक आम चीज बन गई िै। पाश्चामय संस्कृनत में तो यि चीज िमें ननरंकुश रूप से भिकी िुई हदखाई देती िै। भारत में भी इसका अब पूरा प्रभाव िै। इन सभी प्राणणक संबंधों के पीछे प्राणणक सिाएँ रस लेती िैं। उन्िें उस स्पंदन में भी उतना िी रस आता िै जजसे िम मानव प्ेरेम किते िैं जजतना कक आपसी लड़ाई झगड़े,े कलि, यंत्रणा, आमम-दया आहद के स्पंदनों में। अब चूंकक वतमिान संस्कृनत मुख्य रूप से प्राणणक इच्छाओं-कामनाओंके इदि-धगदि िी घूमती िै इसभलए सब जगि इनकी तुजष्ट की एक अंधाधुंध दौड़ हदखाई देती िै। परंतु इन प्राणणक इच्छाओं का स्वभाव िी यि िै कक ये अतृप्य िैं और इस कारण इनका पीछा करते-करते मनुष्य का जीवन असंतोष और यंत्रणा से भर जाता िै।

परंतु इससे भी अधधक पीड़ा मनोवैज्ञाननक िोती िै। जब व्यजकत को जीवन ननःसार लगनेलगता िै और उसके वतमिान जीवन के तौर-तरीकों में कोई आशा नजर निींआती तब यि अमयंत पीड़ादायक जस्थनत िोती िै। यि पीड़ा तो इतनी तीव्र िो सकती िै कक व्यजकत का मानभसक संतुलन िी त्रबगड़ जाए। इसी से अमयंत पीड़ित

िोने

के कारण इससे कुछ रित की खोज में िम बढ़ती संख्या में पाश्चामय लोगों को बिुत तीव्र गनत से भारतीय आध्याजममकता की ओर मुड़ते देखते िैं। आज कदाधचत् ्िी ऐसा कोई देश िोगा जिाँ कक भारतीय गुरुओं ंका जाना

और विाँ से जजज्ञासुओंका आध्याजममक परामश िके भलए भारत आना न िोता िो। कुछ लोगों को जजन्िें मुजकत का

यि द्वार निींप्राप्त िोता वे अपनी इस पीड़ा से बचने के भलए प्रायः मादक पदाथों के सेवन की ओर भी बढ़ जाते िैं और अंततः अपना सवनिाश कर बैठते िैं। वास्तव में तो जब तक िम परमामममा को निीं ंपा लेते तब तक िमारे दुःखों का कभी अंत निीं िो सकता कयोंकक परमामम िी िमारा सच्चा स्वरूप िै इसभलए जब तक िम अपने

समोऽहं सिभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्मत न वप्रयः ।

ननजस्वरूप में न आकर ककसी अन्य के भेष को िी धारण ककये रिते िैं तब तक िमें सुख कैसे भमल सकता िै।

ये भजस्न्त तज मांभक्त्या मनय ते ेतेषजचाप्यहम् ्।। २९।।

२९. म ैसममत भूतों में समान हूँ, मजझे ेकोई भी वप्रय नहींहै और कोई द्वेष का पात्र नहीं ंहै; तथावप जो मनष्जय भस्क्तपूिकु मेरी पूजा करते हैं ि ेमझजमें हैं और म ैभी उनमें हूँ।

हदव्य शाश्वत सब भूतों में वासी िैं: सब में वे सम िैं और सभी प्राणणयों के समान रूप से भमत्र, वपता, माता, रचनयता, प्ेरेमी और भतिा िैं। वे ककसी के भी शत्रु ुनिीं और ककसी के पक्षपातपूण िप्ेरेमी निीं ंिैं; ककसी को भी उन्िोंने ेबहिष्कृत निीं ंककया िै, ककसी को सदा के भलए अपराधी घोवषत निीं ंकर हदया िै, ककसी पर उन्िोंनेकोई ननरंकुश स्वेच्छाचारी सनक के द्वारा अनुग्रि निींककया िैः सब समान िी रूप से अज्ञान में अपने-अपनेचककर काटकर अन्त में उन्िींके पास आते िैं। परंतु केवल यि पूण िभजकत िी िै जो ईश्वर का मनुष्य में और मनुष्य का ईश्वर में जो ननवास िै उसे एक सचेतन किया और एक तन्मयकारी और पूण िऐकय में पररणत कर सकती िै। परमोच्च का प्ेरेम और एक पूण िआममसमपणि िी इस हदव्य एकमव का सीधा और रुतु माग ििै।

...जजतना अधधक तुम अपने-आप को भगवान् ्को देते िो उतना िी अधधक वे तुमिारे साथ िोते िैं, पूण ि रूप से, सतत् ्रूप से, प्रनतक्षण, तुमिारे सभी ववचारों में, सभी आवश्यकताओं में, और ऐसी कोई अभीप्सा निीं ं िोती जो तमक्षण उिर न प्राप्त करती िो; और तुममें एक पूण,ि सतत् ्घननष्ठता का, एक पूण िननकटता का भाव रिता िै। यि ऐसा िै मानो तुम (उन्िें) अपनेसाथ भलये िोते िो ... मानो भगवान् ्िर समय तुमिारे साथ िों; तुम चलते िो तो वे तुमिारे साथ चलते िैं, तुम सोते िो और वे तुमिारे साथ सोते िैं, तुम खाते िो तो वे तुमिारे साथ खाते िैं, तुम सोचते िो और वे तुमिारे साथ सोचते िैं, तुम प्ेरेम करते िो और वे विी प्ेरेम िैं जो तुम प्राप्त करते िो। परंतु इसके भलये व्यजकत को अपने-आप को पूरे तौर पर, संपूण िरूप से, अनन्य रूप से देना िोगा, अपने-आप के भलए कुछ भी बचाकर न रखना िोगा, अपने-आप के भलये और अपने पास कुछ भी न रखना िोगा, और साथ िी ककसी चीज को त्रबखेरना निीं ंिैः तुमिारी सिा में छोटी-से-छोटी चीज भी जो भगवान् ्को निीं ंदी गयी िै वि बबादिी िै; यि तुमिारे आनन्द की बबादिी िै, एक ऐसी चीज िै जो तुमिारे सुख को उतना कम कर देती िै, और जो कुछ तुम भगवान्क निीं देते वि वैसा िी िै मानो भगवान् ्अपने-आप को तुमिें दे सकें इस संभावना के माग िमें तुम उसे ख़िा कर देते िो। तुम उन्िें अपनेसत्रत्रको संभात तुमिारे साथ अनुभव निीं ंकरते कयोंकक तुम उनके निीं ंिो, कयोंकक देर सकैंिों अन्य वस्तुओंऔर व्यजकतयों के िो; तुमिारे ववचार में, तुमिारी किया िै। तुमिारी भावनाओं में, तुमिारे आवेशों में... लाखों-लाखों ऐसी चीजें िैं जो तुम उन्िें निींदेते, और इसीभलये तुम उन्िें सदा अपनेसाथ अनुभव निीं करते कयोंकक ये सब चीजें तुमिारे और उनके बीच इतने सारे पदे और दीवारें िैं परंतु यहद तुम उन्िें सब कुछ दे दो, यहद तुम कुछ भी बचाकर न रखो, तो तुम जो कुछ भी करते िो, जो कुछ भी सोचते िो, जो कुछ भी अनुभव करते िो उसमें सदा, िर क्षण, वे ेसतत् ्और पूण िरूप से तुमिारे साथ िोंगे।

यि िमारे समपणि की एक अद्भुत कसौटी िै। यहद िम भगवान् ्की सतत् ्उपजस्थनत अनुभव निींकरते तो यि इस बात का ननजश्चत प्रमाण िै कक िम परमाममा के प्रनत निीं अवपतु अपने अिं के प्रनत समवपति िैं। यि एक सुननजश्चत आध्याजममक अनुभव िै कक यहद व्यजकत अपनेआप को भगवान् ्को पूरी तरि दे देता िै तो वि

उनकी सतत् ्उपजस्थनत अनुभव करता ि ै। एक प्रसंग आता ि ै जब उद्धव जी गोवपयों को ज्ञान देने के भलए गए। जब वे श्रीराधा रानी के पास उन्ि ेंज्ञान देने के उद्देश्य से गए और समझानेलगे कक उन्ि ेंभगवान् ्के भलए ववरि निीं ंकरना चाहिये तो श्रीराधा रानी ने किा कक भगवान् ्तो सतत् ्ि ी उनके साथ ि ैं और उन्ि ें छोड़कर तो वे

ेकभी

किीं ंगए ि ी निींऔर न कभी किीं जा सकते ि ैं। इसके साथ ि ी यि प्रसंग भी आता ि ै कक जब उद्धव जी को इस बात पर ववश्वास निीं ि ुआ तो प्रमाणस्वरूप राधारानी ने उन्ि ेंभगवान् ्के दशनि करा हदये। यि देखकर तो उद्धव जी को बिुत ि ी आश्चय ि ुआ। किने ेका अथ ि ै कक जजसे इस सतत् ्उपजस्थनत का अनुभव ि ोता ि ै विी जानता ि ै

कक ककस प्रकार ि र छोटी से छोटी चीज में भी व्यजकत को भगवान् ्की सतत् ्उपजस्थनत अनुभव ि ोती ि ै।

श्रीमाताजी ने स्वयंके जीवन का अनुभव बतातेिुए किा कक जब तक श्रीअरववन्द भौनतक शरीर में उपजस्थत थे तब तक कभी भी उन्ि ेंगंभीर से गंभीर काम करने ेपर भी कभी भार निीं ंअनुभव ि ुआ और लगभग तीस सालों तक वे सदा ि ी श्रीअरववन्द की चेतना के अवलंब के द्वारा त्रबल्कुल ननजश्चंत रूप से अपनी किया करती थीं। श्रीअरववन्द की चेतना सतत् ्ि ी उनके साथ थी। क्षण भर के भलए भी कभी उन्िोंनेउनकी उपजस्थनत का अभाव निीं ंमिसूस ककया। परंतु उनका संबंध तो प्ेरेम से भी अधधक प्रगाढ़ था कयोंकक यि तो दो शरीरों में एक ि ी तत्त्व के ववद्यमान ि ोने ेकी अनुभूनत ि ै जजसकी प्रगाढ़ता की कल्पना निीं ंकी जा सकती। जब व्यजकत का ककसी भी

भाव

से भगवान् ्से प्ेरेम ि ो जाए तब भी बिुत ि ी आनन्द का अनुभव ि ोता ि ै परंतुयहद एक ि ी तत्त्व दो शरीरों में अभभव्यकत ि ोता ि ो तब तो उसे परम आनन्द की अनुभूनत का तो वणनि ि ी निीं ि ो सकता।

इसीभलए श्रीमाँ किती ि ैं कक, "तुमिारी सिा में छोटी-से-छोटी चीज भी जो भगवान् ्को निीं ंदी गयी ि ै वि बबादिी ि ै; यि तुमिारे आनन्द की बबादिी ि ै, एक ऐसी चीज ि ै जो तुमिारे सुख को उतना कम कर देती ि ै, और जो कुछ तुम भगवान् ्को निीं देते वि वैसा ि ी ि ै मानो भगवान् ्अपने-आप को तुमिें दे सकें इस संभावना के माग िमें तुम उसे खिा कर देते ि ो।" परंतु चूंकक िमारे अंदर बिुत से भगवद्ववरोधी भाग ि ैं जो अपनेआप को भगवान् ्को समवपति करने ेसे िमें रोकतेिैं, इसभलए यहद इन सब भागों के कोलािल को अनसुना करके िम भगवान् ्की ओर चल सकें, अपनेआप को भगवान् ्को समवपति कर सकें तो यि िमारी सच्चाई की परीक्षा और िमारी सच्चाई का प्रमाण ि ोगा। यहद ये सभी ववरोधी भाग न ि ों तो िमारी सच्चाई की कोई कसौटी ि ी निीं ंरिेगी।

प्ेरेम एक ऐसी शजकत ि ै जो परमाममा को भी वशीभूत कर लेती ि ै। इसीभलए श्रीअरववन्द एक स्थान पर किते ि ैं कक परमाममा सभी कुछ के माभलक ि ैं परंतु प्ेरेम के सेवक ि ैं। स्वयं भगवान् ्भी एक स्थान पर किते ि ैं कक वे व्यजकत को अन्य सभी वांनछत चीजें तो दे देते ि ैं - जैसे कक ज्ञान, मान-सममान, साधन, शजकत-सामथ्य,ि साधना, भसद्धध – परंतु अपनी भजकत सिज ि ी निीं ंदेते। कयोंकक उससे तो वे स्वयंिी भकत के वश में ि ो जाते ि ैं।

वतमिान में तो िमनेअपनी सारी शजकतयाँ अपनेमन, प्राण और शरीर के सुख साधन में, अिं के सुख साधन में, पररवार आहद में लगा रखी ि ैं। इसभलए भगवान् ्को देने के भलए तो िमारे पास लेशमात्र भी कुछ बचा निीं ंरिता।

इसीभलए भारतीय संस्कृनत में संयम और ननग्रि आहद अनुशासनाममक पद्धनतयाँ इतनी प्रचभलत थींताकक यहद कुछ ऊजिा संधचत ि ो सके तो व्यजकत भगवान् ्की ओर गनत कर पाए। अन्यथा तो व्यजकत अपने 'म ैं' और 'मेरे' के भाव से इतना ग्रस्त ि ोता ि ै कक अपनेसे अलग कोई चीज उसे सुझती ि ी निीं। जब व्यजकत ककसी तरि भगवान् ्

की ओर मुिता भी िै तब भी प्राय: बाह्य प्रकृनत तो लगभग वैसी िी असंस्कृत प्रकार की रिती िै। परंतु ु आममाभभमान में व्यजकत को यि पान िी निीं िोता कक उसकी प्रकृनत इतनी असंस्कृत िै। इसीभलए ऐसी प्रकृनत को सुसंस्कृत बनानेमें लंबा समय लगता िै।

अवप चेत्सदजरजाचारो भजतेमामनन्यभाक् ।
सािेजि स मन्तव्य: सम्यनव्यिससतो दह स: ।। ३० ।।

३०. यदद बहजत दरजाचारी मनष्जय भी अनन्य और पूणु ुप्रेम के साथ मेरी ओर मिजता है तो उसे सिा जही मानना चादहये क्योंकक उसमें प्रयत्न का सदृजद्संकल्प और प्रयास समधजचत और पूणु ुहैं।

ज्ञक्षप्रं भिनत िमुात्माशश्च्छािास्न्तं ननगच्छनत ।
कौन्तेय प्रनत जानीदह न मे भक्त: प्रणश्यनत ।। ३१।।

३१. िह मनष्जय शीघ्र ही िमुात्मा बन जाता है और शाश्ति शास्न्त को प्रास करता है। हे कौन्तेय! यह ननस्श्चत जान कक मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता।

मि सब के अन्दर समान रूप से जो भागवत् ्उपजस्थनत िै वि अन्य कोई प्राथभमक मागँ निीं ंकरती यहद एक बार श्रद्धा और हृदय की सच्चाई के साथ तथा मूलभूत पूणतिा के साथ सवांगीण आममसमपणि कर हदया जाए। यि द्वार सभी की पिुँच के भीतर िै, सभी इस मंहदर के अन्दर प्रवेश कर सकतिं: सवप्रेिमी के इस प्रासाद में मिारे सारे सांसाररक भेद लुप्त िो जाते िैं। दूसूरे शब्दों में, पूण िआममसमपणि का संकल्प आममा के सभी द्वारों को पूरा खोल देता िै और इसके प्रमयिुर में मनुष्य" के अन्दर भगवान् ्का पूण िअवतरण और आममदान ले आता ि,ै और यि एकाएक िी ननमन प्रकृनत के आध्याजममक प्रकृनत में मवररत रूपान्तर के द्वारा िमारे अन्दर के सभी कुछ को

"यहद कोई भगवान् ्को चािे तो भगवान् ्स्वयंउसके हृदय के शुद्धधकरण का भार ले लेंगे, साधना को आगे बढ़ाएँगे तथा आवश्यक अनुभव प्रदान करेंगे; यहद व्यजकत में भगवान् ्पर भरोसा और ववश्वास तथा समपणि का संकल्प िो तो इस तरीके से घहटत िो सकता िै और िोता िी िै। कयोंकक भगवान् ्का इस प्रकार ग्रिण करना व्यजकत के एकमात्र अपनेननजी प्रयास पर ननभरि न िोकर अपने-आप को भगवान् ्के िाथों में सौंप देनेपर ननहित ि ैऔर इसके भलए अपररिाय िि ै व्यजकत का भगवान् ्पर भरोसा और ववश्वास और उिरीर आममदान। यिी वास्तव में साधना का वि भसद्धांत िै जजसका स्वयंमनैं ेपालन ककया था और यिी योग की केंरीय पद्धनत िै जजसकी मनैं पररकल्पना की िै। म ैंसमझता िूँ कक यि लेकर भागवत् ्सिा के ववधान के अनुरूप पुनगहिठत कर देता िै और उसके सदृश बना देता िै। आममसमपणि का संकल्प अपनी शजकत से ईश्वर और मनुष्य के बीच के पदे को िटा देता िै; प्रमयेक भूल को भमटा देता और प्रमयेक ववघ्न को नष्ट कर िालता िै। जो लोग अपनी मानवी

शजकत के भरोसे ज्ञान-साधन या पुण्यकम िअथवा कठोर आमम-संयम द्वारा अभीप्सा करते िैं वे ब्रि े कष्ट से शाश्वत की ओर आगे बढ़ पातिैं;

विी चीज िै जजसे श्रीरामकृष्ण ने त्रबल्ली-शावक की पद्धनत के रूपक के द्वारा बतलायी थी। परन्तु सभी एकाएक इसका अनुसरण निीं कर सकते;े इस तक आने में उन्िेंसमय लगता िै - यि सबसे अधधक तब ववकभसत िोती िै जब मन और प्राण शांत िो जाते िैं...

आंतररक समपणि का सारमम िै भगवान् ्पर भरोसा और दृढ़ ववश्वास। व्यजकत यि मनोभाव अपनाता िै : "म ैं भगवान् ्को चािता िूँ, और ककसी चीज को निीं।ं म ैंपूणतिः अपने को उन्िेंदे देना चािता िूँ और चूँकक मेरी अन्तरामम‍ा ऐसा चािती िै, इसभलए इसके अनतररकत और कुछ निीं िो सकता कक म ैंउनका साक्षामकार पाऊँ और उन्िेंउपलब्ध करूँ। म ैंइसके अनतररकत और कुछ निीं चािता, बस, मेरे अन्दर िोनेवाली उनकी किया मुझेउन तक ले जाए, उनकी यि किया चािे गुप्त िो या प्रकट, प्रच्छन्न िो या मूतिि म ैंआग्रि निीं करता कक ऐसा मेरे अपने समय और तरीके के अनुसार िो; भगवान् ्सब कुछ अपने समय और अपनी पद्धनत सेकरें; म ैंउनका ववश्वास करूँगा, उनकी इच्छा को स्वीकार करूँगा, दृढ़ भाव से उनकी ज्योनत, उपजस्थनत और आनन्द के भलये अभीप्सा करूँगा, सभी कहठनाइयों और ववलंबों के भीतर से गुजरूँगा, उन्िीं िपर ननभरि रिूँगा और कभी उनका पररमयाग निीं करूँगा। मेरा मन शांत िो जाए और उन पर भरोसा करे और वे इसे अपनी ज्योनत की ओर खोल दें: मेरा प्राण जस्थर िो जाए और एकमात्र उन्िीं की ओर मुि जाए और वे इसे अपनी शांनत और िष िकी ओर खोल दें। सब कुछ उनके भलये िो और स्वयं ंम ैंभी उनके भलये िोऊँ। जो कुछ िो, म ैंइस अभीप्सा और आममदान के भाव को बनाये रखूगाँ और इस पूण िभरोसे के साथ आगे बढ़ता रिूँगा कक यि संपन्न िो जाएगा।"

यिी मनोभाव िै जजसमें व्यजकत को बढ़ना िोगा; कयोंकक ननश्चय िी इसे एकाएक िी पूण िनिीं बनाया जा सकता - मानभसक और प्राणणक कियाएँ ब़िौ ेआती िैं - परन्तु कोई यहद इसके भलये संकल्प बनाये रखेतो यि सिा में ववकभसत िो जाएगा। इसके बाद जो काम िै वि िै उस मागदिशनि का अनुसरण करना जब वि स्वयं ंको प्रकट करता िै, और अपने मन औरप्राण कीकियाओंकोउसमें बाधा नािलनेदेना।

परंतु जीव जब अपनेअिंकार तथा कमों को भगवान् ्को समवपति कर देता िै तब भगवान् ्स्वयं िमारे पास आते िैं और िमारा भार विन कर लेते िैं। अज्ञानी को वे हदव्य ज्ञान का आलोक, दुबुलि को हदव्य-संकल्प का बल, पापामम‍ा को हदव्य-पववत्रता की मुजकत, दुःखी को अनन्त आममसुख और आनंद ला देते िैं। उनकी दुबुलिता तथा उनके मानवी बल की लिखिाट से (कृपा में) कोई अंतर निीं ंपिता। "यि मेरी प्रनतज्ञा िै", भगवान् ्की वाणी अजुनि को कि उठती िै, "जो मुझसे प्रेम करता िै उसका नाश निीं िोता।"

व्यजकत सच्चा प्रेम करना सीखता िो तब िै जब वि परमामम‍ा की ओर अभभमुख िोता िै। इससे पिले तो उसे केवल प्रेम का भ्रम िोता िै जब वि किता िै कक वि अपनी पमनी से, या माता-वपता से, या अपनेभमत्र से या अन्य ककसी से प्रेम करता िै। ककसी भी मनुष्य के भलए प्रेम करना असंभव िै कयोंकक वि प्रेम के योग्य िी तब बनता िै जब वि परमामम‍ा की ओर मुिता िै। तभी उसके हृदय में कोई सच्ची चीज आ सकती िै जजसके प्रभाव से कफर वि सबसे प्रेम कर सकता िै। जजसे िम प्रेम कितेिैं वि तो वास्तव में जजन संबंधों में िम आसकत िैं उनके

साथ संसग िसे िमें भमलने वाली संतुजष्ट िी िै जजसमें िमें वास्तव में ककसी और से निींबजल्क अपनेआप से िी सरोकार िोता िै। इसी को िम प्रेम कितेिैं। इसभलए जब तक िम इन्द्रियसंसगों में आसकत रितेिैं तब तक परमामममा से प्रेम निीं ंकर सकते।

प्रश्न : सामान्यत: िम अपने अंदर की अनेकानेक समस्याओं की चचा करते िैं जो िमें परमामममा की ओर मुड़ने ंसे रोकती िैं जैसे कक िमारा अिं, प्राणणक प्रकृनत आहद। तो कया ये सारी समस्याएँ व्यजकतगत िोती िैं या कफर ये िमारे िमववकास के द्वारा िमें भमली िोती िैं, या कफर अन्य कुछ?

उत्तर : इसमें प्रश्न यि निीं किक ये समस्याएँ व्यजकतगत िैं या सावजिननक, कयोंकक वास्तव में जजसे सतिी रूप से िम व्यजकत समझतेिैं वि तो एक दृजष्टकोण से केवल एक मुखौटा या एक प्रतीनत मात्र िी िै। एक दृजष्टकोण यि भी िै कक वास्तव में तो परम प्रभु स्वयंिी अपनेआप को अभभव्यकत कर रिे िैं। िमें तो अिं के कारण व्यजकतगत पुरुषाथ िका आभास िोता िै। इसभलए वास्तव में तो िमें कुछ भी करने ंया न करने ंकी कोई आवश्यकता निींिोती। परंतु ंयि एक ऐसी बात िै जजसका कक तामभसक प्रववृि को उधचत ठिरानेके भलए भयंकर रूप से दुरुपयोग ककया जा सकता िै। इसी कारण िमारे वैहदक ऋवष सदा सतकि रितेथे ंकक ककसी अनधधकारी को ऐसा कोई ज्ञान न हदया जाए जो उसका भयंकर दुरुपयोग कर स्वयं का नुकसान कर बैठे और दूसरों का भी नुकसान कर बैठे। वे सदा िी देश-काल-पात्र को अमयंत मित्त्व देते थे। विी ज्ञान जो ककसी एक व्यजकत के भलए परम कल्याणकारी िो सकता िै विी ककसी दूसरे के संपूण िमानभसक गठन को ववचभलत कर सकता िै और उसे ववध्वंस की ओर ले जा सकता िै। इनतिास में भी िमें ऐसे अनेकानेक उदािरण देखने को भमलतेिैं जिा ंँककसी समय को एकांगी रूप से ग्रिण करने ंके कारण बिुत से दुष्पररणामों का सामना करना पड़ा िै। जब तक िम अपनी मानभसक सीमाओं से बाँधे िैं तब तक पूण िसमय तक निीं पिुँच सकते। इसी कारण मानभसक चेतना में जब िम समय के ववषय में कोई कथन करते िैं तब उसका ववपरीत कथन भी अपनेस्थान पर उतना िी उधचत िोता िै। उदािरण के भलए यहद िम किें कक सभी कुछ परमामममा की िी इच्छा से िोता िै, तो इसका ववपरीत कथन भी अपनेसमय और स्थान पर उतना िी उधचत िोता िै कक परमामममा की इच्छा से कुछ भी निीं ंिोता और व्यजकत पूण िरूप से अपनेचयन के भलए स्वतंत्र िै। अब यि व्यजकत के ववकास की अवस्था पर ननभिर करेगा कक उसके भलए कौनसा कथन उपयोगी िोगा। सामान्यतया िमारा गठन तामभसक प्रकार का िोता िै इसभलए यि किना कक व्यजकत को कुछ भी करनेकी आवश्यकता निीं,ं सब कुछ ईश्वर की िी इच्छा से िोता िै, एक ववपरीत हदशा में गनत िोगी। तामभसक प्रकृनत के भलए तो यिी सिी िै कक वि अपने पुरुषाथ िपर भरोसा करे ताकक अपनेतमस् ंसे कुछ बािर आ सके। अत: सभी कुछ व्यजकत के ववकास की अवस्था पर ननभिर करता िै।

---

* आप जो नीचेकेसभी जगतों को व्यापेिुए िैं

और कफर भी ऊध्वजस्थत िैं

उन सभी के स्वामी जो कम िकरते िैं, शासन करतेिैं और ज्ञाता िैं

परंतु, प्रेम के सेवक!

प्रश्न : यिााँपादहटप्पणी में कि गया िै कक, "यिी मनोभाव िै जजसमें व्यजकत को बढ़ना िोगा", तो वास्तव में मनोभाव का अथ ि किया िै?

उत्तर : िम कि सकते िैं कक मनोभाव का अथ िि ै मन का आंतररक भाव। यि भाव िमारे मजस्तष्क के बिारी ववचारों आहद से भभन्न िोता िै और संभव िै कक यि भाव बित गिराई से आता िो, परंतुसामान्य जीवन में ऐसे भावों को अपनेआप की उपजस्थनत दज ि कराने का, अपनी वाणी सुनाने े का अवसर िी निीं भमल पाता कयोंकक
मन के अंदर अनेकानेक तरीके के ववचारों, कोलािलों की आाँधी-सी छाई रिती िै जजसके कारण ये गिरे भाव उसके पीछे नछपे रि जाते िैं। परंतु ुजब व्यजकत साधना पथ पर कुछ कदम भी चलता िै तब ये भाव धीरे-धीरे उजागर िोने े लगतेिैं। पले िी ये भाव आरंभ में अप्रकट िी रिते िैं, पर धीरे-धीरे ये प्रकट िोने े लगते िैं। जब िम श्रीमाताजी
व श्रीअरववन्द की पुस्तकों का अध्ययन करते िैं, अथवा िमारे अन्य सद्ग्रंथों का अध्ययन करते िैं तो ऐसे मनोभावों को सिज िी प्रकट िोने ेमें सिायता भमलती िै। िमारे अपनेजीवन में िम देखते िैं कक जब िम श्रीअरववन्द के साहिमय का अध्ययन और मनन करते िैं तब िमारे अंदर भी प्रसुप्त मनोभाव जागृत िो उठते िैं और िमें मिसूस िोता िै मानो वि िमारी आममा की िी वाणी िो जजसे श्रीअरववन्द ने प्रभावी रूप से शब्दों के द्वारा रूप प्रदान कर हदया िो। बित बार ऐसा िोता िै कक जीवन में िमें कुछ आंतररक स्पश ि प्राप्त िोते िैं,

कुछ
अनुभव प्राप्त िोतेिैं, कुछ अंतबोध प्राप्त िोते िैं, परंतु इनका िमें किींवणनि निीं भमलता। पर जब श्रीअरववन्द अथवा श्रीमाताजी की ककसी पुस्तक के माध्यम से, या कफर अन्य ककसी सग्रंथ के माध्यम से िमें वे िी अनुभव विाँवणनि ककये िुए भमलतेिैं तो यि बिा िी रोमांचकारी और प्रकाशक िोता िै। स्वयं श्रीअरववन्द को जब अनेकों अनुभव िुए पर किीं भी ककसी साहिमय में उन्िें उनका उल्लेख निीं भमला तब उन्िें ककसी ने राय दी कक कदाधचत् ् वेदों में उन्िें उनका वणनि भमले। और जब उन्िोंनेवेदों का अध्ययन ककया तब पाया कक वे ेसारे अनुभव वेदों में अंककत थे। अपनेअनुभवों के कारण िी उन्िें वेदों की कुंजी भी प्राप्त िुई और तभी उन्िोंनेवेदों के रिस्य को प्रकट ककया। इसी प्रकार िमारे पुराणों में भी अनेकानेक तरीके के अनुभवों आहद का वणनि िै। परंतुउन्िें वास्तव में समझ पाने के भलए िमें स्वयंभी वे गिरे अनुभव िोने ेआवश्यक िैं। पर इतना अवश्य िै कक इस प्रकार के अध्ययन से अंदर के गभभति या सुप्त पिे े भावों आहद को जागृत िोनेका, प्रकट िोने े का अधधक सुअवसर भमलता
ि।ै अतः जब िमारे मनोभाव िमें ककसी भसद्ध पुरुष या अन्य ककसी के द्वारा अभभव्यकत ककये भमलतेिैं तो ऐसा अनुभव िोता िै कक िमारे हृदय की वाणी को िमारे गुरु के द्वारा या अन्य ककसी के द्वारा शब्द प्रदान ककये जा रिे ि।ै इसी प्रकार तो आमम-अन्वेषण िोता िै। िमारे अंदर इतनी-इतनी तरीके की चीजें िोती िैं जैसे कक िमारे ववचार,
भावनाएाँ, कल्पनाएाँ, अभीप्साएाँ, पूवाग्रि, मित्त्वाकांक्षाएाँ, लालसाएाँ आहद, और ये सभी आममपरक िोनेके कारण

मांदह माश ्व्यपाधश्रत्य येऽवप मयःज पापयोनयः ।

आपस में इतनी घुली भमली िोती िै कक इनके अंदर सि-सी भेद कर पाना ककसी के भलए भी सामान्यतः सरल निीं ंिोता। इसभलए इनमें वास्तव में ककसका ककतना मूल्य िोना चाहिये यि तो िमें गुरु की वाणी से िी पता लग
सकता िै।

स्मत्रयो ैश्यामतथा शूद्रामतेऽवप यास्न्त परांगनतम् ्।। ३२ ।।

३२. हे पाथु ु! जो मेरा आश्रय ग्रहण करते हैं, ि अिम जानत के, पापयोनन से उत्पन्न, मत्री, ैश्य, और शूद्र होने पर भी परम गनत को प्राप्त होते हैं।

पिले का प्रयास और तैयारी, जैसे राह्मण की शुधुचता और पववत्रता, कम ि और ज्ञान में श्रेष्ठ राजवष ि का प्रबुद्ध बल इमयाहद, का अपना मित्त्व ि ै कयोंकक वे ेअपूण ि मानवजीव के भलए इस ववशाल दशनि और आममसमपणि तक पिुँचना सरल बना देते िैं; परन्तु इस प्रकार की तैयारी के त्रबना भी वे सब जो मनुष्य के इन हदव्य-प्रेमी भगवान् ्की शरण लेते िैं, वि चािे वैश्य िो जो ककसी समय धनोपाजनि तथा उमपादन-श्रम की संकीणतिा में िी धचंतांकुल था, या शूर िो जो सिस्रों कठोर प्रनतबन्धों में आबद्ध था, या स्त्री िो जजसके आममववस्तार के चारों ओर खींचे गए समाज के एक संकुधचत घेरे के कारण जजसकी उन्ननत का माग ि बराबर रुद्ध और प्रनतित रिा ि,ै ये िी निींअवपतु वे ेपापयोनन भी जजनके ऊपर पूव-ि कम ि ने खराब-से-खराब जन्म लाद हदया िै, जो जानतबहिष्कृत िैं, पैररया या चाण्डाल िैं, ये सब के सब भी एकाएक भगवान् ्के द्वार अपने समक्ष खुलते िुए पाते िैं। आध्याजममक जीवन में वे ेसब बाह्य भेद जजन्िें मनुष्य इतना अधधक मानते िैं, कयोंकक वे बहिमुखि मन को बरबस अपनी ओर खींचते िैं, भागवत् ्ज्योनत की समता और पक्षपातरहित शजकत की सवशिजकतमिा के सामने त्रबल्कुल समाप्त िो जाते िैं।

जीवन में सबसे मित्त्वपूण ि चीज ि ै भगवान् ्की ओर जाना और जब उनके द्वार सभी के सामने समान रूप से खुले िैं तब कफर बाह्य भेदों से कोई फकि निीं पड़ता। यिी निीं, वे द्वार तो उनके भलए अधधक खुले िैं जो अककंचन िैं, जजनके पास ककसी प्रकार के कोई साधन निीं िैं, जजनमें कोई क्षमताएँ निीं िैं, जजनमें ज्ञानाभभमान निीं ि ैि।ै इसी कारण भारतीय संस्कृनत ने ककसी के साथ भी कभी ककसी प्रकार का भेदभाव ककये त्रबना सभी के भलए एक ऐसी व्यवस्था का ननमाण करने ेका प्रयास ककया जजसमें प्रमयेक व्यजकत, यिा ँतक कक प्रमयेक प्राणी यथाशीघ्र अपने गंतव्य तक पिुँच सके। इसी दृजष्टकोण से िमारी सारी सामाजजक, आधथकि, राजनैनतक व्यवस्थाएँ और संस्थाएँ आहद ववकभसत िुईं ताकक वे इस उद्देश्य में अधधकाधधक सिायक िो सकें।

गीता में यिा ँइसी बात पर बल हदया गया िै कक व्यजकत की बािरी पररजस्थनतयाँ चािे ककतनी भी ववकट कयों न िों, व्यजकत चािे ककतनेभी ननकृष्ट कुल में कयों न पैदा िुआ िो, कफर भी भगवान् ्की भजकत आने ेपर वि भी परम गनत को प्राप्त िो सकता िै। इसीभलए कोई दुराचारी भी यहद यि संकल्प कर ले कक भगवान् ्िी एकमात्र वरण करनेयोग्य िैं और इस कारण जो अपनी सारी शजकत उसी ओर लगाता िै, वि साधु मानने ेयोग्य िै और वि अपनेपूरे कुल का कल्याण कर देता िै, विींएक साजमवक राह्मण, सभी ननयमों आहद का पालन करते िुए भी, यहद भगवान् ्की भजकत से शून्य िै, तो अपनेआप को भी मुकत निींकर सकता। इसभलए वास्तववक मित्त्व केवल भगवान् ्से लगाव का िै। त्रबना भजकत िुए न ज्ञान का कोई मूल्य िै, न िी ककन्िीं अनुभवों का। त्रबना भजकत के ये सब वैसे िी िैं जैसे कक ननष्प्राण देि पर आभूषण। यिी निीं, ं अिं के भलए उपयोग करनेपर तो ये नुकसानदेि बन जाते िैं। व्यजकत का उतना िी मूल्य िै जजतना वि भगवान् ्के प्रनत समवपति िै, उसके अनतररकत उसका कोई

भी मूल्य निीं ि ै। यहद यि मूलमंत्र समझ में आ जाए तो जीवन में यि व्यजकत की अनेकों संकटों से रक्षा कर सकता ि ै। अन्यथा तो संसार में इंहरयों की तृजृप्त, अपने अि ं की तुजष्ट आहद का इतना ववष फैला ि ुआ ि ै कक उससे बच पाना संभव निीं ि ै।

ककं पनजब्राह्मणाः पण्जया भक्ता राजषुयुमतथा ।
अननत्यमसखं लोकसममं प्राप्य भजमि माम् ।। ३३ ।।

३३. तो किर पवित्र ब्राह्मणों और भक्त राजवुषयुों का तो कहना ही क्या; इस अननत्य और द:जखमय लोक में आये हजए हे जिी! मेरी ओर असभमखज हो और मेरी भस्क्त कर।

यि पाधथवि जगत्, जो द्वन्द्वों में भलप्त ि ै और जो घ्िी घ्िी के तामकाभलक क्षणणक समबन्धों से बाँधा ि ुआ ि ै, मनुष्य के भलए तब तक संग्राम, दु:ख और शोक का ि ी जगत् ि ै जब तक कक वि इन सब चीजों में ि ी आसकत ि ुआ रिता ि ै और इन्िीं के द्वारा लादे जानेवाले ववधान को अपनेजीवन का ववधान मानता ि ै। मुजकत का माग ि ै बाह्य से ि टकर अन्दर की ओर मु्िना, भौनतक जीवन जो अपना भार मन पर लाद देता ि ै और उसे प्राण और शरीर के खाचाँ में कैद कर देता ि ै - द्वारा रधचत बाह्य प्रतीनतयों से ि टकर उस हदव्य समय अथवा यथाथतिा की ओर मु्िना जो आममा की मुकतावस्था के द्वारा अपने आप को अभभव्यकत करने की प्रतीक्षा में ि ै। संसार के प्रनत प्रेम को, जो कक मुखौटा या भमथ्याप्रतीनत ि ै, भगवान् के प्रनत प्रेम में रूपान्तररत ि ोना ि ोगा, जो कक समय ि ै। एक बार जब इस गुप्त और अंत:जस्थत ईश्वर को जान भलया जाता ि ै तथा अंगीकार कर भलया जाता ि ै तब सारी सिा और सारा जीवन एक श्रेष्ठ उमथान और एक ववलक्षण रूपान्तर की किया से गुजरेगा। ननमनतर प्रकृनत के अज्ञान की जगि, जो अपनेबाह्य कमों और दृश्यों में ननमग्न रिती ि ै, दृजष्ट सवत्रिव्याप्त ईश्वर के दशनि की ओर, आममा के ऐकय और उसकी साविभौभमकता की ओर खुल जाएगी। संसार का दु:ख-ददि सवानिन्द के आनन्द में खो जाएगा; ि मारा दौबल्यि, प्रमाद और पाप शाश्वत की सवाभिलंगंनकारी और सवि–रूपान्तरकारी शजकत, समय और पववत्रता में पररवनतति ि ो जायेगा।

मन्मना भि मद्भक्तो मद्याजी मांनममकजरु ।
मामिैष्यसस यजक्त्वैिमात्मानं मत्परायणः ।। ३४।।

३४. मेरे धचत्त ि ाला बन, मेरा प्रेमी और उपासक, मेरे प्रनत यज्ञ करने ि ाला बन, मझुे नमस्कार कर, इस प्रकार आत्मा में मेरे साथ यक्जत होकर, मझुे अपना परम ध्येय बनाकर, तू मेरे पास आ जाएगा।

मन को भागवत् चेतना के साथ एक करना, अपनी समपूण ि भावावेगमय प्रकृनत को सवत्रि जस्थत भगवान् के प्रनत प्रेमरूप बना देना, अपनेसब कमों को जगमपनत के प्रनत एक यज्ञ बना देना और अपनी सारी उपासना और अभीप्सा को उनकी भजकत तथा आममसमपणि बना देना, समपूण ि स्वमव को समग्र ऐकय में भगवान् की ओर लगा देना - यिी सांसाररक जीवन से ऊपर उठकर हदव्य जीवन को प्राप्त करनेका माग ि ै। यिी भागवत् प्रेम और

भजकत के समबन्ध में गीता की भशक्षा ि ै, जजसमें ज्ञान, कम ि और हृदय की चिा सब परम एकमव में एक ि ो जाते ि ैं, उनकी सारी ववषमताएँ घुल-भमल जाती ि ैं, सब सूत्र आपस में गुाँथ जाते ि ैं, एक मिान् ्एकीकरण ि ोता ि ै, एक ववस्तृत् तादाममयकारी किया ि ोती ि ै।

इस प्रकार निाँ अध्याय 'राजविद्याराजगह्जमयोग' समाप्त होता है।

दसवााँअध्याय

।.गीता कापरम्वचन्

अब िम गीता के योग के अंतरतम सारतत्त्व तक, उसकी भशक्षा से समस्त प्राणवंत और श्वास-प्रश्वास के केंर तक आ गये िैं। अब िम स स्पष्ट रूप से यि देख सकतेिैं कक सीभमत मानव जीव का अिंकार और ननय प्रकृनत से िटकर जस्थर, शान्त और अववकाय िअक्षर आममा में आ उसके आरोिण का केवल एक प्रथम सोपान, एक प्राथभमक पररवतनि-भत्र था। और अब िम यि भी देख सकतेिैं कक गीता ने आरमभ से िी ईश्वर पा मानवरूप में परमेश्वर पर इतना बल कयों हदया - उन परमेश्वर पर जो स्वयंको अिं, माम् ्आहद पदों से सूधचत करते िैं, और उनका इस रूप में वणनि िै कक वे ेकोई मिान् ्गुह्य और सवव्यापी परम सिा, जगतों के पनत और माना आममा के नाथ िैं, वेजो उस अक्षर आममसिा से भी मिान् ्िैं जो सदा शान और अचल रिती िै और प्राकृत ववश्व के अंतबाह्यि (आममननष्ठ और वस्तुननष्ठ) दृश्यों से ननरन्तर अभलप्त बनी रिती िै।

ये परम परमेश्वर सभी कुछ के एक िी अववकाय िअक्षर पुरुष िैं; इसभलए इस अववकाय िअक्षर पुरुष की आध्याजममक चेतना की ओर मनुष्य को जागृत िोकर उसके साथ अपनेअंत:स्थ ननवैयैजकतक स्वरूप को एक करना िोता िै। मनुष्य में वे िी परमेश्वर िैं जो उसकी सब कियाओंका प्रवतनि और संचालन करने ेवाले िैं; इसभलए मनुष्य को अपने स्वयं के इन अंत:स्थ ईश्वर के प्रनत जागना, अपनेअंदर ननहित भगवत्–्तत्त्व को जानना, जो कुछ उसे आच्छाहदत और प्रच्छन्न करता िै उस सब से ऊपर उठ जाना और उसकी आममा को इस अन्तरतम आममा के साथ, अपनी चेतना की इस बिृिर चेतना के साथ अपनेसारे संकल्प और कमों के इन गुप्त स्वामी के साथ, अपनेअन्दर को इस परम सिा के साथ, जो उसके सारे ववभभन्न भूतभावों का उद्गम और लक्ष्य िैं, एकीभूत िोना िोता िै। ये िी वे परमेश्वर िैं जजनकी हदव्य प्रकृनत, जो कक िम जो कुछ िैं उसका उद्गम िै, इन ननमन प्राकृत ववकारों से घनेरूप से ढकी िै; इसभलए मनुष्य को अपने ननमन बाह्य अजस्तमव, जो अपूण िऔर मममवीं, से िट कर अपनी अमरता और पूणतिा वाली मूल हदव्य प्रकृनत को पुनः प्राप्त करना िोता िै। ये परमेश्वर सब पदाथों के अंदर एक िैं, वि आममा िैं जो सबके अन्दर रिती िै और जजसके अन्दर सब रितेऔर गनत करते िैं। इसभलए मनुष्य को सभी प्राणणयों के साथ अपनी आजममक एकता ढूाँढ़ ननकालना, सब को उस एक आममा के अन्दर देखना और उस आममा को सबके अन्दर देखना, और यिााँतक कक सब पदाथों और प्राणणयों को, आममौपमयेन सवत्रि, सवत्रि आममवत् ्देखना और तदनुसार अपनेमन, बुद्धध और प्राण में सब में सोचना, अनुभव करना और कम िकरना िोता िै। ये ईश्वर यिा ाँअथवा और किीं ंजिााँ जो कुछ िै उसके मूलस्रोत िैं और अपनी प्रकृनत के द्वारा वे ेये सब भूत बनेिैं, अभूत् ्सवभिूतानन, इसभलए मनुष्य को सब जड़ और चेतन पदाथों में उन्िीं 'एक' को देखना और पूजना िोता िै; सूय िमें, नक्षत्र में, फूल में, मनुष्य और प्रमयेक जीव में, प्रकृनत के सब रूपों और प्रभावों तथा गुणों और शजकतयों में 'वासुदेवः सवभिमनत' जानकर उनकी अभभव्यजकत का पूजन करना िोता िै। उसे अपने-आप को हदव्य-दशनि और हदव्य सिानुभूनत के द्वारा और अन्ततः एक प्रबल आंतररक तादाममय के द्वारा ववश्व के साथ एक िोकर ववश्वमय िोना िोता िै। एक ननजष्िय संबंधरहित तादाममय प्ेरेम और कम िको बिार छोड़ देता िै, ककन्तु यि ववशालतर और समृद्धतर एकमव कमों के द्वारा तथा एक ववशुद्ध प्ेरेमभाव के द्वारा अपने-आप को कायाजन्वित करता िै: यि िमारे सभी कमों और भावनाओं का मूलस्रोत, आश्रय, सार, प्ेरेरक भाव और हदव्य प्रयोजन बन जाता िै।... एक ननजष्िय संबंधरहित तादाममय में आराधना और भजकत का आनन्द निीं ंरिता; परंतुभजकत तो इस समृद्धतर, पूणतिर और घननष्ठतर ऐकय की स्वयं आममा और मम िऔर

पराकाष्ठा िी िै। ये भगवान् ्िी सभी संबंधों - वपता, माता, प्रेमी, सखा – की पररपूणतिा िैं और प्रमयेक प्राणी की आममा के आश्रय िैं। ये िी एकमेव परम और ववश्वव्यापक देव, आममन्, ् पुरुष, रह्म, गुप्त ज्ञान (उपननषद्) के ईश्वर िैं। इन्िोंने अपने अन्दर इन सब ववभभन्न रूपों में अपनेहदव्य योग के द्वारा जगत् ्को प्रकट ककया िै: इसके अनेकववध भूतभाव इनके अन्दर एक िैं और ये उन सबके अन्दर अनेक पक्षों में एक िैं। इन सब रूपों में उनके प्राकट्य के प्रनत जागृत िोना िी उसी हदव्य योग' का मानवी पिलू िै।

vi. 32, vii.19

---

* वीजगका ननमातिा और स्वयंवि जगत् ्िै जजसे उसने रचा िै,

    विी दशनि िै और विी रष्टा िै;

    वि स्वयं ंिी कतिा और विी कम िै,

    वि स्वयं ंिी ज्ञाता िै और विी ज्ञात िै,

    वि स्वयं ंिी स्वप्नरष्टा िै औरस्वप्न िै।

चूंकक िमारी सामान्य बहिमुखि चेतना से श्रेष्ठतर चेतना में िमें इस प्रकार का दशनि और अनुभव प्राप्त िोता िै कक सब कुछ विी िै इसभलए विी सच्चा और यथाथ िदशनि िै और िमारी सामान्य चेतना का दशनि त्रुहटपूण ि या भ्रभमत िै। एक अधधक पररपकव चेतना का दशनि िी अधधक यथाथ िोता िै। इसभलए भले िी वतमान में िमें अपनी अज्ञानमय चेतना के कारण स्वयंऐसी अनुभूनत न िोती िो तो भी िमें इस माग िपर जा चुके उन अनधगनत ऋवषयों-मुननयों, साधु–संन्याभसयों की वाणी पर ववश्वास करना िोगा जो कक एक िी स्वर में इसी एक समय को दुिराते िैं कक सभी कुछ वे ेपरमाममा िी िैं उनके अनतररकत और कुछ िै िी निीं। परंतु यहद सभी कुछ केवल वे परमाममा िी िैं तो िमारी इंहरयों के द्वारा िम इम दृश्य जगत् ्में उन्िें कैसे पिचान सकतेिैं? इसके भलए जिाँ किीं ंपी भगवान् ्के गुणों का ववभशष्ट प्राकट्य िोता िै विाँिम उन्िें अधधक सरलता से पिचान सकतेिैं। इसी के भलए भगवान् ्अजुनि को ववभूनत योग का उपदेश करते िैं। िमारी संस्कृनत में जजस ककसी में और जिाँ किीं भी भगवान् ्की सिा का अधधक प्राकट्य देखनेको भमलता िै उसे सदा िी ववभशष्ट मित्त्व हदया जाता रिा िै। आजकल के बुद्धधजीववयों के मुख से कई बार िम सुनते िैं कक िमें अपनी सारी योजनाएँ सबसे कमजोर और वंधचत व्यजकत के अनुसार बनानी चाहिये। परंतु ऐसा करना तो प्रकृनत में अंतननहिित आरोिण की प्रवृवि का िी खंडन करना िुआ। कया िम अपना आदश िभगवान् ्कृष्ण को न बनाकर ककसी दीन–िीन, वंधचत या प्रताड़ित व्यजकत को बनाएँगे? इसीभलए गीता भगवान् ्को ववभूनत पर अमयधधक बल देती िै कयोंकक उसमें भगवान् ्की अभभव्यजकत त्रबल्कुल प्रबल रूप से देखने को भमलती िै। और यि ववभशष्ट अभभव्यजकत सभी चीजों में िोती िै, देवताओं, दानवों, पशुओं, मनुष्यों आहद में सब में उनकी ववभूनत िो सकती िै। यिी ननरूपण अगले अध्याय में आएगा।

श्रीभगवान् ्उवाच

भूय एव महाबाहो शृणुज मे परमं वचः ।

यते्तेऽहं प्रीयमाणाय िक्ष्यासम दहतकाम्यया ।। १॥

१. श्रीभगिान् ्ने कहाः हे महाबाहो। अब मेरे परम िचन को सनज, स्जसे मेरी आत्मा के कल्याण की इच्छा से कहूँगा, क्योंकक तेरा हृदय अब हमें अंदर आनन्द ले रहा है।

ऐसा पूण िरूप से और ननववविाद रूप से स्पष्ट कर देनेके भलए कक उनकी भशक्षा का यिी परम और समपूण ि अथ िि, यिी वि समग्र ज्ञान ि, जजसे प्रकट करने ेका उन्निवचन हदया था, भागवत् ्अवतार अब तक जो कुछ किते ेरि िैं उसी के ननष्कष िको सारांश रूप से दुिराते िुए यि बतलाते िैं कक, यिी, और कोई निीं,ं मेरा 'परमंवचः', परम वचन ि।... िम पातिं कक गीता का यि परम वचन, प्रथमतः यिी सुस्पष्ट और असंहदग्ध घोषणा ि कक भगवान् ्ककी परमा भजकत और परम ज्ञान उन्िें इस रूप में जानना और पूजना ि कक वे, जो कुछ भी अजस्तमवमान ि उसके, परम और हदव्य मूलस्रोत िैं और इस जगत् ्तथा इसके प्राणणयों के सवशिजकतमान् ् परमेश्वर िैं और सब पदाथ िजजनकी सिा के भूतभाव िैं। दूसूरे, यि परम वचन एकीभूत ज्ञान और भजकत को परम योग के रूप में घोवषत करता ि; यिी सनातन पुरुष परमेश्वर के साथ भमलन लाभ करने ेका मनुष्य के भलए सुननजश्चत और स्वाभाववक माग िहदया गया ि। और माग िके ववषय में इस रूपरेखा को और भी अथपूिण िबनानेके भलए, भजकत को इस उच्चतम िमिा को प्रदीप्त स्थान प्रदान करने के भलए... भशष्य के हृदय और मन द्वारा इसकी स्वीकृनत को आगे आनेवाले ववस्तार के पिले एक शत िके रूप में रखा गया ि जजसमें अंततः मानव यंत्र अजुनि को कम िका अंनतम आदेश हदया जाना ि। भगवान् ्किते िैं, "म ैंतेरी आममा के कल्याण की इच्छा से इस परम वचन को तुझसे किूँगा, कयोंकक अब तेरा हृदय मेरे अन्दर आनन्द ले रि ि", ते प्रीयमाणाय वक्ष्याभम हितकामयया। कयोंकक भगवान् ्में हृदय का यि आनन्द लेना िी सच्ची भजकत का समपूण िघटक और सार ि...

परम् ्वचन तभी हदया जा सकता ि जब व्यजकत को भगवान् ्में आनन्द आने ेलगे। यहद हृदय को भगवान् ्में कोई आनन्द िी न आ रि िो तो उसे तो परम वचन हदया िी कैसे जा सकता ि।

न मे विदःज सरजगणाः प्रभिं न महषुयुः ।
अहमाददददहु ुदिानां महषीणां च सिुशुः ॥ २॥

२. न ही दिता और न ही महवुषगुण मेरी ककसी उत्पवत्त के विषय में जानते हैं, म ैंसिुथु और हर प्रकार से दिताओं' का और महवुषयुों का आदद कारण हूँ।

अतः, देवता परम पुरुष के माध्यम मात्र िैं। अब प्रश्न यि उठता ि कक सृजृष्ट का ननमाणि िोता ककस प्रकार ि? सृजृष्ट िमारे भलए वैसी िी िोती ि जैसी िमारी चेतना िोती ि। पशु–पक्षक्षयों को सृजृष्ट अपनेतरीके से हदखाई देती ि, मानव चेतना को सृजृष्ट पशु–चेतना से भभन्न प्रकार से हदखाई देती ि। और मानव चेतना में भी व्यजकत चेतना की श्रेणणयों में ककस स्तर पर जस्थत ि उस पर ननभरि करेगा कक उसे सृजृष्ट कैसी गोचर िोगी। वैहदक शब्दावली के अनुसार जब व्यजकत के यज्ञ का आरिोण िोना आरंभ िोता ि, अथात् ्जब वि अपनेननमन

 भागों की अपेक्षा अधधकाधधक अपनेउच्चतर भागों की किया को स्थान देना आरंभ करता

ै, तो देवताओं की

ि ◌ुउसके अंदर ननहित मनोवैज्ञाननक शजकतयों की अधधकाधधक समृद्धतर अभभव्यजकत ि◌ोने लगती ि◌ै जजस अर्थात्
कारण सृजृष्ट के प्रनत व्यजकत का दृजष्टकोण बदलता जाता ि◌ै। और ज्यों-ज्यों व्यजकत में मनोवैज्ञाननक शजकतयों
की किया अधधक प्रबल ि◌ोती जाती ि◌ै मयोंि◌ी-मयों वि अधधक सशकत रूप से किया कर सकता ि◌ै। उदिरण के
भलए, आवश्यक निींकक एक ऋवष में शारीररक बल ककसी आम व्यजकत से अधधक ि◌ो, परंतु उसके अंदर अवश्य

िि

इतना प्रबल तेज और आध्याजममक शजकत ि◌ोती ि◌ै कक उसके साजन्नध्य में हिंसंक पशुओंतक की प्रवृवि पर अंकुश
लग जाता ि◌ै और विींककसी मनुष्य की इतनी क्षमता निीं ◌ंि◌ोती कक सिज ि◌ी उसके साथ ककसी प्रकार का कोई
दुवुर्यविार कर सके। इसका कारण यि ि◌ै कक उसके अंदर देवताओं की किया अमयधधक रूप से बढ़ जाती ि◌ै।
उदिरण के भलए, एक त्रबल्ली रिती तो उसी जगत् ◌्में ि◌ै जजसमें िम रिते ि◌ैं, परंतुस्पष्ट ि◌ी ि◌ै कक वि इस जगत्

्

की भव्यताओं का ककतना आनन्द ले पाती ि◌ोगी। वेदों का मुख्य ववषय ि◌ी यिी ि◌ै कक ककस प्रकार ि◌मारे अंदर के
देवताओं को जागृत् कर उनकी किया को अधधकाधधक उन्नत कर हदया जाए। यिी यज्ञ का आरिोण ि◌ै। यिाँ
भगवान् ◌्कि रिे ि◌ैं कक वे ि◌ी देवताओं के आहद कारण ि◌ैं और उनसे परे ि◌ैं। इस दृजष्टकोण से, जब िम भगवान्
्की
चेतना में ि◌ोतेिं तब िम प्रभुमव का आस्वादन कर सकतेिं और जजतने ि◌ी िम ज़ितत्त्व से तदामम ि◌ोतेिं उतने ि◌ी
मि ननयम-ववधानों में बाँधे ि◌ोतेिं। अतः सृजृष्ट अपनेआप में और कुछ निींकेवल ि◌मारी चेतना के स्तर के
अनुसार गोचर ि◌ोती ि◌ै। सांख्य शास्त्र ने तो पिले ि◌ी सारा ववश्लेषण कर के ि◌ में हदखा हदया कक भौनतक

यथाथतिा

जैसी तो कोई चीज ि◌ी निीं ◌ंि◌ै। सारी संरचना मनोवैज्ञाननक ि◌ै। और जैसी ि◌मारी संरचना ि◌ोती ि◌ै वैसी ि◌ी सृजृष्ट ि◌में
कोई बािरी ननयम बाध्यकारी निीं ◌ंि◌ोता, तब वि सवशिजकतमान ि◌ोती ि◌ै। अनतमानभसक चेतना में सवज्ञि
गोचर ि◌ोती ि◌ै और वैसे ि◌ी ननयम-ववधान ि◌मारे ऊपर लागू ि◌ोतेिं। अतः, वस्तुतः अपनेआप में कोई ननयम निीं
ैं। चेतना जजस स्तर पर जस्थत ि◌ोकर अपनी किया करती ि◌ै उस स्तर के भलए विी ननयमस्वरूप ि◌ो जाता ि◌ै,
िालाकाँक उस स्तर के भलए अवश्य ि◌ी वि ननयम बाध्यकारी ि◌ोता ि◌ै। और जब चेतना अमयधधक ऊध्वजिस्थत ि◌ो

तब

ता,

सवव्यिापकता और सवशिजकतमिा ि◌ोती ि◌ै। भारतीय संस्कृनत में सदा ि◌ी इसका भान रिा ि◌ै। इसीभलए वे सदा

िि

चेतना के पररवतनि पर बल देते थे कयोंकक वे जानते थे कक बािरी फेर-बदल से वास्तव में कुछ भी संभसद्ध निीं
ककया जा सकता। ककसी पाशववक चेतना के व्यजकत के पास प्रचुर भौनतक सुख-साधन आहद ि◌ो सकतेिं परंतु
कफर भी कला, साहिमय आहद गिरे ववषयों का और उनसे भमलने वाली किींअधधक गिरी पररतृजृप्त का तो उसे
कोई आभास तक भी निींि◌ि सकता, न ि◌ी आममा के गिरे आनंदों का उसे लेशमात्र ि◌ी कोई आभास ि◌ो सकता ि◌ै।

---

* देवता मिान् ◌्अमर शजकतयाँऔर अमर व्यजकतमव ि◌ैं जो ववश्व की अंतबाह्यि शजकतयों को सचेतन रूप से अनुप्राणणत करते ◌े
ैं, गिहठत करतेिं तथा उनकी अध्यक्षता करते ि◌ैं। देवता शाश्वत और आहददेव के आध्याजममक रूप ि◌ैं जो उन आहददेव से
ननकलकर जगत् ◌्की अनेक प्रणाभलयों में उतर आतेिं। देवता अनेकववध ि◌ैं, ववश्वव्यापी ि◌ैं, वे आममसिा के मूलतत्त्वों और
उसकी सिस्रों जहटलताओं ◌ंके द्वारा उस 'एक' की ि◌ी वैववध्यपण ि◌ि सिा का संपण ि◌ताना-बाना ननभमति करते ि◌ैं। उनकी

(देवताओं) द्वारा कुछ भी आमम-ननभरि रूप सेनिीं ककया जाता; सभी कुछ अपना मूल उद्गम, कारण, और अपनी सिा का औरभूत-भावका मूल आध्याजममककारण चरमपरम्परमेश्वर मेंपातीै ...

इसभलए व्यजकत ककतना आनंद ले सकता िै यि उसकी चेतना के स्तर पर ननभरि करता िै। इससे त्रबल्कुल स्पष्ट िो िै कक वास्तव में ककसी संस्कृनत का पूरा ध्यान ककस चीज पर िोना चाहिये। इसीभलए श्रीअरववन्द कितेिैं कक, "ककसी मिान् ्संस्कृनत का संपूण िलक्ष्य िोता िै मानव को ऐसे कुछ तक उठा ले जाना जो वि आरंभ में निीं िो, उसे ज्ञान तक ले जाना यद्यवप वि अथिा अज्ञान से प्रारंभ करता िै, उसे उसके वववेक के द्वारा जीना भसखाना, यद्यवप वास्तव में वि अधधकतर अपने अवववेक के द्वारा जीता िै, शुभु एवं एकता के ववधान के अनुसार (जीना भसखाना) भले िी वि अभी अशुभु और ववषमता से भरा िै. सौंदय िएवंसामंजस्य के ववधान द्वारा (जीना भसखाना) यद्यवप और कलिरत बबरिता अस्तव्यस्तता िी िो, आममा के ककसी उच्च ववधान के द्वारा (जीती भसखाना) यद्यवप वतमिान में वि अिंकारी, ज़ि, अनाध्याजममक, अपनेभसखाना) यद्यवप आवश्यकताओंऔर कामनाओं द्वारा ग्रभसत िै। करर ककसी सभ्यता का इनमें से कोई भी लक्ष्य न िो तो कदाधचत् ्िी यि किा जा सकता िै कक

उसकी कोई संस्कृनत िै, और ककसी भी अथ िमें मिान् ्और श्रेष्ठ संस्कृनत तो ननजश्चत तौर पर निीं ं(किा जा सकता)। परंत इनमें से अंनतम लक्ष्य, जैसी कक प्राचीन भारत द्वारा कल्पना की गई थी, सभी (लक्ष्यों) से उच्च िै कयोंकक वि अन्य सभी को समाहित करता िै और अनतिम कर जाता िै। यि प्रयमन ककया जाना जानत के जीवन को उदिा बनाना िै; इसमें असफल िो जाना भी इस बात से किीं ंअधधक श्रेष्ठ िै जजसमें कक यि प्रयास ककया िी न

जाय; यिााँ तक कक इसमें आंभशक सफलता प्राप्त करना भी मानव की भावी संभावनाओं में मित् ्योगदान िै।" (CWSA 20, 232)

जब कोई संस्कृनत ऐसे ववचारों और आदशों पर प्रनतजष्ठत िो तब सिज िी िै कक िर क्षेत्र में उसकी रचना और ननमाणि का कोई सानी िो िी निींसकता कयोंकक तब कोई भी काम बोझ निींरि जाता अवपतु वि तो आममाभभव्यजकत का, भगवान् ्के साथ संपकि साधने का सवश्रेिष्ठ साधन बन जाता िै। जब काय िके पीछे ऐसा उद्देश्य िो तब तो कायक्षिमता, कायकुिशलता, गुणविा आहद तो अद्भुत िोंगे। यिी भारतीय संस्कृनत की अमयुमकृष्ट उपलजब्धयों का रिस्य रिा िै। प्रमयेक किया-कलाप को, प्रमयेक चीज को, प्रमयेक क्षण को चेतना के ववकास का माध्यम बना हदया गया। यिी यज्ञ िै। किने का तामपय ियि िै कक भले िी बािरी पररजस्थनतयााँ ज्यों की मयों िों, कफर भी जैसे िी चेतना में पररवतनि िो जाता िै मयों िी संपूण िसृजृष्ट त्रबल्कुल भभन्न रूप से गोचर िोती िै। श्रीअरववन्द व श्रीमााँ जजन जगतों में ननवास कर रिे थे और जजस प्रकार की अनेक स्तरीय किया कर रिे थे ्उसका तो उनकी बािरी पररजस्थनतयों से िम कोई अंदाजा िी निींलगा सकते। इसभलए, सृजृष्ट वैसी िी िोगी जैसी िमारी चेतना िोगी।

यो मामजमनाददं ंच िवेत्त लोकमहेश्िरम् ्।
असंमूढः स मत्र्येष जसिुपुापैः प्रमच्जयते े।। ३।।

३. जो कोई मजझे ेअजन्मा, अनाददद, सममत जगतों और जिीों के शस्क्तशाली प्रभ जके रूप में जानता है, िह मृत्यशजील मनजष्यों में मोहरदहत होकर जीता है और सममत पाप और अशभज से मक्जत हो जाता है।

बद्जधिज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सखं दःजखंभिोऽभािो भयं चाभयमेि च ।। ४।।

अदहंसा समता तस्जष्टमतपो दानं यशोऽयशः ।
भिस्न्त भािा भूतानां ंमत्त एि पृथग्विधाः ।। ५।।

४-५. बद्जधि, ज्ञान, अज्ञानजन्य मोह से मोक्ष, क्षमा, सत्य, आत्म-संयम, शांतधचत्तता, सजख और दःजख, उत्पवत्त और विनाश, भय और अभय, यश और अपयश, अदहंसा, समता, सन्तोष, तप और दान, ये सब प्राणणयों के सभन्न-सभन्न प्रकार के मानससक भाि हैं, और ये सब मेरे से ही उत्पन्न होते हैं।

भगवान् ्का वि भाव जजस पर गीता जीवन के संपूण िमम िके गूढ़ रिस्य के रूप में, मोक्षदायी ज्ञान के रूप में आग्रि करती िै, वि ऐसा िै जो कालगत वैजश्वक गनत और ववश्वातीत शाश्वतता के बीच के भेद को पाट देता िै, और ऐसा वि इनमें से ककसी भी एक को अस्वीकार ककये त्रबना या ककसी के समय में से कोई अंश ननकाले त्रबना (उसके समय को कोई िानन पिुँचाए त्रबना) िी करता िै। अवपतुयि तो िमारी आध्याजममक धारणा और आध्याजममक अनुभूनत के सवेश्वरवादी (pantheistic), ईश्वरवादी (theistic) तथा सवोच्च ववश्वातीत (transcendental) ववषयों को समजन्वत करता िै। भगवान् ्अजन्मा शाश्वत िैं जजनका कोई उद्गम निीं, उनसे पूव िमें न कुछ ऐसा िै और न िो िो सकता िै जजससे वे उद्भूत िुए िों, कयोंकक वे एक, कालातीत और परम ननरपेक्ष िैं। "न िी देवता और न िी मिवषगिण मेरी कोई उमपवि जानते िैं... जो मुझेअजन्मा अनाहद जानता िै..." इमयाहद इस परम वचन के प्रारंभभक कथन िैं.. ववश्वातीत अनन्त की यि आध्याजममक अनुभूनत जागनतक जीवन के ववषय में सवेश्वरवादी धारणा की सीमाओं को तोड़ िालती िै। एक ववश्वमय-एकेश्वरवाद की अनंतसंबंधी धारणा, जो ववश्व और ईश्वर को एक कर देती िै, वि ईश्वर को उनकी जगत् ्अभभव्यजकत में कैद करने ेका प्रयास करती िै और इस जगत् ्अभभव्यजकत को िी ईश्वर को जानने का एकमात्र संभव साधन रख छोड़ती िै; परन्तु यि परम ज्ञानानुभूनत िमें देश-कालातीत शाश्वत स्वरूप में मुकत कर देती िै। "आपके आववभावि को न देवता जानते िैं न असुर िी," यिी अपनेउिर में अजुनि कि उठता िै: यि सारा जगत् ्अथवा ऐसे असंख्य जगत् ्भी उन्िें प्रकट निीं कर सकते, उनकी अननवचिनीय ज्योनत और अनन्त मिमा को धारण निीं ंकर सकते। ईश्वर समबन्धी इससे कननष्ठ कोहट के ज्ञान से परम् ्पुरुष परमेश्वर के धचर अव्यकत और अननवचिनीय समस्वरूप पर आत िोने ेके कारण िी समय िैं।

परन्तु साथ िी, हदव्य परामपर ववश्व का ननषेध निीं िै, न िी यि को ऐसा परम ननरपेक्ष िै जो ववश्व के साथ ककसी भी समबन्ध से ररकत िो। यि एक परम सकाराममक अथवा वास्तववक तत्त्व िै, सब ननरपेक्षों का ननरपेक्ष िै। सभी ववश्वगत समबन्ध इन्िींपरम से ननकलते िैं; ववश्व के सभी भूत इन्िीं कै पास लौट जाते िैं और

केवल इन्हीं में अपना सच्चा और अपररमेय अजस्तमव लाम करते िैं। "कयोंकक म ैंसवथिा और िर प्रकार से देवताओं का और मिवषयों का आहद-कारण िूाँ।"...

मिारे अजस्तमव के ये परम परामपर मूल िमसे ककसी ऐसी खाई द्वाग पृथक् निीं ंिैं जजसे भमलाया न जा सके और न वे इन प्राणणयों को, जो उन्हीं से ननकले िैं, अपनी सन्तान माननेसे इन्कार करते िैं और न इन सब को एक भ्रम की सृजष्ट बताकर इन्हें दण्ड का भागी बतातेिैं। वे िी परम सिा िैं और सब उन्हींके भूतभाव िैं। वे ेकोई शून्य में से, ककसी अभाव में से वा स्वप्न-रूप भमथ्यामव में से सृजन निीं ंकरते। वे ेअपने-आप में से सृजन करते िैं, अपनेअन्दर िी वे ेउमपन्न िोते िैं; सभी उन्हींकी सिा में ववद्यमान िैं और सब कुछ उन्हीं ंकी सिा का तत्त्व िै। यि समय पदाथों को देखने की जो सवेश्वरवादी दृजष्ट िै उसे स्वीकार करते िुए उसका अनतिमण कर जाता िै। वासुदेवः सवम्,् वासुदेव िी सब कुछ िैं, कयोंकक जगत् ्में जो प्रकट िै वि सब वासुदेव िी िैं, और वासुदेव वि सब भी िैं जो जगत् ्में प्रकट निीं थेतथा वि सब भी जो कभी व्यकत निींिोता। उनकी सिा ककसी प्रकार भी उनके भूतभाव या अभभव्यजकत से सीभमत निीं िै; इस सापेक्ष जगत् ्से वेककसी अंश में भी बाँधे निीं। सभी कुछ बन जानेपर भी वे परम परामपर िी िैं; सीभमत रूपों को धारण करते िुए भी वे सदा अनन्त िी बनेरिते िैं।...

श्रीअरववन्द इस चीज की व्याख्या कर रिे िैं कक आणखर वि परम वचन कया िै जो भगवान् ्अजुनि को दे रिे िैं चूंकक अब उसका हृदय उनमें रस लेनेलगा िै। यहद हृदय को भगवान् ्में रस िी न आता िो तब तो उसे भगवान् ्के ककसी स्वरूप का वणनि ककया िी निीं ंजा सकता। भगवान् ्में आनंद आनेपर िी उनका स्वरूप िमारे समक्ष प्रकट ककया जा सकता िै।

यिा ाँपरमामा के तीन भावों को अथात्् ईश्वर भाव, सवेश्वर भाव और परामपर भाव को समजन्वत ककया गया िै। ये भभन्न-भभन्न दृजष्टकोण िैं जजनके आधार पर िम ईश्वर और इस जगत् ्के बीच के संबंध को पररभावषत और ननधारिरत करते िैं। इस्लाम आहद सेमेहटक धम िईश्वरवादी दृजष्टकोण को अपनाते िैं और यि माननेिैं कक ईश्वर इस जगत् ्से ऊपर जस्थत िो सारी सृजष्ट को शासक के रूप में चलाते िैं और इस जगत् ्में िम उन ईश्वर के बन्दे िैं। परम सिा और जगत् ्के साथ उनके संबंध के ववषय में यि एक दृजष्टकोण िै जो कक अपने आप में यथाथ िअनुभव िै, परंतु िै एक आंभशक अनुभव िी। दूसरा दृजष्टकोण सवेश्वरवादी दृजष्टकोण िै जो किता िैकक सभी कुछ परमामा िी िै। यि एक ऐसा दृजष्टकोण िै जो बिुत िी मुजकतकारक तो िै परन्तु गलत रूप से प्रयुकत ककये जानेपर इसके आधार पर िम बिुत सी मूखतिाएँ की जाती देखतेिैं। सवेश्वरवादी दृजष्टकोण में व्यजकत एक मानभसक धारणा बना बैठता िै कक सब कुछ परमामा िी िै, जो कक मूलतः एक समय िै, परंतुइसका मानभसक ननरूपण एक सीमा के बाद भमथ्या िो जाता िै कयोंकक संसार में वैववध्य िै और सभी के साथ व्यविार करना आवश्यक िै। इसभलए गलत रूप से प्रयुकत करने ेपर तो व्यविार करनेका आधार िी निीं ंरिता। यिी बात तो िमें िाथी और मिावत की प्रचभलत कथा से स्पष्ट िोती िै। आजकल के प्रचभलत समानता आहद के ववचार भी इसी दृजष्टकोण से प्रभाववत िैं परंतु पुनः, समानता आहद के ववचार ऐसे मूलभूत समय िैं जजन्हें कक यहद बािरी रूप से प्रयुकत करनेका प्रयास ककया जाए तो बड़े िी भयंकर पररणाम भी आ सकते िैं। जजतना िी िम बािरी रूप से

समानता लानेका प्रयास करते िैं उतनी िी ववषमताएँ बढ़ती जाती िैं कयोंकक समानता बािरी चीजों से ननधारिरत निीं ंकी जा सकती। व्यजकत के आंतररक गठन के अनुसार उसके साथ व्यविार करने ेपर िी सच्चे रूप से समान व्यविार ककया जा सकता िै। जब कोई भी दो व्यजकत समान निीिं तब उनके साथ समानता के ककन्िीं भी मानदंडों के अनुसार व्यविार कैसे ककया जा सकता िै। इसीभलए, सवेश्वरवादी दृजष्टकोण भी एक मूलतः सिी अनुभव िै परंतु बिुत बार व्यविार के अंदर जजस रूप में इसे प्रयुकत ककया जाता िै उससे बिुत सी ववषमताएँ उठ खड़ी िोती िैं। सवेश्वरवादी के दृजष्टकोण से सभी कुछ परमाममा स्वयं िी िैं। यि बात मूलतः तो सिी िै परंतु कफर कया एक पमथर और एक मनुष्य में चेतना की समान िी अभभव्यजकत िमें देखने को भमलती िै?

यहद िम ईश्वरवादी दृजष्टकोण को ककसी ऐसी अपूरणीय खाई से न बाटँ दें जजसमें कक ईश्वर और उनकी सृजृष्ट का आपस में कोई भमलन संभव िी न िो, तो इस जगत् ्में िमें भगवान् ्की उिरोर वधधति िोती िुई अभभव्यजकत गोचर िोती िै। कदाधचत् ्िी कोई इस बात से इंकार करेगा कक पमथर अथवा पशु–पक्षक्षयों में ईश्वर की जजतनी अभभव्यजकत िोती िै उससे किीं श्रेष्ठतर अभभव्यजकत मनुष्य में िै। और यहद िमारे अंदर थोड़ा भी वववेक िो तो स्पष्ट रूप से िम देख सकतेिैं कक स्वयं मनुष्यों में भी उिरोर वधधति िोती चेतना की श्रृंखला िै।

सनातन धम िमें ऐसी कोई अपूरणीय खाई कभी निीं ंखींची गई। सनातन धम िके अंदर सदा िी परमाममा को अधधकाधधक वधमिान अभभव्यजकत को स्वीकार ककया जाता रिा िै। एक मिापुरुष अथवा एक संत ककसी सामान्य मनुष्य से अधधक परमाममा को अभभव्यकत करते िैं। एक ववभूनत उससे किीं अधधक अभभव्यकत करती िै और एक अवतार तो भगवान् ्की और भी अधधक अभभव्यजकत करते िैं। जब िम इस दृजष्टकोण को स्वीकार करते िैं तो सिज िी िम जिाँभगवान् ्की अधधक अभभव्यजकत पातेिैं उसके प्रनत नतमस्तक िो सकतेिैं। इसीभलए गुरु के प्रनत, एक ववभूनत के प्रनत या कफर एक अवतार के प्रनत नतमस्तक िोना, उसके प्रनत श्रद्धा रखना आममोमथान का एक बिुत िी शजकतशाली तरीका िै। इसभलए यहद इस दृजष्टकोण को सिी रूप से भलया जाए तो यि िमें ववभूनतयोग से जोड़ देता िै। ववभूनतयोग का उपदेश करते िुए भगवान् ्साथ में यि भी किते िैं कक सारे ब्रह्माण्ड भी उनसे ननःसृत एक धचनगारी मात्र िी िैं जबकक वे स्वयं तो इस सब को अनतिम कर जाते िैं। वास्तव में परमाममा िमारे ककन्िींभी ऊँचेसे ऊँचेमानभसक ननरूपणों को सवथिा अनतिम कर जाते िैं। िमारे वेद भी उस तत्त्व का ननरूपण करने ेके बाद 'नेनत, नेनत' िी कितेिैं अथात् ्परमाममा इन ककन्िीं भी चीजों से बढ़ निीं ंिोते बजल्क सभी कुछ से परे िोतेिैं, यिा ँतक कक वे ेअसीभमतता से भी बद्ध निीिं। वे सीभमत िो जोते िैं और इन दोनों से (सीभमतता और असीभमतता से) परे भी िैं और निीं भी िैं। सवेश्वरवादी दृजष्टकोण जो भगवान् ्व जगत् ्का एकमव मानता िै एक तरि से भगवान् ्को सीभमत कर देता िै व उनके परामपर रूप के भलए कोई स्थान निीं छोड़ता। इस प्रकार ईश्वर के ये तीन भाव िैं। िालाकँक ये तीनों परस्पर एक दूसूरे से ववरोधाममक प्रतीत िोते िैं परंतु वास्तव में ये ऐसे िैं निीं। परंतु चूंकक

यहद िम ईश्वरवादी दृजष्टकोण को ककसी ऐसी अपूरणीय खाई से न बाटँ दें जजसमें कक ईश्वर और उनकी सृजृष्ट का आपस में कोई भमलन संभव िी न िो, तो इस जगत् ्में िमें भगवान् ्की उिरोर वधधति िोती िुई

अभभव्यजकत गोचर िोती ि ै। कदाधचत् ्िी कोई इस बात से इंकार करेगा कक पमथर अथवा पशु–पक्षक्षयों में ईश्वर की जजतनी अभभव्यजकत िोती ि ै उससे किीं श्रेष्ठतर अभभव्यजकत मनुष्य में ि ै। और यहद िमारे अंदर थोिा भी वववेक िो तो स्पष्ट रूप से िम देख सकते िैं कक स्वयं मनुष्यों में भी उत्तरोत्तर वधधित िोती चेतना की श्रृंखला ि ै।

सनातन धम िमें ऐसी कोई अपूरणीय खाई कभी निीं ंखींची गई। सनातन धम िके अंदर सदा िी परमाममा को अधधकाधधक वधमिान अभभव्यजकत को स्वीकार ककया जाता रिा ि ै। एक मिापुरुष अथवा एक संत ककसी सामान्य मनुष्य से अधधक परमाममा को अभभव्यकत करते िैं। एक ववभूनत उससे किीं अधधक अभभव्यकत करती िै और एक अवतार तो भगवान् ्की और भी अधधक अभभव्यजकत करते िैं। जब िम इस दृजष्टकोण को स्वीकार करते िैं तो सिज िी िम जिााँभगवान् ्की अधधक अभभव्यजकत पाते िैं उसके प्रनत नतमस्तक िो सकते िैं। इसीभलए गुरु के प्रनत, एक ववभूनत के प्रनत या कफर एक अवतार के प्रनत नतमस्तक िोना, उसके प्रनत श्रद्धा रखना आममोमथान का एक बिा िी शजकतशाली तरीका ि ै। इसभलए यहद इस दृजष्टकोण को सिी रूप से भलया जाए तो यि िमें ववभूनतयोग से जोि देता ि ै। ववभूनतयोग का उपदेश करते िुए भगवान् ्साथ में यि भी किते िैं कक सारे ब्रह्माण्ड भी उनसे ननःसृत एक धचनगारी मात्र िी िैं जबकक वे स्वयं तो इस सब को अनतिम कर जाते िैं। वास्तव में परमाममा िमारे ककन्िीं भी ऊाँचेसे ऊाँचेमानभसक ननरूपणों को सवथिा अनतिम कर जाते िैं। िमारे वेद भी उस तत्त्व का ननरूपण करने ्के बाद 'नेनत, नेनत' िी किते िैं अथात् ्परमाममा इन ककन्िीं भी चीजों से बढ़ निीं ंिोते बजल्क सभी कुछ से परे िोते िैं, यिा ंतक कक वे ्असीभमतता से भी बद्ध निीं िैं। वे सीभमत िो जोते िैं और इन दोनों से (सीभमतता और असीभमतता से) परे भी िैं और निीं भी िैं। सवेश्वरवादी दृजष्टकोण जो भगवान् ्व जगत् ्का एकमव मानता ि ै एक तरि से भगवान् ्को सीभमत कर देता ि ै व उनके परामपर रूप के भलए कोई स्थान निीं छोिता। इस प्रकार ईश्वर के ये तीन भाव िैं। िालााँकक ये तीनों परस्पर एक दूसरे से ववरोधाममक प्रतीत िोते िैं परंतु वास्तव में ये ऐसे िैं निीं। परंतु चूंकक िमारे मन की अपनी सीमाएाँ िैं और वि समग्रता में ककसी चीज को निीं देख सकता इसभलए ककसी एक दृजष्टकोण को अपनाकर इस पर आग्रि करता ि ै कक विी एकमात्र सच्चा दृजष्टकोण ि ै।

वास्तव में िमारा मन ज्ञान का उपकरण निीं ि ै। इसभलए ज्ञान के भलए इसका उपयोग करना अनुधचत िै। मन के काय िके ववषय में श्रीमाताजी किती िैं, "...मन का सच्चा काय िि ै कम िकी रचना करना और व्यवस्थापन करना। मन में एक रचनाजममका और संगठनकारी शजकत ि ै, और यिी वि चीज ि ै जो कम िके उद्देश्य से, कम िकी व्यवस्था के भलये अंतःपे्ररणा के ववभभन्न तत्त्वों को यथािम रखती ि ै। और मन अपनेआप को इसी भूभमका तक सीभमत रखे, अंतःपे्ररणाओं को ग्रिण करे - वेचािे ऊपर से आय ेंअथवा अंतराममा के गुह्य केंर से - और केवल कम िकी योजना का ननमाणि करे (चािे ववस्तीण िरूप-रेखा के साथ या अमयंत छोटे-छोटे ब्यौरों के साथ, चािे जीवन की लघुतम बातों के भलये या मिान् ्ववश्व-व्यवस्था के भलये), तो वि अपनेकाय िको पयापि्त रूप से पूरा करेगा।

यि ज्ञान का उपकरण निीं ंि ै।

परंतु वि कम ि के भलये, कम िकी व्यवस्था के भलये ज्ञान का उपयोग कर सकता िै। यि सुव्यवस्था और रचना का एक उपकरण िै और यि जब सुववकभसत िोता िै तो बिुत शजकतशाली और बिुत सुयोग्य उपकरण िोता िै।

मनुष्य, जब अपनेजीवन को सुव्यवजस्थत करना चािता िै उदािरणाथ,ि अपनी सिा के अंदर ववभभन्न तत्त्वों को उनके स्थान पर रखना चािता िै तो वि इस बात को बिुत स्पष्ट रूप में अनुभव कर सकता िै। एक ऐसी ववशेषे बौद्धिक क्षमता िै जो एकाएक प्रमयेक वस्तु को उसके स्थान पर रख देती िै तथा एक योजना बना लेती और व्यवस्था कर लेती िै। और वि कोई ऐसा ज्ञान निीं िै जो मन से आता िै, वि एक ऐसा ज्ञान िै जो, जैसा कक मनैं ेकिा िै, आममा की गुह्य गिराइयों में से अथवा एक उच्चतर चेतना से आता िै; और मन उसे भौनतक जगत् ् में एकाग्र करता तथा उच्चतर चेतना को कम िका आधार देनेके भलये उसे व्यवजस्थत करता िै।

मनुष्य को यि अनुभव उस समय बिुत स्पष्ट रूप में िोता िै जब वि अपनेजीवन को व्यवजस्थत करना चािता िै।

और कफर, इसका अन्य एक उपयोग भी िै। मनुष्य जब अपनी तकि-बुद्धि के, बुद्धि के तकिशील केंर के, ववशुद्ध तकि-बुद्धि के संपकि में िोता िै तो समस्त प्राणणक आवेगों के ऊपर यि एक शजकतशाली ननयंत्रण िोता िै। जो कुछ प्राण-जगत् ्से आता िै उस पर उसके द्वारा बिुत दृढ़ता के साथ संयम प्राप्त ककया जा सकता और उसे ननयंत्रत्रत और व्यवजस्थत कम िमें प्रयुकत ककया जा सकता िै। परंतु उसे ककसी अन्य वस्तु की सेवा में संलग्न िोना चाहिये - न कक स्वयं की तुजष्ट में।

ये िी मन के दो उपयोग िैं: यि एक ननयंत्रणकारी शजकत िै, ननयंत्रण करने का साधन िै, और यि व्यवस्था करने की एक शजकत िै। यिीं इसका सच्चा स्थान िै।" (CWM 5, 107-09)

इस प्रकार मन का एक तय दायरा िै और अपनी एक सीभमत उपयोधगता िै परंतु यहद िम यि भ्रम कर बैठें कक िम संसार को, उसकी किया को, उसके तौर-तरीकों को, भौनतक, प्राणणक और मनोवैज्ञाननक ननयमों को उसके माध्यम से समझ गए िैं तो इससे बड़ी भारी भूल कर सकते िैं। कयोंकक िमें अपनी मन-बुद्धि के माध्यम से जो ननयम-ववधान प्रतीत िोते िैं वे तो केवल एक प्रतीनत मात्र िी िैं। केवल एक चेतना ववशेषे पर रिने पर उसकी कियाववधध िमें ननयमस्वरूप प्रतीत िोती िै। परंतु चेतना के उस स्तर को अनतिम करनेपर या कफर चेतना के एक उच्चतर स्तर के ववधान को ननमनतर स्तर पर सकिय करने ेपर वे िी ननयम बाध्यकारी निीं ंरिते और तब जजसे िम चममकार किते िैं वे संभव िो जाते िैं। मनुष्य की चेतना में जो चीजें सिज िोती िैं वे संभवतः पशु ुकी चेतना के भलए चममकार प्रतीत िोती िों, वैसे िी मनुष्य को देवताओं की किया चममकाररक प्रतीत िोती िै। अतः चेतना के स्तर पर ननभिर करता िै कक प्रकृनत और पुरुष का परस्पर संबंध कया िोगा। चेतना का स्तर जजतना ऊँचा िोगा प्रकृनत पुरुष की इच्छा के प्रनत उतनी िी नमनीय िोगी।

इसभलए गीता यि ◌ाँ◌िमारे समक्ष ईश्वर के ववभभन्न भावों को प्रकट कर री ◌ि◌ै ताकक ◌िमारी बुद्धध में यि पयाप्ति नमनीयता आ सके कक ककस प्रकार परमाममा एक साथ सभी भावों को अपनाने में सक्षम ◌ि◌ैं और कफर भी वे स्वयंइन सभी से परे ◌ि◌ैं। अतः ◌िमें समझना ◌ि◌ोगा कक सभी कुछ के अंदर ईश्वर ववद्यमान ◌ि◌ैं परंतु इसके साथ ◌ि◌ी यि भी समझना ◌ि◌ोगा कक सब में ववद्यमान ◌ि◌ोतुिए भी उनकी उिरोर वधधति अभभव्यजकत ◌ि◌ै जजसके कारण ◌िमें सभी के साथ उस अभभव्यजकत के अनुसार यथायोग्य ◌ि◌ी व्यविार करना ◌ि◌ोगा। इसभलए सवेश्वरवादी दृजष्टकोण के साथ ◌ि◌ी साथ वधधति ◌ि◌ोती अभभव्यजकत के ननयम का भी सममान रखना ◌ि◌ोगा जजससे कक सभी मूलतः भगवान् ◌् िोतेुिए भी ◌िम व्यविार में एक पमथर और एक मनुष्य के साथ, एक सामान्य मनुष्य और एक संत के साथ, एक संत और एक ववभूनत के साथ यथोधचत व्यविार कर सकें। और इन सब के साथ ◌ि◌ी साथ यि भान भी आवश्यक ◌ि◌ै कक भगवान् ◌्अपनी ककन्िीं भी अभभव्यजकतयों से सीभमत निींिो सकते। वे ◌ेतो इन सबसे परे भी ◌ि◌ैं, परामपर ◌ि◌ैं। यहद इन सब भावों को ◌िम एक साथ समजन्वत कर सकें तभी ◌िम सिी रूप से देख पायगें अन्यथा सदा ◌ि◌ी आशंका बनी रिती ◌ि◌ै कक ◌िम ककसी भी एक सूत्र में बंध जाएँगे और परमाममा के दूसूरे पक्ष को चूक जायगें।

यि सीभमत बाह्य भूतभाव हदव्य अनन्त को व्यकत करनेवाला एक प्राकृत भाव ◌ि◌ै।....और इस ननमन, बाह्य और प्रतीयमान व्यवस्था–िम में प्रकृनत, जो भगवान् ◌्के व्यकत ◌ि◌ोनेकी एक शजकत ◌ि◌ै, वि तमसाच्छन्न वैश्व अज्ञान की ववकृनतयों से ववरूवपत ◌ि◌ो जाती ◌ि◌ै और उसके हदव्य मिाममय या मित्त्व ◌िमारी मानभसक और प्राणणक अनुभूनत की ज़्ि-स्थूल, ववभाजक और अिकारमय प्रकिया में लुप्त ◌ि◌ो जाते ◌ि◌ैं। पर तो भी, यिा ◌ाँभी जो कुछ ◌ि◌ै, चिो जन्म ◌ि◌ो या संभूनत ◌ि◌ो या ववकास ◌ि◌ो, सब परम् ◌्पुरुष परमेश्वर से ◌ि◌ी ◌ि◌ै, एक ववकास–िम ◌ि◌ै जो परामपर से ननकली ◌िुई प्रकृनत की किया द्वारा ◌ि◌ोता ◌ि◌ै। भगवान् ◌्किते ◌ि◌ैं, अिं सवस्यि प्रभवो मिः सवं ◌ंप्रवतति, अथात्◌्"म ◌ैंि◌ी सभी कुछ की उमपवि ◌िूँ और मुझसे ◌ि◌ी सब कुछ कम ◌िऔर गनतरूप ववकास में प्रवृि ◌ि◌ोता ◌ि◌ै।" यि बात केवल उस सब के भलए ◌ि◌ी सिी निीं ◌ंि◌ै जजसे ◌िम शुभु किते ◌ि◌ैं या जजसकी प्रशंसा करते ◌ि◌ैं तथा जजसे ◌िम हदव्य मानतेिैं, वि सब जो ज्योनतमयि, साजत्त्वक, सदाचारयुकत, शाजन्तप्रद, आजममक रूप से आनन्दप्रद ◌ि◌ै....ऐसा उन ववपरीत भावों के भलए भी सच ◌ि◌ै जो ममय ◌िमन को व्याकुल कर देते ◌ि◌ैं और अज्ञान और उसका संभ्रम ले आते ◌ि◌ैं, प्रकाश और अंधकार की परस्पर शेषे सभी िि◌ोओंके साथ, "दुःख और सुख, जन्म और मृमृयु, भय और अभय, यश और अपयश" ले आते ◌ि◌ैं....

x.8

प्रश्न : पर जो तानाशिा ◌िजारों लोगों को मार ◌ि◌ालतेिैं, या कफर जो आतंकवादी आतंक फैलाते ◌ि◌ैं वे सब भी तो त्रबना भगवान् ◌्की इच्छा के भगवान् ◌्को ऐसी चीजों इच्छा ◌ि◌ोती ◌ि◌ै ?

उिर : यि एक बिा ◌ि◌ी जहटल प्रश्न ◌ि◌ै जो कक बिुत ◌ि◌ी आप ◌ि◌ै परतु यि उठता ◌ि◌ै मन के एकांगी स्वरूप के कारण। अब एक उदिारण लेते ◌ि◌ैं जजसके माध्यम से ◌िम कुछ-कुछ समझनेका प्रयास कर सकतेिैं। ◌ि◌ालाकाँक वास्तव में तो कोई भी उदिारण कभी भी पूण ◌िरूप से सटीक निीं ◌ंि◌ो सकता कयोंकक जजन भी रूपकों आहद का ◌िम प्रयोग करते ◌ि◌ैं वे कभी भी परम समय को पररभावषत निींकर सकते। कफर भी इस सबसे बुद्धध के भलए ववषय को समझना

कुछ अधधक सुगम िो जाता िै। अब मान लीजजये कक आप िी के घर में, आप िी की ताश से आप अपने दोस्तों के साथ खेल रिे िैं। परन्तु इसका यि अथ िनिीं ननकलता कक खेल में सबके पास जो अच्छे या बुरे पिे आ रिें िैं वे सब आप की िी मजी से आ रिे िैं। इसीभलए भले िी सब में परमामना व्याप्त िैं तो भी भगवान् ्श्रीकृष्ण स्वयंअजुनि को युद्ध में सब को मार िालने के भलए कि रिे िैं। समस्या मूलभूत समय में निीं ंिै, अवपतु िमारे सीभमत व संकीण िदृजष्टकोण में िै जो केवल एक सीधी रेखा में िी देख सकता िै जबकक वि समय तो अनंत आयामी िै इसभलए जब िम कितें कक सब कुछ भगवान् ्की िी इच्छा से िोता िै तो मूलतः तो यि बात समय िै परंतुइसे व्यविार में प्रयुकत करने ेमें िम धोखा खा जाते िैं। कोई चीज घहटत िो जानेके बाद तो िम कि सकते िैं कक जो सवश्रेिष्ठ संभव था विी घहटत िुआ िै परंतु उससे पूव ििम ऐसा निींकि सकतेकयोंकक उसके अंदर सदा िी िमारे व्यजकतगत चयन की, वववेक की, िमारे िस्तक्षेप की संभावना रिती िै। इसीभलए िमारी उच्चतम संभव चेतना के अनुसार िमारा व्यजकतगत चयन बिुत िी मित्त्वपूण ितत्त्व िै जो कक भावी संभावनाओं में अपना योगदान करता िै। यहद ऐसा न िोता और सब कुछ अपनी पूणमिव की िी जस्थनत में िोता तब तो ककन्िीं अवतारों के अवतरण को और उनके िस्तक्षेप की भी कोई आवश्यकता िी निीं ंथी। इसभलए भले िी अपनेआप में ककतने ेभी सापेक्ष कयों न िों पर इस पाधथवि अभभव्यजकत में समय के साथ असमय भी िै, भमथ्यामव िै, बुराई िै, आहद भी िैं। िमारे वेदों, पुराणों आहद सभी सद्ग्रन्थों में िम यिी बात पातें। सभी पुराणों में िम राक्षसों के संिार की कथाएँ पाते िैं। वेदों में िम दुःख कष्ट-यंत्रणा वृत्रों और पणणयों आहद ननमनतर वृवियों को नष्ट करने की बात पातें। तो कया िमारे वैहदक ऋवषयों को यि सामान्य ज्ञान भी निीं ंथा कक सभी कुछ भगवान् ्से िी उमपन्न िोता िै इसभलए उन्िें मारना निीं चाहिये? अतः यि एक अनुमपादक और अनुपयोगी ववचार िै कक सब कुछ भगवान् ्की िी इच्छा से िो रिा िै। इससे िमें व्याविाररक रूप से कोई सिायता या हदशाननदेश प्राप्त निींिोता।

स्वयंश्रीअरववन्द का साववत्री ग्रंथ इसी चीज को तो सामने लाता िै। नारद जी ने साववत्री का भववष्य देख कर पिले िी यि घोषणा कर दी कक एक साल बाद समयवान् ्की मृमृयुननजश्चत िै। अब यहद साववत्री इसे स्वीकार कर लेती तो कया कभी मृमृयु पर ववजय संभव िो पाती। वास्तव में मानभसक रूप से अपनाया यि दृजष्टकोण कक सब कुछ भगवान् ्की िी मजी से िोता िै, एक बिा िी भगवद्ववरोधी दृजष्टकोण िै। कयोंकक ऐसा कौन मनुष्य िोगा जजसे कक अपने अनुकूल-प्रनतकूल, सुखद-दुःखद आहद अनुभव न िोते िोंगे। अतः पीिादायक अनुभवों में व्यजकत यि ववचार कर सकता िै कक वि पीिा श्रीमाताजी की इच्छा से िी आई िै और वे ेमनचािे रूप से िमें दुःख और यंत्रणा में से गुजारती िैं। और ऐसे भाव से व्यजकत का भगवान् ्से जुिाव समाप्त िोने ेकी आशंका रिती िै। इसीभलए श्रीमाताजी साधकों को अनेक बार इस ववषय में चेताती थीं कक ऐसी ककन्िींभी मानभसक धारणाओं को भगवान् ्पर थोपनेका प्रयास न करें कयोंकक उसके बिे िी गंभीर पररणाम िो सकते िैं। इसभलए कोई भी एकांगी दृजष्टकोण अपनाते िी िम अपनेआप को भारी भूलों के प्रनत खोल देते िैं कयोंकक यि एक ऐसा समय िै जजसका केवल आध्याजममक अनुभव के द्वारा िी बोध िो सकता िै, मानभसक रूप से निीं। और व्याविाररक रूप से कया करना चाहिये इसका भी व्यजकत को अपनेभीतर से ननदेश या इसकी प्रेरणा प्राप्त िोती िै। इसभलए श्रीमाताजी किती िैं कक व्यजकत को अपनी उच्चतम संभव चेतना के स्तर से किया करनी चाहिये तभी जो सविोम िै, वि िोता िै।

गीता परम सिा और उसके भूतभाव को स्वीकार करती िै और उनके परस्पर अंतर को मित्त्व देती िै, पर इसे कोई परस्पर ववरोध में निींबदल देती। कयोंकक ऐसा करना तो ववश्व के एकमव का िी अभभननषेध करना िुआ। भगवान् ्अपनी परामपरता में एक िैं, सभी पदाथों के सवा–धारक एक अखण्ड् आममा िैं, अपनी ववश्वप्रकृनत के एकमव में एक िैं। ये तीनों एक िी भगवान् ्िैं; सब कुछ उन्िीं से ननकलता िै, सब कुछ उन्िीं िंकी सिा से उमपन्न िोता िै, सब कुछ उन्िीं का ननमय अंश अथवा अभभव्यजकत िै। यहद िमें गीता का अनुकरण करना िै तो िमें भगवान् ्की उस परा जस्थनत में, उप परम ननरपेक्ष सिा में सब पदाथों के ककसी परम ननषेध को निींअवपतु उनके रिस्य की वास्तववक कुंजी को, उनके अजस्तमव के समन्वयकारी रिस्य को खोजना िोगा।

परन्तु अनन्त सिा का एक और समस्वरूप िै जजसे भी मोक्षप्रद ज्ञान के एक अपररिाय ितत्त्व के रूप में जान लेना आवश्यक िै। वि स्वरूप िै भागवत शासन (भगवान्)् का अपनी परा जस्थनत से नीचेजगत् ्की ओर देखना और साथ िी जगत् ्में अंतयाामी रूप से अपनी घननष्ठ उपजस्थनत बनाए रखना। जो परम् ्पुरुष समस्त सृजृष्ट बनते िैं और कफर भी उसे अनन्त रूप से अनतिम ककये रिते िैं, वे जगत् ्के कोई ऐसे संकल्परहित आहद कारण निीं जो अपनी सृजृष्ट के ववषय में उदासीन िों।..... वे ेसब भुवनों और उनके अधधवाभसयों के मिाशजकतशाली परमेश्वर, 'लोकमिेश्वर' िैं और सभी कुछ का केवल अन्दर से निींअवपतु ऊपर से, अपनी परमातीत जस्थनत से शासन करते िैं।

ववश्व का शासन कोई ऐसी शजकत निीं कर सकती जो ववश्व के परे न िो। भागवत् ्शासन का अथ ािी िै ककसी सवाशजकतमान् ्शासक की मुकत प्रभुता, न कक ककसी सीभमत अभभव्यजकत की कोई स्वत:चाभलत शजकत या यांत्रत्रक ननयम जो ववश्व की दृश्य प्रकृनत से सीभमत िो। यि ववश्व के ववषय में ईश्वरवादी दृजष्ट िै, परंतु यि कोई भयववकंवपत या सशंक ईश्वरवाद निीं िै जो जगत् ्के द्वन्द्वों अथवा अंतववरोधों से भयभीत िो, अवपतु ऐसा ईश्वरवाद िोता िै जो ईश्वर को सवाज्ञ और सवाशजकतमान् ्के रूप में, एकमात्र आहद पुरुष के रूप में देखता िै जो सभी कुछ को – चािे जो कुछ भी िो, अच्छा-बुरा, सुख-दु:ख, प्रकाश- अन्धकार - स्वयंअपनी िी सिा के पदाथ ाके रूप में अपने अन्दर व्यकत करते िैं और जो कुछ उन्िोंनेअपने-आप में व्यकत ककया िै उसका स्वयंिी शासन करते िैं। द्वन्द्वों या अंतववरोधों से अप्रभाववत, अपनी सृजृष्ट से अबद्ध इस प्रकृनत से अतीत और कफर भी उसके साथ अंतरंग रूप से संबद्ध और उसके प्राणणयों के साथ घननष्ठ रूप से एकीभूत, वे, उनके आममा, अंतराममा परमाममा, परमेश्वर, पे्रमी, सुिद्, आश्रय उन्िें उनके अन्दर से और ऊपर से अज्ञान और दु:ख, पाप और प्रमाद के इन ममय िदृश्यों के भीतर ले जा रिे िैं, िर एक को उसकी प्रकृनत के और सभी को ववश्व-प्रकृनत के द्वारा ककसी परम् ्ज्योनत, आनन्द, अमृतृत्त्व और परामपरता की ओर ले जा रिे िैं।

यिी मुजकतप्रद ज्ञान की पररपूणता िै। यि ज्ञान िै उन भगवान् ्का जो िमारे अन्दर िैं और जगत् ्के अन्दर िैं और साथ िी ववश्वातीत अनन्त िैं। वे परम ननरपेक्ष जो अपनी हदव्य प्रकृनत से, आमममाया से यि सब कुछ िुए िैं, वे अपनी ववश्वातीत जस्थनत में रिते िुए सबका शासन करते िैं। वे प्रमयेक प्राणी के अन्दर अंतरंग रूप से अवजस्थत िैं और समस्त ववश्व-घटनाओं के कारण, ननयंता और चालक िैं और कफर भी इतने मिान्,्

शजकतशाली और अनन्त िैं कक अपनी सृजष्ट से ककसी प्रकार सीभमत निीं ंिो सकते। ज्ञान का यि स्वरूप भगवान् ् की प्रनतज्ञा के तीन पृथक् पृथक् श्लोकों में हदया गया िै।

श्रीअरववन्द ने ब्रिे िी ववस्तार से भगवान् ्के सारे िी भावों का वणनि कर हदया िै। इस सब में एक चीज जो मिें ध्यान में रखनी चाहिये वि यि िै कक वैसे िी जैसे कक अंतररक्ष में अनंत आकाशगंगाएँ िैं और यहद िम अपनी अगुँभलयों के इशारे से उन्िें बाँटना चािें तो इससे उन आकाशगंगाओं के ववराट् रूप पर कोई असर निींपि सकता, वैसे िी भले िी अपनेमन के माध्यम से िम परमाममा को ककन्िींभी सूत्रों में बाधँाना या पररभावषत करना चािें तो उससे परमाममा के समस्वरूप पर कोई असर निीं ंिो सकता। अतः िमें सदा िी इस चीज का भान िोना चाहिये कक मिारे ऊँचे से ऊँचेमानभसक सूत्र भी परमाममा के समस्वरूप का लेशमात्र भी ननरूपण निीं ंकर सकते। अतः अधधक से अधधक िम मन को व्यविार के भलए और भगवान् ्की अभभव्यजकत के भलए एक उपयोगी माध्यम के रूप में तो मान सकतेिैं परंतु इससे अधधक िमें यि भ्रम करने ेकी भूल निीं ंकरनी चाहिये कक उसके माध्यम से मि समय की अथवा भगवान् ्के स्वरूप की थाि पा सकतेिैं। िालाकँाक स्वयं व्यजकत के भलए मन-बुद्धध के माध्यम से समझने ेका प्रयास करना व्यजकतगत रूप से कुछ उपयोगी िो सकता िै और संभवतः प्रयास करने ेसे मन-बुद्धध में कुछ रूहढ़वाहदता कम िोकर उसमें सुनमयता आ सकती िै। परंतु इसके अनतररकत इसकी अधधक कोई उपयोधगता निीं िै कयोंकक िमारी ककन्िींभी मानभसक चीजों से भगवान् ्बंध निीं जाते। यि तो वैसे िी िै जैसे कक ककसी अथिा सागर को लोटे में भर कर यि सोचना कक िमने सागर को उस लोटे में बाधँ भलया िै। जबकक वास्तव में परमाममा तो इस उदािरण से भी अधचंमंय रूप से अनंतआयामी और ननरपेक्ष सिा िैं। उनके स्वरूप को तो कोई जान िी कया सकता िै। यहद इस बात को समझ भलया जाए तो इस कट्टरपंथी दृजष्टकोण पर कुछ अंकुश लग जाता िै कक व्यजकत का अपना िी मत या समय के ववषय में केवल उसी का अनुभव एकमात्र स और अन्य सभी मत या दशनि भमथ्या िैं। और साथ िी इस अिंकार दृजष्टकोण से पैदा िोने ेवाली ववषमता और वैमनस्य की चीजों पर भी भार अंकुश लग जाता िै। यहद बुद्धध में यि सामान्य ज्ञान िो कक सभी दशनि ककसी बढई के उन अनेकों औजारों के समान िैं जजनकी यथासमय जअपनी-अपनी उपयोधगता िै और सभी अपनेस्थान पर श्रेष्ठ िैं, तो उस बिुत सी समस्याओं से बचा जा सकता िै जजन्िें िम प्रायः िी इस सामान्य ज्ञान के अभाव में िोते देखते िैं। इस नमनीयता के त्रबना तो व्यजकत अपनी एक मानभसक कैद में बाँधा िोता िै। और जब इस मानभसकता के साथ िी साथ व्यजकत को यहद कोई आंभशक अनुभव प्रास िो जाता िै तब तो वि अपनेदृजष्टकोण के प्रनत और अधधक सुननजश्चत िो जाता िै और इसके पररणामस्वरूप िम इनतिास में ककतने िी अमयाचार घहटत िुए देखते िैं। भारतीय संस्कृनत की यि ववशेषेता रिी िै कक यिाँऋवषयों-मुननयों, रष्टाओं, मनीवषयों आहद की एक अटूट श्रृंखला रिी िै और सभी ने अपने-अपने तरीके से परमाममा के स्वरूप का ननरूपण ककया िै। इस कारण यि एक आम समझ थी कक कोई भी ननरूपण भगवान् ्के िी स्वरूप का कोई पक्ष उजागर कर रिा िै परंतु कोई भी एक ननरूपण या सभी ननरूपण भमलाकर भी उनके समस्वरूप को पूण िरूप से उजागर निींकर सकते। इसीभलए एक प्रचभलत प्राथनिा में िम किते िैं कक यहद स्वयंसरस्वती भी अनंत काल तक भगवान् ्के गुणों को भलखती रिें, तो भी उनके गुणों का कोई पार या अंत निींआ सकता।

परंतु इस सब चचिाका यि तामपय िनिींननकाल लेना चाहिये कक मन की कोई उपयोधगता निीं ंिै। अवश्य ीी िमारे ननमनतर भागों पर अंकुश लगाने में और जीवन के अंदर चीजों के बीच व्यवस्था स्थावपत करने ेमें उसकी उपयोधगता िै। परंतु जैसा कक िम चचिाकर िी आए िैं कक ज्ञान के उपकरण के रूप में मन को काम में लेना त्रुहट िै। इसभलए मित्त्वपूण िबात िै मन की सच्ची उपयोधगता समझ कर उसके अनुकूल उसे काम में भलया जाए। पशु ुके स्तर तक िम मानभसकता का ववकास निीं ंदेखते। पशु ुअपनी सिज-वृवि (instinct) के द्वारा काय िकरता ै और जब तक उसकी उस वृवि के अंदर ककसी प्रकार का िस्तक्षेप निीं ंिोता तब तक वि कोई भी ऐसा काम निीं करेगा जो उसे संकट में िाल दे। इसी भलए िम पशु को सिज िी कोई जिरीली चीज खाते ेया कोई उसकी प्रकृनत के प्रनतकूल व्यविार करते निीं देखते। परंतु मनुष्यों के साथ संपकि के कारण िमारी मानभसकता द्वारा उसकी सिज-वृवि में िम कुछ िस्तक्षेप िोता पातेिैं जजसके कारण पशु ुभ्रभमत िोकर बिुत बार ववषाकत चीजें खा लेते िैं, मनुष्य के बनाए जाल में फाँस जाते िैं, अपनी सिज प्रवृनत से िटकर किया करने ेलगते िैं। पशुओं में आमम-अवलोकन की शजकत निीिंोती। केवल मानभसक चेतना िी िै जजसमें आमम- अवलोकन की शजकत िोती िै जो अपनेआप की किया का अवलोकन और आकलन कर सकती िै। यिी आमम-अवलोकन की शजकत मनुष्य को पाशववकता से ऊपर उठा देती िै और उसे सचेतन रूप से आगे गनत करनेकी संभावना प्रदान करती िै। इसी के द्वारा व्यजकत अपनी ननमन वृवियों का अवलोकन कर सकता िै, उनकी अराजक िीा के ऊपर कुछ अंकुश लगा सकता िै, जीवन में एक व्यवस्था लागू ूकर सकता िै। और इसी के कारण सामूहिक जीवन सुचारू रूप से काम कर सकता िै अन्यथा यहद बुद्धध न िो तो कभी ककसी प्रकार के समाज की व्यवस्था निींकी जा सकती। यहद समाज में नैनतक ववधान न िों तो घोर अराजकता का साम्राज्य िो सकता िै। मन और बुद्धध की यिी उपयोधगता िै। परंतु जब िम इसके इस सीभमत दायरे से अधधक उस जगि इसे प्रयुकत करने ेका प्रयास करते िैं जो इसका अधधकार क्षेत्र निीं ंिै तब िम भयंकर भूल कर बैठते िैं। अतः जब गीता िमें परम वचन बतानेजा रिी िै तो उसका पूरा लाभ उठाने के भलए यहद िम इन सभी बातों को ध्यान में रख कर एक उधचत पररपे्रेक्ष्य में उसकी भशक्षा को लें तो उससे यथासंभव लाभ उठा सकतेिैं।

महषुयुः सप्त पूिे चत्िारो मनिमतथा ।
मद्भािा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ।। ६।।

६. सात परजातन महवुष ुऔर चार मनजमेरे मानससक आविभिुा हैं; उनसे ही संसार में ये सब जिी उत्पन्न हजए हैं।

एतांविभूनतं ंयोगं च मम यो िेवत्त तत्त्तिः ।
सोऽविकम्पेन योगेन यज्जयते ेनात्र संशयः ।। ७।।

७. जो कोई मनष्जय मेरे इस सिवुयापी ईश्रिभिा (विभूनत भिा) को और पैरे इस योग को तास्त्तिक रूप से जानता है, िह अविचल योग के दिारा अपने-आप को मेरे साथ यक्जत कर देता है, इस विषय में कोई संशय नहीं ंहै।
....

* मिवष,ि जो वेदों की तरि यिााँ भी सात आहद-ऋवष, 'मिषयिः सप्त पूवे', जगत् ्के सप्त पुरातन कि गये िैं, उस हदव्य प्रज्ञा की धी-शजकतया ाँिैं जजसने अपनी िी स्वामम-सचेतन अनन्तता, 'प्रज्ञा पुराणी', से सब पदाथों का ववकास कराया िै - अपने िी सार-तत्त्व के सात तत्त्वों की श्रेेणणयों को ववकभसत ककया िै।.... इनके साथ िी चार शाश्वत मनु, अथाित् ्मनुष्य के जनक, िैं - कयोंकक परमेश्वर की कियाशील प्रकृनत चतुववधि िै और मानवजानत इस प्रकृनत को अपने चतुववधि चाररत्रत्रक लक्षण से प्रकट करती िै। ये भी, जैसा कक उनके नाम से प्रकट िोता िै, मनोमय पुरुष िैं। इस समस्त जीवन के, जो अपनी किया के भलए व्यकत या अव्यकत मानस पर ननभिर करता िै, ये स्रष्टा िैं, उन्िीं से जगत् ्के ये सब प्राणणे उमपन्न िुए िैं; सब उन्िींकी प्रजा और संतनत िैं - येषांलोक इमाः प्रजाः। और ये मिवष ितथा ये मनु स्वयं ंभी परम् ्पुरुष के धचरंतन मानस पुत्र िैं जो उनकी आध्याजममक सवातीतला से ववश्व-प्रकृनत के अन्दर उमपन्न िुए िैं- ये सब उमपविकतिा िैं, परंतु जो कुछ भी ववश्व में उमपन्न िोता िै उस सबके मूलस्रोत तो परम् ्पुरुष िी िैं।

यिााँ ककन्िींमिानवीय ऋवषयों की निीं अवपतु 'धी' शजकतयों की बात िो रिी िै। इन मिवषयिों की संख्या सात िै। गीता में िम इसका ववस्तृत वणनि निीं पातेपरंतु वेदों में एन बारंबार यि सात की संख्या पाते िैं जजसमें चेतना के सात ववभभन्न स्तर िैं - भौनतक प्राणणक, मानभसक, अनतमानभसक, सत्,् धचत् ्आऔर के सात ववभभन िम अपने मन के द्वारा िी इन सात लोकों का अनुभव करते िैं। ज़ितमव का अनुभव भी िम अपने मन के द्वारा िी करतिैं। अन्य सभी लोकों का अनुभव भी िम उसी के माध्यम से करतिैं। साथ की मिेश्वरी, मिाकाली, मिालक्ष्मी और अनुभव भी िम उसी के माध्यम से कारोबार प्रका की प्रकृनत पातिैं। इससेसंसारमें उमपन्नसभी जीवोंकाएक मोटाप्रारूप भमलतिै।

अहं सिुमुय प्रभिो मत्तः सिं ंप्रितुते ।
इनत मत्िा भजन्तेमांबिजा भिासमस्न्िताः ।। ८।।

८. म ैंसभी कजछ की उत्पवत्त हूं और मजझसे ही सब कजछ कमु ्और गनतरुप विकास में प्रितृत होता है; ऐसा जानकर ज्ञानी मनष्जय भिाविभोर होकर मेरी भस्क्त करते हैं।

मस्च्चत्ता मद्गतप्राणा बोियन्तः परमपरम् ्।
कथयन्तश्ि मांननत्यंतष्जयस्न्त च रमस्न्त च ।। ९॥

९. उनकी चेतना मझजसे पररपूणु ्होती है, उनका जीिन पूणु ्रूप से मजझे ेसमवुपतु होता है, परमपर मेरा बोि करते हजए और मेरे विषय में चचुाकरते हजए, िे सदा ही संतष्जट और हवुषतु रहते हैं।

तेषांसततयक्जतानां ंभजतां प्रीनतपूिुकम् ्।
ददासम बद्जधियोगं ंतं येन मामजपयास्न्त ते ।। १०।।

१०. इन्हें, जो इस प्रकार मेरे साथ सतत् ्यजक्त हैं और प्ेरेमजन्य तीव्र आनन्द से मजझेभजतेहैं, म ैंउस बद्जधियोग को देता हूँ स्जसके द्िारा िे मजझेेप्राप्त होतेहैं।

तेषामेिानकजम्पाथुमुहमज्ञानजंतमः ।
नाशयाम्यात्मभािमथो ज्ञानदीपेन भामिता ।। ११।।

१९. उनके ऊपर अनकजम्पा के कारण ही, म,ें उनकी आत्मा में स्मथत हजआ, ज्ञान के प्रज्ज्सिलत दीपक के द्वािा अज्ञानजननत अंकिार को नष्ट कर देता हूँ।

ये पररणाम अवश्यंभावी रूप से ज्ञान के स्वभावमात्र के कारण और उस योग के स्वभावमात्र के कारण उमपन्न िोते िैं जो उस ज्ञान को आध्याजममक संवद्धिन और आध्याजममक अनुभव में पररणत कर देता िै। कयोंकक मनुष्य के मन और कम िकी सारी परेशानी, उसके मन की, उसकी इच्छाशजकत की, उसकी नैनतक प्रवृवि की, उसकी भावाममक, संवेदनाममक और प्राणणक उिजनाओंकी सभी लिखिाट, शंकाशीलता और वेदना या व्यथा का मूल उसके सममिो में अथात् िउसके दि-बद्ध इजन्रयाच्छाहदत मानव मन के भलए स्वाभाववक अंधकार में टटोलनेकी किया और संज्ञान करनेऔर ननणयि करने की भ्रांत किया में भमल सकता िै। परंतु जब वि सब पदाथों के हदव्य मूल को देखता िै, जब वि जस्थरभाव से ववश्वदृश्य या प्रतीनत से उसके ववश्वातीत समस्वरूप को देखता िै और कफर उस समस्वरूप से इस दृश्य को देखता िै तब वि मन, बुद्धध, हृदय और इजन्रयों के इस सममिो से मुकत िो जाता िै, असंमूढः मयेषु, इस मृमृयुलोक में प्रबुद्ध और मुकत िोकर ववचरण करता िै। िर चीज को अब केवल उसका वतमिान और प्रतीयमान या बाह्य मूल्य प्रदान करनेकी बजाय उसे उसका परम और यथाथ िमूल्य प्रदान करते िुए वि इनके पीछे की गुप्त कड़ियों और संबंधों को ढूँढ़ लेता िै; वि सारे जीवन और कम िको सचेतन रूप से उनके उच्च और सच्चेउद्देश्य की ओर लगाता िै और उन्िें उस प्रकाश और शजकत के द्वारा संचाभलत करता िै जो उसे उसके अंतःस्थ भगवान् से प्राप्त िोते िैं। इस प्रकार वि बोध करनेया संज्ञान करने के गलत तरीके से, गलत मानभसक और ऐजच्छक प्रनतकिया से, इजन्रयों के गलत रूप से ग्रिण करने से और उिजना से, जो कक यिााँ पाप, प्रमाद और दुःख उमपन्न करते िैं, छूट जाता िै, सवपापैः प्रमुच्यते। कयोंकक इस प्रकार ववश्वातीत और ववश्वमय में ननवास करते िुए वि अपने-आप को और दूसूरे िर व्यजष्टरूप को उनके िमिर रूपों अथवा मूल्यों में देखता िै और अपनी पृथक्ककारी और अिकारमय बुद्धध व ज्ञान से उमपन्न भमथ्यामव और अज्ञान से मुकत िो जाता िै। आध्याजममक मुजकत का सदा यिी सारमम िोता िै ।

भगवान् यिा ाँकि रिे िैं कक जो उनके साथ सतत् युकत िैं और प्रेेमजन्य तीव्र आनन्द से उन्िें भजतेिैं, उन्िें वे बुद्धधयोग प्रदान करते िैं प्रेेमज उनकी आममा में जस्थत िोकर ज्ञान के प्रज्वभलत दीपक के द्वारा और उजननत अंधकार को नष्ट कर देते िैं। इसकी व्याख्या करते िो श्रीअरववन्द कि रिे िैं कक जजन पररणामों की श्रीकृष्ण चचाकर रिे िैं। अवश्यंभावी रूप से ज्ञान के स्वभावमात्र के कारण और उस योग के स्वभावमात्र के कारण उमपन्न िोतेिैं जो उस ज्ञान को आध्याजममक संवद्धिन और आध्याजममक अनुभव में पररणत कर देता िै। सारे हदन िी िम देखते िैं कक ककस प्रकार ककसी छोटी सी घटना से, ककसी वप्रय-अवप्रय संवेदन से, ककसी प्रकार की सुखद या दुःखद प्राणणक उिजना के कारण िम ववचभलत िो उठते िैं कयोंकक िमारी बुद्धध अभी केवल िमारी दिेगत चेतना से बंधी िोती िै और इंहरयों आहद के माध्यम से भमली सूचना के आधार पर िी चीजों का संज्ञान करती िै और ननणयि करती िै। साथ िी िमारे अंदर भभन्न-भभन्न भागों की किया िोती रिती िै और जजस समय जो भाग सकिय िोता िै उसी के अनुसार िम व्यविार करने लगते िैं। यहद नैनतक प्रकृनत सकिय िो तो िम

नैनतकता के अनुसार चीजों को देखने लगते िैं, भावनाममक प्रकृनत प्रधान िो तो िम चीजों को उस अनुसार देखने लगते िैं। भले िी िमारे सभी भागों के पास पूरे समय का कुछ-कुछ अंश तो िै परंतु ककसी के पास भी पूण िसमय निीं िोता और ककसी भी भाग का समय के ऊपर कोई एकाधधकार निीं ंिोता। इसभलए इन सभी भागों की भ्रांत किया के कारण िी िमारा सारा कम िभ्रांत और अज्ञानमव िी रिता िै और िम सदा िी इस दुववधा में रितीं कक वास्तव में करें कया। इन्िींववभभन्न भागों की भभन्न-भभन्न आवाजों के कारण िी अजुनि इस ववषय में ववचभलत था कक आणखर उसे करना कया चाहिये। इसी प्रश्न को लेकर गीता का आरंभ िुआ था। अजुनि इसी दुववधा में था कक वि अपनेगुरुजनों की िमया कर िी कैसे सकता िै। और यहद युद्ध न करे तो कफर अधम िकी ववजय िोगी और अधमी लोग ननरंकुश अमयाचार करेंगे। तो कफर आणखर इस दुववधा का उपाय कया िै? इसका उपाय िै वि ज्ञान जो सब पदाथों के हदव्य मूल को देखता िै, चीजों की गोचर प्रतीनत से पो उसके ववश्वातीत स्वरूप को देखता िै और उसके अनुसार कफर इस दृि जगत् ्को देखता िै वि मन, बुद्धध, हृदय और इजन्रयों के इस सममिो से मुकत िोकर प्रबुद्ध और मुकत िोकर ववचरण करता िै। जब तक व्यजकत अनतशय रूप से अपने आप के ऊपर िी केंहरत रिता ैतब तक वि पूरे पररदृश्य को समझने ेमें असमथ ििोता िै इसभलए उसकी किया भ्रांत िोती िै। ज्ञान के प्रभाव से व्यजकत कुछ अधधक वैजश्वक रूप से देख सकता िै जजसके कारण उसे इस प्रतीनत का मूल हदखाई देता िै अतः वि चीजों के सच्चे स्वरूप को जान जाता िै और उसी के अनुसार कम िकरता िै। इसके कारण िमारे सभी भभन्न-भभन्न भागों के झूठे दावों की ननरंकुश किया पर रोक लग जाती िै और इन सब भागों में अपना-अपना जो समय िै उसे िम स्वीकार कर लेते िैं। अतः उस ज्ञान के प्रकाश में इन सभी भागों की भ्रांत किया की गुमथी को सुलझाया जा सकता िै। तब व्यजकत प्रमयेक चीज के समय को जानकर उसे उसका उधचत मूल्य प्रदान करता िै और तब वि उन सब चीजों के पीछे की गुप्त कड़ियों को ढूँढ़ ननकालता िै कक ककस प्रकार अपने मूल में वे चीजें एक-दूसूरे से जुड़ी िुई िैं। और जब एक बार वि चीजों के मूल स्वरूप को जान जाता िै तब वि अपनेजीवन और कम िको भगवान् ्से भमलने वाले प्रकाश और उनसे भमलने वाली शजकत की सिायता से सचेतन रूप से उनके सच्चेउद्देश्य की ओर लगाता िै। तब कफर और अधधक उसके मन आहद का कोलािल और भ्रांनतयााँनिीं ंरितीं। इसभलए वि बािरी रूप से प्रतीत िोने ेवाले कठोर से कठोर काम को भी सिजता से कर सकता िै कयोंकक उसे तो भगवद्-प्रदि शजकत प्राप्त िोती िै जजसके सामनेउसे कोई चीज कठोर निींलगती। वास्तव में सामान्य मनुष्य को कठोरता तो इसभलए प्रतीत िोती िै कयोंकक उसमें उन समस्याओं का सामना करनेकी पयाप्ति शजकत निीं ंिोती। और यि सब कुछ उस योग के पररणामस्वरूप िोता िै जो 'उस ज्ञान को आध्याजममक संवद्धिन और आध्याजममक अनुभव में पररणत कर देता िै।' और तब व्यजकत 'बोध करनेया संज्ञान करने के गलत तरीके से, गलत मानभसक और ऐजच्छक प्रनतकिया से, इजन्रयों के गलत रूप से ग्रिण करनेसे और उिेजना से, जो कक यिा ँपाप, प्रमाद और दुःख उमपन्न करते िैं, छूट जाता िै'। वास्तव में सिा के ककसी भी भाग को उसके उधचत मित्त्व से अधधक मित्त्व देना िी पाप िै कयोंकक तब वि समग्रता के साथ समस्वर निीं रिता। जब सभी चीजें आंतररक समय के साथ समस्वरता में िों विी तो आदश िजस्थनत िै। और उस ज्ञान और योग के प्रभाव से व्यजकत ववश्वातीत और ववश्वमय में ननवास करते िुए प्रमयेक व्यजष्टरूप को उसके ििीर रूप और मूल्य के अनुसार देखता िै और पृथक्कारी और अिंकारमय बुद्धध व ज्ञान से उमपन्न भमध्यामव और अज्ञान से मुकत िो जाता िै। गीता के ये श्लोक इस बात का आश्वासन िैं

कक यि योग इन पररणामों की ओर ले जाता िै जजसमें व्यजकत भगवान् ्के तीनों िी भावों को जान जाता िै। भगवान् ्की इस समग्र दृजष्ट के बाद िी व्यजकत सभी चीजों को समग्रता में और समस्वरता में देख सकता िै। अन्यथा केवल ववश्वातीत स्वरूप को देखने पर वि इस जगत् ्अभभव्यजकत को माया घोवषत कर देता िै, या केवल जगत् ्में व्याप्त परमामभा को िी देखे तो इसमें भलप्त िो जाता िै या कफर यहद केवल व्यजष्ट को िी देखे तो भी संपूण िदृजष्ट निींप्राप्त िोती। इस ववश्वमय स्वरूप को िी गलत रूप से लेनेपर िम अनेक बार ऐसा सुनते िैं कक सभी जीव परमामभा िी िैं अतः उनकी सेवा करनी चाहिये। मूलतः समय िोनेपर भी इस समय को िम इसके बिारी अथ िमें लेकर भूल कर बैठते िैं। परंतु जब भगवान् ्के तीनों िी भावों का समग्र रूप से सच्चा बोध िोता िै तब व्यजकत ककसी भी प्रकार के कम िमें कंपायमान निींिोता, इसी को भगवान् ्किते िैं 'अववकमपेन योगेन', और यि सच्चा बोध तब िोता िै जब हृदय को भगवान् ्में आनंद आनेलगता िै।

अतः गीता की दृजष्ट में, मुकत पुरुष का ज्ञान कोई अमूत िसमबन्धरहित ननव्यजिकतक की चेतना निीं िोता, कोई ननजष्क्रिय शांनत या मौन निीं िोता। कयोंकक मुकत पुरुष की मन-बुद्धध और हृदय दृढ़ रूप से सतत् ्इस बोध में और इस पूण िभाव में जस्थत रिते िैं कक हदव्य जगमपनत की पररचालक और ननदेशनकारी सवव्यािपी उपजस्थनत (ववभूनत) द्वारा जगत् ्व्याप्त िै, एतांववभूनतं ंमम यो वेवि। वि जानता िै कक इस ववश्व-व्यवस्था से उसकी आममा परे िै, परंतु वि यि भी जानता िै कक हदव्य योग से, योगंच मम, वि उसके साथ एक िै। और वि इन ववश्वातीत, ववश्वगत और व्यजष्टगत सिाओं के िर पिलुको परम समय के साथ उसके यथोधचत संबंध से देखता और सबको हदव्य योग के एकमव में उनके यथास्थान में रखता िै। वि अब और अधधक िर चीज को उसकी पृथृकता में निींदेखता - वि पाथकिय दृजष्ट जो अनुभव करनेवाली चेतना के भलए या तो सभी परस्पर-समबन्धों को अस्पष्ट िी छोि़ देती िै या केवल एक-पक्षीय रूप से प्रकट करती िै। न वि सब चीजों को एक साथ गड्-मिड्ि रूप में िी देखता िै, - यि देखने का ऐसा अस्तव्यस्त तरीका िै जो गलत ज्ञान और अव्यवजस्थत कम िदेता िै। ववश्वातीत जस्थनत में सुदृढ़ िुआ वि वैजश्वक कलेश से तथा काल और पररजस्थनत की उथल-पुथल से प्रभाववत निीं िोता। पदाथों की इस सब सृजृष्ट और संिार के बीच में उसकी आममा ववश्व में शाश्वत और आध्याजममक तत्त्व के साथ एक अचल, अकंवपत और जस्थर योग में युकत बनी रिती िै।... वि भगवान् ्के स्वभाव और उनके धम िके सदृश बन जाता िै, साधमयम्ि्आगताः, जो ववश्वभाव से भाववत िोने पर भी ववश्वातीत और मन-प्राण-शरीर के ववभशष्ट व्यजष्टरूप में रिकर भी वैश्वभावयुकत िोता िै। यि योग जब एक बार भसद्ध िो जाता िै तब ऐसे अववचल सुजस्थर योग के द्वारा, 'अववकमपेन योगेन युज्यते'े, वि प्रकृनत के ककसी भी भाव को अपना सकता िै, ककसी भी मानव अवस्था को धारण कर सकता िै, चािे जो जगमकम िकर सकता िै, त्रबना हदव्य आममस्वरूप के साथ अपने एकमवभाव से च्युत िुए, परमेश्वर के साथ अपनेननरन्तर भमलन से ककसी भी िानन के त्रबना।

x7,xiv.2,x.8,xiii9

इस ज्ञान को जब अनुरागाममक, भावपूण िऔर स्वभावगत स्तर में बदल हदया जाता िै तब यि शांत जस्थर प्ेरेम और प्रगाढ़ भजकत बन जाता िै उन आहदकारण परामपर ईश्वर के प्रनत जो िमारे ऊपर िैं, जो यिा ंँसब पदाथों के स्वामी के रूप में सदा-ववद्यमान िैं, मनुष्य में जस्थत ईश्वर िैं, प्रकृनत में जस्थत ईश्वर िैं। यि ज्ञान

सवप्रिथम बुद्धध का ज्ञान िोता िै; परंतु इसके साथ–ी-साथ आती ि‍ै भावमय प्रकृनत की प्ेरेररत आध्याजममक अवस्था, बुधा भाव समजन्वता:। हृदय और बुद्धध का यि पररवतनि समस्त प्रकृनत के समपूण िपररवतनि का आरमभ िै। एक नया अंतजन्मि और एक नया भूतभाव िमें िमारे प्ेरेम और भजकत के परमाराध्य के साथ एकमवलाभ के भलए, मद्भावाय, तैयार करता िै। इस हदव्य परम सिा की, जो अब संसार में सवत्रि और संसार के ऊपर भी हदखाई देती िै, मििमा, सौन्दय ितथा पूणतिा में, प्रीनत, प्रगाढ़ प्ेरेमानन्द प्राप्त िोता िै। वि प्रगाढ़ आनन्द, जो जीवन में नछतरा िुआ और बिारी सुख लेता िै, उस मन का स्थान ग्रिण कर लेता िै; या अधधक उधचत रूप में किं तो, वि आनन्द अन्य सभी सुखों को अपनेअन्दर खींच लेता ि‍ै और एक ववलक्षण रसकिया के द्वारा मन और हृदय की सब भावनाओं और इजन्रयों की सब कियाओंको रूपांतररत कर िालता िै। संपूण िचेतना ईश्वर से पररपूण मििो जाती ि‍ै और प्रमियुर में आती उनकी चेतना से भर जाती ि‍ै; संपूण िजीवन आनन्दानुभूनत के अखणि् समुर में प्रवाहित िोने ेलगता िै। ऐसे ईश्वर-प्ेरेभमयों का समस्त संभाषण और धचंतंन भगवान् ्के िी समबन्ध में परस्पर कथन और बोधन िोते िैं। उस एक आनन्द में सिा का सारा संतोष और प्रकृनत की सारी मििा और सुख केन्रीभूत िै। धचंतंन और स्मरण में क्षण-प्रनतक्षण का सतर ऐकय बना रिता िै, आममा में ऐकय की अनुभूनत की अटूट ननरंतरता बनी रिती िै। और जजस क्षण से इस आंतररक जस्थनत का आरमभ िोता ि‍ै उसी क्षण से, अपूणति की उस अवस्था में भी, भगवान् ्पूण िबुद्धधयोग के द्वारा उसे दृढ़ करते िैं। वे िमारे अन्दर जस्थत प्रज्वभलत ज्ञानदीप को ऊपर उठाते िैं, पृथुककारी मन और बुद्धध के अज्ञान को नष्ट कर देते ि‍ैं और मानव आममा के अन्दर स्वयंप्रकट िोते िैं। इस प्रकार कम िऔर ज्ञान के ज्ञानोद्दीप्त संयोजन पर आधश्रत बुद्धधयोग के द्वारा िमारे ननमनतर व्यधथत मन की श्ेरेणणयों से कियाशील प्रकृनत के ऊपर जस्थत साक्षी पुरुष की अक्षर शांनत तक पिले िी संमिण भसद्ध ककया गया था। परंतु अब एक सवसिमावेशी ज्ञान के साथ एक प्ेरेम और भजकत के ज्ञानोद्दीप्त ऐकय के ऊपर आधाररत इस मििर बुद्धधयोग के द्वारा जीव एक बृित् ्आनन्द के अंदर उन परम और सवप्रिवतकि ईश्वर के संपूण िपरामपर समय में ऊपर उठ जाता िै। इस प्रकार सनातन पुरुष व्यजष्टपुरुष और व्यजष्टप्रकृनत में चररताथ मििो जाते िैं; व्यजष्टपुरुष काल के अन्दर आवागमन से ननकलकर सनातन की अनन्तताओं में प्रवेश कर जाता िै।

----

* एक उच्च और शून्य ननषेध िी सब कुछ निीं िै,
एक ववशाल सवविवलयन िी केवल 'परमेश्वर' का अंनतम वचन निीं िै,
जीवन का परम आशय, सिा के पथ का अंत निीं ंिै,
इस मिान् ्रिस्यमय जगत् ्का यिी अथ िनिीं िै।
चरम शांनत में एक चरम 'शजकत' सुप्त िै।
जाग्रत िोकर, यि समाधधबद्ध आममा को जागृत कर सकती िै,
और ककरण के अंदर उसके जनक-सूय िको प्रकाभशत कर सकती िै:
इस जगत् ्को 'आममा' की शजकत का आधार बना सकती िै,
भमट्टी को लेकर 'परमेश्वर' का िूबिू रूप गढ़ सकती िै।
और केवल एक सुप्त अंतराममा को मुकत करना, तो ध्येय की ओर केवल एक ज्योनतत पग ि‍ै
जग में स्वयंको चररताथ िकरना िी 'प्रभु'ु की अभभलाषा थी।

॥. भगवान् ्की संभूनूतशजकत

एक ब्रिी मित्त्वपूण िअवस्था प्राप्त की जा चुकी िै, गीता के आध्याजममक मुजकत और हदव्य कमों के भसद्धांत के प्रनतपादनिम में ताजत्त्वक और मनोवैज्ञाननक समन्वय का एक ननणायिक ननदेश और जिेा जा चुका ै। अजुनि की बुद्धध में भगवान् ्प्रकट ककये जा चुके िैं; बुद्धध की जजज्ञासा और हृदय की दृजष्ट के समक्ष वे उन परमाममा और जगदाममा के रूप में, उन परम् ्पुरुष और ववश्व-पुरुष के रूप में, िमारी सिा के उन अंतवासिी भगवान् ्के रूप म ेंप्रमयक्ष कर हदये गये िैं जजन्ेंमनुष्य का ज्ञान, संकल्प और भजकत अज्ञान के धुधाँले प्रकाश में ढूाँढ़ रिे थे। इस प्राकट्य के अनेक पक्षों में से एक और पक्ष को पूण िकरने ेके भलए अब केवल अनेकमवपूण िववराट् पुरुष का दशनि िी शेषे िै।

ताजत्त्वक समन्वय पूण िो चुका। ननमन प्रकृनत से जीव को पृथक् करनेके भलये इसमें सांख्य को ग्रिण ककया गया िै - यि वि पृथक्करण िै जो वववेकी बुद्धध के द्वारा आममज्ञान लाभ कर तथा प्रकृनत के तीन गुणों के प्रनत िमारी अधीनता को अनतिम कर के िी करना िोता िै। यि पृथक्करण संपूण िो गया िै और सांख्य की सीमाओंको पर-पुरुष और परा-प्रकृनत के एकमव का ववशाल प्राकट्य कराकर अनतिम कर हदया गया िै। अिंकार के चारों ओर बनेिुए प्राकृत पृथक् व्यजकतमव के आमम-ववलोपन के भलए दाशननिकों का वेदान्त स्वीकृत ककया गया िै। क्षुर व्यजष्टसिा की जगि ववशाल ननव्यजिकतक सिा को स्थावपत करने ेके भलए, पृथकता की भ्रांनत को रह्म के एकमव की अनुभूनत से भमटा देनेऔर अिंकार की अंध दृजष्ट के स्थान पर सब पदाथों को एकमेव आममा के अंदर और एकमेव आममा को सब पदाथों के अंदर देखने की समयतर दृजष्ट ले आने ेके भलए वेदांत की पद्धनत का प्रयोग ककया गया िै। वेदांत की इस पद्धनत को उन पररह्म का समग्र दशनि कराकर संपूण िकर हदया गया िै जजनसे िी समस्त चर-अचर, क्षर-अक्षर, प्रवृवि-ननवृवि की उमपवि िोती िै। इसकी संभाववत सीमाओंको उन परम् ्पुरुष परमेश्वर के अंतरंग दशनि या प्राकट्य के द्वारा अनतिम कर हदया गया िै जो समस्त प्रकृनत में सब कुछ स्वयंबनते िैं, सब व्यजष्ट जीवों के रूपों में स्वयं अपने-आप को प्रकट करते िैं और समस्त कमों में ननज-प्रकृनत की शजकत प्रयुकत करते िैं। मन, बुद्धध, हृदय और समस्त अंतःकरण का प्रकृनत के प्रभु ुपरमेश्वर के प्रनत आमम-समपणि करनेके भलए योग को ग्रिण ककया गया िै। इसकी संपूणति जगत् ्और जीवन के उन परम प्रभु ुको, जजनकी यि प्रकृनतस्थ जीव अंश सिा िै, आहद-देव बनाकर साधधत की गयी िै। और, एक पूण िआजममक ऐकय के प्रकाश में जीव का यि देख पाना कक सब पदाथ िप्रभु िी िैं, इससे योग को संभाववत सीमाओं ंका अनतिमण ककया गया िै।

फलस्वरूप उन परम समस्वरूप भगवान् ्के, एक साथ िी, परामपर सत्-्तत्त्व, ववश्व के ववश्वातीत मूल के रूप में, सब पदाथों के ननव्यजिकतक आममा, ववश्व के अचल धारक के रूप में, और सब प्राणणयों, सब व्यजष्टयों, सब पदाथों, शजकतयों और गुणों के अंतःजस्थत ईश्वर के रूप में, उस अंतयािमी के रूप में जो सब भूतों के अंतबाहि्यि

भाव, उनकी आममा और कायकिारी प्रकृनत िैं, - एक साथ िी इन सब रूपों में पूण िदशनि िोतीिं। उस 'एकमेव' के इस पूण िदशनि और ज्ञान में ज्ञानयोग की उिम रूप से भसद्धध िो गयी। सब को का उनके स्वामी के प्रनत समपणि िोिने ेमें कमयिोग की पराकाष्ठा िो गयी,- कयोंकक प्राकृत मनुष्य अब भगवहदच्छा का केवल एक यंत्र रि जाता िै। प्ेरेम और भजकत का योग अपनेववस्तृतृतम रूपों में बता हदया गया िै। ज्ञान, कम िऔर प्ेरेम की गिन पराकाष्ठा अंततः जीव और जीवेश्वर या परमाममा के एक उच्चतम कोहट के ऐकय को साधधत करती िै। उस ऐकय में ज्ञान के रिस्योद्घाटनों को हृदय के भलए तथा बुद्धध के भलए यथाथ िबना हदया जाता िै। उस ऐकय में ननभमि मात्र िोकर ककये जानेवाले कम िमें कहठन आममोमसग िसजीव एकमव की सिज, मुकत और आनंदमयी अभभव्यजकत बन जाता ै। इस प्रकार आध्याजममक मोक्ष का संपूण िसाधन बता हदया गया िै; हदव्य कम िका संपूण िआधार ननभमति कर हदया गया िै।

अजुनि इस संपूण िज्ञान को ग्रिण करता िै जो इस प्रकार हदव्य गुरु द्वारा उसे हदया गया िै। उसका मन अपनेसंशयों और प्रयासों से मुकत िो चुका िै उसका हृदय, जो जगत् ्के बाह्य पक्ष से और उसकी चककत कर देने वाली बाह्य प्रतीनत से िटकर अब अपनेपरम अथ िऔर मूल तथा उसकी आंतररक वास्तववकताओं की ओर मुि चुका िै, शोक-संताप से छूटकर हदव्य प्रकटीकरण के अननवचिनीय आनंद के समपकि में आ चुका िै। इस ज्ञान को ग्रिण करनेमें जजस भाषा का उससे प्रयोग कराया जाता िै वि ऐसी िै कक उससे एक बार पुनः इस ज्ञान की गंभीर सवांगीणता और इसकी सवसिमावेशी ननणायिकता और पररपूणतिा पर आग्रि और बल हदया गया िै।

अब यिाँ िमें अजुनि के मनोभाव में एक मूलभूत अंतर देखने को भमलता िै। गीता अजुनि के ववषादयोग से आरंभ िोती िै जिा ाँवि युद्ध करने ेके और उससे ववरत िोने ेके पररणामों के बीच दुववधा में था और यि चयन निीं ंकर पा रिा था कक वि युद्ध करे या निींकरे। इसभलए ऐसी मनोदशा से ननकाल कर भगवान् ्उसकी बुद्धध को अनेकानेक ववषयों पर अधधकाधधक आलोककत कर उसके अंदर भजकत तत्त्व का संचार कर उसे अब इस सोपान तक ले आए िैं जिा ाँउसके पूव िके सभी ववचलन अब निींरिे िैं और उसके हृदय को भगवान् ्में आनन्द अनुभव िोता जा रिा िै। उसे भगवान् ्में रस आने लगा िै और भगवान् ्का परम वचन सुनकर उसके भाव पूणतिः पररवनततति िो चुके िैं जो कक अगले िी श्लोकों की भाषा से स्पष्ट िो जाता िै। अतः विी अजुनि जो कुछ समय पूव ि अपनेमम ितक ववचभलत िो चुका था, उसी को अब िम आनंहदत िो भगवान् ्का स्तवन करते देखतेिैं।

अजुनुज उिाच

परं ब्रह्म परं िाम पवित्रं ंपरमं भिान् ्।

पुरुजषं ंशाश्ितं ददव्यमाददिेमजंविभुम्॥ १२ ।।

१२. अजुजनु ने कहाः आप परंब्रह्म, परम् ्िाम, परम् ्पवित्र, एकमात्र शाश्ित और ददव्य पुरुजष, आददिे, अजन्मा, सिवुयापी प्रभ जहैं।

आहजमत्मिृषृयः सि दिवुषनुारदमतथा ।
असससतो दिलो व्यासः मियं चि ब्रिीवष मे ।। १३।।

१३. सममत ऋवष आपके विषय में ऐसा कहते हैं और नारद, असरसत, दिल, व्यास आदद दिवुष ुभी ऐसा ही कहते हैं; और आप मियं भी मझेज ेऐसा ही कहतेहैं।

सिुमेुतदृतं मन्ये यन्मां िदसस केशि ।
न दह ते ेभगिन्व्यस्क्तं विददेजिा न दानिाः ।। १४।।

१४. हे केशि! ये जो कजछ भी आप कहते ेहो उसे मेरा मन सत्य मानता है। हे भगिन्! ् आपके आविभ्िाि को न दिेता जानते हैं और न दानि।

मियमीत्मनात्मानं िेत्थ त्िं परुजषोत्तम ।
भूतभािन भूतेश दिेदिे जगत्पते ।। १५।।

१५. हे सममत भूतों को उत्पन्न करनेिाले, सममत भूतों के ईश्िर, सममत दिेों के परमदिे, जगत् ्के प्रभो, हे परुजषोत्तम! केिल आप मियं ही अपनेद्िारा अपने-आप को जानते हो।

अजुनि सवप्रिथम उन अवतार को, मानवस्वरूप में ईश्वर को, जो उससे बोल रि ेिैं, उन्िें वि 'परं रह्म, परं धाम' के रूप में मानता िै जजनके अंदर जीव, इस बाह्य जगत् ्और इस अंशरूप भूतभाव से ननकलकर अपनेमूल स्वरूप को प्राप्त िोने पर, रि सकता िै। अजुनि उन्िें 'पववत्रम् ्परमं', ननमय-मुकत परम सिा की परम् ्पववत्रता के रूप में स्वीकार करता िै जजस को व्यजकत आममा की जस्थर-अचल और शांत अक्षर नन‌व्यजिकतक राह्मी जस्थनत में अिं को भमटा देनेपर प्राप्त करता िै। इसके बाद वि उन्िें 'पुरुषं ंशाश्वतं हदव्यम्, ् एकमेव शाश्वत, सनातन हदव्य पुरुष के रूप में स्वीकार करता िै। वि उन्िें 'आहद देव' किकर उनकी स्तुनत करता िै और 'आहददेवमजं ववभुम्' ्, उन अजन्मा की पूजा करता िै जो सवव्यािपक सवांतयामिी और संपूण िजगत् ्के आमम-ववस्तरणशील स्वामी िैं। इसभलए, वि उन्िें केवल उन 'अद्भुत' के रूप में िी निीं मानता, जो ककसी भी प्रकार के वणनि से परे िैं, कयोंकक कोई भी वस्तु उन्िें व्यिकत करनेके भलये पयाप्ति निीं िंै, - "िे भगवान्, ् आपकी अभभव्यजकत को न तो देवता जानते िैं न िी दानव", न हि ते ेभगवन् ्व्यजकतं ववदुदेुवा न दानवाः - अवपतु ुवि उन्िें सवभिूतों के स्वामी, उनकी समस्त संभूनत के एकमात्र हदव्य ननभमि कारण, देवों के देव, जजनसे सब देवता उद्भूत िुए िैं, तथा जगत् ्के पनत के रूप में भी मानता िै जो ऊपर से अपनी परा प्रकृनत तथा ववश्व-प्रकृनत की शजकत के द्वारा उसे अभभव्यकत तथा पररचाभलत करते िैं, 'भूतभावन भूतेश देवदेव जगमपते। अंत में वि उन्िें िमारे अंदर तथा चारों ओर अवजस्थत उन वासुदेव के रूप में ग्रिण करता िै जो यिाँसभी कुछ िैं अपनी संभूनत की ववश्वव्यापी, घट-घट वासी, सवि–ननमायिक ववभु-शजकतयों के बल पर, 'ववभूतयः'...

उसनेअपनेहृदय की भजकत, अपनी इच्छा-शजकत के समपणि तथा अपनी बुद्धध की समझ के साथ इस समय को ग्रिण कर भलया िै। वि इस ज्ञान से युकत िोकर और इस आमम-समपणि के साथ हदव्य यंत्र के रूप में काय िकरनेके भलए पिले िी तैयार िो चुका िै। परंतु एक गंभीरतर सतत् ्आध्याजममक उपलजब्ध की इच्छा अब उसके हृदय तथा उसकी संकल्पशजकत में जगा दी गई िै। यि एक ऐसा समय िै जो केवल परम् ्आममा को िी अपनेननज आमम-ज्ञान में प्रमयक्ष िोता िै, - कयोंकक अजुनि कि उठता िै, "िे पुरुषोम, केवल आप िी अपने-आप को अपने-आप के द्वारा जानते िैं", आममना आममनं वेमथ । यि एक ऐसा ज्ञान िै जो आध्याजममक तादाममय द्वारा प्राप्त िोता िै और प्राकृत मनुष्य का हृदय, संकल्प-शजकत तथा बुद्धध उसकी सिायता के त्रबना, अपनी िी चेष्टा के द्वारा इस तक निीं पिुँच सकते। ये तो केवल उन अपूण िमानभसक प्रनतत्रबंबों को िी प्राप्त कर सकते िैं जो इसे प्रकाभशत करने से किीं अधधक नछपाते तथा ववकृत िी करते िैं। यि एक ऐसा गुप्त ज्ञान िै जो मनुष्य को उन ऋवषयों से सुनना िोगा जजन्िोंने इस समय का साक्षामकार ककया िै, इसकी वाणी का श्रवण ककया िै और अंतराममा तथा आममा में इसके साथ एकाममता प्राप्त की िै। "सभी ऋवष और नारद, अभसत, देवल, व्यास आहद देववष िआपके ववषय में ऐसा िी कितेिैं।" अथवा मनुष्य को इसे अपने अंदर से अंतः-प्रकटन एवं अंतःप्ेरेरणा के द्वारा उन अंतःजस्थत देव से प्राप्त करना िोगा जो िमारे अंदर ज्ञान के प्रज्ज्वभलत दीप को ऊपर उठाते िैं, "और आप स्वयं भी मुझे ेयिी बताते िैं", स्वयंचैव रवीवष मे। एक बार यि समय प्रकट िो जानेपर इसे मन की स्वीकृनत, संकल्प-शजकत की सिमनत तथा हृदय का आनंद और स्वीकृनत, पूण िमानभसक श्रद्धा के इन तीनों तत्त्वों के द्वारा स्वीकार करना िोता िै। अजुनि ने इसे इसी प्रकार अंगीकार ककया िै; "इस सब को, जो आपनेकिा िै, मेरा मन समय मानता िै।" परन्तु कफर भी िमारी सिा की आममा तक में तथा बाह्य सिा के अमयंत अंतरंग चैमय केन्र में भी गंभीरतर अधधकृनत या अधधकार की आवश्यकता बनी रिेगी, उस ननमय अननवचिनीय आध्याजममक उपलजब्ध के भलए आममा की मागँ बनी रिेगी जजसकी कक मानभसक जजज्ञासा तो एक प्रारंभभक रूप या छायामात्र िै और जजसके त्रबना सनातन के साथ पूण िभमलन निीं ंिो सकता।

क्तिमजहुमयशेषेण ददव्या ह्यात्मविभूतयः ।
यासभविभुनतसभलोकाननमांमत्िंव्याप्य नतष्ठसस ।। १६ ।।

१६. आप मजझे ेअपनेददव्य आत्माविभुिों, अपनी विभूनतयों के बारे में अशेषे रूप से बताइये, स्जनके द्वािा आप सममत जगतों में व्याप्त होकर स्मथत हैं।

कथंविद्यामहं योधगंमंत्िां सदा पररधचन्तयन् ्।
केष जकेषज च भिोष जधचन्त्योऽसस भगिन्मया ।। १७।।

१७. हे योधगन्!् सितुर और सिदुा आपका ही धचन्तन करता हजआ म ेंककस प्रकार आपको जानूँगा, और हे भगिन्!् ककन-ककन प्रमजख आविभुतु रूपों में मझेज ेआपका धचन्तन करना चादहए?

विमतरेणात्मनो योगंविभूनतं ंच जनादुन ।

भूयः कथय तृसृप्तदहु ुशृण्ृतो नास्मत मेऽमृतृम् ्।। १८ ।।

१८. हे जनादुन! अपनेयोग को और विभूनत को विमतारपूि्कु और अधिकाधिक कदहए, क्योंकक यह मेरे सलए अमृतृसिजामिरूप है, और म ैंइसे ककतना भी सनूजूँ मेरी तृसृप्त नहीं ंहोती है। "

इस प्रकार, उस उपलजब्ध या साक्षामकार तक पिुँचने का माग िअजुनि से अब बता हदया गया िै। और, जिा ाँ तक मिान् ्स्वतःप्रमयक्ष या स्वतःभमट हदव्य तत्त्वों का संबंध िै, ये मन को चककर में निीं िालते; वि पत्र देवाधधदेव के ववचार, अक्षर आममा के अनुभव, अंतयामिी ईश्वर के प्रमयक्ष को देवा देव-न ववश्व-पुरुष के संस्पश िके प्रनत खुल सकता िै। एक बार मन जब देवाधधदेव-ववषयक ववचार से आलोककत िो जाता िै, मनुष्य शीघ्रता के साथ माग िका अनुसरण कर सकता िै और सामान्य मानभसक बोधों को अनतिांत करनेके भलए चािे कोई भी प्रारंभभक कहठन प्रयमन कयों न करना पड़े, े कफर भी अंत में वि इन मूल समयों का, जो िमारी सिा तथा समस्त सिा के पीछे ेअवजस्थत िैं, स्वानुभव प्राप्त कर सकता िै, 'आममना आममानम्' ्। वि इसे इस शीघ्रता के साथ प्राप्त कर सकता िै, कयोंकक ये, एक बार ववचार में आ जानेपर, प्रमयक्ष िी हदव्य समय िोते िैं; िमारे मानभसक संस्कारों में ऐसी कोई चीज निींजो ईश्वर को इन उच्च रूपों में स्वीकार करने से िमें रोकती िो। परंतु कहठनाई तो जीवन के प्रतीयमान समयों में उसे देखने, प्रकृनत के इस तथ्य में तथा जगद्-अभभव्यजकत के इस प्रच्छन्नकारी दृश्य प्रपंच में उसे ढूाँढ़ ननकालने में पैदा िोती िै; कयोंकक यिााँ सब कुछ इस उमकृष्ट एकीकारक ववचार के ववपरीत िै। भगवान् ्को मनुष्य, जीव-जन्तु तथा ज़ि पदाथ िके रूप में, उच्च और नीच, सौमय और रौर तथा शुभु और अशुभु में देखने के भलए िम कैसे सिमत िो सकतेिैं? जगत् ्के पदाथों में व्याप्त ईश्वर से संबंध रखनेवाले ककसी ववचार को स्वीकार करके यहद िम ज्ञान की आदश िज्योनत, शजकत को मिानता, सौंदय िकी मिोक छटा, प्ेरम की उदारता तथा आममा की ववपुल ववशालता में उसे देख भी लें, तो भी इनके उन ववरोधी गुणों के द्वारा, जो सचमुच िी इन उच्च वस्तुओं के साथ धचपके रिते िैं तथा उन्िें आच्छन्न और धूभमल कर देते िैं, एकता के भंग िोने ेकी बात से िम कैसे बचेंगे? और, यहद मानव-मन तथा प्रकृनत की सीमाओं के बावजूद िम देव-पुरुष में ईश्वर को देख सकें, तो भी िम उन लोगों में उन्िें कैसे देखेंगे जो उनका ववरोध करते िैं तथा कम िऔर प्रकृनत में उन सब चीजों को िी प्रकट करते िैं जजन्िें िम अहदव्य समझते िैं? यहद नारायण ज्ञानी और संत में त्रबना कहठनाई के गोचर िो जाते िैं तो भी पापी, अपराधी, वेश्या तथा चांिाल में वे िमें सुगमता से कैसे हदखाई देंगे? सवत्रि परम पववत्रता तथा एकता की खोज करता िुआ ज्ञानी ववश्व-सिा के सभी ववभेदों के प्रनत "यि निीं, यि निीं" ं, 'नेनत-नेनत की कठोर पुकार करता िै। यद्यवप िम इस संसार में बिुत-सी वस्तुओंको ऐजच्छक या अनैजच्छक स्वीकृनत प्रदान करते िैं तथा जगत् ्में भगवान् ्को स्वीकार करते िैं, तथावप कया अधधकतर वस्तुओंके सामनेमन को "यि निीं,ं यि निीं" की उस पुकार में िी निीं ंिटे रिना िोगा? यिा ाँननरंतर िी बुद्धध की स्वीकृनत, संकल्पशजकत की सिमनत और हृदय की श्रद्धा दृजग्वषय और बाह्य रूप पर िी सदा सिारा भलये िुए मानव-मन के भलए कहठन िो जाती िैं। एकमव की प्राजप्त के कहठन प्रयास के भलए कम-से-कम कुछ प्रबल संकेतों, कुछ श्रृंखलाओंऔर सेतुओं, कुछ अवलंबों की आवश्यकता पड़ती िी िै।

यिा ाँश्रीअरववन्द ववभूनत योग के मित्त्व का ननरूपण कर रिे िैं। यहद यि स्पष्टीकरण न िोता तो व्यजकत के अंदर सामान्यतया जो धारणा रिती िै कक परम वचन देनेके बाद और एक ऐसा योग देने के बाद जब व्यजकत अववकंवपत िोकर योग में दृढ़-प्रनतष्ठ िो जाता िै, अब ववभूनतयोग बतानेका आणखर औधचमय िी कया िै

और इस

योग की आवश्यकता िी कया िै। जब िम श्रीअरववन्द के आलोक में इसके अंदर प्रवेश करते िैं तब िमें गीता की अमयंत ववशाल योजना का भी बोध िोता िै जजसमें कक जो अंश सतिी दृजष्ट से िमें अधधक गंभीर प्रतीत निीं

ंिोते,

वे भी बिुत िी गंभीर आध्याजममक अथ िधारण कर लेते िैं जो िमारे समक्ष कुछ ऐसे गूढ़ रिस्यों को उजागर करते िैं जो अन्यथा सम्भव ि ि निीं था।

* जिाँ िम गीता में एक ऐसी चीज का संकेत पाते िैं जजसे स्वयंगीता भी स्पष्ट रूप में प्रकट निीं करती, परंतु जो उपननषदों में बार-बार आती िै और जजसे आगे चलकर वैष्णव तथा शाकत धमों ने, दशनि की मिर तीव्रता में ववकभसत ककया था, और वि िै जगत् ्में रिनेवाले भगवान् ्में मनुष्य को आनंद प्राप्त िोने की संभावना, सावभौम आनंद, जगज्जननी को लीिाएवं ईश्वर कीलीला कामाधुय िऔरसौंदय।ि

प्रश्न : ववभूनत योग में ऐसा आता िै कक भगवान् ्शुभ ुनिीं अवपतु अशुभ ुमें भी अभभव्यकत िो रिे िैं। देवताओं में िी निीं ंअवपतु दानवों, राक्षसों आहद में भी अभभव्यकत िो रिे िैं। मनुष्यों के भलए भगवान् ्की प्रकाशमय या शुभ ुया सौमय अभभव्यजकतयों को तो सिज िी स्वीकार करनेमें कोई समस्या निींिोती, परन्तु ु इनके ववपरीत रूपों में उन्िें स्वीकार करना बिुत कहठन िोता िै। जैसे कक, सरदार भगत भसंि ने अपनी पुस्तक 'म ैं नाजस्तक कयों िूाँ' में अपने नाजस्तक िोने के जो कारण हदए िैं उनमें से एक कारण यि िै कक यहद भगवान् ्िोते तो अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर इतने ेअन्याय और अमयाचार कैसे िो सकते थे। तो कया ऐसी पररजस्थनतयों में भगवान् ्की सिा को स्वीकार करना बिुत मुजश्कल निीं िोता?

उत्तर : स्वयंअजुनि के सामने भी तो एक भीषण जस्थनत आ खिी िुई थी कक यहद वि युद्ध करता िै तब भी उसके पररणाम उतने िी घातक िोंगे जजतने कक तब जब वि युद्ध से ववमुख िो जाता िै। यिी बात तो साववत्री की माता ने किी कक परमाममा का यि कैसा ववधान िै कक जजससे साववत्री वववाि करना चािती िै उस व्यजकत की तो एक वष िके बाद मृमृयु ननजश्चत िै। और ऐसा पिले से जानते िुए भी वि उसी से वववाि के भलए अिी िुई िै। परंतु अजुनि की वतमिान जस्थनत बदल चुकी िै कयोंकक उसका हृदय तो अब भगवान् ्के समस्वरूप में आनंद लेनेलगा िै इसभलए उसकी जस्थनत की दूसूरे ककन्िींसिती उदािरणों से तुलना निीं ंकी जा सकती। जजस व्यजकत ने अभी तक भगवान् ्के स्वरूप का आस्वादन निींककया वि तो अवश्य िी इसी असमंजस में फंसा रिेगा कक भगवान् ्िैं भी या निीं। अजुनि की जस्थनत का तो श्रीअरववन्द वणनि कर िी रिे िैं कक, "...उस उपलजब्ध या साक्षामकार तक पिुाँचने े का माग िअजुनि को अब बता हदया गया िै। और, जिाँ तक मिान् ्स्वतःप्रमयक्ष या स्वतःभसद्ध हदव्य तत्त्वों का संबंध िै, ये मन को चककर में निीं िालते; वि परम देवाधधदेव के ववचार, अक्षर आममा के अनुभव, अंतयामिी ईश्वर के प्रमयक्ष बोध तथा चेतन ववश्व-पुरुष के संस्पश िके प्रनत खुल सकता िै। एक बार मन जब देवाधधदेव-ववषयक ववचार से आलोककत िो जाता िै, मनुष्य शीघ्रता के साथ माग िका अनुसरण कर सकता िै और सामान्य मानभसक बोधों को अनतिांत करने ेके भलए चािे कोई भी प्रारंभभक कहठन प्रयमन कयों न करना पिे,े कफर भी अंत

में वि इन मूल समयों का, जो िमारी सिा तथा समस्त सिा के पीछे अवजस्थत िैं, स्वानुभव प्राप्त कर सकता िै, 'आममना आममानम्' ्।"

अत:, एक बार जब व्यजकत को भगवान् ्का संस्पश िप्राप्त िो जाता िै तब उसमें भगवान् ्की सिा के ववषय में सभी संशय आहद नष्ट िो जाते िैं और तब वि पूरे संकल्प और मनोयोग के साथ, त्रबना भ्रभमत िुए सीधे अपनेगंतव्य की ओर गनत कर सकता िै अन्यथा तो यहद व्यजकत को अभी भगवान् ्की सिा के ववषय में कोई जीवंत अनुभव प्राप्त निीं ंिोता तो उसे अपनेजीवन में ककसी प्रकार की कोई ननणायिक हदशा प्राप्त निींिोती और उसके कम िभ्रभमत िी िोते िैं। एक बार जीवंत अनुभव प्राप्त िोने पर स्वत: िी जीवन में ननणायिकता या ननश्चयाममकता आ जाती िै और व्यजकत पूण िसंकल्पशजकत के साथ अपनेमाग िपर अग्रसर िोता िै। यिी कारण िै कक साक्षामकार प्राप्त िोने ेके पश्चात् ्साधक त्रबना ककसी प्रकार के ववचलन के एकननष्ठ रूप से अपनेइष्ट के प्रनत समवपति िो जाता िै। और तब कफर उसके ननभमि ककसी प्रकार का भी कम,ि भले घोर से घोर कम िभी कयों न िो, व्यजकत के भलए सिज िो जाता िै और ऐसा कर के वि भगवान् ्की अधधकाधधक अंतरंगता प्राप्त कर सकता िै।

परंतु वतमिान पाधथवि अभभव्यजकत के अंदर िम देखते िैं कक शुभ के साथ िी अशुभ, सुंदर के साथ िी वीभमस आहद चीजें भी घुली-भमली रिती िैं तो ऐसे में सभी के अंदर समान िी रूप से भगवान् ्के दशनि कैसे ककये जाएँ। इसीभलए ववभूनत का मित्त्व िै। उसकी सिायता से जिााँकिीं भी भगवान् ्का ववशेष प्राकट्य िोता िै व्यजकत उसे अधधक सिजता से पिचान सकता िै। और कफर ववभूनत योग के बाद तो भगवान् ्अपना ववश्वरूप दशनि िी प्रकट कर देते िैं जजसमें कक अजुनि को सारा ववश्व उन्िीं का ववग्रि हदखाई देता िै।

पाधथवि अभभव्यजकत के ववषय में िम एक भभन्न दृजष्टकोण से भी देख सकतेिैं। सवत्रि िी, और ववशेषकर िमारी भारतीय संस्कृनत में सदा िी 'असतो मा सद्गमय' जैसे सूत्रों पर बल हदया जाता रिा िै। िमें सदा िी भसखाया जाता रिा िै, और िमारे अंदर भी यि अंतननहिित िै कक िमें प्रकाश और अंधकार में से प्रकाश को िी चुनना चाहिये, समय और असमय के बीच समय का िी वरण करना चाहिये कयोंकक मनुष्य के मन की जैसी बनावट िै उसके अनुसार उसे इन द्वंद्वों के बीच चयन करना िोता िै। स्वयं श्रीमााँ भी किती िैं कक, "जीवन समय और भमथ्यामव के बीच, प्रकाश और अंधकार, प्रगनत और अवननत, ऊाँचाइयों की ओर आरोिण या रसातल में पतन के बीच ननरंतर चुनाव िै। िर एक को चयन की स्वतंत्रता िै।" (CWM 14, 29)

ऐसा इसभलए िै कयोंकक मन के ववभाजक स्वभाव के कारण शुरू से िी िमारे अंदर चयन करने का अभ्यास िोता िै। और व्यजकत को यहद सचेतन चयन का बोध न िो तो व्याविाररक जीवन में बड़ी ववभ्रम की जस्थनत पैदा िो जाएगी कयोंकक वि तो ककन्िीं भी चीजों के बीच चयन निीं ंकर पाएगा। इसभलए चयन करना िमारी आवश्यकता िै। परंतु ्इसके साथ िी िमें यि भान भी िोना चाहिये कक यि चयन िम अपनेमानदंडों के अनुसार करते िैं। इसे एक उदािरण के द्वारा िम सिज िी समझ सकते िैं। यहद कोई समझदार आहदमानवों का झुंड जगत् ्के अंदर भगवान् ्की किया का आकलन करने लगे तो आणखर वि ककतना साथकि िोगा? विींकोई

चींटी यहद अपनेदृजष्टकोण से यि आकलन करने ेलगे तब वि कैसा िोगा? यहद कीि़े-मकोि़े, पशु-पक्षी आहद भी यि आकलन करें तो कदाधचत् ्वे ेयिी किेंगे कक भगवान् ्जैसी ककसी चीज की कोई सिा िो िी निीं ंसकती अन्यथा तो मनुष्य उनके ऊपर जजस प्रकार के अमयाचार करते िैं वे ेतो संभव िी निीं ंथे, े और अमयाचार करने के बाद भी मनुष्य बि़े ेऐशो-आराम से रिते िैं जबकक उनका जीवन सदा िी संकटमय बना रिता िै। इसभलए इससे िमें यि समझना चाहिये कक चूंकक ये सभी दृजष्टकोण अपनेएक सीभमत अिं के अंदर बाँधे िोने के कारण एकांगी रूप से चीजों को देखते िैं इसभलए कोई भी मानदंड परमाममा की किया के ऊपर कभी भी लागू निीं ंिो सकते। इसीभलए श्रीअरववन्द कितें िैं कक िमें अजुनि की अपेक्षा कम व्यधथत दृजष्ट से काल और मृमयु के िमारे स्वामी का दशनि करना िोगा और इस वैजश्वक-संिारकिता को अस्वीकार करने, े इससे घृणा करने ेया इससे भयभीत िोने ेकी वृवि को छोि़ देना िोगा और परमाममा को कल्याणकारी जननी के रूप में िी निीं ंअवपतु ुरकतरंजजत संिार-नृमय करनेवाली, करालवदना काली के रूप में भी स्वीकार करना िोगा और ऐसा देखकर व्यजकत को इस श्रद्धा के आधार पर खि़ा िोना िोगा कक 'भले तुम मुझे ेमार भी िालो, कफर भी म ैंतुमिारा भरोसा िी करूंगा।' ऐसा इसभलए कयोंकक व्यजकत को यि श्रद्धा रखनी िोगी कक भले उसे देखने में जो कुछ भी प्रतीत िोता िो कफर भी भगवान् ्की किया उसके भलए सदा िी कल्याणकारी िी िोती िै। जैसे कक बच्चेको ककसी शल्य किया में भले ककतनी भी पीि़ा कयों न िो परंतु तो भी उसे यि ववश्वास िोता िै कक उसकी माँउसके हित के भलए िी सब कुछ करेगी। मनुष्य के साथ सामान्यतः यिी समस्या िोती िै कक ववषम पररजस्थनतयों में उसके भलए यि मनोभाव रखना मुजश्कल िोता ैं। लोग बािरी घटनाओंके आधार पर, पररजस्थनतयों आहद के अनुसार, अनुकूलता-प्रनतकूलता के अपने मानभसक मानकों के अनुसार यि ववचार करनेलगते िैं कक आणखर भगवान् ्िैं भी या निीं। परंतुकम से कम बुद्धध के स्तर पर िी िमें यि समझ िोनी चाहिये कक इतनी ववशाल सृजष्ट िमारे ककन्िींमानभसक मानदंिों के अनुसार निीं चल सकती। सभी के अपने-अपनेपूवाग्रि और मानक िोते िैं और परमाममा को यहद इनका सममान करना िोता या इनसे बाध्य िोना पि़ता तब तो कभी कोई चीज िो िी निींसकती थी कयोंकक स्वयं ककसी एक व्यजकत में िी समय-समय पर परस्पर ववरोधी भाव उठते रितें। और यि भी एक समय िै कक मनोवैज्ञाननक रूप से भगवान् ्के ववषय में िम जैसी आशा करते िैं उसी रूप में वे िमें प्रमयुिर भी देते िैं। स्वयंगीता में चौथेअध्याय के ग्यारिवें श्लोक में भगवान् ्कितें िैं कक 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यिम्।' ्अथात् िे मनुष्य जजस ककसी भी रूप से मेरे समीप आते िैं उन्िें मैं उसी रूप में प्रेमपूवकि स्वीकार करता िूँ।' िालाकाँक वतमान प्रसंग में अजुनि की यि जस्थनत निीं। वि तो भगवान् ्के स्वरूप में आनंद अनुभव करने ेलगा िै और चािता िै कक ककस प्रकार वि अधधकाधधक भगवान् ्की छवव को िर चीज में देख पाए। इसी के उिर में भगवान् ्किते िैं कक चूंकक उनके ववस्तार का कोई अन्त निीं ंिै इसभलए वे केवल अपनी प्रधान ववभूनतयों के ववषय में िी बता सकतें।

यद्यवप अजुनि 'सव'ि के रूप में वासुदेव के प्राकट्य को स्वीकार करता िै और यद्यवप उसका हृदय इसके आनंद से पररपूण िै, - कयोंकक वि पिले से िी अनुभव कर रिा िै कक यि उसे उसके मन की व्याकुलता से और उन स्खलनकारी ववभेदों से मुकत कर रिा िै जजनके भलए उसका मन ककसी सूत्र, या ककसी संकेत के भलए पुकार कर रिा था, एक द्वंद्वमय या ववरोधमय जगत् ्की चकराने वाली समस्याओं के बीच ककसी मागननदेशक समय के भलए पुकार कर रिा था, और यि उसके कानों के भलए अमृत-सुधा, 'अमृतम्'् िै, - कफर भी वि ऐसे अवलंबों और

संकेतों को प्राप्त करने की आवश्यकता अनुभव करता ि ै। वि अनुभव करता ि ै कक एक पूण ि तथा सुदृढ़ उपलजब्ध की कहठनाई को दूरू करने के भलए ये अननवाय ि ैं; कयोंकक और ककस प्रकार से इस ज्ञान को हृदय तथा जीवन की वस्तु बनाया जा सकता ि ै? वि मागदशिक संकेत चािता ि ै, यिा ाँतक कक वि श्रीकृष्ण से अपनी संभूनत की सवोच्च शजकतयों को पूण ि रूप से तथा ववस्तार के साथ धगनानेके भलये प्राथनि ा करता ि ै और चािता ि ै कक उसकी दृजष्ट से कुछ भी छूटने न पाये, उसे चकरा देने के भलए कोई भी चीज शेषे न रि।

श्रीभगिान् ् उिाच

हन्त ते कथनयष्यासम ददव्या ह्यात्मविभूतयः ।

प्रिान्यतः कजरुशे्रेष्ठ नामत्यन्तो विमतरमय मे ।। १९।।

१९. श्रीभगिान् ् ने कहाः हे कजरुशे्रेष्ठ! हा, ाँ अब म ैं तुम्हें अपनी ददव्य विभूनतयों के विषय में बताऊँगा, ककंत जकेिल प्रिान विभूनतयों के बारे में ही कहूँगा, क्योंकक विश् ि में मेरे आत्मविमतार के विि रणों का कोई अन्त नहीं है।

हदव्य गुरु भशष्य की प्राथनि ा को स्वीकार कर लेते ि ैं, ककन्तुशुरू में स्मरण करा देते ि ैं कक पूण ि उिर देना संभव निीं ि ै। कयोंकक ईश्वर अनंत ि ै और उनकी अभभव्यजकत भी अनंत ि ै। उनकी अभभव्यजकत के रूप भी असंख ्य ि ैं। प्रमयेक रूप अपने अंदर नछपी िुई ककसी हदव्य शजकत, 'ववभूनत' का प्रतीक ि ै और ककसी समथ ि दृजष्ट के भलए प्रमयेक 'सीभमत' अनंत के ववभशष्ट प्राकट्य को अपने अंदर विन करता ि ै। वे किते ि ैं, 'िा ' ाँ म ैं तुम्िें अपनी हदय ववभूनतयों के बारे में बताऊँगा; परंतु केवल अपनी कुछ प्रमुख ववभूनतयों के ववषय में तथा ननदेश के रूप में और उन वस्तुओंके उदािरण के द्वारा जजनमें तुम देवाधधदेव की शजकत को अमयंत सिजता से देख सकतेिो, प्राधान्यकतः, उद्देशतः। कयोंकक, जगत् ् में ईश्वर के आमम-ववस्तार के असंख्य वववरणों का कोई अंत निीं ि ै, नाजस्त अन्तो ववस्तरस्य मे। इस बात को स्मरण कराकर िी गुरु इस प्रकरण का आरंभ करते ि ैं और इसे और अधधक तथा असंहदग्ध बल देनेके भलए अंत में इसे पुनः दुिराया गया ि ै। और कफर शेषे सारे अध्याय में ि म जगत् ् के पदाथों तथा प्राणणयों में ववद्यमान हदव्य शजकत के इन प्रमुख ननदेशों, इन उमकृष्ट लक्षणों का संक्षक्षप्त वणनि पाते िैं। प्रारंभ में ऐसा प्रतीत िोता ि ै मानो ये त्रबना ककसी ि म के िी अस्तव्यस्त रूप में दे हदये गये ि ैं, परंतु कफर भी इनके पररगणन में एक ववशेषे ननयम–ि म ि ै जो, यहद एक बार िमारे सामने प्रकट िो जाए तो, िमें एक सिायक पथ-प्रदशनि के द्वारा इस ववचार तथा इसके पररणामों के आंतररक आशय की ओर ले जा सकता ि ै।

अहमात्मा गजडाकेश सिुभूताशयस्मथतः ।

अहमाददश् ि मध्यं ं च भूतानामन्त एि च ।। २० ।।

२०. हे गडजाकेश (ननद्रा-विजयी) अजुनुज! म ैं आत्मा हूँ जो सममत प्राणणयों के हृदय में ननिास करता है। म ैं सममत भूतों का आरम्भ और मध्य और अन्त भी हूँ।

आददत्यानामहं विष्णथ्जयोनतषांरविरंशमजान् ् ।

मरीधचमुरुतामस्मम नक्षत्रणामहं शशी ।। २१।।

२१. आददत्यों में म ैविष्ण जहूँ, प्रकाशों और दीस्प्तयों में म ैदेदीप्यमान सूयु ुहूँ; मरुतों में म ैमरीधच हूँ: नक्षत्रों में म ै चन्द्रमा हूँ।

िेदानांसामिेदोऽस्मम देिानामस्मम िासिः ।
इस्न्द्रयाणांमनश्चास्मम भूतानामस्मम चेतना ।। २२॥

२२. िेदों में म ैसामिेद हूँ, देिों में म ैिासि (इन्द्र) हूँ, और इस्न्द्रयों में म ैमन हूँ और प्राणणयों में म ैचेतना हूँ।

रुद्राणां शंकरश्चास्मम वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
िसूनां पािकश्चास्मम मेरुः सशखररणामहम् ।। २३ ।।

२३. रुद्रों में म ैसशि हूँ, यक्ष और राक्षसों में िनपनत कजबेर हूँ और िसजओं में अस्ग्न हूँ, पिुत-सशखरों में म ैमेरु हूँ।

परजोसांच मख्जयं मांविद्धि पाथु ुबृहमपनतम् ।
सेनानीनामहं मकन्दः सरसामस्मम सागरः ।। २४।।

२४. हे पाथु! ु मजझे परजोदहतों में मणजखया बृहमपनत जान; और म ैसेनानायकों में (यद्जि का देिता) मकन्द हूँ, सरोिरों में म ैसागर हूँ।

महषीणांभृगुरजहं धगरामम्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मम मथािराणां दहमालयः ।। २५।।

२५. महवुषयों में म ैभृगु जहूँ, शब्दों में म ैएकाक्षर ॐ हूँ, यज्ञों में जपयज्ञ हूँ, मथािरों (पिुत श्रृंखलाओं) में म ैदहमालय हूँ।

अश्वत्थः सिुिृक्षाणां देिषीणां च नारदः ।
गन्धिाुणांधचत्ररथः ससद्धानां कवपलो मजनजनः ।। २६॥

२६. पेड़-पौधों में म ैपीपल का िृक्ष हूँ, और देिवुषयों में नारद हूँ, गन्धिों में धचत्ररथ हूँ, ससद्धों में कवपल मजनजन हूँ।

उच्चैःश्रिसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भिम् ।
ऐराितंगजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ।। २७।।

२७. मजझे अश्वों में अमृत से उत्पन्न उच्चैःश्रिा नामक अश्व जान; श्रेष्ठ हाधथयों में ऐराित जान, और मनष्जयों में म ैराजा हूँ।

आयिजानामहं िर्जीनूनामस्मम कामिक्ज ।

प्रजनश्ास्मिम कन्दपु; सपुाणामस्मम िासकजकः ॥ २८॥

२८. अत्रों में म ैददव्य िज्र हूँ, गायों में कामिेन ज(श्री-समृद्धि देनिेाली गाय) हूँ और प्रजनकों (सन्तानोत्पादकों) में काम-दिे हूँ, सपषों में िासकजक हूँ।

अनन्तश्ास्मिम नागानां िरुणो यादसामहम् ्।

वपतृणामयुमा चास्मम यमः संयमतामहम् ्।। २९।।

२९. नागों में म ैअनन्त (शेषेनाग) हूँ, और समद्रजी जीिों में िरुण है, और ददव्य वपतरों में अयुमा हूँ, ननयम और वििान की रक्षा करनेिालों में म ैपर (ननयम का दिेता) हूँ।

प्रह्लादश्ास्मिम दैत्यानां कालः कलयतामहम् ्।

मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं िैनतेयश्ि पज्ञक्षणाम् ्।। ३० ।।

३०. दैत्यों में म ैप्रह्लाद हूँ, जो गणना (आकलन) और माप करते हैं उनमें काल हूँ; और जंगली पशओुंमें म ैउनका राजा ससंहं हूँ और पज्ञक्षयों में क्ष िैनतेय (गरुि़) हूँ।

पिनः पितामस्मम रामः शमत्रभृतामहम् ्।

झषाणां मकरश्ास्मिम स्रोतसामस्मम जाह्निी ।। ३१।।

३१. ननमुलु करनेिालों में म ैिाय जहूँ, शत्रिारी योद्ााओं में म ैराम हूँ, मत्मयों में मकर हूँ, और नददयों में म ैगंगा नदी हूँ।

सगुाणामाददरन्तश्ि मध्यं चैिाहमजुनुज ।

अध्यात्मविद्या विद्यानां िादः प्रिदतामहम् ्।। ३२॥

३२. हे अजुजनु! म ैसृसृष्ट की उत्पवत्त और मध्य और अन्त भी हूँ। ज्ञान की अनेक शाखाओंमें म ैआध्यास्त्मक ज्ञान हूँ, िििाद करनेिालों का म ैतकु हूँ।

अक्षराणामकारोऽस्मम द्न्द्िः सामाससकमय च ।

अहमेिाक्षयः कालो िाताहं विश्ितोमखज॥ ३३॥

३३. अक्षरों में म ै'अ' हूँ और समासों में द्न्द्ि समास हूँ, म ैही अविनाशी काल हूँ, म ैसममत सृसृष्ट का िारण करनेिाला हूँ स्जसके मखज सब ओर हैं।

मृत्युःज सुिहरश्हिमद्जभिश्भिविष्यताम् ्।
कीनतु; श्रिीाक्च नारीणांममृनृतमिा िृनृतः क्षमा ।। ३४॥

३४. और म ैंसिु-भक्षी मृत्यु जहूँ, और जो भविष्य में उत्पन्न होनिाले हैं उनका उद्भि भी म ैंही हूँ। मत्रीसलंगी गणजों में म ैंकीनतु,ु सौंदयु,ु िाणी, ममृनृत, िी (बद्जधि), दृढ़ता और क्षमा हूँ।

बृहत्साम तथा साम्नांगायत्री छन्दसामहम् ्।
मासानां मागुशीषोऽहमृतूनां ंकजसमजाकरः ।। ३५।।

३५. म ैंसाम मंत्रों में बृहत्साम भी हूँ, छन्दों में गायत्री हूँ, महीनों में म ैंमागुशीषु ुहूँ, और ऋतुओं में िसन्त हूँ।

द्यूतं छलयतामस्मम तेजमतेजस्स्िनामहम् ्।
जयोऽस्मम व्यिसायोऽस्मम सत्त्िसत्त्ितामहम् ्।। ३६ ।।

३६. छल करनिालों में म ैंजआज हूँ; तेजस्स्ियों का म ैंतेज हूँ, म ैंदृढ़ ननश्चय और विजय हूँ: सास्त्िक मनष्जयों (सत्परुजषों) का म ैंसत्त्िगजण हूँ।

िृष्णीनां ंिासदेजिोऽस्मम पाण्डिानां िनञ्जयः ।
मनजीनामप्यहं व्यासः किीनामशजना कविः ।। ३७।।

३७. म ैंिृष्णिंसशयों में िासदेजि कृष्ण हूँ: पाण्डिों में अजुनुज हूँ, मनजनयों में म ैंव्यास और कवियों में उशना (शक्रजाचायु)ु कवि हूँ।

दण्डो दमयतामस्मम नीनतरस्मम स्जगीषताम् ्।
मौनंचैास्मम गह्जयानां ंज्ञानंज्ञानितामहम् ्।। ३८॥

३८. शासनकतुाओं का म ैंराजदण्ड हूँ, जो सिल होने ेऔर जीतने की चेष्टा करते हैं उनकी म ैंनीनत हूँ; गह्जय पदाथों में म ैंमौन हूँ और ज्ञानिान् ्व्यस्क्तयों का म ैंज्ञान हूँ।

यच्चावप सिुभूतानां ंबीजं तदहमजुनुज ।
न तदस्मत विना यत्मयान्मया भूतंचराचरम् ्।। ३९।।

३९. और हे अजुनुज! सममत भूतों का जो कजछ भी बीज है िह म ैंही हूँ; ऐसा कोई भी चर या अचर भूत नहींहै जो मेरे त्बना अस्मतत्मिान रह सकता हो।

नान्तोऽस्मत मम ददव्यानां विभूतीनांपरंतप ।

एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेविुमुतरो मया ।। ४०।।

४०. हे परंतप! मेरी ददव्य विभूनतयों का कोई अंत नहीं, ं किल (संकेतों या लक्षणों के तरीके से ही) मनैं ेमेरी विभूनतयों के विमतार को संक्षेप में कहा है।

यद्यद्विभूनतमत्सत्त्ं िश्रीमदूर्जातुमिे ि ।
तत्तदिेागच्छ त्ं िमम तेजोंऽशसंभिम् ्।। ४१।।

४१. जो कजछ भी ऐश्ियुिशुाली, सौन्दयुयुक्जत, अथिा बलशाली और शस्क्तशाली है उस सभी को तू ननश्चय ही मेरे तेज के एक अंश से उद्भूत हजआ जान।

अथिा बहजनैतेन ककं ज्ञातेन तिाजुनुज ।
विष्टभ्याहसमदं कृत्मनमेकांशेने स्मथतो जगत् ्।। ४२।।

४२. परंतज हे अजुनुज! इस सब वििरण को जाननेकी तम्जहें क्या आिश्यकता है? (इसे इस प्रकार ही जान लो कक) इस संपूणु ुजगत् ्को म ैंअपने अत्यंत क्षद्रज अंश से ि ारण ककये हजए हूँ।

इतना कुछ बता कर भी भगवान् ्किते िैं कक यि सब तो उनकी आभा का एक अनतशुर अंश िै। कम से कम िमारी बुद्धध में इससे इतना प्रकाश तो आ िी जाना चाहिये कक भले िी व्याविाररक तौर पर तो िमें जजतनी बुद्धध प्राप्त िै उसे प्रयोग में लेना आवश्यक िै, परंतु िमारे कोई भी ऊँचे से ऊँचे मापदण्भी परमाममा को बाधँ निीं ंसकते, उनकी थिा निीं पा सकते। यहद यि भान िो तो कफर इस चीज की कुछ संभावना रिती िै कक िम ककसी प्रकार के अनतशय व्यविार से बच सकते िैं जो कक एकांगी प्रकार की ववचारधारा में देखने को भमलता िै।

प्रश्न : यिा ँवेदों में ऋग्वेद की बजाय सामवेद को ववभशष्ट कयों बताया गया िै?

उत्तर : सामवेद में मंत्र तो ऋग्वेद से िी िैं। सामवेद अपनेआप में पृथृक् निीं ंिै। उसे तो छन्द बद्ध ककया गया िै। बाकी, सबसे प्राचीन तो ऋग्वेद िी िै। परंतु साम गान के कारण सामवेद को यिा ँववभशष्टता प्रदान की गई िै।

यहद िम गुण और मात्रा के ववभेदों से या भभन्न-भभन्न मूल्यों तथा प्रकृनत के द्वंद्वों या ववरोधों से अंधे िुए त्रबना... चीजों का अवलोकन करें तो िम देखेंगे कक सभी वस्तुएँ वस्तुतः इस अभभव्यजकत की शजकतयाँ िैं, इस ववश्वव्यापी आममा तथा अध्यामम-सिा की ववभूनतयाँ िैं, इस मिान् ्योगी का योग, इस अद्भुत आममस्रष्टा की आमम-सृजृष्ट िैं, और इसके भसवा वे ेऔर कुछ िो िो निींसकतीं ।... परन्तुअपनी संभूनत में ववद्यमान शजकत के द्वारा िी दृजष्टगोचर िोने ेके कारण वे िमें उस चीज में ववशेषे रूप से हदखायी देते िैं जो उमकृट मूल्य-मित्त्व रखती ै या जो प्रबल तथा श्रेष्ठ शजकत के साथ काय िकरतो प्रतीत िोती िै। अतएव, सिा के प्रमयेक प्रकार या ककस्म में

मि उन्िें उनमें िो अधधक-से-अधधक देख सकतेिैं जजनमें उस प्रकार या ककस्म की प्रकृनत को शजकत सवोच्च, प्रमुख तथा अमयंत प्रभावशाली रूप में अभभव्यजकत को प्राप्त करती िै। वे एक ववशेषे अथ िमें उच्चतम शजकत और अभभव्यजकत भी अनंत का केवल एक अमयंत आंभशक आमम-प्रकटनकारी प्राकट्य िी िोती िै; यिााँतक कक यि संपूण िरह्माण्ड भी उनकी महिमा के एक अंशमात्र से अनुप्राणणत िो रिा िै, उनकी ज्योनत की केवल एक ककरणमात्र से प्रकाभशत िो रिा िै, उनके आनंद और सौंदय िकी एक िल्की-सी झलकमात्र से िी महिमाजन्वत िो रिा िै। यिी, संक्षेप में, इस पररगणन का सार तथा उससे ननकलनेवाला पररणाम िै और यिी इसके अथ िका मम िै।

भगवान् ्अपनी सिा में इतने ्ववशाल और इतनेमिान् ्िैं कक कोई ववभशष्ट से ववभशष्ट ववभूनत भी उनका केवल एक अनतक्षुर अंश िी प्रकट करती िै। भगवान् ्का आनंद, उनकी शजकत, उनका ज्ञान आहद सब उनकी सिा का, उनके समस्वरूप का एक छोटा सा अंश िी िैं। िम जजतनी भी ऊाँची से ऊाँची कल्पना कर सकते िैं उससे और जो

कभी कल्पना कर िी निींसकतेउस सबसे भी भगवान् ्अनन्त रूप से परे िैं। और कफर भी जो कुछ भी इस पाधथवि अभभव्यजकत में िै वि सब वे स्वयं िी िैं। और इसके साथ िी साथ यि भी एक परम समय िै कक भगवान् ्की सिा में

ऐसी कोई चीज निीं िै जो मनुष्य की सिा में ननहित न िो। संपूण िरह्माण्ड में ऐसी कोई चीज निीं जो मनुष्य में न िो। यिी तो भगवान् ्की लीला िै। मन के भलए तो भौनतक ववश्व की थिा पाना िी संभव निीं िै। कफर इनसे ऊपर

प्राणणक, मानभसक, अनतमानभसक आहद जगत ् िैं। और ये सभी मनुष्य के अंदर ननहित िैं। इसभलए भगवान् जो बाह्य अभभव्यजकत िै उसके सिारे मनुष्य भगवान् ्के अधधकाधधक ननकट पिुँच सकता िै। इसी कारण ववभूनत और अवतार तत्त्व बित िी मित्त्वपूण िैं।

[इस अध्याय को 'ववभूनत-योग' का नाम हदया गया िै], जो एक परमावश्यक योग िै। कयोंकक, जिााँ िमें की ववश्वव्यापी हदव्य 'संभूनत' के साथ उसके संपूण िववस्तार में, उसके शुभ और अशुभ, पूणता और अपूणता, प्रकाश और अंधकार में समभाव से अपने-आप को एकाकार करना िोगा, विााँ िमें साथ-िी-साथ यि भी अनुभव करना िोगा कक इसके अंदर एक आरोिणशील ववकासामभक शजकत िै, वस्तुओं में इसके प्राकट्य की बढ़ती िुई गिनता िै, कोई िम-परंपरामभक रिस्यमय वस्तु िै जो िमें प्रारंभभक आवरणकारी प्रतीनतयों से, उिरोिर उच्चतर रूपों में से गुजारती िुई, ववश्वव्यापी देवाधधदेव की व्यापक आदश िप्रकृनत की ओर ऊपर उठा ले जाती िै।

यहद िम इस दृश्यमान बाह्य-तथ्य को िी देखते िैं कक िमारी अपनी प्रकृनत िै और दूसरों की प्रकृनत िै, तो िम अज्ञान की दृजष्ट से देख रिे िोतेिैं और सब में, साजत्त्वक, राजभसक तथा तामभसक प्राणी में, देव और दानव में, संत और पापी में, ज्ञानी और अज्ञानी में, बड़े ेऔर छोटे में, मनुष्य, पशु, ् वनस्पनत तथा जड़ सिा में समान रूप से ईश्वर को निींजान सकते। एत दृजष्ट तो प्राकृत सिा के संपूण िगुह्य समय के रूप में एक साथ तीन चीजों देखती िै। प्रथमतः और प्रधानतः वि सब में हदव्य प्रकृनत को ननगूढ़, ववद्यमान तथा ववकास के भलए प्रतीक्षारत देखती िै; वि उसे सब वस्तुओंमें ववश्वमार यथाथ िशजकत के रूप में देखती िै, एक ऐसी शजकत के रूप में जो ववभभन्न मु और शजकत के इस समस्त बाह्य कियाकलाप को उसका मूल्य प्रदान करती िै और गुण एवं शजकत-

रूपी इन बाह्य ववषयों का अथ िवि इनकी अपनी अिं और अज्ञान की भाषा में निीं करती अवपतु हदव्य प्रकृनत के प्रकाश में करने िै। इसभलए, द्ववतीयत:, वि देव और राक्षस, मनुष्य, पशु, ु पक्षी और सरोमा (रेंगने वाले), सज्जन और दुजुनि, मूख िऔर ववद्वान् ्में बाह्य किया के भेदों को भी देखती िै, पर इन अवस्थाओंमें, इन छद्मरूपों की ओ़ि में िोते िुए हदख गुण और शजकत की किया के रूप में देखती िै। वि आवरण या मुखौटों के कारण बिकावे में निीं ंआ जाती, अवपतु प्रमयेक आवरण के पीछे परमेश्वर को खोज ननकालती िै। वि ववकृनत या अपूणतिा को देख लेती िै, परंतुउसे बेघ कर उसके पीछे ववद्यमान आममा के समय तक जा पिुँचती िै, इतना िी निीं, ं बजल्क वि उसे उस ववकृनत एवं अपूणतिा में भी ढूँढ़ ननकालती िै जो अपने-आप से अंधी बनी िुई िै, अपनेस्वरूप को पानेके भलए संघष िकर री िै। आमम-अभभव्यजकत और अनुभूनत के अनेक रूपों के द्वारा अपनी आममा के पूण िज्ञान, अपने अनंत और चरम रूप पर पिुँचने ेके भलए अंधवत् ्टटोल री िै। मुकत दृजष्ट ववकृनत और अपूणतिा पर अनुधचत बल निीं ंदेती, अवपतु सबको, हृदय में पूण िप्रेम और उदारता, बुद्धध में पूण िसमझ तथा आममा में पूण िसमता रखते िुए, देखने में समथ िोती िै। अंतत:, वि अपने-आप को संभसद्ध या अभभव्यकत करनेके भलए प्रयासरत शजकतयों की ईश्वर की ओर ऊध्वमिुखी तीव्र-प्रवृवि को देखती िै; शजकत और गुण की सभी उच्च अभभव्यजकतयों का देवमव की जाज्वल्यमान जजह्वाओं का, ननमनतर प्रकृनत के स्तरों से समुज्ज्वल प्रज्ञा और ज्ञान, मिान् ् शजकत, सामथ्य,ि क्षमता, सािस, वीरता, प्रेम और आमम-दान के सौमय माधुय,ि उमसाि और गौरव, उमकृष्ट सद्गुण, श्रेष्ठ कम,ि मोिक सुषमा तथा समस्वरता, सुन्दर तथा हदव्य सृजन के भशखरों की ओर ऊपर उठी िुई अपनी प्रखरताओं से युकत आममा, मन और प्राण की आरोिी मिानताओं की वि आदर, अभभनंदन और प्रोमसािन करती िै। आममा की दृजष्ट मिान् ्ववभूनत के अंदर मनुष्य के ऊपर उठते िुए देवमव को देखती और उसे पिचान लेती िै।

मुकत दृजष्ट साथ िी साथ तीन चीजों को देखती िै। पिले, वि सभी के अंदर भगवान् ्की पराप्रकृनत को ननहित देखती िै जो कक अपनेआप को अधधकाधधक प्रकट करने की प्रतीक्षा में िै। दूसूरे, वि बािरी आवरण से भ्रभमत िुए त्रबना उसके पीछे भी हदव्य प्रकृनत की किया को कायरित देखती िै। और तीसरे वि यि देखती िै कक सभी कुछ के अंदर एक आरोिी िम में भगवान् ्की ववभूनत अभभव्यकत िो री िै। यों तो सभी में भगवान् ्की वधधति िोती अभभव्यजकत का िम चल िी रिा िै परंतुजब ककसी चीज में भगवान् ्की ववशेषे अभभव्यजकत प्रकाभशत िोती िै तो उसे ववभूनत की संज्ञा देते िैं। और ये ववभूनतयाँककसी काल या देश से मयाहिदत निीं अवपतु सदा िी प्रकट िोती रिती िैं। और भगवान् ्की ववभशष्ट अभभव्यजकत मनुष्य तक भी सीभमत निीं ंिै अवपतु वि तो ककसी भी चीज में िो सकती िै। श्रीमाताजी किती थीं कक ककसी मकान को भी भगवान् ्को अभभव्यकत करने का उतना िी अधधकार िै जजतना कक एक मनुष्य को। केवल अपनेअिं के कारण िी मनुष्य के भलए इस बात को सिी रूप में ले पाना बिुत कहठन िै।

उसका वि पिचानना परमेश्वर को शजकत के रूप में पिचानना िै, परंतुशजकत यिाँअपनेव्यापकतम अथ िमें अभभप्रेत िै, केवल बल के रूप में िी शजकत अभभप्रेत निीं ंिै, अवपतु ज्ञान, संकल्प, प्रेम, कम,ि पववत्रता, मधुरता तथा सुन्दरता की शजकत के अथ िमें भी अभभप्रेत िै। भगवान् ्सि (सत्) ्, चेतना (धचत्) ् और आनंद िैं, और इस जगत् ्में सभी कुछ अपने-आप को बािर प्रक्षक्षप्त करके व्यकत करता िै, और कफर सि की

शजकत तथा चेतना एवं ्आनंद की शजकत के द्वारा अपने-आप को पुनः प्राप्त कर लेता िै; यि हदव्य शजकत के कायों का जगत् ्िै। वि शजकत यिा ्अपने-आप को असंख्य प्रकार के भूतों में रूपाजन्वत करती िै और उनमें से प्रमयेक भूत में उस हदव्य शजकत की अपनी-अपनी ननजी ववभशष्ट शजकतयाँ िोती िैं। प्रमयेक शजकत उस रूप के अंदर ववद्यमान स्वयं भगवान् ्िी िैं... त्रत्रगुण के द्वारा उमपन्न ककया गया ववकार वास्तव में मुख्य निीं, अवपतु गौण पिलू िै; मित्त्वपूण िवस्तु तो वि हदव्य शजकत िै जजससे आमम-अभभव्यजकत भमल रिी िै। भगवान् ्िी स्वयं को मिान् ्मनीषी, वीर, जननायक, मिान् ्गुरु, ज्ञानी, पैगमबर, धमि-संस्थापक, संत, मानवप्रेमी, मिाकवव, मिान् ्कलाकार, मिान् ्वैज्ञाननक, तप-परायण आमम-वशी, वस्तुओं व घटनाओं तथा शजकतयों को वश में करनेवाले मनुष्य में प्रकट करते िैं। स्वयं वि कृनत, वि उच्च काव्य, पूणांग सुंदर रूप, गिरा प्रेम, उदात्त कम,िहदव्य उपलजब्ध ईश्वर की िी किया िोती िै; वि अभभव्यजकतगत भगवान् ्िी िोते िैं।

जजतने ्भी गुण िैं, जजतने ्भी उमकृष्ट कम िया भाव या कृनतयाँ िैं वे ्सभी परमाममा की िी अभभव्यजकतयाँ िैं। जब भी िम में किीं कोई ववभशष्ट गुण प्रकट िुआ भमलता िै तब िम में उसे परमाममा की िी ववभशष्ट अभभव्यजकत के रूप में देखना चाहिये। समस्त मिमा तो भगवान् ्की िी िै, सभी कुछ उन्िीं की सत्ता से प्रकाभशत िै, उनके अनतररकत तो ककसी का अपना पृथक् अजस्तमव और अपना पृथक् प्रकाश तो िै िी निीं। और सच्चा मनोभाव िै जिा–ँकिीं और जजस-ककसी रूप में भी भगवान् ्प्रकट िोते िैं उसे देखकर आनंहदत िोना कयोंकक वास्तव में तो सभी चीजें िैं िी इसभलए कक उनमें भगवान् ्अभभव्यकत िो सकें। केवल िमारा अिं या ईष्या िआहद अन्य चीजें िी िैं जो िमें दूसरों के अंदर भगवान् ्की ववभशष्ट अभभव्यजकत को देखने से रोकती िैं। यहद िम अपने अिं और पूवाग्रिों से बािर आकर देख पाएँ तो िम पाएँगे कक प्रमयेक व्यजकत के अंदर भगवान् ्की एक ववभशष्ट अभभव्यजकत िोती िै जो अन्य ककसी में निीं ्भमल सकती। जब िम इस दृजष्टकोण से देखने लगेंगे तो िमारे अंदर एक अद्भुत आश्चय िका भाव िोगा कक ककस प्रकार भगवान् ्प्रमयेक के अंदर एक ववशेष प्रकार की लीला कर रिे िैं। किीं ककसी के अंदर वे शौय िअभभव्यकत करते िैं, किीं ककसी के अंदर दया अभभव्यकत करते िैं। ऐसे िी वे ककसी के अंदर दृढ़ता तो ककसी के अंदर माधुय िअभभव्यकत करते िैं। यहद िम इस दृजष्टकोण से देख पाएँ तो िमारा संपूण िजीवन िी बदल जाएगा और िम सचित्र भगवान् ्की िी अभभव्यजकत के दशन करके सदा िी आनंद में मग्न रिेंगे। परंतु वतमान में िम बािरी बुराइयों से इतने अधधक भ्रभमत रिते िैं कक उनके पीछे अभभव्यकत िोनेवाले परमाममा को चूक जाते िैं और इस कारण उस अभभव्यजकत में रिी िुई जो आनंद प्राप्त िो सकता था उससे भी चूक जाते िैं और िमारा जीवन दुःखमय बना रिता िै। सारी प्रकृनत के माध्यम से स्वयंपरमाममा िी अभभव्यकत िो रिे िैं। एक सच्चा कलाकार या एक कवव उसी तत्त्व को उजागर करने का प्रयास करता िै जजससे िमारी आखें प्रायः चूक जाती िैं। और जजतना िी अधधक वि उस तत्त्व को उजागर करने ्में सफल रिता िै उतना िी अधधक मूल्य उसकी कृनत का िोता िै।

प्रश्न : जब गीता सातवें अध्याय के उन्नीसवें श्लोक में किती िै कक 'वासुदेवः सवभमनत स मिाममा सुदुलभः' तब ककर कया ये दो भभन्न-भभन्न दृजष्टकोण निीं िुए? जिाँ एक के अंदर व्यजकत सभी में परमाममा के दशन करता िै और जबकक दूसरे दृजष्टकोण में ववभूनत के रूप में उनकी ववभशष्ट अभभव्यजकत को देखकर उसके प्रनत ववभशष्टता का भाव रखता िै?

उत्तर : इनमें कोई ववरोधाभास या कफर अंतर निीं ंिै। व्यजकत सभी के अंदर परमाममा के दशनि तो करता
िी िै परंतुसाथ िी उसे यि बोध भी िोता िै कक परमाममा की अभभव्यजकत उिरोिर वधमिान िै। तत्त्विः परमाममा
तो सभी के अंदर ववद्यमान िैं िी परंतु उनकी अभभव्यजकत भभन्न-भभन्न िोती िै। यि वैसे िी िै जैसे कक विी
अध्यापक भभन्न-भभन्न श्रेणी की कक्षाओंमें उनके अनुसार िी अपने आप को अभभव्यकत कर सकता िै। यहद इस
वधधति िोती अभभव्यजकत को न समझा और स्वीकार ककया जाए तो बिुत सी गुजमथया ंाँसमझ में निीं ंआ सकतीं।
मि एक िमववकासमय जगत् ्में िैं जिााँ प्रकृनत भगवान् ्के तत्त्व को प्रकट करने के भलए नए-नए रूपों 'का
ननमाणि करती िै। परंतु असंख्यों रह्माण्डों का ननमाणि करने ेपर भी परमाममा इन सब से छूट ननकलते िैं।
इसीभलए मुकत दृजष्ट को तीनों िी दृजष्टकोण प्राप्त िोते िैं। वि देख लेती िै कक सभी के अंदर परमाममा व्याप्त िैं,
और न केवल शुभु में अवपतु अशुभु रूपों में भी वे िी ववद्यमान िैं और साथ िी यि कक परमाममा की उिरोिर
बढ़ती अभभव्यजकत िो रिी िै। इसीभलए श्रीअरववन्द किते िैं कक श्रीकृष्ण के स्वरूप के ववषय में जो कुछ भी आज
तक प्रकट ककया गया िै वि सब भी उनके समस्वरूप का एक अनतक्षुर अंश िी िै। उनका समस्वरूप तो इन सबसे
अनंत रूप से परे िै। इसभलए जजस रूप में मनुष्यों ने भगवान् ्श्रीकृष्ण के सौंदय िका, उनके माधुय िका धचत्रण और
वणनि ककया िै वि अवश्य िी समय िै, परंतु साथ िी यि भी समय िै कक उनका सौंदय िऔर माधुय िइन सब धचत्रणों
और वणनिों से अनंनतः अधधक िै जो कक अधचंमय िै और कल्पनातीत िै। अवतारों के प्राकट्य में भी िम उनके
ववषय में भभन्न-भभन्न कलाओंका वणनि पातेिैं। इससे िमें उनके आरोिी प्राकट्य का िी दशनि िोता िै अन्यथा
तो भभन्न-भभन्न अवतारों का भभन्न-भभन्न कलाओंसे संपन्न िोने का वणनि करने का तो कोई औधचमय िी निीं ं
िै। इसभलए ववभूनत तत्त्व जो िै वि 'वासुदेवः सवभिमनत' कथन का पररपूरक िी िै। और इसीभलए भगवान् ्के
ववभशष्ट प्राकट्य को, जिााँ किींउनकी अभभव्यजकत ववशेषे रूप से िोती िै उसे बिुत मित्त्व हदया जाता रिा िै,
उसकी पूजा की जाती रिी िै, उसे आदश िके रूप में प्रनतजष्ठत ककया गया िै। जिा ंाँकिीं और जजस ककसी में भी
ककन्िींववभशष्ट गुणों का प्राकट्य िुआ िै उसे िमारी संस्कृनत में सदा िी आदश िमाना गया िै और उसकी कथाए ंाँ
अब भी िमें प्रेररत करती िैं।

इन सब ववभशष्ट प्राकट्यों के बाद भी यि िमववकास इतना मुजश्कल िै कक यहद अवतारों के रूप में
परमाममा स्वयंिस्तक्षेप न करते तो इस ववकासमय प्रकिया को सुचारू रख पाना प्रकृनत के भलए संभव निीं था।
और जब तक कक अनतमानभसक अवतरण निींिो जाता तब तक अवतारों की आवश्यकता रिती िै। कयोंकक, जैसा
कक िम चौथे अध्याय में अवतार ववषय में ववशद चचाि कर िी चुके िैं कक अवतार के आने से िमववकास को सिारा
भमलता िै। भगवान् ्जब अवतररत िोकर आते िैं तब वे स्वयंववभूनत भी िोते िैं और अवतार भी िोतेिैं।

मानव जीवन में एक ननणायिक मोड़ तब आता िै जब व्यजकत का मन ककसी भी प्रकार भगवान् ्के ककसी
रूप में, उनकी ककसी छवव से इतना आकृष्ट िो जाए, उसमें इतना रम जाए कक उससे बािर ननकल पाना उसके
भलए संभव िी न रिे। उसके प्रभाव से कफर समपणि अधधक शीघ्रता से िो सकता िै। कयोंकक एक बार जब मन
भगवान् ्की छवव में रम जाता िै तब उसके सिारे अिं से छुटकारा पाना अपेक्षाकृत अधधक आसान िो जाता िै।

यहद भगवान् ्के प्रनत यि आकषणि न ि◌ो तो केवल ककन्ीिं बािरी साधना पद्धनतयों आहद के माध्यम से इि की ग्रंधथ को सुलझा पाना सिज ि◌ी संभव निीं ि◌ै। व्यजकत के अंदर यि आकषणि अपनेगुरु के भलए, ककसी मिापुरुष के भलए या अन्य ककसी के भलए ि◌ो सकता ि◌ै। परंतु एक सीमा से बािर जाने पर आकषणि जीवन में एक ननणाियक पररवतनि ले आता ि◌ै और व्यजकत को अपनेआप को भूलने ◌ेमें बिुत सिायता भमलती ि◌ै। भागवत् ्पुराण में ि◌म भशशुपाल की कथा सुनते ि◌ैं कक ककस प्रकार अपनेजन्मकाल से ि◌ी वि भगवान् ्से इतना द्वेष रखता था कक सोते-जागते ि◌र समय उन्िींके ववषय में भला-बुरा सोचता और किता था। इसभलए उसके वध के बाद जब उसकी परम सद्गनत देखकर युधधजष्ठर ने आश्चयचिककत ि◌ो नारद जी से प्रश्न ककया कक ऐसी सद्गनत तो कदाधचत् ्ि◌ी ककसी को प्राप्त ि◌ो, तो नारद जी ने किा कक भले द्वेष भाव से ि◌ी सिी परंतु भगवान् ्का सतत् ्धचंतंन जैसा वि करता था वैसा तो कदाधचत् ्ि◌ी कोई करता ि◌ो इसीभलए जो सद्गनत उसे प्राप्त िुई ि◌ै वि भी कदाधचत् ्ि◌ी ककसी के भलए संभव ि◌ै। ि◌ालाकाँक इससे यि अथ ि◌ निीं ◌ंननकलता कक द्वेष भाव से भगवान् ्का धचंतंन ककया जाए, इसकी बजाय श्रेष्ठ ि◌ै प्रेम से उनका धचंतंन करना। और जब व्यजकत प्रेम से उनका धचंतंन करता ि◌ै, उनके प्रनत आकृष्ट ि◌ोता ि◌ै तब इि की गाठेँ गलनी शुरू ि◌ोती ि◌ैं। अन्यथा तो ककसी भी प्रकार ि◌मारा इि ि◌में निींछोड़ता। पर एक बार जब ि◌में भगवान् ्की रूप माधुरी में आनंद आने ◌ेलगे तो उनका कोई प्रसंग, उनके ववषय में कोई चचाया अन्य कोई चीज भी ि◌में त्रबल्कुल ववभोर कर सकती ि◌ै। उस अवस्था में व्यजकत को उनके अनतररकत और कुछ अच्छा ि◌ी निीं लगता। सारे वैष्णव तंत्र का एकमात्र यिी प्रयास ि◌ै कक ककसी भी प्रकार व्यजकत का मन भगवान् ्में रम जाए। अतः, ववभूनत योग से ि◌म यि अथ ि◌भी लगा सकते ि◌ैं कक जगि-जगि भगवान् ्के ववभशष्ट प्राकट्य से ि◌म उनकी ओर आकृष्ट ि◌ोते ि◌ैं और उसके माध्यम से अपनेआप को भूलने ◌ेमें ि◌में बिुत सिायता भमलती ि◌ै।

यि एक ऐसा समय ि◌ै जजसे सभी प्राचीन संस्कृनतयाँ स्वीकार करती थीं और इसका आदर करती थीं, परंतु आधुननक मन के एक पक्ष को इस ववचार के प्रनत एकदम घृणा ि◌ै, वि इसमें ननरे शजकत-सामथ्य ि◌की पूजा, अज्ञानपूण ि◌या आमम-पतनकारी वीरपूजा या आसुरी अनतमानव के भसद्धांत को ि◌ी देखता ि◌ै। ननःसंदेि ि◌ी जैसे सभी समयों को ग्रिण करने का एक अज्ञानी तरीका ि◌ै वैसे ि◌ी इस समय को ग्रिण करने का भी एक अज्ञानी तरीका ि◌ै; परंतु प्रकृनत की हदव्य व्यवस्था में इसका अपना एक ववशेषे स्थान, एक अननवाय ि◌काय ि◌ि◌ै। गीता इसे उसी समुधचत स्थान तथा पररप्रेक्ष्य में ि◌मारे सामने रखती ि◌ै। इसे सभी मनुष्यों तथा सब प्राणणयों में ववद्यमान हदव्य आमममा के अभभज्ञान पर आधाररत ि◌ोना ि◌ोगा; इसे बिी और छोटी, प्रभसद्ध तथा अप्रभसद्ध सभी अभभव्यजकतयों के प्रनत एक समान हृदय से सुसंगत ि◌ोना ि◌ोगा। ईश्वर को अज्ञानी, दीन, दुबुलि, पापी तथा पनतत, सभी में देखना और उनसे प्रेम करना ि◌ोगा। स्वयंववभूनत में भी, केवल भगवान् ्के एक बाह्य प्रतीक के रूप में तो भले ि◌ी, अन्यथा उसके बाह्य स्वरूप या व्यजकतमव में उसे इस प्रकार स्वीकृत और उच्चासीन निींककया जाना ि◌ै, अवपतु उस एकमात्र देवमव को स्वीकृत और उच्चासीन ककया जाना ि◌ै जो अपने-आप को उस शजकत में प्रकट करता ि◌ै। परंतु इससे यि तथ्य रद्द निींि जाता कक अभभव्यजकत में एक चढ़ती िुई श्रृंखला ि◌ै और प्रकृनत अपनी आमम-अभभव्यजकत के ि◌मों में अपनेअंधेरे में टटोलते िुए, अंधकारमय या अप्रकाभशत प्रतीकों से परमेश्वर की प्रथम प्रमयक्ष अभभव्यजकतयों की ओर ऊपर आरोिण करती ि◌ै। प्रमयेक मिान् ्सिा, प्रमयेक मिान् ्उपलजब्ध उसकी आमम-अनतिमण की शजकत का धचह्न ि◌ै और साथ ि◌ी अंनतम और परम अनतिमण का आश्वासन ि◌ै। स्वयं

मनुष्य भी पशु तथा रंगनेवाले जीवों की अपेक्षा प्राकृनतक अभभव्यजकत की एक उच्चतर श्ेरेणी ि ै। यद्यवप दोनों में विी एक 'समं रि' ववद्यमान ि ै। परंतु मनुष्य अभी अपनेअद्याप अनतिमण के उच्चतम भशखरों तक निीं पिुाँचा ि ै और इस बीच उसके अंदर अपने-आप को चररताथ िया अभभव्यकत करने ेकी मिान ्शजकत की प्रमयेक झलक को एक आश्वासन और एक लक्षण के रूप में स्वीकार ककया जाना चाहिए। मिान ्अग्रणणयों के पद-धचह्नों की ओर दृजष्टपात करने ेसे, जो उसे उपलजब्ध के चिो ककसी भी सोपान से अनतमानवता की ओर ले जाते िैं या संकेत करते िैं, मनुष्य में, सभी मनुष्यों में अवजस्थत हदव्यता के भलये िमारा आदर कम निीं ंिोता, अवपतु बढ़ता िी ि ै और साथ िी उसे एक अधधक पररपूणतिर अथ िभी प्राप्त िोता ि ै।....

ववश्व की आममा के रूप में वि शजकत सब के प्रनत सम ि ै, अतएव प्रमयेक मनुष्य को वि उसकी प्रकृनत के व्यापारों के भलए जो आवश्यक ि ै वि प्रदान करता ि ै; ककन्तु पुरुषोिम का मनुष्य के साथ वैयजकतक समबन्ध भी ि ै जिसमें वे उस व्यजकत के भलए ववशेष रूप से ननकट िैं जो उनके पास पिुाँच गया ि ै। ये सब शूरूवीर और मिारथी, जो कुरुक्षेत्र के मैदान में िो रिे युद्ध में सजममभलत िुए िैं, भगवमसंकल्प के पात्र िैं और प्रमयेक के द्वारा वे उसकी प्रकृनत के अनुसार काय िकरते िैं, पर उसके अि के पदे की ओट में िी। अजुनि उस त्रबंदु ुपर पिुाँच गया ि ै जिााँ आवरण को ववदीण िककया जा सकता ि ै तथा दिेधारी भगवान ्अपनी ववभूनत के सममुख अपनी कायशैिली का रिस्य प्रकाभशत कर सकतेिैं। और समय का दशनि कराया जाए, ऐसा आवश्यक भी ि ै। वि एक मित ्काय िका ननभमि भी ि ै, एक ऐसा काय िजो देखने में तो भीषण ि ै पर मानवजानत के प्रयाण में आगे की ओर एक लंबा कदम उठाने के भलए तथा धमरिाज्य, 'ऋतम ्' और 'समयम ्' के राज्य की स्थापना ितेु ुउस द्वारा ककये जानेवाले संघष िमें एक ननणायिक गनत के भलए आवश्यक ि ै। मानव के युग-चिों का इनतिास मानवता की अंतराममा और उसके जीवन में ईश्वर के अनावरण या उद्घाटन की ओर प्रगनत ि ै; उसकी प्रमयेक मिान ्घटना और अवस्था एक हदव्य अभभव्यजकत ि ै। गुप्त भागवत्–संकल्प के प्रधान यंत्र, मिान ्नायक, अजुनि को वि हदव्य मानव बनना िोगा जो उस मित ्काय िको सचेतन रूप से, भगवान ्के काय िके रूप में करने में समथ ििो। इस प्रकार करने से िी वि कम ि आन्तराजममक रूप से सजीव बन सकता ि ै तथा अपना आध्याजममक मित्त्व और अपने गुप्त अथ िकी ज्योनत एवं शजकत प्राप्त कर सकता ि ै। उसे आममज्ञान के भलए आह्वान प्राप्त िुआ ि ै; उसे ईश्वर को ववश्व के स्वामी तथा जगत ्के प्राणणयों और घटनाओं के मूल के रूप में तथा सब को प्रकृनत के अन्दर परमेश्वर की आमम-अभभव्यजकत के रूप में देखना िोगा, तथा सब के अन्दर ईश्वर को देखना िोगा, अपनेअन्दर मानव तथा ववभूनत के रूप में ईश्वर को िी अनुभव करना िोगा, सिा की ननमनताओं में तथा उसकी ऊाँचाइयों पर, उच्च-से-उच्च भशखरों पर ईश्वर को िी देखना िोगा, उसे मनुष्य को भी ऊाँचाइयों पर ववभूनत के रूप में, तथा परम मोक्ष और भमलन में अंनतम भशखरों की ओर आरोिण करते िुए देखना िोगा। उमपवि और संिार के कम िमें अपनेपग रखते िुए काल को भी उसे परमेश्वर की मूनत िके रूप में देखना िोगा, - ऐसे पग जो सृजष्ट के उन ववकास चिों को पूरा करते िैं जजनकी गनत के आवतों पर मानव-दिे में अवजस्थत हदव्य आममा जगत ्में ईश्वर की ववभूनत के रूप में उनका काय िकरता िुआ परमोच्च परामपरताओं की ओर ऊपर उठता ि ै। यि ज्ञान प्रदान कर हदया गया ि ै; भगवान ्का काल-रूप अब प्रकट ककया जाना ि ै और उस रूप के कोहट-कोहट मुखों से मुकत-ववभूनत के सममुख ननयत कम िके भलए आदेश ननःसृत िोनेवाला ि ै।

ववभूनतयोग का यिी ननष्कष िै कक सभी जगि िम भगवान् ्की उिीरेर वधिमान अभभव्यजकत के दशनि कर सकते िैं। और इसका सच्चा लाभ तो तब िै जब भगवान् ्की कोई अभभव्यजकत िमें इस सीमा तक अभभभूत कर दे कक कफर िमारा मन उसी में रम जाए और िमें उन्मि कर दे। अन्यथा तो अपनेआप के ववचार से, अपने अिं से, अपने गठन से मुकत िो पाना संभव निीं ्िै।

इस प्रकार दसिूँ अध्याय 'विभूनतयोग' समाप्त होता है।

ग्यारिवााँ अध्याय

।. ववश्वरूपदशनि संारिककाल

ववश्व-पुरुष का दशनि गीता के उन सुप्रभसद्ध प्रकरणों में से िै जो अमयंत ओजस्वी रूप में काव्यमय िैं, परन्तु गीता की ववचारधारा में इसका स्थान सवथिा सति पर प्रकट निीं। और ननःसंदे ऐसा ककसी काव्याममक तथा समयोद्भासक प्रतीक के भलए अभभप्रेत भी िोता िै (कक वि अपना अभभप्राय सति पर प्रकट निींकरता) और इसके आशय को ग्रिण कर सकनेके पूव िमें देखना िोगा कक इसका सूत्रपात कैसे तथा ककस प्रयोजन से ककया गया िै, साथ िी यि भी जानना िोगा कक अपनेअथगिभभति रूपों में यि ककस बात की ओर संकेत करता िै। अदृष्ट भगवान् ्की जीवंत मूनत ितथा प्रमयक्ष महिमा को, जगत् ्का संचालन करनेवाले परम् ्आममा और शजकत के साक्षात् ्ववग्रि को देखने की इच्छा से अजुनि ने िी इसके भलए प्राथनिा की िै।

अजुनुज उिाच मदनग्रजहाय परमं गह्जयमध्यात्मसंज्ञज्ञतम् ्।
यत्त्ियोक्तं िचमतेन मोहोऽयंविगतो मम ।॥ १॥

१. अजुजनु ने कहाः मेरे ऊपर अनग्रजह कर के आपनेजो सत्ता के उच्चतम आध्यास्त्मक रहमय को प्रकट करनेिाले चिन कहे; इससे मेरा मोह (भ्रम) दूरू हो गया है।

[अजुनि ने] सिा के इस सवोच्च आध्याजममक रिस्य का श्रवण कर भलया िै कक सब कुछ भगवान् ्से उमपन्न िोता िै तथा सब कुछ भगवान् ्िै और सभी चीजों में भगवान् ्ननवास करते तथा गुप्त रूप से ववद्यमान िैं और प्रमयेक सीभमत दृश्यवस्तु में उर्न्िें प्रकट ककया जा सकता िै। वि भ्रम जो मनुष्य के मन तथा इजन्रयों को इतने ेदृढ़ रूप से अपनेअधधकार में रखता िै, अथात्ि्यि धारणा कक वस्तुएँ ईश्वर से पृथक् अपने-आप में या अपने भलए अजस्तमव रखती िैं, अथवा प्रकृनत के अधीन रिनेवाली कोई भी वस्तु स्वयमेव पे्रेररत तथा पररचाभलत िो सकती िै, उससे दूरू िो गयी िै, - यिी उसके संदेि एवं ववभ्रांनत का तथा कम िसे इन्कार करनेका कारण था।

भिाप्ययौ दह भूतानां ंश्रतजौ विमतरशो मया ।
त्ित्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमवप चाव्ययम् ्।। २॥

२. हे कमल-लोचन श्रीकृष्ण! सममत भूतों की उत्पवत्त और लय को मेरे द्िारा आप से विमतारपूिकु सनजा गया है और आपके अविनाशी महात्म्य को भी सनजा गया है।

एिमैतद्यथात्थ त्िमात्मानं परमेश्िर ।
द्रष्टजसमच्छासम ते रूपमैश्िरं पजरुषोत्तम ।। ३।।

३. हे परमेश्िरा आपने अपने विषय में जैसा कहा है िह िैसा ही है। हे पजरुषोत्तम! (किर भी) म ैंआपके ईश्िरीय ददव्य रूप और देह को देखना चाहता हूँ।

मन्यसे यदद तच्छक्यंमया द्रष्टजसमनत प्रभो ।
योगेश्िर ततो मे त्िंदशुयुात्मानमव्ययम् ्।। ४।।

४. हे प्रभो! यदद आप मानतेहो कक आपका िह रूप मेरे द्िारा देखा जाना शक्य है तो, हे योगेश्िर ! आप अपने अविनाशी आत्म-मिरूप का मझेज ेदशुनु कराइये।

वि जानता िै कक हदव्य चेतन आममा का अक्षय मिाममय िी इन सब बाह्य प्रतीनतयों का रिस्य िै।.... वि उनके गुणों के बारे में सुन चुका िै तथा उनके आमम-प्रकटीकरण के सोपानों तथा तरीकों को समझ चुका िै; परन्तु अब वि इन योगेश्वर से अपने योग-चक्षुके सममुख अपनी उस वास्तववक अव्यय आममा को प्रकाभशत करने ेके भलए किता िै। स्पष्ट िी उसका अभभप्राय उनके ननष्कम िअक्षरभाव की ननराकार नीरवता से निीं िै, अवपतु उन परमोच्च से िै जजनसे िी समस्त शजकत एवं कम िउद्भूत िोता िै, सभी रूप जजनके आवरण िैं, जो ववभूनत में अपनी शजकत प्रकाभशत करते िैं, - जो कमों के स्वामी, ज्ञान और भजकत के स्वामी, प्रकृनत और उसके

समस्त प्राणणयों के परमेश्वर िैं। इस मिम सवग्रिी हदव्यदशनि के प्रीमयथ िप्राथनिा करने ेके भलए उसे प्ेररत ककया गया िै कयोंकक इस प्रकार िी उसे, जगमकम िमें अपना भाग ग्रिण करने ेके भलए ववश्व में अभभव्यकत परमाममा से आदेश प्राप्त करना िोगा।

अजुनि की वतमान मनोवैज्ञाननक जस्थनत ऐसी िै जजसमें कक उसकी बुद्धध का भ्रम दूर िो चुका िै। उसे यि भली-भानाँत अनुभव िो गया िै कक परमाममा िी सभी कुछ के आहदकारण िैं, वे िी सभी कुछ के कता-धतािैं, उनके अनतररकत अन्य ककसी चीज की कोई सिा िी निीं ि ैि। और यि समय प्रमयक्ष दृजष्टगोचर िो इसके भलए ववभूनतयों के वणनि से बुद्धध को और अधधक आधार प्राप्त िोता िै। परंतु कफर भी भौनतक इंहरय संवेदन तो िमें ऐसी पृथककारी सूचना देते िी रिते िैं कक जगत् ्में भभन्न-भभन्न तो िमें ऐसी जीव-जंतुओंका, पे़ि-पौधों, पिा़ि-नहदयों आहद का भी उरावतमव िै। िालाकाँक भीतर से भले िी यि बोध िो गया िो कक ये सभी परमाममा के िी रूप िैं, तो भी भौनतक संवेदनों के अंदर ठोस रूप से यि ववश्वास आ जाना आसान निीं ि ैि। परंतुअजुनि ने जजस जस्थनत से आरंभ ककया था उसमें तो वि ववषाद और भ्रम में िूबा िुआ था। भगवान् ्उसकी शंकाओं आहद का समुधचत उिर देते िुए धीरे-धीरे उसे इस जस्थनत तक ले आए िैं कक अब उसका हृदय उनमें रस लेनेलगा िै, उसकी बुद्धध में प्रकाश आ गया िै। तो कफर अब बाकी कया िै? बाकी िै उसके इंहरय संवेदनों में प्रकाश लाना। बुद्धध के अंदर अनुभव िोनेके बाद भी यि भाव बना रिता िै कक जजन चीजों की या ववभूनत आहद की बात की जा रिी िै वि एक गिरा समय तो िै परंतु भौनतक रूप से तो उसे देख पाना कदाधचत् ्िी संभव िोता िोगा। इसीभलए उसके अंदर यि इच्छा और जजज्ञासा जाग उठती िै कक भगवान् ्अपने स्वरूप का जो वणनि कर रिे िैं कया वि उसके भलए गोचर िोना संभव िै। जैसे एक सच्चे प्ेरमी भकत का हृदय अपनेप्ेरमास्पद की चचा में गिरा आनंद अनुभव करता िै वैसे िी अजुनि भगवान् ्की ववभूनतयों के वणनि में परम आनन्द अनुभव कर रिा िै इसभलए उसमें प्रबल इच्छा जाग उठती िै कक उसे वि सब हदखलाया जाए जजसका भगवान् ्वणनि कर रिे िैं। दृजष्ट एक बिुत िी मित्त्वपूण िइंहरय िै। ककसी चीज के भलए अन्य इंहरयों की सूचना के बाद भी दृजष्ट के जुि़ने ेपर िी उसमें पूणता आती िै। िमारी गिरी शजकतयों में भी स्मृनत, श्रुनत और दृजष्ट का वणनि आता िै। इनमें भी दृजष्ट अथात् िसमय के प्रकटन को सबसे अधधक मित्त्वपूण िऔर शजकतशाली माना जाता िै।

प्रश्न : यिा ाँपिले िी श्लोक में अजुनि किता िै कक उसका मोि नष्ट िो गया िै परंतुअठारिवें अध्याय में भी अजुनि किता िै कक उसका मोि नष्ट िो गया िै। तब कफर इनमें अंतर कया िै?

उत्तर : इसका कारण यि िै कक साधना की ककसी अवस्था ववशेष में व्यजकत को ऐसा अनुभव िो सकता िै कक उसका मोि नष्ट िो गया िै। ववश्वरूप दशनि के बाद हृदय, बुद्धध, संवेदनों आहद भागों में अवश्य िी ककसी सीमा तक तो ववश्वास आ जाता िै परंतु कफर भी जजस प्रकार का िमारा गठन िै, उसमें इतने सब अनुभवों के बाद भी बुद्धध में कुछ भ्रम बाकी रि जाते िैं। इसीभलए अजुनि इतने ननरूपण के बाद भी किता िै कक गुणों के ववषय में भगवान् ्नेवणनि तो बिुत ककया परंतु यि स्पष्ट निीं ककया कक वास्तव में गुण कया िैं। उसी प्रकार वि किता िै कक आप 'अिं' 'माम्' ्आहद पदों का प्रयोग करते िैं, परंतुयि तो आप ने स्पष्ट िी निीं ककया कक आप कौन िैं,

पुरुषोत्तम से आपका कया संबंध ि है। पुरुष-प्रकृनत के ववषय में भी आपने चचा तो बुित की ि ै परंतुइनका वास्तववक मम ि ि कया ि ै। इस प्रकार अजुनि के अंदर अभी कुछ प्रश्न ि ैं जजन्हें स्पष्ट ककये जाना बाकी ि ै। इसभलए ककसी भाग में तो उसका मिो नष्ट ि ो गया ि ै परंतु इन सभी बचे ु प्रश्नों के ि ल ि ोनेके बाद ि ी वि अठारिवें अध्याय में किता ि ै कक उसका मिो नष्ट ि ो चुका ि ै।

श्रीभगिान् ुिाच पश्य मे पाथु ुरूपाणण शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानन ददव्यानन नानािणाुकृतीनन च ।। ५।।

५. श्रीभगिान् ुने कहाः हे पाथु! ु मेरे नाना प्रकार के और नाना रंग और आकार ि ाले सकैंडों और सहस्रों ददव्य रूपों को देख।

पश्याददत्यान्िसून्रुद्रानस्श्िनौ मरुतमतथा ।
बहून्यदृष्टपूिाुणण पश्याश्चयाुणण भारत ।। ६।।

६. हे भारत! आददत्यों को, ि सजओंको, रुद्रों को, दोनों अस्श्िनी कजमारों को और मरुद्गणों को देख; और बहजत से ऐसे आश्चयों को देख स्जन्हें पहले कभी नहीं ु देखा गया है।

इहैकमथं जगत्कृत्मनं पश्याद्य सचराचरम् ु।
मम देहे गजडाकेश यच्चान्यद्रष्टजसमच्छसस ।। ७।।

७. हे गजडाकेश (ननद्राविजयी अजजुनज)! आज यहा ुँमेरे शरीर में ही सभी चर और अचर सदहत संपूणु ुजगत् ुको एकीभूत हजआ देख, और इसके अनतररक्त जो कजछ भी देखना चाहता है ि ह भी देख।

इस प्रकार यिी इस (ववश्वरूपदशनि) की मुख्य बात तथा केंरीय मम ि ै। यि अनेक में 'एक' तथा 'एक' में अनेक का दशनि ि ै, - और सभी कुछ वि 'एक' ि ी ि ै। यिी वि दशनि ि ै जो हदव्य योग के चक्षुके भलए वि सब जो ि ै और जो था और जो ि ोने ु वाला ि ै उस सब को मुकत कर देता ि ै, उसका औधचमय भसद्ध करता तथा उसकी व्याख्या करता ि ै। एक बार यि दशनि प्राप्त ि ो जानेतथा इसे धारण कर लेने पर यि ईश्वर की उज्ज्वल कुल्िाडी से सब संशयों तथा व्यग्रताओं की ज़ि पर कुठाराघात करता ि ै और सब ननषेधौम् ु ववरोधाभासों को ज़ि से भमटा देता ि ै। यि वि दशनि ि ै जो समजन्वत एकीभूत करता ि ै। यहद जीव इस दशनि में परमाममा के साथ एकमव साधथत क सके, - अजुनि अभी तक इसे निीं ुप्राप्त कर सका ि ै, इसभलये ि म देखते ि ैं दशनि करने पर वि भयभीत ि ोता 3 - a इस संसार में जो कुछ भी पवकिा दशनि करके उसके भलए संत्रास निीं ुिो जाता। ि म देखते ि ैं कक यि भी परीक का ि ी एक रूप ि ै और एक बार जब ि मने, उसे केवल अपने-आप में ि ोन देखते ि ुए, उसके अन्दर उनके प्रयोजन को ढूँढ़ भलया ि ोता ि ै, तब ि म समा जगत् ुको सवसिमावेशी ि ष ि तथा प्रबल सािस के साथ स्वीकार कर सकते ि ैं अपने ननयत कम ि की ओर सुननजश्चत पगों से अग्रसर ि ो सकते ि ैं और उससे परमोच्च पररणनत की पररकल्पना कर सकते ि ैं।

दशनि करनेपर अजुनि भयभीत इसभलए िोता िै कयोंकक अभी भी उसमें अिबोध, अपनी पृथक् सिा का बोध िै और जब तक पृथकता का बोध िोता िै तब तक तो भय बना िी रिता िै।

न त जमांशक्यसे द्रष्टजमनेनैि मिचक्षषजा ।
ददव्यं ददासम ते चक्षःज पश्य मे योगमैश्ि्रम् ् ॥ ८॥

८. परन्तज अिश्य ही तू अपनी इन आखोँं से मेरे मिरूप को नहींदेख सकता, म ैंतझेददव्य चक्षजप्रदान करता हूँ उससे तूमझे मेरे ईश्ि्रीय योग में देख।

सञ्जय उिाच

एिमक्जत्िा ततो राजन्महायोगेश्ि्रो हररः ।
दशुयुामास पाथुाय परमंरूपमैश्ि्रम् ्।। ९।।

९. सञ्जय ने कहाः हे राजन्! ् ऐसा कह कर महायोगेश्ि्र श्रीहरर (श्रीकृष्ण) ने अजुजनु को अपनेपरम ईश्ि्रीय रूप को ददखलाया।

अनेकिक्त्रनयनमनेकाद्भतजदशुनम् ्।
अनेकददव्याभरणं ददव्यानेकोद्यतायजम् ्।। १०।।

१०. अनेक मजखों और नेत्रों से यक्जत, अनेक अद्भतज झाकूँकयों िाले, अनेक ददव्य आभूषणों से सशजोसभत, यद्जि के सलए उद्यत अनेक आयजों से ससजस्ज्जत।

ददव्यमाल्याम्बरिरं ददव्यगन्िानलेज पनम् ्।
सिाुश्चयुमयं देिमनन्तं विश्ितोमखज म् ्।। ११ ।।

११. ददव्य मालाओंऔर िस्त्रों को िारण ककये हजए, ददव्य गंि कै अनजलेपन है। सगजस्न्ित, अनन्त और सममत आश्चयों से पररपूणु ुदेि स्जनके मखज सिुत्र हैं।

ददवि सूयुसहस्रस्य भिेद्यगजपदस्जत्थता ।
यदद भाः सदृशी सा मयाद्भासमतमय महात्मनः ॥ १२॥

१२. यदद आकाश में सहस्रों सूया ूँकी ज्योनत एक साथ जगमगा उठे तो िह ज्योनत कदाधचत् ्उस महापजरुष के देह की ज्योनत के सदृश हो।

तत्रैकैमथंजगत्कृत्मनं प्रविभक्तमनेकिा ।

अपश्यद्देिदिमय शरीरे पाण्डिमतदा ।। १३।।

१३. िहूाँउस समय पाण्डजपत्रज अजुनुज ने सम्पूणु ुविश् को उसके अनेकाँवि विभागों में होतेहजए भी उसे दिेों के परमदिे के उस शरीर में एकीभूत अिमथा में देखा।

ततः स विममयाविष्टो हृष्टरोमा िनञ्जयः ।
प्रणम्य सशरसा दिें कृताञ्जसलरभाषत ।। १४।।

१४. तब विममय से असभभूत, रोमांधचत देहिाले उस िनञ्जय (अजुजनु) ने दिे के समक्ष शीश निाते हजए और हाथ जोि़ कर इस प्रकार कहा।

अजुनुज उिाच पश्यासम दिेांमति दिे देहे सिांमतथा भूतविशेषेसङ्घान् ्।
ब्रह्माणमीशं ंकमलासनमथमृीश्च सिानरजगांश्च ददव्यान् ्।। १५।।

१५. अजुजनु ने कहाः हे दिे! म ैंसममत दिेों को और विसभन्न जानत के जीिों के समूहों को, कमलरूप आसन पर बैठे हजए सृसृष्टकत्तााप्रभ जब्रह्मा को और सममत ऋवषयों को और ददव्य सपों को आपकी देह में देखता हूाँ।

अनेकबाहूदरिक्त्रनेत्रं ंपश्यासम त्िांसिुतोऽनन्तरूपम् ्।
नान्तंन मध्यं न पनजमतिाददं ंपश्यासम विश्िेश्िर विश्िरूप ।। १६ ।।

१६. सभी ओर अनंत रूपों िाले आपको म ैंअसंख्य भजाओं, उदरों, नेत्रों और मखजों से यक्जत देखता हूाँ; ककन्त जहे विश्िेश्िर, हे विश्िरूप! म ैंआपका आदद, मध्य और अंत नहीं देखता।

ककरीदटनं गददनंचकक्रणं च तेजोरासशं ंसिुतो दीस्प्तमन्तम् ्।
पश्यासम त्िांदिुनरीक्ष्यं ंसमन्ताद्दीसानलाकुद्यनजतमप्रमेयम् ्।। १७।।

१७. म ैंआपको मकजजट से सशजोसभत, गदा और चक्र से ससजस्ज्जत देखता हूाँ, आपको देख पाना या पहचान पाना कदठन है क्योंकक आप एक देदीप्यमान तेज के पंज हैं, सब ओर से व्याप्त करने िाली ज्िाला हैं, अस्नन और सूयु ु के समान चमकदार अपररमेय हैं जो मजझे ेसब ओर से घेरे हजए हैं।

त्िमक्षरं परमंिेददतव्यंत्िममय विश्िमय परं ननिानम् ्।
त्िमव्ययः शाश्िििमुगोप्ता सनातनमत्िं पजरुषो मतो मे ।। १८॥

१८. आप हमारे सलये ज्ञातव्य परम अक्षर ब्रह्म हैं, आप इस विश्ि के उच्च आिार और ननिान हैं, आप सनातन ननयमों के अविनाशी संरक्षक हैं, आप सनातन परुजष हैं, ऐसा मेरा मत है।

अनाददमध्यान्तमनन्तीयुमुनन्तबाहंज शसशसूयुनेत्रम् ्।
पश्यासम त्िांदीप्तहजताशिक्त्रं ंमितेजसा विश्सिमदं तपन्तम् ्।। १९।।

१९. आपको म ैंआदद, मध्य और अंत से रदहत, अनन्त बलयक्जत, असंख्य भजाओंिाला देखता हूँ, आपके नेत्र चन्द्र और सूयु ुहैं, आपका मखज प्रज्ज्सिलत अस्नन के समान है, आपके ननज तेज की ज्िाला से आपको इस संपूणु ुविश्ि को तपाता हजआ देखता हूँ।

द्यािापृथ्व्योररदमन्तरं दह व्याप्तं त्ियैकेन ददशश्च सिाुः ।
दृष्ट्िाद्भितंज रूपमग्रंजतिेदं लोकत्रयंप्रव्यधथतं महात्मन् ्।। २० ।।

२०. हे महात्मन् ्! द्यलजोक और पृथ्िीलोक के बीच का सब प्रदेश और सममत ददशाएँ एकमात्र अकेले आप से ही व्याप्त हैं; आपके इस अद्भतज उग्र रूप को देखकर तीनों लोक व्यधथत हो रहे हैं।

अमी दह त्िांसिजरसंघा विशस्न्त केधचद्भीताः प्राञ्जलयो गृणस्न्त ।
मिमतीत्यक्जत्िा महवुषससुसद्सिंघाः मतिजस्न्त त्िां मितजनतसभः पष्ुजकलासभः।। २१॥

२१. दिताओं के समूह आप में प्रिेश कर रहे हैं; कोई-कोई दिता भयभीत होकर हाथ जिो़ ेहजए आपकी मतजनत कर रहे हैं; महवुष ुऔर ससद्िों के समदजाय "शांनत हो, कल्याण हो" ऐसा कहते हजए अनेक प्रकार के मतनजतिचनों से आपकी मतनजत कर रहे हैं।

रुद्राददत्या िसिो ये च साध्या विश्िेऽस्श्िनौ मरुतश्िोष्मिपाश्च ।
गन्ियुिुक्षासरजससद्सिंघा िीक्षन्ते त्िां विस्ममताश्चैि सिे ॥ २२॥

२२. रुद्र और आददत्य, िस,ज साध्यगण, विश्िेदिाः, दो अस्श्िनीकजमार, मरुत् ्और वपतरों का समजदाय (ऊष्मपाः) और गन्ििु,ु यक्ष, असरज और ससद्िों के समूह हैं, सभी की दृस्ष्ट विस्ममत होकर आपको देख रही है।

रूपं ंमहत्ते बहजिक्त्रनेत्रं ंमहाबाहो बहजबाहूरुपादम् ्।
बहूदरं बहजदंष्राकरालं ंदृष्ट्िा लोकाः प्रव्यधथतामतथाहम् ्।। २३ ।।

२३. हे महाबाहो । आपके बहजत से मखजों और नेत्रों, अनेक भजाओं, जंघाओं, पैरों और उदरोंिाले, कराल दाढ़ों से यक्जत आपके भयानक विराद् रूप को देखकर सममत लोक भय से कस्म्पत और व्यधथत हो रहे हैं और म ैंभी कस्म्पत और व्यधथत हो रहा हूँ।

नभःमपृशं ंदीप्तमनेकिणं ंव्यात्ताननं दीसविशालनेत्रम् ्।
दृष्ट्िा दह त्िांप्रव्यधथतान्तरात्मा िृनृतं ंन विन्दासम शमंच विष्णो ।। २४।।

२४. हे विष्णो! आकाश को मपशु ुकरते हजए, अनेक रंगों में जाज्ल्यिमान, खजले हजए मखजोंिाले, ब्रि◌े–ब्रि ेआननेय नेत्रों िाले आपको म ैदेखता हूँ। मेरा मन अत्यधिक व्यधथत है और मझेज ेशास्न्त या ियैु ुभी नहींहै।

दंष्ट्राकरालानन च ते मखाजन दृष्ट्िाि कालानलसस्न्नभानन ।

ददशो न जानेन लभे च शमु ुप्रसीद दिेश जगस्न्निास ।। २५।।

२५. भयंकर दाढ़ों के कारण विकराल और मृत्ृय जतथा काल की अस्नन के समान आपके मखजों को जब म ैदेखता हूँ तो म ैददशाओं का बोि खो बैठता हूँ और म ैशांनत अनजभि नहीं ंकरता। हे दिेों के दिे, जगत् ्के आश्रय! आप प्रसन्न हों।

अमी च त्िांिृिराष्ट्रमय पत्रजाः सिेसर्िैहिानननपालसंघैः ।

भीष्मो द्रोणः सूतपत्रजमतथासौ सहाममदीयैरवप योिमखजयैः ।। २६ ।।

वक्त्राणण ते त्िरमाणा विशस्न्त दंष्ट्राकरालानन भयानकानन ।

केधचद्विलनना दशनान्तरेष जसंदृश्यन्ते चूणणतैरुत्तमाङ्गैः ।। २७॥

२६-२७. राजाओं और िीरों के समूहों तथा भीष्म और द्रोण तथा कणु ुके सदहत ये सभी िृतराष्ट्र के पजत्र, तथा हमारे भी प्रिान-प्रिान योद्िा तीव्र िेग से आपके विकराल दाढ़ोंिाले अनत भयंकर जब्िों (मजखों) में प्रिेश कर रहे हैं; और कजछ आपके दाूँतों के बीच में चकनाचूर हजए ससरोंिाले ददखायी दे रहे हैं।

यथा नदीनांबहिोऽम्बिेजगाः समद्रजमेिासभमखाः द्रिस्न्त ।

तथा तिामी नरलोकिीरा विशस्न्त िक्त्राण्यसभविज्िलस्न्त ।। २८॥

२८. स्जस प्रकार नददयों के बहजत से जलों के प्रिाह (िाराएूँ) समद्रज की ओर दौ्ते हजए उसमें प्रिेश करते हैं, उसी प्रकार ये सब मानिलोक के शूरिीर आपके अनेक ज्िलंत मजखों में प्रिेश कर रहे हैं।

यथा प्रदीप्तंज्िलनंपतङ्गा विशस्न्त नाशाय समृद्धिेगाः ।

तथैि नाशाय विशस्न्त लोका मतिावप िक्त्राणण समृद्धिेगाः ।। २९।।

२९. स्जस प्रकार पतंगे मरनेके सलये तीव्र िेग के साथ प्रज्ज्िसलत अस्नन में प्रिेश करते हैं, उसी प्रकार ये सब मनष्जय भी मरनेके सलये तीव्र िेग के साथ आपके मखजों में प्रिेश कर रहे हैं।

लेसलह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्िदनैज्िलुद्भः ।

तेजोसभरापूयु ुजगत्समग्रं भासमतिोग्राः प्रतपस्न्त विष्णो ।।३० ।।

३०. हे विष्णो ! आप सममत लोकों को अपनेप्रज्ज्सिलत मखजों से सब और से ग्रससत करते हजए चाट रहे हो; संपूणु ु जगत् ्आपके जाज्ल्यिमान तेज से पररपूणु ुहै और उग्र प्रभाओं से तप रहा है।

[यि परम और ववश्वपुरुष का] वि रूप िै जजससे मनुष्य का मन जानबूझ कर दूरू िट जाता िै और शुतुरमुग िकी भानाँत अपना भसर छुपा लेता िै ताकक स्वयंउन 'रौर' या 'भयंकर' को न देख पानेके कारण कदाधचत् ् उनकी भी नजर में न आये। दुबुलि मानव हृदय केवल अनुकूल तथा सुखद समयों को िी चािता िै या कफर उनके अभाव में रुधचकर गाथाओं को िी पसंद करता िै। वि समय को उसकी समग्रता में निीं ंप्राप्त करना चािता, कयोंकक समय में ऐसा बिुत कुछ िै जो स्पष्ट, रुधचकर तथा सुखद निीं िै, इतना िी निीं, बजल्क जजसे समझना कहठन िै तथा सिन करना और भी भारी िै। अपररपकव धमविादी, सतिी आशावादी ववचारक, भावुक आदशविादी, अपनेभावों तथा संवेदनों की दया पर आधश्रत मनुष्य ववश्व-सिा के कठोरतर पररणामों तथा ननष्ठुर और उग्रतर रूपों को तोि-मरोिकर उनसे बच ननकलने में सिमत िैं। नछपने–बचने के इस सामान्य खेल में भाग न लेनेके कारण भारतीय धम िको अज्ञानपूवकि ननन्दा की गयी िै, कयोंकक, इसके ववपरीत, उसनेपरमेश्वर के रौर, भयानक तथा मधुर और सुन्दर प्रतीकों को साथ-साथ ननभमति ककया और अपने सामने रखा िै। कयोंकक यि उसके सुदीघ ि धचंतंन तथा आध्याजममक अनुभव की गंभीरता तथा ववशालता िी िै जो उसे इन कमजोर जुगुप्साओं ंको अनुभव करने ेया इनको स्वीकृत करने से रोकती िै।

भारतीय संस्कृनत का यि एक ऐसा गंभीर समय िै जजसे समुधचत रूप से समझ लेना अमयावश्यक िै कयोंकक यहद इसे न समझें तो िम संसार को भी निीं ंसमझ सकतेऔर इस कारण ववचभलत जस्थनत में िी रिते िैं। उदािरण के भलए, साधक के मन में यि भाव उठता िै कक श्रीमाताजी परम दयालु िैं और सभी कुछ उनकी कृपा की िी अभभव्यजकत िै और जो कुछ भी वे करती िैं वि केवल कल्याण के भलए िी करती िैं। सभी आध्याजममक जन इसी प्रकार की बातें करते िैं। परंतु भारतीय संस्कृनत में िी यि ववभशष्टता रिी िै जो जगज्जननी को कल्याणकारी माता िी निीं अवपतु संिाररत नरमुण्धिारी काली के रूप में भी पूजने ेका सािस रखती िै। िमारी संस्कृनत भगवान् ्के समग्र रूप को स्वीकार करने का सािस रखती िै कयोंकक यहद भगवान् ्को उनके केवल ककन्िीं एकांगी रूपों में िी स्वीकार ककया जाए और उनके दूसूरे पक्षों को अस्वीकार कर हदया जाए, उनके प्रनत जुगुप्सा का भाव रखा जाए तब तो ककसी प्रकार की समग्र हदव्यता का साक्षामकार तो संभव िी निीं ंिो पाएगा। जजस प्रकार का यि संसार िै इसमें बिुत सारी चीजें आपस में घुल-भमल गई िैं। यिा ँसमय और भमथ्यामव, शुभु और अशुभु, प्रकाश और अंधकार आहद सभी साथ-साथ अभभव्यकत िो रिे िैं, आसुरी शजकतयों और दैवी शजकतयों के बीच भयंकर संघष िकी जस्थनत बनी िुई िै। इसभलए भले िी यि ककसी स्तर पर तो मूलतः समय िै कक सब कुछ भगवान् ्की िी इच्छा से िोता िै परंतु वास्तववक अभभव्यजकत में सब कुछ सिी निीं िै, चीजें अपने यथास्थान पर निीं िैं। और इन सब ववषमताओं का, आसुरी शजकतयों का सामना करने और उनका ववनाश करने ेके भलए मिाकाली की परम आवश्यकता िै। इसभलए प्रतीनत में अवश्य िी वे रौर रूपा िैं परंतु उनकी किया परम कल्याणकारी िै कयोंकक वे एक िी वार में भीतरी और बािरी शत्रुओंका नाश कर िालती िैं। जो चीजें िमें सुदीघ िकाल से बाधँ िुए थींया जो िमें सुदीघ िकाल तक बाधँ सकती थीं, उन सभी का उनके एक िी वार से नाश िो जाता िै। इसभलए जब िम किते िैं

कक िमारा कभी अननष्ट निीं िो सकता, तब यि अननष्ट इस पर ननभरि करता िै कक िमारा तादाममय ककससे िै।

यहद ि मारा तादाममय अपनेमन, प्राण और शरीर से िी ि तब तो ि मारा अननष्ट कभी भी िो सकता िै परंतुयहद मिारा तादाममय अपनी आममा से ि तब उसका कभी कोई अननष्ट निीं िो सकता। इसभलए ककसी भी समय की उपयुकतता या उसकी समयता इस पर ननभरि करती ि कक िम उसे प्रयुकत ककस प्रकार कर रि िैं। इसभलए सभी चीजें िमारी अंतराममा के दृजष्टकोण से सविोम िोती िैं न कक िमारी बािरी सिा के दृजष्टकोण से। और वास्तव में जो िमारी आंतररक सिा के दृजष्टकोण से सविोम िोता ि वि सच्चे रूप में िमारी बािरी सिा के भलए भी उिम िो सकता िै। इसीभलए परमाममा की सिा को स्वीकार करना अच्छा िै, परंतु यि पयाप्ति निीं; परमाममा के समीप जाना और भी अच्छा िै, परंतु यि भी पयाप्ति निीं ंिै, आवश्यकता तो इस बात की ि कक व्यजकत परमाममा के राज्य की स्थापना के भलए उनके पक्ष में खुलकर संघष िकरनेके भलए तैयार रिे कयोंकक इस जगत् ्में दैवीय और आसुरी शजकतयों के बीच संघष िचलता ि और व्यजकत को सकिय रूप से दैवीय शजकतयों के पक्ष में युद्ध करना िी िोगा। िमारे जजतनेभी अवतार और मिापुरुष आहद आए िैं सभी ने अपनेजीवन में भागवत् ्साम्राज्य की स्थापना के भलए घोर संघष िककया ि। और इसी कारण श्रीअरववन्द इस अध्याय के आरंभ में िी किते िैं कक, "ववश्व-पुरुष का दशनि गीता के उन सुप्रभसद्ध प्रकरणों में से ि जो अमयंत ओजस्वी रूप में काव्यमय िैं, परन्तु गीता की ववचारधारा में इसका स्थान सवथिा सति पर प्रकट निीं ंिै।" सति पर यि प्रकट इसभलए निीं ंि कयोंकक यिा ंकेवल दैवीय िी निीं ंअवपतु आसुरी शजकतयाँ भी िैं और उनका सामना करना िी िोगा, उनके साथ युद्ध करना िोगा। इसभलए िमें भगवान् ्के सौमय रूप को िो निीं ंअवपतुउनके रौर रूप को भी त्रबना ककसी भय और जुगुप्सा के स्वीकार करना िी िोगा। जब तक आसुरी चीजों का बोलबाला ि तब तक तो दुगा िके रौर रूप की, काली के अट्टिास की परम आवश्यकता िै। और वास्तव में तो इनके रौर रूप में िी इनका परम कल्याण भी नछपा िै। यहद िम संसार में ववभभन्न शजकतयों की किया को समुधचत और समग्र रूप से देख पाएँ तो इसके अंदर ईश्वर के सभी पक्षों की किया को भी समुधचत रूप से देख पाएँगे अन्यथा तो िम सदा िी भगवान् ्को समग्रता में न देखकर ककसी एक पक्ष से िी देखेंगे और उनकी समग्र किया से चूक जाएँगे। जो धम िभगवान् ्के रौर रूप को देखने का सािस निीं कर सकते उन्िें किफर चीजों के स्पष्टीकरण के भलए ककसी शैतान की पररकल्पना करनी पड़ती िै। तब वे किते ि कक भगवान् ्तो कल्याणकारी िी ि परंतु शैतान भी ि जो सभी वीभमस चीजों का कारण ि। परंतु भारतीय आध्याजममकता का कभी भी ऐसा कोई एकांगी दृजष्टकोण नि ीं रि ा।

भारतीय आध्याजममकता जानती ि कक ईश्वर परम पे्रेम, शाजन्त, जस्थरता और शाश्वतता िैं, - गीता, जो िमारे समक्ष इन भयंकर रूपों को प्रस्तुत करती िै, उन परमेश्वर को, जो उन भयंकर रूपों को धारण करते िैं उनका, सवभूितों के सखा और पे्रेमी के रूप में भी वणनि करती िै। परन्तु उनका जगत् ्के हदव्य शासन के रूप में एक अधधक कठोर पिलू भी िै, जो आरमभ से िी िमारे सममुख उपजस्थत रिता िै, वि ि संिार का पिलू, और उसकी उपेक्षा करना भागवत् ्पे्रेम, शाजन्त, जस्थरता और शाश्वतता के पूण िसमय से वंधचत िोना ि और यिाँ तक कक इस पर आंभशकता तथा भ्रम का रूप थोप देना िै, कयोंकक जजस केवल सुखप्रद रूप में इसे प्रस्तुत ककया जाता िै, वि जजस जगत् ्में िम रिते िैं उसकी प्रकृनत के द्वारा प्रमाणणत निीं ंिोता। िमारा यि संघषामिमक तथा प्रयासमय जगत् ्भयंकर, खतरनाक, ववनाशकारी, भक्षक जगत् ्िै जजसमें जीवन बड़े ्जोणखम भरे ढंग से रिता िै,

तथा मनुष्य की दिे और आममा अनतववकराल संकटों के बीच ववचरण करते िैं, यि एक ऐसा जगत् ्िै जजसमें आगे उठाये जानेवाले प्रमयेक कदम के द्वारा, िम चािें या न चािें, कुछ-न-कुछ कुचला जाता िै और टूट जाता िै, जजसमें जीवन का प्रमयेक श्वास मृमृयु का भी प्रश्वास िै। जो कुछ भी िमें अशुभु या भीषण प्रतीत िोता िै उस सब के भलए एक अद्धि-सवशिजकतमान शैतान को उिरदायी ठिराना या उसे प्रकृनत का अंग किकर एक ओर रख देना और इस प्रकार जगत्–प्रकृनत तथा ईश्वर-प्रकृनत में अलंघ्य ववरोध ख़िा कर देना, मानो प्रकृनत ईश्वर से स्वतंत्र िो, अथवा उस सबके भलए मनुष्य व उसके पापों को उिरदायी ठिराना, मानो इस जगत् ्के ननमाणि में उसकी आवाज का ब़िा भारी मित्त्व िो या वि ईश्वर की इच्छा के ववरुद्ध कुछ भी रच सकता िो, - ये सब ऐसी अनिाी ढंग की सुववधाजनक युजकतया ाँ िैं जजनका भारत की धाभमकि ववचारधारा ने कभी आश्रय निीं भलया। िमें यथाथतिा को सािस के साथ आाँख में आाँख िालकर देखना िोगा और यि देखना िोगा कक परमेश्वर ने िी, और ककसी ने निीं, ं अपनी सिा के अन्दर इस जगत् ्का ननमाणि ककया िै और उन्िोंने इसे इस प्रकार का िी बनाया िै। िमें देखना िोगा कक अपनी संतानों को ननगलनेवाली प्रकृनत, प्राणणयों के जीवनों को ़िि प जानेवाला काल, अटल तथा सावभिौम मृमृयु, तथा मनुष्य और प्रकृनत में ननहित हिंसंक रुर शजकतयााँ भी, अपनेएक अन्य वैश्व रूप में, वि परमोच्च ईश्वर िी िैं। िमें देखना िोगा कक वे ेउदार तथा मुकतिस्त स्रष्टा, सविसिायक, शजकतमान् ्और दयालु जगमपालक ईश्वर िी भक्षक तथा संिारि ईश्वर भी िैं... केवल तभी जब िम पूण िऐेकय की दृजष्ट से देखते िैं और इस समय को अपनी सिा की गिराइयों में अनुभव करते िैं, तभी िम उस मुखौटे या छद्मरूप के पीछे भी सवानंदिमय परमेश्वर के शांत और सुन्दर मुख को पूण िरूप से पा सकतिे ं और इस स्पश िमें, जो िमारी अपूणतिाओं की कसौटी िै, मनुष्य की आममा के सखा और ननमातिा का स्पश िपा सकते िैं। जगतों की ववसंगनतयााँ ईश्वर की िी ववसंगनतयााँ िैं और केवल उन्िें स्वीकार करके तथा उनमें से िोकर आगे बढ़नेसे िी िम उनके परम सामंजस्य की शििर सुर-संगनतयों तक तथा उनके ववश्वातीत और ववश्वगत आनंद के भशखरों और िषि–रोमांधचत ववशालताओं तक पिुाँच सकते िैं।

गीता ने जो समस्या उठायी िै तथा जो समाधान हदया िै वेववश्व-पुरुष के दशनि के इसी स्वरूप की मागाँ करते िैं।... जब उसका [अजुनि का] इस समय के मूनतमंति रूप से साक्षामकार कराया जाता िै, वि उसके अंदर भागवत् ्मिाममय की छवव के द्वारा त्रास तथा संिारि के इस रूप को अनतशय रूप से पररवधधति देखता िै और भयभीत िो उठता िै तथा उसे सि निीं सकता। कयोंकक, सवामिमा को अपने-आप को प्रकृनत के अन्दर इस रूप में प्रकट िी कयों करना चाहिए? आणखर अभभप्राय कया िै इस मृमृयुशील सिा का जो कक एक सृजृष्टकारी तथा सवग्रिासी ज्वाला िै, इस ववश्वव्यापी संघष ितथा इन सतत् ्ववनाशकारी सृजृष्टयों का और प्राणणयों के इस प्रयास, व्यथा, वेदना तथा ववनाश का? वि इस पुरातन प्रश्न को पूछता िै तथा सनातन प्राथनिा को व्यकत करता िै...

आख्यादह मे को भिानग्रजरूपो नमोऽमतजते देिवर प्रसीद ।

ववज्ञातसजमच्छासम भिन्तमाद्यं न दह प्रजानासम ति प्रिवृत्तम् ्।। ३१।।

३१. इस भयानक रूप को ि◌ारण करनेिाले आप कौन हैं यह मझेज ◌ेबतलाइये हे देिों में श्रेष्ठदेि! आपको नममकार है, आप प्रसन्न हों। आप जो आदद से हैं, आपको म ◌ैंजानना चाहता हूँ, क्योंकक म ◌ैंआपकी प्रिृवत्तयों के पीछे के मूल संकल्प को नहींजानता।

भगवान् ◌्उिर देते ि◌ैं कक 'संिार' ि◌ी मेरी किया-प्रवृवियों का मूल संकल्प ि◌ै जजसे लेकर म ◌ैंयिा ◌ाँकुरुक्षेत्र के इस मैदान में जस्थत ि◌ूँ... यि एक ववश्वव्यापी संिार ि◌ै जो कालपुरुष की प्रकिया में आ उपजस्थत ि◌ुआ ि◌ै। 'मेरा एक पूवदिशी प्रयोजन ि◌ै जो अपने आप को अमोघ रूप से चररताथ ि◌करता ि◌ै और ककसी मनुष्य की उसमें सिभाधगता या उससे परिार न उसे रोक सकता, न बदल सकता और न पलट ि◌ी सकता ि◌ै;

---

*कया तुम अपने मृमृयु के क्षण में या पीिा की घड़ियों में भी अपने उमपीिक और अपने संिारक में ईश्वर को देख पाती? कया तुम उस ईश्वर को उस में देख पाते ि◌ो जजसका तुम संिार कर रि ि◌ो, और कया 'उसे' उस समय भी देख और प्रेम कर पाती जब तुम संिार कर रि ि◌ोते ि◌ो? तो तुमने परम ज्ञान पा भलया ि◌ै। वि कृष्ण को कैसे पा सकता ि◌ै जजसनेकभी काली को न पूजा ि◌ो?

मनुष्य के द्वारा इस भूतल पर ककंधचममात्र भी ककये जा सकने ◌ेसे पिले ि◌ी सभी कुछ मेरे द्वारा अपनेसंकल्प की सनातन दृजष्ट में समपन्न ककया जा चुका ि◌ोता ि◌ै। काल-रूप में मुझे पुरानी रचनाओं को नष्ट करना तथा नये, मिान् ्और श्रेष्ठ राज्य का ननमाणि करना ि◌ै। तुझे ◌ेहदव्य शजकत तथा प्रज्ञा के मानवीय यंत्र के रूप में इस युद्ध में, जजसे तू रोक निींसकता, समय के भलए लिना तथा इसके ववरोधधयों का वध करना और उन्िें जीतना ि◌ै।

श्रीभगिान् ◌्उिाच कालोऽस्मम लोकक्षयकृत्प्रिृद्धोलोकान्समाहतुसुजमह प्रिृत्तः।
ऋतेऽवप त्िांन भविष्यस्न्त सिे ◌ेयेऽस्मिथताः प्रत्यनीकेष जियोाः ।। ३२।।

३२. श्रीभगिान् ◌्ने कहाः म ◌ैंलोकों का विनाश करनेिाला कालपरुजष हूँ, जो यहा ◌ूँलोकों के विनाश में प्रिृत्त विकराल रूप ि◌ारण ककये हजए है। प्रनतपक्षी सेनाओं में जो योद्िा उपस्मथत हैं ि◌े सब तेरे यद्िजि ककये त्बना भी नहीं ◌ंबचेंगे।

ये काल तथा ववश्व-पुरुष के रूप में प्रकट कालातीत ि◌ी ि◌ैं जजनसे कम ि◌का आदेश प्रादुभूति ि◌ुआ ि◌ै। कयोंकक, ननश्चय ि◌ी जब भगवान् ◌्यि किते ि◌ैं कक "म ◌ैंभूतों का क्षय करने वाला काल ि◌ूँ," तब उनके किने का तामपय ि◌ियि निीं ◌ंि◌ोता कक वे ◌ेकेवल काल-पुरुष ि◌ी ि◌ैं या काल-पुरुष का समपूण ि◌अथ ि◌संिार ि◌ी ि◌ै। परंतु ◌ुयिी उनके कायों की वतमिान प्रवृवि ि◌ै। संिार सदा ि◌ी सृजष्ट के साथ-साथ चलनेवाला या बारी-बारी से आनेवाला तत्त्व ि◌ै और संिार करके तथा नये भसरे से रचना करके ि◌ी जीवन के स्वामी जगत् ◌्के प्रनतपालन का अपना सुदीघ ि◌काय ि◌समपन्न करते ि◌ैं।...जो कोई भी युद्ध और संिार के इस ववधान से छुटकारा पाने के भलए समय से पूव ि◌यमन करता ि◌ै वि ववश्व-पुरुष के स्थिर संकल्प के ववरुद्ध एक व्यथ ि◌की चेष्टा करता ि◌ै। जो कोई अपने ननमनतर अंगों की दुबुलिता के कारण उससे पीठ फेरता ि◌ै, जैसा कक अजुनि ने आरमभ में ककया, वि उस सच्ची वीरता को निीं ◌ंअवपतु प्रकृनत के तथा कम ि◌और जीवन के कठोरतर समयों का सामना करने के भलए आध्याजममक सािस के अभाव को ि◌ी हदखला रिा ि◌ोता ि◌ै। मनुष्य युद्ध के ननयम का अनतिम के अभाव कता के स्थिर ववधान को उपलब्ध करके ि◌ी कर

सकता िै... तथ तक सच्ची शांनत निींिो सकती जब तक कक मनुष्य का हृदय शांनत का अधधकारी निीं ंिोता; ववष्णु का ववधान तब तक लागू ूनिीं ंिो सकता जब तक कक रुर का ऋण निीं ंचुका हदया जाता। ऐसी अवस्था में युद्ध से मुँि मोड़ कर अब तक अववकभसत मानवजानत को कया प्रेम तथा एकता के ननयम का उपदेश देना िोगा? प्रेम और एकमव के ववधान के भशक्षकों का िोना आवश्यक िै, कयोंकक केवल उसी तरीके से अंनतम उद्धार की प्राजप्त िो सकती िै। परंतु जब तक काल-पुरुष मनुष्य के अंदर तैयार निींिो जाता तब तक आंतररक एवं चरम समय बाह्य एवंतामकाभलक समय पर प्रभुमव निीं ंप्राप्त कर सकता। ईसा और बुद्ध आये और चले गये, परंतु रुर िी िैं जो अब तक भी जगत् ्को अपनी मुट्ठी में रखते िैं। इस बीच मानवजानत का प्रचंड अिंकार प्रयास, जो कक अिंभावपूण िशजकत से अमयधधक लाभ उठानेवाली शजकतयों तथा उनके दासों के द्वारा व्यधथत तथा उमपीड़ित िै, संघष िके वीरनायक की तलवार तथा इसके पैगंबर की वाणी के भलए पुकार रिा िै।

जिा ँभी किीं ंअपूणता िै, स्वाथपरता िै, क्षुरता िै उस सब पर रुर अपना प्रिार करते िैं और उसे भमटा डालते िैं। इसीभलए रौर रूप संिार करने ेवाला बताया गया िै। वेदों में भी रुर का प्रतीक आता िै जो अपनेप्रिार से िमें िमारी क्षुर आदतों से, ननमन कामनाओं, वासनाओं, सुख-भोग की लालसाओं से, जो कक िमें जीवन भर जकड़े े रखती िैं, मुकत कर देते िैं। इसभलए जजस प्रकार की वतमान पाधथव जस्थनत िै उसमें अन्य देवताओंकी किया समुधचत रूप से िो पाए उससे पिले रुर की किया आवश्यक िै। वतमान अवस्था में तो व्यजकत इतनी पाशों में बाँधा िै कक ककसी प्रकार की मुकत किया करनेकी तो वि सोच िी निीं सकता। इसभलए वि मुकत किया कर पाए उसके भलए पिली आवश्यकता िै कक उसकी सभी पाश ेंकाट दी जाएँ, और रुर यिी करते िैं। मिाकाली भी यिी करती िैं। वे अपनेएक िी वार से िमारे जन्म-जन्मांतरों के बंधन काट डालती िैं। इसीभलए वे परम कल्याणमयी िैं।

तस्मात्त्वमुविष्ठ यशो लभस्व जजमवा शत्रून्मुङ्क्ष्व राज्यंसमृद्धम्।्
मयैवैतेननिताः पूवमेव ननभमिमात्रं ंभव सव्यसाधचन् ्।। ३३॥

३३. इसभलये तू खड़ा िो और यश को प्राप्त कर, तेरे शत्रुओं को जीतकर समृद्ध राज्य का भोग कर। मेरे द्वारा ये सब पिले िी मारे जा चुके िैं, अतः िे सव्यसाधचन् ्अजुनि । तू ूतो ननभमिमात्र बन जा।

द्रोणंच भीष्मं च जयद्रथं च कणं ंतथान्यानवप योधवीरान् ्।
मया हतांमत् जिदह मा व्यधथष्ठा यध्जयमि जेतासस रणे सपत्नान्।्। ३४ ।।

३४. जो मेरे द्वारा पहले ही मारे जा चकेज हैं उन द्रोणाचायु, ु भीष्म, जयद्रथ, कणु ुतथा अन्य िीर योद्धाओंको मार; संत्रप्त और व्यधथत मत हो। यद्जि कर, तू ूरण में शत्रुओंको जीतेगा।

उस मिान् ्तथा घोर कम िके फल का वचन दे हदया गया िै और उसके संबंध में भववष्यकथन कर हदया गया िै, पर यि ऐसा फल निीं ंिै जजसके भलए व्यजकत लालानयत िो, कयोंकक उसके प्रनत कोई आसजकत निीं ंिोनी

चाहिए, - अवपतु ऐसा फल ि◌ै जो भगवहदच्छा के पररणाम के रूप में, संपन्न ककये जानेयोग्य काय ि◌के यश और सफलता के रूप में, भगवान् ◌्के द्वारा अपनी ववभूनत के अन्दर अपने-आप को ि◌ी प्रदान ककये जानेवाले यश के रूप में प्राप्त ि◌ोता ि◌ै। इस प्रकार जगत्–संग्राम के नायक को कम ि◌के भलए अंनतम तथा अलंघ्य आदेश दे हदया गया ि◌ै।

अजुनि को अब अलंघ्य आदेश प्राप्त ि◌ो चुका ि◌ै, ऐसा आदेश जजसकी अविेलना या अनदेखी निीं ◌ंकी जा सकती। स्वयं श्रीअरववन्द को अपने भीतर से चंदेर नगर जानेका ऐसा ि◌ी अलंघ्य आदेश प्राप्त ि◌ुआ था। अपनी एक पुस्तक में श्रीअरववन्द ने इस पूरे वृिांत का वणनि ककया ि◌ै कक ककस प्रकार लगभग असंभव पररजस्थनतयों में वे उस आदेश की पालना करते ि◌ुए विााँपिुाँचे। पूरा वृिांत बिुत रोमांचक ि◌ै कक यहद किीं भी कोई चूक ि◌ो जाती तो यि पूरी संभावना थी कक उन्िें पकड़ कर कारावास में ि◌ाल हदया जाता। इससे यि पता लगता ि◌ै ककस प्रकार आदेश के साथ ि◌ी साथ भगवान् ◌्की कृपा छोटे से छोटे ब्यौरे की भी इतनेसटीक रूप से व्यवस्था करती ि◌ै जजतनी कक कोई मनुष्य अपनेसामथ्य ि◌के सिारे करने की सोच भी निीं ◌ंसकता। जब उनसे पूछा गया कक कया उन्िें कभी भीतर के उस आदेश पर, उस वाणी पर संदेि निीं ◌ंि◌ुआ कक उस वाणी के आधार पर ि◌ी उन्िोंनेइतना बड़ा खतरा मोल भलया तब श्रीअरववन्द किते ि◌ैं कक वि वाणी या वि आदेश ऐसा था कक उसका उल्लंघन निीं ककया जा सकता था।

प्रश्न : भगवान् ◌्अजुनि को किते ि◌ैं कक मेरे द्वारा ये पिले ि◌ी मारे जा चुके ि◌ैं तू तो केवल ननभमिमात्र बन, तो इसका अथ ि◌कया ि◌ै?

उत्तर : ि◌मारा यि जगत् ◌्तो जगत् ◌्श्रृंखला में ननचले स्तर पर ि◌ै। ि◌मारे ऋवषयों ने पिले ि◌ी इसका अनुभव प्राप्त कर भलया था कक इस जगत् ◌्में ऐसा कुछ भी घहटत निीिं ि◌ो सकता जो पिले से किीं घहटत न ि◌ुआ ि◌ो। इसी कारण तो ि◌म भववष्यकथन कर सकतेि◌ैं। श्रीमाताजी को इन जगत् ◌्श्रृंखलाओंका और इनकी किया का गिरा ज्ञान था। इसभलए श्रीअरववन्द के साथ चचाि में वे उन्िें जब आवश्यक ि◌ोता था तब बताती थींकक कौनसी चीजों में अभभव्यजकत से पूव ि◌िस्तक्षेप करके उनके ि◌म में फेरबदल ककया जा सकता ि◌ै, कौनसी ऐसी घटनाएँ ि◌ैं जो इस जगत् ◌्अभभव्यजकत के इतनी ननकट आ चुकी ि◌ैं कक अब उनमें ि◌स्तक्षेप को अधधक संभावनाएँ निीं ◌ंि◌ैं। श्रीअरववन्द की सेवा में ननयुकत कुछ अंतरंग भकतों के साथ उनकी चचाि-पररचचाि के अभभलेखों से ि◌में पता लगता ि◌ै कक ककस प्रकार ववश्व युद्ध के समय श्रीमाताजी की सिायता से श्रीअरववन्द ववश्व घटनाओंमें अपनी योगशजकत द्वारा ि◌स्तक्षेप कर के उन्िें हदशा प्रदान कर रिे थे। कुछ मामलों में तो उन्िोंने सुदूर देशों में बैठे राजनेताओं के पूरे के पूरे भाषण को ि◌ी अपनेअनुरूप शब्द प्रदान ककये जजसके ववषय में स्वयं वे राजनेता भी सचेतन निीं थे। अपनेएक भाषण में चधचिल कुछ इस प्रकार किते ि◌ैं कक कई बार उन्िें बड़े ◌ेप्रबल रूप से यि मिसूस ि◌ोता ि◌ै कक कोई शजकत उनका मागदिशनि कर रिी ि◌ै और वि तब तक उनका साथ निीं ◌ंछोड़ेगी जब तक कक वे एक सिी उद्देश्य के पक्ष में खड़े ◌ेरिेंगे।

अब इससे एक प्रश्न और उठता ि◌ै कक कया सभी कुछ पूवनिनयत ि◌ोता ि◌ै या कफर ि◌मारी कोई स्वतंत्र इच्छा संभव ि◌ै? श्रीमाताजी किती ि◌ैं कक जो कुछ भी घहटत ि◌ोना ि◌ो वि ककसी स्तर पर पूव ि◌में घहटत ि◌ो चुका ि◌ोता ि◌ै।

अब इसका एक उदािरण लेते िैं। यहद िम एक स्थान से ककसी दूसूरे स्थान की यात्रा कर रिे िों तो माग िमें आने वाली चीजें भले िी पिले से ववद्यमान िोती िैं, परंतुिमारे भलए उनकी ववद्यमानता तब आती िै जब वे िमें गोचर िोती िैं। इस दृजष्टकोण से व्यजकत विााँजो कुछ भी देखता िै वि भले िी पिले से ववद्यमान िोता िै परंतु उसकी चेतना के भलए वि अजस्तमव में तब आता िै जब वि उसे देखता िै। विींयहद साथ िी गंतव्य तक पिुाँचने के अनंत माग िों, तब तो िमारे सामने जो-जो दृश्य आने िैं वे तो िमारे भलए सवथिा अप्रमयाभशत िी िोंगे। साथ िी िमें माग ि के चयन की स्वतंत्रता िोती िै। और जजस माग िका िम चयन करते िैं उसके अनुसार िी दृश्य िमारे सामनेआते िैं। इस तरीके से िम इसे एक अथ िमें स्वतंत्र इच्छा कि सकतेिैं और एक अथ िमें पूवनिनधाररित भी कि सकते िैं। इसके साथ िी साथ िमें यि भान भी िोना चाहिये कक िमारा स्वतंत्रता का बोध तो सिी िै परंतु यि स्वतंत्रता िमारी आममा के भलए िै न कक िमारे बािरी भागों के भलए। प्रायः िी िम यि भूल कर बैठते िैं और विी सभी भ्रांनतयों का कारण बन जाती िै। स्वतंत्रता िमारी आममा को िोती िै जबकक िमारे बािरी भाग तो अपने-अपने ववधानों में बद्ध िैं। इसभलए जजस अनुपात में िम अपनी आममा के साथ संयुकत िोते िैं उस अनुपात में िम स्वतंत्र िोते िैं और जजस िद तक िम अपने ननमनतर और बािरी भागों से संयुकत िोतेिैं उस िद तक बद्ध िोते िैं। अब चूाँकक िम पूणतिया ज़ि निींिैं इसभलए िमें कुछ-कुछ स्वतंत्रता का भान िोता िै। परंतु चूंकक िम अपनी आममा से दूरू िोते िैं इसभलए यि स्वतंत्रता का भान भी अपूण िी िोता िै। दूसूरे, जो बािरी घटनाएाँ भी िमारे साथ िोती िैं, भले िी िमारे दृजष्टकोण से वप्रय िों या अवप्रय, परंतुएक गिरे दृजष्टकोण से वे सारी इसभलए िोती िैं कयोंकक िमारी आममा ने उन पररजस्थनतयों का, उन घटनाओं का चयन ककया िोता िै। यहद वि ऐसा चयन न करे तो उसके साथ वे घटनाएाँ घहटत न िोकर दूसूरी वे घहटत िोंगी जजनका वि चयन करेगी। एक दूसूरे उदािरण के माध्यम से िम इस गुमथी पर कुछ अधधक प्रकाश िाल सकते िैं। यहद पेि़ से कोई फल धगरता िै तो उसकी ननयनत िै नीचेजमीन पर धगरना। परंतु कोई मानभसक चेतना िस्तक्षेप करके उसे जमीन पर धगरने से पिले पकि़ कर उसकी ननयनत बदल सकती िै। अतः चेतना के स्तरिम की अनंत श्रृंखला िै और एक स्तर की ननयनत को उससे उच्चतर स्तर के िस्तक्षेप के द्वारा बदला जा सकता िै। अब इसमें कोई यि तकि दे सकता िै कक परम हदव्य ववधान में वि िस्तक्षेप भी पूवनिनयत था। परंतु विींएक दूसूरा दृजष्टकोण यि भी िै जो किता िै कक चूंकक यि आममा की इच्छा थी इसभलए उस इच्छा के अनुसार िी जो-जो िस्तक्षेप आवश्यक थे वे िोते िैं और अभीष्ट पररणाम के भलए िस्तक्षेपों का िम भी बदल सकता िै। परंतुअंततः िोता विी िै जो आममा की, िमारे अंदर बैठे परमाममा की इच्छा िोती िै और इसभलए सब कुछ आममा की स्वतंत्र इच्छा के अनुसार चलता िै।

इस समस्या को िल करने के भलए िम कि सकतेिैं कक जब ककसी स्तर ववशेषे से कोई ववधान अभभव्यजकत में आ जाता िै तब तो वि ननयत िोता िै परंतु जिा ाँसे वि ववधान आता िै यहद विींउसमें उच्चतर चेतना के ववधान को प्रभावी ककया जाए तो उसमें कुछ भी फेर-बदल ककया जा सकता िै अन्यथा तो भगवान् की सवशिजकतमिा का कोई अथ िी निीं था। तब तो यि सारा संसार एक ऐसी भसनेमा की भानााँत िोता जजसे कक पूव िमें ररकॉि िकर भलया गया िै और अब उसका प्रसारण मात्र ककया जा रिा िै। यहद ऐसा िी िोता तब तो यि सारे कम िके उमप्रेरण पर िी कुठाराघात करता िै और सभी आशा को नष्ट कर देता िै। परंतु वास्तव में ऐसा निीं िै। इसभलए कोई चीज भले ककतनी भी पूवनिनयत कयों न िो, परंतु सदा िी एक गुह्य संभावना बनी रिती िै कक एक उच्चतर

चेतना के ववधान के द्वारा उसे बदला जा सकता िै। स्वयंश्रीअरववन्द व श्रीमााँ वैजश्वक ववधान को पूरी तरि अनतिम करके अनतमानभसक अवतरण की घोषणा करने ्के भलए, हदव्य साम्राज्य की स्थापना करने ्के भलए आए थे। इसभलए यहद सब कुछ मानभसक चेतना के वतमिान स्तर के अनुरूप िी पूवनिनयत िोता तब तो इस प्रकार की घोषणाएाँ ननरथकि िोतीं और हदव्य साम्राज्य की स्थापना एक हदवास्वप्न िी िोती। परंतु श्रीमााँ व श्रीअरववन्द कित्ते िैं कक वे परामपर के ववधान को उतार लानेके भलए आए िैं और उसके द्वारा पृथ्वी पर अज्ञान और भमथ्यामव के साम्राज्य का अंत करके भागवत् ्साम्राज्य स्थावपत करने आए िैं। ऐसा इसभलए िै कयोंकक िमारे अंदर भगवान् ् की एक ऐसी उपजस्थनत ववराजमान िै जजसके सामने कोई भी ववधान लागू निीं ्िो सकता। वि स्वतंत्र रूप से अपना ववधान बना सकती िै और उसे लागू ्कर सकती िै। इसी शजकत के आधार पर साववत्री ने मृमृयुके देव का सामना करके उसे परास्त कर हदया। इससे िमें यि आशा और आश्वासन प्राप्त िोता िै कक कोई ब्रि ्से ब्रिा ववधान भी वास्तव में िमारी आममा के भलए बाध्यकारी निीं ्िोता। इसभलए जब वि हदव्यता िमारे अंदर ववराजमान िै तब िमें ककन्िीं भी ववधानों के ववषय में कुछ भी धचंतां करने की कोई आवश्यकता निीं िै। परंतु इसे िमें अपने अिं से निीं ्समझ लेना चाहिये, जैसा कक प्रायः िी िोता िै।

अब एक दूसूरी चेतना के दृजष्टकोण से देखें तो वास्तव में आप िो परम पुरुष िैं, आप स्वयंिी परम् ्सिा िैं जिजसके परे न ककसी चीज का कोई अजस्तमव िै, और न कोई दूसूरी सिा िै। सारे देवता, सारे रह्माण्ि, सारी सृजृष्ट सभी कुछ आप िी का अंश िै। जब यि चेतना प्रभावी िोती िै तब तो ककसी ननयनत का तो कोई प्रश्न िी निीं उठता। ऐसी चेतना में तो न केवल स्वतंत्रता िी िै, अवपतु सब कुछ आप िी की प्रसत्रता के ननभमि िोता िै। िमारे वेदांत का यिी मूल भसद्धांत िै कक िम ऐसी ककसी चीज के संपकि में निींआ सकतेजो स्वयंमिारे अंदर से िी ननःसृत न िो। किने ्का अथ यिि िै कक सब कुछ िमारी चेतना की िी उमपवि िै, उसके अनतररकत अन्य कुछ िै िी निीं। परंतुयि कोई मानभसक ववचार के द्वारा निीं िो सकता, जब इसका जीवंत अनुभव िोता िै तभी िमें यि मूलभूत समय प्रकट िो सकता िै। परंतु यि जगत् ्प्रपंच इस प्रकार रचा गया िै कक इसमें सिज िी व्यजकत को यि अनुभव निीं िोता। पर इससे इस चेतना की संभावना समाप्त निींिो जाती। िम अवश्य िी ऐसी चेतना में जा सकतिैं और स्वयंयि अनुभव प्राप्त कर सकतिैं। और एक बार जब िमारी बािरी प्रकृनत तक भी यि अनुभव और यि श्रद्धा प्रभावी िो जाए तब कफर कुछ भी असंभव निीं ्िै। पांडिचेरी जस्थत श्रीअरववन्द आश्रम तो इस बात का प्रमयक्ष प्रमाण िै। स्पष्ट िी िै कक वि कोई सामान्य मानवीय रचना निीं ्िो सकती। यि तो श्रीमााँ व श्रीअरववन्द के द्वारा अपनी चेतना के बल से एक नये जगत् ्का सृजृन िै जिााँ भौनतक जगत् ्के निींअवपतु हदव्यतर जगतों के ववधान काय िकरते िैं। ककसी भी संवेदनशील दृजष्ट को यि तुरंत िी स्पष्ट िो जाएगा कक विााँ भौनतक प्रकृनत के ननयमों को बदल हदया गया िै और केवल भागवत् ्ववधान िी सच्चे रूप से प्रभावी िै। ककसी न ककसी िद तक प्रमयेक व्यजकत अपने िी बनाए जगत् ्में ननवास करता िै। और जजतना िी िम अपने अंदर उस हदव्य तत्त्व के संपकि में आ जाएाँ, उसे अभभव्यजकत का अवसर प्रदान कर सकें उतना िी िम प्रभावशाली रूप से एक ववशालतर और हदव्यतर जगत् ्का ननमाणि कर सकतिैं जजसमें िमारे अपनेबनाए ननयम-ववधान प्रभावी िोतिैं।

इसी कारण मिान् ्व्यजकत अपनेशजकतशाली प्रभामणलि का ननमाणि कर लेते िैं जजसमें इन्िीं सिती ननयमों में उच्चतर ववधान को लागू कर वे ववलक्षण उपलजब्धयााँ और भसद्धि प्राप्त कर लेते िैं जो ककसी सामान्य व्यजकत

की तो कल्पना से भी परे िोती िैं। श्रीमाताजी के अनुसार श्रीअरववन्द के प्रभामण्लि को तो भौनतक रूप से कुछ मील दूरू तक मिसूस ककया जा सकता था। ककस प्रकार श्रीअरववन्द अपने आस-पास के भौनतक वातावरण पर भी पूण िननयंत्रण रखते थे ेइसका उदारिण देते िुए श्री माताजी ने एक घटना बताई। एक बार पाजण्चेरी में भारी तूफान आया, इसभलए श्रीअरववन्द के कक्ष की णखिककयााँ आहद बंद करने के भलए जब श्रीमाताक वािाँगईं तो पाती िैकक कक्ष के भीतर तो पूण िनीरवता थी। बिार चल रिे भारी तूफान का भीतर कोई प्रभाव तक निींथा। इस दृष्टांत से साफ िो यि प्रकट िोता िै कक ककस प्रकार आममा की शजकत के द्वारा बिारी प्रकृनत के ननयमों को सवथिा वश में ककया जा सकता िै, उनमें अभीष्ट फेर-बदल ककया जा सकता िै।

इसभलए प्रमयेक के भलए यि संभावना खुली िै कक वि ऐसी चेतना में प्रवेश कर सकता िै, अपनिी एक ववशाल और हदव्य जगत् ्का ननमाणि कर सकता िै, अपनेसंकल्प को बिारी ननयमों पर लागू कर सकता िै और एक श्रे्ष्ठतर और हदव्यतर जीवन जी सकता िै जो स्वयं उसके भलए और जो कोई उसके संपकि में आए उसके भलए साथकि िो।

॥. ववश्वपुरुष-दशनि

दोहरा पक्ष

सञ्जय उिाच

एतच्छ्रुत्िा िचनंकेशिमय कृताञ्जसलिेपमानः ककरीटी ।
नममकृत्िा भूय एिाह कृष्णं ंसगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥३५॥

३५. सञ्जय ने कहाः केशि के ये िचन सजनकर ककरीटी (मकजजटिारी अजुनुज) ने कापूँते हजए हाथ जोि़कर झकजकर प्रणाम ककया और अनतशय भय के कारण गद्गद् कंठ से श्रीकृष्ण से (इस प्रकार) कहा।

जब कक इस दशनि के ववकराल रूप का प्रभाव अभी उस पर छाया िुआ िै तब भी भगवान् ्का कथन समाप्त िोने के बाद अजुनि ने जो प्रथम उद्गार प्रकट ककये वे ममृयु की इस मुखाकृनत तथा इस संिारि के पीछे ववद्यमान एक मिर उद्धारक तथा आश्वासक सद्वस्तु की एक ओजस्वी व्याख्या करते िैं।

अजुनुज उिाच

मथानेहृषीकेश ति प्रकीत्यिा जगत्प्रहृष्यत्यनरजज्यतेच ।
रक्षांसस भीतानन ददशो द्रिस्न्त सिे ेनममयस्न्त च ससद्धसंघाः ।। ३६॥

३६. अजुजनु ने कहाः हे हृषीकेश ! यह उधचत ही है कक आपके नाम का कीतुनु करने ेमें संसार हवुषतु और आनंददत होता है। राक्षस आपसे भयभीत होकर दूरू ददशाओं में भाग रहे हैं और सममत ससद्िों के समजदाय आपको भस्क्तपूवुक नममकार करते हैं।

इन प्रथम उद्गारों से यि संकेत सामने आता िै कक इन भयावि रूपों के पीछे का गूढ़ समय एक पुनः आश्वासन देनेवाला प्रोमसािन और आनंद देनेवाला समय िै। उसमें ऐसा कुछ िै जो जगत् ्के हृदय को भगवान् ्के नाम तथा सामीप्य में िषु तथा आह्लाद अनुभव कराता िै। उस वस्तुका गिन बोध िी िमें काली की घोर आकृनत में माँकी मुखछवव के दशनु कराता िै और यि ािँतक कक संिार के बीच में भी प्राणणयों के सखा की रक्षक भुजाओं, अननष्ट या अशुभ के बीच भी एक शुद्ध ननववकार दयालुता की उपजस्थनत तथा ममृयुके मध्य भी अमृतमव के स्वामी का अनुभव कराता िै।... जजनका नाश ककया जाना िै, अशुभ, अज्ञान, ननशाचर तथा राक्षसी शजकतयाँ, उन्िें छोड़कर और ककसी भी चीज को वास्तव में िरने ेकी आवश्यकता निीं। उग्रदेव रुर की समस्त गनतववधध और किया की प्रवृवि लक्ष्य संभसद्धध, हदव्य ज्योनत और पूणतिा की ओर िोती िै।

यि ध्यान देनेयोग्य बात िै कक रुर की किया केवल अंधतर चीजों और शजकतयों के प्रनत िी िोती िै, उन चीजों के प्रनत जो भागवत् ्काय िमें, भागवत् ्अभभव्यजकत और संभसद्धध में बाधक िोती िैं। उनकी किया ककसी भी सच्ची चीज के ऊपर निीं िोती। साथ िी जब िमारे भीतर के शत्रुओं पर प्रिार िोता िै, िमारी गिरी जमी आदतों पर, इच्छाओं-कामनाओंपर सीधे आघात िोता िै तब अवश्य िी बिी ममांतक पीिा िोती िै परंतु ऐसे में भीतर से सिायता प्रदान करने ेके भलए यि आभास भी अवश्य िोता िै कक भागवत् ्कृपा के द्वारा िी यि किया िो रिी िै और इस आभास के सिारे िी व्यजकत उस पीिा को कुछ-कुछ सिन कर पाता िै। प्रमयेक व्यजकत के भभन्न गठन के अंदर यि आभास भभन्न-भभन्न िो सकता िै। कोई इसे अपनेआदश िके रास्ते में आए व्यवधान के रूप में लेकर सिन कर सकता िै, कोई इसे भागवत् ्कृपा की किया के रूप में देख सकता िै, कोई इसे हदव्य शजकत की किया के रूप में देख सकता िै जो उसके बंधनों को काटकर उसे ऊध्वमुिखी आरोिण पथ पर ले जा रिी िै। यि किया उसी अनुपात में पीिादायक और ववकट प्रतीत िोती िै जजस अनुपात में व्यजकत अपनेननजी सामथ्य िपर भरोसा जमाए रिता िै। यहद वि अपनेननजी सामथ्य िकी बजाय भागवत् ्शजकत के भरोसे रिता िै तो भले ककतना भी ववकट काय,ि ककतनी भी भयंकर किया कयों न िो, व्यजकत सिज िी उसे स्वीकार कर लेता िै और ववचभलत निीं िंोता कयोंकक भागवत् ्शजकत के भलए कोई भी चीज ववकट निीं िो सकती।

कममाच्च ते न नमेरन्महात्मन् ्गरीयसे ब्रह्मणोऽप्याददकत्रे।
अनन्त देवेश जगस्न्नवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ्।। ३७ ।।

३७. हे महात्मन् ्! िे सब आपको क्यों न नममकार करें? क्योंकक आप तो आदद-स्रष्टा और आदद-कत्ता हैं और ब्रह्मा से भी अधिक महान् ्हैं। हे अनंत! हे देवताओं के भी ईश्वर! हे जगत् ्के आश्रय-मथान! आप ही अक्षर ब्रह्म, और आप ही सत्–असत् ्और आप ही जो सत्–असत् ्से परे है वह परम हैं।

कयोंकक, ये परमाममा, ये भगवान् ्केवल बाह्य रूप में िी संसिक िैं, अथिात् ्इन सब सीभमत रूपों को नष्ट करनेवाले काल िैं : पर अपने-आप में वे ेअनंत िैं, वैश्व देवताओं के ईश्वर िैं, जजनके अंदर जगत् ्तथा उसके समस्त कम िसुदृढ़ रूप से अधधजष्ठत िैं.... वे िी सत् ्और असत् ्तथा व्यकत और सदा अव्यकत का... द्वंद्वाममक रूप िैं। परन्तुइन सबसे परे जो िै वि 'तत्'् या 'परम' िैं जो सब पररवतनिशील वस्तुओं को उस काल की, जजसके भलए सब कुछ सदैव वतमिान िै, अखंनिनमयता में धारण करते िैं। वे अपनेअक्षर आममा को उस कालातीत ननमयता में धारण करते िैं जजनके काल और सृजष्ट ननमय-ववस्तारशील रूप िैं।

त्मािददेिः पजरुषः परजाणमत्मिमय विश्मियपरं ननिानम् ्।
वेत्तासस िेद्यंच परं च िाम त्िया ततंविश्मिनन्तरूप ।। ३८।।

३८. आप आदद-देि और परजातन परुजष हो, आप इस संपूणु ुविश्ि के परम विश्राममथान हो; आप ज्ञाता और ज्ञेय और परम-पद हो; हे अनंतरूपिाले! आपसे ही यह संपूणु ुविश्ि विमतृत हजआ है।

वाययुजमोऽस्ननिुरुणः शशाङ्कः प्रजापनतमत्ि प्रविपतामहश्ि।
नमो नममतेऽमत जसहस्रकृत्िः पनजश्च भूयोऽवप नमो नममते ॥ ३९॥

३९. आप िाय,ज यम, अस्नन, िरुण और चन्द्रमा हो; आप जीिों के वपता और ब्रह्मा के भी वपता हो; आपको सहस्रों बार नममकार है और पनजः आप को बारम्बार नममकार है।

नमः परजमतादथ पृष्ठतमते ेनमोऽमतजते सिुतु एि सिु ु।
अनन्तिीयुासमतविक्रममत्िं सिं ंसमाप्नोवष ततोऽसस सिुः ॥ ४०॥

४०. हे सिुात्मन्।् आपको सामने से और पीछे से नममकार है, आपको सब ओर से ही नममकार है; आप अनन्त बलिाले और अनन्त पराक्रम िाले हो, आप सब में व्याप्त और सब कजछ, 'सिु'ु, हो।

यि पुनः दिुराया गया िै कक वे सव िि िैं, वि प्रमयेक और सभी, (सवःि) िैं। वे अनंत 'ववराट' सत् ्िैं और यिााँ ववद्यमान प्रमयेक व्यजकत तथा जो कुछ िै वि िैं, वे एकमात्र शजकत तथा सिा िैं जो िममें से प्रमयेक के अंदर ननहित िै....

सखेनत मत्िा प्रसभं यदक्जतंहे कृष्ण हे यादि हे सखेनत ।
अजानता मदहमानं तिेदं मया प्रमादात्प्रणयेन िावप ।। ४१।।

४१. आपकी इस मदहमा को न जानकर, प्रमाद से अथिा प्रेरेमिश भी आपको किल अपना मानि समत्र और साथी समझतेहजए मनैं ेहठपिूकु जो हे कृष्ण! हे यादि! हे सखा ऐसा जो कजछ भी कहा है;

यच्चािहासाथुमुसत्कृतोऽसस विहारशय्यासनभोजनेषज ।

एकोऽथिाप्यच्युतज तत्समक्षं तत्क्षामये त्ामिहमप्रमेयम् ्।। ४२ ।।

४२. और हे अच्युतज! क्रीि़ा-विहार के अिसर पर, शय्या पर, आसन पर, भोजन के अिसरों पर, अकेले में अथिा सबके साथ में आपका असत्कार ककया है उसके सलये म,ैं हे अप्रमेय! आपसे क्षमा प्राथुना करता हूूँ।

वपतासस लोकमय चराचरमय त्मिमय पूज्यश्च गरुजगुरीयान् ्।
न त्त्सिमोऽमत्यभ्यधिकः कजतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रनतमप्रभि ।। ४३।।

४३. आप इस संपूणु ुचराचर लोक के वपता हो; आप पूजनीय हो और परम पवित्र आदरणीय हो। हे

अतलजनीय बलिाले! तीनों लोकों में कोई भी दूसूरा आपके समान नहींहै तब किर अधिक कैसे हो सकता है?

तममात्प्रणम्य प्रणणिाय कायंप्रसादये त्ामिहमीशमीडयम्।्
वपतिे पत्रजमय सखिे सख्यःज वप्रयः वप्रयायाहुसस दिे सोढजम् ्।। ४४।।

४४. इससलये म ैंआपके समक्ष नतममतक हूूँ और अपनेशरीर से दण्ड के समान चरणों में प्रणाम करते हजए मतनजत करने ेयोनय ईश्रि आपसे कृपा के सलये प्राथुना करता हूूँ। हे दिे, वपता जैसे पत्रज के, समत्र जैसे अपने समत्र के और प्ेरेमी जैसे अपनेप्ेरेमामपद के अपरािों को सहन करता है इसी प्रकार आप मेरे अपरािों को सहन (क्षमा) करें।

अदृष्टपूि ुहृवषतोऽस्मम दृष्ृिा भयेन च प्रव्यधथतं मनो मे ।
तदेि मे दशुयु दिे रूपं प्रसीद दिेश जगस्न्निास ।। ४५।।

४५. जो पहले कभी नहीं ेदेखा गया था आपके उस रूप को देखकर म ैंहवुषतु हो रहा हूूँ परन्त जमेरा मन भय से व्याकजल हो रहा है। हे दिे अपनेउस अन्य रूप को ही मजझेददखलाइये। हे दिेों के प्रभो! जगत् ्के ननिासमथाना प्रसन्न हों।

ककरीदटनं गददनंचक्रहमतसमच्छासम त्ाद्रिष्टजमहं तथैि ।
तेनैि रूपेण चतभुजजेन सहस्रबाहो भि विश्िमूिते ।। ४६।।

४६. म ैंआपको पहले के ही समान मकजजटिारी, गदिािारी, चक्रपाणण रूप में देखना चाहता हूूँ। हे सहस्र भजिािाले! हे विश्िरूपिारी! अपनेउस चतभुजनुज रूप को ही िारण कीस्जये।

[अब] यि ववचारधारा... मनुष्य के अन्दर ववद्यमान इस एक मिान् ्देव की उपजस्थनत की ओर मुि जाती िै। यिााँ ववश्वरूप दशनि के रष्टा की आममा को तीन िभमक सुझावों के द्वारा समझाया गया िै। सवप्रिथम, उसके अंदर यि बोध िो जाता िै कक 'मानव' के इस पुत्र की दिे में....ममय िमनुष्य की आकृनत में सदा िी कोई मिान्,् ननगूढ़ तथा अमयंत सारयुकत तत्त्व, परमेश्वर, अवतार, ववराट् शजकत, एकमेव सद्वस्तु, परमोच्च परामपर पुरुष ननहित था। इस गुह्य देवमव के प्रनत, जजसमें मनुष्य तथा उसकी जानत के सुदीघ िववकास का समस्त मम ि

नछपा प़िा ि◌ै और जजससे संपूण ि◌जगत्–ि◌सा अपनी अकथनीय महिमा से युकत आंतररक अथ ि◌प्राप्त करती ि◌ै, वि अंधा ि◌ी रि◌ा था। केवल अब ि◌ी वि व्यजष्टभूत ढाचेँ में ववद्यमान ववश्वाममा को, मानवता के रूप में मूनतमंति भगवान् ◌्को तथा प्रकृनत के इस प्रतीक में परामपर अंतवासिी को देखता ि◌ै।... कयोंकक, वि मिान् ◌्यथाथ ि◌सिा सम तथा अनंत ि◌ै और व्यजष्ट तथा ववश्व दोनों में समान ि◌ी ि◌ै। सब से पिले उसे अपना अंधापन, इन भगवान् ◌्के प्रनत ऐसा व्यविार कक वे मात्र बाह्य मनुष्य ि◌ैं, इनके साथ ि◌ोनेवाले केवल मानभसक तथा भौनतक संबंध को ि◌ी देखना वि◌ाँउपजस्थत मिामहिम देव के प्रनत एक पाप प्रतीत ि◌ोता ि◌ै। कयोंकक, जजन पुरुष को वि कृष्ण, यादव, सखा किकर पुकारता था ये अपररमेय-महिमामय, अप्रनतम-प्रभावशाली, सब में अवजस्थत एकमेव परमाममा ि◌ी थे जजनकी ये सब प्रजाएँ ि◌ैं...।

परंतु दूसूरा सुझाव यि ि◌ै कक मानवीय अभभव्यजकत तथा मानवीय संबंध के रूप में जो कुछ मूनतमंति था वि भी यथाथतिा ि◌ै जो ववराट्पुरुषदशनि के भयंकर स्वरूप के साथ रिती ि◌ै तथा उसकी भयंकरता को ि◌मारे मन के भलए कम कर देती ि◌ै। ववश्वातीत तथा वैश्व पिलुओं को भी देखना ि◌ोगा, कयोंकक ऐसे साक्षामकार के त्रबना मानवता की सीमाओंको पार निीं ककया जा सकता। उस एकीकारक एकमव में सब कुछ को समाववष्ट करना ि◌ोगा। परंतु केवल अपने-आप में वि एकमव ववश्वातीत आममा और अपरा प्रकृनत के अंदर बद्ध और नघरी ि◌ुई इस अंतराममा के बीच ब़िी भारी खाई बना देगा। अपनेपूण ि◌वैभव में अनंत उपजस्थनत या सिा सीभमत, व्यजष्टरूप तथा प्रकृनतगत मनुष्य की पृथृक् क्षुरता के भलए अतीव अभभभूतकारी या ववह्वल करनेवाली ि◌ोगी। एक ऐसी संयोजक क़िी की आवश्यकता ि◌ै जजसके द्वारा वि इन ववराट् परमेश्वर को अपनी वैयजकतक एवं प्राकृनतक सिा में, अपने समीप जस्थत देख सके, केवल सवशिजकतमान् ◌्रूप में ि◌ी निीं जो ववश्वव्यापी अपररमेय शजकत के द्वारा उसकी संपूण ि◌सिा को ननयंत्रत्रत करते ि◌ैं अवपतु एक घननष्ठ वैयजकतक संबंध के द्वारा उसे आश्रय देने तथा एकमव की ओर उठा ले जानेके भलए मानव-रूप में भी मूनतमंति ि◌ैं। जजस पूजा-भजकत के द्वारा सीभमत प्राणी अनंत के सामने नमन करता ि◌ै वि उस समय अपना समस्त माधुय ि◌प्राप्त कर लेती ि◌ै तथा सख्य और एकमव के घननष्ठतम समय के ननकट पिुँच जाती ि◌ै जब वि गिन ि◌ोकर उस अधधक घननष्ठ उपासना का रूप धारण कर लेती ि◌ै जो ईश्वर के वपतृभाव एवं सख्य-भाव में तथा परमाममा और ि◌मारी मानव आममा एवं ◌ंप्रकृनत के बीच ि◌ोनेवाले आकषकि प्ेरेम के भाव में ननवास करती ि◌ै। कयोंकक, भगवान् ◌्मानव-आममा और दिे में वास करते ि◌ैं; वे मानव-मन तथा आकार को अपनेचारों ओर खोलकर वस्त्र की भानँत धारण करते ि◌ैं। वे ◌ेउन मानवीय संबंधों को ग्रिण करते ि◌ैं जजन्िेंआममा ममय ि◌शरीर में स्थावपत करती ि◌ै और वेसंबंध ईश्वर में अपना ननजी पूणतिम अथ ि◌एवं मिीम अनुभूनत और चररताथतिा प्राप्त करते ि◌ैं। यि वैष्णव भजकत ि◌ै जजसका बीज यिाँ गीता के शब्दों में ननहित ि◌ैपर जजसने आगे चलकर अधधक गंभीर, उल्लासमय और अथपूिण ि◌ववस्तार प्राप्त कर भलया ि◌ै।

और इस दूसूरे सुझाव से तुरंत ि◌ी एक तीसरा सुझाव उमपन्न ि◌ोता ि◌ै। ववश्वातीत और ववश्वव्यापी पुरुष का रूप मुकत आममा की सामथ्य ि◌के भलए एक मिान्,◌् उमसािप्रद तथा शजकतदायक रूप ि◌ै, शजकत का स्रोत ि◌ै, सम तथा उदिा करनेवाला और सबका औधचमय भसद्ध करनेवाला हदव्य दशनि ि◌ै; परंतु सामान्य मनुष्य के भलए यि ववह्वल कर देनेवाला, भयावि तथा अग्राह्य ि◌ै। और जो समय आश्वासन या ननभयिता प्रदान करता ि◌ै, उसका

ज्ञान िोने पर भी, सवसंिाररक काल के भीषण तथा शजकतशाली रूप के और अगमय संकल्प तथा ववस्तृत् अथाि गिन किया के पीछे, कहठनाई से िी समझ में आता िै। ककन्तु हदव्य नारायण का एक मध्यस्थता करनेवाला कृपापूण िरूप भी िै, उन नारायण का जो मनुष्य के इतनेननकट तथा उसके अंदर ववद्यमान ईश्वर िैं, युद्ध और यात्रा के सारथी िैं, सियक-शजकत की चार भुजाओंसे युकत िैं, परमेश्वर के मानवीय प्रतीक िैं, असंख्यों भुजाओं युकत ये ववराट् पुरुष निीं। इस मध्यस्थता करनेवाले रूप को िी िमें ननमय-ननरंतर अपनेअवलंब के रूप में अपने सममुख रखना िोगा। कयोंकक, भगवान् ्का यि नारायण-रूप िी आश्वासनदायी या ननभयिकारी समय का प्रतीक िै।

अजुनि की प्राथनिा के उिर में परमेश्वर अपना सामान्य नारायण-रूप, 'स्वकं रूपम्'् प्रसाद, पे्रम, माधुय ि और सौंदय िसे संपन्न अभीष्ट रूप पुनः धारण करते िैं, परंतु, उससे पिले वे उस दूसूरे शजकतशाली ववराट् रूप की, जजसे वे नछपानेवाले िी िैं, अभमत महिमा उद्घोवषत करते िैं।

यहद यि ववश्वरूपदशनि प्राप्त न िो तो परमाममा के बारे में िमारी धारणाएँ, उनके ववषय में िमारे सीभमत मानभसक दृजष्टकोण टूटते निीं। मानभसक रूप से िम ककतने भी उदाि धचत्रण या पररकल्पनाएँ कर लें कक परमाममा असीम िैं, ववशाल िैं, आहद-आहद परंतु इन सब से परमाममा के ववषय में िमारा मानभसक दायरा बिुत िी सीभमत और संकुधचत बना रिता िै और त्रबना वि साक्षामकार िुए िम इस पूण िभगवाि के दशनि निीं ्कर सकते। संभव िै कक व्यजकत को ककन्िीं दैवताओं आहद के अनुभव या दशनि प्राप्त िो चुके िों, परंतुएक समग्र भगवाि का दशनि एक सवथिा भभन्न चीज िै। इस दशनि में भगवान् ्के व्यजष्टगत, वैजश्वक और परामपर, सभी रूपों का समग्रता में दशनि प्राप्त िो जाता िै। इसभलए जब अजुनि को अपनी सीभमतता का भान िोता िै तब वि भगवान् ्से प्राथनिा करता िै कक उसे उनका वि सच्चा रूप हदखाया जाए। केवल उनकी कृपा से िी वि दशनि प्राप्त िो सकता िै अन्यथा निीं।

दूसूरे, यहद मनुष्य के अंदर अपनी सीभमतता से ननकलकर भगवान् ्के उस ववराट् रूप को देखने का कोई उपाय न िोता तब तो व्यजकत उनके उस रूप को देखकर भयभीत िी िोता। इसी दूरी को कम करने के भलए, एक संयोजक कड़ी प्रदान करने ्के भलए परमाममा मनुष्य के साथ सभी प्रकार के संबंधों के माग िखोल देते िैं। और जजस भी भाव से व्यजकत उनके पास जाता िै वे उसी रूप में उसके साथ संबंध स्थावपत कर लेते िैं। कोई उन्िें अपने माभलक के रूप में मानता िै तो कोई पुत्र के रूप में, कोई भमत्र के रूप में मानता िै तो अन्य दूसूरा ककसी अन्य रूप में। इस प्रकार भगवान् ्ने संपकि और संबंध साधनेके अनेकानेक माग िखोल हदये िैं जजनके द्वारा मनुष्य उनके पास पिुँच सकता िै, उनसे संबंध स्थावपत कर सकता िै। उन संबंधों के माध्यम से िमें परमाममा का कम या अधधक आभास प्राप्त िोता िै कयोंकक वास्तव में तो यि परमामम सिा िमारे स्वयं के अंदर िी अंतननहिित िै। इसीभलए िम इन सब संबंधों के माध्यम से उनके संपकि में आ सकते िैं। और जब वि दशनि प्राप्त िोता िै तब वि उन संबंधों की सभी सीभमतताएँ नष्ट कर देता िै। और चूंकक वि तत्त्व िमारे अपने अंदर भी ननहित िोता िै इसभलए िम उसे सिन भी कर पाते िैं अन्यथा तो उस ववराट् रूप को सिन निीं ्कर सकते थे।

तीसरे, ववरारूप के वणनि में िी भगवान् ्चतुभुजि रूप से अपने नारायण रूप को धारण करते िैं। प्रतीकरूप में चार िाथ भगवान् ्के अनेकववध रूप से सियता करने के स्वभाव को दशाति िैं। भगवान् ्का यि सियक रूप तो जो कोई भी उनकी ओर मुिता िै उसे पिले िी मिसूस िो जाता िै कक ककस प्रकार समय-समय पर भगवान् ् सियता करते िैं। और इसी की सियता से व्यजकत भगवान् ्के साथ संबंध स्थावपत करता िै। जब व्यजकत भगवान् ्से कोई प्राथनिा करता िै, उनसे कुछ मागँ करता िै और जब वि पूण ििो जाती िै तब उसे उनकी सिा में ववश्वास िो जाता िै और इस प्रकार धीरे-धीरे उसका उनसे संबंध स्थावपत िो जाता िै। अतः नारायण के रूप में यि परमामा का सियक स्वरूप िै।

श्रीभगिान् ्उिाच मया प्रसन्नेन तिाजुनुेजदं रूपं ंपरं दसुशतुमात्मयोगात् ्।
तेजोमयंविश्मिनन्तमाद्यं यन्मे त्दिन्येन न दृष्टपूिुम् ्।। ४७।।

४७. श्रीभगिान् ्ने कहा : हे अजुनुज! मेरे अनग्रजह से जो तूअब देख रहा है िह मेरा परम रूप है, मेरा ज्योनतमुयु शस्क्तिाला, विश्ित्मिक, आदद, अनन्त रूप है स्जसे मनष्जयों में तेरे अनतररक्त अन्य ककसी ने आज तक नहीं देखा है। यह मनैं ेअपनेआत्म-योग से तझुेददखाया है।

कयोंकक, यि स्वयं मेरी आममा एवं ंअध्याममसिामात्र का रूप िै, यि लौककक जीवन में ननजशजकत से मूनतमिान् ्िुए साक्षात् ्पुरुषिोम िी िैं और मेरे साथ पूण िरूप से योगयुकत जीव इसे स्नायववक अंगों के ककसी प्रकार के कंपन या मन के ककसी भी भ्रम एवं भ्रांनत के त्रबना देखता िै, कयोंकक वि इसकी बाह्य आकृनत में ववद्यमान भीषण तथा ववह्वल कर देनेवाले तत्त्व का िी निीं ंअवपतुइसके उच्च तथा अभयप्रद अथ िको भी जानता िै।

न िेदयज्ञाध्ययनैनु ुदानैनु ुच कक्रयासभनु ुतपोसभरुग्रैः ।
एिंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टंज त्दिन्येन कजरुप्रिीर ।। ४८।।

४८. हे कजरुश्रेष्ठ अजुनुजा न िेदों के अध्ययन से, न यज्ञों के अनष्जठान से, न दान-उपकारों से या कक्रया-अनष्जठानों से या कठोर तपों से मेरा यह रूप इस लोक में तेरे अनतररक्त ककसी दूसूरे के द्िारा देखा जा सकता है।

मा ते व्यथा मा च विमूढभािो दृष्ट्िा रूपं ंघोरमीदृङ्ममेदम् ्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पनजमत्िंतदेि मे रूपसमदं प्रपश्य ।। ४९।।

४९. मेरे इस भयानक रूप को देखकर तू भयभीत न हो और तू संभ्रसमत न हो। भय को दूरू हटाकर प्रसन्नधचत्त होकर मेरे इस दूसूरे रूप को तू किर देख।

सञ्जय उिाच

इत्यजुनुंज ◌िासदेजिमतथोक्ता मिकं रूपं दशुयुामास भूयः ।
आश्ासियामास च भीतमेनंभूत्ा पिनजः सौम्यिपमुजहुात्मा ।। ५० ।।

५०. सञ्जय ने कहाः अजुनुज को ऐसा कहकर ◌िासदेजि ने पजनः अपने नारायण रूप को प्रकट ककया; अपनेसौम्य अथिा कृपा रूप को ◌िारण करके महात्मन् ◌्कृष्ण ने भयभीत हजए अजुनुज को सान्त्ििा दी।

अजुनुज उिाच दृष्ेदं मानषंज रूपं ति सौम्यं ◌ंजनादुन ।
इदानीमस्मम संिृत्तः सचेताः प्रकृनतं ◌ंगतः ।। ५१।।

५१. अजुजनु ने कहाः हे जनादुन! आपके इस सौम्य मानि रूप को पनजः देखकर अब म ◌ैंमिमथधचत्त, शान्तधचत्त हो गया हूँ और अपनी मिाभाविक स्मथनत को प्राप्त हो गया हूँ।

श्रीभगिान् ◌्उिाच सदजदुजशुसुमदं रूपंदृष्टिानसस यन्मम ।
दिा अप्यमय रूपमय ननत्यं ◌ंदशुनुकाङ्क्षणः ।। ५२ ।।

५२. श्रीभगिान् ◌्ने कहाः मेरे स्जस महान् ◌्रूप को तूने ◌ेदेखा है इसका देखा जाना अत्यंत कदठन है; यहाँ तक कक दिेता भी सदा इस रूप के दशुनु की इच्छा करते रहतेहैं।

नाहं ◌िेदैनु ◌्तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एिंविो द्रष्टंज दृष्टिानसस मांयथा ।। ५३॥

५३. स्जस रूप में मझेज ◌ेतूने ◌ेदेखा है उस रूप में मझेज ◌ेन ◌िेदों के अध्ययन से, न तप के द्ारा, न दान से और न यज्ञों के द्ारा देखा जा सकता है।

भक्त्या त्िनन्यया शक्य अहमेिंविोऽजुनुज ।
ज्ञातं ◌ंजद्रष्टंज च तत्त्िेन प्रिेष्टंज च परन्तप ।। ५४।।

[illegible] मझेज
पे्रेम करती है, किल उसी के द्ारा म ◌ैंइस रूप में देखा और जाना जा सकता हूँ और यहाँतक कक प्रिेश भी ककया जा सकता हूँ।

तब भला इस ववराट् रूप की वि ववलक्षणता कया ◌ै जजसके कारण यि संज्ञान से या पिचान पाने से इतना ऊपर उठा ◌ुआ ◌ै कक मानव-ज्ञान का संपूण ◌िसामान्य प्रयास और यिा ◌ाँतक कक उसके आध्याजममक पुरुषाथ ◌ि का अंतरतम तप भी, त्रबना सियता के, इसके दशनि लाभ करने के भलये पयाप्ति निीं ◌ै? वि यि ◌ै कक अन्य साधनों से मनुष्य एकमेव सत् ◌्के इस या उस ऐकांनतक पक्ष को ◌ी, उस 'एकं सत्'◌् के व्यजकतगत, ववश्वगत या ववश्वातीत रूपों या पक्षों को ◌ी जान सकता ◌ै, पर भगवान् ◌्के समस्त रूपों के इस मिमि समन्वयकारी एकमव

को नीिंजान सकता जजसमें एक िी साथ और एक िी दशनि में सब कुछ अभभव्यकत, अनतिांत और संभसद्ध रिता िै। कयोंकक यिीाँववश्वातीत, ववश्वव्यापी और व्यजकतगत ईश्वर, आममा और प्रकृनत, अनंत और सीभमत, देश, काल और कालातीतता, सिा और संभूनत, जो कुछ भी िम परमेश्वर के बारे में सोचनेका यमन कर सकते िैं तथा जो कुछ उनके बारे में जानते िैं वि सब, कफर चािे वि ननरपेक्ष सिा के ववषय में िो या व्यकत सिा के, एक अननवचिनीय एकमव में अद्भुत ढंग से प्रकाभशत िो जाता िै। यि दशनि केवल अनन्य भजकत एवं ंप्रेम तथा उस घननष्ठ एकता के द्वारा प्राप्त िो सकते िैं जो कम ि और ज्ञान की पूणतिा का सवोच्च भशखर िोती िै। तब पुरुषोिम
के इस परमोच्च रूप को जानना तथा देखना और इसमें प्रवेश करना तथा इसके साथ एकमय िोना संभव िो जाता ि,ै और गीता अपनेयोग का यिी लक्ष्य िमारे सामने प्रस्तुत करती िै। एक परम चेतना िै जजसके द्वारा परामपर की महिमा में प्रवेश करना तथा उनके अंदर अक्षर आममा और समस्त क्षर भाव को धारण करना संभव िै, - सबके साथ एकीभूत और कफर भी सबसे ऊपर िोना, जगत् ्को अनतिांत कर जाना और कफर भी ववश्वगत ईश्वर तथा ववश्वातीत ईश्वर दोनों की संपूण िप्रकृनत का एक साथ आभलंगंन करना संभव िै। ननश्चय िी अपनेमन और शरीर की कैद में बद्ध सीभमत मनुष्य के भलए ऐसा करना कहठन िै: ककंतु, भगवान् ्किितेिैं...

मत्कमुकुन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गिस् ुजतुः ।
ननवैिरः सिुभूतेष जयः स मामेनत पाण्डि ।। ५५।।

---

* सभी जीव उस परम सिा के द्वारा अजस्तमवमान िैं; सभी पदाथ िईश्वर की आकृनतया ंिाँिैं; समस्त ववचार, कम,ि भाव और प्रेम उन्िींसे उद्भतू िोते िैं और उन्िीं िंमें लौट जातेिैं, उनके सभी पररणामों के वे िी उद्गम, आश्रय और गुप्त लक्ष्य िैं। इन्िीं दैवाधधदेव, इन्िीं िंपरम सिा के प्रनत पूणयिोग की भजकत उाँिलेी जाएगी और ऊपर उठेगी। परामपर रूप में यि उन्िें पूण िऐकय के िषावेश में ढूाँढ़ेगी; अपने ववश्वमय रूप में यि उन्िें गुणों और सभी रूपों और सवभिूतों में ववश्वव्यापी आनन्द और प्रेम के साथ ढूाँढ़ेगी, अपने वैयजकतक रूप में यि उनके साथ वे सभी मानवीय समबन्ध स्थावपत करेगी जजन्िें प्रेम व्यजकत व व्यजकत के बीच उमपन्न करता िै।

...मनन और दशनि करना, सभी वस्तुओंमें अनवरत उन्िीं िंका धचन्तन और सदा-सवदिा और सवत्रि उन्िींके दशनि करना इस भजकतमाग िका अननवाय िअंग िै। जब िम भौनतक प्रकृनत के पदाथों पर दृजष्टपात करें तो उनके अन्दर िमें अपने हदव्य वप्रयतम को देखना िोगा; जब िम मनुष्यों और जीवों को देखें तो उनके अन्दर िमें उन्िीं िंको देखना िोगा और उनके साथ अपने समबन्ध में िमें यि देखना िोगा कक िम उन्िीं िंके आकारों के साथ समबन्ध स्थावपत कर रिे िैं; जब ज़ि जगत् ्की सीमा लाघाँकर िम अन्य स्तरों की सिाओं ंका ज्ञान लाभ करें या उनसे समबन्ध स्थावपत करें तब भी िमें यिी ववचार अथवा दृजष्ट अपनेमनों के प्रनत प्रमयक्ष बनानी िोगी।... सभी देवताओं ंमें िमें इन्िीं एक ईश्वर को देखना िोगा जजन्िें िम अपने हृदय और अपनी समपूण िसिा से पूजते िैं; वे उन्िींके देवमव के आकार िैं। अपने आध्याजममक आभलंगंन को इस प्रकार ववस्ताररत करते िुए िम एक ऐसे त्रबन्दु ुपर जा पिुाँचते िैं जिााँसब कुछ विी िोतेिैं और इस चेतना का आनन्द िमारे भलये संसार को देखने का िमारा सामान्य अटूट ढंग बन जाता िै।

५५. हे पाण्डि! जो मनष्जय मेरे कायु ्करता है और मजझे ेही परम लक्ष्य मीकार करता है, मेरी भस्क्त करता है, आसस्क्त से मक्जत है, सममत भूतों के प्रनत ैरभाि से रदहत है िह मनष्जय मजझे ेप्राप्त होता है।

दूसूरे शब्दों में, ननमन प्रकृनत से ऊपर उठना, समस्त प्राणणयों से एकता, ववश्वव्यापी ईश्वर तथा परामपर भाव के साथ एकमव, कमों में िमारी इच्छा का भगवान् ्की इच्छा के साथ एकमव, एकमेव के भलए तथा सब में जस्थत ईश्वर के भलए परम पे्रम, - यिी उस चरम-परम आध्याजममक आमम-अनतिमण तथा उस अकल्पनीय रूपांतर का माग िै।

• जो आममा अपने-आप को पूण िरूप से ईश्वर को दे देती िै, उसे ईश्वर भी अपने-आप को पूण िरूप से दे देते िैं। केवल विी जो अपनी समपूण िप्रकृनत को अवपति कर देता िै, आममा को प्राप्त करता िै। केवल विी जो सब कुछ दे सकता िै, सवत्रि ववश्वमय भगवान् ्का रसास्वादन कर सकता िै। केवल एक परम् ्आममोमसग िी परम् ्को प्राप्त करता िै। िम जो कुछ भी िैं उस सब को यज्ञ द्वारा ऊपर उठा ले जाने से िी िम सवोच्च देव को साकार रूप में प्रकट करनेऔर यिाँ परामपर आममा की अन्तयामिी चेतना में ननवास करने में समथ िो सकते िैं... उस एकमेव देव के प्रनत, जो एक साथ िी िमारी अन्तयामिी आममा एवंचारों ओर से पररवेजष्टत करने वाला सवं िै, तथा इस या अन्य ककसी भी अभभव्यजकत से परे परम् ्सद्वस्तु िै, और गुप्तरूपसेएक साथ ये सभीचीजें िैजो सवत्रि ननगूढ़ अन्तयामिी परामपरतिै।

प्रश्न : भजकत कृपासाध्य िै या पुरुषाथसिाध्य िै?

उत्तर : वास्तव में इनमें कोई ववरोधाभास नििीं। कयोंकक िम कि सकते िैं कक इस ओर पुरुषाथ िभी िम भगवान् ्की कृपा के त्रबना निीं कर सकते। कृपा का अपना िी एक ववधान िोता िै। और सच किें तो पाधथवि जगत् ्में अंध-शजकतयों का जजस प्रकार का आतंक िै उसमें एक कदम भी सकुशल चल पाना असीम कृपा का िी पररणाम िै अन्यथा ववरोधी शजकतयाँ तो जीवन को िी समूल नष्ट कर देना चािती िैं ताकक ककसी प्रकार का कोई ऊध्वमिुखी आरोिण िो िी न पाए। इसभलए िम कभी भी इस बात का पूरा अंदाजा लगा िी निीं सकते कक ककस िद तक कृपा िमारे भलये काय िकर रिी िै। यि तो िुई कृपा और पुरुषाथ िकी बात।

अब, यहद िमारे मन में भगवान् ्के दशनि की मागँ उठती िै तो िम दशनि के उतने अधधकारी निीं रिते। ज्यों िी ककसी प्रकार की कोई मागँ उठती िै वि िमें अनधधकारी बना देती िै कयोंकक सच्ची भजकत में ककसी प्रकार की कोई मागँ निीं िोती। अठारिवें अध्याय में इसे अधधक स्पष्ट रूप से ननरूवपत ककया जाएगा। सामान्यतः व्यजकत यिी समझेगा कक जब पूण िभजकत के प्रभाव से अजुनि को ववरारूप के दशनि प्राप्त िो जाते िैं तो कफर आगे शेष कया रि जाता िै। परंतु ज्यों-ज्यों गीता अपनेववकासिम में आगे बढ़ती िै मयों िी मयों अधधकाधधक गूढ़ तत्त्वों और रिस्यों को उद्घाहटत करती जाती िै।

इस प्रकार नयारहिूँ अध्याय 'विश्रूपदशुनुयोग' समाप्त होता है।

बारिवा ॉँअध्याय

मागि और भकत

गीता के ग्यारिवें अध्याय में उसकी भशक्षा का मूल उद्देश्य संभसद्ध ककया जा चुका ि ै और ककसी सीमा तक उसे पूणताि तक भी लाया गया िै। जगत् ्के भलए तथा उन परमाममा के साथ एक िोकर, जो इस जगत् ्में और इसके सब प्राणणयों में ननवास करते िैं तथा जजनके अंदर इस जगत् ्का समस्त कायि–व्यविार िोता िै, हदव्य कम ि करने ेका आदेश हदया जा चुका ि ै और ववभूनत द्वारा उसे स्वीकार भी ककया जा चुका िै। भशष्य को उसके सामान्य मनुष्य के पुराने ेभाव से, उसके अज्ञान के मापदंडों, प्रेरक-भावों, दृजष्टकोण तथा अिंकारमय चेतना से तथा उस सबसे दूरू िटा भलया गया ि ै जजसने उसके आध्याजममक संकटकाल में अंततः उसका साथ छोड़ हदया था। ठीक विी काय िजजसे उस पूव िआधार पर उसनेमयाग हदया था, विी घोर कम,ि विी भयानक संघष िअब एक नये आंतररक आधार पर उसे स्वीकार तथा ग्रिण करा हदया गया िै।.... परंतुइस मिान् ्आध्याजममक पररवतनि के संपूण िअथ िको प्रकाभशत करने के भलए अभी कुछ और भी किना बाकी िै। बारिवाँ अध्याय इस शेषे बचे ेज्ञान की ओर ले जाता ि ै और उसके बाद के अंनतम छः अध्याय इसे एक मिान् ्और चरम ननष्कष ितक ववकभसत कर देते िैं। यि बात, जजसे किना अभी बाकी िै, आध्याजममक मोक्ष के संबंध में वतमिान वेदांनतक ववचार तथा उस ववशालतर सवग्रिािी स्वतंत्रता के पारस्पररक भेद पर अवलंत्रबत ि ै जजसे गीता की भशक्षा आममा के सममुख खोल देती िै। अब गीता सीधे उस भेद की ओर मुड़ती िै।

यिा ॉँजजस ववषय को गीता सवप्रिथम स्पष्ट करेगी वि भगवान् ्की ओर जानेवाले दो मागों के ववषय में ैं। एक माग िै पारंपररक साधना आहद का माग,ि योगी-तपजस्वयों तथा ज्ञाननयों का माग िजजसमें व्यजकत को ननज सामथ्य िके आधार पर, ककन्िींसाधना पद्धनतयों का कठोरतापूवकि पालन करते िुए चलना िोता िै जजसमें व्यजकत जंगल में जाकर ध्यान आहद करता िै, समाधध लगाता िै, और दूसूरा माग िै भगवान् ्की भजकत का माग ि जजसमें सारे कम िभगवान् ्के ननभमि ककये जाते िैं। इन दोनों िी मागों में श्रेेष्ठ कौनसा िै? इस ववषय में गीता का उिर त्रबल्कुल स्पष्ट और ननणायिक िै। गीता भजकत को िी ननवववाद रूप से श्रेेष्ठ बताती िै। िालाकाँक ज्ञान, तपस्या आहद के माग िभी भगवान् ्की ओर िी ले जाते िैं परंतुउनका अभ्यास बिुत दुषुकर भी िै और साथ िी उनसे जो फल प्राप्त िोता िै वि भजकत से प्राप्त िोने ेवाले फल की तुलना में ननमनतर भी िै। भजकत का माग िसीधे िी भगवान् ्की ओर ले जाता िै और अन्य मागों से अधधक फलप्रद भी िै।

गीता का मोक्ष एकमेव के भीतर िोनेवाले लय में आममा की वैयजकतक सिा का आमम-ववस्मृनतपूण ि ववलोए निीं िै, 'सायुज्य मुजकत' निीं; वि एक साथ िी सब प्रकार का भमलन िै।... परंपरागत ज्ञानयोग का लक्ष्य एकमेव अनंत सत् ्में अगाध लय अथात् ि्'सायुज्य' िै; वि केवल उसी को संपूण िमोक्ष मानता िै। भजकतयोग शाश्वत रूप से उसी में ननवास या उससे ननकटता, 'सालोकय, सामीप्य', को िी मिर मोक्ष मानता िै। कमियोग सिा तथा प्रकृनत की शजकत में एकमव, 'सादृश्य', की ओर ले जाता िै : परंतुगीता अपनी उदार समग्रता में इन सबको समा लेती िै और सभी को एक मिम एवं समृद्धतम हदव्य स्वतंत्रता तथा पूणति में एकीभूत कर देती ै...

यि स्मरण रखना िोगा कक ननगुणि अक्षर पुरुष तथा उन परमाममा के बीच ववभेद जो एक साथ ननवैयैजकतक सत् ्भी िैं और हदव्य व्यजकत भी और इन दोनों से अधधक भी बिुत कुछ िैं, - यि मित्त्वपूण िववभेद, जो बाद के अध्यायों में तथा उस हदव्य "अिम्"् में सूधचत ककया गया िै जजसका श्रीकृष्ण अिम्,् माम् ्शब्दों द्वारा बारमबार उल्लेख कर चुके िैं, अभी तक सवथिा स्पष्ट और सुननजश्चत रूप में निीं बतलाया गया िै।...इस भेद के ववषय में अजुनि से िी प्रश्न करवाया जाता िै।

अजुनुज उिाच

एिं ्सततयक्जता ये भक्तामत्िां पयुपुजासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषांके योगवित्तमाः ।। १।।

१. अजुजनु ने कहाः इस प्रकार ननरंतर यक्जत रहतेहजए जो भक्त आपको खोजते हैं और जो अव्यक्त अक्षरब्रह्म को खोजते हैं, इनमें से ककन्हें योग का महत्तर ज्ञान है?

सार-रूप में वि यि किता िै कक आप सभी भूतों के परम मूल और उद्गम िैं, सब वस्तुओंके भीतर अंतयामिी उपजस्थनत िैं, अपनेरूपों के द्वारा ववश्व में व्याप्त शजकत िैं, एक ऐसे 'व्यजकत' िैं जो अपनी ववभूनतयों

में, प्राणणयों में, तथा प्रकृनत में अभभव्यकत ि ैं और अपनेमिान् ्ववश्व-योग के द्वारा जगत् ्में तथा िमारे हृदयों में कमों के अधीश्वर के रूप में ववराजमान िैं। इस रूप में मुझे ेअपनी सारी सिा, चेतना, ववचारों, भावनाओं और कायों में आपको जानना, पूजना और अपने-आपको आपके साथ युकत 'सतत-युकत' करना िै। पर तब इन अक्षर का कया िोगा जो कभी व्यकत निींिोते, कभी कोई रूप धारण निीं करते, समस्त कम िसे दूरू तथा उससे पृथृक् रिते ैं, जगत् ्के साथ अथवा इसकी ककसी भी वस्तु के साथ ककसी प्रकार का कोई समबन्च स्थावपत निींकरते, ननमय शांत, एक, ननगुणि और अचल बने रिते िैं? सभी प्रचभलत मतों के अनुसार यि शाश्वत आममा िमिर तत्त्व ैं और अभभव्यजकतगत परमेश्वर एक कननष्ठतर रूप िै: 'अव्यकत' िी शाश्वत आममा िैं, 'व्यकत' निीं। तब भला जो योग अभभव्यजकत को स्वीकार करता िै, एक िीनतर वस्तु को अंगीकार करता िै, वि कफर भी एक अधधक मिान् ्योग-ज्ञान कैसे िो सकता िै? इस प्रश्न का श्रीकृष्ण जोरदार ननणिायकता के साथ उिर देते िैं।

श्रीभगिान् ्उिाच

मय्यािेश्य मनो ये मांननत्ययजक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतामते मे यक्जततमा मताः ।। २।।

२. श्रीभगिान् ्ने कहाः जो लोग अपनेमन को मझजमें प्रनतस्ष्ठत करते हैं और परम श्रद्धा से यक्जत, ननरंतर मेरे साथ यक्जत रहते हजए मेरी उपासना करते हैं, उन्हें म ैंसिािधिक पूणुता से योग में यक्जत मानता हूूँ।

परम श्रद्धा वि िै जो सबके अन्दर ईश्वर को देखती िै और उसकी दृजष्ट में अभभव्यजकत तथा अनभभव्यजकत एक िी परमेश्वर िैं। पूण ियुकतभाव वि िै जो प्रमयेक क्षण, प्रमयेक कम िमें तथा संपूणू िप्रकृनत में भगवान् ्से भेंट करता िै। परन्तुपरमेश्वर किते ैं कक जो एक दुषु्कर आरोिण के द्वारा अननदेश्य अव्यकत अक्षर की िी खोज करते िैं वे ेभी मुझे िी प्राप्त िोते िैं। कयोंकक, वे अपने लक्ष्य में गलत निीं, परन्तु वे एक अधधक कहठन तथा कम पूण िऔर कम भसद्ध माग िका अनुसरण करते िैं।

अतः यिाँ ब्रि िी ननणायिक रूप में भगवान् ्ने उपासना करने वाले भकत की श्रेेष्ठता घोवषत कर दी िै। भले िी अननदेश्य अक्षर की खोज का माग िककन्िींको बुित िी गंभीर साधनामय माग िप्रतीत िोता िो और भजकतमाग िकम गंभीर और अपररपकव प्रकृनत वाले लोगों का माग िप्रतीत िोता िो तब भी सच्चाई यि िै कक अक्षर की प्राजप्त का माग िदुषु्कर िोनेके कारण िी कोई अधधक फलदायक निींबन जाता। यि माग िअधधक दुषु्कर भी िै और भजकतमाग िकी अपेक्षा कम पूण िऔर कम भसद्ध माग ििै। साथ िी, केवल उन्िीं िोडी कर जजनकी प्रकृनत बनी hat 5 अक्षर की खोज के अनुकूल िै, सामान्य मनुष्य के भलए तो भजकत माग िhat BT अधधक सुगम िै जबकक दूसूरा माग िउनके भलए अप्राकृनतक िै। इसीभलए भजकत का माग िसवशेे्रष्ठ िै।

ये त्वक्षिरमननदेश्यमव्यक्तंपयुपुजासते ।
सिुत्रगमधचन्त्यं च कूटमथमचलंध्रिजम् ्।। ३ ।।

संननयम्येस्न्द्रयग्रामं सिुत्र समबद्जियः ।
ते ेप्राप्निजस्न्त मामेि सिुभूतदहते रताः ।। ४।।

३-४. और जो लोग अपनी सममत इस्न्द्रयों को संयत करके, सिुत्र समदृस्ष्ट होकर, सममत प्राणणयों के कल्याण के भिा से भावित होकर अक्षर, अननदेश्य (अननिुचुनीय), अव्यक्त, सिुवुयापी, अधचंत्ंय, कूटमथ, अचल और ननत्य या ध्रिज की उपासना करते हैं, िे ेभी मुझेिी प्रास होतेहैं।

ननषेधाममक ननजष्यिता, मौन-वृवृि, जीवन और कम िके संन्यास की पद्धनत को, जजसके द्वारा लोग अननदेश्य परम की खोज करते िैं, गीता की दशनिप्रणाली में स्वीकृत और समधथति ककया गया िै, पर केवल एक गौण ररआयती अनुमोदन के रूप में। यि ननषेधाममक ज्ञान सनातन रह्म की ओर समय के केवल एक पक्ष' को लेकर चलता िै और वि पक्ष िै जिा, ाँ 'दु:खंदेिवद्भरवाप्यते', प्रकृनतस्थ दिेधारी जीवों के भलए पिुाँचना अमयंत कहठन िै; यि पद्धनत ब्रि िी खास तरीके के और यिााँतक कक एक अनावश्यक रूप से दगुुमि माग िसे अग्रसर िोती िैं जिजस पर चलना 'छुरे की धार पर चलनेके समान कष्टप्रद और दषुकर' िै।

उस माग िके सरलतम रूप में, उन्िें अव्यकत कूटस्थ तक पिुाँचने ेके भलए यि ाँववद्यमान अभभव्यकत अक्षर के द्वारा िी आरोिण करना िोता िै। यि अभभव्यकत अक्षर मेरी िी अपनी सवव्यािपक ननवैयैजकतकता और नीरवता िै: यि बिृत,् ् अधचंमंय, ध्रुव, अचल, सवव्यािपक स्वरूप वाला िोकर व्यजकतमव को किया को आश्रय प्रदान करता िै पर उसमें भाग निीं ंलेता। यि मन की पकि में निींआता; इसे केवल ननश्चल आध्याजममक ननवैयैजकतकता और नीरवता के द्वारा िी उपलब्ध ककया जा सकता िै और जो लोग केवल इसी का अनुसंधान करते िैं उन्िें मन तथा इंहरयों के व्यापार को पूण िरूप से ननयंत्रत करना और यि ाँतक कक उसे सवथिा अपने अन्दर समेट लेना िोता िै। परन्तुकफर भी अपनी बुद्धध की समता के कारण और सब पदाथों में एक िी आममा को देखने तथा सवभूितों के हित में रत नीरव धचि की शांत दयालुता के कारण वे ेभी सब पदाथों तथा प्राणणयों में मुझसे िी भमलते िैं। जो लोग सवभािवेन भगवान् ्के साथ युकत िोते िैं, और जगत् ्के पदाथों के अधचंमंय जीवंत स्रोत, 'हदव्यं ंपुरुषमधचन्मयरूपम्' ्, में व्यापक और पूण िरूप से प्रवेश करते िैं, उनके समान िी, इस कहठनतर ऐकांनतक एकमव के द्वारा संबंधातीत अव्यकत कूटस्थ की ओर आरोिण करनेवाले ये जजज्ञासुभी अंत में उसी सनातन को प्राप्त करते िैं। परन्तु यि कम सीधा तथा अधधक दगुुमि माग ििै; यि आध्याममीकृत मानव प्रकृनत की पूण िऔर स्वाभाववक गनत निीं िै।

इस माग िमें िमारी सभी सिज सामान्य वृवृयों का ब्रि ेभारी संकल्प के द्वारा ननषेध करना िोता िै और उनका कठोर रूप से ननग्रि कर के उन पर ननयंत्रण लागू ककया जाता िै। परंतु थोिी सी चूक से भी व्यजकत की सारी मेिनत ननरथकि िो जाती िै और व्यजकत अपनी अवस्था से नीचे धगर जाता िै जिााँ से उसे पुनः अधधक मेिनत के साथ आरंभ करना िोता िै। ऐसा इसभलए िै कयोंकक यि मानव प्रकृनत के भलए स्वाभाववक निींिै अवपतु ुमनुष्य की प्रकृनत का बलात् ्ननयंत्रण कर के उस पर आरोवपत

ककया गया अनुशासन ि ै। इस कारण यि पूरी पद्धनत मानव प्रकृनत के भलए कष्टकर और दुष्कर िोती ि ै और ऐसी िोतेिुए भी पररणाम में यि भजकतमाग िसे कम फलप्रद ि ै। इसभलए ककसी प्रकृनत ववशेष के भलए तो यि माग िउधचत िो सकता ि ै परंतु सवसिामान्य के भलए तो भजकत माग िी अधधक सुगम िोता ि ै।

---

* िर एक, व्यजकतगत तौर पर, अपने 'मूल उद्गम' और अपनी सिा के चरम तक पिुँच सकता ि ै; उसका मूलू उद्गम और उसकी सिा का चरम रूप 'शाश्वत', 'अनंतं' और 'परम' से अभभन्न ि ै। इसभलये, यहद तुम इस मूलू तक पिुँच जाते िो, तो तुम 'परम' तक पिुँच जाते िो। ककन्तु तुम वि ाँएक रेखाकार गनत में जाते िो (मेरे शब्दों को िूबिू वणनि के रूप में न लो, समझे, े यि तो केवल अपनी बात को समझाने के भलये ि ै)। यि एक रेखाकार उपलजब्ध ि ै जो एक त्रबन्दु ुपर समाप्त िो जाती ि ै, और यि त्रबन्दु ु'परम् ्पुरुष' से संयुंकत िोता ि ै - जो तुमिारी उच्चतम संभांवना ि ै। दूसूरे माग िसे ऐसी भसद्धध भमिती ि ै जजसे गोलाकार कि सकतिैं, कयोंकक यि शब्द िी सबसे अच्छे ढंग से ककसी ऐसी चीज का भाव देता ि ै जो सबको समाये िुए िो, और इससे जो भसद्धध प्राप्त िोती ि ै वि कोई एक त्रबन्दु ुतक िी निीं रिती अवपतु एक संपूणतिा िोती ि ै जजसमें से कोई .... एक बूदाँ जल के साथ पूण ितादाममय द्वारा तुम समुर को उसके तत्त्व में जान सकते िो, और दूसूरे तरीके से तुम समुर को केवल तत्त्व में निीं अवपतु उसकी संपूंणतिा में जान सकतिो... यि किा जा सकता ि ै कक जब तुम केवल अपने ननजी सामथ्य िपर ननभरि िोते िो, तो व्यजकत-भाव अपनानेवाली िर चीज अपने अंदर व्यजकतमव के गुण को और साथ िी उन सीमाओंको बनाए रखती ि ै जजनर्ें िम एक अथ िमें व्यजकतमव के भलये आवश्यक कि सकते िैं। दूसूरी अवस्था में तुम व्यजकतमवकी सीमाओं ंमें आये त्रबना उसके (व्यजकतमव के) गुणों से लाभ उठा सकते िो।

क्लेशो ऽधिकतरमतेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ्।
अव्यक्ता दह गनतदु:जखंदेहिद्सभरिाप्यते ।। ५।।

५. स्जनका धचत्त अव्यक्त में आसक्त है उनके सलए कदठनाई (मनोव्यथा) अधिक होती है; क्योंकक देहिारी जीिों द्िारा अव्यक्त की प्रास्प्त अिश्य ही दष्जकर और कष्टकर है।

और यि निींमान लेना चाहिए कक कयोंकक यि अधधक दुष्कर ि ै, इसभलए यि एक उच्चतर एवं ंअधधक फलप्रद पद्धनत ि ै। गीता का सुगमतर माग िउसी चरम मोक्ष की ओर अधधक तेजी से, अधधक स्वाभाववक और सिज रूप से ले जाता ि ै।.... ऐकांनतक ज्ञानमाग िका योगी अपनी प्रकृनत की बिुववध मागोंं के साथ एक दु:खदायी संघष िको अपनेऊपर लाद लेता ि ै; यिा ाँतक कक वि उन मागोंं को उनकी उच्चतम तृजप्त प्रदान करने ेसे भी इन्कार करता ि ै और अपनी आममा के ऊध्वमिुख आवेगों को भी काट फेंकता ि ै जब वे ेसंबंधों को इंधगत करते िैं या एक ननषेधकारी ननरपेक्ष तक पिुँचने ेमें न्यून रि जाते िैं। इसके ववपरीत, गीता का जीवंत माग ििमारी सिा की अमयंत तीव्र प्रवृवि को ढूाँढ़ ननकालता ि ै और उसे ईश्वर की ओर मोि कर ज्ञान, संकल्प, भावना और पूणमिव की सिज-प्रवृवि को आरोिी मोक्ष के इतने सारे सशकत पंखों के रूप में प्रयोग करता ि ै।.... वि अननदेश्य एकमव उन सब को स्वीकार तो करता ि ै जो उसकी ओर आरोिण करते िैं, परंतु आरोिी को न तो ककसी प्रकार की संबंधाममक

सियता प्रदान करता ि और न उसे पैर हटकानेकी जगि िी देता िै। सब कुछ कठोर तपस्या और कहठन तथा अकेले वैयजकतक पुरुषाथ िके द्वारा िी करना िोता िै। पर जो गीता के बताए तरीके से पुरुषोत्तम की खोज करते िैं, उनके भलए यि सब ककतना भभन्न िै! जब वे एक ऐसे योग के द्वारा उनका ध्यान करते िैं जो वासुदेव के भसवा और ककसी को निीं देखता, कयोंकक वि सबको उन्िींके रूप में देखता िै, तब वे उन्िें प्रमयेक त्रबंदु पर, प्रमयेक क्षण में, सदा-सवदिा अपनेअगणणत रूपों तथा आकृनतयों के साथ भमलते िैं, उनके भीतर ज्ञान के दीपक को ऊपर उठाते िैं तथा उसकी हदव्य और सुखद ज्योनत से संपूण िसिा को परराप्लाववत कर देते िैं। उसने हदव्या ककत िोकर वे प्रमयेक रूप तथा आकार में परमाममा को देख लेते िैं समस्त प्रकृनत के द्वारा प्रकृनत के अधीश्वर को प्राप्त करते िैं, सब भूतों के द्वारा करते िैं, 'अपने-आप' के द्वारा, वे भी िैं, उस सबकी आममा को प्राप्त करते िैं; अबाध रूप से वे एकाएक िी सकैंिीं उद्घाहटत िोतेतरीकों से उसमें प्रवेश पातीं िैं जजससे प्रमयेक वस्तु का उद्भव िोता िै। इसके ववपरीत कहठन संबंधशून्य ननस्तब्धता की पद्धनत समस्त कम िसे परे िटने का यमन करती िै यद्यवप देिधारी प्राणणयों के भलए ऐसा करना असंभव िै।

सामान्य तौर पर योधगयों, तपजस्वयों आहद को िम देखते िैं कक ककस प्रकार वे कठोर अनुशासनों का पालन करते िैं, जैसे कक केवल कंद-मूल आहद पर ननवाि करना, एकदम अल्पािारी िोना, ककन्िींभी शारीररक सुववधाओं की कुछ भी परवाि न कर के बलपूवकि अपनेआप को ववषम पररजस्थनतयों में रखना आहद। परंतु यि सब कर के भी आवश्यक निींकक उन्िें ककसी भी सच्ची चीज की प्राजप्त िो।

प्रश्न : इस दुषुकर और कहठन माग िका चयन करना भी तो व्यजकत के अपनेवश में निीं िोता। वि भी अपनी प्रकृनत के अधीन िोकर िी तो ऐसे माग िका चयन करता िै कयोंकक कोई भी व्यजकत सरल माग िके िोतेिुए कहठन माग िका चयन कयों करेगा?

उत्तर : यहद िम परमाममा की किया को ऐसे ककसी मानभसक सूत्र में बाधँनेका प्रयास करें तो कफर चयन का तो कोई आधार िी निीं रिेगा। तब तो कफर िम यि भी कि सकते िैं कक कोई आतंकवादी भो उसे भगवान् ने जो प्रकृनत प्रदान की िै उसी के प्रभाव से आतंकी गनतववधधयाँ करता िै। और कोई चोर या िाकू भी अपनी प्रकृनत के कारण वैसा करता िै। परंतु यि एक बेतुका तकि िै और एक ऐसा मानभसक सूत्र िै जो िमें बेड़ियों में बाधँकर ककसी भी वववेकपूण िननणयि के भलए असमथ िबना देता िै। इसीभलए िमारे ऋवष देश-काल-पात्र पर बल हदया करते थे और उसी के अनुसार ककसी भी चीज का ननणयि ककया करते थे कक कया ककया जाना चाहिये। कयोंकक श्री अरववन्द किते िैं कक ककसी भी मानभसक सूत्र का ववपरीत भी उसके अपनेसमय और स्थान पर उतना िी सिी िोता िै। बडे से बडा भसद्धांत भी समय पाकर ननष्प्रभावी िो जाता िै और कोई अन्य भसद्धांत उसका स्थान ले लेता िै। अतः अपनी प्रकृनत से प्रेररत िोकर जो लोग उस कठोरतर माग िका अनुसरण करते िैं इसमें कोई भी दोष की बात निींिै, परंतु समस्या तो तब आती िै जब व्यजकत सभी के भलए एकमेव उसी माग िके अनुसरण पर आग्रि करता िै और उस आग्रि से भी एक कदम आगे जाकर बलप्रयोग के द्वारा इसे दूसरों पर थोपनेकी बात करता िै। इसभलए यहद व्यजकत किता िै कक परमाममा ने उसे अमुक प्रकृनत प्रदान की िै और उस कारण वि उसके अनुरूप

माग िका चयन करता िै तो इस बात में कोई दोष निीं ंिै। परंतुइसके साथ िी साथ उसमें यि नमनीयता और बोध भी िोना चाहिये कक परमामा ने दूसूरों को भभन्न-भभन्न प्रकृनतया ाँप्रदान की िैं और उन्िेंअपनेमाग िका तब तक पूरी स्वतंत्रता के साथ अनुसरण करने ेकी छूट िै जब तक कक वे ेअन्य ककसी की स्वतंत्रता का िनन न करते िों।

ये त जसुिाणण कमुाणण मनय संन्यमय मत्पराः ।
अनन्येनैि योगेन मांध्यायन्त उपासते ।। ६॥

तेषामहं समदृ्जिता मृत्ूयसंसारसागरात् ्।
भिासम नधचरात्पाथु ुमय्योसशतचेतसाम् ्।। ७।।

६-७. ककन्तजजो लोग अपनेसममत कमूाँ को मेरे अपुणु करके और पूणु ुरूप से मेरे परायण होकर अडडग या अनन्य योग के द्िारा मेरा ध्यान करते हजए मेरी उपासना करते हैं, जो अपनी संपूणु ुचेतना को मेरे ऊपर केंदद्रत करते हैं, हे पाथु!ु उन्हें म ैंअविलम्ब ही मृत्ूयजरूप संसार सागर से मक्जत कर देता हूाँ।

यिा ाँसभी कम िकम िके परम प्रभुके प्रनत उमसग िकर हदये जाते िैं और वे प्रभु ुपरम संकल्प-शजकत के रूप में िमारे यज्ञ के संकल्प से भमलते िैं, उससे उसका भार ले लेते िैं और िमारे अंदर जस्थत हदव्य प्रकृनत के कायों का दानयमव अपने ऊपर ले लेते िैं। इसी प्रकार जब मनुष्य के तथा समस्त प्राणणयों के प्ेरेमी और सखा का भकत प्ेरम के उच्च आवेग में अपनी चेतना के संपूण िअंतस्तल को और आनंद की समस्त उमकंठा को उन परमामा की ओर लगा देता िै तब वे ेशीघ्र िी रक्षक और उद्धारक के रूप में उसके सममुख उपजस्थत िोतेिैं और उसके मन, हृदय और देि का सुखद आभलंगंन करके उसे इस ममय िप्रकृनत के अंदर ममृयु-सागर की लिरों से उबारकर सनातन के सुरक्षक्षत वक्षस्थल में ऊपर उठा ले जाते िैं। इसभलए यिी सबसे अधधक द्रुत, ववशाल और मिान् ्माग िै।

प्रश्न : यिााँ ममृयु-सागर की लिरों से उबारने का जो उल्लेख िुआ िै उसका संकेत कया मोक्ष प्राजप्त की ओर िै?

उत्तर : संसार-सागर अथवा भव-सागर से ऊपर उठनेका तो िमारे अनेकों सद्ग्रंथों में उल्लेख आता िी िै परंतु इसका तामपय िकेवल मोक्ष प्राजप्त से िी निीं िै। आध्याजममकता का तो अथ िी यिी िै कक िम इस सतिी पाधथवि चेतना से उठकर िमारे सच्चेस्वरूप में जाएाँ। िमारे ऋवषयों का मूल मंत्र िी 'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योनतगमिय, ममृयोमा िअमृतं ंगमय' रिा िै। इसमें ममृयुसे ऊपर उठनेका तामपय िदैहिक अमरता से निीं िै। अमरमव का सच्चा अथ िउस जस्थनत से िै जजसमें व्यजकत के भलए जीवन और ममृयु दोनों िी आममा की यात्रा में घटनाएाँ मात्र रि जाती िैं और वि इनसे प्रभाववत िुए त्रबना दोनों को िी उपयोग में ले सकता िै। संसार-सागर से िमें भय इसभलए िोता िै कयोंकक िमारी चेतना इससे आसकत और बद्ध िै। जब चेतना इससे मुकत िो जाती िै तब वि व्यजकत इस भय से मुकत िो जाता िै। सच्चे रूप में किें तो िमें यि फाँसाव इसभलए लगता िै कयोंकक िम अपनेअिं से तदामम िैं और अपनेआप को केवल अपनी बािरी प्रकृनत मान बैठते िैं जबकक वास्तव में तो िमारी

आममा, जो कक िमारे अंदर ववराजमान स्वयं हदव्य सिा िै वि एक सचेतन चुनाव करके इस पाधथवि अभभव्यजकत में आई िै इसभलए इसमें फाँसने ेका तो कोई प्रश्न िी निींउठता। और यहद इसे फाँसना िी किें तब तो कफर परम प्रभु स्वयं िी तो इसमें फंसे िुए िैं। संभवतः िम तो अवश रूप से इस अभभव्यजकत से बद्ध िो सकतेिैं परंतु परम् ् प्रभु की ऐसी कोई बाध्यता प्रतीत निीं िोती कक वे अपनी िी अभभव्यजकत में बंधेंगे। िमारी संस्कृनत में सदा िी यि भान रिा िै कक परम् ्प्रभु केवल अपनेआनंद के भलए िी यि सारी जगत् ्अभभव्यजकत करते िैं और स्वयं िी इसमें भाग लेते िैं। अब यहद िम इस दृजष्टकोण को छोड़कर िम भी अपने सच्चेभाग से तदामम िो सकें, अपनेअंदर ववराजमान भगवान् ्से एक िो सकें तो िम भी इस आनंद में सिभागी िो सकतेिैं और यिी इस अभभव्यजकत का सच्चा उद्देश्य िै। योग का यिी उद्देश्य िै कक वि िमें िमारी वतमिान जस्थनत से उठाकर िमारी सच्ची जस्थनत में ले जाता िै। यिी यज्ञ का आरोिण िै। आरंभ में िमारी िमववकासमय प्रकृनत के प्रभाव से िम इच्छा, कामना, भय आहद के वशीभूत िो कम िकरते िैं। परंतु धीरे-धीरे जब िम अपनी इच्छा की बजाय भगवान् ्की इच्छा के ननभमि कम िकरने लगते िैं तो िमारा यज्ञ आरंभ िो जाता िै। और धीरे- धीरे यि यज्ञ िमारे अधधकाधधक भागों को अपने में समाहित कर लेता िै और उन्िें शुद्ध बनाकर इच्छा और कामना आहद की अभभव्यजकत की बजाय भागवत् ् कायों की अभभव्यजकत का साधन बना देता िै और तब यज्ञ का सारा भार परमामना स्वयं िी ले लेते िैं और व्यजकत को ककसी ननजी प्रयास का भान निीं िोता।

प्रश्न : कया इसे िी जन्म-मृमृयु से छुटकारा कितेिैं?

उत्तर : जन्म-मृमृयु से छुटकारे की बात वि करता िै जो इसमें फाँसा िोता िै। ऊपर उठनेसे तामपय िजन्म-मृमृयु के भय से छुटकारा िै न कक जन्म-मृमृयु से। जब परमामना स्वयं किते िैं कक 'आममानंसृजाम्यिम्' ् तब इसका कया यि अथ िुआ कक स्वयंवे िी जन्म-मृमृयुसे बाँधे िुए िैं। इसी प्रकार अनेक भसद्ध पुरुषों ने किा िै कक उन्िें अपने व्यजकतगत मोक्ष की कोई अभभलाषा निीं ंिै। वे तो तब तक जन्म लेते रिने को तैयार िैं जब तक कक एक भी आममा को पृथ्वी पर सिायता की आवश्यकता िोगी। इस सब से यि पता लगता िै कक यि वास्तव में जन्म-मृमृयु की बाध्यता और उसके भय से छुटकारा िै न कक स्वयं जन्म और मृमृयु से।

यहद िमारे भीतर ककसी भी प्रकार की स्पृिा िै, चािे वि मोक्ष की िी कयों न िो, तो यि इसका सूचक िै कक िम एक सच्ची जस्थनत में निीं िैं। कयोंकक जैसे िी िम ककसी चीज की चाि करते िैं वैसे िी यि िमारे अभाव को दशातिा िै जबकक आममा की सच्ची जस्थनत में उसे ककसी चीज की चाि निींिो सकती, ककसी चीज का अभाव निीं िो सकता कयोंकक वि तो स्वाममलीन िोती िै और स्वतः आनंदमय िोती िै जजसका आनंद ककन्िीं भी बािरी चीजों पर आधाररत निीं ंिोता। इसीभलए भगवान् ्ककसी इच्छा के वशीभूत िोकर निीं अवपतु अपने संकल्प के द्वारा काय िकरते िैं जबकक इच्छा तथा कामना करना ननमय चेतना का स्वभाव िै। तभी तो भगवान् ्कितेिैं कक तीनों लोकों में ऐसा कुछ भी निीं ंिै जजसकी उन्िें प्राप्त करने ेकी कोई चाि िो परंतुकफर भी लोकसंग्रि के भलए, अपने संकल्प की अभभव्यजकत के भलए िी वे ेकम िमें रत रितेिैं। इसीभलए िमारे सभी सद्ग्रंथ भगवान् ्की सभी कियाओं को भगवान् ्की कृपा की िी अभभव्यजकत मानतेिैं। जब भगवान् ्श्रीकृष्ण ककसी राक्षस का वध भी करते िैं तो

मिारे पुराण उसे भगवान् ्की परम कृपा की अभभव्यजकत िी मानतेिैं और किते िैं कक भगवान् ्जजनका वध करते िैं उनका परम उद्धार कर देते िैं और उन्िेंवि गनत प्रदान करते िैं जो कदाधचत् ्योधगयो और तपजस्वयों को भी दुलुभि िै। यि पिलू िमारी मानवीय मन-बुद्धध के भलए समझ पाना संभव निीं ्िै कयोंकक उस चेतना का िमें कोई आस्वादन िी प्राप्त निीं ्िुआ िै जिा ्ँत्रबना ककसी अिं के शुद्ध रूप से केवल अपने संकल्प की अभभव्यजकत के भलए, अपने स्वयं के आनंद की अभभव्यजकत के भलए िी कम िककया जाता िो। अतः िमारे भलए करने ेयोग्य श्रेष्ठ काय िितो यि िै कक भगवान् ्पर ववश्वास कर के, उनमें श्रद्धा रख कर अपना सभी कुछ उन्िेंसमवपति कर दें।

मय्येव मन आधत्स्व मनय बुद्धिं ननवेशय ।
ननवससष्यसस मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ।। ८।।

८. मेरे ऊपर अपनेसंपूणु ्मन को मथावपत कर और मेरे अंदर अपनी सममत बद्जधि को स्मथत कर; इसमें संशय मत कर कक इस (मत्यु ्अस्मतत्व) से ऊपर उठकर तू मेंनिवास करेगा।

परमेश्वर मानव-आममा से कितेिैं, अपने संपूण िमन और बुद्धध को मुझमें जस्थत कर देः म ैंउन्िेंहदव्य पे्रेम, संकल्प और ज्ञान की स्वगीय ज्योनत से पररप्लुत करके अपनी िी ओर, जिााँ से ये सब चीजें प्रवाहित िोती िैं, ऊपर उठा ले जाऊाँगा। इस ममय िजीवन से ऊपर तू मेरे अंदर िी ननवास करेगा, इस ववषय में संशय मत कर। सीमा में बााँधने वाली पाधथवि प्रकृनत की जंजीर शाश्वत पे्रेम, संकल्प और ज्ञान के आवेग, उसकी शजकत और ज्योनत के द्वारा ऊपर उठी िुई अमर आममा को जक़ि कर निीं रख सकती।

अथ धचत्तं ंसमाधातुं न शक्नोवष मनय स्मथरम् ्।
अभ्यासयोगेन ततो मासमच्छातंज िनञ्जय ।॥ ९॥

९. हे िनञ्जय! यदद ककसी तरह तू मजझ में अपनेधचत्त को दृढ़तापूवुक स्मथर करने ेमें समथु ्नहीं ंहै तो अभ्यासयोग के द्वारा मझे प्राप्त करने ेकी इच्छा (प्रयत्न) कर।

इसमें संदेि निींकक इस माग िमें भी कहठनाइयााँिैं; कयोंकक यिााँ भी अपनेप्रचंड यि स्थूल अधोमुख आकषणि से युकत ननमनतर प्रकृनत रिती िै जो आरोिण की गनत का प्रनतरोध करती िै और उससे संघष िकरती िै और उन्नयन तथा ऊध्वमुिख िषोल्लास के पंखों को अवरुद्ध कर देती िै। आरंभ में मिान् ्ववलक्षण क्षणों में या शांत और उमकृष्ट समयों में भी यहद हदव्य चेतना प्राप्त िोती िै, तो भी उसे न तो एकाएक पूण िरूप से धारण ककया जा सकता िै और न िी इच्छानुसार उसको पुनः बुलाया िी जा सकता िै; व्यजकतगत चेतना को दृढ़तापूवकि भगवान् ्पर एकाग्र रख सकना प्रायः िी असाध्य प्रतीत िोता िै; प्रकाश से ननवासिन की लंबी ननशाएाँ आती िैं, ववरि, संदेि या ववफलता की घड़ियााँ अथवा क्षण आते िैं। परंतुकफर भी योगाभ्यास के द्वारा तथा अनुभव की सतत् ्पुनरावृवि के द्वारा वि उच्चतम आममा िमारी सिा पर िावी िोती जाती िै और िमारी प्रकृनत को स्थायी रूप से अपने अधधकार में ले लेती िै।

अभ्यासे ऽप्यसमथोऽसस मत्कमुपुरमो भि ।
मदथुमुवप कमुाणण कजिुसुन्सद्धिमिाप्मयसस ।। १० ।।

१०. यदद तू योग के अभ्यास में भी असमथु ुहै तो मेरे सलये कमु ुपरायण (कमु ुकरनेिाला) हो; सभी कमु ुमेरे दहत करते हजए तू अिश्य ही ससद्धि को प्राप्त कर लेगा।

कया ऐसा करना भी मन की बहिमुखि प्रवृवृ के बल और आग्रि के कारण अमयंत कहठन पाया जाता िै?
तो इसका एक सरल उपाय िै, सभी कमों को कम िके स्वामी के हित करना, ताकक मन की प्रमयेक बहिमुखि प्रवृवृ
मिारी सिा के आंतर आध्याजममक समय से संबद्ध िो जाए और उसे अपनी कियाशीलता के समय भी ननमय
सद्वस्तु की ओर पुनः बुलाया जा सके और अपने उद्गम के साथ संबद्ध ककया जा सके। तब, पुरुषोिम की
उपजस्थनत प्रकृनतगत मनुष्य के अंदर तब तक बढ़ती जायेगी जब तक कक वि उससे पररपूररत िोकर एक देवता
और आममा िी निीं ंबन जाता; संपूण िजीवन ईश्वर का सतत् ्स्मरण बन जाएगा और पूणतिा भी वधधति िोगी और
उसके साथ िी वधधति िोगा मानव आममा की संपूण िसिा का परम सिा के साथ एकमव भी।

अथैतदप्यशक्तोऽसस कतं ंजमद्योगमाधश्रतः ।
सिुकमुिलत्यागं ततः कजरु यतात्मिान् ्।। ११ ।।

११. ककन्तजयदद यह करने में भी तू ूअसमथु ुहै तो मेरे योग का आश्रय लेकर, अपनी (ननम्न) आत्मा को संयत करके सममत कमों के िल का त्याग कर।

परन्तु िो सकता िै कक ईश्वर का यि सतत् ्स्मरण तथा अपने कायों को उनकी ओर ऊपर उठा ले जाना
भी सीभमत मन की सामथ्य िसे परे की वस्तुप्रतीत िो, कयोंकक मन अपनी भूलने ेकी प्रवृवृ में काय ितथा उसके
बाह्य उद्देश्य की ओर मिु जाता िै और तब उसे भीतर देखना तथा िमारी प्रमयेक चेष्टा को आममा की हदव्य वेदी
पर उमसग िकरना याद निींरिता। ऐसी दशा में उपाय यि िै कक कम िमें ननमनतर 'स्व' को संयभमत करके फल की
कामना के त्रबना कम िककये जाएँ। समस्त फल का मयाग करना िोगा, उसे कम िका संचालन करनेवाली शजकत को
सौंप देना िोगा और कफर भी, उस शजकत द्वारा िमारी प्रकृनत पर आरोवपत ककये गये काय िको करना िी िोगा।
कयोंकक, इस साधन के द्वारा बाधा ननरंतर घटती जाती िै और आसानी से दूरू िो जाती िै, मन को ईश्वर का
स्मरण करने तथा भगवच्चेतना के स्वातंत्र्य पर अपने-आप को एकाग्र करनेका अवकाश प्राप्त िो जाता िै। यिाँ
गीता क्षमताओं की एक चढ़ती िुई श्रृंखला का प्रनतपादन करती िै और कमों के इस योग को सवोच्च मित्त्व प्रदान
करती िै।

श्रेयो दह ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्यिानं विसशष्यते ।
ध्यानात्कमिुलत्यागमत्यागाच्छास्न्तरनन्तरम् ्।। १२ ।।

१२. अिश्य ही अभ्यास की अपेक्षा ज्ञान श्ेरेष्ठ है; ज्ञान से ध्यान श्ेरेष्ठतर है; ध्यान की अपेक्षा कमिुल का त्याग श्ेरेष्ठ है; कमिुल त्याग के तरंजत बाद शांनत प्राप्त हो जाती है।

अभ्यास, अथात्ि्ककसी पद्धनत का अनुशीलन करना, ककसी प्रयमन को और अनुभव को बारंबार दोिराते रिना एक मिान् ्और शजकतशाली साधन िै, परंतु इससे श्ेरेष्ठतर िै ज्ञान, अथात्ि्ववचार का सफलतापूवकि और प्रकाभशत रूप से वस्तुओंके पीछे के ननहित समय की ओर मुिना। इस ववचाराममक ज्ञान से भी बढ़कर िै समय के ऊपर शांत और पूण िएकाग्रधचिता जजससे कक अंततः चेतना उसमें ननवास करने ेलगे और उससे सदा एकीभूत रिे। परंतुउससे भी अधधक प्रभावशाली िै अपनेकमों के फल का मयाग कयोंकक वि तुरंत िी ववक्षोभ या अशांनत के सभी कारणों को नष्ट कर िालता िै और स्वतः िी एक आंतररक शांनत एवं जस्थरता को लाता तथा सुरक्षक्षत बनाए रखता िै, और शांनत एवं ंजस्थरता िी वि आधार िै जजस पर अन्य सब कुछ पूणमिव लाभ करता िै और शांत आममा के द्वारा अधधकृत िोकर सुरक्षक्षत िो जाता िै। तब चेतना ननजश्चंत िो सकती िै, अपने-आप को प्रसन्नतापूवकि भगवान् ्में जस्थर करके ननववघ्नि रूप से पूणतिा की ओर उठ सकती िै। और, तभी ज्ञान, संकल्प और भजकत अपने भशखरों को ठोस शांनत की दृढ़ भूभम से ननमयता के आकाश में उठा ले जा सकतिं।

तब कफर, जजस भकत ने इस माग िका अनुसरण ककया िै और शाश्वत की उपासना की ओर मुिा िै, उसकी हदव्य प्रकृनत कया िोगी, उसकी चेतना और सिा की मिर जस्थनत कया िोगी? गीता कई श्लोकों tilde 4 बदल-बदल कर अनेक प्रकार से अपनी पिली आग्रिपूण िमागाँ को, समता, ननष्कामता और आममा के स्वातंत्र्य की मागाँ को गुंजाररत करती िै। आधार तो सदा यिी रिना िोगा, - और इसीभलए इस पर आरंभ में इतना अधधक बल हदया गया था। और उस समता में भजकत, अथात्ि्पुरुषोिम से प्ेरेम और उनकी आराधना के द्वारा आममा को ककसी ऐसी मिम एवं उच्चतम पूणतिा की ओर उठाना िोगा जजसकी यि जस्थर समता ववशाल आधार िोगी। इस आधारभूत सम चेतना के कई सूत्र यिा ाँबताये गये िैं।

अद्वेष्टा सिभूतानां ंमैत्रः करुण एि च ।
ननममुो ननरहंकारः समदःजखसखुक्षमी ।। १३ ।।

संतष्जटः सततं ंयोगी यतात्मा दृढननश्चयः ।
मय्यवुपतुमनोबद्जधियो मद्भक्तः स मे वप्रयः ।। १४।।

१३-१४. जो ककसी भी प्राणी से द्वेष नहीं ंकरता, सममत प्राणणयों के प्रनत समत्रता और करुणा का भिा रखता है, 'म'ैं और 'मेरा' के अहंकार से रदहत होता है, सखज और दःजख में समधचत्त रहने िाला क्षमाशील है, जो योगी सदा संतष्जट रहता है, आत्म-संयमी और दृढ़ ननश्चयी रहता है, और स्जसके मन और बद्जधि मझेज ेसमवुपतु होतेहैं, िह मेरा भक्त मझे ेवप्रय होता है।

यममान्नोद्विजतेलोको लोकान्नोद्विजते च यः ।

हषुामषुभुयोर्द्वेगैर्मुकु्जतो यः स च मे वप्रयः ।। १५।।

१५. स्जससे जगत् ्क्लेसशत नहीं ंहोता और जो जिीों से क्लेश का अनभजि नहीं करता और जो हषु, ु आक्रोश और भय के उर्द्वेगों से मक्जत है, िह मझेुवप्रय है।

अनपेक्षः शधजचदुक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सिुारम्भपररत्यागी यो मद्भक्तः स मे वप्रयः ।। १६।।

१६. जो कोई अपेक्षा नहीं ंरखता, पवित्र, कायुदुक्ष, उदासीन, अव्यधथत रहता है, स्जसने सममत कमूाँके आरंभ (प्रिवृत्त) को त्याग ददया है, िह मेरा भक्त मझेु ेवप्रय है।

यो न हृष्यनत न र्द्वेस्ष्ट न शोचनत न काङ्क्षनत ।
शभजाशभजपररत्यागी भस्क्तमान्यः स मे वप्रयः ।। १७।।

१७. जो न हवुषतु होता है और न र्द्वेष करता है, न शोक करता है न कामना करता है, स्जसने शभज और अशभज घटनाओंके भेद को दूरू कर ददया है, िह भस्क्त से पररपूणु ुमनष्जय मजझे ेवप्रय है।

समः शत्रौ च समत्रे ेच तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसखदःखेषजखेष जसमः सङ्गविविसुजतुः ।। १८।।

तल्जयननन्दामतजनतौनी सन्तष्जटो येन केनधचत् ्।
अननकेतः स्मथरमनतभुसुक्तमान्मे वप्रयो नरः ।। १९।।

१८-१९. जो शत्र जऔर समत्र, मान और अपमान, शीत और उष्ण, सखज और दःजख में समान रहता है, जो आसस्क्त से रदहत, प्रशंसा और ननंदा में सम रहता है, जो मौनी (समतभाषी) है, जो भी कजछ आए उस सबसे संतष्जट रहता है, ककसी घर या रहने ेके मथान से आसक्त नहींरहता, जो स्मथरबद्जधि है, भस्क्तयक्जत है, िह मझेज वप्रय है।

समता, ननष्कामता, ननमनतर अिकारमय प्रकृनत और उसके दावों से मुजकत सदा िी वे एकमात्र पूण ि आधार िैं जजनकी गीता मिान् ्मोक्ष के भलए मागाँ करती िै। अंत तक भी गीता बारंबार अपनी प्रथम मूलभूत भशक्षा तथा मूल अभीष्ट ववषय पर, सभी वस्तुओंमें एक िी आममा को देखनेवाली शांत ज्ञानमय आममा पर, ज्ञान के पररणाम स्वरूप प्राप्त िोनेवाली शांत ननर्रिंकार समता पर, उस सममव की अवस्था में कमों के प्रभु ुके प्रनत अवपति ननष्काम कम िपर, मनुष्य की संपूण िमानभसक प्रकृनत को मििर अंतवासिी आममा के िाथों में समपणि करने ेपर जोरदार बल देती रिती िै। और, इस समता का भशखर या इसकी पराकाष्ठा िै ज्ञान पर सुप्रनतजष्ठत वि प्रेम जो ननभमिरूप से ककये जानेवाले कम िमें चररताथ िििोता िै तथा सब वस्तुओं और प्राणणयों तक ववस्ताररत िोता िै,

अथात्ि्जो ववश्व के स्रष्टा और मिेश्वर हदव्य आममा, 'सुहृदं 4.29 सवभूितानांसवलिोकमिेश्वरम्'् के भलए व्यापक, अनन्य तथा सवधािरक पे्रम िोता िै।

यि वि आधार, अवस्था एवं ंसाधन िै जजसके द्वारा िमें परमोच्च आध्याजममक पूणतिा अजजति करनी िै, और भगवान् ्किते िैं कक जो लोग ककसी भी प्रकार इससे युकत िैं वे सभी मेरे वप्रय िैं, भजकतमान् ्मे वप्रयः। परंतु परमेश्वर की अमयंत ननकटवती वे आममाएँ मुझेअमयंत वप्रय िैं, अतीव मे वप्रयाः, जजनका मेरे भलए पे्रम उस और भी ववशालतर तथा मिमिम पूणतिा के द्वारा पराकाष्ठा को प्राप्त िुआ िै जजसका पथ एवंप्रणाली मनैं तुझे ेअभी बतायी िै।

xii.17,xvii.47

ये त जिष्युामृतृसमदं यथोक्तं पयुपुजासते ।
श्रद्दिाना मत्परमा भक्तामतेऽतिी मे वप्रयाः ।। २० ।।

२०. परन्त जो भक्त किल मझेज ेही अपना परम लक्ष्य ननिुाररत करके पूणु ुश्रद्िा के साथ, जैसा अभी यहा ूँिेणुनु ककया गया है इस अमरताप्रद िमु ुका यथिात् ्रीनत से अनजष्ठान करते हैं जि ेसबसेअधिक वप्रय हैं।

गीता की भाषा में 'धम'ि का अथ िैै सिा तथा उसके कमों का सिज-स्वाभाववक ववधान तथा आंतररक प्रकृनत से ननःसृत् और उसके द्वारा ननधारिरत कम,ि 'स्वभावननयतं कम।ि' मन, प्राण और शरीर की ननमनतर अज्ञ चेतना में अनेक धम,ि अनेक ननयम, अनेक मानदंि तथा ववधान िोते िैं, कयोंकक मानभसक, प्राणणक तथा भौनतक

प्रकृनत के अनेक ववभभन्न ननधारिण तथा प्रकार िैं। अमर धम िएक िी िै; वि सवोच्च आध्याजममक हदव्य चेतना तथा उसकी शजकतयों का, परा प्रकृनतः का, धम िैै। वि तीनों गुणों से परे िै, और उस तक पिुँचने ेके भलए इन सब

ननमनतर धमों का पररमयाग करना िोगा, 'सवधिमान्ि्पररमयज्य।' उनके स्थान पर शाश्वत की अखंि मोक्षप्रद एकीकारक चेतना तथा शजकत को िी िमें अपनेकम िका अनंत उद्गम, उसका साचाँ, ननधारिक तथा प्रनतमान बनाना िोगा। अपनेननमनतर वैयजकतक अिभाव से ऊपर उठना, ननववकिार सनातन सवव्यािपी अक्षर पुरुष की ननवैयैजकतक और सम-जस्थरता में प्रवेश करना और कफर उस जस्थरता से, अपनी समस्त सिा और प्रकृनत के पूण ि आममसमपणि के द्वारा, उस पूण िजस्थरता के भलए अभीप्सा करना जो अक्षर से अलग और उच्चतर िै - यि इस योग की पिली आवश्यकता िै। इस अभीप्सा के बल पर मनुष्य अमर धम िकी ओर उठ सकता िै। विाँ, मिमिम 'उिम पुरुष' के साथ सिा, चेतना और हदव्य आनंद में एक िोकर, उनकी परमोच्च कियाशील प्रकृनत-शजकत, 'स्वां प्रकृनतः', के साथ एक िोकर मुकत आममा उच्चतम अमरमव तथा पूण िस्वातंत्र्य की वास्तववक शजकत के साथ अनंत रूप से ज्ञान प्राप्त कर सकती िै, असीम रूप से पे्रम कर सकती िै और अचूक रूप से कम िकर सकती िै। शेषे गीता इस अमर धम िपर अधधक पूण िप्रकाश िालनेके भलए िी भलखी गयी िै। xvii. 66

अमर धम िवि िै जजसमें व्यजकत अक्षर रह्म को निीं अवपतुकेवल पुरुषोिम परमाममा को अंनतम उद्देश्य मानकर उनकी ओर चलता िै। जो लोग भगवान् ्पुरुषोिम को िी अपना संपूण िआधार मानतेिैं और उनकी ओर गनत करते िैं वे िी सच्चेधम िकी रि पर िैं और ऐसे भकतों को िी वे ेप्राप्त िोते िैं। अतः इस प्राजप्त में भजकत को िी सवोच्च स्थान और मिमा प्रदान की गई िै।

प्रश्न : सोलिवें श्लोक में किा गया िै कक 'जजसने सब कमााँ के आरमभ को मयाग हदया िै', इसका कया अथ ििै?

उत्तर : कमों के आरंभ को मयाग देने का अथ ििै कक इच्छा या कामना के वशीभूत िो कम िन करना अवपतु ु भगवद्-प्रेरणा के अनुसार कम िकरना। जब िम अपनेअिं की बजाय भगवद् संकल्प की अभभव्यजकत के अनुसार किया करते िैं तब िम सवारंभिपररमयागी िोते िैं कयोंकक तब कम िका उमप्रेरण भगवान् ्के द्वारा िोता िै और इस कारण वे कम िमें बाधाँते निीं। हदव्य कमी के लक्षणों में िम यि चचाि कर िी चुके िैं कक उसके द्वारा हदव्य प्रकृनत जो भी कम िकराती िै, जो भी भाव लाती िै, जो भी ववचार लाती िै उन सभी में वि सदा िी आनजन्दत रिता िै। कम ि से उसकी कोई भलप्तता अथवा बाध्यता िोती िी निींकयोंकक वि तो उन सब से ऊपर िोता िै। इस कारण उन कमों का उस पर कोई कायि–कारण प्रभाव निीं ंिोता। इसीभलए हदव्य कमी को 'सवारंभिपररमयागी' अथात् ्सभी आरमभों के मयागी की संज्ञा दी जाती िै। वि ककसी काय िका आरमभ निीं ंकरता। उसकी कोई स्वतंत्र व्यजकतगत इच्छा रिती िी निीं। उसके कम िहदव्य प्रकृनत के द्वारा िी चाभलत िोतेिैं। जजस समय जैसी आवश्यकता िोती िै वैसा उसके ववचार आ जाता िै, वैसा िी उसके द्वारा कम ििो जाता िै। इसभलये जब कमों का िकिा वि स्वयंनिींरिता तब कफर मानभसकता में कमि–जननत कोई प्रनतकिया भी निीं ंिोती। उसको सिा पूण िरूप से परमाममा के प्रनत खुली िोती िै और उन्िेंसमवपति िोती िै और वि स्वयंको रह्मस्वरूप जान लेता िै।

प्रश्न : जैसा कक भगवान् ्किते िैं कक जो भकत इस अमरताप्रद धम िका अनुष्ठान करते िैं वे मुझे ेवप्रय िैं। जब एक बार व्यजकत एकमात्र परमाममा की ओर उन्मुख िो जाता िै तब कफर कया केवल अमर धम ििी बचता िै, परोपकाररकता आहद अन्य धम िअप्रासंधगक िो जाते िैं?

उत्तर : इनमें कोई ववरोधाभास निीं ंिै। जब व्यजकत भागवत् ्संकल्प के साथ युकत िोता िै तभी सच्चेरूप में सभी धमों का ननवाि िोता िै। जब व्यजकत परमाममा के साथ युकत िोगा तभी वि सच्चा परोपकार कर सकता िै। जो कुछ परमाममा के द्वारा आता िै विी सच्चा धम ििै। आणखर सारे धम िऔर आदश िभी तो इसी आधार पर प्रनतजष्ठत िोतेिैं, परमाममा के अनतररकत तो इनका कोई आधार िी निीं। इसभलए परमाममा से युकत चेतना में कोई ववरोधाभास निीं ंरिता कयोंकक तब िर दृजष्टकोण से सवश्रेष्ठ िी िोता िै।

श्रीअरववन्द ने गीता को तीन षट्कों में ववभाजजत ककया ि◌ै जजसके अनुसार यि दूसरा षट्क समाप्त ि◌ो गया ि◌ै। तीसरे में मूल रूप से कोई नया तत्त्व निीं ि◌ंै परंतु पिले आए मूल तत्त्वों का ि◌ी ववशद ननरूपण ि◌ै जजनका कक पिले उल्लेख तो ि◌ुआ था पर जजर्न्े पूरी तरि hat H स्पष्ट निींककया गया था।

इस प्रकार बारहिाँूअध्याय 'भस्क्तयोग' समाप्त होता है।

तेरिवााँअध्याय

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ

ननमनतर प्रकृनत से ननकल कर हदव्य प्रकृनत में आममा के ऊपर उठनेके माग िको एक सुस्पष्ट और पूण ि ज्ञान पर प्रनतजष्ठत करने के भलए गीता अपनेअंनतम छः अध्यायों में हदव्य गुरु द्वारा अजुनि को पिले िी हदये जा चुके ज्ञान को एक दूसूरे रूप में पुनः ननरूवपत करती िै। तत्त्वतः तो यि विी ज्ञान िै, पर अब इसके ब्यौरों तथा संबंधों को सुस्पष्ट करके उर्न्िेउनका पूण िअथ िप्रदान ककया गया िै, जजन ववचारों एवं ंसमयों का केवल चलते-चलते संकेत कर हदया गया था या ककसी अन्य प्रयोजन के प्रकाश में सामान्यतः िी प्रनतपादन ककया गया था उनका पूरा-पूरा मूल्य अभी प्रकट ककया गया िै। इस प्रकार पिले छः अध्यायों में सारी प्रधानता अक्षर आममा तथा प्रकृनत से आच्छाहदत आममा के पारस्पररक भेद के भलए आवश्यक ज्ञान को िी दी गयी थी। विााँपरम् ्आममा एवं परम-पुरुष-ववषयक जो उल्लेख आए थे वे संक्षक्षप्त थे और त्रबल्कुल भी प्रकट या व्यकत निीं थे।... परन्तु अब परम् ्पुरुष, अक्षर आममा, जीव तथा कमशिील त्रत्रगुणाजममका प्रकृनत के यथाथ िसंबंधों को अधधक सुननजश्चत रूप में प्रकट करना आवश्यक िै। अतएव अजुनि से एक प्रश्न कराया जाता िै जो अभी तक अध–प्रकाभशत इन ववषयों पर अधधक ववशद प्रकाश िालने का अवसर उपजस्थत करेगा।

अजुनुज उिाच प्रकृनतं ंपरुजषं चैि क्षेत्रं ंक्षेत्रज्ञमेि च ।
एतद्वेददतसजमच्छासम ज्ञानंज्ञेयं च केशि ॥ १ ॥

१. अजुजनु ने कहाः हे केशि! प्रकृनत और परुजष, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, ज्ञान और ज्ञेय, इन सब को म ैंजानना चाहता हूूँ।

वि पुरुष और प्रकृनत के ववषय में जानने ेकी मागाँ करता िै; वि सिा के क्षेत्र और क्षेत्र के ज्ञाता तथा ज्ञान और ज्ञेय के ववषय में प्रश्न करता िै। इसी में आममा और जगत् ्के उस समस्त ज्ञान का सार ननहित िै जजसकी आममा को अब भी आवश्यकता िै यहद उसे अपने प्राकृत अज्ञान का उन्मूलन करना िै तथा अपने कदमों को ज्ञान, जीवन और कमों के, एवं ंइन वस्तुओंमें ववद्यमान भगवान् ्के साथ अपनेसंबंधों के समुधचत उपयोग पर सुदृढ़ करके जगत् ्के सनातन आममा के साथ अपनी सिा के एकमव की ओर आरोिण करना िै।

गीता के इस अंनतम षटक् में तत्त्वतः विी ज्ञान िै जजसका उल्लेख पिले के अध्यायों में िो तो चुका िै परंतु जजसके ब्यौरों का ववस्तार से वणनि करना अभी बाकी िै। भगवान् ्ने अजुनि को पिले यि बताया अवश्य िै कक इस ननमन प्रकृनत से ननकल कर हदव्य प्रकृनत में जाना िोगा, परंतु अभी तक उसके माग िके ववषय में संबंधधत ब्यौरों को, उस माग िपर आने ेवाली संभाववत चीजों को संकेत भर में िी किा िै, ववस्तारपूवकि स्पष्ट निीं ककया िै। आरंभ में भी भगवान् ्अजुनि को ननत्रैगुण्य और ननद्विन्द्व िोने का उपदेश करते िैं, परंतुउन जस्थनतयों का समुधचत वणनि और उससे संबंधधत ब्यौरों के ववषय में पूरी तरि स्पष्टता अभी आनी बाकी िै। इसभलए गीता

इन्िीं िसब त्रबन्दुओंका पूण िरूप से ननरूपण कर के अंत में अपना गुह्यतम वचन 'सवधिमान् ि्पररमयज्य' प्रकाभशत करती िै जजसमें सारे योगों, धारणाओं, धम िके ढाचोंी को तोि़ कर वि उन सबको अनतिम कर जाती िै। आणखर कोई भी योग-पद्धनत, कोई भी ज्ञान या दशनि या अन्य कुछ भी, भले िी अपने आप में ककतना िी ववशाल कयों न िो, तो भी व्यजकत और परमाममा के बीच के संबंध को, उनके संसग िको भला कैसे और ककतना पररभाववषत या ननरूवपत कर सकता िै? और श्रीअरववन्द के अनुसार गीता द्वारा योग की सभी पद्धनतयों को उनके उमकृष्टतम रूप में अपनाना, उन सब को आपस में समजन्वत कर भजकत में पररणत कर देना और कफर इन सभी को तोि़ कर अंत में इनका पूणतिः अनतिम कर जाना िी इसे इतना मित्त्वपूण िबना देता िै। कयोंकक वास्तव में तो आणखर आममा ककन्िीं भी पद्धनतयों में बाधीं िी कैसे जा सकती िै। वि तो पूणतिः स्वतंत्र िै और अपनेस्वयंके ववधान के अनुसार चलती िै। इसभलए गीता अपनी ककन्िीं िभी भशक्षाओं तक सीभमत निीं ंरिती अवपतु ुअंत में 'सवधिमान्ि् पररमयज्य' कि कर सभी कुछ का अनतिम कर के सीधे अनतमानस की भव्यताओं तक ले जाती िै। िालाकाँक गीता इसके ववषय में कुछ भी वणनि निींकरती कयोंकक इसका वणनि िो िी निीं सकता, इस जस्थनत को तो व्यजकत को जीना िी िोता िै, अपनी आममा में इसका अनुभव करना िोता िै। इसभलए अपना परम वचन कि कर गीता उसका कोई स्पष्टीकरण हदये त्रबना िीरुक जाती िै। कयोंकक उस जस्थनत से पिले जजन जस्थनतयों का उल्लेख िुआ िै वे तो पथसंकेत के रूप में िैं जैसे कक रह्म-ननवाणि, समभव आहद की जस्थनतया।ाँ परंतु जब कोई ववरली िी आममा इन सभी पिावों को भी पार कर जाती िै, सभी धमों को, अपनेसभी आधारों को तोि़ िालती िै, उस जस्थनत का कोई वणनि निीं िो सकता, वि सभी वणनिों से परे िै। ऐसा इसभलए िै कयोंकक उस जस्थनत में केवल हदव्य ववधान िी प्रभावी िोता िै। िमारे ऊाँचेसे ऊाँचेदशनि आहद भगवान् ्को देखने के िमारे मानभसक तरीके मात्र िैं जजनमें भगवान् ्सीभमत निीं ंिो सकते। यिा ाँतक कक जब िम उन्िें असीम, अव्यकत, परम पुरुष आहद संज्ञाएाँ भी देते िैं तब भी ये केवल िमारी मानभसक पररभाषाएाँ मात्र िी िोती िैं और इनसे परमाममा ककसी भी प्रकार सीभमत निीं ंिो सकते। इसीभलए जब वि हदव्य ववधान प्रभावी िोता िै तब उस जस्थनत के ववषय में मनुष्य जान िी कैसे सकता िै और िमारी मानभसक शब्दावली में उसका ननरूपण भी असंभव िै। परंतु अपनेअिं में िम अपनी क्षुरता का बोध खो बैठते िैं और िमें लगता िै कक िमसे श्रेष्ठतर तो कोई िै िी निीं। जबकक अनतमानभसक चेतना भी लोकों के स्तरिम में वि ननमनतम स्तर िै जिााँआममा को अपनी अभभव्यजकत का पिली बार ननबाधि स्थान भमलता िै। आममा की भव्यता की सच्ची अभभव्यजकत तो अनतमानभसक स्तर से भी उच्चतर स्तरों में िोती िै। वतमिान में तो स्वयंअनतमानस िी िमारी सामान्य कल्पना के भलए ककसी चममकार से बढ़कर निीं ंिै। इसभलए इन जस्थनतयों का तो वणनि िी कैसे ककया जा सकता िै। श्रीअरववन्द िी वे पिले अग्रणी िैं जजन्िोंने अनतमानभसक भूभमका तक की यात्रा तय की िै इसभलए उनसे पूव ितो इसके वणनि की आशा भी कैसे की जा सकती थी। इसीभलए वे ेकिते िैं कक चूंकक पिले कोई भी उस माग िपर निीं ंगया था इसभलए उन्िें त्रबना ककसी पथसंकेत के स्वयं िी उस माग िको तैयार करना था। और जब वे ेअपनी कृनतयों में उस माग िका कुछ-कुछ वणनि करते भी िैं, कयोंकक अपने आप में वि इतना वणनितीत िै कक केवल श्रीअरववन्द के समान कोई हदव्य व्यजकतमव िी उसके केवल ककसी अंशमात्र का वणनि कर सकता िै, और वि भी िमारी ककन्िींभी मानभसक संरचनाओं से इतना परे िै कक उसे वास्तव में समझ पाना िमारे भलए संभव निीं ंिोता। और अपनेसभी वणनिों में श्रीअरववन्द सदा िी यि भाव रखते िैं कक जो कुछ

उन्र्िोंने वणनि ककया िै वि भी देखने का एक तरीका मात्र िी िै, िालाकाँक एक ऐसा तरीका िै जो समय को अधधक समग्र और अंतरंग रूप से देखता िै, तो भी िै एक तरीका मात्र िी। इससे िमें यि भान िोता िै कक अपनेआप में परमाममा का वि समय ककतनेवणनिातीत रूप से ववशाल िै।

श्रीभगिान् ्उिाच इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रसमत्यसभीयते ।
एतद्यो िेवत्त तं प्राहजः क्षेत्रज्ञ इनत तद्विदः ।। २।।

२. श्रीभगिान् ्ने कहाः हे कजन्तीपत्रज अजुनुज! इस शरीर को क्षेत्र कहते हैं; और जो इसे जानता है उसे ज्ञानीजनों के द्िारा क्षेत्रज्ञ कहा जाता है।

क्षेत्रज्ञं चावप मांविद्धि सिुकुषेत्रेषेज भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोज्ञुानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ।। ३।।

३. हे भारत! सभी क्षेत्रों में मजझे ेही क्षेत्रज्ञ जान; मेरे मत से क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का ज्ञान ही यथाथु ुज्ञान है।

आगे आनेवाली पररभाषाओं से यि स्पष्ट िो जाता िै कक केवल यि स्थूल शरीर िी क्षेत्र निीं, अवपतु ुवि सब भी क्षेत्र िै जजसे िमारा शरीर आश्रय देता िै, अथात् ्प्रकृनत का कायि–व्यापार, मानभसकता, िमारी सिा' की वस्तुननष्ठता (objectivity) और आममननष्ठता (subjectivity) की स्वाभाववक किया। यि ववशालतर शरीर भी केवल व्यजष्टगत क्षेत्र िी िै; परंतु इस ज्ञाता 'पुरुष' का एक अधधक व्यापक, सावभिौम, ववश्व-शरीर, ववश्व-क्षेत्र भी िै। कियोंकक, प्रमयेक दिेधारी प्राणी में यिी एक ज्ञाता ववद्यमान िैः प्रमयेक भूत में वि अपनी प्रकृनत की शजकत के इस पृथक् बाह्य पररणाम को, जजसे इसने अपनेननवास के भलये ववरधचत ककया िै, 'ईशावास्यं इदं सवं ंयजमकञ्च *, मुख्यतया और केंररूप से प्रयोग में लाता िै; यि अपनी गनतशील ऊजिा की प्रमयेक पृथक्, व्यजष्टभूत अपररवनततीि ग्रंधथ या केंर को अपनेववकासोन्मुख सामंजस्यों का प्रथम आधार और क्षेत्र बनाता िै।

---

* उपननषद् प्रकृनत के पाचँ प्रकार के शरीर या कोषों का उल्लेख करतीिैं, अन्नमय (भौनतक), प्राणमय, मनोमय, ववज्ञानमय तथा हदव्य शरीरः इर्न्िे सिमपूण िक्षेत्र, 'क्षेत्रम्'्, समझा जा सकता िै।

*CWSA 17:5

प्रकृनत के अन्दर यि जगत् ्को उस रूप में जानता िै जजस रूप में यि इस एक सीभमत शरीर में चेतना को प्रभाववत करता तथा इसके अन्दर प्रनतत्रबजमबत िोता िै; जगत् ्िमारे भलए उसी रूप में ववद्यमान िै जैसा वि मिारे पृथक् मन के अंदर हदखायी देता िै, – और अन्त में यि छोटी-सी हदखनेवाली दिेबद्ध चेतना भी अपने को इतना ववस्तृत कर सकती िै कक यि अपनेअन्दर संपूण िववश्व को समा ले, आममनन ववश्वदशनिम्।् परन्तु,ु भौनतक रूप में, यि रह्माण्ि में एक वपण्ि मात्र िी िै, और रह्माण्ि भी, यि ववशाल ववश्व भी, एक दिे एवं क्षेत्र िै जजसमें क्षेत्रज्ञ आममा ननवास करता िै।

यि बात तब स्पष्ट िो जाती िै जब गीता िमारी सिा की इस गोचर दिे के स्वरूप, प्रकृनत एवं उद्गम,

ववकारों एवंशजकतयों का ननरूपण करने ेकी ओर अग्रसर िोती िै।

यिा ााँ िमें यि स्पष्ट िोना चाहिये कक क्षेत्र कया िै और क्षेत्रज्ञ कया िै। त्रबना क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के सृजृष्ट का ननमााणिीं िो सकता। जब कोई जानने ेवाला िी निीं ंिै तब कफर संभूनत का कोई अथ िी निीं ंिै। उसी प्रकार यहद संभूनत िी निीं ंिै तो कफर जाननेवाले का भी कोई अथ िी निीं ंिै। क्षेत्र वि िै जो जाना जाता िै और क्षेत्रज्ञ वि िै जो जानता िै। यि अकाट्य ननयम िै कक इन दोनों के त्रबना अभभव्यजकत संभव िी निीं िै। यि एक मूलभूत समय िै। इसी को िम पुरुष और प्रकृनत कि देते िैं।

जो कुछ भी िम जानते िैं, अनुभव करते िैं, और जो कुछ िम कभी भववष्य में जानेंगे, समझेंगे, अनुभव करेंगे वि सभी क्षेत्र िै। इसभलए मानभसक, अनतमानभसक, ववज्ञानमय, आनन्दमय सभी जगत् ्क्षेत्र िी िैं। और इन सब को जानने ेवाला क्षेत्रज्ञ िै। इसभलये वस्तुतः केवल परमाममा िी एकमात्र क्षेत्रज्ञ िैं। वे िी समस्त क्षेत्र के एकमात्र ज्ञाता िैं, परंतु वे ककन्िीं भी साधनों से ज्ञेय निीं िैं। और उनके जजस भी अंश को जान भलया जाता िै वि क्षेत्र बन जाता िै कयोंकक केवल क्षेत्र को िी जाना जा सकता िै न कक स्वयंपरमाममा को। प्रभु के बारे में जो कुछ भी ऊाँचेसे ऊाँचा िम जान सकते िैं वि सब क्षेत्र का िी अंग िै। परमाममा किते िैं कक सभी चीजों में क्षेत्रज्ञ केवल वे स्वयंिी िैं। िालााँकक क्षेत्रज्ञ अपनेआप को व्यजष्ट पुरुष के भाव में जस्थत कर के उस दृजष्टकोण से जान सकतेिैं, अपनेआप को अन्य ककसी भाव में जस्थत करके उस अन्य दृजष्टकोण से भी जान सकतेिैं। परंतुभले वे कोई भी भाव कयों न अपनाएाँ, वि िोता उस एकमेव क्षेत्रज्ञ का िी रूप िै। और यि भाव जजतना िी गिरा और ऊाँचा िोगा उतने िी अधधक क्षेत्र का वि ज्ञाता िोगा।

इस अभभव्यजकत में ऐसा कुछ निीं िै जो पुरुष और प्रकृनत के सायुज्य के त्रबना बना िो। और इस सबके पीछे स्वयं मााँजगदमबा ववराजमान िैं। अतः सब कुछ क्षेत्र िी िै, जबकक वि ज्ञाता इतना सूक्ष्मानतसूक्ष्म िै कक सवत्रि ववद्यमान िोतेिुए भी पकड़ में निीं ंआता। असंख्यों ब्रह्माण्ड और अनेकानेक स्तरीय सृजष्ट का ननमााण केवल उन्िीं ज्ञाता को अभभव्यकत करने ेका िी तो प्रयास िै परंतुज्यों िी उसकी अभभव्यजकत िोती िै मयों िी वि क्षेत्र बन जाता िै और क्षेत्रज्ञ उसमें से बच ननकलता िै। इसी कारण िम ऐसी अद्भुत सृजष्ट देखते िैं। िमारे मानवीय दृजष्टकोण से िमें इस रूप में यि सारा जगत् ्व्यापार हदखाई देता िै। वास्तव में इसका कया स्वरूप िोगा यि तो कोई भी निीं कि सकता। परंतु चूाँकक िमारे ऋवषयों ने इसका इस रूप में वणनि ककया िै अतः िमारे भलए तो विी परम समय िै और कफर श्रीअरववन्द द्वारा इसकी पुजष्ट करने ेके बाद तो इसमें संदेि का कोई कारण भी निीं ंरि जाता।

भगवान् ्की पराप्रकृनत भी सदा िी उन्िें अभभव्यकत करने ेका पूरा प्रयास करती रिती िै परंतु वे ेतो उसके िर प्रयास में से बच ननकलते िैं। समस्त देवता, राक्षस, सभी स्थूल या सूक्ष्म लोक और उनकी सभी सृजष्टया ााँआहद सभी क्षेत्र में िी आते िैं। और यि सब िोतेिुए भी वे स्वयं िी क्षेत्र भी िैं कयोंकक उनके अनतररकत तो अन्य ककसी चीज की कोई स्वतंत्र ववद्यमानता िो िी निीं ंसकती। यि तो मात्र िमारा मानवीय दृजष्टकोण िै जो क्षेत्र और

क्षेत्रज्ञ के बीच भेद करता ि◌ै कयोंकक भगवान् ◌्के अलावा तो अन्य ककसी को कोई सिा ि◌ी निीं ◌ंि◌ै, अतः वस्तुतः वे स्वयंिी स्वयं का अवलोकन करते ि◌ैं।

श्रीअरववन्द अपनेसाववत्री मिाकाव्य में वणनि करते ि◌ैं कक ककस प्रकार यि सारी सृजृष्ट और कुछ निीं केवल परमाममा और उनकी पराशजकत के बीच एक खेल ि◌ै। भगवान् ◌्की पराशजकत या कफर परा-प्रकृनत परमाममा की अभभव्यजकत के भलए एक से एक अद्भुत लोकों का, एक से एक अद्भुत रूपों का सृजन करती ि◌ै और परमाममा उन सब से बच ननकलते ि◌ैं। परंतु परमाममा और उनकी परा-प्रकृनत का आपस में इतना अंतरंग रूप से प्रेम ि◌ै कक परा-प्रकृनत की प्रसन्नता के भलए वे ◌ेएक क्षुर से क्षुर वस्तु भी बनने को तैयार रिते िैं और परा-प्रकृनत सदा उन्िीं को अभभव्यकत करनेका प्रयास करती रिती ि◌ै। इसभलए सभी कुछ पूण ि◌रूप से स्वयं परमाममा का ि◌ी रूप ि◌ै परंतु कफर भी परमाममा स्वयंककसी भी रूप से अनंततः परे भी ि◌ैं। इस अंतरंग प्रेम के कारण ि◌ी ि◌मारे अंदर का आमम-तत्त्व सदा ि◌ी जगदंबा से घननष्ठ रूप से प्रेम करता ि◌ै और इस प्रेम को संभसर करना, इसे चररताथ ि◌करना ि◌ी जीवन का सच्चा सार ि◌ै। और इस संपूण ि◌सृजृष्ट का मूलभूत समय यिी ि◌ै कक परमाममा और उनकी धचत्−्शकक जगदंबा के अनतररकत अन्य ककसी का कोई अजस्तमव ि◌ी निीं ◌ंि◌ै और आपस में ये अंतरंगतम प्रेम में ि◌ैं। यि कोई ताजमवक या दाशननिक समय निींअवपतु सभी कुछ का मूल समय ि◌ै, सब कुछ का आधार ि◌ै। इस संबंध का सवत्रि अनुभव कोई ववरली ि◌ी आममा कर सकती ि◌ै कयोंकक यि संबंध तो सभी कुछ की पराकाष्ठा ि◌ै। वास्तव में तो किीं भी ककसी प्रकार का कोई आकषणि ि◌ोता ि◌ै वि उन्िींके बीच के आकषणि की एक छाया ि◌ै। और जजस ि◌द तक परमाममा और परा-प्रकृनत के बीच की किया ि◌मारे अंदर संभसद्ध ि◌ो पाती ि◌ै उसी ि◌द तक ि◌म उसकी प्रगाढ़ता को अनुभव कर पातेिैं, उस ि◌द तक ि◌मारा जीवन ऊपर उठ जाता ि◌ै। यि भी एक देखने का तरीका मात्र ि◌ी ि◌ै। इस प्रकार ि◌म सारे रह्माण्् को यज्ञ के आरिोण, ज्ञान के आरिोण, प्रेम के आरिोण, आनन्द के आरिोण, परम आकषणि के आरिोण के रूप में देख सकतेिैं। ि◌मारा वैष्णव तंत्र सभी कुछ का वणनि राधा और कृष्ण के बीच, ववष्णु और लक्ष्मी के बीच की लि◌ीा के रूप में ि◌ी करता ि◌ै। स्वयंश्रीअरववन्द व श्रीमाताजी नेकिा ि◌ै कक उनके अंदर दो शरीरों में एक ि◌ी आमम-तत्त्व की, एक ि◌ी चेतना की अभभव्यजकत ि◌ो रिी ि◌ै। अतः क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का तत्त्व सभी कुछ का सार ि◌ै।

तत्क्षेत्रं ◌ंयच्च यादृक्च यद्विकारर यतश्च यत् ◌्।
स च यो यत्प्रभािश्च तत्समासेन मे शृणु ज।। ४।।

४. ि◌ह क्षेत्र क्या है और उसका मिभिा, उसका उद्गम और उसके विकार क्या हैं, और ि◌ह (क्षेत्रज्ञ) क्या है और उसकी शस्क्तयाँ क्या हैं, उस सबको संक्षेप में मझज से सनज।

ऋवषसभबुहुजिा गीतं छन्दोसभविुिंवुि: पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चै हेतमज दसभविुनस्श्चतैः ।। ५।।

५. इसे ऋवषयों के द्िारा अनेक तरीकों से और विविि प्रकार के छन्दों में अलग-अलग रूपों में तथा यस्जक्तयक्जत और ननणायक ब्रह्मसूत्रों के पदों के द्िारा भी गाया गया है।

महाभूतान्यहंकारो बद्‌जधिरव्यक्तमेि च ।
इस्न्द्रयाणण दशैकं च पञ्च चेस्न्द्रयगोचराः ।। ६।।

इच्छा द्‌र्षिः सजखं ंदःजखंसंघातश्चेतना िृनृतः ।
एतत्क्षेत्रं ंसमासेन सविकारमजदाहृतम् ्।। ७।।

६-७. अव्यक्त (मूल प्रकृनत), पंच महाभूत, दस इंदद्रयाँ और एक मन, बजद्धि और अहंकार, तथा पाचूँ इंदद्रयों के विषय (तन्मात्रा), राग और द्‌र्षि, सखज और दःजख, संघात, चेतना और िृनृत (दृढ़ता), इन सब को समलाकर क्षेत्र तथा इसके विकारों के रूप में कहा गया है।

अतः िम देखते िैं कक 'क्षेत्र' शब्द से अपरा प्रकृनत की समस्त किया-व्यविार अभभप्रेेत िै। वि संपूण ि किया-व्यविार यिााँमिारी अन्तःजस्थत देिधारी आममा का कमक्षेत्र िै, एक ऐसा क्षेत्र िै जजसका वि बोध प्राप्त करती िै। प्रकृनतजन्य यि समस्त जगत् ्अपनी मूल किया में आध्याजममक दृजष्टत्रबन्दु ुके द्वारा जैसा हदखायी देता िै उसका ववववध और ववस्तृतृ ज्ञान प्राप्त करने के भलए िमें प्राचीन रष्टा-ऋवषयों, वेद और उपननषदों के ऋवषयों, के छंदों का संदभ िहदया गया िै जजनमें िम परमाममा के द्वारा सृषृट इन भुवनों का अंतःप्रेेररत एवं अंतज्ञानिमय वणनि पातेिं, साथ िी इसके भलए िमें रह्मसूत्रों की ओर भी ननहदिष्ट ककया गया िै जो िमें ताककिक एवं दाशननिक ववश्लेषण प्रदान करते िैं। गीता िमारी सिा की ननमनतर प्रकृनत का सांख्य ववचारकों की पररभाषा में संक्षक्षप्त व्याविाररक वणनि करके िी स्वयं को संतुष्ट कर लेती िै। सबसे पिले आती िै ननववशिेषे अव्यकत ऊजिा; उसमें से पंच मिाभूतों का बाह्य वस्तुननष्ठ ववकास िुआ; और इसके साथ िी इंहरयों का, बुद्धध और अिंकार का आंतर आममननष्ठ ववकास िुआ; और साथ िी, इंहरयों के पााँच ववषय भी िैं, या यों किं कक जगत् ्के इजन्रय बोध के पाचाँ भभन्न प्रकार, वे शजकतयााँ जो वैश्व-ऊजिाने अपने मूल बाह्य वस्तुननष्ठ तत्त्व के द्वारा धारण की िुई पाचाँ मूलभूत जस्थनतयों से ननभमति नाना रूपों के पदाथों से व्यविार करने ेके भलए ववकभसत की िैं, – वे ऐंहरयक संबंध जजनके द्वारा बुद्धध और इंहरयों से संपन्न अिंकार जगत् ्की रचनाओं पर किया करता िै: यिी क्षेत्र का स्वरूप िै। कफर, एक सामान्य चेतना िै जो ऊजिाको उसके कायों में पिले तो अनुप्राणणत करती और कफर उसे आलोककत करती िै; उस चेतना की एक क्षमता (faculty) िै जजसके द्वारा ऊजिा पदाथों के संबंधों को इकट्ठे धारण करती िै; साथ िी, अपनेववषयों के साथ िमारी चेतना के अंतबाह्यि संबंधों की ननरंतरता और दृढ़ता भी िै। ये क्षेत्र की आवश्यक शजकतयााँ िैं; ये सब एक िी साथ मानभसक, प्राणणक और भौनतक प्रकृनत की सवसािमान्य और सावभिौभमक शजकतयााँ भी िैं। सुख और दुःुख, राग और द्वेष क्षेत्र के प्रधान ववकार िैं। वेदांनतक दृजष्टकोण से िम कि सकते िैं कक सुख और दुःुख प्राणणक या संवेदनाममक ववकृनतयााँ जो ननमनतर शजकत की कियाओं के संपकि में आने पर आममा के सिज आनन्द पर लग जाती िैं। और इसी दृजष्टत्रबंदुं ुसे िम कि सकतेिं कक राग और द्वेष तदनुरूप मानभसक ववकृनतयााँ िैं जो ननमनतर शजकत के द्वारा आममा के उस प्रनतकियाममक संकल्प को प्रदान की जाती िैं जो इस ऊजिा के संपकों के प्रनत उसकी प्रनतकिया ननधाररित करता िै। ये सुख-दुःुखाहद द्वंद्व सकाराममक और नकाराममक भाव िैं जजनमें ननमनतर प्रकृनत का अिमय जीव संसार का उपभोग करता िै।

नकारामंमक भाव - वेदना, घृणा, दुःख, जुगुप्सा इमयाहद - ववकृत या कफर अधधक-से-अधधक अज्ञानी रूप से ववपरीत प्रनतकियाएँ िैं : सकारामंमक रूप – राग, सुख, िष,ि आकषणि - कुननदेभशत प्रनतकियाएँ िैं, अथवा अपने अच्छे-से-अच्छे रूप में भी, ये अपयाप्ति िैं तथा सच्चेआध्याजमंमक अनुभव की प्रनतकियाओं से िीन कोहट की िैं।

ये सब चीजें भमलकर इस प्राकृत जगत् ्के साथ िमारे प्रथम व्यविारों का मूलभूत स्वरूप िैं, परंतु स्पष्ट िी यि िमारी सिा का संपूण िववववरण निीं ंिै; यि िमारा वतमिान स्वरूप िै पर िमारी संभावनाओं की सीमा निीं। इससे परे भी कोई ज्ञेय वस्तु िै, 'ज्ञेयम्'्, और जब क्षेत्रज्ञ स्वयंइस क्षेत्र के पीछे जो कुछ भी िै उस सबको जानने के भलए अंतमुखि िोता िै, अपनेअंदर की ओर मुिता िै तभी वास्तववक ज्ञान, 'ज्ञानम्'् ज्ञाता का तथा क्षेत्र का सच्चा ज्ञान आरंभ िोता िै। एकमात्र वि अंतमुखिता िी िमें अज्ञान से मुकत करती िै। कयोंकक, जजतना अधधक िम अंदर जाते िैं, उतना िी अधधक पदार्थों की भीिर तथा पूणतिर यथाथतिाओं को समझतिैं और ईश्वर एवं जीव तथा जगत् ्एवं उसकी कियाओं दोनों के पूण िसमय को पकि पातिैं। इसभलये, हदव्य गुरु कित िैं कक क्षेत्र और उसके ज्ञाता दोनों का एक साथ ज्ञान िी, 'क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोज्ञानिम्'्, संयुकत और यिा ँतक कक एकीकृत आममज्ञान तथा ववश्व-ज्ञान िी वास्तववक ज्ञानोद्दीपन और एकमात्र प्रज्ञा िै। कयोंकक, आममा और प्रकृनत दोनों िी रह्म िैं, ककंतु प्राकृत जगत् ्के वास्तववक समय को तो केवल उस मुकत ज्ञानी द्वारा िी खोजा सकता िै जजसे आममा का समय भी ज्ञात िो। एक रह्म, आममा और प्रकृनत के अंदर ववद्यमान एक यथाथतिा िी समस्त ज्ञान का ववषय िै।

िम जजतना अधधक अपनी गिराइयों में जाते जायगें उतनी िी अधधक भव्यताएँ िमें गोचर िोती जाएँगी और इन गिराइयों का कोई अंत निीं ंिै। िमारे आध्याजमंमक साहिमय में जजन ककन्िीं भी ऊँचेसे ऊँचेलोकों का ननरूपण िुआ िै या कभी िो सकता िै, वे सभी क्षेत्र िैं। क्षेत्रज्ञ स्वयंपरमाममा िैं।

प्रश्न : जब किा जाता िै कक 'अंतमुखि िोओ' तब ककसे अंतमुखि िोने ेको किा जाता िै?

उिर : बाह्य सतिी चेतना, जो िम अपने आप को प्राय: मानते िैं, उसे अंतमुखि िोना िोता िै। और जब वि अंतमुखिीन िोगी तब उसे अधधक ववशालतर क्षेत्र गोचर िोगा। सतिी चेतना में सीभमत और संकीण िक्षेत्र गोचर िोता िै। जैसे-जैसे िम भीतर अधधक गिराई में जायगें या ऊध्वमुिख आरोिण करेंगे वैसे-वैसे चीजों का एक अधधक गिरी और उच्चतर चेतना से अनुभव िोगा जो चीजों के अधधक गिन समयों को िमारे समक्ष प्रकट करता िै और िमें अधधक ववशाल क्षेत्र का ज्ञान िोता िै। और इस आंतररक और ऊध्वमुिख गनत का कोई अंत निीं ंिै और ज्यों-ज्यों यि गनत चलती रिती िै मयों-मयों भागवत् ्चेतना को अपनेआप को अधधकाधधक प्रकट करने का अवसर प्राप्त िोता रिता िै। वास्तव में तो सभी कुछ चेतना की जस्थनत पर ननभरि करता िै। चेतना की जैसी जस्थनत िोगी, वैसी िी सृजृष्ट िमें गोचर िोगी। यहद ऐसा न िोता और कोई ननयत ननधारिरत सृजृष्ट िी िोती तब तो कफर चेतना के भेद से भी सृजृष्ट वैसी की वैसी िी हदखाई देनी चाहिये थी। परंतु ककसी भी संवेदनशील और कुछ संस्काररत व्यजकत को भली-भानाँत इसका बोध िोता िै कक ककस प्रकार चेतना के पररवतनि के साथ िी साथ संपूण िदृश्य िी बदलता जाता िै।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ।। ८।।

८. अभिमान और दंभ का न रहना, अहिंसा, क्षमा, सरलता, (मन और शरीर की) शुचिता, दृढ़ता और स्थिरता, आत्म-संयम और आचार्य की उपासना।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ।। ९।।
असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ।। १० ।।

९-१०. इन्द्रियों के विषयों के प्रति अनासक्ति, अहंभाव का अभाव, जन्म, मृत्यु,जरा,व्याधि और दुःख के दोष का बोध होना, पुत्र, स्त्री, गृह इत्यादि के प्रति आसक्ति और ममत्व के भाव का अभाव, और समस्त प्रिय और अप्रिय घटनाओंके मध्य सतत समचित्तता ।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ।। ११ ।।
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ।। १२ ।।

११-१२. अनन्य योग के द्वारा मेरे प्रति अविचल भक्ति, निर्जन स्थान में निवास और मनुष्यों के समूहों तथा सम्मेलनों के प्रति रुचि का अभाव, आध्यात्मिक ज्ञान और तत्त्वज्ञान के यथार्थ अर्थ का प्रत्यक्ष दर्शन, इसे ही ज्ञान कहा गया है, और जो इससे विपरीत है वह अज्ञान है।

इसके बाद गीता हमें बताती है कि आध्यात्मिक ज्ञान क्या है, या यों कहें कि वह हमें यह बताती है कि ज्ञान की शर्तें क्या हैं, तथा उस मनुष्य के लक्षण एवं चिह्न क्या हैं जिसकी आत्मा आंतरिक ज्ञान अथवा प्रज्ञा की ओर मुड़ी होती है।.... सबसे पहला लक्षण है एक विशेष प्रकार की नैतिक अवस्था, प्राकृत सत्ता का सात्त्विक संचालन।.... इसके बाद उसमें होता है पूर्ण अनासक्ति और समता का एक अधिक उदार और अधिक मुक्त भाव, इंद्रियों के विषयों के प्रति होनेवाले प्राकृत सत्ता के आकर्षण से दृढ़ विरक्ति और सामान्य मानव को उत्पीड़ित करनेवाली उस अनवरत कोलाहलपूर्ण अहं-बोध, अहंभाव तथा अहं-प्रेरणा की मांगों से आमूल मुक्ति।... अंत में, जो वस्तुएँ वास्तव में महत्त्वपूर्ण हैं उनकी ओर होता है एक तीव्र अंतर्मुखी झुकाव, आत्मतत्व के सच्चे अभिप्राय तथा व्यापक तत्त्वों का दार्शनिक अनुभव, आंतरिक आध्यात्मिक ज्ञान और ज्योति की शांत निरंतरता, अविचल भक्तियोग, ईश्वर-प्रेम और विश्वव्यापी एवं सनातन उपस्थिति के प्रति हृदय की प्रगाढ़ और अखण्ड आराधना।

जब िम परमाममा की ओर चलते िैं तब उसके सिज पररणामों के रूप में िमारे अंदर समता, अिंकार से मुजकत आहद चीजें ववकभसत िोती िैं। सामान्यतया समता, अिंकार से मुजकत, इंहरयों के संयमन आहद को िम उद्देश्य मान बैठते िैं जबकक अपनेआप में ये भगवान् ्की ओर चलने के पररणाम िैं। भ्रभमत िोकर व्यजकत इन्िीं को उद्देश्य मान बैठता िै और इन्िें प्राप्त करने ेका प्रयास भी करता िै परंतु इससे उसे प्रायः ननराशा िी िाथ लगती िै। अतः करने योग्य काम केवल यि िै कक अनन्य रूप से परमाममा की ओर गनत की जाए और उन्िीं के ननणयि के ऊपर यि छोड़ हदया जाए कक वे िमारे अंदर जजस चीज को जजस मात्रा में ववकभसत करना चािें वैसे करें। यहद उन्िें िमारे अिंकार से प्रयोजन िो तो इसका कोई कारण निीं कक कयों िमें अिंकार से मुकत िोने की चेष्टा करनी चाहिये। इसभलए सच्चेरूप से तो भगवान् ्स्वयं िी तय करेंगे कक िमारे अंदर की कौनसी चीज को ववकभसत करना िै, ककसे पररष्कृत करना िै और ककसका ननमूलिन करना िै।

ज्ञेयं यत्तत्प्रिक्ष्यासम यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनाददमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदच्यते।। १३।।

१३. स्जसे जानना है और स्जसे जानकर मनष्ुय अमृतत्व को प्राप्त करता है उसका अब म ैंिणनु करता हूँ; िह (ज्ञेय) आदद से रदहत परं ब्रह्म है; उसे न सत् ्कहा जाता है न असत्।्

परामपर ननरपेक्ष रह्म की चेतना तथा वैयजकतक एवं वैश्व सिा पर पड़नेवाले उसके प्रभाव के प्रनत सचेतन िोना िी चरम तथा सनातन ज्ञान िै। िमारे मन-बुद्धध ववभभन्न धाराओंसे इस ज्ञान का वववेचन कर सकतीं, इसके आधार पर ववरोधी दशनिों की रचना कर सकतीं, इसे सीभमत, संशोधधत कर सकते िैं, इसके ककन्िींपिलुओं पर बिुत िी अधधक बल दे सकतीं और दूसरों पर बिुत कम, इससे यथाथ िया त्रुहटपूण िननष्कष ि ननकाल सकते िैं; परन्तु िमारे बौद्धधक ववभेदों और अपूण िननरूपणों से इस चरम तथ्य में कोई अंतर निींपड़ता कक यहद िम ववचार और अनुभव को इनकी पराकाष्ठा तक ले जाएँ तो जजस ज्ञान में ये पररसमाप्त िोंगे वि यिी िै। अध्याமम-ज्ञान के योग का लक्ष्य इस शाश्वत सद्वस्तु, इस आममा, इस रह्म, इस परामपर के अनतररकत और कुछ निीं िो सकता जो सबके ऊपर और अन्दर अवजस्थत िै तथा जो व्यजकत में अभभव्यकत िोता िुआ भी नछपा

िुआ िै, ववश्व में प्रकट िोकर भी प्रच्छन्न िै.. ...जजसमें एकाग्र िोने से िमारी तमसाच्छन्न तथा प्रकृनत के िुास से पररवेजष्टत अंतराममा अपनी अमर और परामपर सिज मूल चेतना को पुनः प्राप्त करके उसका उपभोग करती िै।

[सत् ्और असत्]् चरम ववप्रनतषेध (antinomy) िैं जजनके मध्य से कक िम अज्ञेय की ओर झाकाँतेिैं।... समस्त ववप्रनतषेध एक-दूसरे का आमना-सामना करते िैं ताकक वे अपने ववरोधी पिलुओंमें ववद्यमान एकमेव समय को पिचान लें और संघष िके तरीके से दोनों के भीतर के आपसी ऐकय को ग्रिण कर सकें। रह्म िी आहद और अन्त िै। रह्म िी एकमेव तत्त्व िै जजसके अनतररकत और कुछ भी अजस्तमवमान निीं ंिै।

परन्तु यि ऐकय अपनेस्वरूप में अननवचिनीय िै। जब िम इसे मन के द्वारा ववचार में लानेका प्रयमन करते िैं तो िमें अवधारणाओंऔर अनुभवों की अनन्त श्रृंखलाओंमें से िोकर चलना िोता िै। और कफर भी अन्त में िम अपनी ववशालतम अवधारणाओं और अपनेव्यापकतम अनुभवों को भी नकारनेके भलए बाध्य िोतेिैं ताकक इस चीज की अभभपुजष्ट कर सकें कक परम यथाथतिा समस्त पररभाषाओं या वणनिों से परे िै। िम भारतीय ऋवषयों के इस सूत्र पर पिुँचते िैं कक 'वि' यि निीं ंिै, 'वि' वि निीं, नैनत नेनतः ऐसा कोई भी अनुभव निीं ंिै जजससे िम 'उसे' सीभमत कर सकतेिैं, कोई भी ऐसी अवधारणा निीं कक जजससे उसे पररभावषत ककया जा सके।

चरम ववप्रनतषेध (antinomy) तो यिी िै कक परमामम अजस्तमवमान िैं भी और निींभी। ज्यों िी मानभसक रूप से िम उनके स्वरूप का वणनि करने का प्रयास करते िैं मयों िी उसका ववपरीत भी उतना िी सिी िो जाता िै ताकक परमामम ककसी एक सूत्र में न बंध जाएँ। और परमामम दोनों ववपययिों में िोतेिुए भी दोनों से परे रितेिैं। वे एक-अनेक, वैयजकतक-ननवैयैजकतक, सचेतन-अचेतन, सवज्ञि-अज्ञानी आहद सभी रूपों में अभभव्यकत िोतेिुए भी इन सभी से परे रिते िैं।

____

* अज्ञेय के द्वारा अपने-आप को ववश्व-अजस्तमव के स्वतंत्र आधार के रूप में भसद्ध करना िी शुद्ध सत् ्िै। इसके ववपरीत 'उसकी' समस्त ववश्व-अजस्तमव से मुकुतावस्था को िम असत् ्की संज्ञा देतेिैं, - अथातित् ्वास्तववक अजस्तमव के उन सभी प्रमयक्ष रूपों से स्वतंत्रता जो ववश्वगत चेतना अपने-आप के भलए ननरूवपत करती िै, यिाँ तक कक अमयंत अमूतू िरूपों से, अमयंत ववश्वातीत रूपों से भी स्वतंत्रता। अज्ञेय उन्िेंअपने-आप को यथाथ िअभभव्यजकत मानने से मनिी निीं करता, परंतु वि सभी अभभव्यजकत से अथवा ककसी भी अभभव्यजकत से अपने-आप को सीभमत करना अस्वीकार करता िै। जजस प्रकार शान्त-ननश्चलता सकियता को व्यकत िोनेदेती िै इसी प्रकार असत् ्सत् ्को व्यकत िोने देता िै। इस साथ-साथ चलतेननषेध और अभभपुजष्ट के द्वारा, जो कक सभी ववपरीत तत्त्वों की तरि िी एक-दूसरे के ववनाशक न िोकर पूरक िैं, प्रबुद्ध मनुष्य के भलए साथिी-साथ यि अनुभूनत प्राप्त करना संभंव िो जाता िै कक जजस प्रकार चेतन आमम-सत् ्एक यथाथ ितत्त्व िै वैसे िी सवातिीत अज्ञेय भी विी यथाथ ितत्त्व िै।

'वे' िैं भी और निीं ंभी िैं, और साथ िी िोने और न िोने से परे भी िैं। इसीभलए िमारे पुराण उनका वणनि करते िुए 'नेनत, नेनत' और 'इनत, इनत' दोनों िी तरीकों से उनका स्वरूप बताते िैं। ऐसी कोई भी चीज निीं ंिै जो परमामम से उद्भूत न िुई िो और जजसमें वे स्वयं अभभव्यकत न िोते िों और कफर भी वे ेउससे परे रिते िैं। इन सब ववपययिों और उनके समन्वय के माध्यम से इतना अवश्य िै कक िमारी बुद्धध कुछ अधधक नमनीय िो जाती िै जजससे कक जजस अनतशयता में धगरनेकी वि भूल करती थी उससे कुछ बचनेकी संभावना बन जाती िै कयोंकक उसे यि भान िो जाता िै कक परमामम िमारी ककन्िींभी पररभाषाओं से सवथिा परे िैं।

सितु:पाणणपादं तत्सितुोऽज्ञक्षसशरोमखुज।्

सितु: श्रनजतमल्लोके सिमिातृ्य नतष्ठनत ।। १४।।

१४. उस (ब्रह्म तत्त्ि) के हाथ और पैर सब ओर हैं, उसके नेत्र, ससर और मखज सभी ओर हैं, उसके कान सिुतर हैं, िह इस लोक में सबको ढककर (हमारे सब ओर व्याप्त होकर) स्मथत है।

सिेस्न्द्रयगणजभासं ंसिेस्न्द्रयवििस्जतुम् ्।
असक्तं सिभृच्चैि ननगुणं गजणभोक्तृ ृच ।। १५।।

१५. िह इस्न्द्रयों से रदहत होकर भी सममत इस्न्द्रयों और उनके गणजों में प्रनतत्बंत्बत या आभाससत होता है; अनासक्त होते हजए भी सभी कजछ का िारक है; सममंतोगजरहोकर भी गणोंका भोक्ता है।

बदहरन्तश्च भूतानामचरं चरमेि च ।
सूक्ष्मत्िात्तदविज्ञेयं ंदूरमथं ंचास्न्तके च तत् ्।। १६ ।।

१६. सममत प्राणणयों के भीतर और बाहर है, चर-अचर *, दूरमथ तथा अत्यंत समीप ये सब एक ही साथ 'िही' है; िह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म होने ेके कारण हमारे ज्ञान से अतीत है।

िमारे मन का जैसा गठन िै उसमें अपने विकार के कारण उसे यि बात कदाधचत् ्िी समझ में आती िै कक परमाममा िमारी ककन्ती से पररभाषाओं की पक़ि में निींआ सकते, वे िमारे ककन्िींभी मानभसक ननरूपणों से सवथिा परे िैं। िम यि तो सरलता से देख और समझ पाते िै कक पाशववक चेतना मानवीय चेतना की किया को निीं ंसमझ सकती, परंतु इसी बात को अपनेअिं के कारण िम स्वयं अपनेऊपर लागू करने ेसे चूक जाते िैं कक मानवीय चेतना भी भागवत् ्चेतना को समझ निीं ंसकती। गीता में िी इससे पूव िके एक अध्याय में िम चचाकर िी चुके िैं कक ककस प्रकार भगवान् ्सभी रूपों में िैं भी और निींभी िैं और साथ िी इन सब रूपों से सवथिा परे भी िैं। इस सब का इतना लाभ अवश्य िै कक िमारी बुद्धध अनतशय रूप से अपने पूवाग्रिों से भलप्त न रिकर कुछ अधधक नमनीय िो जाती िै।

पुरुष और प्रकृनत के सभी संबंध रह्म की ननमयता के अंदर घटनाएँ िैं इन संबंधों के दपणि और घटक के रूप में इजन्रयााँ और गुण इन परम् ्पुरुष को उन कियाओं के प्रस्तुनतकरण के साधन िैं जो वस्तुओं में उनकी अपनी िी शजकत ननरंतर कियाशीलता में मुकत करती रिती िै। वे स्वयं इंहरयों की सीमाओं से परे िैं,

---

* िमें यि स्मरण रखना िोगा कक जस्थनतशीलता और गनत, ननरपेक्ष के ववषय में उसी प्रकार िमारे मानभसक ननरूपण मात्र िैं, जजस प्रकार एकमव और बिुमव िैं। ननरपेक्ष जस्थनतशीलता और गनत दोनों से परे िै, जैसेकक वि एकमव और बिुमव से परे िै। परन्तु वि एक और जस्थनतशील में शाश्वत रूप से प्रनतजष्ठत रिता िै और गनतशील और बिु में अनंत, अधचंमंय एवंसुननजश्चत रूप से अपने-आप के चककर काटता रिता िै। ववश्व-अजस्तमव भशव का एक ऐसा आनंदमय नृमय िै जो ईश्वर की दिे को िमारी दृजष्ट के सामने असंख्यगुणा बढ़ाता िै; इस नृमय के िोतेिुए भी वि ननववकार शुद्ध सत् ्जिााँथा विीं और जैसा था वैसा िी, जो कुछ सदा सिै और रिेगा ठीक विी बना रिता िै; इस ववश्व-नृमय का एकमात्र परम उद्देश्य िै नृमय का आनंद।

[परम तत्त्व] न सत् ्िै न िी असत्;् न संभूंनत िै न असंभूनत; न सगुण िै न ननगुणि: न चैतन्य िै न ज़ि; न पुरुष िै न प्रकृनत, न आनन्द िै न ननरानन्द: न मनुष्य िै, न देवता और न िी पशु; 'वि' इन सब चीजों से परे िै, वि जगत् ्के रूप में सभीचीजों कोथामेरखतिौऔर समाहितरखता िै वि िी ये सब चीजें और विी येसबचीजें बनता िै।

वे सब वस्तुओं को देखतिैं पर स्थूल आखोँ से निीं, ं सब बातों को सुनतिैं पर स्थूल कणों से निीं, सब वस्तुओंके ववषय में सचेत अथवा अभभज्ञ िैं, ककन्तु सीभमत करने ेवाले मन से निीं- मन तो केवल ननरूवपत करता िै पर वास्तव में जान निीं ंसकता। ककन्िीं भी गुणों द्वारा ननधारिरत न िोते िुए, वे अपनेतत्त्व में सब गुणों को धारण तथा उनका ननधारिण करते िैं और अपनी िी प्रकृनत की इस गुणाममक किया का उपभोग करते िैं। वे ेजो कुछ करते िैं उसमें ककसी के साथ भी आसकत निीं ंिैं, ककसी से बद्ध निीं, ककसी के भी अंदर भलप्त या मोहित निीं ं िैं; शांत-जस्थर िोतिुए वे अपनी ववश्व-व्यावपनी शजकत के समस्त कम,ि प्रयास और आवेग को ववशाल तथा अमर स्वातन्त्र्य के साथ धारण करते िैं।

अविभक्तं च भूतेष जविभक्तसमि च स्मथतम् ्।
भूतभतृ ुच तज्ज्ञेयं ग्रससष्ण जप्रभविष्णज च ।। १७।।

१७. िह प्राणणयों में अविभक्त होतेहजए भी विभक्त प्रतीत होता है। िह जो सृसृष्टकतुा,ु ितुा और प्राणणयों को प्रसने िाला है, िह ज्ञेय है।

सीभमत को अववभकत के एक ववभाग के रूप में देखा जाता िै, परन्तु ऐसी कोई बात निीं ंिै: कयोंकक यि ववभाग केवल हदखने ेमें िी िै, एक सीमा-ननधारिण तो िोता िै परन्तु कोई वास्तववक पाथकिय समभव निीं ंिै। जब मि ककसी वृकूष या अन्य ककसी पदाथ िको स्थूल आखोँ से न देख कर आंतररक दृजष्ट और आन्तररक इंहरयबोध से देखतिैं तो जजस तत्त्व के ववषय में िम सचेत िोते िैं वि उस वृकूष या उस पदाथ िका संघटन करने वाला एक अनन्त अखण्ड् सत्–्तत्त्व िोता िै जो उसके प्रमयेक परमाणु और अणुमें व्याप्त िोता िै, जो अपने-आप में से उनकी रचना करता िै, जो समपूण िप्रकृनत का, समभूनत की प्रकिया का, अन्तःस्थ ऊजािकी किया का ननमाणि करता िै; ये सभी चीजें विी िै, ये सभी यि अनन्त, यि सत्–्तत्त्व िी िैः िम उसे इस रूप में देखतिैं कक वि अववभकत रूप से बने रिते िुए अपना ववस्तार करता िै और समस्त पदाथों को एकीभूत करता िै जजससे कक कोई
भी पदाथ ि यथाथ ि में उससे पृथक् निीं और न दूसरे पदाथों से पृथक् िै। गीता किती िै कक "वि भूतों में अववभकत
िै और कफर भी ऐसे जस्थत िै मानो ववभकत िो।" इस प्रकार प्रमयेक पदाथ िविी अनन्त िै और अन्य सभी पदाथों के साथ भी, जो कक उसे अनन्त के िी नाम, रूप और शजकतयाँ िैं, सार तत्त्व में एक िै।
समस्त ववभागों और ववभाजनताओं में यि अलग ... का गमपता िै जजसका संकेत उपननषद्
के इस वचन में ककया गया िै: - "यि पूण िै और वि पूण िै; पूण िमें से पूण िघटानेपर पूण िी अवभशष्ट रिता िै।"

रह्म के भलये कोई पूण िऔर अंश निींतिे, अवपतु प्रमयेक पदाथ िी स्वयं पूण िै और रह्म के पूणमिव से लाभाजन्वत िोता िै।...यि अववभकत िै और सौर-मंलि एवं ंचीहटयों की बांबी को एक साथ िी न केवल अपना समान िी अंश अवपतु अपना संपूण िस्वमव दे देता िै।

जब परमामम‍ा के स्वरूप का ऐसा वणनि िोता िै कक अणखल रह्माण्भी उनकी सिा के कण मात्र के बराबर िै तो व्यजकत कल्पना करता िै कक परमामम‍ा इससे अनंत रूप से ववशाल और मिान् ्िोंगे। परंतु इसके साथ िी यि भी उतना िी समय िै कक एक छोटे से छोटे कण में भी परमामम‍ा पूण िरूप से ववद्यमान िोतिें। किने ेका अथ िै कक ककसी बालू के कण में भी परमामम‍ा उतने िी पूण िरूप से ववद्यमान िोतिें जजतने ेपूण िरूप से वे असंख्यों रह्माण्िों में व्याप्त रितिें। यिी आमम‍ा की गणणत िै। 'पूणमिदः पूणभिमदम् ्पूणात्ि्पूणमुिदच्यते,े पूणस्यि पूणमािदाय पूणमेिवावभशष्यते। - यि ऐसी गणणत िै जिा ाँयि भी पूण िै और वि भी पूण िै और पूण िमें से पूण िको ननकालने पर भी पूण िी बचता िै। यि ककसी सीभमत चीज की गणणत निींअवपतु ुअनंत की गणणत िै। इसभलए परमामम‍ा को अन्यत्र किीं खोजनेकी आवश्यकता निीं ंिै। वे िमारे अपनेअंदर पूण िरूप से ववद्यमान िैं।

ज्योनतषामवप तज्ज्योनतमतमसः परमच्जयते।
ज्ञानंज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदद सिुमुय विस्ष्ठतम् ्।। १८ ।।

१८. िह, सममत ज्योनतयों की परम ज्योनत, अन्िकार से परे कहा जाता है: िह ज्ञान द्िारा प्राप्त होनेिाला ज्ञेय है और ज्ञानगम्य है, सभी के हृदयों में स्मथत है।

इनत क्षेत्रं ंतथा ज्ञानंज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भािायोपपद्यते ।। १९।।

१९. इस प्रकार क्षेत्र, ज्ञान और ज्ञेय संक्षेप में बता ददये गये हैं। इस प्रकार जानते हजए मेरा भक्त मेरे भिा को, मेरी सत्ता की प्रकृनत और पद को प्राप्त होता है।

[इसभलए, यि जानना] समय की मिज कोई बौद्धधक पररकल्पना या स्पष्ट पिचान िी निीं, न वि मिारी सिा के ववभभन्न प्रकारों का कोई आलोककत मनोवैज्ञाननक अनुभव िी िै। यि एक 'साक्षामकार' या 'उपलजब्ध' िै, इस शब्द के पूण िअथ िमें; यि परमामम‍ा, परामपर तथा ववश्वगत भगवान् ्का िमारे भलये और िमारे अन्दर साक्षामकार कर लेना, उन्िेंयथाथ िबना लेना िै, और उसके बाद यि असंभव िो जाता िै कक िम सिा के ववभभन्न प्रकारों को उस परम् ्आमम‍ा के प्रकाश में तथा उनके सच्चे स्वरूप में उन्िें िमारे जगत्–्अजस्तमव की मनोवैज्ञाननक और भौनतक अवस्थाओं के बीच आमम‍ा की समभूनत (becoming) के प्रविा के रूप में न देखकर ककसी अन्य रूप में देखें। इस उपलजब्ध में तीन िभमक कियाएँ िैं, आंतररक दृजष्ट, पूण िआन्तररक अनुभव और तादामम‍य - [मेरी प्रकृनत और पद, मद्भावं, की उपलजब्ध ।।

यि आंतररक दृजष्ट, एक ऐसी शजकत जजसे प्राचीन ऋवषयों द्वारा इतना अधधक मूल्य हदया जाता था,
एक ऐसी शजकत जो ककसी मनुष्य को पिले की तरि ननरा ववचारक न छोड़कर ऋवष या कवव बना देती थी,
अन्तराममा के अन्दर एक प्रकार का ऐसा प्रकाश िै जजसके द्वारा अदृष्ट वस्तुएँ इसके भलये केवल बुद्धध के भलये
िी निीं, ं अवपतु आममा के भलये भी - उतनी िी प्रमयक्ष और वास्तववक िो जाती िैं जैसी कक दृष्ट वस्तुएँ स्थूल आँख
के भलये िोती िैं। भौनतक जगत् ् में ज्ञान के सदा िी दो प्रकार िोतिें, प्रमयक्ष और परोक्ष, प्रमयक्ष का तामपय िै उस
वस्तु का ज्ञान जो आखोँ के सामनेिै और परोक्ष का तामपय िै उस वस्तु का ज्ञान जो िमारी दृजष्ट से दूरू और परे
िै। जब वस्तुिमारी दृजष्ट से परे िो तो िम आवश्यक रूप से उसके ववषय में अनुमान, कल्पना एवं उपमान या
तुल्यता (analogy) के द्वारा, जो दूसूरे लोग उसे देख चुके िैं उनके वणनिों को सुनकर अथवा यहद उपलब्ध िों तो
उसके धचत्राममक या अन्यववध ननरूपणों का अध्ययन करके िी उसके बारे में ककसी धारणा पर पिुँचने ेके भलये
बाध्य िोते िैं। इन सब साधनों को एक साथ प्रयुकत करके िम अवश्य िी उस वस्तु के ववषय में ककसी न्यूनाधधक
सटीक धारणा पर या उसकी ककसी सांकेनतक प्रनतमा पर पिुँच सकते िैं, परन्तु स्वयंउस वस्तु की िमें अनुभूनत
निीं ंिोती; वि अभी तक िमारे भलये कोई ऐसी यथाथतिा निीं ंिोती जजससे ग्रिण ककया या समझा जा चुका िो,
अवपतु ककसी यथाथतिा का केवल िमारा वैचाररक या धारणाममक ननरूपणमात्र िोती िै। परन्तु एक बार जब िमने
उसे आखोँ से देख भलया िोता िै- कयोंकक और कोई भी इजन्रय पयाप्ति निीं ंिै, - तो िम उसे अधधकृत और उपलब्ध
अथवा अनुभूत कर लेते िैं; वि विाँ िमारी तृपूत सिा में सुननजश्चत-सुरक्षक्षत िोती िै, िमारा ज्ञानगत अंग िोती िै।
आंतराजममक चीजों के संबंध में और आममा के संबंध में भी ठीक यिी ननयम लागू िोता िै। भले िम दाशननकों या
गुरुओं ंसे अथवा प्राचीन ग्रन्थों से आममा के ववषय में स्पष्ट और प्रकाशपूण िउपदेश सुन लें; भले िम ववचार,
अनुमान, कल्पना, उपमान या अन्य ककसी उपलब्ध साधन के द्वारा इसकी मानभसक आकृनत बनानेया
मानभसक पररकल्पना करने का यमन भी कर लें; भले िी िम उस पररकल्पना को अपनेमन में दृढ़तापूवकि धारण
कर लें और एक समग्र एवं अनन्य एकाग्रता के द्वारा उसे अपने अन्दर जमा भी लें; ककन्तु िमनेअभी तक
आममा को उपलब्ध निीं ककया िै, िमनेईश्वर के दशनि निींककये िैं। जब सुदीघ िऔर ननरंतर एकाग्रता के बाद या
अन्य साधनों के द्वारा मन का आवरण ववदीण िया दूरू कर हदया जाता िै, जब प्रबुद्ध अथवा जागृत मन के ऊपर
ज्योनत का प्रवाि, ज्योनतमयि रह्म, फूट पि़ता िै और पररकल्पना एक ऐसी ज्ञान-दृजष्ट को स्थान दे देती िै
जजसमें आममा वैसा िी प्रमयक्ष, वास्तववक और मूत ििोता िै जैसी कक स्थूल वस्तु नेत्र के भलये िोती िै, केवल तभी
मि ज्ञान में उसे उपलब्ध करते िैं; कयोंकक तब िमनेदशनि कर भलये िोते िैं। उस दशनि के बाद प्रकाश के क्षीण
िोने ेके चािे ककतनी काल, अन्धकार के चािे ककतनी अन्तराल आममा को पीड़ित कयों न करें, यि जजस वस्तु
को एक बार अधधकृत कर चुकी िै उसे इस प्रकार से कभी निीं ंखो सकती कक पुनः प्राप्त िी न कर सके। अनुभव
अननवाय िरूप से नवीनीकृत िोता रिता िै और ननश्चय िी और भी अधधक ननयभमत रूप से िोने ेलगता िै जब तक
कक वि स्थायी िी निीं ंिो जाता; ऐसा कब और ककतने ेकम समय में िोता िै यि उस भजकत एवं ंदृढ़ता पर ननभरि
करता िै जजसके साथ िम माग िपर िटे रिते िैं और गुप्त भगवान् ्को अपनेसंकल्प या प्ेरम के द्वारा घेर लेते िैं।

---

* ज्ञानयोगकीत्रत्रववध कायप्रिणाली का यिी भाव िै- श्रवण, मनन, ननहदध्यासन।

यि आन्तररक दृजष्ट मनोवैज्ञाननक अनुभव का एक प्रकार ि◌ै; ककन्तु आन्तररक अनुभव उस दृजष्ट तक ी सीभमत निीं; दृजष्ट केवल उद्घाहटत करती ि◌ै, वि आममा का आभलंगंन निीं ◌ंकरती। ठीक उसी प्रकार जैसे आाँख को, यद्यवप वि अकेली ि◌ी साक्षामकार का प्रथम आभास ले आनेमें सक्षम ि◌ोती ि◌ै, सवाभिलंगंनकारी ज्ञान प्राप्त करनेके भलए पिले स्पश ि◌तथा अन्य ज्ञानेंहरयों के अनुभव की सियता को बुलाना पड़ता ि◌ै, इसी प्रकार आममा के अन्तदिशनि को भी ि◌में अपने सभी अंगों में इसके अनुभव के द्वारा पूण ि◌बनाना चाहिये। ि◌मारी समपूण ि◌ सिा को, न कक केवल ि◌मारी आलोककत ज्ञान-दृजष्ट को ि◌ी, भगवान् ◌्की मागाँ करनी चाहिये। कयोंकक, चूाँकक ि◌मारे अंदर प्रमयेक तत्त्व आममा की एक अभभव्यजकत मात्र ि◌ै इसभलये प्रमयेक पुनः अपनी यथाथतिा तक पिुाँच सकता तथा उसकी अनुभूनत प्राप्त कर सकता ि◌ै। ि◌म आममा का एक मानभसक अनुभव प्राप्त कर सकतिें और उन सब ऊपरी तौर पर अमूत ि◌वस्तुओं को - चेतना, शजकत, आनन्द और इनके नानाववध रूपों एवंकियाओं को - जो मन के भलये सिा का स्वरूप ि◌ै, ठोस यथाथतिाओं के रूप में ग्रिण कर सकते ि◌ैं: इस प्रकार मन ईश्वर के ववषय में संतृपूत ी जाता ि◌ै। 'प्रेम' और हृद्गत आनन्द के द्वारा, - अपनी अन्तःजस्थत आममा एवं ववश्वगत आममा के द्वारा, तथा जजनके भी साथ ि◌मारे समबन्ध ि◌ैं उन सब में जस्थत आममा के प्रेम एवं आनन्द के द्वारा - ि◌म आममा की भावाममक अनुभूनत प्राप्त कर सकतिें: इस प्रकार हृदय ईश्वर के ववषय में संतृपूत ि◌ो जाता ि◌ै। सौन्दय ि◌में ि◌म आममा की एक सौंदयबिोधी या रसाममक अनुभूनत प्राप्त कर सकते ि◌ैं तथा उस परम यथाथतिा का, जो ि◌मारे द्वारा या प्रकृनत के द्वारा सृषूट सभी कुछ के भीतर सौंदयबिोधी मन तथा इजन्रयों के प्रनत अपने आकषणि में सवि–सुन्दर ि, आनन्द-बोध तथा रसास्वादन प्राप्त कर सकतिें, इस प्रकार इजन्रयााँ ईश्वर के ववषय में संतृपूत ि◌ो जाती ि◌ैं। यिा ◌ाँतक कक समस्त जीवन एवंरचना में तथा उन शजकतयों, बलों एवं सामथ्यो की, जो ि◌मारे या दूसूरों के द्वारा या जगत् ◌्में किया करते ि◌ैं, सभी कियाओं में भी ि◌म आममा का प्राणणक एवं ◌ंस्नाययवक अनुभव और लगभग भौनतक अनुभव या संवेदन भी प्राप्त कर सकतिें: इस प्रकार प्राण और शरीर भी ईश्वर के ववषय में संतृपूत ि◌ो जाते ि◌ैं।

भगवान् ◌्का अनुभव केवल दृजष्ट तक ि◌ी सीभमत निीं ◌ंि◌ोता। उनका अनुभव ि◌म अपनी सभी इजन्रयों के माध्यम से, यिााँतक कक रोम-रोम में कर सकतिें। ि◌मारी सभी इजन्रयों का औधचमय ि◌ी यिी ि◌ै कक वे अपने-अपने तरीके से भगवान् ◌्का साक्षामकार या अनुभव प्राप्त कर सकें। श्रीअरववन्द के अनुसार अनतमानभसक सिा में भी अपनेप्रकार की इंहरयााँ ि◌ोंगी जजनका अनुभव या संवेदन प्राप्त करनेका अपना ि◌ी ववशेषे तरीका ि◌ोगा। अनतमानस से ऊपर के स्तर पर भी संभवतः अपने प्रकार की इंहरयााँ ि◌ोती ि◌ोंगी जो परमाममा को अपनेववभशष्ट तरीके से अनुभव करती ि◌ोंगी।

यि सब ज्ञान और अनुभव तादाममय पर पिुाँचने ◌ेतथा उसे अधधकृत करनेके प्राथभमक साधन ि◌ैं। वि मिारी अपनी ि◌ी आममा ि◌ै जजसका ि◌म साक्षामकार और अनुभव करते ि◌ैं और इसभलये वि साक्षामकार और अनुभव तब तक अपूण िि◌ी रितिें जब तक कक वे ◌ेतादाममय में पररणत निीं ◌ंि◌ो जाते और जब तक ि◌म अपनी

समस्त सिा में परम वेदाजन्तक ज्ञान 'म ैंविी िूँ (सोऽमिजस्म)' को चररताथ िकरने में समथ िनिींि जाते। िमें ईश्वर का केवल साक्षामकार और आभलंगंन िी निीं करना िोगा, अवपतुविी सत्–तत्त्व बन जाना िोगा।

प्रकृनतं ंपरुजषं चै विद्यिनादी उभािवप ।
विकारांश्च गणजांश्चै विद्धि प्रकृनतसंभिान् ।। २० ।।

२०. प्रकृनत और परुजष दोनों को ही अनादद जान; और तू ूयह भी जान कक विकार और गणज प्रकृनत से उत्पन्न हजए हैं।

कायुकुारणकतृुत्वे ेहेतजः प्रकृनतरुच्यते।
परुजषः सखदःखानां ंभोक्तृत्वे हेतरुजच्यते।। २१ ।।

२१. प्रकृनत कायु,ु कारण और कत्तुापन के भिा की उत्पवत्त का कारण कही गयी है; परुजष सखज और द:जखों के भोग का कारण (अथुात् ्भोक्ता) कहा गया है।

पुरुष और प्रकृनत शाश्वत रह्म के दो पिलू मात्र िैं, यि एक ऊपरी रूप से देखने में द्वैत िै जो उनकी ववश्वमय सिा की कियाप्रणाभलयों को आधाररत करता िै। पुरुष अनाहद और शाश्वत िै, प्रकृनत भी अनाहद और शाश्वत िै। परंतु प्रकृनत के गुण और जो ननमनतर रूप वि िमारे सचेतन अनुभव में धारण करती िै, उन गुणों और रूपों की उमपवि इन दो सिाओं के पारस्पररक आदान-प्रदान से िोती िै। वि सब कुछ जो यिा ाँअननमय और क्षरणशील या पररवतनिशील िै, वे सब रूप प्रकृनत से उद्भूत िोतिैं, उसी के द्वारा वे काय िऔर कारण, कम िऔर कमफिल, शजकत और उसकी किया की श्रृंखला को अपनेऊपर ले लेते िैं। वे ेननरंतर िी बदलते रितिैं और उनके साथ िी पुरुष और प्रकृनत भी बदलते प्रतीत िोतिैं, परंतुअपने-आप में ये दो शजकतयाँ शाश्वत तथा सदा समान रिती िैं। प्रकृनत सृजन और किया करती िै, पुरुष उसकी सृजष्ट और कम िका उपभोग करता िै; ककन्तु अपनेकम ि के इस ननमनतर रूप में वि इस उपभोग को सुख-दुुःख के तमोमय और क्षुर रूपों में बदल देती िै।

प्रश्न : इस अध्याय के िी सातवें श्लोक में भगवान् ्किते िैं कक 'इच्छा' या कामना क्षेत्र का िी लक्षण िै। जबकक पिले िमने चचाकी थी कक श्रीअरववन्द के अनुसार कामना और अिंकार तो आममपरक अथात्ि्पुरुष पक्ष की ग्रंधथयाँ िैं और द्वंद्व और गुण प्रकृनत पक्ष की ग्रंधथयाँ िैं। एक स्थान पर तो कामना को प्रकृनत की ग्रंधथ बताते िैंऔर दूसूरे स्थान पर उसे पुरुष पक्ष की ग्रंधथ बतातिैं, तो यि ववरोधाभास कैसे?

उत्तर : कामना का मूल उद्गम पुरुष िी िै। पुरुष के अंदर जो संकल्प िोता िै विी जब प्रकृनत पक्ष के पास आता िै तब वि ववकृत िोकर कामना का रूप ले लेता िै। ऐसा इसभलए िै कयोंकक यहद पुरुष त्रत्रगुणों से ऊपर िोकर ईश्वर भाव में जस्थत िोता िै तब तो उसे त्रत्रगुणों की बाध्यता निीं िोती, परंतु जब तक उसे त्रत्रगुण प्रभाववत करते िैंतब तक उसमें इतनी सामथ्य िनिींिोती कक वि मुकत रूप से अपनेसंकल्प को अभभव्यकत कर सके और इसभलए जब उसका संकल्प अभभव्यजकत में आता िै तब वि कामना का रूप ले लेता िै। अतः कामना आममननष्ठ

चीज ि◌ै न कक वस्तुननष्ठ। इस अध्याय के सातवें श्लोक में कामना को क्षेत्र का लक्षण निीं ◌ंबतलाया गया ि◌ै, केवल उसके पररणामों सुख और दु:ख - - को ि◌ी ऐसा बतलाया गया ि◌ै।

प्रश्न : सातवें श्लोक में भगवान् ◌्किितें, 'अव्यकत (मूल प्रकृनत), पंच मिाभूत, दस इंहरयााँ और एक मन, बुद्धध और अिंकार, तथा पाचाँ इंहरयों के ववषय (तन्मात्रा); राग और द्वेष, सुख और दु:ख, संघात, चेतना और धृनत (दृढ़ता), इन सब को भमलाकर क्षेत्र तथा इसके ववकारों के रूप में किा गया ि◌ै।' तब कफर क्षेत्र का अथ ि◌कया प्रकृनत से ि◌ै?

उत्तर : ि◌ा,◌ाँ परंतु एक दूसूरे दृजष्टकोण से, जब गीता किती ि◌ै कक 'पराप्रकृनतजीवभूता', तो इसका यि भी अथ िि◌ै कक जजतने भी पुरुष ि◌ैं वे परमेश्वर के निीं अवपतु पराप्रकृनत के ि◌ी रूप ि◌ैं। सभी कुछ केवल पराप्रकृनत मााँ जगदमबा की ि◌ी अभभव्यजकत ि◌ै। जजस ककसी भी तत्त्व का ि◌में आज तक कोई भी ऊाँचेसे ऊाँचा, गिन से गिन अनुभव भी प्राप्त ि◌ुआ ि◌ै या कभी ि◌ो सकता ि◌ै, वि सब केवल पराप्रकृनत का ि◌ी रूप ि◌ै। परम तत्त्व तो केवल एक ऐसी उपजस्थनत मात्र ि◌ै जो पराप्रकृनत की किया पर अपनी सिमनत की छाप लगाती ि◌ै और उसे ककसी भी प्रकार न तो जाना जा सकता ि◌ै और न ि◌ी उसका अनुभव ककया जा सकता ि◌ै।

और वास्तव में तो परमाममा के अनतररकत अन्य ककसी चीज का कोई अजस्तमव ि◌ी निीिं। इसभलए भगवान् ◌्स्वयं ि◌ी साक्षी पुरुष ि◌ैं और स्वयं अपनिी तत्त्व का साक्षक्षमव कर रि ि◌ैं। अतः जजस तत्त्व को वे देखितें उसे ि◌म पराप्रकृनत की संज्ञा देते ि◌ैं और स्वयंउन्िें ि◌म साक्षी पुरुष, अथवा ईश्वर या अन्य कई संज्ञाएाँ देते ि◌ैं। यिी चीज जब पाधथवि अभभव्यजकत में आती ि◌ै तब पराप्रकृनत के द्वारा ि◌ी मनोमय, प्राणमय आहद पुरुषों की और स्वयं ईश्वर की उमपवि ि◌ोती ि◌ै। यिााँतक कक अनतमानभसक ईश्वर भी पराप्रकृनत से ि◌ी अभभव्यकत ि◌ोता ि◌ै। अतः इस दृजष्टकोण से तो पराप्रकृनत के अनतररकत वास्तव में और कुछ ि◌ै ि◌ी निीं।

वतमिान प्रसंग में ि◌में यि समझने का प्रयास करना चाहिये कक पुरुष और प्रकृनत के परस्पर आदान-प्रदान से ककस प्रकार गुणों की उमपवि ि◌ोती ि◌ै। प्रायः ि◌म अपनेग्रंथों में ऐसा उल्लेख पातें कक देवता साजत्त्वक िितें, असुर राजभसक ि◌ोतें और वपशाच आहद तामभसक ि◌ोतें। देवताओं में अन्य कोई गुण निीं ि◌ोते। विीं अनतमानस में तो ककन्िींगुणों की ववद्यमानता ि◌ी निींिोती, वि तीनों गुणों से परे ि◌ै। पराप्रकृनत जब इस पाधथवि अभभव्यजकत में आती ि◌ै तब चेतना का अवतरण पामसक से प्राणणक और प्राणणक से ज़िभौनतक तमव तक ि◌ोता िै। केवल मानव ि◌ी ऐसी सिा ि◌ै जजसमें ये तीनों ि◌ी स्तर कियारत ि◌ैं जजसके कारण उसकी प्रकृनत त्रत्रगुणमय िोती िै। बुद्धध प्रधानतः साजत्त्वक ि◌ोती ि◌ै, प्राण राजभसक और भौनतक दिे तामभसक। ि◌ालाकााँक ककसी एक गुण की प्रधानता ि◌ोने ◌ेपर भी इन तीनों भागों में भी समय-समय पर अन्य गुणों का भी प्रभाव प़िता रिता ि◌ै। उदिारण के भलए सत्त्वप्रधान ि◌ोने पर भी बुद्धध के अंदर प्राण तथा दिे के कारण राजभसक और तामभसक गुणों का प्रवेश और बािुल्य ि◌ोता रिता ि◌ै। इसी प्रकार तीनों भागों में परस्पर किया-प्रनतकिया चलती रिती ि◌ै। चूंकक मानव सिा से प्राण और दिे को अलग निीं ककया जा सकता इसभलए भले ि◌ी मन सत्त्व प्रधान ि◌ो तो भी दिे की तामस् ◌्प्रकृनत और प्राण की राजस् ◌्प्रकृनत अवश्य ि◌ी उस पर अपना प्रभाव ि◌ालती ि◌ैं और इन दोनों पर भी मन की साजत्त्वक किया

ीती ि। भौनतक दि में भी प्राण के संचार के साथ रजस् ्और सत्त्व का प्रभाव िोता रिता ि। इसभलए प्रमयेक भाग में अपने-अपने गुण की प्रधानता अवश्य िोती ि परंतुएकांगी रूप से कोई गुण ववद्यमान निीं ंिोता। इन तीनों गुणों को िम पुरुष-प्रकृनत की परस्पर किया के तीन भाव या उसकी तीन जस्थनतयााँकि सकतेिैं। तामभसक गुण में पुरुष लगभग पूरी तरि प्रकृनत के अधीन िोता ि, वि प्रकृनत की किया से बाध्य िोता ि। ऐसी जस्थनत में पुरुष को प्रकृनत की आदतों की मयादिाओं के अनुसार चलना िोता ि। जब प्राण का प्रवेश िोता ि तब भी पुरुष प्रकृनत की आदतों से छूट तो निीं ंननकल सकता परंतु उसे अपनी किया करनेका अधधक स्थान भमल जाता ि। इसीभलए राजभसकता आने ेपर व्यजकत तामभसक अवस्था की अपेक्षा किीं ंअधधक मुकत रूप से किया कर सकता ि। ऐसा इसभलए ि कयोंकक प्राण पर ज़िभौनतक प्रकृनत के ननयम बाध्यकारी निींिोते। प्राणणक प्रकृनत के ननयम अधधक नमनीय िैं इसीभलए उसके प्रभाव से राजभसक अवस्था में व्यजकत घोर कम िभी कर सकता ि जबकक तामभसक अवस्था में तो ककसी प्रकार की किया करनेके भलए पयाप्ति ऊजिा आहद िी निीं ंप्राप्त िोती। अतः प्राणणक स्तर पर पुरुष को प्रकृनत के साथ आदान-प्रदान में कुछ अधधक स्वतंत्रता िोती ि और वि प्रकृनत के ऊपर तामभसक अवस्था की अपेक्षा अधधक स्वतंत्र रूप से किया कर सकता ि। साजत्त्वक अवस्था में पुरुष की स्वतंत्रता इससे भी अधधक बढ़ जाती ि। इस अवस्था में पुरुष तामभसक और राजभसक अवस्था की अपेक्षा किीं ंअधधक मुकत रूप से प्राणणक और भौनतक प्रकृनत पर अपनी किया कर सकता ि। इसी कारण िम देखतेिैं कक जजनमें मानभसकता सच्चेरूप में ववकभसत िोती ि वे अपने शरीर और प्राण पर अन्य लोगों की अपेक्षा अधधक संयम और ननयंत्रण रख पातेिैं और उनकी अपेक्षा किींअधधक उदिा अभभव्यजकत भी कर पातेिैं। इसी प्रकार चेतना का आरोिण करते ुए जब िम अनतमानभसक स्तर पर पिुाँचते िैं वियाँपुरुष और प्रकृनत समजस्थनत में िोतेिैं। उस जस्थनत में पुरुष के ऊपर प्रकृनत की ककसी भी प्रकार की कोई बाध्यता निींरिती। प्रकृनत की बाध्यता के कारण ननचले स्तरों पर जो कुछ करना संभव निीं था वि इस स्तर पर संभव िो जाता ि। इसीभलए ननचले स्तर पर जो तीन गुण थे वे अब निीं ंरिते। अनतमानभसक स्तर से और ऊपर जाने पर प्रकृनत पूणतिः पुरुष के अधीनस्थ िोती ि और स्वयं िी पुरुष की प्रसन्नता के अनुसार सभी कुछ की व्यवस्था करती ि। परंतु यिााँ यि ध्यान रखना चाहिये कक इस अभभव्यजकत के अंदर िम जजस पुरुष और प्रकृनत की बात कर रि िैं वे पराप्रकृनत के िी रूप िैं, उसी की लीला के अंग िैं। जजन परम पुरुष की िम बात करते िैं वे ेये ननमन पुरुष निींिैं। परम पुरुष तो एक ऐसी सूक्ष्मानतसूक्ष्म उपजस्थनत ि जो िमारे ककन्िींभी अनुभवों से परे ि परंतु कफर भी जो पूण िरूप से सवत्रि और सवदिा िी ववद्यमान ि। वि उपजस्थनत, या भगवान् ्की वि कृपा तो सभी कुछ को धारण करती ि, सभी कुछ को अवलंब प्रदान करती ि। उस उपजस्थनत को िम परम पुरुष कि सकते िैं। और जो भी किया-कलाप िमें गोचर िोता ि, या जजसका िमें अपनी गिरी से गिरी जस्थनत में अनुभव िुआ ि या भववष्य में कभी िो सकता ि वि सब माँ जगदंबा की, पराप्रकृनत की किया ि। वास्तव में परम पुरुष और परा प्रकृनत में कोई ताजत्त्वक भेद निीं ंि। परंतुइस ननमन प्रकृनत में पुरुष और प्रकृनत में तीन ववभाजन िो जाते िैं जजनकी परस्पर किया से तीन गुण बन जाते िैं। इनकी किया के साथ िी साथ अिं की किया के कारण इच्छा उमपन्न िोती ि। त्रबना अिं के इच्छा निींिो सकती। और उस इच्छा की पूनत िया अभाव पर िमारा सुख-दुःख ननभरि करता ि। यहद अिं न िो तब तो एकमव की चेतना िोगी। अिं िी 'म'ै और 'दूसूरे' का बोध प्रदान करता ि और जैसे िी अपने से अलग सिाओं का बोध आता ि वैसे िी

परस्पर आदान-प्रदान का, अभाव की पूनत िकरने ेका भाव आता िै, इच्छा उठती िै। एक पृथृक् सिा के पीछे औधचमय यि िै कक वि भगवान् ्के एक ववभशष्ट पिलू की अभभव्यजकत के भलए िोती िै। कोई भी दो सिाएँ एक
समान अभभव्यजकत निींकर सकती और वास्तव में तो ककसी एक िी अभभव्यजकत को या पिलू को दोिराने का कोई अथ िभी निीं। इस पृथृकता के अनुसार िी प्रमयेक व्यजकत के अंदर अपने-अपने तरीके की इच्छा उठती िै। आरंभ में यि इच्छा भौनतक आवेगों के रूप में, कामि-ोधाहद आवेगों के रूप में प्रकट िोती िै, उसके बाद यि कुछ अधधक पररष्कृत कामनाओं- अपनी पद-प्रनतष्ठा, आमम-गौरव आहद भावों – के रूप में प्रकट िोती िै, और उसके बाद नैनतक आदशों, ववचारों आहद भावों की अधधक ववशालतर तुजष्ट के रूप में प्रकट िोती िै। इस प्रकार यि एक अधधकाधधक पररष्कृत िोती अभभव्यजकत िै जजसमें प्रकृनत-पुरुष का परस्पर आदान-प्रदान चलता रिता िै जजसमें
पुरुष को जजतनी िी अधधक स्वतंत्रता िोती िै उतना िी अधधक वि प्रकृनत के माध्यम से अभभव्यकत कर पाता िै।
और प्रमयेक सिा कया ववभशष्ट अभभव्यजकत करेगी यि योजना पराप्रकृनत द्वारा ननहित की जाती िै इसभलए बािरी रूप से व्यजकत भले ककसी भी प्रकार के कमों, इच्छाओं, कामनाओं, आवेगों, ववचारों, भावों आहद में कयों न भलप्त िो, परंतु अंततः गनत उसको उस ववभशष्ट अभभव्यजकत की ओर िोती िै जजसे पराप्रकृनत ने उसके अंदर ननहित ककया िै। गीता भी इन्िींगुणों से आरोिण कर के गुणों से परे जाने की बात करती िै। परंतुआरोिण का यि माग िब्रिा िी ववकट िै इसभलए भगवान् ्किते िैं कक उनके प्रनत भजकत के द्वारा व्यजकत अधधक सिजता से यि
आरोिण कर सकता िै। अजुनि को वे उपदेश करते िैं कक 'अक्षर रह्म तीनों गुणों से परे िै इसभलए उसी की शरण में जा। परंतुऐसा किकर वे किते िैं कक 'अक्षर रह्म का आधार म ि स्वयं िूं अत: मेरी शरण में आ जा। अत: भजकत के द्वारा व्यजकत ननस्त्रैगुण्य की अस्थमत में जा सकता िै।
अब प्रश्न उठता िै कक जब भगवान् ्के अनंत गुण िैं तब कफर उन्िें केवल तीन िी गुणों में क्यों बाँध हदया गया िै। तो ऐसा इसभलए िै कक इस पाधथिव अभभव्यजकत में मन-प्राण-शरीर के माध्यम से अभभव्यकत करने ेके कारण उन सभी गुणों पर इन हिस्सों की छाप लग जाती िै और वे ेगुण भी िमें सत्त्व, रज और तम के तीन ववभाजनों के अंतगति िी हदखाई देने लगते िैं। िालाकाँक यि भी देखने और समझानेका एक दृजष्टकोण मात्र िी िै कयोंकक वास्तववक किया तो माँभगवती की िो रिी िै जो िमारे ककन्िीं भी वणनिों से सवथिा परे िै। माँभगवती अपनी किया में स्वतंत्र िैं। उन पर िमारी कोई भी पररभाषाएँ, िमारे कोई भी ननयम-ववधान, पुरुष-प्रकृनत आहद की िमारी धारणाएँ लागू निीं ंिोतीं। वे ेतो भगवान् ्को मुकत रूप से अभभव्यकत करती िैं। परंतुजजस रूप में वे भगवान् ्के गुणों की अभभव्यजकत करती िैं वि मन-प्राण-देिमय सिा िोने ेके कारण िमारी दृजष्ट को त्रत्रगुणमयी प्रतीत िोती िै।

जब िम किते िैं कक सब कुछ माँभगवती की िी इच्छा से अभभव्यकत िोता िै और उन्िीं ंका संकल्प अमोघ रूप से प्रभावी िोता िै तब कफर उसमें िमारे ववचारों, भावनाओं, इच्छाओं-कामनाओंआहद की कया भूभमका िै? जब िम इसे कुछ-कुछ समझ जाएँगे तो िम िमारे धचि, अवचेतन आहद भागों की कियाओं को भी कुछ अधधक बेितर रूप में समझ पाएँगे। िमारे धचि और अवचेतन में िमारे अपने सभी जन्मों के संस्कार, मनुष्यजानत की सभी धारणाएँ, िमारी सभी पाशववक प्रवृविया, ाँ भय आहद संधचत िैं। इसमें वि सब कुछ संधचत िोता िै जजसके

ववषय में िम अपनेवतमिान या अतीत जीवनों में सचेतन थे या निीं थे। िमारे मन के ववचार, आखोँ के सामने से गुजरा कोई दृश्य, कोई गंध, या शब्द या स्पश िसभी कुछ इसके भंिार में संधचत रिते िैं। वि सब भी संधचत रिता िै जो िमने कभी भी अपनी सूक्ष्म इंहरयों से मिसूस ककया िो। इस सब को भमलाकर िमारे पास सूचना का एक अनतववशाल भंिार बन जाता िै। अतः जब तक व्यजकत इतना पयाप्ति ववकभसत निीं िोता कक माँभगवती के संकल्प को सचेतन रूप से पिचान सके और सचेतन रूप से उसके अनुसार किया कर सके, तब तक वि संकल्प आता तो अपने मूल स्रोत माँभगवती से िी िै परंतु त्रबना िमारे उसके ववषय में सचेतन िुए वि िमारे मन आहद के

द्वारा िमारे धचि और अवचेतन भागों में चला जाता िै और विाँसे अपनी पूनत िेके भलए आवश्यक अभीप्साओं, सूचनाओं, उमप्रेरणाओं, आवेगों-प्रवेगों, कामनाओं, लालसाओं, िोधों, भयों आहद अनेकानेक तरीके के भावों को उमपन्न करता िै। इस प्रकार वि संकल्प आकर िमारे इन भागों में वे आवश्यक प्रनतकियाएँ उमपन्न कर देता िै जो उसकी अभभव्यजकत के भलए आवश्यक िैं। इसभलए भले िी िमें वे इच्छाएँ आहद सभी भाव िमारे अपनेअंदर

उमपन्न िोते प्रतीत िोतीं, परंतु वास्तव में वे माँभगवती की किया के िी पररणाम िैं और इस परोक्ष प्रकिया को वि इसभलए काम में लेती िै कयोंकक अभी तक िम उसकी ककया के ववषय में सचेतन निीं िोते। वास्तव में साधना और कुछ निींकेवल उस किया के प्रनत सचेतन िोना िै ताकक उसमें िम सचेतन रूप से भाग ले सकें, जजससे कक मिारे अंदर उनकी किया अधधक मवररत िो सके और उसकी अभभव्यजकत के आनंद में िम सिभागी िो सकें। परंतु भले प्रमयक्ष रूप से िो या परोक्ष रूप से, जब माँभगवती की िी इच्छा कायाजन्वित िोती िै तब कफर मिववकास का तथा उिरोिर पूणताि का कया स्थान िै? एक उदािरण के माध्यम से िम इसे समझने का प्रयास करते िैं। ककसी व्यजकत के पास कोई कमचािरी िै जो बिुत लोभी और लालची िै। व्यजकत उसके स्वभाव को भली-भानाँत जानता िै इसभलए अपना काम पूरा करा सके उसके भलए वि उसके स्वभाव के माध्यम से उससे काम कराता िै। अपना काम कराने के भलए वि उसके साथ प्रलोभन, िाटँ–पट आहद सभी आवश्यक तरीके काम में लेता िै। अतः अंततः कमचािरी काम तो विी करता िै जो कक माभलक चािता िै परंतु इसके भलए माभलक को अनेक टेढ़ी रीनतयाँ काम में लेनी पिती िैं। विींयहद कमचािरी बिुत समवपति भाव से काम करता िो तब तो उसके इन परोक्ष तरीकों को काम में लेनेकी कोई आवश्यकता िी निींरिती कयोंकक वि तो माभलक की इच्छा को भली-भानाँत कियाजन्वत करता िै। और यहद वफादार िोनेके साथ िी साथ वि बिुत अधधक कुशल भी िो तब तो कफर माभलक के आदेश को और अधधक श्रेष्ठ रूप से पूण िकर सकेगा। इस प्रकार यि उिरोिर बढ़ती पूणताि िै। जजतनी िी अधधक पूणमिव की अवस्था में वि कमचािरी िोगा उतने िी श्रेष्ठ रूप से वि अपनेमाभलक की इच्छा को कियाजन्वत कर सकेगा। साधना ठीक यिी काम करती िै। वि व्यजकत को ववकभसत और सुसंस्कृत बनाकर भगवान् के संकल्प के प्रनत संवेदनशील बना देती िै ताकक सचेतन रूप से वि उसे समझ कर उसे कियाजन्वत कर सके। जब व्यजकत पयाप्ति रूप से भगवद् संकल्प के प्रनत खुला िोता िै तब अपनी अभभव्यजकत के भलए उस संकल्प को ककन्िींपरोक्ष रीनतयों की आवश्यकता निींरिती और वि सीधे िी साधक के अंदर काम करने लगती िै। पृथ्वी पर जो भी मिान् या ववभशष्ट काय ििम अतीत या वतमिान में िोता देखते िैं वे सदा िी तब संभव िो पातीं जब ननमन किया की बजाय भागवत् संकल्प को मानव माध्यम के द्वारा सीधे िी अभभव्यकत िोनेका अवसर प्राप्त िोता िै। यहद व्यजकत सच्चेरूप से भागवत् संकल्प के प्रनत समवपति िो तो मन, प्राण और शरीर के कोलािलों से भी कोई

ववशेषे अंतर निींप़िता। इसभलए संभव ि ै कक साधक ऐसा काय िकर जाए या ऐसे ककसी अभभयान का बिीा उठा ले जजससे स्वयं उसकी बिारी प्रकृनत न समझती िो, या जजसे वि अस्वीकार करती िो, यिा ाँतक कक जजसके पररणामों से अजुनि की भानाँत थरातीि ो। अपनी पुस्तक 'ऐसेज डिवाइन एण्ि् ह्यूमन' में श्रीअरववन्द एक स्थान पर कुछ इस प्रकार कितेि ैं कक 'जब म ैंबोलने को िोता िूाँ तो बुद्धध सोचती ि ै कक म ैंअमुक बात किूाँगी, और तभी भगवान् ्मुाँि से मेरे वे शब्द तो ले लेते ि ैं और मेरे िोठ कुछ और िी कि उठते ि ैं जजससे बुद्धध थरिाउठती ि ै।* यि एक ऐसी जस्थनत ि ै जो त्रबना अनुभव िुए केवल मानभसक रूप से निींसमझी जा सकती। और यि अनुभव केवल तभी आ सकता ि ै जब भीतर से कोई चीज भगवद् संकल्प के प्रनत इतनी समवपति िो कक वि िमारी बिारी प्रकृनत की कुछ भी परवाि ककये त्रबना मुकत रूप से िमारे द्वारा अपनी किया करता ि ै। अतः ज्यों-ज्यों व्यजकत भगवान् ्के प्रनत अधधकाधधक समवपति िोता जाएगा मयों िी मयों भगवान् ्का अधधकाधधक ठिर समय और अद्भुत भव्यताएाँ अभभव्यकत िो पाएाँगी। यहद यंत्र ननष्ठावान् ्निीं ंि ै तब तो कफर विी गुणों की किया चलती रिती ि ै और अधधक से अधधक केवल ननमन मानवीय अभभव्यजकत िी िो पाएगी, ऐसे में ककसी हदव्य अभभव्यजकत की कोई अधधक संभावना निीं ंरिती। इसी अधधकाधधक हदव्य अभभव्यजकत के भलए िमववकास चल रिा ि ै। अब जजस प्रकार पाशववक चेतना की सीभमतता के कारण एक स्तर से अधधक की अभभव्यजकत निीं ंिो सकती, उसी प्रकार मानव चेतना की सीभमतता के कारण प्रकृनत एक उच्चतर सिा को धरती पर लानेमें प्रयासरत ि ै जजसे श्रीअरववन्द अनतमानभसक सिा का नाम देते ि ैं और वे कितेि ैं कक वस्तुओंकी स्वाभाववक गनत में अनतमानभसक चेतना का आववभावि एक अवश्यंभावी चीज ि ै जजसे कोई टाल निीं ंसकता। भले िी िमारे ज़िभौनतक तत्त्व के रूपांतरण की बात वतमान में एक कपोलकल्पना या एक सवथिा बेतुकी बात लगती िो, परंतु मानव के आववभावि से पूव ि कदाधचत् ्बंदरों को भी मनुष्य के आने का कोई अंदेशा निीं था। अतः श्रीमाताजी व श्री अरववन्द ने न केवल उस चेतना के अवतरण की घोषणा की, बजल्क जीवनपयंतं उसे उतार लानेका प्रयास ककया और उसका अवतरण संभव बनाया। जब वि चेतना प्रकट रूप से पृथ्वी पर अभभव्यकत िोगी तभी भागवत् ्साम्राज्य स्थावपत िोगा। सूक्ष्म स्तर पर वि चेतना कायरित ि ै और जो कोई उसके प्रनत अभीप्सा रखता ि ै और उसके प्रनत खुला ि ै उसे अवश्य िी उस चेतना की किया का कुछ अनुभव प्राप्त िोता ि ै। इसभलए करने ेका केवल एक hat sigma' काय ठिै कक ककसी भी प्रकार उस चेतना के प्रनत अपनेआप को खोलना ताकक वि िमारे अंदर और िमारे द्वारा अधधकाधधक अपनी किया संभसद्ध कर पाए।

परुजषः प्रकृनतमथो दह भजङ्क्ते ेप्रकृनमज्ञाजन्गणज

कारणंगणजसङ्गोऽमय सदसद्योननजन्मसज ।। २२।।

२२. प्रकृनतमथ परुजष प्रकृनत से उत्पन्न हजए गजणों का भोग करता है; गणजों में आसस्क्त ही अच्छी और बरजी योननयों में उसके जन्म का कारण होती है।

ककसी रूप या आकार के अंदर ववद्यमान व्यजष्टगत आममा या सचेतन सिा अपने-आप को इस अनुभव करने ेवाले पुरुष के साथ या इस कियाशील प्रकृनत के साथ तदाकार कर सकती ि ै। यहद वि अपने-आप को प्रकृनत

के साथ तदाकार करती िै तो वि स्वामी, भोकता और ज्ञाता निीं ंिोती अवपतु ुप्रकृनत की कियाओं के गुणों को प्रनतत्रबंत्रबत करती िै। अपनी इस तदाकारता से वि उस अधीनता और यांत्रत्रक किया-प्रणाली में भाग लेती िै जो इस प्रकृनत का अपना ववशेषे लक्षण िै। यिााँतक कक प्रकृनत में पूणतिया लोन िोकर यि आममा अचेतन या अवचेतन बन जाती िै, प्रकृनत के स्थूल रूपों में पूण िरूप से प्रसुप्त िो जाती िै जैसे भमट्टी और धातु में, या कफर लगभग प्रसुप्त िो जाती िै जैसे वनस्पनत-जीवन में। विााँ, उस अचेतना में, वि तमस् ्के प्रभुमव के अधीन िोती िै।...(इस अवस्था से और अधधक आगे) पाशववक प्रकृनत गहठत और ववकभसत िोती िै जो चेतना में संकीण,ि बुद्धध में अल्पववकभसत या त्रबल्कुल प्रारंभभक तथा प्राणणक आदत और आवेग में राजस-तामभसक िोती िै। घोर अचेतना से एक आध्याजममक पद की ओर और भी अधधक ऊपर उठकर दिेधारी पुरुष सत्त्व को, अथाित् ्प्रकाश के गुणा को, उन्मुकत करता िै और कुछ-कुछ स्वतंत्रता, स्वाभममव तथा ज्ञान प्राप्त करता िै और इसके साथ िी आन्तररक सन्तोष और प्रसन्नता का सीभमत तथा मयाहिदत बोध प्राप्त िोता िै। स्थूल दिे में मनोमय पुरुष वाले मनुष्य के प्रकृनत ऐसी िी िोनी चाहिए, परन्तु इन कोहट-कोहट दिेधारी जीवों में से कुछ एक को छोड़कर ककसी की भी प्रकृनत ऐसी निीं ंिोती। सामान्यतः उसमें अन्धकारमय पाधथवि ज़िता और बेचैन अज्ञ पाशववक जीवन-शजकत इतनी अधधक िोती िै कक वि प्रकाशमय और आनन्दमय आममा या कफर एक समस्वर संकल्प और ज्ञान से युकत मन भी निीं बन सकता। इस अवस्था में मनुष्य के अंदर स्वतन्त्र, ईश्वर, ज्ञाता और भोकता पुरुष के सच्चेस्वरूप की और आरोिण अपूण,ि और अभी तक ववघ्न-बाधा और ववफलता से िी आिान्त रिता िै। कयोंकक, मानवीय और पाधथवि अनुभव में ये (सत्त्व, रज और तम) सापेक्ष गुण िैं; इनमें से कोई भी अपना ऐकाजन्तक और पूण िफल निीं ंप्रदान करता; सभी एक-दूसूरे से भमले िुए िैं और इनमें से ककसी एक की भी शुद्ध किया कििंनिीं ंपायी जाती। इनकी अस्तव्यस्त और अननजश्चत परस्पर-किया िी अिकारमय मानव-चेतना, जो प्रकृनत के अननजश्चत संतुलन में झूलती रिती िै, के अनुभवों को ननधारिरत करती िै।

गुणों के ववषय में िम पिले भी चचािकर चुके िैं परंतुयिा ंाँश्रीअरववन्द ने गुणों तथा उनकी कायि–प्रणाली को और अधधक प्रकाश में ला हदया िै जजससे कक िम इस ववषय को और अधधक गिराई से समझ सकते िैं।

प्रश्न : कया िम कि सकतिैं कक सभी कुछ अन्तराममा पर िी हटका िुआ िै?

उत्तर : इसके अनतररकत तो और कुछ िै िी निीं। इसीभलए तो श्रीमाताजी ने एक संदभ िमें किा था कक केवल चैमय पुरुष को िी िमारे जीवन का संचालन करने का अधधकार िै कयोंकक सच्चेस्वरूप में िम विी िैं। मन, प्राण और शरीर आहद तो ऊपरी वस्त्र मात्र िैं। अंतराममा िो िमारा वि सच्चा भाग िै जो कक पूण िस्वतंत्र िोता िै और यि उसके चयन पर ननभरि करता िै कक वि अपनेआप को प्रकृनत के साथ तदाकार करती िै या पुरुष के साथ। इस स्वतंत्रता के कारण िी पुरुष भभन्न-भभन्न भाव अपना सकता िै। जब वि साक्षी भाव अपनाता िै तब वि गुणों की किया को तटस्थ भाव से देख सकता िै। यहद वि अक्षर पुरुष के भाव को अपनाता िै तब उसमें क्षर प्रकृनत की ककसी प्रकार की किया निीं ंिो सकती, िालााँकक इसमें क्षर प्रकृनत पर ककसी प्रकार का कोई स्वाभममव निींिोता। वि तो ननमन प्रकृनत से अप्रभाववत रिते िुए केवल उसका साक्षक्षमव कर सकता िै। इस भाव में प्रकृनत की उपेक्षा

कर दी जाती िै और उसे शांत िोने ेके भलए अपनिी िाल पर छिो़ हदया दोला िै। परंतु इस भाव में उपेक्षक्षत रि जानेके कारण प्रकृनत का देर जातपमय स्पष्ट निींिोता। कयोंकक इससे तो यि आभास िोता िै कक करने ेका केवल एक िी काम िै और वि िै ककसी भी प्रकार इस प्रकर से छूट ननकलना। परंतु गीता ऐसे ककसी दृजष्टकोण को स्थान निीं देती। गीतो इस समस्या का ननराकरण पुरुषोम की सिा के प्रनतपादन द्वारा करती िै। गीता के अनुसार प्रकृनत केवल पुरुषोम की प्रसन्नता के ननभमि िी काय िकरती िै, न कक अक्षर पुरुष की प्रसन्नता के ननभमि। अतः, िमारी अंतराममा इसके भलए पूणतिः स्वतंत्र िै कक वि चिो तो प्रकृनत के साथ तदाकार िो सकती िै और चिो तो पुरुष के साथ। िमारी अंतराममा में ईश्वर के प्रनत सिज आकषणि िोता िै। यि िमववकासमय गनत का अनुसरण करती िै। परंतु िमारे अंदर भगवान् ्की अंतयाममी उपजस्थनत भी िोती िै जो िमववकासमय निींिै। वि उपजस्थनत ननवतनि (involution) से आती िै। यि उपजस्थनत स्वयं ईश्वर िैं जो िमारे हृदेश में ववराजमान िोते िैं। यिी उपजस्थनत सवत्रि ववद्यमान रिती िै और सभी रह्माण्डिों और सभी लोकों का आधार िै जो उन्िें धारण करती िै, उन्िें अवलंब प्रदान करती िै। पाधथवि जगत् ्िमववकासमय िै कयोंकक इसमें चैमय या अंतराममा ननहित िै। परंतु ऐसे भी लोक िैं या ऐसी भी अभभव्यजकतयाँ िैं जिा ाँचैमय ववधान प्रभावी निीं ंिोता परंतुकफर भी परमाममा की उपजस्थनत तो विाँभी ववद्यमान रिती िै। चैमय या अंतराममा तो केवल पृथ्वी की िी ववभशष्टता िै। श्रीमाताजी के अनुसार अन्य लोकों में चैमय पुरुष निींिोता, इसभलए देवताओं को भी अपनेववकास के भलए मानव शरीर धारण करना िोता िै।

िमारी अंतराममा, िमारी चैमय सिा का स्वभाव िी िै सिज रूप से भगवान् ्की ओर चलना। जब ककसी साधक नेश्रीअरववन्द से कुछ इस प्रकार पूछा कक उसे चैमय पुरुष के प्रनत समपणि करना चाहिये या कफर हदव्य शजकत के प्रनत या कफर श्रीमाँ के प्रनत, तो इसके उिर में श्रीअरववन्द स्पष्ट रूप से कुछ इस प्रकार उिर देते िैं कक 'इस ववषय में स्वयंको भ्रभमत करने की कोई आवश्यकता निीं िै। व्यजकत को हदव्य शजकत के प्रनत निींअवपतु स्वयंश्रीमाँ के प्रनत समपणि करना चाहिये। और यहद चैमय पुरुष स्वयं अभभव्यकत िोता िै तो वि भी स्वयंअपने भलए समपणि की माँग निीं करेगा अवपतु श्रीमाँ के प्रनत समपणि करने को िी किेगा कक अतः िमारा चैमय पुरुष अपनेस्वभावमात्र में िी परम प्रभु के प्रनत ननष्ठावान् ्िै, उनके प्रनत समवपति िै। इसभलए उसके अंदर स्वयंअपने आप पर केंहरत कोई भाव आ िी निीं सकता। वि तो िर िालत में परम प्रभु ुपर िी केंहरत रिता िै। चैमय पुरुष बना िी परमाममा तत्त्व से िै इसभलए सिज िी उसमें अपनेउद्गम के प्रनत आकषणि िोता िै। और चूंकक उसमें अपने उद्गम के प्रनत आकषणि िोता िै इसी कारण उसे िमववकास के साथ संलग्न कर हदया गया कयोंकक केवल उसी के आधार पर िमववकास िो सकता िै। अन्य ककसी भाग में अपनेआप में ऐसा कोई आकषणि निीं ंिै। अतः चैमय के प्रभाव से िी िमारे अन्य सभी भाग धीरे-धीरे अपने मूल उद्गम के प्रनत आकवषति िोते िैं और उसकी ओर गनत करते िैं।

उपद्रष्टानमजन्ता च भतुा भोक्ता महेश्िरः ।

परमात्मेनत चाप्युक्जतो देहेऽस्ममन्परुजषः परः ।। २३ ।।

२३. साक्षी, अनमंजता, भतुा और भोक्ता, महेश्िर और परमात्मा, इस देह में जिस्मथत परम् ्परुजष को इस प्रकार पकजारा जाता है।

पुरुष और प्रकृनत के बीच गीता में ककया गया भेद िमें उन ववववध वृवृयों का सूत्र दे देता िै जो कक पुरुष पूण िस्वतंत्रता और प्रभुमव की ओर अपनी गनत में प्रकृनत के प्रनत अपना सकता िै। गीता किती िै कक पुरुष साक्षी, भिता, अनुमन्ता, ज्ञाता, ईश्वर और भोकता िै, प्रकृनत (पुरुष के आदेश को) कायाजिन्वत करती िै, यि कियाशील तत्त्व िै और पुरुष की वृवृ के अनुरूप िी इसकी किया िोती िै। पुरुष चािे तो शुद्ध साक्षी का भाव अपना सकता िै; वि प्रकृनत के काय िको एक ऐसी वस्तु के रूप में देख सकता िै जजससे वि अलग खडा िोता िै; वि उसके काय िका अवलोकन करता िै, पर स्वयं उसमें भाग निींलेता। सब प्रवृवृयों को शान्त करने की इस क्षमता का मित्त्व िम देख िी चुके िैं; यि पीछे िटनेकी या ननवृवृ की उस किया का आधार िै जजसके द्वारा िम प्रमयेक वस्तु के, - शरीर, प्राण, मानभसक किया, ववचार, संवेदन, भावावेश के, - समबन्ध में यि कि सकते िैं कक "यि प्रकृनत िै जो प्राण, मन और शरीर में काय िकर रिी िै, यि स्वयंम ैंनिीं िूँ, न िी यि मेरी चीज िै" और इस प्रकार िम इन चीजों से पुरुष की पृथकता पर और इनकी शांत अवस्था पर पिुँचते िैं। साक्षी की वृवृ अपनेउच्चतम सप अनासजकत का तथा जगज्जीवन की घटनाओंके प्रभाव से मुजकत का चरम रुप िोती िै।

---

*CWSA 32, p. 147

प्रश्न : जब व्यजकत साक्षी भाव अपना लेता िै तब भी प्रकृनत से तामभसक, राजभसक या साजत्त्वक बनी रि सकती िै?

उत्तर : जब तक व्यजकत मन, प्राण और शरीर से संलग्न रिता िै तब तक सच्चेरूप से साक्षी भाव निीं ंआ सकता। यि जस्थनत तो तब आती िै जब व्यजकत अपनेअंदर ववद्यमान अक्षर पुरुष में जस्थत िोता िै। अतः इस भाव में व्यजकत अक्षर पुरुष की ननभलप्तिता आहद में भागीदार बन जाता िै। क्षर पुरुष में यि चेतना निींआ सकती। जब तक व्यजकत क्षर सिा अथात् ्अपनेमन, प्राण और शरीर तथा इनकी कियाओंसे बद्ध रिेगा तब तक वि सिी साक्षी भाव निीं ंअपना सकता। सारी समस्या तो िमारी संलग्नता के कारण आती िै। अब यहद अमरीका में कोई कार दुघटिना िोती िै तो िम उससे कदाधचत् ्िी ववचभलत िोने ेवाले िैं। पर यहद उस कार में िमारा कोई वप्रय व्यजकत सवार िोता तब कफर सारी भावनाओं आहद की उथल-पुथल शुरू िो जाएगी। अतः साक्षी भाव में व्यजकत इन ककन्िींभी क्षर भागों से संलग्न निीं ंिोता। इसीभलए िमारी पारंपररक योग पद्धनतयों में पूरी तरि अक्षर पुरुष से तदामम िोकर ननमन प्रकृनत को पूरी तरि से मयाग देनेका उपाय बताया जाता रिा िै। इस ववषय में श्रीअरववन्द का किना िै कक ककसी आममा ववशेष के भलए तो यि माग िउधचत िो सकता िै परंतु सभी के भलए यि कोई उधचत माग िनिींिो सकता कयोंकक इससे तो आममा का पाधथवि अभभव्यजकत में आने का सारा िेतु ु िी ननष्फल िो जाता िै। अतः वे ेकिते िैं, "इस वैश्व चि का उद्देश्य यि निीं ंकक वि यथाशीघ्र, उन स्वगों की ओर लौट जाये जिाँ पूण िप्रकाश और आनंद शाश्वत िैं या अनतवैश्व आनंद में जा पिुँचे,े न िी इसका उद्देश्य िै अज्ञान

के लमबे असंतोषजनक खाचोँ में एक प्रयोजनिोन चककर लगाते रिना, उसमें ज्ञान की सतत् ्खोज करना और कभी उसे पूण िरूप से न पाना - उस अवस्था में अज्ञान सवचिेतन की एक ऐसी मूल िोगा जजसकी व्याख्या निीं ंकी जा सकती या कफर दुःखद और उद्देश्यिीन तथा समान रूप से अव्याख्येय आवश्यकता। इसका उद्देश्य िै अनतवैश्व से भभन्न अवस्थाओंमें, वैश्व सिा में आममा के आनंद को अनुभव करना और मूत िरूप में ज़ि सिा की अवस्था द्वारा प्रस्तुत प्रनतरोधों में भी आनंद और प्रकाश के स्वग िको पाना, अतः आममानुसंधान की ओर पररश्रम करना मानव शरीर में अंतराममा के जन्म का और अपने चिावतनिों के िम में मानव जानत के श्रम का सच्चा प्रयोजन प्रतीत िोता िै। अज्ञान एक आवश्यकता िै, यद्यवप िै बिुत िी गौण, जजसे वैश्व ज्ञान ने अपनेऊपर आरोवपत कर भलया िै ताकक वि गनत समभव िो सके जो ब्रिी भूल या पतन निीं अवपतु ुसोद्देश्य अव तरण िै, कोई अभभशाप निीं,ं हदव्य अवसर िै। सवि–आनंद को पाना और उसे उसकी बिुववधता के तीव्र सार रूप में मूनतमिान करना, ऐसे अनंत सत् ्की संभावना को प्राप्त करना जजसे अन्य अवस्थाओं में निींपाया जा सकता, करना िी वि काय िप्रतीत िोता िै जो ज़ि भौनतक ववश्व में जन्मी ज़ि पदाथ िमें से भगवान् ्के मंहदर का ननमाणि आममा को सौंपा गया िै।" (CWSA 21. p. 613)

जब श्रीअरववन्द अलीपुर जेल में थे तब उनमें यिी प्रश्न प्रबल रूप से उठा कक रह्म जो पूण,ि ननरपेक्ष, अनंत िै, जजसे ककसी चीज की आवश्यकता निीं,ं कोई कामना निीं ंवि अपनेअंदर रूपों के इन जगतों का ननमाणि करने ेके भलये चेतना की शजकत को आणखर कयों प्रक्षक्षप्त करता िै? मनुष्य की तो अपनी वतमिान जस्थनत में बने रिने ेकी बाध्यता िो सकती िै परंतु भगवान् ्की ऐसी कोई बाध्यता निीं ंहदखाई देती कक कयों उन्िें इस सीभमतता, अज्ञान, अंधकार आहद में आकर फाँसना प़िा।े जब वे इसी ववषय पर गिन धचंतंन में थे तब उन्िें स्वामी ववेकानन्द का समपकि सूक्ष्म जगत् ्में प्राप्त िुआ। इस ववषय में श्रीअरववन्द के िो एक भशष्य ए.बी. पुराणी की पुस्तक 'द लाइफ ऑफ श्रीअरववन्द' में १० जुलाई १९२६ को िुई वाताि में श्रीअरववन्द किते िैं, "ववेकानन्द आए और उन्िोंने मुझे ेअंतभाासिाममक मानभसकता का ज्ञान प्रदान ककया। उस समय तक मुझे ेउसका लेशमात्र भी कुछ पता निींथा। उन्िोंने ेमुझे िर त्रबंदू ूको समझाते िुए ववस्तार से ज्ञान प्रदान ककया। यि संपकि लगभग तीन सप्ताि तक चला और कफर वे अंतधानि िो गए।"

इसी प्रकार का उल्लेख िमें उनके अन्य एक भशष्य नीरदवरन को पुस्तक 'टॉकस ववद श्री अरववन्द' के खण्ड एक, पृष्ठ १३८ पर एक वाताि में भमलता िै जिाँ श्रीअरववन्द किते िैं कक, "उन्िोंने (ववेकानंद जी ने) मुझे ववस्तार से अनतमानस के काय िके बारे में समझाया ठीक-ठीक अनतमानस के ववषय में तो निीं,ं अवपतु अंतभाासीकृत मन - जैसा कक वि अनतमानस के द्वारा सुव्यवजस्थत िोता ववषय में बताया। 3 - 3 उन्िोंने 'अनतमानस' शब्द का प्रयोग निीं ंककया, यि नाम तो बाद में पैर हदया।"

स्वयंगीता के समय भी प्रचभलत मानभसकता यिी थी कक यि संसार अननमय िै और इससे ककसी प्रकार पीछा छुटा लेना चाहिये। इसी भलए नवें अध्याय के तैंतीसवें श्लोक में भगवान् ्किते िैं 'अननमयममुत लोकभममं। पृथ्वी के संपूण िइनतिास में श्रीअरववन्द िी िैं जजन्िोंने पिली बार पृथ्वी पर हदव्य जीवन के आववभावि का उद्घोष

ककया ि◌ै और भौनतक शरीर तक के रूपांतर का दशनि प्रदान ककया ि◌ै। ि◌ालाकाँक वैहदक युग में भागवत् ◌्चररताथतिा का दशनि था परंतुभौनतक रूपांतर का रिस्य तब तक उद्घाहटत नि◌ीं ि◌ुआ था। पिली बार श्रीअरववन्द ने ि◌ी इसकी घोषणा की ि◌ै और इस रूपांतर को अवश्यंभावी और ननयत बताया ि◌ै।

शुदुध साक्षी के रूप में पुरुष प्रकृनत के भिता या धारक का काय ि◌करने से इन्कार कर देता ि◌ै। भिता कोई और ि◌ी ि◌ै, ईश्वर या शजकत या माया, पर पुरुष नि◌ीं।... जब तक सिा में एक स्पष्ट एवं वास्तववक द्वैत न ि◌ो, यि इस ववषय का समपूण ि◌समय नि◌ीं ◌ंि◌ो सकता; पुरुष भिता भी ि◌ै, वि अपनी सिा में उस शजकत को धारण करता ि◌ै जो ववश्वरूपी दृश्य को प्रदभशति करती ि◌ै और जो इसकी शजकतयों का संचालन करती ि◌ै। जब पुरुष भतापिन को स्वीकार करता ि◌ै, तब भी वि इसे ननजष्यि रूप में तथा आसजकत के त्रबना कर सकता ि◌ै, यि अनुभव करते ि◌ुए कक वि शजकत तो प्रदान करता ि◌ै, पर ऐसा नि◌ीं ि◌कक वि इसका ननयंत्रण एवंननधारिण करता ि◌ै। ननयंत्रण करनेवाला कोई और ि◌ी ि◌ै, ईश्वर या शजकत या माया का ननज स्वरूप.... परन्तु यहद (पुरुष द्वारा) भिता की वृवि को पूण ि◌रूप से स्वीकार कर भलया जाता ि◌ै तो समझना चाहिये कक सकिय रह्म के साथ तथा उसकी ववराट् सिा के आनन्द के साथ तादाममय की ओर उसने एक मित्त्वपूण ि◌पग आगे बढ़ा भलया ि◌ै.... कयोंकक जब पुरुष। भरण करनेके भलये पूण ि◌रूप से सिमत ि◌ो जाता ि◌ै तो समझो कक अनुमनत ने सकिय रूप धारण कर भलया ि◌ै, चािे पुरुष प्रकृनत की सब शजकतयों को प्रनतत्रबजमबत तथा धारण करने ◌ेके भलये और इस प्रकार उनकी किया को बनाये रखनेके भलये सिमत िोने ◌ेसे अधधक कुछ भी न करे, अथात् ि◌्शजकतयों के काय ि◌का ननधारिण और चुनाव न करे एवं ◌ंयि मानेकक स्वयं ईश्वर या शजकत या कोई ज्ञानमय संकल्पशजकत ि◌ी चुनाव और ननधारिण करती ि◌ै.. परन्तु इसके सामने जो काय ि◌ प्रस्तुत ककये जायेंउनमें से यहद यि सामान्यतः कुछ को पसंद करे तथा दूसूरों का मयाग करे तो समझो कक यि उनका ननधारिण करने ◌ेलगा ि◌ै; जो बिुत कुछ ननजष्यि था वि अब पूण ि◌रूप से सकिय अनुमन्ता बन गया ि◌ै और एक सकिय ननयंता बननेकी रि पर ि◌ै।

पुरुष ननयंता तब बनता ि◌ै जब वि प्रकृनत के ज्ञाता, ईश्वर और भोकता के रूप में अपना पूण ि◌काय ि◌ स्वीकार करता ि◌ै। ज्ञाता के रूप में पुरुष उस शजकत का ज्ञान रखता ि◌ै जो किया करती ि◌ै और ननधारिण करती ि◌ै, वि सिा के मूल्यों को देखता ि◌ै जो ववश्व में अपनेआप को चररताथ ि◌कर रिे ि◌ैं, वि ननयनत के रिस्य में प्रवेश करता ि◌ै। कयोंकक जो शजकत काय ि◌करती ि◌ै वि स्वयं भी ज्ञान के द्वारा ननधारिरत ि◌ोती ि◌ै जो कक उसका उद्गम ि◌ै तथा उसके मूल्यों का व उन मूल्यों के संपादन का स्रोत और ननधारिक ि◌ै। इसभलए जजस अनुपात में पुरुष पुनः ज्ञाता बनता जाता ि◌ै, वैसे ि◌ी वि किया का ननयंता भी बनता जाता ि◌ै... और ऐसा वि सकिय भोकता बनेत्रबना नि◌ीं ◌ंकर सकता। ननमनतर सिा में उपभोग द्वववववध प्रकार का ि◌ोता ि◌ै, सकाराममक और नकाराममक, जो कक इंहरय संवेदनों के ववद्युत् ◌्प्रविा में ि◌ष ि◌और शोक का रूप धारण कर लेता ि◌ै; परंतुउच्चतर सिा में यि आमम-अभभव्यजकत जननत हदव्य आनन्द का सकिय रूप से समान ि◌ी उपभोग ि◌ोता ि◌ै। इसमें स्वतंत्रता में कोई ि◌ानन नि◌ीं ◌ंि◌ोती, अज्ञानमय आसजकत में कोई पतन नि◌ींिोता। अपनी आममा में मुकत मनुष्य को यि बोध ि◌ोता ि◌ै कक भगवान् ◌्ि◌ी प्रकृनत के कम ि◌के स्वामी ि◌ैं, माया सभी कुछ को ननधारिरत और कायाजिन्वत करनेवाली उनकी ज्ञानमय संकल्पशजकत ि◌ै, शजकत इस द्वववववध हदव्य शजकत (माया) का संकल्पाममक पक्ष ि◌ै जजसमें ज्ञान सदा ि◌ी उपजस्थत

रिता िै और अमोघ िोता िै; व्यजकतगत रूप में भी पुरुष अपने आप के ववषय में इस रूप में सचेत िोता िै कक हदव्य सिा का एक केंर िै, - ईश्वर का अंश िै... - और उतनेअंश में वि प्रकृनत के उस कम िको ननयंत्रत्रत करता िै जजसका वि अवलोकन, भरण, अनुमोदन, उपभोग करता िै और जजसे वि जानता िै और जजसे ज्ञान की ननधारिक शजकत के द्वारा ननयंत्रत्रत करता िै; और जब वि अपने आप को ववश्वमय बना लेता िै, तो उसका ज्ञान केवल हदव्य ज्ञान को प्रनतत्रबंत्रबत करता िै, उसका संकल्प केवल हदव्य संकल्प को कायाजिन्वत करता िै, वि केवल हदव्य आनन्द का उपभोग करता िै न कक ककसी अज्ञानमय व्यजकतगत संतुजष्ट का। इस प्रकार पुरुष अपनी मुकतावस्था को अपने अधधकार में सुरक्षक्षत रखता िै, ववराट् पुरुष के एक प्रनतननधध के रूप में ववराट् अजस्तमव का उपभोग एवं

आनन्द करता िुआ भी सीभमत व्यजकतमव के मयाग की अवस्था को सुरक्षक्षत रखता िै। उच्चतर जस्थनत में उसने पुरुष और प्रकृनत के सच्चे संबंधों को पूणरिप स्वीकार कर भलया िोता िै.... पुरुष का अपनेआप में चरम आनन्द लेना उस पर आधाररत पुरुष का प्रकृनत में चरम आनन्द लेना िी इस संबंध की हदव्य पररपूणतिा िै।

य एिं िवत्त परुजषं ्प्रकृनतं ्च गजणैः सह ।
सिुथा िितुमुानोऽवप न स भूयोऽसभजायते।। २४।।

२४. जो मनष्जय इस प्रकार परुजष को और अपनेगणजों के सदहत प्रकृनत को जानता है, िह चाहे जैसे भी रहे या कमु ् करे, िह किर जन्म ग्रहण नहींकरता।

....प्रकृनत पुरुष की िी किया िै, अपनी ननज प्रकृनत के द्वारा सचेतन पुरुष कियारत िैः अतः पुरुष और ववश्व-ऊजिा, शान्त-ननश्चल आममन् ्और आममा की स्रष्ट्री शजकत कोई यथाथ िमें दोिरे और पृथक् तत्त्व निीं अवपतु द्वयेक (biune) िैं। जैसे िम अजग्न और अजग्न की शजकत को पृथक् निीं कर सकते, वैसे िी, किा जाता िै कक, िम हदव्य सत्-तत्त्व और उसकी धचत्-शानत को पृथक् निीं ्कर सकते। आममा की इस रूप में प्रथम अनुभूनत कक वि अमयन्त प्रगाढ़ रूप से शान्त िै और शुद्ध रूप से ननजष्िय िै, यि उसका समपूण िसमय निीं िै।.... इस शरीर में आसीन िैं उसके (प्रकृनत के) और िमारे भगवान्, ्परमाममन्, ्परम् ्पुरुष, प्रकृनत के मिेश्वर, जो उसके काय िका अवलोकन करते िैं, उसकी कियाओंका अनुमोदन करते िैं, वि जो कुछ करती िै उसका भरण करते िैं, उसकी अनेकववध सृजृष्ट पर ननयंत्रण अथवा शासन करते िैं, अपने सावभौम आनन्द के साथ अपनी िी सिा के प्रकृनत द्वारा रधचत रूपों की इस िीिा का उपभोग करते िैं। इससे पिले कक िम अपने आप को सच्चे रूप में शाश्वत का सनातन अंश जान सकें, यि वि आमम-ज्ञान िै जजससे िमें अपनी मानभसकता को सुपररधचत कराना िोगा। एक बार जब वि आमम-ज्ञान सुजस्थर िो जाये, तब चािे िमारी अंतराममा प्रकृनत के साथ अपने आदान-प्रदान में बािरी तौर पर अपने आप को कैसे भी आचरणों में ढाले, वि चािे कुछ भी कयों न करती हदखायी दे या वि व्यजकतमव, सकिय शजकत तथा दैिबद्ध अिंभाव के चािे जैसे इस या उस रूप को धारण करती िो कयों न प्रतीत िो, किर भी वि अपने-आप में स्वतंत्र िोती िै, पिले को तरि जन्मचि से आबद्ध निीं रिती, कयोंकक वि आममा की ननव्यजिकतकता में सिा मात्र की आंतररक अजन्मा आममा के साथ एकमय िो जाती िै। वि ननव्यजकतकता िी जगत् ्में जो कुछ भी िै उस सबके परम ननरिंकार 'अिं' के साथ िमारा एकमव िै।

ध्यानेनात्मनन पश्यस्न्त केधचदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कमुयुोगेन चापरे ।। २५।।

२५. कजछ लोग ध्यान के द्ािा आत्मा के द्ािा अपनी आत्म-सत्ता में आत्मा को देखतेहैं; दूसूरे लोग उसे सांख्य योग के द्ािा देखतेहैं; और दूसूरे कजछ व्यस्क्त कमुयुोग के द्ािा देखते हैं।

अन्ये त्िेिमजानन्तः श्रजत्िान्येभ्य उपासते ।
तेऽवप चानततरन्त्येि मृत्ुयंजश्रनजतपरायणाः ।। २६।।

२६. परन्तज दूसूरे लोग मियं इसे नहीं ्जाननेके कारण इसके बारे में दूसूरों से सनजते ्हैं और इस प्रकार उसकी उपासना करते हैं; िे लोग भी, जो कजछ उन्होंनेसनजा है उसके प्रनत समपुण के द्ािा, मृत्ुयजसे परे चले जाते हैं।

यािात्सञ्जायते ककस्ञ्चत्सत्त्िं मिथािरजङ्गमम् ्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतषुभु ।। २७।।

२७. हे भरतिंसशयों में श्ेरेष्ठ अजुनुज! जो कजछ भी अचर या चर पदाथु ्या प्राणी उत्पन्न होता है उसे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से उत्पन्न हजआ जान।

यि संपूण ि्ववस्तृत जगत् ्केवल पुरुष और प्रकृनत िै।
यिी िै वि ग्रंधथ जो आपस में नक्षत्रों को बाधँ रखती िै:
वे'दो' जो एक िैं, वे िी समस्त शजकत का रिस्य िैं,
वे'दो' जो एक िैं, वे िी वस्तुओंकी शजकत और उनका धम ििैं।
मौन रिकर, पुरुष की आममा प्रकृनत और जग का भरण करती िै,
उसके कम ि्प्रकृनत की आज्ञा का लेखा-जोखा िैं।
प्रसन्न, ननजष्िय, वि उसके पावोंं तले रिता िै:
सौंप देता िै अपना वक्षस्थल वि प्रकृनत के वैश्व नृमृय हित िमारे
जीवन जजस नृमृय की कंपायमान रंगशाला िैं
यहद न िोती अंतर में उसकी शजकत तो कोई सिन न कर पाता,
कफर भी उसके आनंद के कारण उसे कोई निंिछोेगा।

समंसिेष जभूतेष जनतष्ठन्तं परमेश्िरम् ्।
विनश्यत्मिविनश्यन्तं यः पश्यनत स पश्यनत ।। २८ ।।

२८. परमेश्िर सभी जिीों में समान रूप से स्मथत है, नाशिानों में िह अविनश्िर रूप से स्मथत है; जो ऐसा देखता है हीयथाथु ्में देखता है।

इस अजस्तमव का स्वामी ि मारे अंदर नछपा बैठा ि ै
और अपनी ननज शजकत के साथ लुका-नछपी का खेल खेलता ि ै;
प्रकृनत के उपकरण में गि्रा 'देव' रमण करता ि ै।
उकतयामिी' पुरुष मानव के भीतर अपनेननज गि् के समान वास करता ि ै,
उसनेजगत् ्को अपनेमनोववनोद का क्षेत्र बना रखा ि ै,
अपनी शजकत के कायों के हित एक बित् ्व्यायामशाला बना रखा ि ै। '
सवज्ञिाता' ि ोकर वि ि मारी अंधकारमयी अवस्था को स्वीकार करता ि ै.
हदव्य ि ोकर पशु ्अथवा मानव के आकारों को धारण करता ि ै;
'शाश्वत' ि ोकर 'ननयनत' और 'काल' को स्वीकार करता ि ै,
अमर ि ोकर मृमृयुशीलता के साथ मन-बिलाव करता ि ै।
'सव–चेतन' ि ोकर 'अज्ञान' में कूदने का जोणखम उठाया,
'सव ि आनंदमय' ने ि ी संज्ञिीन ि ोना विन ककया ि ै।
संघष ि और दुखु भरे इस जगत् ्में अवतीण िि ोकर,
वि ि ष ि और शोक का जामा पिन लेता ि ै
और अनुभव को शजकतदायी वारुणी के समान पान करता ि ै।

समंपश्यस्न्ह सितुर समिस्मथतमीश्िरम् ्।
न दहनमत्यात्मनात्मानं ततो यानत परांगनतम् ्।। २९॥

२९. जो एक ही ईश्िरि को सितुर समान रूप से अिस्मथत देखता है, ि ह अपनी सच्ची आत्मा का अपनेननम्न मि के द्िािरा अननष्ट नहीं ंकरता, और इस प्रकार ि ह परम गनत को प्राप्त हो जाता है।

आध्याजममक ज्ञान ि मारी अन्तःस्थ आममा की प्ेरेरणा के द्वारा, इस या उस योग अथवा एकमव-प्राजप्त के इस या उस माग ि के प्रनत आममा की पुकार के द्वारा जागृत ि ो सकता ि ै। या यि ि में दूसूरों से समय का श्रवण करने तथा जजसे वि श्रद्धा और एकाग्रता के साथ सुनता ि ै उसी समय के भाव में मन को ढाल देने से प्राप्त ि ो सकता ि ै। परंतु चिो जैसे भी यि प्राप्त ि ो, यि ि में मृमृयु से परे अमृतमव की ओर ले जाता ि ै। ज्ञान आममा के मृमृयुशील प्रकृनत के साथ ि ोनेवाले क्षर व्यविारों से बिुत ऊपर अवजस्थत ि मारी परमोच्च आममा को ि में इस रूप में हदखला देता ि ै कक वे प्रकृनत के कमों के मिेश्वर ि ैं जो सब पदाथों और प्राणणयों में एक और सम ि ैं, न ककसी दिे के ग्रिण के समय जन्म लेते ि ैं और न ि ी इन सब दिेों के ववनाश के समय मृमृयु के अधीन ि ोते ि ैं। यिी यथाथ ि देखना ि ै, ि मारे अंदर उस सिा को देखना जो शाश्वत और अमर ि ै। जैसे-जैसे ि म सभी वस्तुओं में इस सम आममा को अधधकाधधक अनुभव करते ि ैं, वैसे-वैसे ि म आममा की उस समता में प्रवेश करते जाते ि ैं; जैसे-जैसे ि म इन ववश्वमय पुरुष में अधधकाधधक ननवास करने लगते ि ैं, वैसे-वैसे ि म स्वयं ववश्वमय पुरुष बनते जाते ि ैं; जैसे-जैसे ि म इन सनातन के ववषय में उिरोिर सज्ञान ि ोतेजाते ि ैं, वैसे-वैसे ि म अपनी सनातनता को धारण करते

जाते िैं और सनातन िी बन जाते िैं। िम तब अपने मानभसक तथा भौनतक अज्ञान की सीमा और दुदिशा के साथ तदाकार न रिकर आममा की ननमयता के साथ तदाकार िो जाते िैं।

जैसे-जैसे िमें अधधकाधधक अनुभव िोतेजाते िैं वैसे-वैसे िी वि चीज िमारे अंदर ववकभसत िोने ेलगती िै।

प्रश्न : 'इस या उस माग'ि से कया अथ िै?

उत्तर : इसका अथ िै कक मित्त्व इसका निीं कक ककस ववभशष्ट माग िसे व्यजकत अग्रसर िोता िै - वि कोई भी माग िअपना सकता िै - अवपतु उस आंतररक इच्छा का िै, उस पुकार का िै जो भगवान् ्के साथ एकमव-प्राजप्त की चाि रखती िै। इसके भलए व्यजकत कौनसी योग पद्धनत अपनाता िै, कौनसे ववधध-अनुष्ठान अपनाता िै इसका कम मित्त्व िोता िै। यहद भीतर से परमाममा की प्राजप्त की श्रद्धा न जागृत िुई िो तो सभी कुछ ननष्फल िै। पर जब एक बार यि श्रद्धा जागृत िो जाए तब कफर सभी पद्धनतयाँ इस ओर ले जानेमें सिायक िो जाती िैं। और ज्यों-ज्यों व्यजकत को अंदर से संपकि प्राप्त िोता िै, अधधकाधधक अनुभव प्राप्त िोते िैं, मयों िी मयों वि अधधक तदाकार िो पाता िै और इसी कारण वि इस पथ पर हटक पाता िै। यहद ऐसा न िोता तब तो व्यजकत उन्िीं किया-कलापों को दोिराता रिता जजनमें सामान्य जन संलग्न रिते िैं और जजनमें कभी इस माग िके प्रनत कोई चाि निीं िोती। इसभलए माग िपर चलनेपर अवश्य िी व्यजकत कुछ िद तक उन सभी सामान्य व्यस्तताओं से ऊपर उठ जाता िै। जब भीतर से आममा जागृत िो तब कोई भी बािरी साधन कारगर बन जाता िै। उसी के प्रभाव से कोई भी ध्यान, धचंतंन, अध्ययन, श्रवण या अन्य कोई भी योग-पद्धनत उसे अनुभव तक ले जा सकते िैं। विीं यहद भीतर से यि पुकार न िो तब ये सभी चीजें केवल बािरी कियाएँ िी रिती िैं जजनका कोई अधधक लाभ निीं िोता। यिी निीं, यहद भीतरी पुकार न िो या कफर वि शुद्ध न िो तो ये सभी अभ्यास अधधकांशतः अिं की तुजष्ट के िी साधन बन जाते िैं।

प्रश्न : यिा ाँ'ज्ञान' शब्द का प्रयोग आध्याजममक अनुभव को सूधचत करता िै?

उत्तर : िा,ाँ अनुभव से िी ज्ञान आता िै। परंतु सामान्यतया अनुभव से अथ िलगाया जाता िै कक ककसी प्रकार का दशनि िो जाना, कोई वाणी सुनाई देना, आहद। परंतु अनुभव के ववषय में श्रीअरववन्द की पररभाषा सवथिा भभन्न प्रकार की िै। श्रीअरववन्द किते िैं, "अनुभव एक ऐसा शब्द िै जो योग में घहटत िोने ेवाली लगभग सभी बातों को समाववष्ट करता िै, केवल जब कोई (अनुभव) जस्थर िो जाता िै तब वि अनुभव न रिकर भसद्धध का एक अंग बन जाता िै; उदािरणाथ,ि जब शांनत आती-जाती रिती िै तो यि एक अनुभव िै - जब वि जस्थर िो जाती िै, और कफर निीं जाती, तब वि एक भसद्धध िै। साक्षामकार भभन्न वस्तु िै - जब तुम ककसी चीज की अभीप्सा कर रिे िो और वि तुम्िारे सममुख प्रमयक्ष िो जाए; उदािरण के भलए तुम्िारे अंदर एक ववचार िै कक भगवान् ्सब में ववद्यमान िैं, परंतु यि मात्र एक ववचार, एक ववश्वास िी िै; पर जब तुम सबके भीतर भगवान् ्का अनुभव या दशनि करने लगो, तब वि साक्षामकार बन जाता िै।" (CWSA 30, p. 5)

"ऐसा कोई ननयम निीं कक कोई भावना अनुभव निीं िो सकती: अनुभव सभी प्रकार के िोते िैं और वे चेतना में िर प्रकार का रूप धारण कर लेते िैं। **जब चेतना ककसी भी आध्यास्त्मक, चैत्य या यहाँतक कक गद्जि चीज के अनभजि से गजरती है, उसे देखती या आभास करती है तो यह (योग के तकनीकी अथु ुमें) अनभजि होता है,**

कयोंकक नन:संदेि बिुत से अनुभव िोते िैं जो इस प्रकार के निीं िोते। स्वयंभावनाएँ भी अनेक प्रकार की िोती िैं।

भावना शब्द प्रायः ककसी संवेग के भलए प्रयुकत िोता िै, और चैमय अथवा आध्याजममक श्रेणी के संवेग-भावावेग िी सकतिैं जजन्िें यौधगक अनुभवों में धगना जाता िै, जैसे कक शुद्ध भजकत को तरंग अथवा भगवान् के प्रनत प्रेम उमिना। अंग्रेजी शब्द फीभलंगं का अथ िककसी अनुभूत वस्तु का स्पश िभी िोता िै - भले िी यि स्पश िप्राण में, अथवा चैमय या चेतना के अपनेसारतत्त्व में िी िो। मनैं प्रायः देखा िै कक मानभसक स्पश िभी, जब वि बिुत स्पष्ट िी, फीभलंगं किलाता िै। यहद तुम इन्िें तथा इन जैसी अन्य फीभलंग्स को फीभलंगं किकर रद्द कर दो और उन्िें अनुभव न किो तब तो अनुभवों के भलये बिुत थोिा स्थान रि जाएगा। भावप्रधान अनुभूनत (feeling) और अंतदशनि आध्याजममक अनुभव के मुख्य प्रकार िैं। व्यजकत रह्म को सवत्रि देखता और अनुभव करता िै; वि एक शजकत को अपनेमें प्रवेश करते या अपनेसे बािर ननकलते देखता िै। वि अपनेअंदर अथवा चारों ओर भगवान् की उपजस्थनत को देखता अथवा मिसूस करता िै, वि ज्योनत के एवं शांनत अथवा आनंद के अवरोिण को भी देखता तथा मिसूस करता िै। यहद तुम इन सबको 'फीभलंगं' मात्र किकर मयाग दो तो जजनको िम अनुभव किते िैं तुम उनके अधधकतम भाग को रद्द कर दोगे। अब, िम चेतना के तत्त्व, या चेतना की अवस्था में भी एक पररवतनि मिसूस करते िैं, िम शुद्ध ववस्तार के एक (सूक्ष्म) क्षेत्र में अपनेको फैलता िुआ पातिैं और शरीर को उस ववस्तार में छोटी-सी वस्तु मिसूस करते िैं (ऐसा देखा भी जा सकता िै), िम अपनी हृत्-चेतना को संकीण िोनि के बदले ववस्तृत्, कठोर िोने के बदले कोमल, और धूभमल िोनेके बदले ज्योनतमयि िोतेमिसूस करते िैं, ऐसे िी मिजस्तष्क-चेतना, प्राण और शरीर-चेतना को भी। इसी प्रकार की सिस्रों चीजें िम मिसूस करते िैं, भला िम उनको अनुभव कयों न किें? नन:संदेि यि एक अंतदशनि, एक आंतररक भाव, सूक्ष्म-अनुभूनतरूप िोते िैं, शीत पवन, पमथर अथवा अन्य ककसी वस्तु को फीभलंग के समान भौनतक निीं िैं, परंतु ज्यों-ज्यों अंत:-चेतना भिन्न बनती जाती िै ये कम स्पष्ट अथवा कम मूत िी निीं अवपतु अधधक स्पष्ट अथवा मूत िोतेजाते िैं।" (CWSA 30, p. 7)

जब श्रीअरववन्द की पररभाषा के दृजष्टकोण से िम अनुभव को समझने का प्रयास करते िैं तब िमें समझ में आता िै कक अनुभव एक बिुत िी व्यापक शब्द िै। यहद आम तौर पर जजसे अनुभव किते िैं - जैसे कक कोई दशनि िोना, ककन्िीं सूक्ष्म सिाओं के संपकि में आना केवल वे िी अनुभव िोतेतब तो इनका दायरा बिुत िी सीभमत िो जाता और साथ िी इन चीजों की कोई ववश्वसनीयता भी निीं थी। यहद व्यजकत का सभी समय सूक्ष्म जगत् की सिाओंके साथ संपकि रिता िै और उनकी सियता से वि कुछ ववलक्षण काय िभी कर लेता िै, या कफर यहद व्यजकत को सभी समय कोई दशनि प्राप्त िोतेरितिैं तो भी इन सभी चीजों से आवश्यक निीं कक उसे आममा की कोई सच्ची अनुभूनत, कोई सच्चा ज्ञान प्राप्त िो। विीं, यि भी संभव िै कक कोई एक छोटा सा ववचार भी गिरा

ज्ञान प्रदान कर दे। अतः यि एक बिुत िी ववशाल क्षेत्र िै। सामान्यतः जजनर्ें िम अनुभव किते िैं उनके िोने ेया न िोने ेसे आंतररक श्रेष्ठता का कोई मूल्यांकन भी निीं िो सकता िै।

प्रकृत्यै च कमुाणण कक्रयमाणानन सिुशः ।
यः पश्यनत तथात्मानमकतुारं स पश्यनत ।। ३०।।

३०. जो यह देखता है कक सभी कमु ुप्रकृनत के द्िारा ही ककये जाते हैं, और आत्मा कतुा नहीं ेहै, िह यथाथु ुदेखता है।

प्रकृनत िमारे अन्दर कम िका गठन करती िै; पुरुष इसके अन्दर या इसके पीछे रिकर उसे साक्षीभाव से देखता, अनुमनत देता, उसे धारण करता तथा उसका भरण करता िै। प्रकृनत िमारे मन में ववचार (idea) की रचना करती िै; इसके अन्दर या पीछे अवजस्थत पुरुष उस ववचार को तथा उसके अन्तननिहित समय को जानता िै। प्रकृनत कम िका पररणाम ननजश्चत करती िै। इसके अन्दर या पीछे अवजस्थत पुरुष उस पररणाम को भोगता या सिन करता िै। प्रकृनत मन और दिे की रचना करती िै, उन पर पररश्रम करती िै। उन्िें ववकभसत करती िै; पुरुष उस रचना एवं ववकास को धारण करता िै और प्रकृनत के कायों के प्रमयेक पग को अनुमनत देता िै। प्रकृनत एक संकल्पशजकत प्रयुकत करती िै जो वस्तुओंमें तथा मनुष्यों में काय िकरती िै; और पुरुष, जो करना चाहिये उसे अपनी अन्तदृिजष्ट से देख कर, उस संकल्प-शजकत को कम िमें प्रवृि करता िै। यि पुरुष सतिी अिं निीं िै, अवपतु ु अिं के पीछे अवजस्थत ननश्चल-नीरव आममा िै, शजकत का स्रोत िै, ज्ञान का प्रवतकि तथा उसका ग्रिीता िै। िमारा मानभसक 'म'ैं इस आममा, इस शजकत, इस ज्ञान की एक भमथ्या प्रनतच्छायामात्र िै। अतः यि पुरुष या यि भरण करनेवाली चेतना, प्रकृनत के समस्त कमों का मूल, ग्रिीता तथा आधार िै, पर यि स्वयंकति निीं िै। सामने की ओर अवजस्थत प्रकृनत अथवा प्रकृनत-शजकत तथा इसके मूल में ववद्यमान शजकत अथवा धचत्-शजकत या आमम-शजकत, - कयोंकक यिी दो ववश्वजननी की आन्तर तथा बाह्य मुखाकृनत िैं, - उस सबका कारण िोती िै जो कुछ संसार में ककया जाता िै। ववश्वजननी अथवा प्रकृनत-शजकत िी एकमात्र कमकिती िै।

यदा भूतपृथृनभामेकमथमनपजश्यनत ।
तत एि च विमतारं ब्रह्म संपद्यते तदा ।। ३१॥

३१. जब मनष्जय भूतों के पृथृक् पृथृक् भिा (विविि प्रकार के भूतों) को एक सनातन ब्रह्म में स्मथत और उससे ही विमतृत् हजए देखता है, तब िह ब्रह्म को प्रास हो जाता है।

अनाददत्स्न्निगुणुजत्तात्पिरमात्मायमव्ययः ।
शरीरमथोऽवप कौन्तेय न करोनत न सलप्यते।। ३२ ।।

३२. हे कौन्तेया अनादद और शाश्ित होने ेसे तथा गणजों से सीसमत न होनेके कारण यह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्मथत होने ेपर भी कजछ भी कमु ुनहीं करता और न ही उससे प्रभावित होता है।

ववश्व-किया का यि सब सतिी प्रपंच एक िी सनातन के अंदर प्राकृत सिाओं का नानाववध भूतभाव िै, सब कुछ ववश्व-शजकत के द्वारा उस पुरुष की सिा की गिराई के अन्दर अपने'ववचार' के बीजों से िी ववस्ताररत, अभभव्यकत तथा अनावृत् ककया जाता िै; परंतु आममा यद्यवप िमारी इस दिे में उसके किया-व्यापारों को अंगीकार करती िै और उपभोग करती िै, तो भी उसकी मृमयुशीलता से प्रभाववत निीं िोती, कयोंकक वि जन्म-मरण से परे शाश्वत िै, वि उन व्यजकतमवों से सीभमत निीं िोती जजन्िें वि प्रकृनत के अंदर नानाववध रूप से ग्रिण करती िै, कयोंकक वि इन सब व्यजकतमवों की एक िी परम् ्आममा िै, त्रत्रगुण के ववकारों से पररवनततिि निीं ंिोती, कयोंकक वि स्वयं गुणों से अननधाररत रिती िै, कमरित रिते्िुए भी कम िनिीं ंकरती, 'कतारिम् ्अवप अकतारिम्,् कयोंकक वि प्रकृनत के कम िको धारण तो करती िै पर उसके फलों से आध्याजममक तौर पर पूणतिया मुकत रिती िै, वि समस्त कमों का मूल तो िै, पर अपनी प्रकृनत की कििीा से ककसी प्रकार भी पररवनततिि या प्रभाववत निींिोती।

प्रश्न : इसका कया अभभप्राय िै कक 'प्रकृनत िमारे मन में ववचार की रचना करती िै?

उत्तर : यिा ाँववचार से अभभप्राय idea से िै न कक thought से, अथाात्कककन्िींसामान्य क्षुर सोच-ववचार से निीं ंअवपतु मित् ्ववचारों से िै। मित् ्ववचार जैसे कक 'मूलभूत एकमव' का ववचार, 'अमरता' का ववचार, आहद। जब भागवत् ्समय मनुष्य के मन पर प्रभाव िालता िै, उस पर अपना प्रनतत्रबंब िालता िै तब अनेकानेक मित् ् ववचारों के रूप में ग्रिण ककया जाता िै। अधधमानभसक स्तर पर परम ववचार ववद्यमान रिते िैं और प्रमयेक ववचार में अपनेआप को चररताथ िकरने ेकी प्रववृि िोती िै। परंतुजब वे ववचार मानभसक चेतना में अभभव्यजकत का प्रयास करते िैं तब एक ववभ्रम की जस्थनत पैदा िो जाती िै कयोंकक अधधमानस से ऊपा के स्तर पर िी एक व्यापक चेतना में सभी को समाहित और समजन्वत ककया जा सकता िै जबकक ननचले स्तर पर ऐसी कोई समन्वयकारी चेतना न िोने ेके कारण सभी ववचार एक-दूसरे के ऊपर अपने-आप को लादनेका प्रयास करते िैं। उदिारण के भलए, परमामममा के ववषय में िी ककतने ेभभन्न-भभन्न प्रकार के ववचार िैं। कोई उन्िें परम सत् ्किता िै, कोई उन्िें ननराकार रह्म बताता िै, कोई उन्िें सगुण साकार बताता िै। चूंकक श्रीअरववन्द ने स्वयंइन सभी के समयों को अनुभव ककया इसभलए वे ेकिते िैं कक परमामममा के ववषय में ये सभी अनुभव अपनेस्थान पर सिी िैं परंतु केवल इन्िींके अंदर परमामममा के स्वरूप को सीभमत निीं ंककया जा सकता। वि तो इन सभी से अनंत रूप से ववशाल िै। इसभलए जब तक कोई ववशाल समन्वयकारी चेतना न िो तब तक ववचारों का परस्पर ववभ्रम चलता रिता िै। ज्यों-ज्यों चेतना का ववकास िोता जाता िै मयों-मयों सारे ववचार समस्वर िोते जाते िैं। पाधथवि ववकास में सभी ववचारों को अपनी-अपनी अभभव्यजकत का अवसर प्रदान ककया जाता रिा िै ताकक उनके पीछे के समय को अभभव्यजकत भमल सके और साथ िी उनकी सीभमतता का भान िो सके। सभी सभ्यताएाँ ककन्िींप्रधान ववचारों को लेकर चली िैं। उदिारण के भलए ककसी सभ्यता ने सौंदय िके ववचार को प्रधानता दी िै, तो ककसी दूसूरी ने सिी ववधान या न्यायपूण िव्यविार के ववचार को प्रधानता दी िै। इस प्रकार अतीत में सभी संसं्कृनतयों ने अपने-अपने तरीके से भभन्न-भभन्न आदशों को अपनाकर उनके अनुसार अपनेसमाज को ननदेभशत करने ेका प्रयास ककया िै। और प्रकृनत के इन सभी परीक्षणों के पररणामों के ववषय में िम जानते िैं। चूंकक ये सभी एकांगी रूप से िी समय को अभभव्यकत करनेका प्रयास रिे िैं इसभलए इन सभी का एक सीमा के बाद अंत ननजश्चत िोता िै। श्रीअरववन्द के

अनुसार प्रकृनत इन सभी परीक्षणों से िोतेिुए ववश्व-राज्य की ओर बढ़ रिी िै। जब तक ववश्व-राज्य स्थावपत निीं िोता तब तक िमारी वतमिान समस्याओं का िल निीं िो सकता। इस ववषय में श्रीअरववन्द किते िैं। "...यि प्रमयक्ष िै कक मनुष्यजानत की एकता प्रकृनत की अंनतम योजना का अंग िै और यि भसद्ध िोकर िी रिेगी। परंतु यि िोगी उन अवस्थाओं में और सुरक्षा के उन साधनों के साथ जो जानत की जीवन-शजकत के मूल को अक्षुण्ण तथा उसकी एकता को ववववधता से भरपूर रखेंगे।" (CWSA 25. p. 284)

यथा सिुगतंसौक्ष्म्यादाकाशं ंनोपसलप्यते।
सिुत्रािस्मथतो देहे तथात्मा नोपसलप्यते ।। ३३ ।।

३३. स्जस प्रकार सिुव्यापी आकाश अपनेसूक्ष्म होने ंके कारण प्रभावित नहीं ंहोता उसी प्रकार आत्मा सिुत्र देहों में स्मथत हजआ असलप्त रहता है।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्मनं ंलोकसममं रविः ।
क्षेत्रं ंक्षेत्री तथा कृत्मनं प्रकाशयनत भारत ।। ३४ ।।

३४. हे भारत! स्जस प्रकार एक ही सूयु ुइस संपूणु ुलोक को प्रकासशत करता है इसी प्रकार क्षेत्र का मिामी (क्षेत्री) सकल क्षेत्र को प्रकासशत करता है।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरिमन्तरं ज्ञानचक्षषजा ।
भूतप्रकृनतमोक्षं ंच ये विदयुत्त ते परम् ्।। ३५।।

३५. जो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के इस भेद को तथा प्रकृनत से जीिों के मोक्ष को ज्ञान चक्षजके द्िारा देख पातेहैं िे परम् ्को प्राप्त होते हैं।

जब िम अपनी अंतरस्थ आममा की ओर मुिते िैं तो वि प्रकृनत के संपूण िक्षेत्र को रजश्मयों की पूण िप्रभा से संपन्न अपने ननज समय से प्रकाभशत कर देती िै। उस ज्ञान के सूय िके प्रकाश में िमारे अंदर ज्ञानचक्षु खुल जाता िै और तब िम कफर इस अज्ञान में निीं,ं अवपतु उस समय में ननवास करनेलगते िैं। तब िम देख पाते िैं कक िमारा अपनी वतमिान मानभसक और भौनतक प्रकृनत की सीमा में बाँधे रिना एक अंधकारमय भ्रांनत थी, तब िम अपरा प्रकृनत के ननयम, अथात्िमन और दिे के ननयम से मुकत िो जाते िैं, तब िम आममा की पराप्रकृनत को प्राप्त कर लेते िैं। वि अनत भव्य और उच्च पररवतनि िै, ममृयुशील प्रकृनत को उतार फेंकना तथा अमर सिा को धारण कर लेना िी अंनतम, हदव्य और अनंत संभूनत िै।

इस प्रकार तेरहिूँ अध्याय 'क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग' समास होता है।

चौदिवााँअध्याय

गुणोंसेऊपर

गीता के तेरिवें अध्याय के श्लोकों में कुछ ननणाययक ववशेषेणों के द्वारा सरसरी तौर पर पुरुष और प्रकृनत के बीच जो भेद ककये गये िैं, इनकी पृथक-पृथक् शजकत और कियाववधध के जो कुछ संक्षक्षप्त परंतु अथगिवपति लक्षण हदये गये िैं वे, और ववशेषेकर प्रकृनत के गुणों का उपभोग करने ेके कारण उसकी किया के अधीन दिेधारी जीव और गुणों का उपभोग करते िुए भी उनसे परे िोनेके कारण उनके अधीन निींिोने वाले परमामममा के बीच जो भेद ककया गया िै – ये िी वे आधार िैं जजन पर गीता के मुकत जीव का, जो अपनी सिा के सचेतन धम िमें परमामममा के साथ एकीभूत िो गया िै, सारा ववचार आधाररत िै। उस मुजकत एवं ंएकमव को, उस हदव्य प्रकृनत को धारण करनेको, अथात्िसाधमय िको वि आध्याजमममक स्वातंत्र्य का वास्तववक सार तथा अमरमव का संपूण िमम िबताती िै। 'साधमय'ि को हदया गया परम मित्त्व गीता की भशक्षा की प्रधान बात िै।

श्रीभगिान् ्उिाच परं भूयः प्रिक्ष्यासम ज्ञानानां ज्ञानमत्तजमम् ्।
यज्ज्ञात्िा मनजयः सिे ेपरांससद्धिसमतो गताः ।। १॥

१. श्रीभगिान् ्ने कहाः सममत ज्ञानों में उच्चतम परम ज्ञान को म ैंतजझे ेकिर कहता हूँ स्जसे जानकर सममत मनजन इस (ननम्न) अिमथा से उठकर पूणु ुससद्धि को प्राप्त हो गये हैं।

इदं ज्ञानमपजाधश्रत्य मम सािम्युमुागताः ।
सगेऽवप नोपजायन्तेप्रलये न व्यथस्न्त च ॥ २॥

२. इस ज्ञान का आश्रय ग्रहण करके और मेरे सादृश्य को प्राप्त हजए मनष्जय सृसृष्ट में पजनः जन्म ग्रहण नहीं ंकरते और विश्िप्रलय के दिारा भी व्यधथत नहीं ंहोते।

और यि मित् ्काय,ि मानव-प्रकृनत से हदव्य प्रकृनत में यि आरोिण, िम एक ईश्वरोन्मुख ज्ञान, संकल्प और उपासना अथवा भजकत के द्वारा िी कर सकतेिैं। कयोंकक, परम देव के द्वारा अपनेसनातन अंश के रूप में भेजा िुआ जीव, ववश्व-प्रकृनत की कियाओं में उनका अमर प्रनतननधध िोतेिुए भी उन कियाओंके स्वरूप के कारण अपनी बाह्य चेतना में अपने-आप को प्रकृनत की सीमाकारी अवस्थाओं के साथ तथा एक मन, प्राण और शरीर के साथ तदाकार करने ेके भलए ववश िो जाता िै 'अवशं ंप्रकृतेवशात्'् जो अपनेआंतर आध्याजमममक समस्वरूप और अपनेअंतननहिित परमेश्वर को भूले िुए िैं। अपनेसमस्वरूप के ज्ञान (आममज्ञान) को पुनः प्राप्त करना इस भसद्धध या पूणति का अननवाय िसाधन िै। आमम-ज्ञान एवंईश्वर-ज्ञान के त्रबना तथा अपनी प्राकृनतक सिा के प्रनत आध्याजमममक भाव धारण ककये त्रबना पूणति निीं ंआ सकती, और इसी कारण प्राचीन प्रज्ञा ने ज्ञान के द्वारा

मुजकत पर इतना अधधक बल हदया, - ज्ञान का तामपय िवस्तुओंका बौद्धधक बोध र्नीं, वरन् ्मनोमय प्राणी, मनुष्य, का मिर अध्यामम-चेतना में ववकभसत िोना िै। आममा की भसद्धध के त्रबना, अथात्ि्आममा के हदव्य प्रकृनत में ववकभसत िुए त्रबना उसकी मुजकत साधधत र्नीं ंिो सकती; तटस्थ ईश्वर अपने मन की मौज या अपने अनुग्रि की ककसी मनमानी सनद के द्वारा इसे िमारे भलए साधधत र्नींकर देंगे। हदव्य कम िमुजकत के भलए कारगर िैं, कयोंकक वे िमें िमारी सिा के अंतरस्थ प्रभु के साथ बढ़ते िुए एकमव के द्वारा इस भसद्धध की ओर तथा आममा, प्रकृनत और ईश्वर के ज्ञान की ओर ले जाते िैं। हदव्य प्रेम भी कारगर िै, कयोंकक उसके द्वारा िम अपनी भजकत के एकमात्र परम भाजन के साथ उर्िरीर साधमय िलाभ करते िैं और उन 'परम' के प्रमयुिरशील प्रेम का आविान करते िैं ताकक वि िमें उनके ज्ञान की ज्योनत से तथा उनको सनातन आममा की उमथान करने ेवाली शजकत एवं पववत्रता से पररप्लाववत कर दे.... यि वि शाश्वत ज्ञान िै, मिान् ्आध्याजममक अनुभव िै जजसके द्वारा सब मुननयों ने वि परमोच्च पूणतिा प्राप्त की तथा सिा के ववधान में पुरुषोम' के साथ सारूप्य लाभ ककया और अब सदा के भलए उनकी शाश्वतता' में ननवास करते िैं, सृजृष्ट में जन्म र्नींलेते, ववश्वप्रलय की व्यथा से उद्ववग्न र्नींिोते। इस प्रकार यि भसद्धध, यि 'साधमय'ि अमृतमव का माग िै तथा एक अननवाय िअबस्था िै जजसके त्रबना जीव सचेतन रूप से सनातन में ननवास र्नीं ंकर सकता। यिाँ गीता का जो प्रयास िै उसका िमें पररप्रेक्ष्य समझना आवश्यक िै। गीता यिाँयि स्पष्ट कर री िै कक भगवान् ्ने नवें तथा दसवें अध्याय म ेंजो माग िबताया िै उसके साथ गुणों का कया संबंध िै। वास्तव में तीन गुण कया िैं इस ववषय में तो िम ववशद चचिा पिले कर िी चुके िैं। चौथे अध्याय में भगवान् ्अवतार के जन्म में और एक सामान्य जीव के जन्म म ेंभेद का ननरूपण करते िैं। ककसी जीव के अंदर वे प्रकृनत के वशीभूत िोकर जन्म ग्रिण करते िैं जबकक अवतार के रूप में वे अपनी प्रकृनत को वशीभूत कर के उसके अध्यक्ष के रूप में जन्म लेते िैं। जब एक व्यजष्टगत जीव जन्म लेता िै तो चूंकक वि अपने स्रोत को भूल जाता िै और प्रकृनत के वशीभूत िोता िै इसभलए समजष्ट को देखकर भ्रभमत िो जाता िै। देि, प्राण और मन रूपी सिा िोने ेके कारण वि सारे जगत् ्को तीन गुणों के माध्यम से अथात्ि्तमस्,् रजस् ् और सत्त्व के दृजष्टकोण से देखता िै। उदािरण के भलए, तमस् ्के दृजष्टकोण से दुननया को देखने पर व्यजकत को मिसूस िोता िै कक जजस प्रकार का जगत् ्िै उसमें उसे अपने-आप का भरण-पोषण करना िोगा, अपने-आप के भलए जीना िोगा। इसमें व्यजकत पूरी तरि अपने-आप पर और केवल अपनिी सुख-आराम आहद पर केंहरत रिता िै। रजस् ्के दृजष्टकोण से देखनेपर उसे यि मिसूस िोता िै कक अपनी शजकत के बल पर वि अपना काय िसंभसद्ध कर सकता िै। इसभलए राजभसक व्यजकत को तामभसक की अपेक्षा एक मिृर कायक्षेत्र उपलब्ध िोता िै। सत्त्व प्रधान व्यजकत चीजों को और बािरी पररजस्थनतयों को देखता अवश्य िै परंतु वि उनके पीछे के समय को जानने े की, उनमें सामंजस्य स्थावपत करने की चाि रखता िै। अतः वि इस संसार की व्याख्या माया के रूप में भी कर सकता िै जिाँचीजों का स्वरूप उनकी प्रतीनत से भभन्न िै। मन-प्राण और देि रूपी सिा िोने ेके कारण मनुष्य में एकांनतक रूप से केवल कोई एक िी गुण िो, ऐसा र्नीं ंिो सकता। ककसी एक की प्रधानता िोतेिुए भी अन्य दो गुण भी साथ में रिते िैं। प्रधानतः साजत्त्वक िोतेिुए भी व्यजकत में तमस् ्की किया भी िो सकती िै और रजस् ् प्रधान िोनेपर भी व्यजकत में सत्त्व की किया िो सकती िै। मनुष्य की बुद्धध साजत्त्वक िोने ेपर भी प्रायः केवल

प्राण और शरीर की िी सेवा में ननयुकत रिती िै। ववरले िी ऐसे उदािरण भमलते िैं जिााँ बुद्धध प्राण और शरीर पर अपना आधधपमय रखती िो। अधधकांशतः तो िम प्राण को बुद्धध और शरीर पर ननरंकुश शासन करते देखते िैं।

---

* ध्यान में रिे कक गीता में किीं ंभी इस बात का कोई संकेत निीं ंिै कक व्यजष्टभूत आध्याजममक सिा का अव्यकत, अननदेश्य, या पररह्म में, अव्यकतम् ्अननदेश्यम् ्में, लय िोना िी अमरता का सच्चा अथ िया उसकी सच्ची जस्थनत िै या योग
का सच्चा लक्ष्य िै। इसके ववपरीत, आगे चलकर वि अमरता का इस रूप में वणनि करती िै कक वि ईश्वर के अंदर उनके परम धाम में ननवास करना िै, मनय ननवभसष्यभस, परं धाम, और यिााँ उसका वणनि इस रूप में करती िै कक वि अमरता साधमयं, परां भसद्धधम् ्िै, अथात्ि्परम पूणतिा िै, अपनी सिा और प्रकृनत के धम िमें पुरुषोम के समान धमविाला िोना िै, ककंतुऐसा
िोते िुए भी अजस्तमव में बने रिना तथा ववश्व-गनतववधध से सचेतन िोते िुए भी उससे ऊपर उठे रिना िै, जैसे सब मुनन अभी
* अमर िोने का अथ प्राचीन आध्याजममक भशक्षा में यि कभी निीं माना गया कक यि केवल दैहिक मृत्यु के
भोगिते िैं, मुक्य: सत्, वे सृजष्टीय में जन्म के अधीन निीं िोते. युगायों के प्रलय के काल में व्यधथत निीं िोते।
बाद व्यजकत की सिा का बचेरिना िी िै: इस अथ िमें तो सभी जीव अमर िैं और केवल उनके बाह्य रूप िी िैं जो नष्ट िोते िैं। जो जीव मोक्ष निीं प्राम कर पाते ेवे पुनरावती युग-युगांतरों में जीवन-यापन करते िैं, सब भूत व्यकत लोकों के प्रलय के समय रह्म के अंदर ननवनतति या ननगूढ़ रूप में अवजस्थत रिते िैं और नए युगचि के आववभावि के समय पुनः उमपन्न िोते िैं।... गंभीरतर अथ िमें, अमर िोने का तामपय िमृमृयु के बाद के इस अजस्तमव तथा इस ननरंतर पुनरावतनि से भभन्न िै। अमरता वि परा-जस्थनत िै जजसमें आममा को यि ज्ञान िोता िै कक वि जन्म और मृमृयुसे परे िै, अपनो अभभव्यजकत की प्रकृनत से पररसीभमत निीं िै, अनंत एवं अववनाशी िै, अपररवतनीय रूप से शाश्वत िै, - अमर िै, कयोंकक कभी जन्म न लेने के कारण वि कभी मरती भी निीं। भगवान् ्पुरुषोम, जो परमेश्वर और परंरह्म िैं, इस अमर सनातनता से ननमय युकत िैं और कोई दिे ग्रिण करने या वैश्व रूपों एवं ंशजकतयों को सतत् ्धारण करने से प्रभाववत निीं िोते,े कयोंकक वे सदा इस आमम-ज्ञान में प्रनतजष्ठत रिते िैं। उनकी प्रकृनतमात्र िी िै अपनो ननज शाश्वतता के प्रनत अपररवतनीय ढंग से सचेतन रिना; वे अनाहद और अनंत रूप से आमम-चेतन िैं। वे यिााँ सभी दिेों के अंतवासिी िैं, परंतु प्रमयेक शरीर में वे अजन्मा के रूप में ववद्यमान िैं, उस अभभव्यजकत के द्वारा वे अपनी चेतना में सीभमत निीं िोते, जजस भौनतक प्रकृनत को वे धारण करतिैं उससे तदाकार निीं िो जाते:े कयोंकक वि तो उनकी सिा के लीलामय जगद्-व्यापार की एक गौण घटना मात्र िै।

इसीभलए श्रीअरववन्द कि रिे िैं कक, "परम देव के द्वारा अपने सनातन अंश के रूप में भेजा िुआ जीव, ववश्व-प्रकृनत की कियाओं में उनका अमर प्रनतननधध िोतेिुए भी उन कियाओंके स्वरूप के कारण अपनी बाह्य चेतना में अपने-आप को प्रकृनत की सीमाकारी अवस्थाओं के साथ तथा एक मन, प्राण और शरीर के साथ तदाकार करने ेके भलए वववश िो जाता िै 'अवशं प्रकृतेवशित्'् जो अपने आंतर आध्याजममक समस्वरूप और अपने अंतननहिित परमेश्वर को भूले िुए िैं।" अत:, जोव जब अपनेआप को ककसी एक मन, प्राण और शरीर से तदाकार कर लेता िै और साथ िी ववश्व-प्रकृनत की कियाओंसे ववमोहित िो जाता िै तब यिी सारी समस्याओं का, चेतना के अंधकार का कारण बन जाता िै। तो प्रश्न उठता िै कक व्यजकत इस अंधकार से बािर कैसे ननकले? इसके उिरस्वरूप भगवान् ्कित े िैं कक इसके भलए ज्ञान का आश्रय लेना चाहिये। ज्ञान का अथ िै कक व्यजकत अपनेबोध के भलए अपनी इंहरयों और बािरी साधनों पर आधश्रत न रिकर आंतररक रूप से बोध प्राप्त करे। इसे जागृत करने में भगवान् ्के प्रनत प्रेम भी बिुत िी कारगर िै। यहद भगवान् ्के प्रनत प्रेम िो, उनके प्रनत पुकार िो तो उसका

प्रमयिुर िमारे अंदर स्वयंिी सभी आवश्यक सद्गुण ले आता िै। यहद पे्रम िो तो ज्ञान, भसद्धध आहद तो सिज िी उसके साथ िी साथ चले आते िैं। इसभलए पे्रम भी इस अंधकार से बिार ननकालने में प्रभावी िै। साथ िी इससे बिार ननकालने में हदव्य कम िभी प्रभावी िैं। जब वास्तव में िी व्यजकत कमयोग करता िै तो उसके सारे भाग भगवान् की प्रकृनत के यंत्र बन जाते िैं और जब भगवान् की हदव्य प्रकृनत उनके द्वारा अभभव्यकत िोनेलगती िै तब धीरे-धीरे वि उस अंधकार को नष्ट कर देती िै। अतः जब ककसी भी तरीके से व्यजकत इस अंधकार से ननकल जाएगा तो वि साधमय,ि सारूप्य या सालोकय प्राप्त कर सकता िै।

एक सच्चे दृजष्टकोण से तो गुणों का अपने-आप में कोई अजस्तमव िी निीं। एकमात्र भगवान् की पराप्रकृनत की िी किया िो रिी िै जो कक सभी गुणों से परे िै। परंतु उसकी किया िमारी मानभसक, प्राणणक और भौनतक चेतना को त्रत्रगुणमयी प्रतीत िोती िै। और चूंकक उसको किया िमें गुणमयी प्रतीत िोती िै तो िम उससे ववमोहित िो जाते िैं और उसमें आसकत िो जाते िैं, जबकक सारा िी व्यापार भगवान् और उनको पराप्रकृनत के बीच की िोिी िै। परंतु चूूँकक िम इसमें बद्ध िैं इसभलए िमें कमयोग, ज्ञानयोग या भजकतयोग का सिारा लेना िोता िै ताकक िम इस ननमन किया से बिार आ सकें।

प्रश्न : पिली पादहटप्पणी में किा गया िै कक मुनन सृजृष्टचि के अधीन निीं िोते, तो कया वे इससे मुकत िोते िैं?

उत्तर : श्रीमाताजी व श्रीअरववन्द के कथनानुसार कुछ चुनिुए ऋवषगण ईश्वरकोहट िोते िैं न कक जीव कोहट। वे इस पाधथवि ववकासिम से निीं आए िैं अवपतु ननवतनि (involution) की प्रकिया से आए िैं और इसभलए वे स्वतःभसद्ध और पूण िोते िैं। उन पर इस ववकासिम को ववषमताओं का प्रभाव निीं िोता। पाधथवि जन्म ग्रिण करने पर भी वे पाधथवि कियाओं के अधीन निीं िोते। वे अपनेननहित उद्देश्य को पूनत िके भलए आववभूति िोते िैं और उद्देश्य पूनत िके बाद पुनः लौट जाते िैं। और जब भी आवश्यकता िोती िै तब वे पुनः लौटकर इस पाधथवि अभभव्यजकत में आ जाते िैं। श्रीमाताजी व श्रीअरववन्द के अनुसार ऋवषयों का एक समूि सदा िी पाधथवि ववकास में सिायता प्रदान करता आया िै। वे िी ऋवष अलग-अलग समयों में अलग-अलग शरीर धारण कर इस ववकासिम को आगे गनत प्रदान करते िैं। उन्िीं आममाओंके भलए गीता किती िै 'सवभिूत हिते रताः', वे सदा िी सभी जीवों के कल्याण में रत रिते िैं।

प्रश्न : कया सामान्य जीव ईश्वरकोहट भाव में जा सकता िै?

उत्तर : ककसी जीव के भलए ईश्वरकोहट बनना संभव निीं िै। िमारे इस पाधथवि जगत् का स्वरूप मिववकासमय िै जजसमें व्यजकत सदा िी उिरोिर ववकभसत िोता जाता िै और चेतना के अधधकाधधक उच्च स्तरों पर आरोिण करता जाता िै। परंतु चूंकक परम् सिा अनन्त िै इसभलए इस आरोिण का भी कोई अंत निीं। ऐसे में अमयंत उच्च स्तरों पर आरोिण कर चुके िोने के बाद भी व्यजकत के आगे आरोिण के अनंत सोपान शेष रिते िैं और इस प्रकार यि आरोिण चलता रिता िै। परंतु इसमें जीव ईश्वरकोहट निीं बन जाता। ईश्वरकोहट भाव

तो केवल अवतरण से िी आ सकता िै। इसमें यि अवश्य िी संभव िै कक स्वयंवि भाव ककसी जीव में अवतररत िो जाए जजस कारण वि जीव ईश्वरकोहट बन जाए। परंतु कफर भी इस भाव में जानेकी प्रकिया अवतरण से िी िो सकती िै ककसी प्रकार के िमववकास से निीं।

प्रश्न: दूसूरी पादहटप्पणी में किा गया िै कक, "अमरता वि परा-जस्थनत िै जजसमें आममा को यि ज्ञान िोता िै कक वि जन्म और मृमृयु से परे िै", तो कया अन्य जस्थनतयों में व्यजकत को ज्ञान निींिोता?

उत्तर : यिाँककसी कोरे मानभसक ज्ञान की बात निीं ो रिी िै। इस ज्ञान का अथ िै जीवंत रूप से आममा का उस चेतना में ननवास करना जिाँवि जन्म और मृमृयु दोनों को समान िी रूप से अपनी अभभव्यजकत के काम में लेती िै।

प्रश्न : जब िम मोक्ष की बात करते िैं कया वि मानभसक चेतना से ऊपर की बात निीं िै?

उत्तर : िमें यि ध्यान में रखना िोगा कक अभी तक मनुष्य मानभसक चेतना से ऊपर निींगए िैं। इसभलए उससे परे की चीज का तो उसे कोई आभास िी निीं िो सकता। कोई भी ब्रि–से-ब्रा ऋवष भी अभी तक भानाभसक चेतना के परे निींजा सका िै। आज तक जो भी ऊँचे से ऊँचे अनुभव प्राप्त िुए िैं वे सब मन के माध्यम से िी िुए िैं न कक स्वयं उस स्तर पर जाकर। इस पाधथवि अभभव्यजकत में मनुष्य अब तक मानभसक चेतना से आगे निीं ंजा पाया िै। जब िम उच्चतर लोकों में आरोिण की बातें करते िैं तो मानव सिा का केवल एक भाग िी िै जो यि आरोिण करता िै। शेषे सारी सिा आरोिण निीं ंकर पाती और ननचले स्तर पर िी बनी रिती िै। और जो भाग आरोिण करता िै यहद वि प्रभावी िोता िै तो साधक को अवश्य िी उस भाग में अमरता का भान िो सकता िै। सामान्यतया िमारे आध्याजममक साहिमयों में िम जजन साक्षामकार और अनुभूनत आहद का वणनि पढ़ते-सुनते िैं वि तो चेतना की अनंत स्तर परंपरा में एक बिुत िी ननचले स्तर की बात िै और वे भी मन, प्राण और शरीर के माध्यम से िी िोतीं। यिाँतक कक सजच्चदानंद का अनुभव भी आज तक केवल िमारी ननमन सिा एवं मानभसक सिा के माध्यम से िी िुआ िै। जब िम मानभसक चेतना या सिा की बात करते िैं तो उसमें मानव मन से ऊपर उच्चतर मन (Higher Mind), ज्योनतमयि मन (Illumined Mind), अंतर्भासाममक मन (Intuition) और अधधमन (Overmind) भी शाभमल िैं। उसके अपने स्तर पर सजच्चदानंद के साक्षामकार की तो कोई कल्पना िी निीं ंकी जा सकती। श्रीअरववन्द ने चेतना के ववभभन्न स्तरों की योजना का जो नकशा बताया िै उसमें तो अनतमानभसक स्तर भी बिुत िी ननचले स्तर पर िै जबकक िमारे भलए तो यि िमारी ककन्िीं भी कल्पनाओंसे भी सवथिा परे की बात िै।

मम योननमुहुद्ब्रह्म तस्ममन्गभं ंदिाम्यहम् ्।
संभिः सिुभूतानां ंततो भिनत भारत ।। ३।।

३. हे भारत! महत्–्ब्रह्म मेरा गभुाशय है, उसमें म ैंबीज का आिान करता हूँ, उससे सममत भूतों की उत्पवत्त होती है।

सिुयोननष जकौन्तेय मूतुयुः संभिस्न्त याः ।
तासां ब्रह्म महद्योननरहं बीजप्रदः वपता ।। ४।।

४. हे कौन्तेय! सममत जिी योननयों में जो देहाददरूप आकृनतया ूँउत्पान होती हैं उन सबका गभ ुाशय महत्–्ब्रह्म है और म ैंबीज प्रदान करने िाला वपता हूूँ।

यहद मनुष्य की अंतराममा अपनेगुप्त सारतत्त्व में भगवान् के साथ अववनाशी रूप से एक न िोती तथा उनकी हदव्यता का िी अंश न िोती तो वि उनके साथ साधमय िलाभ न कर सकती थी... ननश्चय िी िम ननमनतर ज़ि प्रकृनत में आये िुए िैं और उसके प्रभाव के अधीन िैं, पर िम यिाँ आये िैं उस परम आध्याजममक प्रकृनत से िी : यि अधीनस्थ अपूण िजस्थनत िमारी बाह्य गोचर सिा िै, परंतुवि (उच्चतर) िी िमारी सच्ची सिा िै। सनातन इस समस्त जगत्–्किया को अपनी आमम-सृजृष्ट के रूप में उमपन्न करते िैं। वे एक िी साथ इस ववश्व के वपता और माता िैं; अनंत ववज्ञान-तत्त्व, मित् रह्म, िी वि योनन िै जजसमें वे अपनेआमम-आधान का बीज िालते िैं। अधध-आममा (Over-Soul) के रूप में वे बीज िालतेिैं; जगज्जननी, प्रकृनत-आममा, अपनी सचेतन शजकत से पररपूण िधचत्–्शजकत के रूप में वे इसे सिा के इस अनंत तत्त्व में ग्रिण करते िैं जो उनके असीम पर आमम-पररसीमक ववज्ञान से गभभति कर हदया जाता िै। इस मित् आमम-आधान में वे उस हदव्य बीज को ग्रिण करते िैं और वििाँ गभाधिानमय सृजन की मूल किया के द्वारा हदव्य भ्रूण को सिा के मानभसक तथा भौनतक आकार में ववकभसत करते िैं। जो कुछ भी िम यिाँदेखते िैं वि सब उसी सृजन-किया से उद्भूत िोता िै; परंतुजो कुछ यिाँ उमपन्न िोता िै वि उन अजन्मा तथा अनंत का केवल एक सीभमत भाव और रूप िै।

िालाकाँक गीता में तो इस ववषय को अधधक ववस्तार से निीं समझाया गया िै परंतु अपनी वेद-ववषयक कृनतयों में श्रीअरववन्द ने इसका ववस्तारपूवकि वणनि ककया िै।

मोटे रूप से िम इसे इस रूप में समझ सकते िैं कक सारी सृजृष्ट भगवान् की पराप्रकृनत द्वारा िोती िै। परमाममा जिाँ किीं भी अपना दृजष्टपात करते िैं विीं मानो वे अपनी पराप्रकृनत को अभभव्यजकत के उन तत्त्वों से, उन पिलुओं से ननषेधचत कर देते िैं और पराप्रकृनत उन सभी तत्त्वों को अभभव्यकत करती िैं। जब ये पिलू अनतमानभसक चेतना में अभभव्यकत िोतेिैं तब उस स्तर पर ये सभी एकमय और समजन्वत िोतेिैं। परंतु ज्यों-ज्यों ये पिलू या तमव नीचे मानव मन के स्तर पर आते िैं मयों-मयों उन सब में जो एकाममकता और समस्वरता िोती िै वि अपना वैसा स्वरूप निीं रख पाती और वे भभन्न-भभन्न मित् ववचारों का रूप ले लेते िैं। परंतुमानभसक स्तर पर िम उन सब तत्त्वों के भीतर के समन्वयकारी तत्त्व को निींदेख पातेइसी भलए प्रायः िी ये मित् ववचार एक-दूसूरे के ववरुद्ध ख़िे प्रतीत िोतेिैं जबकक अपने उद्गम में ये सारे एक िी सिा के पिलू िोतेिैं। इसभलए मानभसक ववकास और संस्कार की प्रकिया में िम ककसी ववचार को स्थापना (thesis) और उसकी प्रनतस्थापना (anti- thesis) पर ववचार करते िैं और कफर उन्िें समजन्वत करने का प्रयास करते िैं। इससे मन का ववकास िोता िै और उसमें रूहढ़वाहदता से कुछ मुजकत भमलती िै तथा उसमें कुछ अधधक नमनीयता आती िै जजससे कक िम समय के कुछ अधधक नजदीक पिुँचते िैं।

और अपनेमूल में जो मित् ्ववचार थे ेवे िी अभभव्यजकत में आकर छोटे ववचारों का रूप ले लेते िैं जो कक और ननचले स्तर पर प्राणणक आवेगों आहद का और उससे नीचेभौनतक वृवियों का रूप ले लेते िैं। तो इस प्रकार यि ननवतनि की प्रकिया िै जजसमें अपनेअनतचेतन मूल से चलकर चीजें िमारे ज़िभौनतक स्तर तक और उससे भी नीचेके स्तरों तक पिुँचती िै। िालाकाँक िम इस ननवतनि की प्रकिया के ववषय में सचेतन निीं ंिोते। िम तो केवल िमववकासमय जगत् ्के ववषय में िो सचेतन िोतिैं।

मिारी वैहदक परंपरा में शब्द और ध्वनन को िी सारी सृजष्ट का मूल बताया गया िै। उनके अनुसार मंत्र से िी सारी सृजष्ट िोती िै। मंत्रों की ध्वननयों में वि शजकत ननहित िोती िै जो ववभभन्न स्तरों पर भभन्न-भभन्त्र पररणाम उमपन्न कर सकती िै।

सत्त्ं रजमतम इनत गणञ्प्रकृनतसंभिाः ।
ननबध्नस्न्त महाबाहो देहे देदहनमव्ययम् ्।। ५॥

५. हे महाबाहो! प्रकृनत से उत्पन्न हजए सत्त्, रज और तम ये तीन गणज अविनाशी देहिारी जिीात्मा को देह में बिाँ ते हैं।

वि कौन-सी चीज िै जो जीव को जन्म, मृमृयुऔर बंधन को बाह्य प्रतीनत कराती िै, - कयोंकक यि तो सवि–ववहदत िै कक यि एक प्रतीनत मात्र िी िै? यि चेतना की एक गौण किया या अवस्था िै, यि इस प्रकार को ननमनतर पे्ररणा की सीमाबद्ध कियाओं में प्रकृनत के गुणों के साथ तथा मन-प्राण-शरीर की इस आमम-परायण अथवा स्व-केंहरत अिबद्ध कम िि को ग्रंधथ के साथ िि मारी आमम-ववस्मृनतपूण िि तदाममता िै। यहद िि में ननमनतर ककना की ववमिोक शजकत से परे िटकर अपनी पूणि–सचेतन सिा में पुनः प्रका करना िै और आममा की मुकत प्रकृनत तथा उसकी ननमय अमरता को धारणा करना िै तो प्रकृनत के गुणों से ऊपर उठना, त्रैगुण्यातीत िोना परमावश्यक िै। यिी वि साधमय िकी अवस्था िै जजसकी व्याख्या करने की ओर गीता इसके बाद अग्रसर िोती िै।

पिले एक अध्याय में वि इसकी ओर संकेत कर िी चुकी िै और कुछ बल के साथ इसका प्रनतपादन भी कर चुकी िै; परन्तु अब उसे अधधक सुननजश्चत शब्दों में यि बतलाना िै कक ये गुण कया िैं, जीव को ये ककस प्रकार बाधाँते तथा आध्याजममक स्वतंत्र्य से दरू रखते िैं, तथा प्रकृनत के गुणों से ऊपर उठने का कया अभभप्राय िै?

प्रश्न : श्रीअरववन्द यिा ाटीका में कितयि ककञ्जीव को जन्म, मृमृयुऔर बंधन की केवल प्रतीनत िोती िै, वास्तव में कोई बंधन िै निीं, तो इसका वास्तव में अभभप्राय कया िै?

उत्तर : जो ज्ञानी िै वि जान चुका िोता िै कक यि एक प्रतीनत मात्र िै। परंतु जो अज्ञान में िै उसे तो यि यथाथ िी प्रतीत िोता िै। इसभलए यि प्रतीनत मात्र िै या यथाथ ियि इस पर ननभिर करता िै कक व्यजकत इससे ककतना तादाममय रखता िै। यहद वि पूरी तरि इससे तदामम िै, इसमें फाँसा िुआ िै, तो उसे सारी चीजें यथाथ ि प्रतीत िोंगी और चूँकक वे ेउसके भलए यथाथ िोंगी इसभलए वि उनसे िषि–शोक, सुख-दुःख आहद भी अनुभव करेगा।

जैसा कक िम अनेक बार इस ववषय में चचाि कर चुके िैं कक मूलतः तो गुणों का आभास भी केवल प्रतीनत मात्र िी िै कयोंकक परम प्रभु और उनकी धचत् ्शजकत परा प्रकृनत के अनतररकत तो संसार में और कुछ िै िी निीं। सब कुछ उन्िीं की िीिा िै जो वे अपनेआनन्द के भलए करते िैं। और ये दो भी भभन्न निीं अवपतु एक िी िैं। िम मनुष्य और उसकी चेतना का रूपक देकर परम प्रभु और उनकी धचत् ्शजकत की अभभन्नता बताने का प्रयास करते िैं परंतुवास्तव में वे ेउससे भी किीं ंअधधक अंतरंग रूप से एक िैं। और परम प्रभु के स्वरूप को िम ज्ञान, समय, प्ेरेम, सौंदय िआहद जजन भी मानवीय पररभाषाओं से अलंकृत करने का प्रयास करते िैं वे भी उनकी लीला के मिोरे मात्र िैं, उनका समस्वरूप तो िमारी ककन्िींभी मानभसक पररभाषाओं से अनंततः परे िै। िमारी मानवीय चेतना के भलए बिुत सी चीजें तो असिनीय िोती िैं और िम समझ निीं ंपातेकक भगवान् ्ऐसी वीभमस चीजों में आनंद कैसे लेते िोंगे परंतु वास्तव में तो वे िमारी मानवीय नैनतकता के भलए िी घृणास्पद िोती िैं। िमारे कोई भी नैनतक ववधान भगवान् ्पर लागू ्ूनिीं िोते। जजस प्रकार मानव चेतना पशुओं के ववधान के अनुसार निीं चल सकती उसी प्रकार मनुष्यों के चानतक ववधान परमाममा पर बाध्यकारी निीं िोते। इसीभलए जब िम अपनी नैनतकता आहद के मानदंडों पर परमाममा की कियाओं का आकलन करनेका प्रयास करते िैं तब यि एक भारी त्रुहट िोती िै। इसी कारण जब आज का भशक्षक्षत मन वृंदावन की लीला और रास के ववषय में पढ़ता िै तब उसे यि एक घोर ववलाभसता और अनैनतकता भरा कल प्रतीत िोता िै कयोंकक िम इस रूपक से यि निीं समझ पाते कक यि तो अपने आनन्द के भलए परंरह्म, परमाममा की लीला िै और चूंकक िम कामना-वासना के अनतररकत कुछ सोच निीं सकते इसभलए भगवान् ्की लीला के ऊपर भी िम अपनी दूवूषत मानभसकता अध्यारोवपत कर देते िैं, जबकक रास में ककन्िींगुणों का तो कोई प्रवेश िी निींि। िमारे प्राचीन ऋवषयों को इस रिस्य का गिरा बोध था और वे जानते थे ेकक संपूण िववश्व केवल परमाममा और जगदंबा का िीिाक्षेत्र िी िै। वे िी अपने आप को मुकत रूप से अभभव्यकत कर रिे िैं। इस अभभव्यजकत में भले िमारी मानभसकता को गुण आहद की प्रतीनत िो, परंतु अपने-आप में कोई गुण िै िी निीं।

जब िम अभभव्यजकत की बात करते िैं तो इसके ववषय में भी भभन्न-भभन्न दृजष्टकोण िैं। श्रीअरववन्द के अनुसार अनतचेतन स्तरों से जब अवरोिण और ननवतनि (involution) की प्रकिया चलती िै तब अवरोिी िम में अनेकानेक स्तरों में चेतना घनीभूत िोती जाती िै जजन्िें वे सच्चा मन, सच्चा प्राण आहद किते िैं और इस प्रकार घनीभूत िोते िुए यि प्रकिया ननश्चेतन स्तरों तक पिुँच जाती िै। इन सच्चेलोकों या स्तरों में वे ववकृनतयाँ ंिनिीं िोतीं जो कक िमववकासमय स्तरों में िोती िैं। जब चेतना ननश्चेतन स्तर पर पिुँच जाती िै तब यि चेतना का एक पूण िववपयिय िो जाता िै जजससे पुनः आरोिण संभव बनानेके भलए भगवान् ्स्वयंननश्चेतन में जस्थत िो जाते िैं। श्रीमद्भागवत् ्(१०.८९.५८) में भी िम भूमा पुरुष का उल्लेख पाते िैं जो कक िजार फणों वाले अनंत पर ववराजमान मिाववष्णु िैं। वे िी इस आरोिण को अग्रसर करने के भलए अवतररत िोते िैं और इस िमववकास को आगे बढ़ाते िैं अन्यथा ननश्चेतना के दबाव के कारण ककसी प्रकार का कोई िमववकास संभव िी निीं ंिोता। जजसे िम ज़िभ्ौनतक तत्त्व किते िैं वि तो उस ननश्चेतना से एक सुदीघ िववकासिम के बाद िी आ पाया िै। वि ननश्चेतना तो ककसी भी चेतना का इतना पूण िरूप से ववपयिय िै कक उसमें ककसी प्रकार की ररकतता की भी संभावना निीं ंिै।

ज़िभौनतक के एक सुदीघ िववकास के बाद जीवन का प्रादुभावि िुआ। ज़िभौनतक तत्त्व में प्राण के संचार के बाद चीजों के प्रनत उसमें कुछ-कुछ अिसास पैदा िोता िै। अपनी प्रारंभभक अवस्था में प्राण भी बिुत अववकभसत िोता िै और चीजों के बोध करने का उसका अपना संकीण ितरीका िोता िै। प्राण के कुछ-कुछ ववकास के बाद उसमें अधधक जहटल भावों का अिसास िोता िै और प्राण के ववकास के साथ िी साथ जब मानभसकता का ववकास िोता िै तो उसके अपनेतरीके के बोध िोते िैं। चूंकक ऐसी ववषम पाधथवि पररजस्थनतयों में जीवन को बनाए रखना पिली आवश्यकता िोती िै तभी कालांतर में ककसी प्रकार की कोई भागवत् अभभव्यजकत संभव िो सकती िै, इसभलए अधधकांशतः मन भी प्राण की िी सेवा में रत रिता िै। मनुष्य के प्रादुभावि से पिले भी कुछ स्तनधारी जीवों में िम कुछ-कुछ प्राथभमक मानभसकता के धचह्न देख सकतेिैं। उसके बाद प्रकृनत मानव का ननमाणि करती िै जो कक सिी रूप में मानभसकता को धारण कर सकता िै, िालाकाँक वतमिान में तो अधधकांश मनुष्य भी एकांनतक रूप से अपनी ननमन प्राणणक और भौनतक लालसाओं आहद की िी पूनत ि करने में रत हदखाई देते िैं। इसभलए अधधकांश का केवल शरीर िी मनुष्य का िै परंतु वास्तव में उनकी सारी कियाएँ पशुवुत् िी िैं। मूलतः मानभसक चेतना प्राणणक का आधार िै और प्राणणक भौनतक का परंतु चूँकक िमववकास में आरोिण का िम अवरोिण से उल्टा आता िै इसभलए ज़िभौनतक तत्त्व पिले आता िै और प्राण उसके बाद और मानभसकता उसके बाद। िमववकास में ये भाग एक-दूसूरे को प्रभाववत करते िैं। प्राणणक स्तर भौनतक से अनंनतः ववशाल िोने पर भी िम देखते िैं कक पाधथवि अभभव्यजकत में दे नष्ट िोने पर प्राण का आधार नष्ट िो जाता िै। ऐसे िी दे और प्राण मानभसकता में प्रवेश करते िैं और उसे प्रभाववत करते िैं।

मिर ये तीनों भाग अपने-अपनेतरीके से चीजों की अनुभूनत करते िैं, अपने-अपने दृजष्टकोण से देखते िैं। भौनतक वृवृियों को िम तामभसक किते िैं। जजस िद तक भौनतकता िमारे प्राण और िमारे मन में प्रवेश कर के उनके बोध को प्रभाववत करती िै उस िद तक उनके बोध भी तामभसक िोते िैं। उसी प्रकार प्राणणक वृवृियों को राजभसक किते िैं। ये पाणणक वृवृिया ँभौनतक और मानभसक भागों में घुली-भमली िोती िैं और उन्िें प्रभाववत करती िैं इसभलए उन भागों में भी कुछ-कुछ राजभसकता का प्रवेश िो जाता िै। इसी प्रकार मानभसक सिा के दृजष्टकोण, चीजों को देखने के उसके तरीके को साजत्त्वक किते िैं। मन चीजों के पीछे के समय को, उनके बीच सामंजस्य को, ककसी नैनतक ववधान आहद को खोजता िै इसभलए उसे साजत्त्वक किा गया िै। िमारे तीनों िी भाग एक दूसूरे में घुले-भमले िुए िोते िैं और जजस िद तक जजस भाग का प्राधान्य रिता िै उसी के अनुसार व्यजकत प्रधान रूप से तामभसक, राजभसक और साजत्त्वक किा जाता िै। वास्तव में तो तामभसक, राजभसक और साजत्त्वक की प्रतीनत भी िमें अपनी बद्ध चेतना के कारण िी िोती िै, अन्यथा यथाथतिः तो सारा जगत् भगवान् भशव और पावतिी की लीला िी तो िै और यि सारी अभभव्यजकत उन्िीं के आनन्द के भलए िै। परंतुचूंकक िमारी चेतना इसमें बद्ध िै और िमें यिी यथाथ िप्रतीत िोता िै इसीभलए िमें सुख-दुःख, राग-द्वेष आहद भावों से गुजरना िोता िै। भले ककसी दृजष्टकोण से यि सारा संसार प्रतीनत मात्र िी िै और इसमें कोई यथाथतिा निीं िै परंतु िमारी चेतना के भलए यथाथ िोनेके कारण िमें तो इसमें मातााँक दुःख-कष्ट और यंत्रणाएँ भोगनी पिती िैं। परंतु कुछ सूक्ष्म ववश्लेषण में िम पातेिैं कक यि सब केवल प्रतीनत मात्र िी िैं। यिााँ तक कक भौनतक ववज्ञान भी अब इस बात को स्वीकार करता िै कक ज़िभौनतक जैसी कोई चीज निीं िै, सब कुछ सूक्ष्म ऊजिा के कारण ऐसा प्रतीत िोता िै। अतः

 भारतीय परंपरा में सदा ि◌ी इस चीज का भान रि ि◌ै कक यि सारी प्रतीनत आममपरक

ि◌ै। ककसी एक को यि जगत् ◌्

जजस प्रकार का गोचर ि◌ोता ि◌ै वैसा ककसी दूसूरे को गोचर निींि◌िोता। और पशु ◌ुचेतना को जजस प्रकार का यि जगत्
◌्
गोचर ि◌ोता ि◌ै वैसा मानव चेतना को गोचर निीं ◌ंि◌ोता। कुछ ऐसी सिाएँ ि◌ैं जजनका गठन सवथा भभन्न प्रकार का ि◌ोता ि◌ै। उनके भलए ि◌मारे ज़िभौनतक जगत् ◌्का कोई अजस्तमव ि◌ी निीं ि◌ै। इसभलए वास्तव में तो ककन्िीं भी दो
जीवों को यि जगत् ◌्एक जैसा गोचर निीं ◌ंि◌ोता। यि ◌ाँतक कक एक ि◌ी व्यजकत को भभन्न-भभन्न समयों पर यि भभन्न-भभन्न गोचर ि◌ोता ि◌ै। केवल कुछ चीजों में समानता प्रतीत ि◌ोती ि◌ै अन्यथा सभी कुछ भभन्न ि◌ोता ि◌ै। और यि समानता का भाव भी इसभलए ि◌ोता ि◌ै ताकक एक व्यवस्था बनी रिे।
प्रश्न : यि ◌ाँआमम-ववस्मृनृत से कया अथ ि◌ै?

उत्तर : आमम-ववस्मृनृत का अथ ि◌ै कक व्यजकत अपनी आममा के संपकि में निीं ◌ंि◌ोता। और ज्यों ि◌ी व्यजकत अपनी आममा के संपकि में आता ि◌ै मयों ि◌ी वि अपनी वास्तववकता जान जाता ि◌ै और अपनेमन, प्राण, शरीर रूपी बािरी उपकरणों तथा उनकी वृवृियों को समझ जाता ि◌ै और तब वि अधधक सच्चे रूप से चीजों को देखने लगता ि◌ै। और जब व्यजकत अपनेमन, प्राण और शरीर से तादाममय रखता ि◌ै तब वि इनके चंगुल में फंसकर इनके द्वारा ि◌ी अपनेसारे किया-कलाप करने लगता ि◌ै और ऐसे में उसकी आममा को अपनी वाणी सुनाने ◌ेका अवसर कम या त्रबल्कुल निीं ◌ंभमलता। ि◌मारी वतमान संस्कृनत में जब व्यजकत बािरी चीजों से स्वयं को संतुष्ट करने ◌ेका प्रयास करता ि◌ै तो यि उसकी आमम-ववस्मृनृत का अचूक धचह्न ि◌ै। इसीभलए ि◌मारे प्राचीन ऋवष पग-पग पर अपनेमागदशिनि के द्वारा लोगों को सच्ची हदशा हदखाकर उन्िें एकांगी रूप से अपनी ननमन वृवृियों की तुजष्ट करने ◌ेसे सदा ि◌ी रोकतेथे। समाज के सामने सदा ि◌ी यि आदश ि◌रखा जाता था कक जीवन का सच्चा उद्देश्य तो केवल परमाममा से एक ि◌ोना ि◌ी ि◌ो सकता ि◌ै और प्रमयेक व्यजकत अपनी जजस ककसी भी वतमिान जस्थनत से उस उद्देश्य की ओर अग्रसर ि◌ो सकता ि◌ै, और ऐसा ककया जाना इसभलए सुगम ि◌ै कयोंकक अपनेवास्तववक स्वरूप में प्रमयेक व्यजकत स्वयं वे परमाममा ि◌ी ि◌ैं। आध्याजममक आदश ि◌के प्रभाव के कारण ि◌ी ि◌म पातेिैं कक भारतीय समाज उन ववभीवषकाओं से सुरक्षक्षत रिा जो ि◌में घोर सुखभोगवादी संस्कृनतयों में हदखाई देती ि◌ैं जजनमें सदा ि◌ी व्यजकत पर ककसी भागवत् ◌्प्रभाव के अभाव में ननमन वृवृियों का अधधकार ि◌ो जाता ि◌ै और उसकी आममा कुंहठत ि◌ो जाती ि◌ै। आध्याजममक आदश ि◌की इसी अपररियति को अनुभव करते ि◌ुए स्वामी वववेकानन्द किते ि◌ैं कक, "प्रमयेक व्यजकत की भानाँत प्रमयेक राष्ट्र का भी एक ववशेषे जीवनोद्देश्य ि◌ोता ि◌ै, एक ववभशष्ट जीवनधारा ि◌ोती ि◌ै जो कक उसके जीवन का केन्र, उसके जीवन का प्रधान स्वर ि◌ोता ि◌ै, जजसके इदि-धगदि अन्य सब स्वर भमलकर समरसता उमपन्न करते ि◌ैं। ककसी एक देश में, जैसे इंग्लैं में, राजनीनतक शजकत या सिा ि◌ी उसकी जीवन-शजकत ि◌ोती ि◌ै और इसी प्रकार ककसी अन्य देश में उसकी जीवन-शजकत ि◌ोतो ि◌ै कलाकौशल की उन्ननत करना, और ऐसे ि◌ी भभन्न राष्ट्रों का भभन्न-भभन्न प्रधान लक्ष्य, उनकी भभन्न-भभन्न धारा ि◌ोती ि◌ै। ककन्तु भारतवष ि◌में धाभमकि जीवन ि◌ी राष्ट्रीय जीवन का केन्र ि◌ै और विी राष्ट्रीय जीवनरूपी संगीत का प्रधान स्वर ि◌ै। यहद कोई राष्ट्र अपनी स्वाभाववक जीवनी-शजकत को दूरू फेंक देने की चेष्टा करे - शताजब्दयों से जजस हदशा की ओर उसको ववशेषे गनत रिी ि◌ै, उससे मिु जाने का प्रयमन करे - और यहद वि अपने इस प्रयास में सफल ि◌ो जाए, तो वि राष्ट्र मर जाता ि◌ै।

अतएव यहद तुम धम िको फेंककर राजनीनत, समाज-नीनत अथवा अन्य ककसी दूसूरी नीनत को अपना केन्र, अपने राष्ट्रीय जीवन की जीवनी-शजकत बना लो, तो उसका पररणाम यि िोगा कक तुमिारा अजस्तमव तक न रि जाएगा। यहद तुम इससे बचना चािो या चािो कक ऐसा न िो, तो अपनेधम िकी जीवनी-शजकत के द्वारा िी अपने सारे काय ि करने िोंगे, अपनी प्रमयेक किया का केन्र इस धम िको िी बनाना िोगा। तुमिारे स्नायुओंका प्रमयेक स्पन्दन तुमिारे इस धमरूपी मेरुदंडके द्वारा स्पंहदत िो। मनैं देखा िै कक सामाजजक जीवन पर धम िका व्याविाररक प्रभाव कैसा पड़ेगा यि उन्िें त्रबना हदखाये म ैंअमेररकावाभसयों को धम िका भी उपदेश निींकर सकता था। त्रबना यि हदखाए कक वेदान्त कौन से आश्चयजिनक राजनीनतक पररवतनि ला सकेगा, म ैंइंग्लैं में भी धम िका प्रचार निीं ंकर सका। इसी भानााँत, भारत में सामाजजक सुधार का प्रचार केवल यि हदखा कर िी िो सकता िै कक यि नवीन प्रणाली ककतना अधधक आध्याजममक जीवन ला पाएगी; और राजनीनत का प्रचार भी यि हदखाकर करना िोगा कक वि उस एकमात्र वस्तु – उसकी आध्याजममकता- को ककतना उन्नत कर सकेगी जजसकी कक राष्ट्र को सवाधिधक आकांक्षा िै। प्रमयेक व्यजकत को अपना चयन स्वयंकरना िोता िै, उसी भानााँत प्रमयेक राष्ट्र को भी। िमने युगों पूव िअपना पथ चयन कर भलया था, और अब िमें उस पर दृढ़ बनेरिना िोगा। और आणखर, िमारा चयन उतना कोई बुरा भी निीं िै। ज़ि के बदले चैतन्य का, मनुष्य के बदले ईश्वर का धचन्तन करना कया संसार में इतनी बुरी बात िै? परलोक में दृढ़ आस्था, इस लोक के प्रनत तीव्र ववरजकत, प्रबल मयाग-शजकत एवं ंईश्वर और अववनाशी आममा में दृढ़ ववश्वास तुम लोगों में सतत् ्ववद्यमान िै। म ैंककसी को भी चुनौती दे सकता िूाँ कक इसे छोड़ो का हदखाए? तुम ऐसा कर िी निींसकते। तुम कुछ मिीनों भौनतकवादी बनकर और भौनतकवाद की चचाि करके भले िी मुझ पर प्रभाव िालने की चेष्टा करो, पर म ैंजानता िूाँ कक तुम वास्तव में कया िो। यहद म ैंतुमका िाथ पकड़ कर ले जाऊाँ, (तुमको थोड़ा धम िअच्छी तरि समझा िै। से बस, तुम पुनः िमेशा की भानााँत परम् ् आजस्तक िो जाओगे। तुम अपना नैसधगकि स्वभाव भला कैसे बदल सकते िो?

अतः भारत में ककसी प्रकार के सुधार के भलए पिले धम िमें िांनत लाने की आवश्यकता िोती िै। भारत को समाजवादी अथवा राजनीनतक ववचारों से प्लाववत करने के पिले आवश्यक िै कक उसमें आध्याजममक ववचारों की बाढ़ ला दी जाए। जजस काय िपर िमें सबसे पिले ध्यान देनेकी आवश्यकता िै वि िै कक िमारे उपननषदों, िमारे धमशिास्त्रों, िमारे पुराणों में जो अपूव िसमय बंद पड़े िैं, उन्िें इन सब ग्रन्थों के पृष्ठों से बािर ननकालकर, मठों की चारदीवाररयों से बािर ननकालकर, वनों की शून्यूता से दूरू लाकर, कुछ लोगों या मण्िलों के एकाधधकार से बािर ननकालकर देश में सवत्रि त्रबखेर देना िोगा, ताकक ये समय दावानल के समान सारे देश को चारों ओर से लपेट लें - उत्तर से दक्षक्षण और पूव िसे पजश्चम तक सब जगि फैल जाएाँ - हिमालय से कन्याकुमारी तक और भसन्ध से ब्रह्मपुत्र तक सवत्रि वे धधक उठें।" (CWSV 3, 220-22)

प्रकृनत के सभी गुण अपनेसार-रूप में गुणाममक िैं और इसी कारण वे उसके गुण किलाते िैं। जगत् ्के ववषय में ककसी भी आध्याजममक पररकल्पना में ऐसा िोना िी िै; कयोंकक, आममा और ज़िमव को जोड़नेवाला माध्यम चैमय या आमम-शजकत िी िोनी चाहिए तथा प्रधान किया मनोवैज्ञाननक अथवा आंतररक एवं गुणाममक िोनी चाहिए, न कक भौनतक और मात्राममक; कयोंकक गुण ववश्व-शजकत के समस्त व्यापार में अभौनतक एवं

अधधक आध्याजममक तत्त्व िैं, उसकी आहद गनतशजकत िैं। भौनतक ववज्ञान की प्रधानता ने िमें प्रकृनत संबंधी एक

भभन्न दृजष्टकोण का अभ्यस्त बना हदया िै, कयोंकक विाँजो चीज िमें सबसे पिले प्रभाववत करती िै वि िै उसकी कियाओं के पररमाणाममक रूप का मित्त्व तथा आकारों के ननमाणि के भलए मात्राममक सजममश्रणों एवं ंप्रबंधनों पर उसकी ननभरिता ।... प्राचीन भारतीय मनीवषयों के ववश्लेषण में प्रकृनत की मात्राममक किया, मात्रा, के भलए स्थान था; परंतु उसे इस रूप में माना जाता था कक वि तो प्रकृनत की बाह्यतर और औपचाररक रूप से कायि–ननष्पादन की किया का िी ववभशष्ट धम िैि, जबकक सिज स्वरूप मात्र में िी उद्भावक (ideative) कायकिती-शजकत, जो का प्रबंधन उनकी सिा एवं ंशजकत के धम,ि अथात्
वस्तुओं

ि्गुण एवं स्वभाव के अनुसार करती िै, िी प्रधान ननधािरक शजकत

िैं और समस्त बाह्य मात्राममक प्रबंधनों के आधारस्वरूप जस्थत रिती िै। पर स्थूल जगत् ्के मूल में यि बात दृजष्टगोचर निीं िोती, केवल इस कारण कक यि ंआधारस्वरूप उद्भावक आमम-सिा, मित् ्भार ज़ितमव तथा ज़िभौनतक शजकत की गनत के द्वारा आवृि एवं आच्छाहदत िै। यहद कोई ऐसी श्रेष्ठतर शजकत न िो जो वैववध्यकारक गुण से युकत िो तथा जजसके ये भौनतक प्रबंधन केवल सुववधाजनक यांत्रिक साधनमात्र िी िों, तो इस स्थूल जगत् ्में भी एक-दूसरे के त्रबल्कुल िी समान तत्त्वों द्वारा उनके ववभभन्न सजममश्रणों तथा मात्राओं के फलस्वरूप नानाववध अद्भुत पररणामों के उमपन्न िोने ेकी बुद्धध से कल्पनीय कोई व्याख्या निीं ंिोगी। अथवा, मि एकाएक िी यों कि सकते िैं कक ववश्व ऊजाि की अवश्य िी एक ननगूढ़ उद्भावक क्षमता, ववज्ञान, िै, भले िी

मि स्वयं उस ऊजाि तथा उसके सिायक या उपकरणीय भाव, बुद्धध, को उनकी अपनी प्रकृनत में यांत्रिक मानें, – जो इन बाह्य प्रबंधनों की गणणत को ननधािररत करती तथा उनके कायफिलों को तय करती िै: आमम के अंदर ववद्यमान यि सविशजकतमान ववज्ञान िी इन साधनों को रचता और उपयोग करता िै। और, प्राणणक तथा मानभसक सिा में तो गुण एकाएक िी स्पष्ट रूप से प्रधान शजकत के रूप में हदखायी देता िै, और ऊजािकी मात्रा केवल एक गौण तत्त्व िै। परन्तुवास्तव में मानभसक, प्राणणक तथा भौनतक सिाएँ सभी गुण की ननधािररत- सौमाओंके अधीन िैं, यद्यवप जैसे-जैसे िम सिा की श्रृंखला में नीचे उतरते िैं वैसे-वैसे यि समय अधधकाधधक धूभमल िोता हदखाई देता िै। केवल आमम-सिा िो, जो अपनी भाव-सिा एवं भाव-शजकत, जजन्िें मित् ्और ववज्ञान

किते िैं, के सामथ्य िके द्वारा इन अवस्थाओं को जस्थर करती िै, वि इस प्रकार से ननधाररत निीं िोती, गुण व मात्रा की ककनिींभी सीमाओंके वशीभूत निींिोती, कयोंकक उसकी अभमत और अननधािय िअनंतता इन गुणों से श्रेष्ठतर िै जजन्िें वि अपनी सृजष्ट के भलए ववकभसत करती िै और उनका उपयोग करती िै।
यहद इसे सच्चे रूप से समझ भलया जाए तो संपूण िरह्माण्ड के ननमाणि का रिस्य पता लग जाता िै। अपनेकाय िके संपादन के भलए प्रकृनत को जो भी आवश्यक लगता िै विी प्रकिया अपना लेती िै। जैसे कक िाइड्रोजन और ऑकसीजन को भमलानेसे पानी बन जाता िै जबकक दोनों िी घटकों में पानी के कोई भी गुण निीं ं

िोते। प्रकृनत की ऐसी कोई बाध्यता निीं ंिै कक इस पररणाम के भलए उसे इसी प्रकिया का उपयोग करना पड़े ेपरंतु जब तक उसके काय िके भलए उसे सुववधाजनक प्रतीत िोता िै तब तक वि इसे प्रयोग करती िै और जब उसे कुछ अन्य प्रकिया का प्रयोग करना िो तो कोई कारण निीं ंिै कक ऐसा वि न कर सके। अतः अपनेआप में कोई कायि–कारण निीं। ककसी भी चीज का एकमात्र एक िी सच्चा कारण िो सकता िै, और वि िै जगज्जननी का संकल्प। उसकी पूनत िके भलए वि जो चािे विी प्रकिया अपना लेती िै जो कक िमारी मानव बुद्धध को कायि–कारण प्रतीत

 िोता िै। यहद बारीकी से ववश्लेषण ककया जाए तो ककसी समान िी कारण से भी

भभन्न-भभन्त्र पररणाम उमपन्न

िोतेिैं।

इस सृजृष्ट में जो कुछ भी िोता िै वि जगदंबा के संकल्प के द्वारा िी िोता िै। चूंकक िम वास्तववक कारण अथात् ्जगज्जननी के संकल्प को देख निीं पाते इसभलए प्रकिया को िी िम कायि–कारण मान बैठतेिैं। इसी कारण यहद िम ववज्ञान के दृजष्टकोण से जगत् ्का ववश्लेषण करते िैं तो िमें कोई भी सच्चा पररदृश्य या धचत्र प्राप्त निीं िोता कयोंकक ववज्ञान तो मात्राममक िै। उदिारण के भलए, ककसी भवन के ननमािण का कारण और उसका औधचमय यहद िम उसमें लगे इमारती सामान से करने ेलगें तो िमें कोई सच्ची सूचना कभी प्राप्त निीं ंिो सकती। उसका सच्चा पररप्रेेक्ष्य तो िमें केवल उसके माभलक के मन के ववचार और उसकी रूपरेखा को जानकर िी पता लग सकता िै। बाकी सभी ब्यौरे की सूचना भी तभी उपयोगी िो सकती िै जब िमें उस पररप्रेेक्ष्य का पता िो। अन्यथा तो यि अंधों के द्वारा ककये िाथी के उस वणिन के समान िी िोगा जो समग्र िाथी को देखे त्रबना केवल उसके भभन्न-भभन्न अंगों का िी अपनी परोक्ष अनुभूनत के अनुसार वणिन करते िैं।

अत: मात्राममक रूप से निीं अवपतु गुणाममक रूप से िम जगत् ्का अधधक सिी वणिन कर सकते िैं। यहद िम ककसी प्रकार हदव्य जननी के संकल्प के प्रनत सचेतन िो सकें तो िम देख सकतेिैं कक ककस प्रकार ककसी काय िकी अभभव्यजकत में मन, प्राण और शरीर का ककतना-ककतना योगदान िोता िै। अत: ककसी भी काय िके ननष्पादन में तीनों िी गुण काम में आते िैं। केवल भारतीय संस्कृनत में िी चीजों को इस रूप में देखा गया िै, अन्य किींतो इसकी कल्पना तक भी निींिै। अत: सभी कुछ का मूल कारण जगज्जननी का संकल्प िै और अनतमानस उस संकल्प को चररताथ िकरता िै। इस रूप से िम सृजृष्ट के समय को समझ सकतेिैं। सारी अभभव्यजकत भीतर से बािर की ओर िोती िै न कक बािर से भीतर की ओर। जबकक िमारा भौनतकवाद बाह्य प्रतीनत को िी आधार मान बैठनेकी भूल कर बैठता िै। इसीभलए सभी कुछ को अपनेतरीके से समझानेके बाद भी वि वास्तव में ककसी चीज का भी स्पष्टीकरण निींदे पाता कयोंकक वास्तववक कारण तो जगदंबा का संकल्प िी िै। यहद उस संकल्प में ननहित प्रारूप को कोई थोड़ा-बिुत भी समझ सके तो वि सच्चेरूप से वस्तुओंके मूल कारण को कुछ-कुछ समझ सकता िै। इसके अनतररकत इस जगत् ्के मूल कारण को समझने ेका कोई भी तरीका निीं ंिै। यिा ंतक कक ककसी भवन का ननमािण भी ककसी मूल ववचार से आरंभ िोता िै और उसके बाद िी सारे साधन आहद जुटाए जाते िैं। परंतु जैसे कक िम उस मूल ववचार के आधार पर िी ननणिय कर सकतेिैं कक कौनसे साधन उस भवन के ननमािण के भलए आवश्यक िै और कौनसे निीं, उसी प्रकार जब िम उस मूल संकल्प में कुछ-कुछ प्रवेश कर सकें तब अभभव्यजकत में उसकी किया और प्रकिया को कुछ अधधक बेितर ढंग से समझने ेलगते िैं।

िमारे पुराण आहद सृजृष्ट की इसी प्रकिया को अनेकों रूपकों के माध्यम से बिे िी सुंदर ढंग से प्रकट करते े िैं। पुराणों में िम पृथ्वी को तुलना शेषेनाग के िजार फणों पर एक सरसों के दानेसे की गई पातेिैं। आज का भशक्षक्षत मनुष्य इसे एक बिी िी उवरि कल्पना मानेगा और इसके ववषय में िर कोई अपने-अपनेतरीके के आक्षेप लगाएगा। परंतु जजन्िेंकुछ गुह्य अनुभव िै वे जानते िैं कक शेषेनाग प्राणणक ऊजाि का प्रतीक िै। और भौनतक

जगत्, ् जजसे कक सरसों के दानेके बराबर बताकर उसकी लघुता का आभास हदया गया िै, अपनेसे उस अनंतगुना ववशाल प्राणणक जगत् ्पर आधाररत िै। अतः प्राणणक जगत् ्की िलचल से िो यिाँ भौनतक जगत् ्में कोई भी लिचल िोती िै। यि एक ब्रिा िी सटीक रूपक िै परंतु केवल गिन अंतदृजिष्ट के द्वारा िी यि वास्तव में समझ में आ सकता िै।

इस सारी चचािसे िम गुणों और उनकी कियाओंको एक पररपेक्ष्य में देख सकतिैं। िालाकाँक अन्य दृजष्टकोण भी िो सकतिैं परंतु इसके माध्यम से भी इस ववषय में िमें कुछ बौद्धधक स्पष्टता आ जाती िै।

परन्तु, दूसूरी ओर, प्रकृनत की संपूण िगुणाममक किया, जो अपनी बारीककयों तथा ववववधताओंमें अनंत रूप से जहटल िै, इस प्रकार गोचर िोती िै कक वि गुण की इन तीन सवसािधारण अवस्थाओं', सत्त्व, रजस्, ् तमस्, ् के साचाँमें िली िै, जो कक सवत्रि उपजस्थत, परस्पर-गुाँथे िुए और लगभग असमाधेय िैं। गीता में इन गुणों का वणनि मनुष्य में िोने वाली इनकी मनोवैज्ञाननक किया के िी द्वारा ककया गया िै अथवा, प्रसंगवश, आिार आहद जैसी चीजों में भी उनका इस आधार पर वणनि ककया गया िै कक वे मनुष्यों में ककस प्रकार के मनोवैज्ञाननक या प्राणणक प्रभाव िालतिैं। यहद िम इनकी अधधक व्यापक पररभाषा की खोज करें, तो....िम ववश्व-ऊजाि की गनत के शब्दों में इन तीन गुणों या अवस्थाओं को इस रूप में पररभावषत कर सकतिैं कक ये प्रकृनत की संतुलन, गनतिम और ज़िता की तीन सिचारी और अववभाज्य शजकतयााँ िैं। ककन्तु यि तो ऊजाि की बाह्य किया की पररभाषा में इनकी केवल बाह्य प्रतीनत िै.... कयोंकक बाह्यतः ननश्चेतन हदखनेवाली शजकत में भी चेतना सदा िी ववद्यमान रिती िै, िमें इन तीन गुणों की उस तदनुरूप आंतररक शजकत का पता लगाना िोगा जो इनकी अधधक बाह्य कायकिारी किया को अनुप्राणणत करती िै। अपने आंतररक मनोवैज्ञाननक पक्ष में इन तीन गुणों को इस प्रकार पररभावषत ककया जा सकता िै, तमस् ्को प्रकृनत की ननजज्ञिनता की शजकत के रूप में, रजस् ्को उसकी कामना और प्रेेरणा से आलोककत सकिय अन्वेषणशील अज्ञान की शजकत के रूप में, सत्त्व को उसके अधधकृत और समजन्वत करनेवाले ज्ञान की शजकत के रूप में। प्रकृनत की तीन गुणाममक अवस्थाएँ समस्त जागनतक अजस्तमव में एक-दूसूरी के साथ अववच्छेद्य रूप से गुाँथी िुई िैं।

भगवान् ्के गुण तो अनंत िैं परंतु िमारी बिारी सिा मन, प्राण और शरीरमय िोने के कारण िमें ये गुण मोटे रूप से तीन तरीकों से प्रतीत िोतिैं अन्यथा अपने-आप में तो कोई पृथृक् चीज िै निींकक एक को सत्त्व की, एक को रजस् ्की, और एक को तमस् ्की संज्ञा दे दी जाए। यि तो ककसी नदी के प्रवाि की भानाँत अटूट श्रृंखला िै जजसका कोई ववभागीकरण निीं ंककया जा सकता। केवल मानभसक दृजष्टकोण से समझ सकने और उसकी चचाि तथा व्याख्या आहद करने के उद्देश्य से िी िम उन्िें तीन मोटे ववभागों में बाटाँ देते िैं। तीनों िी गुणों की अपनी-अपनी ववस्तृत श्रृंखला िै और प्रमयेक एक-दूसूरे में घुला-भमला िोता िै।

---

* प्रकृनत की तीन मूल अवस्थाओं ंका ववचार प्राचीन भारतीय मनीवषयों की उपज िै और इसकी समयता िमारे सामने एकाएक िी स्पष्ट निीं िोती, कयोंकक यि उनके सुदीघ िअध्याममपरक परीक्षण तथा गंभीर आन्तररक अनुभूनत का

पररणाम था। इसभलए, एक सुदीघ ि आन्तररक अनुभव तथा अन्तरंग आमम-ननरीक्षण के त्रबना और प्रकृनत शजकतयों के अंतज्ञानिाममक बोधके त्रबना इसेठीकठीकसमझपाना यासुदृढ़रूपसे उपयोगकरपाना कहठन ि ै।

ये ववभाग तो केवल बुद्धध की सुववधा के दृजष्टकोण से ि ैं अन्यथा तो कोई भी दो चीजें, कोई भी दो घटनाएँ एक समान निीं ि ोतीं। ककसी एक व्यजकत की तामभसक प्रकृनत ककसी दूसूरे व्यजकत की तामभसक प्रकृनत से भी सवथिा भभन्न ि ोती ि ै। स्वयंउस व्यजकत-ववशेषे की प्रकृनत में ि ी समय-समय पर अंतर आता रिता ि ै।

[ये गुण] ि मारी प्राकृत सिा के प्रमयेक भाग पर अपना प्रभाव ि ालतिैं। नन:सन्दिे इनका प्रबलतम सापेक्ष प्रभुमव इसके तीन भभन्न अंगों अथिात् ्मन, प्राण और शरीर पर ि ोता ि ै। **तमस्**, ् जो कक ज़िता का तत्त्व ि ै, ज़ि प्रकृनत में तथा ि मारी भौनतक सिा में सबसे अधधक प्रबल ि ै। इस तत्त्व की किया दो प्रकार की ि ोती ि ै, शजकत की ज़िता और ज्ञान की ज़िता। जो कुछ भी प्रधान रूप से तमस् ्से शाभसत ि ोता ि ै उसकी शजकत मन्द ननजष्यिता की ओर या कफर एक ऐसी याजन्त्रक किया की ओर प्रवि ृ ि ोती ि ै जजस पर उसका निीं ंअवपतु अन्धकारमय शजकतयों का अधधकार ि ोता ि ै जो उसे ऊजिाके यांत्रत्रक चि में चलाती रिती ि ै।.... **रजमतत्त्** की प्रबलतम पक़ि प्राणणक प्रकृनत पर रिती ि ै। ि मारे अन्दर का प्राणतत्त्व ि ी सबसे प्रबल एवं कियाशील चालक-शजकत ि ै, पर पाधथवि प्राणणयों में प्राणणक शजकत कामना-शजकत के अधधकार में ि ै। इसभलए रजस् ्सदा ि ी कम ि और कामना की ओर प्रवि ृ ि ो जाता ि ै; कामना ि ी मनुष्य और पशु ुकी अधधकांश गनतिम और किया की प्रबलतम प्रवनतकिा ि ै... यिी निीं, ं चूँकक रजस् ्अपने-आप को एक ऐसे ज़ि भौनतक जगत् ्में पाता ि ै, जो ननश्चेतना तथा एक यांत्रत्रक रूप से चाभलत ज़िमव के तत्त्व से ननकलता ि ै, उसे एक अनतववशाल ववपरीत शजकत का सामना करते ि ुए अपना काय िकरना प़िता ि ै; अतएव, उसका समपूण िकाय िएक प्रयमन का, एक संघष िका तथा अधधकार प्राजप्त के भलये एक ऐसे अिान्त एव बाधायुकत संघष िका रूप ग्रिण कर लेता ि ै जो अपने प्रमयेक पग पर एक सीमाकारी असमथिता, ननराशा और वेदना से व्यधथत ि ोता ि ै: यिाँतक कक उसे प्राप्त ि ोनेवाली सफलताएँ भी अननजश्चत िोती ि ैं, प्रयमन की प्रनतकिया और उसके पररणामस्वरूप बाद में भमलने वाले अभाव और क्षणभंगुरता के स्वाद के द्वारा सीमाबद्ध और क्षत-ववक्षत ि ो जाती ि ैं। **सत्त्** के तत्त्व का प्रबलतम प्रभुमव मन पर रिता ि ै, मन के उन ननमनतर भागों पर तो उतना निीं जो राजभसक प्राणशजकत के द्वारा शाभसत ि ैं, पर अधधकांशतः बुद्धध तथा बुद्धधप्रधान संकल्प-शजकत पर रिता ि ै। बुद्धध, तकिशजकत तथा बौद्धधक संकल्पशजकत अपनेप्रधान तत्त्व (सत्त्वगुण) के स्वभाव के कारण समावेश करनेया आममसात् ्करने की ओर, ज्ञान के द्वारा आममसात् ्करने ेतथा बुद्धधप्रधान संकल्प की शजकत के द्वारा आममसात् ्करने की ओर, प्रवि ृ ि ोतिैं, (साथ ि ी) एक सन्तुलन स्थावपत करने, े ककसी प्रकार की जस्थरता एवं ंकोई ननयम स्थावपत करने ेऔर स्वाभाववक घटना एवं अनुभूनत के परस्पर ववरोधी तत्त्वों के सामंजस्य को प्राप्त करने के भलये अनवरत यमन करने में भी प्रवि ृ ि ोते ि ैं। इस प्रकार की तुजष्ट को सत्त्वगुण नानाववध प्रकारों से तथा तुजष्ट-प्राजप्त की नानाववध मात्राओंमें प्राप्त करता ि ै। आममसामकरण, सन्तुलन और सामंजस्य की प्राजप्त अपनेसाथ सदा ि ी सुख, प्रसन्नता, प्रभुमव और सुरक्षा की एक सापेक्ष, पर न्यूनाधधक तीव्र एवं तुजष्टकारक अनुभूनत ले आती ि ै, जो कक राजभसक कामना और आवेग की तुजष्ट के द्वारा असुरक्षक्षत रूप में प्राप्त ि ोनेवाले अशान्त एवं उग्र सुखों से भभन्न प्रकार की ि ोती ि ै। प्रकाश और प्रसन्नता

सत्त्वगुण के ववभशष्ट लक्षण िैं। दिधारी प्राणवंत मनोमय प्राणी की समपूण ि प्रकृनत इन तीन गुणों के द्वारा ननधारिरत िोती िै।

तमस् ्ज़िता का तत्त्व िै। इसके प्रभाव से व्यजकत में अंधकारमय शजकतयों का प्रभुमव रिता िै जो उसे यंत्रवत् ्चलाती रिती िैं। ऐसा व्यजकत कोई मित् ्काय िकरनेकी निीं सोचता। वि अपनेजीवन के ढरें में ककसी यंत्र की भानाँत चलता रिता िै और ककसी भी पररवतनि का सिज िी ववरोध करता िै। परंतु गनतशील और ऊजस्विी प्रकृनत िोने के कारण िमारी प्राणणक सिा को इस ननजष्यिता की प्रवृवि द्वारा प्रस्तुत बाधाओं का सामना करना पि़ता िै। इसभलए प्राण की जो भी कामनाएँ, इच्छाएँ, आवेग, मित्त्वाकाक्षाएँ, लालसाएँ आहद िैं, उन सभी को पूरा करने ेमें मनुष्य को घोर पररश्रम करना पि़ता िै। यि एक आम बात िै कक जजसने भी अपनेसमक्ष कोई बि़ा लक्ष्य रखा िै उसे संभसद्ध करनेमें उसे स्वयं अपनी और सामूहिक ज़िप्रकृनत के प्रनतरोध का सामना करना पि़ा िै। यिााँ तक कक अपने दैनंहदन जीवन और अपनेपररवार को भी सुचारू रूप से चलानेके भलए मनुष्य को अथक पररश्रम करते रिना पि़ता िै अन्यथा तो वि सुचारू रूप से चल िी निीं ंसकता। इसी को िमारे पुराणों में गज और ग्रि के रूपक के द्वारा समझाया गया िै। िमारी ज़िभौनतक प्रकृनत ग्रि िै और प्राणणक प्रकृनत गज िै। अतः ज़िभौनतक के सामने प्राणणक प्रकृनत की एक निीं चलती। इसके भलए जब प्राणणक प्रकृनत मन पर अपना प्रभाव िालकर उसे अपनेअधीन कर लेती िै तय उसकी सिायता से वि भौनतक पर आधधपमय करती िै। इसीभलए संसार में जजनमें प्राण की प्रधानता िै और मानभसकता ववकभसत िोती िै वे िी दूसूरों पर आधधपमय करते िैं। जजनमें केवल बौद्धधकता ववकभसत िोती िै परंतु ुप्राण ननबलि िोता िै ऐसे व्यजकत कुछ भी चररताथ िनिीं कर पाते। जजनमें प्राण प्रधान िो परंतु बुद्धध न िो तो वे सदा िी हदग्भ्रभमत रिते िैं और ककसी सिी हदशा में गनत निीं ंकर पाते। इसभलए जजन्िोंनेभी मिान कृनतया ाँया कृमय ककये िैं वे सभी ऐसे लोग िैं जजनमें प्राण प्रधान रिा िै और बौद्धधकता ववकभसत रिी िै। परंतु यि सब िोने पर भी ऐसे लोगों को भी अंततः ज़िमव अपने अधधकार में लेकर उन्िें नष्ट कर देता िै। इसभलए संपूण िजीवन संघषमिय िी रिता िै कयोंकक रजस् ्को एक ऐसे ज़ितमव के ववरुद्ध काय िकरना पि़ता िै जजससे वि अंततः जीत निीं ंसकता।

जब िम इन गुणों की किया को समझ जाते िैं तब िम सामाजजक व्यवस्था में इनके प्रभाव को भी बिुत कुछ समझ जाते िैं। जजनमें प्राण प्रधान िो और मन उसकी सेवा में तमपर िो ऐसे लोगों को यहद िम भेड़ियों की संज्ञा दें और जजनमें ज़िमव प्रधान िो उन्िें भेि़ों की संज्ञा दें तो यि त्रबल्कुल स्पष्ट िै कक समाज में भले िी बिुल्य तमस् ्प्रधान व्यजकतयों का िी िै जो केवल अपने-आप की भौनतक आवश्यकताओं की पूनत िमें और अधधक से अधधक क्षुर राजभसक वृवियों की पूनत िमें लगे रिते िैं परंतु कफर भी जैसे सकैं़िों भेि़ें भमल कर भी ककसी एक भेड़िये का सामना निींकर सकतीं उसी प्रकार भले शासन व्यवस्था कोई भी कयों न िो, परंतु शासन तो केवल सदा िी मन द्वारा समधथति प्राण प्रधान लोग िी करते िैं। इसभलए जब तक िम इस मूल तथ्य को निींसमझ लेते तब तक कोई भी सुशासन संभव िी निीं। फ्ांसीसी िांनत ने स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृमृव का आदश िप्रदान ककया। परंतुसच्ची समानता और स्वतंत्रता केवल भ्रातृमृव के आधार पर िी स्थावपत िो सकती िै। और जब तक अिं का शासन िै तब तक सच्चा भ्रातृमृव स्थावपत निीं ंिो सकता कयोंकक भ्रातृभाव तो आममा का गुण िै। ककसी

पररवार में भ्रातृभृाव के कारण िी सभी को समान िी प्रेम का व्यविार प्राप्त िोता िै चािे उन सब में ककतनी भी भभन्नताएँ, क्षमताएँ-अक्षमताएँ आहद कयों न िो। एतु यहद इस समन्वयकारी भाव को िटा भलया जाए तो विी पररवार कुछ िी समय में कलिरत िोकर त्रबखर जाता िै। केवल भ्रातृभृाव के कारण िो पररवार में ककसी एक की उन्ननत के कारण सभी को सुख भमलता िै और ककसी एक की अक्षमता की पूनत िकरने ेऔर उसकी सिायता करने के भलए सभी तमपर रिते िैं। िालाकाँक एक सीमा के बाद बािरी भ्रातृभृाव तो टूट सकता िै, परंतुआममा में ननहित सच्चा भ्रातृभृाव अटूट रिता िै और ककन्िीं भी पररजस्थनतयों में अडिग बना रिता िै। इसभलए मनुष्यजानत को यहद कलि से मुकत करना िै और एकता के सूत्र में वपरोना िै तो आममा में जस्थत इस भ्रातृभृाव को सामने लाना िोगा। यहद सच्चेरूप से यि भाव सामने आ जाए तो ककसी भी बािरी ननयम-ववधान की कोई आवश्यकता निीं िोगी और केवल तभी यि भेड़िए और भेड़िये के अंतर को भमटाया जा सकता िै, अन्य ककसी भी उपाय से निीं। और सारी मनुष्यजानत के समक्ष आममा में ननहित इस भ्रातृमृव को प्रकट करना, इसका पाठ पढ़ाना भारत के भलये भगवमप्रदि काय िरि िै। इसभलए मनुष्यजानत का भववष्य भारत के उमथान पर ननभरि करता िै कयोंकक ककन्िीं हदशाओं में अवश्य िी मानव ने अमयधधक प्रगनत कर ली िै जबकक उसका उपयोग करनेवाली चेतना अभी भी अिमेय िी बनी िुई िै। इसभलए जजस संकटकाल में मनुष्यजानत वतमिान में ख़िी िै उसमें उसके चयन पर ननभरि करता िै कक उसका भववष्य कया िोगा। यहद वि बेरोकटोक इसी तरि अपनेस्वाथों की पूनत िकरने ेकी हदशा में िी गनत करती रिे तो इसका ववनाश ननजश्चत िै। इसभलए वतमिान पररदृश्य को देखतेिुए तो यि त्रबल्कुल स्पष्ट िै कक यहद आममा पर आधाररत यि भ्रातृमृव स्थावपत निीं िोता और अंधे स्वाथ िपर लगाम निीं लगा देता तो यि सारी मनुष्यजानत के भलए एक घातक जस्थनत िोगी।

प्रश्न : परंतु ुवतमिान पररदृश्य को देखतेिुए कया ऐसी कोई संभावना नजर आती िै कक आममा का यि गुण - भ्रातृमृव - स्थावपत िो सके, कयोंकक चारों ओर िम भमथ्यामव, वैमनस्य, स्वाथपिरता और घोर अंधकार का िी बोलबाला देखते िैं?

उत्तर : अतीत में ऐसे काल और ऐसी सभ्यताएँ रि चुकी िैं जिाँ बिुत सामंजस्य था। इसभलए यहद िम केवल प्रतीनतयों से िी भ्रभमत िोकर न देखें और यि मानकर चलें कक प्रकृनत में उिरोिर ववकास िी िुआ िै न कक अवननत, और कफर आज िमारे पास पिले से अधधक साधन िैं, तो ऐसा कोई कारण निीं ंिै कक यि न ककया जा सके। िमारे प्राचीन ऋवष, जजन्िोंने समय-समय पर स्वयंआकर सदा िी मनुष्यजानत को आगे बढ़ाया िै, वे अब भी प्रकट अथवा सूक्ष्म तरीकों से आध्याजममक समय को िमारे स्थूल से स्थूल भागों में भी लानेका प्रयास कर रिे िैं। आज को िमारे स्थधक साधन इतने तीव्र िो चुके िैं कक ककसी एक स्थान पर िुई प्रचार आप बिुत थोिे िी समय में ववश्व भर में फैल जाती िै। जब कोई उपलत्रबल आहद के साधन निीं ंथे तब भी स्वयंशंकराचाय िने सोलि वषों की अल्पायुमें िी सारे भारत का भ्रमण कर हिन्दू ूधम िका प्रचार-प्रसार कर हदया था तथा मठों का ननमाणि कर हदया था। आज जब िम तकनीकी की दृजष्ट से किीं ंअधधक साधन संपन्न िैं तो एक बार किीं ंआममा का प्रकाश प्रस्फुहटत िोता िै उसे सभी जगि फैलानेमें तो अधधक समय निींलगेगा। आममा की शजकत अप्रनतरोध्य और अमोघ िोती िै। इसीभलए गौतम बुद्ध जजस ककसी माग िसे ननकलते थे विींसभी अपनेआप िी बौद्ध धम िअपना

लेते थे। अतः जब आममा की शजकत प्रकट िोती िै तब उसमें अदमय शजकत िोती िै और वि चीो जो चीज चररताथ िकर सकती िै। िमारे अपनेसमय में िम प्रभुपाद जी का उदािरण देख सकतेिैं। ककतने िथिो िी काल में उन्िोंने ववश्व भर में 'कृष्ण चेतना' का प्रचार प्रसार कर हदया जबकक न तो उनका शारीररक स्वास्थ्य िी अच्छा था और न िी उनके पास कोई ववशेषे संसाधन थे। परंतु कफर भी चूंकक उन्िें अपनेभीतर से यि आदेश प्राप्त था कक उन्िें यि प्रचार-प्रसार करना िै इसभलए उन्िोंनेननष्ठापूवकि उसका पालन ककया और आज ववश्व भर में िम उसकी जीवंत चररताथतिा देख सकतेिैं और जबकक स्वयं प्रभुपाद जी आज शरीर में निीं िैं, तो भी भकतों की अधधकाधधक संख्या ननमयप्रनत उस ओर आकवषति िो रिी िै और इससे लाभाजन्वत िो रिी िै। अतः यहद ककसी प्रकार आममा का सच्चा प्रकाश आ सके तो ववश्व भर में उसे फैलने में और पूरे पररदृश्य को िी बदल िालनेमें अधधक समय निीं लगेगा।

परन्तु िमारी सिा के जहटल तंत्र के प्रमयेक भाग में ये केवल प्रधान शजकतयाँ िी िैं। ये तीनों गुण िमारे पेचीदा मनोववज्ञान के प्रमयेक तन्तु एवं प्रमयेक अंग में घुल-भमलते, संयुकत िोतेतथा कलि करते िैं। िमारा मानाभमक स्वरूप, िमारी बुद्धध का स्वरूप, संकल्पशजकत का स्वरूप, िमारी नैनतक, गुणों के द्वारा िी ननभमति िोता िै। तमस् उस समस्त अज्ञानता, ज़िता, दुबलुिता एवं असमथतिा को ले आता िै जो िमारी प्रकृनत को पीड़ित करती िै, और साथ िी ले आता िै तमसाच्छन्न बुद्धध, ननजानि, अबुद्धध, अफरती धारणाओं और याजन्त्रक ववचारों के प्रनत आसजकत, ववचारने और जानने से इन्कार करने की वृवि को, संकुधचत मन को, बन्द मागों को, मानभसक आदत के चककर काटते रिने को और अन्धकारमय एवं धूभमल स्थान को। तमस् ले आता िै अशकत संकल्पशजकत को, श्रद्धा, आमम-ववश्वास और नए अभभयानों को आरंभ करने के उमसाि के अभाव को, किया करने में अरुधच को, उद्यम और अभीप्सा से कतराने की वृवि को, तुच्छ और क्षुर भाव को, और िमारी नैनतक और कियाशील सिा में वि ले आता िै ननजष्ियता अथवा ज़िता, भीरुता, नीचता, मंदता, तुच्छ और िीन िेतुओं के प्रनत भशधथल अधीनता, अपनी ननमन प्रकृनत के प्रनत दुबलुतापूण ववश्यता को। िमारी भावप्रधान प्रकृनत में तमस् ले आता िै समवेदनिीनता, उदासीनता, सिानुभूनत एवं ग्रिणशीलता के अभाव को, बन्द आममा एवं िूर हृदय को, शीघ्र थक जानेवाले अनुराग और भावनाओं की मन्दता को, िमारी सौन्दयामिमक और समवेदन-प्रधान प्रकृनत में वि सौन्दयववृवि की ज़िता, प्रनतकिया-शजकत की पररभमतता एवंसौन्दय िके प्रनत समवेदनिीनता को तथा उन सब चीजों को जो मनुष्य में स्थूल, तामभसक और असंस्कृत भाव को उमपन्न करती िैं। रजस् िमारी सामान्य सकिय प्रकृनत को अपनी सभी भली और बुरी वृवियाँ प्रदान करता िै; जब वि सत्त्वगुण के पयाप्ति अंश के द्वारा अभी ववशुद्ध निीं िुआ िोता तब वि अिंकार, स्वेच्छाचाररता और उग्रता, बुद्धध की ववकृत, िठी या अनतरंजक किया, पूवाग्रिि, अपनेमत के प्रनत आसजकत, भूल से धचपके रिने की वृवि, समय के प्रनत निीं अवपतु िमारी कामनाओं एवं अभभरुधचयों के प्रनत बुद्धध की अधीनता, धमान्धि या कट्टरपंथी मन, िठधभमतिा, गव,ि अभभमान, स्वाथ,ि मित्त्वाकांक्षा, काम-वासना, लोभ, िूरता, घृणा, ईष्या,ि नाना प्रकार के पे्रममूलक अिंकार, समस्त पाप और वासनाएँ, सौन्दयबिोध की अनतरंजनाएँ, समवेदनाममक और प्राणणक सिा की व्याधधयाँऔर ववकृनतयाँ - इन सभी की ओर प्रवृवि रखता िै। अपने ननज अधधकार में तमस् असंस्कृत, ज़ि और अज्ञानमय प्रकार की मानव प्रकृनत को जन्म देता िै, रजस् कम,ि आवेश और कामना के भाव से चाभलत, प्राणवन्त, चंचल एवं

कियाशील मानव को जन्म देता ि ै। सत्त्व एक उच्चतर कोहट के मानव को जन्म देता ि ै। सत्त्वगुण की देनें ि ैं - ववववेकशील और सन्तुभलत मन, ननष्पक्ष, समयान्वेवषणी एवंग्रिणशील बुद्धि की बोधगमयता, बुद्धि के अधीन या नैनतक भाव के द्वारा पररचाभलत संकल्पशजकत, आमम-संयम, समता, शांत-जस्थरता, प्रे्रेम, सिानुभूनत, भशकता संकल्पात सोन्दर्यािथी और भावमय मंत्र की सूक्ष्मता, समवेदनाममक राजा ि ै सुकोमलता, समुधचत ग्रिणशीलता, भमतव्यविार और संतुलन, प्रभुमव बुद्धि के वश में रिनेवाली और उसके द्वारा पररचाभलत प्राणशजकत। याधचक अववध के भसद्ध प्रकार या उदािरण ि ैं दाशननिक, सन्त और ज्ञानी याजन्त, राजभसक मनुष्य के भसद्ध उदािरण ि ैं राजनीनतज्ञ, योद्धा और शजकतशाल कमवीर। परन्तुसभी मनुष्यों में गुणों का कम या अधधक अनुपात में परमार सजममश्रण पाया जाता ि ै, बिुववध व्यजकतमव देखने में आता ि ै और अधधकार में तो काफी पररवतनि एवं ककसी एक गुण के प्रभुमव से दूसूरे गुण का प्राधान प्रनतस्थावपत ि ोता रिता ि ै; यद्यवपाँतक कक उनकी प्रकृनत के ककसी प्रधान गुद्वारा शाभसत ि ोने पर भी अधधकांश मानव एक भमले-जुले प्रकार के ि ोते ि ैं जीवन के सभी रंग और ववववधता इन गुणों की बुनावट की जहटल बनावट में बनि ैं।

तत्र सत्त्वं निनमुलुत्ात्प्रकाशकमनामयम् ्।
सखसङ्गेन बध्नानत ज्ञानसक्नेन चानघ ।। ६।।

६. हे ननष्पाप! इन गणजों में से सत्त्गिणज ननमुलु होने ेके कारण प्रकाश और ननरोगता देनिेाला है; यह सजख के तथा ज्ञान के साथ आसस्क्त के द्ारा बाधूँता है।

रजो रागात्मकं विद्धि तृषृ्णासङ्गसमद्जभिम् ्।
तस्न्नबध्नानत कौन्तेय कमुसुङ्गेन देदहनम् ्।। ७।।

७. हे कौन्तेय! रजोगणज को तू रागात्मक (आकषुणुात्मक) मिभिा ि ोला जान; कामना और आसस्क्त से उत्पन्न होने ेके कारण यह देहािरी जिी को कमूँ के साथ आसस्क्त के द्ािरा बिूँता है।

तममत्ज्ञिानजं विद्धि मोहनं सिुदेदहनाम् ्।
प्रमादालमयननद्रासभमतस्न्नबध्नानत भारत ।। ८।।

८. और अज्ञान से उत्पन्न हजए तमस् ्को तू सममत देहािरी जिीों को गोविन करने ि ोला जान; हे भारता ि ह प्रम को तो सममत देहािरी कीबात का को बिूँता है।

सत्त्वं सिखे सञ्जयनत रजः कमुणुण भारत ।
ज्ञानमिृतृ्य त जतमः प्रमादे सञ्जयत्यतज ।। ९।।

९. हे भारत! सत्त्गिणज मनष्जय को सखज में आसक्त करता है, रजोगणज कमु ुमें और तमोगजण ज्ञान को आच्छाददत करके मनजष्य को प्रमाद में आसक्त करता है।

गीता किती ि◌ै कक "प्रकृनत से उमपन्न ये तीन गुण दिे के अंदर ननवास करनेवाले अववनश्वर दिेी को दिे में बाधँा देते ि◌ैं।" इसका कारण... ि◌ै गुणों तथा उनकी कियाओं के पररणामों के प्रनत ि◌मारी आसजकत। सत्त्व... सुख-प्रसन्नता में आसकत करता ि◌ै, रजस् ◌् कम ि◌में आसकत करता ि◌ै और तमस् ◌् ज्ञान को आच्छाहदत कर देता ि◌ै और भूल-भ्रांनत एवं अकमरूपी प्रमाद में आसकत कर देता ि◌ै।.... दूसूरे शब्दों में, जीव गुणों तथा उनके पररणामों के उपभोग के प्रनत आसजकत के द्वारा अपनी चेतना को प्रकृनत में मन-प्राण-शरीर की ननमनतर एवं ◌ंबाह्य किया-व्यविार पर केंहरत करता ि◌ै, इन वस्तुओं के बाह्य रूप के अंदर अपने को कैद कर देता ि◌ै और (अपनी स्थूल सिा के) पीछे की ओर आममा के अंदर अवजस्थत अपनी स्वयं की ि◌िर चेतना को भूल जाता ि◌ै, मोक्षदायी 'पुरुष' की स्वतंत्र शजकत एवं ◌ंववस्तार-क्षेत्र से अनभभज्ञ रिता ि◌ै। अतः यि स्पष्ट ि◌ी ि◌ै कक मुकत और पूण ि◌ि◌ोने ◌ेके भलए ि◌में इन चीजों से पीछे ि◌टना ि◌ोगा, गुणों से ववलग ि◌ोकर उनके ऊपर उठना ि◌ोगा और प्रकृनत के ऊपर अधधजष्ठत उस मुकत अध्यामम-चेतना की शजकत तक पुनः जाना ि◌ोगा।

अतः यि ननजश्चत ि◌ै कक ये तीनों ि◌ी गुण व्यजकत को आमम-ववस्मृनृत करातिैं और ववश्व-प्रपंच में आसकत कर देते ि◌ैं। तमस् ◌् सुख और ननजष्ियता में आसकत करता ि◌ै, रजस् ◌् कम ि◌और गनतशीलता में आसकत करता ि◌ै और सत्त्व ज्ञान में आसकत करता ि◌ै। तीनों ि◌ी अपने-अपने तरीके से व्यजकत को आसकत करते ि◌ैं और आंतररक सिा के प्रनत ववस्मृनृत लाते ि◌ैं। इसीभलए परंपरा से ि◌ी इसका प्रचभलत उपाय रिा ि◌ै अक्षर रह्म में अपने आप को जस्थत कर लेना और गुणों की किया को अपने ि◌ाल पर छोड़ देना। परंतुयि तो आरंभिण में पिला पड़ाव मात्र ि◌ी ि◌ो सकता ि◌ै। ये ननभलप्तिता या उदासीनता पूणमिव की जस्थनत निीं ि◌ैं। तो भी, आममा के ववकास की ककसी अवस्था ववशेषे में, जब व्यजकत बािरी चीजों में, संबंधों आहद में अनतशय रूप से आसकत ि◌ोता ि◌ै, यि भाव लाभकारी ि◌ो सकता ि◌ै। अक्षर रह्म के प्रभाव से जब व्यजकत साक्षी भाव का अभ्यास करता ि◌ै तब उसे इन अनतशय बाह्य आसजकतयों के ज्वर से कुछ रात अवश्य भमलती ि◌ै और वि ककसी श्रे्रेष्ठतर चीज के ववषय में सोचने-समझने की जस्थनत में आता ि◌ै अन्यथा तो वि इन आसजकतयों से ि◌ी इतना अभभभूत और पीड़ित रिता ि◌ै और इन्िीं के द्वारा रात-हदन यंत्रवत् ◌् चलाया जाता ि◌ै और ककसी श्रे्रेष्ठ आदश ि◌के ववषय में तो उसे सोचनेका अवकाश ि◌ी निीं ि◌िता। इसभलए ये ननभलप्तिता आहद आसजकत की पीड़ा से ननवृि करनेमें तो सिायक ि◌ैं परंतु ◌ु इनका अन्य कोई सकारामक उपयोग कम ि◌ी ि◌ै।

प्रश्न : ज्ञान की आसजकत का कया अथ ि◌ि◌ै? कया ज्ञान में भी आसजकत ि◌ो सकती ि◌ै?

उत्तर : ज्ञान का ननश्चय ि◌ी अपना एक आकषणि ि◌ोता ि◌ै जजससे छूट ननकलना राजभसक लालसाओं और तामभसक वृवृियों से भी किंअधधक दुष्कुर ि◌ै कयोंकक तामभसक और राजभसक वृवृियों में तो किं न किं व्यजकत को अपने बंधन का तथा अपने गलत ि◌ोने ◌ेका आभास ि◌ो सकता ि◌ै परंतु ज्ञान के अंदर तो व्यजकत अपनेको इतना पररपूण ि◌अनुभव करता ि◌ै कक उसे तो वि छोड़ना ि◌ी निीं चािता। इसभलए श्रीअरववन्द किते ि◌ैं कक, "चािे ि◌म एकांगी रूप से 'ववद्या' का अनुगमन करें या 'अववद्या' का, दोनों ि◌ालातों में ि◌ी ि◌म समान रूप से पथभ्रष्ट ि◌ो जाते ि◌ैं कयोंकक एकांधगता का अथ ि◌ि◌ै अज्ञान, एकांधगता का अथ ि◌ि◌ै ववभ्रम तथा अववभाज्य रह्म का ववभाजन। और

ऐसी त्रुहट में दृढ़ संलग्नता एक ऐसा िठ िै जो आममा की उसकी ननकटतम संभावनों के भलए घातक िै। यद्यवप शाश्वत काल के भलए नरकवास तो संभव निीं ंिै परंतु कफर भी कुछ काल के भलए मृमृयु को सफलतापूवकि पार करने ेमें वि ववफल िोता िै और (त्रत्रशंकुंवत्) ् अधि–ममय ि(trans-mortal) अंधकार में प्रवेश कर जाता िै। वे लोग पूणतिा-प्राप्त करते िैं, भसद्ध िोतेिं जो रह्म को एकाममकता को स्वीकार करते िैं, जो ववद्या और अववद्या दोनों में केवल व्यविार देखतेिं, प्रकाश और अंधकार को 'उसमें' प्रनतत्रबंत्रबत देखते िैं जो दृश्य-जगत् ्में केवल आमम-अभभव्यजकत के भलए प्रयोग में लाए गए िैं. जो 'अनेकाममक' में एकमेव के िोने के ज्ञान में ननवास करते िैं, जो सभो को रह्मस्वरूप या रह्मभाव में आभलंगंन करते िैं, जो कुछ भी अस्वीकार निीं ंकरते, कुछ भी अभभरुधच निीं रखते, सभी कुछ सिन अथवा विन करते िैं, सभी कुछ संपन्न करते िैं, मयाग के द्वारा अनंत शांनतसंपन्न िैं, िष ि के द्वारा अनंत शजकत और आनंदयुकत िैं।"* अतः अपनी सच्ची जस्थनत में आममा ववद्या और अववद्या दोनों का समान िी रूप से उपयोग कर सकती िै। इसी प्रकार आममा के भलए जन्म और मृमृयुभी घटनाएँ मात्र िी िैं। यि न तो जन्म से बंधी िोती िै और न िी मृमृयु से, वि इनसे परे िोती िै। अपनी अभभव्यजकत के भलए वि इन दोनों को समान िी रूप से उपयोग में ला सकती िै। परमाममा की चेतना िमारी ककन्िीं भी पररकल्पनाओं से सवथिा परे िै। इसभलए वि चेतना िम जजसे शुभु कितेिं उसे भी उतना िी अपनेउपयोग में ले लेती िै जजतना कक उसे जजसे िम अशुभु कितेिं। कयोंकक यि सारी शब्दावली तो मनुष्य की रची िुई िै जबकक परमाममा अपनी किया के भलए मिारी ककन्िीं भी शब्दावभलयों से बाध्य निींिं। वे मुकत रूप से अपनी किया करते िैं। और उस किया में कुछ चीजें मिारी शब्दावली के अनुसार शुभु के दायरे में आ सकती िैं और कुछ अशुभ के। परंतुपरमाममा की चेतना में ऐसा कोई ववभेद निीं िै। वे िमारी ककन्िीं भी मानभसक पररभाषाओं से सवथिा परे िैं।

---

*CWSA 17, p. 387

रजमतमश्िाभिभूय सत्त्ं भिनत भारत ।
रजः सत्त्ं तिमश्िै तमः सत्त्ं रजमतथा ।। १० ।।

१०. हे भारत! कभी सत्त्गिणज रजोगणज और तमोगणज को दबाकर प्रिान हो जाता है, कभी रजोगणज सत्त्गिणज और तमोगणज को दबाकर प्रिान हो जाता है और कभी तमोगणज सत्त्गिणज और रजोगणज को दबाकर प्रिान हो जाता है।

प्रकृनत के ये तीन गुण सभी मनुष्यों में स्पष्टतः िी ववद्यमान और सकिय िैं और ककसी को भी इनमें से ककसी एक या दूसूरे से सवथिा रहित या तीनों में से ककसी एक से ववमुकत निीं ंकिा जा सकता; कोई भी व्यजकत अन्य गुणों के त्रबना केवल एक िी गुण के साचेँमें ढला िुआ निीं ंिै। सभी लोगों के अंदर कामना और कम िका राजभसक आवेग ककसी-न-ककसी मात्रा में ववद्यमान िै और साथ िी प्रकाश एवं सुख-प्रसन्नता का साजत्त्वक वरदान, कुछ संतुलन, अपने-आप के, अपनी पररजस्थनतयों तथा अपने ववषयों के प्रनत मन का कुछ सामंजस्य भी सबको प्राप्त िै, और सभी को तामभसक अशकतता, अज्ञान या ननश्चेतना का अपना-अपना भाग भी भमला िुआ िै। परंतु ये गुण अपनी शजकत की मात्राममक किया में या अपनेतत्त्वों के संयोग में ककसी भी मनुष्य के अंदर जस्थर

रूप में ववद्यमान निीं ंिैं; कयोंकक ये पररवतनिशील िैं तथा ननरंतर, िी आपसी टककर, स्थान-पररवतनि तथा पारस्पररक किया-प्रनतकिया की अवस्था में रितिैं। कभी तो एक नेतृमृव करता िै और कभी दूसूरा प्रबल िो जाता तथा प्रधानता प्राप्त कर लेता िै, और प्रमयेक िमें अपनी ववभशष्ट किया तथा उसके पररणामों के अधीन कर देता िै। ककसी एक या दूसूरे गुण की एक व्यापक तथा साधारण रूप से प्रमुखता के द्वारा िी ककसी मनुष्य को उसकी प्रकृनत में साजमवक या राजभसक या तामभसक किा जा सकता िै, पर यि तो केवल एक सामान्य लक्षण िो सकता िै, न कक कोई अनन्य या चरम लक्षण। ये तीन गुण त्रत्रववध शजकत िैं और अपनी किया-प्रनतकिया के द्वारा ये प्राकृनतक मनुष्य के चररत्र एवं स्वभाव का ननधारिण करते िैं तथा उस स्वभाव के और उसकी ववववध चेष्टाओं के द्वारा मनुष्य के कायों का भी ननधारिण करते िैं।

सिुद्विारेष जदेहेऽस्ममन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानंयदा तदा विद्याद्विृदि्ं ंसत्त्सिमत्यतज ।। ११ ।।

११. जब इस देह के सममत द्विारों से ज्ञान का आलोक प्रकासशत होता है, तब ऐसा जानना चादहए कक सत्त्गिणज की िृद्धि हजई है।

लोभः प्रिृवृत्तरारम्भः कमुणुामशमः मपृहृा ।
रजमयेतानन जायन्तेवृिदि्ृ भरतषुभु ।। १२ ।।

१२. हे भरतशे्रेष्ठ अजुनुजा लोभ, प्रयत्नशीलता, कमों का अनष्जठान, व्याकजलता और कामना-लालसा, ये सब रजोगणजकी िृद्धि होने ेपर प्रकट होतेहैं।

अप्रकाशोऽप्रिृवृत्तश्िप्रमादो मोह एि च ।
तममयेतानन जायन्तेवृिदि्ृ कजरुनन्दन ।। १३।।

१३. हे कजरुनन्दन! अंिकार, अकमुण्ुयता, प्रमाद और मोह (संभ्रम) ये सब तमोगणज की िृद्धि होने ेपर प्रकट होते हैं।

यदा सत्त्ेप्रिृदि्ृे त जप्रलयंयानत देहभृत् ् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रनतपद्यते ।। १४।।॥

१४. जब देहिारी जिी सत्त्गिणज की प्रिानता की अिमथा में मृत्ृयज को प्राप्त होता है तब िह सिोच्च के ज्ञाता व्यस्क्तयों के योनय ननमुलु लोकों को प्रात होता है।

रजसस प्रलयं गत्िा कमुसुङ्धगष जायते ।
तथा प्रलीनमतमसस मूढयोननष जायते ।। १५।।

की प्रिानता की अिस्था में मृत्यु जको प्राप्त करके मनष्जय ऐसे मनष्जयों के मध्य जन्म ग्रहण करता है १५. रजोगणज जो कमु ुमें आसक्त होतेहैं; और तमोगणज की प्रिानता की अिस्था में मृत्यु जको प्राप्त करके िह अविद्या-अंिकार में लीन जीिों की योननयों में उत्पन्न होता है।

कमुणुः सकृजतमयाहजः सास्त्त्विकं ननमुलं िलम् ्।
रजसमत जिलं दःजखमज्ञानं ंतमसः िलम् ्।। १६ ।।

१६. समजधचत रूप से ककये गए कमों का िल शद्जि और सास्त्त्विक कहा जाता है; राजससक कमों का िल दःजख और तामससक कमों का िल अज्ञान कहा जाता है।

----

* सत्त्व आहद प्रधान गुण दिधारी जीव के मूल आजममक प्रनतरूप निीं िोते, वरन उब रचना के धचह्न मात्र िोते िैं जो रचना जीव अपनेइस जीवन के भलये या अपने वतमिान सिा-काल में अपने ववकास के ककसी ववभशष्ट क्षण में ननभमति करता िै।

सत्त्वात्सिञ्जायते ज्ञानंरजसो लोभ एि च ।
प्रमादमोहौ तमसो भितोऽज्ञानमेि च ।। १७॥

१७. सत्त्िगणज से ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगणज से लोभ; तमोगणज से प्रमाद, मोह, और साथ ही अज्ञान भी, उत्पन्न होते हैं।

ऊर्ध्िं गच्छस्न्त सत्त्िमिथा मध्ये नतष्ठस्न्त राजसाः ।
जघन्यगणजिृत्तिमथा अिौ गच्छस्न्त तामसाः ॥ १८॥

१८. जो सत्त्िगणज में स्मथत हैं िे ऊपर की ओर गनत करते हैं, जो रजोगणज में स्मथत हैं िे मध्य में बनेरहतेहैं; और जो तमोगणज में स्मथत हैं िे, ननकृष्टतम गणज की प्रिृत्तियों में रहने ेके कारण, नीचेकी ओर जाते हैं।

सामान्य मानव जीव अपने प्राकृत-जीवन के धचर-अभ्यस्त ववक्षोभों में एक तरि का सुख लेता रिता िै; और चूँकक उसे उनमें सुख भमलता िै और इस सुख से सुखी िोकर वि ननमन प्रकृनत की अशांत िीिा को अपनी अनुमनत देता िै इसभलए त्रत्रगुणाजममका प्रकृनत की यि िीिा सदा चलतो रिती िै; कयोंकक प्रकृनत अपनेप्रेमी और भोकता पुरुष के सुख के भलए िी और उसकी अनुमनत के अनतररकत और कुछ निीं करती।... िमारे राजभसक कामनामय पुरुष के भलए एकरस सुख, संघषरिहित सफलता और छाया रहित िष िकुछ काल बाद अवसादकर, नीरस, और अतृजृप्तकर िोने लगता िै, प्रकाश के उपभोग को पूरा मूल्य प्रदान करनेके भलए इसे अंधकार को एक पृष्ठभूभम चाहिए: कयोंकक जो सुख वि चािता और भोगता िै वि ठीक उसी स्वभाव का िै, वि अपनेतत्त्वमात्र में

सापेक्ष िोता िै और अपने ववपरीत तत्त्व के बोध और अनुभव पर ननभरि िै। आममा को जगत् ्के द्वंद्वों में भमलने वाला आनंद िी मन को जीवन से भमलने वाले सुख का रिस्य िै।

मिारे जीवन में अधधकांश समस्याओं का कारण िमारा राजभसक कामनामय पुरुष िै। यहद जीवन में एकरसता िो, चीजें सुचारू रूप से चल रिी िों, ककसी प्रकार का कोई कलि आहद न िो, ककसी प्रकार का दुःख, ववयोग न िो, तीव्र िष िऔर शोक न िो तो वि ऊब जाता िै। अपने मन बिलाव के भलए ननमय प्रनत वि नई-नई चीजें ढूाँढ़नेमें लगा िोता िै। वि ककसी तीव्र सुख में भी उतना िी पुष्ट िोता िै जजतना कक ककसी तीव्र पीिा में, ककसी यंत्रणा में। इसभलए जो प्राण प्रधान लोग िोते िैं वे सदा िी कलिरत हदखाई देते िैं कयोंकक प्राणणक प्रकृनत उन्िें वैसा करनेको बाध्य करती िै। िमारी प्राणणक प्रकृनत को यि किने में बिुत सुख अनुभव िोता िै कक जीवन में उसनेसब के साथ भला ककया िै जबकक उसके साथ सदा िी अन्याय, अमयाचार और धोखा िी िुआ िै। प्रायः िी िम ऐसी किाननयााँसुनते िैं कक व्यजकत ने आवश्यकता या संकट के समय अपनेककसी भमत्र या अपनेसगे संबंधधयों की भरसक सिायता की परंतु उन्िोंने ्कभी उसके प्रनत ककसी प्रकार की कोई कृतज्ञता व्यकत निीं ्की और न िी जब स्वयंउसे सिायता की आवश्यकता थी उस समय ककसी प्रकार की कोई सिायता िी प्रदान की। ऐसे िी अनेक तरीकों से प्राणणक प्रकृनत अपने आप का गुणगान करके, अपना महिमा मण्िन कर के तुजष्ट बटोरने का प्रयास करती िै।

यहद इस मन से इन सब ववक्षोभों से ऊपर उठनेऔर उस ववशुद्ध आनन्दमय पुरुष के अभमश्र सुख को प्राप्त करनेके भलए किा जाए जो सब गुप्त रूप से जीवन को उसके संघष िमें सिारा देता िै और उसकी सिा को ननरंतर बनाए रखना संभव बनाता िै, तो वि तुरन्त इस मााँग से घबराकर पीछे िट जाएगा।.... मन की अननच्छा का वास्तववक कारण यि िै कक उससे अपनेननजी वातावरण से ऊपर उठनेऔर जीवन की एक अधधक असाधारण और अधधक ववशुद्ध वायु का सेवन करने के भलए किा जाता िै, जजसके आनन्द और शजकत को वि अनुभव निीं कर सकता, और यिााँ तक कक उसको वास्तववकता पर भी मुजश्कल से िी ववश्वास करता िै, जबकक इस ननमनतर गाँदली प्रकृनत के सुख िी इसके भलए एकमात्र परररधचत और स्पशगोिर या भोग्य िैं। और न िी यि ननमनतर तुजष्ट अपने-आप में कोई दोषपूण िजा ननरथिक चीज िी िै; अवपतु यि तो अन्नमय पुरुष जजस तामभसक अज्ञान और ज़िमव के अमयंत अधीन िोता िै उससे ऊपर उठकर मानव-प्रकृनत के ऊर्ध्वमुखीन ववकास के साधन की अवस्था िै; परम आममज्ञान, शजकत और आनन्द की ओर मनुष्य के िभमक आरोिण की यि राजभसक अवस्था िै। परन्तु यहद िम सदा इसी भूभमका पर िी बनेरिें, जजसे गीता ने मध्यमा गनतः किा िै, तो िमारा आरोिण अधूरा िी रिता िै, आममा का ववकास अपूण िी रिता िै। जीव की भसद्धध का माग िसाजत्त्वक सिा और स्वभाव के भीतर से िोकर उस पर पिुाँचता िै जो त्रत्रगुणातीत िै।

नान्यं ्गणेभ्यः कतुारं यदा द्रष्टानपजश्यनत ।

गणेभ्यश्च परं िवत्त मद्भिावं सोऽधिगच्छनत ।। १९।।

१९. जब द्रष्टा यह देखता है कक गणज ही कतुा हैं और कोई नहीं, और उस परम तत्त् को जानता है जो गजणों से परे है, हि मेरे भगिद्भ्िा को प्राप्त हो जाता है।

जो भ्राजन्त प्रकृनत के गुणों की किया को स्वीकृनत देती ि‍ै उसे समाप्त ि‍ोना ि‍ोगा; कयोंकक जब तक इसे स्वीकार ककया जाता ि‍ै, तब तक आममा इनकी कियाओंमें आबद्ध और इनके ननयम के अधीन ि‍ी ि‍ोती ि‍ै।... गीता इस लक्ष्य की प्राजप्त के भलये आमम-साधना की एक नयी ववधध बतलाती ि‍ै। वि ि‍ै गुणों की किया से पीछे टिकर अपने अन्दर जस्थत ि‍ोना तथा प्रकृनत की शजकतयों की तरंग के ऊपर ववराजमान साक्षी की भानँत इस अजस्थर प्रवाि का ननरीक्षण करना। साक्षी वि ि‍ै जो देखता तो ि‍ै पर तटस्थ एवं उदासीन बना रिता ि‍ै, गुणों के ननज स्तर पर उनसे पृथक् तथा अपनी सिज जस्थनत में उनसे ऊपर उच्चासीन ि‍ोता ि‍ै। जब वे अपनी तरंगों के रूप में उठते-धगरते ि‍ैं, तब साक्षी उनकी गनतववधध देखता ि‍ै, इसका ननरीक्षण करता ि‍ै, परन्तुन तो वि इसे स्वीकार करता ि‍ै न इसमें क्षण भर भी ि‍स्तक्षेप करता ि‍ै। सबसे पिले ननवैयैजकतक साक्षी की स्वतन्त्रता प्राप्त िोनी आवश्यक ि‍ै: तदनन्तर स्वामी या ईश्वर का प्रभुमव स्थावपत ि‍ो सकता ि‍ै।

अनासजकत की इस प्रकिया का प्रारजमभक लाभ यि ि‍ोता ि‍ै कक व्यजकत अपनी ननज प्रकृनत तथा समस्त ववश्वप्रकृनत को समझने लगता ि‍ै। अनासकत साक्षी अिंकार से लेशमात्र भी अन्धा ि‍ुए त्रबना प्रकृनत की अववद्यामय शैभैलयों की िीला को पूण ि‍रूप से देख सकता ि‍ै तथा उसकी सभी जहटलताओं, आच्छादनों एवं सूक्ष्मताओं में उसका पीछा करने ेअथवा उसे ढूाँढ़ ननकालनेमें समथ ि‍िोता ि‍ै कयोंकक यि छलरूप तथा छदावेश और जालबन्दी, - धोखेबाजी तथा छल-चातुरी से भरी ि‍ुई ि‍ै। दीघ ि‍अनुभव से सीखा ि‍ुआ, सभी कायों एवं अवस्थाओं को गुणों की परस्पर किया समझता ि‍ुआ, इनकी कायशैभैलयों से भभज्ञ ि‍ोता ि‍ुआ वि और अधधक इनके आिमणों से परास्त निीं ंि‍ो सकता, इनके फन्दों में एकाएक फाँस निी सकता अथवा इनके स्वांगों के धोखे में निीं ंआ सकता। साथ ि‍ी वि देखता ि‍ै कक अिं यथाथ ि‍में इनकी परस्पर-कियाओं ंका साधन और इनकी थामे रखनेवाली धारक ग्रंधथ ि‍ै और, यि जानकर, वि ननमन अिंकारमय प्रकृनत की माया से मुकत ि‍ो जाता ि‍ै। वि परोपकारी और मुनन एवं मनीषी के साजत्त्वक अिंकार से छूट जाता ि‍ै, वि स्वाथसेिवी के राजभसक अिंकार को भी उस ननयंत्रण से च्युत कर देता ि‍ै जो उसने उसके प्राणणक-आवेगों पर जमा रखा ि‍ै और अब वि ननज स्वाथ ि‍का पररश्रमी सेवक या पोषक तथा आवेश एवं कामना का भसरचढ़ा कैदी या अनतश्रम करनेवाला दंडित दास निीं रिता; अज्ञानमय या ननजष्िय, ज़ि एवं बुद्धधिीन, तथा मानवजीवन के साधारण चि में फाँसी ि‍ुई सिा के तामभसक अिंकार को वि अपनी ज्ञान-ज्योनत से नछन्न-भभन्न कर देता ि‍ै। इस प्रकार ि‍मारे सभी व्यजकतगत कम ि‍में अिंभाव-रूपी मूल दोष के ववषय में ननजश्चत और सचेतन ि‍ोकर वि अब और अधधक राजभसक या साजत्त्वक अिंकार में आमम-सुधार या आमम-उद्धार का उपाय ढूाँढ़नेकी चेष्टा निीं ंकरता अवपतु ुइनसे ऊपर एवं प्रकृनत के उपकरणों तथा कायप्रिणाली से परे केवल सवकिमि–मिेश्वर तथा उसकी परम शजकत या परा प्रकृनत की ओर ि‍ी उन्मुख ि‍ोता ि‍ै। केवल विींसमस्त सिा शुद्ध और मुकत ि‍ै और विींहदव्य समय का शासन समभव ि‍ै।

गणान्ेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमद्‌जभान् ्।

जन्ममृत्यजरादःजखैविमुक्जतो ऽमृतमश्नतेज ।। २० ।।

२०. जब देहिारी जिीात्मा देह में उद्भूत होनिाले इन तीन गणज ों से ऊपर उठ जाता है, तब िह जन्म, मृत्य,ज रािद्मथा और दःजखों से मक्जत हो जाता है और अमृतत्ि का आमिादन करता है।

अजुनुज उिाच

कैसुलङ्गैमत्रीन्गणानेतानतीतो भिनत प्रभो ।
ककमाचारः कथं चैतांमत्रीन्गणानमतिततुे।। २१।।

२१. अजुजनु ने कहाः हे प्रभो! इन तीन गणजों से ऊपर उठा हजआ मनष्जय ककत लक्षणों से यक्जत होता है? िह ककस प्रकार आचरण करता है और उसका व्यिहार ककस प्रकार का होता है और ककस सािन से िह इन तीन गणजों से परे जाता है?

श्रीभगिान् उिाच प्रकाशंच प्रिृत्तं च मोहमेि च पाण्डि ।
न द्िेस्टि संप्रिृत्तानन न ननिृत्तानन काङ्क्षनत ।। २२।।
२२. श्रीभगिान् ने कहाः हे पाण्डिा जो (सत्त्ि जिननत) प्रकाश से, (रजोजननत) कमु में प्रिृत्त से तथा (तमोजननत) मोह की िृद्धि से न तो द्िेष करता है और न ही उनके न रहने पर उनकी कामना करता है;

उदासीनिदासीनो गणै यो न विचाल्यते ।
गणािततुन्त इत्येि योऽनितष्ठनत नेङ्गते ।। २३ ।।

२३. जो गणजों के प्रनत उदासीन के समान और उनसे अविचसलत बना रहता है, जो ऐसा जानकर कक केिल गणज ही कक्रया करते हैं उनसे तटमथ, अचल बना रहता है।

समदःजखसखजःमिमथः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तल्जयवप्रयावप्रयो िीरमतल्जयननंदात्मसंमतनजतः ।। २४।।
मानापमानयोमतल्जयमतल्जयो समत्रारपक्षयोः ।

सिारम्भपररत्यागी गणजातीतः स उच्यते ।। २५।।

२४-२५. जो आत्ममथ और अविचसलत मनष्जय दःजख और सजख में समान रहता है, सम्टी के ढेले, पत्थर और मिणु को समान समझता है, वप्रय और अवप्रय को समान समझता है, अपनी ननन्दा और प्रशंसा में समान रहता है, मान और अपमान में समान रहता है, स्जसके सलए समत्रदल और शत्रदजल एक समान हैं, और स्जसने कायों के आरंभ की सममत प्रिृत्त को त्याग ददया है, िह गणातीत कहा जाता है।

[तीनों गुणों से अनासकत श्रेष्ठता की जस्थनत में] आममा ननमन प्रकृनत से आन्तररक रूप से पृथक् तथा स्वतन्त्र िोती िै, इसकी कुण्भिलयों में फंसी िुई निींिोती, इसके ऊपर उदासीन और प्रसन्न भाव में जस्थत रिती िै। प्रकृनत अपनेपुराने अभ्यासों के त्रत्रववध चि में काय िकरती रिती िै, - कामना, िष िऔर शोक हृदय को आिांत करते िैं, सभी साधन-उपकरण अकमण्यिता, ज़िता एवं णखन्नता के गत िमें जा धगरतेिं, प्रकाश और शाजन्त हृदय, मन तथा शरीर में कफर लौट आते िैं; ककन्तु आममा इन पररवतनिों से अपररवनतति और अप्रभाववत बनी रिती िै। ननमन अंगों की वेदना तथा कामना का ननरीक्षण करती िुई पर उनसे अचलायमान, उनके िषों और प्रयासों पर मुस्कराती िुई, ववचार की भ्राजन्तयों तथा धूभमलताओं को और हृदय तथा स्नायुओंकी उच्छृंखलता एवं दुबुलिताओं को समझती िुई पर उनसे पराभूत न िोती िुई, प्रकाश एवं प्रसन्नता के लौटने ेपर मन के अन्दर उमपन्न ज्ञान-आलोक तथा सुख-आराम से और उसके ववश्राम एवं ंबल-सामथ्य िके अनुभव से मोहित तथा इसमें आसकत न िोती िुई आममा अपनेको इनमें से ककसी भी चीज में झोंकती निीं,ं ककन्तु अववचभलत रिकर उच्चतर इच्छाशजकत के ननदेशों तथा ज्ञिमिर एवं ंप्रकाशपूण िज्ञान की स्फुरणाओं की प्रतीक्षा करती िै।

यि राह्मी जस्थनत की ननव्यजिकतकता िै... परन्तु कफर भी यि ाँस्पष्ट रूप से एक द्वैत जस्थनत िै, सिा दो ववपरीत भागों में अक्षर और क्षर में खंडित िै, अक्षर पुरुष या रह्म में मुकत िुई आममा अमुकत क्षर प्रकृनत की किया का ननरीक्षण करती िै। कया कोई इससे मिान् ्जस्थनत निीं, पूणतिर पूणतिा का कोई तत्त्व निीं ंिै, अथवा कया यि ववभाजन िी दिे में प्राप्य उच्चतम चेतना िै, और कया इस क्षर प्रकृनत का तथा प्रकृनत के अन्दर दिे-धारण से उमपन्न गुणों का मयाग और रह्म की ननव्यजिकतकता तथा ननमय शांनत में लय िी योग का लक्ष्य िै? कया व्यजष्ट-पुरुष का यि लय िी परम मोक्ष िै? ऐसा प्रतीत िोता िै कक कोई और वस्तु भी िै; कयोंकक बार-बार अपनेननणायिक स्वर पर लौटते िुए, गीता इसे उपसंिार के रूप में किती िै...

मांच योऽव्यसभचारेण भस्क्तयोगेन सेिते ।
स गणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ।। २६।।

२६. और जो अविचल (अव्यसभचारी) भस्क्तयोग के साथ मझजसे प्रेेम करता है और मेरी उपासना करता है, िह इन गणजों से परे पहजूँच जाता है और बहा होनेके सलये तैयार हो जाता है।

ब्रह्मणो दह प्रनतष्ठाहममृतमयाव्ययमय च ।
शाश्ितमय च िमुमुय सखयैकास्न्तकमय च ॥ २७॥

२७. म ैंही ब्रह्म का, अमृतत् और अविनाशी सत्ता का तथा सनातन िमु ुका और परम-आनंदरूप सखज का आिार हूँ।

अद्वैतवाहदयों का यि किना िै कक इस पाधथवि अभभव्यजकत में कोई भी तीनों गुणों से ऊपर निीं उठ सकता। शंकराचाय िआहद का किना िै कक जब स्वयं परमाममा भी अवतार ग्रिण कर के इस धरती पर आते िैं तब

उन पर भी तीनों गुण लागू िूोते िैं और उनकी किया त्रत्रगुणमयी िोती िै। इसभलए संसार में कम िकरना मूखतिा िै। श्रीअरववन्द गीता के वववेचन में किते िैं कक गीता सूक्ष्म रूप से इसका प्रनतपादन करती िै कक इस दिे में रिते्िुए भी तीनों गुणों से ऊपर उठा जा सकता िै और उस जस्थनत में कम िककया जा सकता िै। िमारे ऋवष-मुनन किते िैं कक भगवान् ्तीनों गुणों से ऊपर रिते्िैं। परंतु जब िम उनकी लीला-कथाएँ पढ़ते िैं तब उनमें तो िमें भगवान् ्की कियाएँ भी गुणों से प्रभाववत प्रतीत िोती िैं। इसी को देखकर अद्वैतवादी किते िैं कक तीनों गुणों से ऊपर तो व्यजकत केवल अक्षर रह्म में जानेपर िी िो सकता िै अन्यथा निीं। परंतु अद्वैतवादी जजस अक्षर रह्म की बात करते िैं उस जस्थनत में तो केवल िमारा पुरुष पक्ष िी अवजस्थत िो सकता िै, बाह्य प्रकृनत निीं। पुरुष के अक्षर की शांनत में जस्थत िोने ेपर भी प्रकृनत में तो सुख-दु्ख, शीत-उष्ण आहद द्वंद्व तथा अन्य त्रत्रगुणमय ववकार तो चलते िी रिेंगे। अतः पुरुष तो त्रत्रगुणों से परे चला जाता िै परंतु प्रकृनत त्रत्रगुणमय प्रपंच में फंसी रिती िै। इसीभलए कम िकरते िी तो व्यजकत त्रत्रगुणों में फाँस जाता िै। श्रीअरववन्द का किना िै कक गीता के अनुसार प्रकृनत के अंदर भी तीनों गुणों से ऊपर उठा जा सकता िै। यिी ववशेषे बात िै। परंतुत्रबना इसका अनुभव िुए यि बात समझ में निींआ सकती।

वास्तव में चेतना का एक ऐसा स्तर िै जिाँव्यजकत को प्रमयेक चीज में आनंद आने लगता िै। जजसे बािरी रूप से सुख किते िैं वि भी उसके भलए उतना िी आनंददायी िोता िै जजतना कक वि जजसे दु्ख किते िैं। उदािरण के भलए यहद िमारे ककसी वप्रय व्यजकत के भलए िमें कष्ट उठाना पड़े ेतो िमें उसमें कष्ट का अनुभव न िोकर गिरे सुख का अनुभव िोता िै कक िम उस वप्रय व्यजकत के कुछ काम आ सके। विींजजसे इस प्ेरम भाव का अनुभव न िो उसे तो सारी किया कष्टमय प्रतीत िोगी। अतः केवल चेतना के पररवतनि से िी िम देख सकतिैं कक समान िी जस्थनत में एक व्यजकत को परम् ्आनंद की अनुभूनत िो सकती िै और दूसूरे को उसमें कष्ट का अनुभव िोसकता िै। इसी प्रकार एक ऐसी चेतना िै जजसमें जस्थत िोने पर व्यजकत पर त्रत्रगुण बाध्यकारी निीं ंरिते, िालाकँक बािरी रूप से दूसूरों को उसकी कियाएँ त्रत्रगुणमय प्रतीत िो सकती िैं। उदािरण के भलए, यहद कोई व्यजकत ककसी नाटक में कोई भाग अदा कर रिा िै जजसमें उसे दु्ख-कट, यंत्रणा, ववयोग आहद की भूभमका ननभानी िोती िै तो भले वि अपनी भूभमका को इतनी भली-भानाँत ननभाता िै कक दशककिगण भी स्तब्ध और रोमांधचत िो जाते िैं परंतु उस पात्र को तो पता िोता िै कक वि केवल नाटक कर रिा िै और ऐसे में वि बािरी रूप से जो भी भाव कयों न अभभव्यकत कर रिा िो परंतु भीतर से उस सब से अप्रभाववत बना रिता िै। इसभलए भगवान् ् के प्रनत भजकत आने ेपर जब व्यजकत के अंदर ज्ञान आता िै तब उसे इस दृश्य जगत् ्का रिस्य पता चल जाता िै। तब वि चेतना के एक ऐसे स्तर पर ननवास करने ेलगता िै जिाँवि बािरी चीजों में आसकत निीं रिता और इसी कारण सच्चे रूप से वि गुणों से अप्रभाववत रिते्िुए भी अपनी किया भली-भानाँत कर सकता िै। यिी पुरुषोिम भाव का रिस्य िै। वि उतने िी सफल रूप से क्षर भाव अपनाकर अपनी किया कर सकता िै जजतना कक अक्षर भाव अपनाकर और कफर भी वि इन दोनों िी भावों से परे रिता िै और इसीभलए वि त्रबना गुणों में बाँधे मुकत रूप से अपनी किया कर सकता िै। अब यहद व्यजकत को यि पता िो कक नाटक के अंदर उसे खलनायक की भूभमका ननभानी िै और उसमें उसे नायक के िाथों िार, अपमान आहद सिना िै तो ऐसा करने में भी वि अपनी भूभमका अच्छे से अच्छे ढंग से ननभाने का प्रयास करेगा और इसमें भीतर से उसके ककसी प्रकार की कोई प्रनतकिया निीं ं

ीिती, उल्टे, जजतनीी अच्छे ढंग से वि अपनी भूभमका ननभाता िै उतना िी वि आमम-संतुष्ट िोता िै भले िी नाटकीय प्रतीनत जो भी िो। अतः जब व्यजकत एक ऐसी चेतना में जस्थत िोता िै जिााँउसे भगवान ्की अभभव्यजकत का, उनकी लीला का, उनकी अधधकाधधक गिराइयों के उन्मीलन का रिस्य, ववधान तथा औधचमय कुछ-कुछ समझ में आनेलगता िै तब भले बिार से प्रतीनत कुछ भी कयों न िो, परंतुवस्तुतः वि तो सभी द्वंद्वों को समान िी भाव से लेता िै कयोंकक तब उसे ककसी भी चीज के प्रनत ककसी प्रकार की कोई आसजकत निीं ंरिती, उल्टे चीजों के रिस्य को जानकर वि िर चीज में आनंद लेनेलगता िै। अब यहद अपनेप्रेमास्पद के भलए कोई भमठाई तैयार कर रिा िो और उस प्रकिया में बिुत श्रम लगता िो, तेज गमी सिन करनी पड़ती िो, तो भी वि प्रेमभाव सारी किया के श्रम को िर लेता िै और उसे आनंद में पररणत कर देता िै। अतः जब सारे संसार में व्यजकत अपनेहदव्य प्रेमास्पद को देखता िै तो उनके भलए काय िकरने ेमें उसके भलए किीं ंगुणों की कोई अजस्तमव िी निीं रि जाता। उसे तो िर चीज में िी आनंद आनेलगता िै कयोंकक उसकी सभी कियाएँ अपनेप्रेमास्पद के ननभमि प्रेम की अभभव्यजकत बन जाती िैं। अतः भगवान ्के साथ प्रेम िी वि आधार िै जो सभी गुणों से परे ले जाता िै और सभी कुछ को आनंद में पररणत कर देता िै। प्रेम ज्ञान की पराकाष्ठा िै कयोंकक जब अपनेप्रेमास्पद के स्वरूप का ज्ञान िोता िै तब प्रेम स्वतः िी आ जाता िै और ज्यों िी प्रेम िोता िै मयों िी व्यजकत अपनेप्रेमास्पद की और अधधक गिराइयों में पैठता जाता िै। और जब व्यजकत अधधकाधधक उन गिराईयों में रमण करता िै और जीवन में उन्िीिंको अभभव्यकत करता िै तब इसमें गुणों की कोई बाध्यता निीं ंरिती। उस चेतना में गुणों का तो कोई अजस्तमव िी निींरिता। यि जस्थनत मनुष्य शरीर में भी संभव िै। और यि जस्थनत समता या उदासीनता की जस्थनत निीं िै जजसमें कक व्यजकत ककसी भी चीज में भलप्स निीं ंिोता अवपतु ुयि तो आनंद की जस्थनत िै जजसमें व्यजकत अपने प्रेमास्पद के भलए त्रबना ककसी प्रकार की प्रनतकिया या संकोच के घोर से घोर कम िकरने ेमें भी संकोच निींकरता िै कयोंकक उसकी चेतना के भलए उसे वि कम िघोर प्रतीत निीं ंिोता अवपतु ुउसे तो उसमें भी आनंद की अनुभूनत िोती िै। परंतु बािरी रूप से दूसूरा कोई भी यि निीं जान सकता कक उस व्यजकत की किया त्रत्रगुणों के प्रभाव से ऊपर िै कयोंकक बािरी रूप से तो वे कम ित्रत्रगुणमय प्रतीत िो सकते िैं।

अतः करने का काय ियि िै कक ककसी भी प्रकार िमारा मन भगवान ्के ककसी रूप में लग जाए, साथ िी, यहद ककसी को सशरीर ववद्यमान गुरु की सेवा करने का परम ्सौभाग्य प्राप्त िो तो इससे श्रेष्ठ तो कोई बात िो िी निीं सकती। परंतु इसमें यि समझना िोगा कक जब व्यजकत के अंदर भगवान ्के प्रनत भजकत आती िै और वि पुरुषोत्तम भाव की ओर अग्रसर िो रिा िोता िै तब संभवतः कुछ चीजों में तो वि आनंद ले पाता िै परंतुउसकी सिा में कुछ ऐसे भाग भी िैं जो उस आनंद में अभी सिभागी निीं िो पातेऔर अपने िी ननमनतर ितुओंकी पूनत ि में संलग्न रिते िैं। अतः ज्यों-ज्यों व्यजकत अधधकाधधक इस माग िपर आगे बढ़ता िै मयों-मयों अन्य भाग भी भगवान ्में आनंद लेने लगते िैं। िालााँक ज़िभौनतक और ननश्चेतन स्तरों की गुमथी तो त्रबना अनतमानभसक रूपांतर के सुलझाई निींजा सकती, परंतु कफर भी गुणों से परे की किया तो भौनतक रूपांतर से पिले भी संभव िै। कयोंकक गीता भौनतक रूपांतर तक निीं जाती। इसभलए यहद गीता इस त्रत्रगुणों से परे की जस्थनत का वणनि करती ै तो इसका अथ ििै कक भौनतक रूपांतर िोने से पूव िभी त्रत्रगुणातीत अवस्था संभव िै। भगवान ्की भजकत के द्वारा यि जस्थनत संभव िै। इस अध्याय के अंनतम दो श्लोकों में भगवान ्पिले किते िैं कक "जो अववचल (अव्यभभचारी)

भजकतयोग के साथ मुझसे पे्रेम करता ि◌ै और मेरी उपासना करता ि◌ै, वि इन गुणों से परे पिुँच जाता ि◌ै और रह्म ििने ◌ेके भलये तैयार ि◌ो जाता ि◌ै।" परंतु रह्म का आधार भी तो स्वयं भगवान् ◌्ि◌ी ि◌ैं। इसीभलए अगले ि◌ी श्लोक में भगवान् ◌्कितिैं "म ◌ैंि◌ी रह्म का, अमृतृमव और अववनाशी सिा का तथा सनातन धम ि◌का और परम-आनंदरूप सुख का आधार ि◌ूँ।"

इस प्रकार चौदहिूँ अध्याय 'गणजयविभागयोग' समाप्त होता है।

पन्रिवााँ अध्याय

तीनपुरुष

गीता की भशक्षा, शुरू से अंत तक, अपनी सभी धाराओंमें तथा अपने समस्त नमनीय मिोंों के द्वारा एक ीि कैंरीय ववचार की ओर मिुती ि◌ै, और उस ववचार तक यि ववभभन्न दाशनिनक पद्धनतयों के मतभेदों का ि◌र तरि

से अपना संतुलन और सामंजस्य साधधत करती िुई तथा आध्याजममक अनुभूनत के समयों का अपना सावधानीपूवकि समन्वय साधधत करती िुई अग्रसर िोती िै। उन समयों अथवा प्रकाशों को यहद पृथक् पृथक् भलया जाए तथा उनके आलोक की बाह्य रजश्मयों एवं ंकलाओंका एकांगी रूप से अनुसरण ककया जाए तो वे प्रायः परस्पर ववरोधी या, कम-से-कम, भभन्न हदखाई देते िैं, परंतु यिा ाँउन सबको एकत्र कर समन्वयकारी दृजष्ट के एक िी कैंर में गूाँथ हदया गया िै। यि कैंरीय ववचार त्रत्रववध चेतना का ववचार िै जो तीन िोती िुई भी एक िै तथा सिा की संपूण िश्रृंखला में ववद्यमान िै।

जो पुरुष प्रकृनत की किया को, उसके पररवतनिों को, उसके िमागत भूतभावों को सीधा अनुप्राणणत करता िै वि **क्षर परुजष** िै, जो प्रकृनत के पररवतनिों के साथ पररवनतति िोता, प्रकृनत की गनत के साथ चलता प्रतीत िोता िै, वि **व्यस्ष्ट परुजष** िै जो प्रकृनत के सतत् ्कमि–प्रवाि से अपनेव्यजकतमव में िोनेवाले पररवतनिों के साथ तदाकार िुआ चलता िै।.... प्रकृनत में व्यकत और उसके कम िमें बद्ध पुरुष के परे पुरुष की एक और जस्थनत भी िै, जो केवल एक जस्थनतशील अवस्था िै, वािाँकम ित्रबल्कुल निीं ंिै; वि पुरुष की नीरव-ननश्चल, सवगित, स्वतःजस्थत, अचल, **अक्षर** आममसिा िै, भूतभाव निीं।. .... मनुष्य का आममा (पुरुष) जब क्षरभाव अपनाता िै तब अपने-आप को व्यजकतमव के खेल के साथ तदामम कर लेता िै और प्रकृनतगत अिंभाव से अपनेआमम-ज्ञान को इच्छापूवकि आच्छाहदत कर लेता िै और इस तरि अपने-आप को कमों का कतिा समझने ेलगता िै; और जब यि आममा (पुरुष) अक्षर भाव में आता िै तब अपने-आप को नैयजकतक भाव के साथ एक कर लेता िै और उसे यि बोध िोता िैकिक कती प्रकृनत िै, वि स्वयं तो ननजष्िय साक्षी पुरुष िै, अकतारिम्।् मनुष्य के मन को दो भावों में से ककसी एक भाव की ओर झुकना पिता िै, मन इन दो भावों को दो भभन्न ववकल्पों के रूप में लेता िै; या तो वि गुण और व्यजकतमव के क्षरभावमय कम िमें जाकर प्रकृनत के द्वारा बाँध जाता िै, या कफर अक्षर नैव्यजकतमव में जाकर प्रकृनत की कियाओं से मुकत िो जाता िै।

परन्तु यथाथ िमें पुरुष की ननज-जस्थनत और अक्षरभाव तथा प्रकृनत में कम िऔर क्षरमव, दोनों एक साथ िी रिते िैं। यि एक ऐसी असमाधेय ववसंगत कम िऔर भजसके समाधान के भलए या तो मायावाद जैसे ककसी वाद का आश्रय लेना पिता या आममा को दोिरी और ववभकत सिा वाला मानना पिेगा यहद आममा की सिा का ऐसा परम भाव न िोता जजसके ये दोनों ववपरीत पिलू िैं, और जो स्वयं इनमें से ककसी से सीभमत निीं िै। िमने देखा िै कक गीता इस परम भाव को पुरुषोिम के भाव में पाती िै।

मायावादी लोग पुरुषोिम भाव को स्वीकार निीं करते इस कारण केवल क्षर और अक्षर दो भेद रि जाते िैं। अब चूंकक क्षर और अक्षर दोनों एक दूसूरे से ववपरीत भाव िैं इसभलए मायावादी जगत् ्को भमथ्या बताकर अक्षर रह्म का चयन करते िैं और उसी में जस्थत िोने पर बल देते िैं। मायावाद के अनुसार यहद व्यजकत कम िमें भलप्त िै तो वि अज्ञानी िै। इसभलये उसे चाहिये कक वि कम िका मयाग कर अक्षर पुरुष से तदाकार िो जाये। परंतु यहद गीता भी इसी का प्रनतपादन करती तब तो अजुनि को युद्ध का आदेश देना एक सवथिा ववसंगत बात िोती जबकक अजुनि तो स्वयं िी युद्ध से ववरत िोने ेके भलए तमपर था। इसभलए उनके अनुसार श्रीकृष्ण को भी

आध्याजममक व्यजकत के स्थान पर कमविादी और भोगवादी व्यजकत िी मानना चाहिये जो कक अजुनि को युद्ध करने ेऔर उसमें ववजय के पश्चात् ्राज्य के भोग के भलये प्रेेररत कर रिे िैं।

यहद जीव का, जैसा कक मायावाद का मत िै, ककसी भी प्रकार अक्षर रह्म में जस्थत िोकर समस्त कमों का मयाग कर देना और इस जगत् ्प्रपंच से अपनेको ववलग कर लेना िी एकमात्र उद्देश्य िोता तब तो इसका कोई कारण समझ निीं ंआता कक परमाममा की ऐसी कया बाध्यता िोगी कक वे ेऐसे संसार का सृजृन करें जजसमें से छूट ननकलना िी एकमात्र उद्देश्य िो। ये सारे प्रश्न मानभसक स्तर पर निीं सुलझाये जा सकते। एक समय जब स्वयं श्रीअरववन्द इसी प्रश्न पर धचंतंनरत थे तब स्वामी वववेकानंद ने उन्िेंअंतदिशनि में किा कक मन के स्तर पर देखने पर िी िमें जगत् ्के ववषय में वैसा ननरुद्देश्य दृजष्टकोण प्राप्त िोता िै। सच्चा दृजष्टकोण प्राप्त करने ेके भलए सचेतन रूप से मन से उच्चतर स्तरों पर आरोिण करना िोगा तभी इस सारी अभभव्यजकत का सच्चा उद्देश्य समझ में आता िै।

इसे समझने के भलए िम इस संसार को एक नाटक के समान मान सकते िैं जजसको परमाममा ने अपनी प्रसन्नता के भलये रचा िै। इसमें भूभमका ननभानेवाले अलग-अलग प्रकार के लोग िो सकतेिैं। पिला कोई ऐसा व्यजकत िो सकता िै जो कक अपनी भूभमका से िी तदाकार िो जाये और यि भूल जाये कक वि तो नाटक का िी हिस्सा िै और अपनी भूभमका से सुखी अथवा दु:खी िोता रिे। यि क्षर भाव िै। दूसूरा व्यजकत ऐसा िै जो कक अपनी भूभमका से परेशान िोकर नाटक से अलग िोकर िी बैठ जाये। यि अक्षर भाव िै। तीसरा एक व्यजकत ऐसा िै जो कक नाटक के रचनयता से तदाकार िै और नाटक का उद्देश्य भली-भानाँत जानता िै और अपनी भूभमका को सवशेष्ठ्रि तरीके से ननभाता िै और नाटक की सफलता के भलये स्वयं को समवपति कर देता िै। यि पुरुषोत्तम भाव िै। और वास्तव में तो ककसी कलाकार का नाटक से अलग िोकर बैठ जाना भी नाटक का िी भाग िै। यि भी एक दृजष्टकोण अपनाया जा सकता िै।

पुरुषोत्तम संबंधी ववचार को शुरू से िी तैयार ककया गया िै, इसका उल्लेख ककया गया िै, इसका पूवाभिास हदया जा चुका िै, इसे अपनाया गया िै, परंतु केवल अब जाकर पन्द्रिवें अध्याय में िी इसे स्पष्ट रूप से प्रकट ककया गया िै और अब िी इसे एक नाम देकर पुरुषत्रय के भेद पर प्रकाश डाला गया िै। और यि देखना बोधप्रद िोगा कक कैसे तुरंत िी इस ववषय में प्रवेश करके इसका ववकास ककया जाता िै। िमें बताया जा चुका िै कक हदव्य प्रकृनत में आरोिण करने के भलए सवप्रिथम िमें अपने-आप को पूण िआध्याजममक समता में प्रनतजष्ठत करना िोगा तथा त्रत्रगुणाजममका ननमनतर प्रकृनत से ऊपर उठना िोगा। इस प्रकार ननमनतर प्रकृनत को पार कर िम अपने-आप को सुप्रनतजष्ठत कर लेते िैं ननव्यजिकतकता में, समस्त कम िसे अववचल श्रेष्ठ जस्थनत में, त्रत्रगुण जननत समस्त पररसीमन और पररबंधन से ववशुद्ध जस्थनत में, और यि जस्थनत पुरुषोत्तम की व्यकत प्रकृनत का एक पक्ष िै, आममा की शाश्वतता तथा एकता, अक्षर, के रूप में उनकी अभभव्यजकत िै। परन्तु जीव की अभभव्यजकत के आहद रिस्य के पीछे पुरुषोत्तम का एक अननवचिनीय शाश्वत अनेकमव, एक परमोच्च समयतम समय भी िै। अनंत भगवान् ्की एक सनातन शजकत िै, उनकी हदव्य प्रकृनत की एक अनाहद और अनन्त किया िै और उस किया में

ननव्यजिकतक हदखनेवाली शजकतयों की िििा म ैंसे जीव-रूपी आश्रय िप्रकट िोता िै, प्रकृनतजीवभूता। इस आश्रय ि के संभव िोने ेका कारण यि िै कक व्यजकतमव भी भगवान् ्का िी एक रूप िै और वि अनंत में अपना सवोच्च आध्याजममक समय एवं ंसाथककिता प्राप्त करता िै। परन्तु अनंत के भीतर जस्थत 'पुरुष' ननमनतर प्रकृनत का अिपरक, भेदमूलक, ववस्मृनतपूण िव्यजकतमव निीं ंिै; वि तो एक उदिा, ववश्वमय और ववश्वातीत, अमर और हदव्य सिा िै। उन परम् ्पुरुष का यि रिस्य िी प्रेम और भजकत का गुप्त मम िििै। िमारा अंतरस्थ आध्याजममक पुरुष, ननमय जीवाममा अपने-आप को तथा उसके पास जो कुछ भी िै और वि स्वयं जो कुछ िै उस सबको उन शाश्वत भगवान्,् परम् ्पुरुष एवं ंपरमेश्वर के प्रनत अवपति कर देता िै जजनका कक वि एक अंश िै। इस आममदान में िी, अपने व्यजकतमव तथा इसके कमौ के अननवचिनीय प्रभु ुके प्रनत प्रेम और भजकत के द्वारा अपनी वैयजकतक प्रकृनत को इस प्रकार ऊपर उठा ले जानेमें िी ज्ञान अपनी पूणतिा लाभ करता िै: कमों का यज्ञ इसके द्वारा अपनी भसद्धध और पूण िस्वीकृनत या प्रामाणणकता प्राप्त करता िै। अतः, इन चीजों के द्वारा िी मनुष्य की आममा इस अन्य शजकतशाली कियाशील रिस्य में, हदव्य प्रकृनत के इस अन्य मिान् ्एवं अंतरीय अंग में अपनी पूणतिम चररताथतिा प्राप्त करती िै और उस पूणतिा के द्वारा अमृतमव, परम सुख एवं शाश्वत धम िका आधार उपलब्ध करती िै। और, इस प्रकार गीता ने पिले तो एकमेव आममा में समता तथा एकमेव परमेश्वर को आराधना इन दो आवश्यक साधनों का पृथक् पृथक् प्रनतपादन ककया िै मानो ये राह्मी जस्थनत को प्राप्त करनेके, 'रह्मभूयाय', दो भभन्न-भभन्न साधन िों, - एक तो ननवृविमागी संन्यास का माग िििो और दूसरा हदव्य प्रेम एवं ंहदव्य कम िका। परन्तु इसका प्रनतपादन करनेके बाद अब गीता वैयजकतक और ननव्यजिकतक को पुरुषोिम में एकीभूत करने ेतथा उनके संबंधों का ननरूपण करनेकी ओर अग्रसर िोती िै। कयोंकक गीता का लक्ष्य एकांगी भावों तथा भेदकारी अनतरंजनाओं से मुकत िोनी तथा ज्ञान एवं आध्याजममक अनुभव के इन दो पक्षों को घुला-भमला कर परम भसद्धध के एक िी पूण िपथ में पररणत कर देना िै।

यिा ँसबसे पिले गीता अश्वमथ वकृष के वेदांनतक रूपक की भाषा में जगत ्का वणनि करती िै।

श्रीभगिान् ्उिाच

ऊध्मुलूमिः शाखमश्वत्थं ंप्राहजरव्ययम् ्।
छन्दांसस यमय पणुानन यमतंवेद स िेदवित् ्।। १।।

१. श्रीभगिान् ्ने कहाः स्जसकी ज़ड़ें ऊपर की ओर, स्जसकी शाखाएूँ नीचे की ओर हैं, ऐसे अश्वत्थ (पीपल के पेड़) को अनश्वर कहा जाता है, स्जसके पत्ते (**िेदों के) मंत्र हैं, और जो इसे जानता है िह िेद का ज्ञाता' है।**

अिश्िोध्िप्रसृतामतमय शाखा गणजप्रिृद्िा विषयप्रिालाः ।
अिश्ि मूलान्यनसंजततानन कमानुबजन्िनन मनष्जयलोके ॥ २॥

२. गणजों द्रािा पोवषत इस िृक्ष की शाखाएँ नीचेऔर ऊपर दोनों ओर िैली हजई हैं; इस्न्द्रयों के विषय उसके पत्ते हैं; और नीचे की ओर मानिलोक में इसकी जड़ें िैली हजई हैं जो मनष्जयों को कमु ुसे बांधती हैं।

न रूपममयेह तथोपलभ्यते नान्तो न चाददनु ुच संप्रनतष्ठा ।
अश्त्थिमेनं सवजिरूढमूलमसङ्गशमत्रेणे दृढेन नछत्त्िा ।। ३।।
ततः पदं तत्पररमाधुगतुव्यं यस्ममन्गता न ननितुसुन्त भूयः । त
मि चाद्यंपरुजषं ंप्रपद्ये यतः प्रिवृत्तः प्रसृता परजाणी ।। ४।।

३-४. जैसा िणुनु ककया गया है हमें यहाँ इसका िामतविक रूप िैसा ददखायी नहीं देता, न इसका अन्त और न आदद और न आिार ही ददखायी देता है। इस दृढ़मूल अश्त्थि को अनासस्क्त की बलशाली तलिार से काटकर व्यस्क्त को उस पद (परम लक्ष्य) का - स्जस पर पहजूँचने ेपर किर पनजः लौटना नहींहोता - अन्िेषण यह कह कर करना चादहये कक "म ैंएकमात्र उन आदद पजरुष की शरण ग्रहण करता हूँ स्जनसे कमु ुकी ओर शाश्ित प्रिवृत्त उत्पन्न होती है।"

अश्वमथ वृक्ष का जो रूपक हदया गया िै उसे िम इस दृजष्टकोण से समझ सकतिैं कक यि भगवान् ्की अभभव्यजकत का रूपक िै। यि अभभव्यजकत अनाहद और अनंत िै और इसका कोई ओर-छोर निीं िै। यि तो शाश्वत िै। इसके स्रोत के ववषय में भी िम निीं ंजानते। इस अभभव्यजकत में ननमन वृवृिया ांभी िैं जजनकी गनत नीचेकी ओर िोती िै और ऊध्वमुखो वृवृिया ांभी िैं। और यि अभभव्यजकत केवल अनतचेतन स्तरों तक िी सीभमत निीं ंिै अवपतुयि अवचेतन और ननश्चेतन स्तरों तक भी फैली िुई िै। पेड़ के ऊपर से जो जड़ें ेचलती िैं उन्िें िम अपनी प्राणणक वृवृयों के रूप में मान सकते िैं जो कक िमें ज़ितत्त्व से बाधाँ देती िैं। परंतु यि सारी अभभव्यजकत मिं त्रत्रगुणमयी प्रतीत िोती िै। िमारे वेद संपूण िअभभव्यजकत की पूरी संरचना का वणनि करते िैं। िमारी इंहरयाँ मिं इस पूरी संरचना के ववषय में बोध कराती िैं और ज्यों-ज्यों चेतना का ववकास िोता जाता िै मयों-मयों वे िी इंहरया ाँिमें अभभव्यजकत के अधधक गिरे रिस्यों को गोचर करवानेलगती िैं।

---

*.वेद या कम-से-कम वेदवाद के संबंधं में जो ककंधचत् ्अपमानजनक ववचार िम पिले देख आये िैं उसका आशय िमें यिा ाँ समझ में आ जाता िै। कयोकक जो ज्ञान वेद िमें प्रदान करता िै वि देवताओं, सृजष्ट के मूल तत्त्वों एवं शजकतयों का ज्ञान िै, और इसके फल कामनापूवकि ककये जानेवाले यज्ञ के फल िैं, तीन लोकों की, भूलोक, द्युलोक तथा अंतररक्षलोक की प्रकृनत में उपभोग एवं प्रभुमवरूपी फल िैं।... वेद के छंद, छंदांभस, पते िैं तथा सब इंहरयभोग्य ववषय, जो यथाववधध यज्ञ करने से सविोम रूप मेंप्राप्तिोतिैं ननरंतर प्रस्फुहटत िोनेवाले पल्लव िैं।

यिा ाँतक कक अनतमानभसक स्तर की अपनी इंहरयाँ िोती िैं जो समय का त्रबल्कुल प्रमयक्ष दशनि कराती िैं। तो यि सारा रूपक इस पूरी अभभव्यजकत का िै। भारतीय परंपरा में सदा िी ऐसा प्रचभलत रिा िै कक व्यजकत जब तक इस अभभव्यजकत से अभभभूत रिता िै, इसमें आसकत रिता िै तब तक वि शाश्वत की ओर निीं ंजा सकता। इसभलए इससे ननकलने का रास्ता वेदों ने यज्ञ के आचरण के रूप में प्रस्तुत ककया जजसमें व्यजकत अपनी जजस ककसी

वतमिान जस्थनत से आरंभ कर अपने सच्चे स्वरूप की ओर आरिोण कर सकता था। साथ िी कालांतर में मायावादी दृजष्टकोण आने के बाद इस प्रपंच से छूट ननकलनेका माग िभी प्रचभलत रिा िै। इस दृजष्टकोण में तो वेदों को भी त्रत्रगुणमय िी बताया गया िै। इसी प्रचभलत भाव को दूसूरे अध्याय के पतैंालीसवें श्लोक में गीता प्रनतध्वननत करते िुए किती िै 'त्रैगुैण्यववषया वेदा, ननस्त्रैगुण्यो भवाजुनि'। इसी को आधार मानकर लोग किते िैं कक स्वयंगीता वेदों को त्रत्रगुणमय बताकर अवमाननत करती िै। परंतु गीता में िी भगवान् ्वेदों का प्रनतपादन भी करते िैं और ववभूनतयोग में किते िैं कक वेदों में वे सामवेद िैं और इस अध्याय के पंरिवें श्लोक में भगवान् ्किते िैं कक "म ैंिी समस्त वेदों के द्वारा जानने योग्य एकमेव िूाँ। म ैंिी वेदान्त का रचनयता और वेद का ज्ञाता िूाँ।" अतः

यि समझना चाहिये कक गीता वेदों का खण्िन निींकरती अवपतु ककसी समय ववशेषे पर उमपन्न िुई वेदवाद की रूहढ़वाहदता का खण्िन करती िै। यि खण्िन इसभलए आवश्यक था कयोंकक यज्ञ, तप आहद का तथा वेद मंत्रों का तामभसक, राजभसक और साजमवक िेतुओंऔर उपलजब्धयों की पूनत िभलए दुरुपयोग ककया जाने लगा था। और इसभलए ये सभी कियाएाँ केवल बंधन का कारण ववनती थीं, इसीभलए यिााँ तलवार से काटनेका उल्लेख आया िै। िालाकाँक गीता अपनी भशक्षा को इन बंधनों को काटनेतक िी सीभमत निींरखती अवपतु वि तो सभी धमों का पररमयाग कर अनन्य रूप से भगवान् ्के पास जानेको किती िै। जब एक बार व्यजकत इन बंधनों को काटकर भगवान् ्पर आधश्रत िो जाता िै तभी सच्चेकम िकर सकता िै। यिी बात इस श्लोक से झलकती िै कक 'म ैंएकमात्र

उन आहद पुरुष की शरण ग्रिण करता िूाँ जजनसे कम िकी ओर शाश्वत प्रवृवि उमपन्न िोती िै।' परंतुकमों की ओर प्रवृवि की बात कर के गीता ने अद्वैतवाहदयों के सारे समीकरण को िी त्रबगाि़ हदया। अब यहद व्यजकत एक िी श्लोक में कमबंधिन और कमप्रिवृवि की बात देखता िै तो उसे गीता में ववरोधाभास प्रतीत िोता िै जबकक वास्तव में ऐसा कोई ववरोधाभास निीं िै। सच्चे कमों का आरंभ तो तभी िो सकता िै जब उनका उमपे्रेरण शाश्वत स्रोत के द्वारा ककया जाता िै। और तब कम िबंधनस्वरूप निीं रि जाते अवपतुआमम-अभभव्यजकत के साधन बन जाते िैं।

विींयहद अिंमय रूप से ककये जाएाँ तब वे बंधन का कारण बन जाते िैं। यि एक सूक्ष्म भेद िै जजसे समझने पर ककसी प्रकार का कोई ववरोधाभास नहीं [illegible] को गीता पुरुषोत्तम तत्त्व के ननरूपण में [illegible] िी भाव में समजन्वत कर लेती िै जजसके कारण वे सभी चीजें अपना एकांगी स्वरूप छोि़कर व्यापक बन जाती िैं। त्रत्रगुणों का ववस्तार से वणनि करने के बाद उनसे ऊपर उठनेको भी भजकत तत्त्व के ननरूपण के द्वारा गीता ने कोई नीरस ववषय न छोि़कर एक आनंद का ववषय बना हदया िै। और वास्तव में तो ककसी भी प्रकार का अनतिमण सच्ची आंतररक पररपूनत िके त्रबना िो भी निींसकता कयोंकक पुरुषोत्तम का स्वरूप एकांगी और नीरस निींअवपतु सवसिमावेशी, सवाभिलंगंनकारी और आनंदमय िै। एकांगी तो अक्षर पुरुष िै। अतः संकेत रूप में गीता ने यिा ाँपुरुषोत्तम को कमों के स्रोत के रूप में बताया िै।

प्रश्न : यिााँ सारी अभभव्यजकत को अश्वमथ का रूपक हदया गया िै तो एक ओर तो इसे अनश्वर किा गया िै और दूसूरी ओर उसे तलवार लेकर काट िालने की बात किी गई िै, तो यि परस्पर ववपरीत बात कैसे?

उत्तर : जजतनेभी मायावादी िैं वे इस संसार को नश्वर बताते िैं और केवल रह्म को िी अनश्वर और समय बताते िैं। पर इसमें समझने ेकी बात िै कक संसार अपनेआप में नष्ट निीं ंिोता, जजन मन, प्राण, शरीर रूपी माध्यमों से िम उसे देखतिैं वे ेनश्वर िैं। अपनेआप में जो सृजृष्ट िै वि शाश्वत िै परंतु ुउसके अंदर अभभव्यकत िुए जो घटक िैं वे ेअभभव्यजकत में आते-जाते रितिैं जजससे िम जन्म-मृमृयुकिते िैं। इसभलए यि जागनतक अभभव्यजकत अपनेआप में अववनश्वर िै परंतुइसके पदाथ िनश्वर िैं जो अपनेसमय से आते िैं और अपना समय समाप्त िोने के बाद पुनः अभभव्यजकत से बिार चले जाते िैं। अतः इसमें यि सूक्ष्म भेद ननहित िै। यहद व्यापक रूप से देखें तो सारी गोचर अभभव्यजकत भगवान् ्के ववववध पिलुओं की िी तो अभभव्यजकत िै और वि समय-समय पर बदलती रिती िै। इसभलए इसे िम नश्वर कि सकतिैं और जो मूलतत्त्व जजससे सभी पिलू ूअभभव्यकत िोतिैं वि स्वयंअववनश्वर िै। अतः इसका यि अथ िनिींननकाल लेना चाहिये कक ककसी समय सृजृष्ट निींथी और ककसी समय ववशेषे पर वि आरंभ िुई। परंतु िमारे मन के भलए यि समझ पाना संभव निीं ंिै कक ककस प्रकार सृजृष्ट शाश्वत िै जजसका कक कोई आरंभ निींिै। जब परम प्रभु ुआमम-संवरण कर लेते िैं तब सृजृष्ट आहद सब उन्िीं िमें समाहित िो जाती िै। उस जस्थनत की तो कल्पना िी निीं ंकी जा सकती। परंतु तब भी सारी सृजृष्ट ननहित तो परम प्रभु में िी रिती िै। परंतु जब वे अपनी पराप्रकृनत के द्वारा अपनेपिलुओं को अभभव्यकत करते िैं तब उसे िम सृजृष्ट किते िैं। अतः इस अथ िमें सृजृष्ट तो सदा िी ववद्यमान रिती िै। यहद वि अभभव्यजकत में न भी िो तो भी परम प्रभु ुमें तो वि ननहित िोती िी िै िालाकाँक सामान्य तौर पर िम उसे सृजृष्ट निींकिेंगे कयोंकक वि गोचर अभभव्यजकत निीं िोती। और अंततः ये सब भी िमारे देखने के तरीके मात्र िी िैं, इससे अधधक और कुछ निीं। इस सब वववेचन की उपयोधगता केवल इतनी िै कक इससे िमारी बुद्धध में कुछ अधधक प्रकाश आ जाता िै। बाकी, अपने आप में समय तो इतना ववशाल िै कक ककसी भी मानभसक सूत्र में उसे बाधाँा िी निीं ंजा सकता।

ननमुानमोहा स्जतसङ्गदोषा अध्यात्मननत्या विननिृतृकामाः ।
दहन्दैविमुक्जताः सखुजखसंज्ञैगुचुछन्त्यमूढाः पदमव्य तत् ्॥ ५॥

५. असभमान और मोह से विमक्जत स्जन्होंने आसस्क्त रूप दोष को जीत सलया है, और स्जनकी सममत कामनाएँ शांत हो गयी हैं, जो सतत् ्रूप से आध्यास्त्मक चेतना में प्रनतस्ष्ठत हैं, जो सखज और दुुःख के द्वन्द्वों से ववमुकत िो गए िैं, ऐसे वे अववमूढ़ जन उस अववनाशी परम पद की ओर अग्रसर िोतिैं।

....जब तक मनुष्य गुणों की िीिा का भोग करता िै तथा कामनाओं में भलप्स िै तब तक वि प्रवृवि की कुण्भिलयों में, जन्म और कम िके प्रविा में फंसा िुआ िै, वि ननरंतर भूलोक, मध्य के लोकों तथा स्वग–लोकों के बीच चककर काटता रिता िै तथा अपनी परमोच्च आध्याजममक अनंतताओं की ओर लौटने ेमें समथ िनिीं िोता। ऐसा प्राचीन ऋवषयों द्वारा भली-भानाँत समझ भलया गया था। इसभलए, मोक्ष प्राप्त करने ेके भलए वे ेननवृवि या कम िकी मूल पे्रेरणा के ननरोध के माग िका अनुसरण करते थे और इस माग िकी पराकाष्ठा िै स्वयंजन्म का िी ननरोध तथा सनातन की सवोच्च ववश्वातीत भूभमका में परामपर पद की प्राजप्त। परन्तु इसके भलए यि आवश्यक िै कक कामना

की इन दीघ िकाल से जमी ज़िों को अनासजकत की प्रबल तलवार से काटना और कफर उस परम लक्ष्य की खोज करना जिााँ से, एक बार विााँपिुाँच जाने के बाद, पुनः ममय िजीवन में लौटनेकी कोई बाध्यता निीं ंरिती।

जब तक व्यजकत कामनाओं, आसजकतयों में भलप्त रिता िै तब तक वि संसार चि में फाँसा रिता िै। इसभलए ि्कामना का

[illegible] कमों का रिस्य न प्राप्त िो गया िो, जब तक पुरुषोिम का रिस्य प्राप्त न िो गया िो जो क्षर और अक्षर दोनों में िी समान रूप से अपनी किया करते िुए इन दोनों से िी परे बनेरिते िैं, तब तक तो स्वयं जन्म का िी ननरोध एक तकिसंगत और उधचत उपाय प्रतीत िोता िै। सच्चे कम ितभी संभव िैं जब उनका उमपेरेण कामना के द्वारा निीं अवपतु भागवत् ्संकल्प के द्वारा िो। गीता आरंभ िी इसी से करती िै कक 'तेरा कम िका अधधकार िै, कमफिल का निीं'। परंतु चूाँकक हदव्य कम िकरना अमयंत दुष्कर िै इसभलए सिज िी व्यजकत कमों के मयाग और यिा ाँतक कक जीवन के िी ननरोध की ओर प्रवृि िोता िै। िालाकाँक स्वयं गीता किती िै कक त्रबना कम िककये तो कोई रि िी निीं सकता। एक पमथर भी त्रबना कम िककये निींरि सकता। और कम िकेवल शरीररक िी निीं ंिोते, अवपतु ्प्राणणक और मानभसक भी िोतेिैं। इसभलए अकम िसंभव भी निीं ंिै और उसका कोई लाभ भी निीं ंिै। इसकी बजाय कमों को दूवूषत करने े वाली चीज कामना को िटाकर हदव्य संकल्प के अनुसार कम िकरना िी सच्चा उपाय िै। आरंभ में ये कामनारहित कम िीिमें अपने सच्चेभाव में आरोिण करने में सिायक िोतेिैं और उस जस्थनत में प्रनतजष्ठत िोने ेके बाद उसकी अभभव्यजकत के साधन बन जाते िैं। परंतु कमों को कामना से रहित करने के भलए भी इसके उपाय के रूप में गीता भगवान् ्की भजकत को बताती िै। भजकत के द्वारा व्यजकत को आनंद आनेलगता िै। उस आनंद के सिारे िी वि ननमन आनंद को छोि़ सकता िै। यहद िम यि अपेक्षा करें कक व्यजकत ककसी उच्चतर आनंद की अनुभूनत के त्रबना िी ननमनतर सुख को छोि़ दे तो यि संभव निीं ंिै। अतः जब व्यजकत के अंदर भगवान् ्की भजकत जागृत िो जाती िै और उसे भगवान् ्के समस्वरूप में आनंद आने लगता िै तब स्वतः िी कामनाओंपर धीरे-धीरे अंकुश लगने लगता िै और अधधकाधधक वि अपनेकम िभगवान् ्के ननभमि करने लगता िै कयोंकक ऐसा कर के उसे कामनापेरेररत कमों की अपेक्षा अधधक आनंद आने लगता िै।

िालाकाँक जो ननवृविमागी थे ेउनके भी ककसी एक भाग को तो कामना की पूनत िसे भमलने वाले सुख की अपेक्षा इस माग िपर अधधक संतोष भमलता था, परंतु इससे व्यजकत के हृदय को, उसके प्राणणक भागों को, उसके सुखभोगवादी भागों को, मानभसकता को अपनी अभभव्यजकत का कोई स्थान निींभमलता था और इससे उनकी कोई पररपूनत ि निीं ंिोती थी इसभलए वि एक बिा िी क्षुर और मयाहिदत आनंद िी िोता था। सारी सिा इस आनंद में भागीदार निीं ंिोती थी। इसी कारण ककसी आममा ववशेषे के भलए तो अपनेसभी भागों का ननषेध करना उधचत िो सकता िै परंतु सामान्य रूप से यि कोई उधचत माग िनिीं। साथ िी अन्य भागों का दमन करके जो जस्थनत प्राप्त की जाती िै वि बिी िो संहदग्ध रिती िै और उसे स्थायी बनाए रखनेके भलए भी बिुत अधधक पररश्रम करना पि़ता िै। जबकक भजकत के माग िमें सारे िी भाग अपनी पररपूनत िप्राप्त करते िैं और चूाँकक इसमें व्यजकत को अधधकाधधक आनंद प्राप्त िोता िै इसभलए उसे न तो ककसी प्रकार के श्रम का अनुभव िोता और न िी इस अवस्था को बनाए

रखनेमें ककसी प्रकार की तपस्या का अनुभव िोता िै। साथ िी अपनी अधधकतम पररपूनत िोने के कारण िमारे सभी भागों का अभभव्यजकत में आने का उद्देश्य भी सफल िो जाता िै। अन्यथा यहद उनका दमन कर हदया जाए तब तो उन भागों का अभभव्यजकत में आने का औधचमय िी निीं रिता।

प्रश्न : 'उन परम् पुरुष का यि रिस्य िी प्रेम और भजकत का गुप्त मम िै।' तो यि कौन-सा रिस्य िै जजसका यिााँउल्लेख िुआ िै?

उत्तर : इसके बारे में श्रीअरववन्द अठारिवें अध्याय में बिुत िी स्पष्ट रूप से ननरूपण करते िैं। उनका किना िै कक परम पुरुष िमारी वैयजकतकता और ननवैयैजकतकता की मानभसक पररभाषाओं से सवथिा परे िैं परंतु कफर भी वे कोई ऐसे अमूत िऔर अननदेश्य निीं िैं जजनसे कक कोई व्यजकतगत संपकि न साधा जा सके। उनका व्यजकतमव अवश्य िी ऐसा िै जजससे िम संपकि साध सकतिैं, परंतु वि कोई सीभमत व्यजकतमव निीं। इसभलए वैयजकतक और ननवैयैजकतक से सवथिा परे वे एक परम पुरुष िैं। अब यहद परमाममा केवल ननवैयैजकतक सिा िी िोतेतब तो भजकत की कोई संभावना िी निीं रिती कयोंकक ककसी अमूत िसिा की िम भजकत ककस प्रकार कर सकतिैं और न उससे कोई संपकि िी साधा जा सकता िै। साथ िी, मान लें कक परम पुरुष एक व्यजकतमव िैं, परंतु तो भी यहद वेजीव के साथ कोई संपकि साधनेमें रुधच न रखते िों तब तो जीव के पास ऐसा कोई साधन निीं िै जजसके सिारे वि उन तक पिुाँच सके। इसभलए एक भजकतमागी किता िै कक जजस प्रकार वि प्रभु को प्रेम करता िै और उनमें आनन्द अनुभव करता िै उसी प्रकार प्रभु भी अवश्य िी उससे प्रेम करते िैं और उसमें आनन्द लेते िैं और उससे भमलने के भलए लालानयत रिते िैं और इसी कारण भकत भगवान् से भमल पाता िै। यहद भगवान् जीव में आनन्द अनुभव निीं करते तब तो जीव अजस्तमव में िी निीं आ सकता था। और चूंकक वे िमारे अंदर आनन्द अनुभव करते िैं इसीभलए िमें उनके प्रनत आकषणि मिसूस िोता िै। इस आकषणि के कारण िी प्रेमी और प्रेमास्पद का भमलन िो पाता िै। इसी को उजागर करते िुए अपने ग्रंथ 'योग-समन्वय' में श्रीअरववन्द भलखतिैं कक, "प्रेम तथा आनंद सिा के चरम शब्द िैं, रिस्यों के रिस्य और गुह्यानतगुह्य िैं।"* अतः इस आनंद के भलए िी भगवान् ने इस सारे जगत् का ननमाण ककया िै। यहद परमाममा केवल शांत और शाश्वत और अववचल ननवैयैजकतक, अननदेश्य सिा िी िोतेतो िमारा उनसे ककसी भी प्रकार संबंध स्थावपत करना, उनसे संसग िकरना, उनके प्रनत अपनेभाव आहद व्यकत करना तो संभव िी निीं िोता कयोंकक ककसी अमूत िचीज के साथ कोई संबंध ककस प्रकार स्थावपत ककया जा सकता िै। श्रीअरववन्द के अनुसार तो शजकत या ऊजिाका ऐसा कोई रूप निीं िै जजसकी अपनी पृथक् सिा न िो। उनके अनुसार अचेतनता, अज्ञान आहद सभी की अपनी पृथक् पृथक् सिा िोती िै। श्रीमाताजी के अनुसार तूफान, अजग्न, वषािआहद सभी शजकतयों की अपनी-अपनी सिा िोती िै और इन सब का पृथक् व्यजकतमव िोता िै। और चूाँकक परम पुरुष केवल कोई अमूत िसिा िी निीं िैं अवपतु मूत िभी िैं और िमारे अंदर आनंद लेते िैं इसी कारण उनसे प्रेम करना, भजकत करना, उनके साथ व्यजकतगत संबंध स्थावपत करना सवथिा संभव िी निीं अवपतु एकमात्र करने योग्य काय िै। भगवान् का यि रूप, उनसे यि संसग िी वि सबसे शजकतशाली माध्यम िै जो जीव को भगवान् से एक कर देता िै। इसी कारण िम ककतने िी भसद्ध पुरुषों तथा भकतों आहद की कथाओं में उल्लेख पातिैं कक जजस ववग्रि या मूनत िकी वे सेवा करते थे वि उनके भलए एक मूनत ि

मात्र ि◌ी न रिकर भगवान् ◌्की एक जीवंत उपजस्थनत बन जाती थी। श्रीकृष्णपे्रेम सदा अपनेधचरसाथी और इष्ट के रूप में कृष्ण की एक मूनत ि◌अपनेसाथ रखते थे। उनके अनुसार भजकत भगवान् ◌्की अमूत ि◌या अकाल मूलसा के रूप के प्रनत उपासना निीं ◌ंि◌ै।

---

*CWSA24,p. 605

यि तो ईश्वर की जीवंत अभभव्यजकत के प्रनत मूत ि◌या ठोस पे्रम ि◌ै। उनके अनुसार कृष्ण का ववग्रि परम्–प्रभु ◌ुका मिज़ कोई प्रतीक निींअवपतु उनकी मूनतमिान् ◌्वास्तववकता ि◌ै। श्रीरामकृष्ण द्वारा माँ काली की जीवंत प्रनतमा से संवाद करने और उससे सतत् ◌्मागदिशनि प्राप्त करने ◌ेकी बात से भी यिी रिस्य प्रकट ि◌ोता ि◌ै। ि◌मारे साहिमय में भी ि◌म ऐसा वणनि पातिे कक वे जो ननराकार, अननदेश्य रह्म ि◌ैं वे ि◌ी गोकुल में अपनी ि◌िी कर रिे ि◌ैं। जजस ननराकार का ध्यान लगा कर भी ऋवष-मुनन पार निीं ◌ंपातेवे ि◌ी नन्द के लाला के रूप में गोकुल में गोवपयों के पे्रम के वशीभूत ि◌ोकर उनके साथ नाचतिे। अतः यि एक परम रिस्य ि◌ै कक जो परमाममा सब के ननयंता, धारक, शासक, प्रनतपालक आहद ि◌ैं, वे ि◌ी पे्रमी के दास बन जाते ि◌ैं। ऐसी महिमा ि◌ै पे्रम की।

भागवत् ◌्में भी बताया गया ि◌ै कक और सब कुछ प्राप्त करना तो अपेक्षाकृत रूप से आसान ि◌ै परन्तु ◌ु भगवान की भजकत प्राप्त करना सिज निीिं। कयोंकक भजकत के प्रभाव से तो भगवान् ◌्भकत के वशीभूत ि◌ो जाते ि◌ैं। ककतनी ि◌ी कथा-किाननयों में ि◌म पातिे कक भकत के ऊपर भगवान् ◌्के कोई ननयम प्रभावी निीं ◌ंि◌ोते। भकत के पे्रम के भलए तो भगवान् ◌्ननयम आहद सब पलट देते ि◌ैं। कफर तो वे विी करते ि◌ैं जो भकत चािता ि◌ै।

अंत में गीता अजुनि को भी यिी उपदेश करती ि◌ै कक सब कुछ छोड़ कर परमाममा की शरण ग्रिण कर। और जजसे भी इसका जीवंत अनुभव ि◌ै कक ककस प्रकार भगवान् ◌्भी भकत से पे्रम करते ि◌ैं विी जानता ि◌ै कक सभी मानवीय भावों की सच्ची पररपूनत ि◌भगवान् ◌्के साथ पे्रम करनेमें ि◌ी ि◌ोती ि◌ै। ऐसा कोई भाव निीं ◌ंजजसका भगवान् ◌् अनतशय पे्रम के साथ उत्तर न देते ि◌ों, कयोंकक यहद भगवान् ◌्उन सभी मानवीय भावों को पररतृपूत न कर सकते ि◌ों तब तो उन भावों का कोई औधचमय ि◌ी निीं ◌ंथा। इसी कारण भजकतमाग ि◌में ि◌म अनेकानेक भावों का वणनि पातिे जजनके माध्यम से व्यजकत भगवान् ◌्के साथ संबंध स्थावपत कर सकता ि◌ै। सकाराममक ि◌ी निीं, यिाँतक कक द्वेष आहद नकाराममक भावों के साथ भी भगवान् ◌्के धचंतंन और उनसे संपकि साधनेकी अनुमनत दी गई ि◌ै। श्रीकृष्ण के ववषय में श्रीकृष्णपे्रेम किते ि◌ैं कक वे कोई ननस्तेज अमूत ि◌या प्रतीक निीिं, परंतु चािे वे गोलोक में ि◌ों या इस जगत् ◌्में, वे तो सभी मूततिाओंसे अधधक मूत ि◌ैं। श्री हदलीप कुमार रॉय को एक पत्र में उन्िोंने भलखा, "कुछ लोग 'उनका' वणनि ननराकार के रूप में या कफर ि◌जारों ि◌ाथ-पैरों से युकत के रूप में करते ि◌ैं परंतु मेरे भलए तो दो चरण ि◌ी पयाप्ति ि◌ैं। और आि, कया चरण ि◌ैं। यहद कोई इन्िें चूक जाता ि◌ै तो कोई रह्मानंद और कोई भी मुजकत इस क्षनत की पूनत ि◌करने ◌ेके भलये पयाप्ति निीिं। मुझे ◌ेलगता ि◌ै कक कुछ लोग इसे मानव-आकाररता पुकारेंगे, परंतु वे कया पुकारते ि◌ैं उससे कया फकि पड़ता ि◌ै? तथ्य तो तथ्य ि◌ैं और इस आधुननक धारणा को म ◌ैंअस्वीकार करता ि◌ूँ कक एकमात्र अमूतति ि◌ी समय ि◌ै। जैसे कभी भी कोई आनंद निीं ◌ंि◌ो सकता था यहद कृष्ण आनंदमय न ि◌ोते, ठीक उसी प्रकार किींकोई मूतति निीिंिोती यहद वे मूत ि◌न ि◌ोते और किीं कोई रूप न ि◌ोता यहद उनका कोई रूप न

ाता। जैसा तुम जानते ाे ाो, एक समय म ैंबुद्ध की पूजा करता था, और वि भी गिराई से; परंतु वि तो मेरे कृष्ण को जाननेसे पिले था, और अब, जब म ैंअतीत के पररदृश्यों को देखता ाूँ, तो सभी छायानुमा भूतिा आकृनतयों की राभश के बीच म ैंअलौकिकक प्रकाश से जगमगाते उस एक हदव्य रूप को ाी देखता ाूँ। परंतुअतीत ाी कयों? भूत, वतमिान और भववष्य, 'उनके' अनतररकत तो और कुछ ै ाी निीं। 'उनके' श्रीववग्रि के वि और भंधगमाएँ तो सभी अनंतताओं, शाश्वतताओं और परम् ्तत्त्वों से अधधक मूल्यवान् ्ैं। समस्त लोक तो उनकी मवचा के पौरों में समाए ैं, और तब भी वे ेकोई धुधाँली-सी वैजश्वक आकृनत निींबने रिते, अवपतु वे तो पीली धोती में, मोरपंख धारण ककये, बासाँ की बासुँरी की धुन से आममा को मदमस्त कर देनेवाले शाश्वत ग्वाला ाी बने रिते ैं। कृष्णात् ्परं ककमवप तत्त्वमिं न जाने(कृष्ण से परे भी कोई तत्त्व ाो सकता ै - म ैंनिीं ंजानता)।" इस पत्र की प्रशंसा करते ाुए श्रीअरववन्द ने भलखा, "हदलीप, ामेशा की ाी तरि कृष्णप्रेम का पत्र शुरू से अंत तक सारगभभति ैं; त्रबल्कुल प्रमयक्ष रूप से उनके पास एक जीवंत आध्याजममक चेतना और आध्याजममक ज्ञान ै"। (योगी श्रीकृष्णप्रेम, पृष्ठ १७२-७३)

अतः जजन्िेंपरमाममा की सिा का जीवंत अनुभव प्राप्त ाो चुका ै वे ाी जानते ैं कक वे परम पुरुष ाोते ाुए भी अभभव्यजकत तथा संबंधों से परे निीं ैं अवपतु ्उनका संपकि तो इतना मधुर और आनंददायक ै कक सभी मानव भावों की सच्ची पररपूनत िऔर पररणनत उन्िीं ंमें ाोती ै। और यिी परम रिस्य ै। इसीभलए गीता अजुनि को अठारिवें अध्याय में पिले किती ै कक उन ईश्वर की शरण ग्रिण कर जो यंत्र पर आरूढ़ के समान सभी भूतों को घुमाते रिते ैं और इससे तुझेशाश्वत पद और परा शांनत प्राप्त ाोगी। परंतु इसके बाद भगवान् ्परम गुह्यतम वचन के रूप में अजुनि को सभी कुछ का पररमयाग करके अपनी शरण ग्रिण करनेके भलए किते ैं। यि आममा की एक ऐसी गनत ै जो सभी साधना और योग-पद्धनतयों से परे ै कयोंकक सभी योग-पद्धनतयों का तो गीता ने इस वचन से पिले ाी भली-भानाँत ननरूपण और समन्वय साध हदया ाोता ै। परंतु सभी कुछ का ननरूपण करने ेके बाद वि किती ै, 'सवधिमान् ि्पररमयज्य', कयोंकक वास्तव में यिी एक सच्चा भाव ै – अनन्य रूप से अपने-आप को भगवान् ्को सौंप देना। सामान्यतया जजन्िें िम साधना पद्धनतयाँ किते ैं वे कम या अधधक स्व-केंहरतता लाती ैं और व्यजकत को अपनेअिं से बाधेँ रखती ैं। इसीभलए भगवान् ्अजुनि को सभी योग आहद की पराकाष्ठा या पररणनत के रूप में किते ैं 'सवधिमान्ि्पररमयज्य'। केवल प्रेम ाी ै जो अपने-आप को पूण िरूप से दे सकता ै, अपने-आप को भुला सकता ै। अन्य कोई साधना पद्धनत भाव की ऐसी पराकाष्ठा तक निीं ंले जा सकती।

प्रश्न : पर ऐसा कयों ाोता ै कक एक बार आनन्द आने के बाद चला जाता ै?

उत्तर : सच्चेप्रेम में ऐसा निींाोता। परंतु यहद कोई प्राणणक आकषणि या आसजकत आहद का भाव ाो तब उसमें आमम-दान का भाव निीं ाोता, वि तो केवल अपनी तुजष्ट चािता ै। प्राण को ववववधता की पृष्ठभूभम पर भमलन सुखकर लगता ै। एकरस भमलन से वि ऊब जाता ै। इसी कारण िम ववववध आहद की चचािसुनते ैं। परंतुऐसे भाव का प्रेम से सरोकार निीं ंाोता। वि तो प्रेम के नाम पर प्राण की भगवान् ्को ाी ननगल जानेकी प्यास ाोती ै।

प्राणणक भजकत स्वयंपर िी केजन्रत िोती िै। यहद एक बार यि सच्चा चैमय प्रेम प्राप्त िो जाता िै तब इसमें भमलन-ववरि आहद निींिोते। प्राणणक प्रेम में प्रेमी देना निींचािता अवपतु प्राप्त करना चािता िै। प्राणणक प्रेम का प्रमयुिर कम िी भमलता िै और ववरि की िी अधधकता िोती िै। इसमें प्रेमी भगवान् ्पर आधधपमय जमाना चािता ै, उन्िें िस्तगत करना चािता िै जबकक चैमय में ऐसा भाव निीं ंिोता। वि तो अपने-आप को दे देने के अनतररकत कुछ जानता िी निीं। और ऐसा उसे कोई प्रयास करके निींकरना प़िता अवपतु ुउसका स्वभावमात्र िी ऐसा िै कक वि स्वतः िी भगवान् ्की ओर चलता िै। और इस चैमय प्रेम से ऊपर केवल एक िी अवस्था िै और वि िै परम पुरुष और उनकी परा-प्रकृनत के बीच का अभभन्न परस्पर समबन्ध। ऐसा समबन्ध जजसमें वे दोनों एक िी िैं और यि ऐकय प्रेम से भी परे िै। इस प्रगाढ़ता की तो कल्पना िी निीं ंकी जा सकती। वि एक ऐसी शजकत िै जो असंख्यों रह्माण्डों का ननमाणि और उनका संचालन करती िै। ये िी दो जब अभभव्यजकत में आते िैं तब हदव्य प्रेम का रूप ले लेते िैं। इस हदव्य प्रेम के त्रबना रूपांतर साधधत निीं ंिो सकता। यिी इस रह्मांि का सबसे गुह्य रिस्य िै।

न तद्भासयते सूयो न शशाङ्को न पािकः ।
यद्गत्िा न ननितुनुतेतद्धाम परमं मम ।। ६।।

६. उसे सूयु ुप्रकासशत नहीं करता, न चन्द्रमा और न ही अस्नन; िह मेरा परम घाम है, स्जससे, जो िहाँ पहजूँच जाते हैं ै, पिनजः लौटकर नहीं ंआते।

...ऐसा प्रतीत िोगा कक यि परम पद समयक् रूप से, यिाँतक कक सविोम रीनत से, ववभशष्ट और साक्षात् ् रूप से, संन्यास की ननवृवि से प्राप्त ककया जा सकता िै। इसकी प्राजप्त का ननयत पथ अक्षर का माग,ि अधिकम ि और जीवन के पूण िमयाग, एक संन्यासमय एकांतवास, एक संन्यासमय ननजष्ियता का माग िप्रतीत िोगा। यिाँ कम िके आदेश के भलए अवकाश िी किाँ िै, अथवा कम-से-कम उसके भलए पुकार एवं आवश्यकता िी किाँ, और इस सबका लोकसंग्रि के साथ, कुरुक्षेत्र के संिार, कालपुरुष की गनतववधध के साथ, कोहट-कोहट-दिेधारी ईश्वर के ववराट्दशनि तथा उनके इस उच्चघोवषत आदेश के साथ कया संबंध िै कक, "उठ, शत्रु ुका वध कर, एक समृद्ध राज्य का भोग कर"? और कफर यि प्रकृनतगत पुरुष कौन िै? यि पुरुष भी, यि क्षर, िमारी पररवतनिशील सिा का यि भोकता भी पुरुषोिम िी िै: गीता का उिर यि िै कक अपनेसनातन अनेकमव में पुरुषोिम िी क्षर िैं।

धीरे-धीरे अब गीता पुरुषोिम तत्त्व के ननरूपण की ओर गनत करती िै। गीता उसी को सभी कुछ के मूल के रूप में प्रनतपाहदत करती िै। अतः क्षर की बजाय अक्षर की शांनत में प्रनतजष्ठत िोने ेका उपदेश करनेके बाद अब गीता क्षर और अक्षर दोनों के िी मूल पुरुषोिम भाव में जाने की ओर संकेत करती िै।

ममैिांशो जीिलोके जीिभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीस्न्द्रयाणण प्रकृनतमथानन कषुनत ।। ७।।

७. यह मेरा ही सनातन अंश है जो जिीों के इस लोक में जिी बनता है और प्रकृनत में रहनेिाली छः इस्न्द्रयों को, स्जनमें मन सस्म्मसलत है, आकृष्ट अथिा ग्रहण करता है।

यि एक ऐसा लक्षण, एक ऐसा कथन िै जो एक बिा भारी अभभप्राय एवं मित्त्व अथवा पररणाम रखता िै। कयोंकक इसका अथ िै कक प्रमयेक जीव, प्रमयेक व्यजष्ट-पुरुष, अपने आध्याजममक समस्वरूप में साक्षात् ्भगवान् ्िी िैं, भले िी प्रकृनत के अंदर वि वस्तुतः उन्िें ककतने िी आंभशक रूप में कयों न अभभव्यकत करता िो। और, यहद शब्दों का कोई अथ िै तो, इसका यि भी अभभप्राय िै कक अभभव्यकत िोनेवाली प्रमयेक आममा, अनेक में से प्रमयेक सनातन व्यजष्ट िै, एकं सत् ्की ननमय अजन्मा अमर शजकत िै। प्रकट िोनेवाली इस आममा को िम जीव किते िैं, कयोंकक यिााँ सजीव प्राणणयों के जगत् ्में यि एक सजीव प्राणी प्रतीत िोता िै, और मनुष्य में अवजस्थत इस आममा को िम मानव जीव किते िैं और इसके ववषय में केवल मानवता के तरीके से िी सोचते िैं। परन्तु वास्तव में यि ऐसा कुछ िै जो अपनी वतमान प्रतीनत से अधधक मिान् ्िै तथा अपनेमानवीय रूप से आबद्ध निीं: अपनेअतीत में यि मानव से कननष्ठतर अभभव्यजकत था, अपने भववष्य में यि ऐसा कुछ बन सकता िै जो मनोमय मनुष्य से भी अमयधधक मिान् ्िो। और, जब यि जीव सब अज्ञानमय सीमाओं से ऊपर उठ जाएगा तब यि अपनी हदव्य प्रकृनत धारण कर लेगा, जजसका कक इसका मानवीय रूप केवल एक अस्थायी आवरणमात्र िै, आंभशक एवं अपूण िमित्त्व वाली वस्तु िै। व्यजष्टगत आममा इस लोक के परे सनातन के अंदर अजस्तमवमान िै और सदा िी अजस्तमवमान थी, कयोंकक वि स्वयं भी सनातन िै। स्पष्टतः, जीव की सनातनता का यि ववचार िी िै जजसके कारण गीता ऐसे ककसी भी कथन से बचती िै जो ककंधचममात्र भी पूण िलय की ओर संकेत करता िो, अवपतु उसने पुरुषोत्तम के अंदर ननवास करनेको िी जीव की सवोच्च जस्थनत बताया िै, ननवभसष्यभस मय्येव। यद्यवप 'सबके एक आममा' के ववषय में किेसमय वि अद्वैत की भाषा का प्रयोग करती प्रतीत िोती िै, तो भी सनातन व्यजष्ट-जीव का यि ननमय समय, ममांशः सनातनः, ऐसा कुछ और जोि देता िै जो एक ववभशष्ट तत्त्व को ले आता िै और लगभग ववभशष्टाद्वैत के दशनि को िी स्वीकार करता प्रतीत िोता िै, - िालाकाँक इस कारण िमें एकदम इस पररणाम पर निीं ्पिुाँच जाना चाहिए कक बस यिी गीता का एकमात्र दशनि िै या उसकी भशक्षा बाद के रामानुज के भसद्धांत के सवथा समान िै। कफर भी इतना तो स्पष्ट िै कक एकमेव भागवत् ्सत् ्की आध्याजममक सत्ता में बिुमव का एक शाश्वत, केवल भ्रमाममक िी निीं, अवपतु एक वास्तववक तत्त्व ववद्यमान िै।

यिा ्ाँभगवान् ्जीव को अपना िी अंश बताकर सारे िी समीकरण को एक नया मोि प्रदान कर देते िैं। जजस जीव को क्षर और अननमय, नश्वर आहद मानकर अवमानननत ककया जा रिा था और जजस अवस्था को िीन मानकर जजससे ककसी भी भानााँत छूट ननकलकर अक्षर पुरुष में जाने की बात िो रिी थी, भगवान् ्तो उसे अपना सनातन अंश बताकर सारे समीकरण को िी बदल िालते िैं। यहद जीव उन्िीं का सनातन अंश िै जो सदा िी रिने वाला िै तब तो जन्म-ममृयु से छूट ननकलने की बातें, मोक्ष आहद की बातें तो सब एकाएक िी अप्रासंधगक िो जाती िैं। पिले बिे ्ववस्तार से गीता त्रत्रगुणों से परे जानेकी बात करती िै, अक्षर की शांनत में जानेकी बात करती िै, और कफर पुरुषोत्तम तत्त्व को ले आती िै। इसके बाद यिा ्ाँगीता एक नए तत्त्व का प्रवेश कराती िै कक जीव तो भगवान् ्का िी सनातन अंश िै। यहद ऐसा न िोता तो जीव अजस्तमव में आ िी कैसे सकता था कयोंकक परमाममा के

अनतररकत तो अन्य ककसी का कोई स्वतंत्र अजस्तमव िो िी निीं सकता। इससे िमें गीता के ववकासिम की ववलक्षणता देखने को भमलती िै। वि सभी संभव दृजष्टकोणों और पद्धनतयों को उनका समुधचत मूल्य और स्थान प्रदान करते िुए ववकभसत करती िै परंतु उन्िें अपनेसमन्वयकारी भाव के द्वारा सारी योजना में समजन्वत कर लेती िै जजससे कक वे अपना एकांगी स्वरूप छोि़ देते िैं और एक समग्र चीज का अंग बन जाते िैं।

किने का अथ यि िै कक गीता अब सारी चीज को अधधकाधधक पुरुषोत्तम भाव की ओर मोि़ती जा रिी िै और एक त्रबंदु पर आकर भगवान् अजुनि को सवभिावेन उनकी ओर मुिने के भलए किते िैं कयोंकक वास्तव में तो अन्य सभी चीजें बुद्धध के स्पष्टीकरण के भलए तो उपयोगी िो सकती िैं परंतुकरने योग्य सच्चा काम तो यिी िै कक व्यजकत समग्र रूप से, 'सवभिावेन' और अनन्य रूप से भगवान् की ओर मुि जाए। यहद गीता को ननवृवि की ओर िी मोि़ना िोता तब तो अपनेववश्वरूप दशनि के बाद िी गीता अपनी भशक्षा का इस बात से उपसंिार कर सकती थी कक इस अननमय संसार से ककसी भी प्रकार ननवृि िोकर अक्षर की शांनत में ननवास करना िी सच्चा उपाय िै। परंतु गीता का ऐसा कोई मंतव्य निीं। गीता तो सभी धमों को ववकभसत करके अंततः उन्िें अनतिम करने और उन्िें मयाग कर भगवान् की शरण ग्रिण करनेका उपदेश करती िै। प्रमयेक अध्याय में गीता ककन्िीं ववभशष्ट तत्त्वों को उभार कर सामनेलाती िै परंतु भगवान् के प्रनत भजकत में वि सभी का समन्वय करती िै।

शरीरं यदिाप्नोनत यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।

गृहीत्वैतानन संयानत वायुगजन्धानिवाशयात् ।। ८।।

८. जब ईश्वर एक देह धारण करते हैं तब अपनेसाथ इन (इंदद्रयों और मन) को ले आते हैं, और जब इस देह का पररत्याग करते हैं तो वायु जस्जस प्रकार गंधों को उसके स्रोतों से अपने साथ ले जाती है उसी प्रकार वे इनको अपने साथ लेकर चले जाते हैं।

श्रोत्रं चक्षुःज मपशनंु च रसनंघ्राणमेव च ।

अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानजपसेवते॥ ९॥

९. श्रोत्र, चक्षुज और मपश,ु रसना और घ्राण और साथ ही मन पर अधिस्ष्ठत होकर वे इंदद्रय-विषयों का उपभोग करते हैं।

उत्क्रामन्तं स्थथतं वावप भञ्जजानं वा गुणास्न्वतम्।

विमूढा नानपजश्यस्न्त पश्यस्न्त ज्ञानचक्षुषजः ।। १० ।।

१०. शरीर से बाहर ननकलते हजए हों या शरीर में ननिास करते हजए हों, गुणों का उपभोग करते हजए हों या ग्रहण करते हजए हों, विमूढ़ जन (अंतयुामी ईश्वर को) नहींदेखते; स्जनके ज्ञानचक्षज हैं वे ही देखतेहैं।

यि सनातन व्यजष्ट-पुरुष भागवत् ्पुरुष से भभन्न अथवा ककसी भी प्रकार से वस्तुतः उससे पृथक् निीं। यि स्वयं साक्षात् ्ईश्वर िी िैं जो अपनेएकमव से सनातन बिुमव के द्वारा - कया समस्त सिा अनंत के इस समय की िी अभभव्यजकत निीं? – िमारे अंदर अववनाशी जीव के रूप में सदा ववद्यमान रिते िैं और जजन्िोंने यि शरीर धारण ककया िै तथा जो जब यि नश्वर ढाचाँा प्रकृनत के तत्त्वों में ववलीन िोने ्के भलए उतार फेंका जाता िै तो इससे बिार ननकल जाते िैं। वे मन तथा इंहरयों के ववषयों के उपभोग के भलए प्रकृनत की आममननष्ठ शजकतयों, मन तथा पाचाँ इंहरयों, को अपनेसाथ लाते तथा ववकभसत करते िैं, और अपनेननष्कासन के समय भी वे उन्िें साथ ले जाते िैं जैसे वायु ककसी पुष्प-पात्र से सुगंधों को लेती जाती िै। परन्तु ईश्वर तथा क्षर-प्रकृनतस्थ जीव की तदाममता बाह्य प्रतीनत के कारण िमसे नछपी िुई िै तथा क्षर प्रकृनत के चलायमान धोखों की भारी भरमार में खो गयी िै। और, जो लोग अपने-आपको प्रकृनत के रूपों, मानवता के रूप या ककसी अन्य रूप के द्वारा पररचाभलत िोने ्देते िैं वेइस एकमव को कभी निीं देख पायगें, अवपतु मानव-तन में अवजस्थत भगवान् ्की अवज्ञा और अविेलना िी करेंगे। उनका अज्ञान भगवान् ्को उनके प्रववष्ट िोने तथा बिार ननकलने या जस्थत रिने तथा भोग करने ्एवं गुणों को धारण करनेमें अनुभव निीं ्कर सकता, अवपतुकेवल विी चीज देखता िै जो मन और इंहरयों के भलए गोचर िोती िै, उस मिमिर समय को निीं ्देखता जजसकी झलक केवल ज्ञान-चक्षुके द्वारा िी प्राप्त िो सकती िै। ऐसे लोग उनकी झलक पाने का प्रयास भी करें तो भी तब तक उन्िें उनकी झलक निींभमल सकती जब तक कक वेबाह्य चेतना की सीमाओं को दूरू करना न सीख लें और अपने अंदर अपनी अध्याममसिा गहठत न कर लें, मानो उसके भलए अपनी प्रकृनत के अंदर एक रूप िी ननभमति न कर लें।

वास्तव में, जब िम यि सोचते िैं कक ईश्वर इस अभभव्यजकत में, गुणों, द्वंदों आहद में फंसे िुए िैं तो यि एक मूलभूत रूप से िी असंगत बात िै। संभव िै कक चेतना की ककसी अवस्था ववशेषे में व्यजकत को यि बंधन या फाँसाव मिसूस िो, परंतु परमाममा के भलए ऐसा कोई भी बंधन या फाँसाव निीं ्िै। संभव िै कक ननवृविमाधगयों की चेतना में यि फाँसाव मिसूस िोता िोगा इसीभलए वे संसार से वैराग्य और इसके मयाग की बातें करते िैं, परंतु ् जजनकी आममा में पलायन की वृवि न िोकर भागवत् ्अभभव्यजकत की ओर वृवि िोती िै, जैसी की गीता की िै, तब उन्िें इस प्रकार का कोई बंधन या फाँसाव मिसूस निीं ्िोता। ऐसी आममा के भलए यि जगत् ्माया निींिोता। और उसके भलए मयाग जैसी कोई चीज का अजस्तमव िी निीं ्िोता कयोंकक इस माग िपर चलने ्पर तो व्यजकत के समक्ष अधधकाधधक भव्य ननधधयााँ खुलती जाती िैं और सदा िी आरोिण में उसे अधधकाधधक आनंद प्राप्त िोता जाता िै। इसभलए जब व्यजकत को अधधकाधधक आनंद और अधधकाधधक पररपूणतिा प्राप्त िो रिी िो तो उसे मयाग कैसे किा जा सकता िै। जब तक व्यजकत को यि आभास िोता िै कक उसे ककसी वस्तु का मयाग करनेकी आवश्यकता िै तो इसका अथ िै कक वास्तव में वि सच्चेमाग िपर निीं ्िै कयोंकक सिी माग िपर मयाग की ककसी प्रकार की कोई संभावना िी निींिोती।

मयाग, संन्यास, ननवृवि आहद की बातें तो अिमाममक तदाममता के कारण आती िैं जबकक वास्तव में संपूण िववश्व में परम् ्प्रभु और उनकी पराप्रकृनत के अनतररकत अन्य ककसी का कोई अजस्तमव िी निीं िै। स्वयं पराप्रकृनत िी जीव बनती िै और इस लीला में आती िै। अतः देखने का सच्चा दृजष्टकोण तो यिी िै कक सभी कुछ

परम प्रभुऔर उनकी पराप्रकृनत की ि◌ी लीला ि◌ै, ि◌ालाकाँक ये भी तत्त्वतः अभभन्न रूप से एक ि◌ी ि◌ैं परंतु केवल अभभव्यजकत के भलए दो रुख अपनाते ि◌ैं। उनके अनतररकत अन्य ककसी का कोई अजस्तमव ि◌ी निीं। पराप्रकृनत परम प्रभुकी प्रसन्नता के ननभमि ि◌ी असंख्यों रह्माण्डों का ननमाणि करती ि◌ै और ऐसी अद्भुत सृजृष्ट करती ि◌ै और उन सभी रूपों में ककसी भी प्रकार परम प्रभु को अभभव्यकत करने का प्रयास करती ि◌ै। इसीभलए श्रीमाँ व श्रीअरववन्द इस जगत् ◌्को भमथ्या निीं बताते, उल्टे वे तो पाधथवि अभभव्यजकत को ि◌ी हदव्य बनानेका आदश ि◌ प्रस्तुत करते ि◌ैं। पांडिचेरी जस्थत श्रीअरववन्द आश्रम इसका एक जीवंत प्रारूप प्रस्तुत करता ि◌ै कक ककस प्रकार उन्िोंने ◌ेभागवत् ◌्साम्राज्य की स्थापना को केवल ककसी आदश ि◌के रूप में ि◌ी निीं ◌ंछोड़ा अवपतु सूत्र रूप में उसे चररताथ ि◌करके भी हदखाया ि◌ै। कोई भी संवेदनशील सजकत तुरंत ि◌ी देख सकता ि◌ै कक वि कोई साधारण सृजृष्ट निीं ◌ंअवपतु श्रीमाँव श्रीअरववन्द द्वारा की गई हदव्य सृजृष्ट ि◌ै। जब ि◌म इस पररप्रेक्ष्य में गीता को समझनेका प्रयास करते ि◌ैं तभी उसके व्यापक स्वरूप को और सवसिमावेशी भाव को कुछ समझ पातिैं अन्यथा प्रायः ि◌ी गीता की भशक्षा को बिे ि◌ी संकीण ि◌अथों में ले भलया जाता ि◌ै और परस्पर ववरोधी मतों में बाटँ हदया जाता ि◌ै।

प्रश्न : जब स्वयंभगवान् ◌्ि◌ी सभी कुछ कर रिे ि◌ैं तब तो कोई भी चीज गलत निीं ◌ंि◌ो सकती?

उत्तर : ऐसा ि◌म कैसे कि सकतिैं? पूरी सृजृष्ट में ि◌म एक प्रकार का ि◌म और व्यवस्था देखतिैं जजसमें मिैं सदा ि◌ी कुछ चीजों को स्वीकार और ग्रिण करना ि◌ोता ि◌ै और कुछ चीजों को अस्वीकार करना ि◌ोता ि◌ै। अब यहद कोई अनतववशाल पिेली ि◌ै और ि◌मारी दृजष्ट में पूरी पिेली एक साथ निीं ◌ंहदखाई दे सकती इसका यि अथ ि◌ निीं ◌ंि◌ो जाता कक उस पिेली के टुकड़े ि◌म सुववधानुसार किींभी रख सकते ि◌ैं। और चूंकक ि◌म एक ि◌ी दृजष्टपात में उसे निीं ◌ंदेख पातेइसका यि अथ ि◌भी निीं ि◌ै कक पिेली असंबद्ध ि◌ै। इसभलए कमी दृजष्ट की ि◌ै न कक उस पिेली की। समय का अथ ि◌ी यिी ि◌ै कक वि देश-काल-पात्र की समस्वरता के अनुसार ि◌ी अभभव्यकत ि◌ोता ि◌ै। जैसे, कदाधचत् ◌्पशुओंको मानव व्यजकतमव असंबद्ध प्रतीत ि◌ोता ि◌ोगा परंतु मानव चेतना ि◌ी अपनी कियाओंको समझ सकती ि◌ै, वैसे ि◌ी ि◌म परमामा की किया को समझ निीं ◌ंपाते।

यतन्तो योधगनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यिस्मथतम् ◌्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनंपश्यन्त्यचेतसः ।। ११ ।।

११. जो योगीजन यत्न करते हैं, ि◌ उन ईश्िर को अपने भीतर स्मथत देखतेहैं; ककन्त जो अभी तक सचेतन नहीं हैं, जो आध्यास्त्मक साचेँमें गदठत नहीं ◌ंहजए हैं, ि◌ ◌ेयत्न करते हजए भी उन्हें नहीं देखते।

अपने-आप को जानने ◌ेके भलए मनुष्य को कृतामा ि◌ोना ि◌ोगा, अथात् ◌्आध्याजममक साचेँमें गहठत एवं पूण ि◌ोना ि◌ोगा तथा अध्यामम-दृजष्ट में प्रबुद्ध ि◌ोना ि◌ोगा। जजन योगीजनों के पास यि ज्ञानचक्षु ि◌ै वे अपनेअनंत समस्वरूप में, अपनी आममा की शाश्वतता में ि◌मारे वास्तववक स्वरूप भागवत् ◌्पुरुष के दशनि करते ि◌ैं। ज्ञानदीप्त िोकर वे प्रभु का अपनेअंदर साक्षामकार करते ि◌ैं और स्थूल ज़िभौनतक सीमा से, मानभसक व्यजकतमव के रूप तथा

नश्वर प्राणणक रचना से मुकत ि◌ो जाते ि◌ैं: वे आममा और अध्यामम-सिा के समय में अमर ि◌ोकर ननवास करते ि◌ैं। परन्तु वे केवल अपनेअंदर ि◌ी निीं,◌ं अवपतु समस्त सृजृष्ट में भी उनके दशनि करते ि◌ैं।

प्रश्न : यिााँ श्रीअरवविन्द हटप्पणी करते ि◌ैं कक 'मनुष्य को कृताममा ि◌ोना ि◌ोगा', तो कया ऐसा करना मनुष्य के अपनिाेथ में ि◌ै?

उत्तर : मनुष्य के अंदर संभावना तो अवश्य ि◌ी ननहित रिती ि◌ै। कुछ जो अधधक पररपकव ि◌ोते ि◌ैं वे जब ककसी सद्गुरु के संपकि में आते ि◌ैं, या कफर अन्य ककसी माध्यम से वे उस ननहित संभावना के संपकि में आ जाते ि◌ैं तब वे अपनेसच्चे उद्देश्य को कुछ-कुछ पिचान जाते ि◌ैं और जीवन में उस ओर उनकी गनत आरंभ ि◌ो जाती ि◌ै। जजनमें अभी उतनी पररपकवता निीं ◌ंि◌ै उनका भी समसंग आहद से ववकास ि◌ो सकता ि◌ै। परंतु जजन्िोंने आध्याजमिमक माग ि◌ पर कदम रख हदये ि◌ैं उनमें भी ि◌जारों में से ककसी एक को ि◌ी सच्ची अनुभूनत प्राप्त ि◌ोती ि◌ै। अतः इसमें यि समझने ◌ेकी बात ि◌ै कक ि◌मारी सिा के अंदर अनेकानेक भाग ि◌ैं। यहद ककसी भाग को आदेश या संपकि प्राप्त ि◌ो भी गया ि◌ै तो भी अनेकानेक ऐसे भाग शेषे रि जाते ि◌ैं जजन्ि◌ें उस ओर जानेमें कोई रुधच निीिंोती और वे अपनिी तय ढरें में चलते रिना चािते ि◌ैं और अपनिी क्षुर ि◌ेतुओं की पूनत ि◌में रत रितिेैं। इसीभलए जब समय-समय पर ि◌मारी सिा के ये सभी भाग सति पर आते ि◌ैं तो कम या अधधक समय के भलए अंधकार के काल आ जाते ि◌ैं जजनके प्रनत साधक को सचेतन ि◌ोकर उन्ि◌ें पार करना ि◌ोता ि◌ै। एक दृजष्टकोण से यि आवश्यक भी ि◌ै कयोंकक यहद ये भाग सति पर न आते तो व्यजकत इनके ववषय में कभी सचेतन ि◌ी न ि◌ोता और इस कारण से उनका शुद्धधकरण और रूपांतर भी न ि◌ो पाता। इसीभलए पूण ि◌चैमय अनुभूनत ि◌ोने के बाद भी तमाच्छादन के काल आ सकतिेैं। इतना अवश्य ि◌ै कक उन अंधकार के कालों में भी व्यजकत को ककसी ऐसी चीज की स्मृनत बनी रिती ि◌ै जजसके सिारे वि उनमें से ननकल पाता ि◌ै। साथ ि◌ी, एक सच्चेदृजष्टकोण में ये प्रकाशपूण ि◌और अंधकारमय काल आममा का पोषण करने वाली दो माताओंके समान काम करते ि◌ैं जजन दोनों के ि◌ी द्वारा आममा पररपुष्ट ि◌ोती ि◌ै। परंतु गीता के वणनि को पढ़कर यि निीं समझ लेना चाहिये कक गीता जजस कृताममा ि◌ोने ◌ेकी बात कर रिी ि◌ै वि कोई सीधी-सादी बात ि◌ै। वि एक बिुत ि◌ी गंभीर आध्याजमिमक और मनोवैज्ञाननक समय ि◌ै और त्रबना गुरु के मागदिशनि के प्रायः इसे समझना संभव भी निीिं◌ै।

साथ ि◌ी ि◌में समझना चाहिये कक यहद मूलतः व्यजकत आध्याजमिमक साचोँमें गहठत निीं ◌ंि◌ोता तो प्रायः ि◌ी आध्याजमिमक माग ि◌की ओर वि उद्घाहटत निीं ◌ंि◌ो सकता था। यहद भीतर से वि गठन आध्याजमिमक रूप का न ि◌ो तो जो चीजें ककसी एक के भलए आध्याजमिमक माग ि◌का उद्घाटन कर देती ि◌ैं वे ि◌ी उस व्यजकत के भलए ननष्प्रभावी रिेंगी और वि कदाधचत् ◌्उन पर कोई ध्यान ि◌ी निीं देने वाला। जो पुस्तक या मूनत,ि◌ या कफर कोई गुरु जजससे ककसी एक को साक्षामकार प्राप्त ि◌ो सकता ि◌ै, विी आवश्यक निीं ◌ंकक ककसी दूसूरे के भलए कारगर भसद्ध ि◌ो। जो आध्याजमिमक साचोँमें गहठत ि◌ोता ि◌ै वास्तव में तो विी इस पथ पर आता ि◌ै।

यदाददत्यगतं तेजो जगद्भासयते ऽणखलम् ◌्।

यच्चन्द्रमसस यच्चाननौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ◌्।। १२ ।।

१२. सूयु ुका जो प्रकाश सम्पूणु ुजगत् ्को प्रकासशत करता है, चन्द्रमा में जो प्रकाश है और अस्नन में जो प्रकाश है उसे मेरा ही प्रकाश जान।

गामाविश्य च भूतानन िारयाम्यहमोजसा ।
पष्जणासम चौषिीः सिुाः सोमो भूत्िा रसात्मकः ।। १३।।
१३. म ैंपृथ्िी में प्रिेश करके अपने बल के द्िारा समसत भूतों को िारण करता हूँ, और (पृथ्िीमाता में) रस-रूप सोमदेि होकर समसत पेड़-पौिों और औषधियों का पोषण करता हूँ।

अहं िैश्िानरो भूत्िा प्राणणनां देहमाधश्रतः ।
प्राणापानसमायक्जतः पचाम्यन्नं ंचतजविुम् ्।। १४।।
१४. म ैंप्राण-रूप अस्नन (िैश्िानर) होकर, सजीि प्राणणयों की देह में आधश्रत होकर तथा प्राण और अपान िायु से यक्जत होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।

सिुस्य चाहं हृदद संननविष्टो मत्तः ममृनतज्ञुानमपोहनंच ।
िेदैश्च सिैरहमेि िेद्यो िेदान्तकृद्िेदविदेि चाहम् ्।। १५।।
१५. म ैंसमसत प्राणणयों के हृदय में स्मथत हूँ, मझज से ही ममृनत, ज्ञान और उनका अभाि उत्पन्न होते हैं। म ैंही समसत िेदों के द्िारा जानने योनय एकमेि हूँ, म ैंही िेदान्त का रचनयता और िेद का ज्ञाता हूँ।

दूसरे शब्दों में, भगवान् ्एक िी साथ ज़ितमव की आममा, प्राण की आममा, मन की आममा िैं तथा उस अनतमानभसक ज्योनत की भी आममा िै जो मन और इसकी संकीण िेतकिबुद्धध से परे िै।

धीरे-धीरे अब िम गीता के स्वर में एक ननणायिक भेद पाते िैं। जिा ँपिले ननषेधाममक स्वर था विींअब भगवान् ्स्पष्ट रूप से अपनी सिा को अधधकाधधक प्रनतजष्ठत करते जा रिे िैं और किते िैं कक सभी कुछ वे िी िैं।
वे िी शरीर धारण कर इंहरयों और मन को अपनेसाथ लाते िैं, वे िी समस्त वेदों के द्वारा जानने ेयोग्य एकमेव िैं; वे िी वेदान्त के रचनयता और वेद के ज्ञाता िैं, स्वयंवे िी सभी अन्नों को पचातेिैं। जो कुछ भी अभभव्यजकत में आया िै वि सभी कुछ इस अथ ि में भगवान् ्स्वयं िी िैं कक सभी कुछ एकमात्र पराप्रकृनत द्वारा िी अभभव्यकत
िोता िै और पराप्रकृनत की अपने-आप में प्रभु से अलग कोई स्वतंत्र सिा निीं ंिै। परम प्रभु और उनकी पराप्रकृनत तो अभभन्न रूप से एक िी िैं। **द्िाविमौ परुजषौ लोके क्षरश्िाक्षर एि च ।**
क्षरः सिाुणण भूतानन कूटमथोऽक्षर उच्यते ।। १६।।

१६. इस लोक में क्षर और अक्षर ये दो परुजष हैं; क्षर परुजष इन सभी भूतों के रूप में है; और कूटमथ (स्मथर और उच्चासीन) अक्षर परुजष कहलाता है।

अतः, ये दोनों (क्षर और अक्षर) िी दो पुरुष िैं जजन्िें िम इस जगत् ्में देखते िैं; एक तो इसके कम िमें सामने की ओर प्रकट िोता िै, दूसूरा पीछे की ओर उस शाश्वत शांनत में दृढ़ रूप से अवजस्थत रिता िै जजससे कम ि ननःसूत िोता िै और जजसमें सब कम िकालातीत सिा, ननवाणि, के अंदर समाप्त िो जाते िैं और ववलीन िो जाते िैं...

परंतु जो समस्या िमारी बुद्धध को चकरा देती िै वि यि िै कक ये दोनों ऐसे असमाधेय परस्पर-ववरोधी प्रतीत िोते िैं जजनमें कोई वास्तववक संयोजक क्िी निीं िै और न िी इन दोनों में ककसी एक से दूसूरे पर पिुँचने के भलये ववच्छेद की कोई अनुदार गनत को छोड़कर और कोई साधन िी िै। क्षर कम िकरता या, कम-से-कम, कम किा उमपे्रेरण करता िै, अक्षर में भी उससे पृथक् रिकर कम िकरता िै; अक्षर अलग-थलग, आमम-केंहरत तथा अपनी ननजष्ियता में क्षर से पृथक् रिता िै।.।...जब िम भूतभाव की अजस्थरता या गनतशीलता में ननवास करते िैं तब मि कालातीत स्वयंभू सिा के अमृतमव से सज्ञान भले िी िों, पर उनमें ननवास कदाधचत् ्िी करते िैं। और जब मि अपने-आप को कालातीत सिा के अंदर सुप्रनतजष्ठत कर लेते िैं तब देश, काल और घटना सभी िमसे दूरू िो जाते िैं और अनंत के अंदर एक ववक्षुब्ध स्वप्न प्रतीत िोने लगतीिं। अतएव, प्रथम दृजष्ट में, सवाधधिक ववश्वासोद्पादक ननष्कष ियि प्रतीत िोगा कक प्रकृनत के अंदर आममा की गनतशीलता एक भ्रम िै, एक ऐसी चीज िै जो केवल तभी समथ िै जब िम इसमें ननवास करते िैं, पर जो तत्वतः समय निीं, और इसी कारण जब िम आममा के अंदर लौटते िैं, यि िमारे अवबोध िमूलतत्त्व से दूर िो जाती िै। यि तो उस असमाधेय जहटल षिेली को सुलझाने का सुपररधचत तरीका िै, दुःखी समय िै, जो जनश्चय...

गीता इस समाधान का आश्रय निीं लेती क्योंकक केवल भ्रम की व्याख्या करने में इसकी असमथता के अनतररकत इस समाधान में स्वयं भी भारी समस्याएँ िैं, क्योंकक िो तो केवल इतना िी किना िै कक यि सब एक विस्मय और रिस्य िै, दुहि माया िै, और तब उसी प्रकार िम यि भी कि सकतें कक यि सब रिस्यमय और अगम दिोरी यथाथतिा िै, आममा अपनेको आममा से नछपाये िुए िै। गीता माया की चचिा तो करती िै, पर केवल इस रूप में कक वि एक भ्रमोमपादक अपूण िचेतना िै जो पूण ियथाथ ितत्त्व को पक़ि निीं पाती तथा अजस्थर गनतशील प्रकृनत के प्रपंच में ननवास करती िै और जजस परम् ्आममा की यि सकिय शजकत िै, मे प्रकृनतः, उसकी इसे कोई झलक तक प्राप्त निीं िै। जब िम इस माया को पार कर जाते िैं तो यि जगत् ्लुप्त निींिि जाता, यि केवल अपने अंतरतम अथ िमें बदल जाता िै। आध्याजममक दृजष्ट में िमें जो कुछ पता चलता िै वि यि निीं िकक इस सब जगत् ्का कोई वास्तववक अजस्तमव निीं िै, अवपतु यि पता चलता िै कक इस सबका अजस्तमव तो िै, पर इसके वतमिान भ्रांत अथ िसे सवथिा भभन्न, इसका एक दूसूरा िी आशय िैः सब कुछ िी भगवान् ्िै, आममा िै, उसी की जीव-सिा और उसी की प्रकृनत िै, सब िी वासुदेव िै। गीता के भलए यि जगत् ्वास्तववक िै, ईश्वर की सृजष्ट, सनातन की शजकत तथा पररह्म से िुई अभभव्यजकत िै, और यिाँ तक कक त्रत्रगुणमयी माया की यि ननमनतर

प्रकृनत भी परा दैवी प्रकृनत से उद्भूत िुई िै।...गीता इस पर बल देती िै कक िम अपनेजीवनकाल में िी आममा तथा उसकी नीरवता में सचेतन रूप से रि सकतेिैं और कफर भी प्रकृनत के जगत् ्में शजकतशाली रूप से काय िकर सकतेिैं एवं िमें इस प्रकार रिना तथा करना भी चाहिए। और, वि स्वयंभगवान का दृष्टांत देती िै जो जन्म की अननवायतिा से बंधे निीं िैं, अवपतु स्वतंत्र िैं तथा सृजृष्ट से उच्चतर िैं और कफर भी ननमय-ननरंतर कम िमें रत रिते िैं, वत िएवं च कमणिण। अतः दैवी प्रकृनत के साथ पूण िरूपेण साधमय िलाभ करने से िी इस द्ववववध अनुभव की एकता पूण िरूप से प्राप्त िो सकती िै। परन्तु उस एकता का मूल तत्त्व कया िै?

उत्तमः परुजषमत्न्यिः परमात्मेत्यदजाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य त्वभत्युवुयय ईश्रिः ।। १७।।
१७. इन दोनों से सभन्न एक उत्तम परुजष है स्जसे परमात्मा कहा जाता है, को अविनाशी ईश्रि है और जो तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर उन्हें िारण करता है।

यममात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादवप चोत्तमः ।
अतोऽस्मम लोके िेदे च प्रधथतः परुजषोत्तमः ।। १८ ।।
१८. चूंकक म ैंक्षर से परे हूँ और अक्षर से भी महान् ्और उच्च हूँ, इससलये िेद में और लोक में म ैंपरुजषोत्तम नाम से प्रससद्ि हूँ।

(एकता के इस मूल तत्त्व को) गीता पुरुषोम-ववषयक अपने परमोच्च दशनि में प्राप्त करती िै; कयोंकक उसके मत में यिी पूण िऔर सवोच्च प्रकार का अनुभव िै, यि पूण िज्ञानी लोगों, कृमस्नववदः, का ज्ञान िै। अक्षर परम्, ्पर, िैं, ववश्व-प्रकृनत की सभी वस्तुओंतथा समस्त कम िके संबंध से वे परमोच्च सिा िैं। वे ेसबके अक्षर आममा िैं, और सबके अक्षर आममा िैं पुरुषोम। उनकी अपनी प्रकृनतगत शजकत के कम िसे अप्रभाववत, उनकी अपनी संभूनत को पे्रेरणा से अक्षत, उनके अपनेगुणों की िीिा से अववचभलत उनकी जो स्वयंजस्थत सिा िै उसकी स्वतंत्रता में वे (पुरुषोम) अक्षर िैं। परंतु यि तो समग्र ज्ञान का केवल एक िी पिलू िै, यद्यवप िै एक मिान् ् पिलू। इसके साथ िी पुरुषोम अक्षर से भी अधधक मिान् ्िैं, कयोंकक वे इस अक्षर भाव से अधधक कुछ िैं और वे अपनी सिा के सवोच्च ननमय धाम, परं धाम के द्वारा भी पररसीभमत निीं िैं। तो भी, िमारे अंदर जो कोई अक्षर एवं ननमय तमव िै। उसी के द्वारा िम उस सवोच्च धाम को प्राप्त करते िैं जिााँसे पुनः जन्म लेने के भलए निीं लौटना पड़ता, और यिी वि मोक्ष था जजसे पुराकाल के ज्ञानीजन एवं प्राचीन ऋवष-मुनन खोजा करते थे। परन्तु जब केवल अक्षर के द्वारा मोक्ष की प्राजप्त के भलए यमन ककया जाता िै तो वि यमन अननदेश्य की खोज का रूप धारण कर लेता िै, जो कक िमारी प्रकृनत के भलए एक कहठन काय िै, कयोंकक िम यिााँ ज़िप्रकृनत में दिे धारण ककये िुए िैं। वि अननदेशणा, जजसकी ओर अक्षर, अथात्ि्यिा ाँिमारे अंदर ववराजमान शुद्ध अगोचर आममा, अपने भेदमूलक आवेग के साथ ऊपर उठती िै. कोई परम अव्यकत सिा िै, पररोऽव्यकतः, और वि उच्चतम अव्यकत अक्षर भी पुरुषोम िै। इसभलए भगवान् ्किते िैं कक जो लोग अननदेश्य का अनुसरण करते िैं वे भी मुझ, सनातन

परमेश्वर को प्राप्त करते िैं। परन्तु कफर भी वे परमेश्वर उच्चतम अव्यकत अक्षर से भी अधधक िैं, ककसी भी ननषेधाममक ननरपेक्ष तत्त्व, नेनत, नेनत से अधधक िैं, कयोंकक उन्िें उन उिम या परम् ्पुरुष के रूप में भी जानना िोगा जो इस संपूण िरह्माण्ड को अपनी िी सिा के अंदर ववस्ताररत करते िैं। वे परम रिस्यमय सव िैं, यिााँकी सब वस्तुओं के मूलभूत अननवचिनीय ननरपेक्ष सत् ्िैं। वे ेक्षर में ववद्यमान ईश्वर िैं, केवल विीं निीं,ं अवपतु यिााँ प्रमयेक प्राणी के हृदय में ववराजमान पुरुषोिम िैं, ईश्वर िैं। और विााँ अपनेननमय परम पद, परो अव्यकतः में भी परमेश्वर िैं, कोई अलग-थलग अथवा उदासीन और संबंध- रहित अननदेश्य निीं,ं अवपतु जीव और जगत् ्के उद्गम, माता-वपता, आहद मूल तथा ननमय आश्रय िैं, सवभूितों के स्वामी तथा यज्ञ और तप के भोकता िैं। उन्िें अक्षर और क्षर दोनों रूपों में एक साथ जानकर, उन अजन्मा के रूप में जानकर जो प्राणीमात्र के जन्म में अपने को अंशतः प्रकट करते िैं और यिा ाँतक कक स्वयं भी सनातन अवतार के रूप में अवतीण िोते िैं, उन्िें उनके समग्र रूप में, समग्रं माम्, ् जानकर िी जीव ननमनतर प्रकृनत के बाह्य रूपों से सुगमतया मुकत िो सकता िै तथा एक बृित् ्आकजस्मक ववकास एवं ववशाल अपररमेय आरोिण के द्वारा हदव्य सत् ्और पराप्रकृनत में लौट सकता िै। कयोंकक क्षर का समय भी पुरुषोिम का समय िै।

इस प्रकार भगवान् ्अपनी रिस्यमय दोिरी आममा में, अपनी द्ववववध शजकत में प्रकट िैं, द्वाववमौ पुरुषौ; वेएक िी साथ क्षर वस्तुओंकी उस आममा को धारण करते िैं जो ये सब भूत िैं, क्षरः सवाणि भूतानन, तथा उस अक्षर आममा को भी धारण करते िैं जो सवभूितों के ऊपर उनकी शाश्वत नीरवता और जस्थरता की अक्षुब्ध अचलता में जस्थत रिती िै। और इनके अंदर ववद्यमान भागवत् ्शजकत के कारण िी मनुष्य के मन, हृदय और संकल्पशजकत इन दो आममाओंके द्वारा ववभभन्न हदशाओं ंमें इतनी प्रबलता के साथ खींचे जाते िैं मानो ऐसे दो ववरोधी एवं ववसंगत आकषणिों के द्वारा खींचे जा रिे िों जजनमें से प्रमयेक दूसरे को ववनष्ट करने पर तुला िुआ िै। परन्तु भगवान् ्न तो पूण िरूप से क्षर िैं और न पूण िरूप से अक्षर िी िैं। वे अक्षर पुरुष से मिान् ्िैं और पररवतनिशील (क्षर) वस्तु-समूि की आममा से भी अमयधधक मिान् ्िैं। यहद वे एक साथ दोनों िी भावों में बनेरिने में समथ िैं तो इसका कारण यि िै कक वे दोनों से अन्य िैं, अन्यः, समस्त सृजष्ट के ऊपर अवजस्थत पुरुषोिम िैं और कफर भी इस जगत् ्में व्याप्त िैं और साथ िी, वेद ववश्वानुभूनत में भी व्यापे िुए िैं।

िालाकाँक दूसरे िी अध्याय से गीता में क्षर और अक्षर का उल्लेख , आमम-ज्ञान तथा आता रिा िै परंतु यिा ाँगीता ने बि िी ननणायिक रूप से इनसे ऊपर आता रत उिम पुरुष का उल्लेख ककया िै। गीता के स्वर में अब मि अधधकाधधक एक मूलभूत अंतर पातेिैं कक भगवान् ्अपनी सिा को स्पष्ट रूप से प्रनतजष्ठत कर रिे िैं। आरंभ में भगवान् ्ने परोक्ष रूप से िी अपनी सिा का संकेत ककया था, परंतुयिााँ स्पष्ट रूप से अपनेको पुरुषोिम रूप से प्रनतजष्ठत करके वे प्रमयक्ष रूप से ऐसा उद्घोवषत करते िैं। कक एकमेव उन्िींकी सिा िै और वे िी सभी चीजों के एकमात्र कारण िैं, वे िी एकमेवाद्ववतीय िैं। इतनेस्पष्ट रूप से ननरूपण के बाद भी िम गीता पर अनेकानेक टीकाएँ पाते िैं कक गीता क्षर भाव को मयाग कर अक्षर में अवजस्थत िोने की बात किती िै। कुछ मत गीता को कमों से संन्यास का प्रनतपादन करने वाला ग्रंथ बतातेिैं। इसीभलए श्रीअरववन्द अपनी टीका के माध्यम से गीता की िी वाणी और अधधक प्रखर और असंहदग्ध बना देते िैं कक अक्षर में चले जाना उपाय निीं ंिै। सच्चा उपाय िै

पुरुषोत्तम की चेतना से तादाममय स्थावपत करना कयोंकक पुरुषोत्तम की चेतना ि ी क्षर और अक्षर दोनों भावों को अपनेउधचत उपयोग में लाकर उन दोनों से ि ी परे बनी रिती ि ै। वे एकमेवाद्धवतीय परमाममा ि ी अभभव्यजकत में इतने ेअसंख्य रूप धारण कर लेते ि ैं कयोंकक ककसी एक रूप में तो उन्िें बाधााँ ि ी निीं ंजा सकता और इससे भगवान् ् की परम् ्स्वतंत्रता का भान िोता ि ै। िम परमाममा पर जो भी गुण आरोवपत करते ि ैं वे उनसे सवथिा ववपरीत पिलू भी अपना कर अपनी पूण ि ननरपेक्ष स्वतंत्रता का पररचय देते ि ैं। यहद िम उन्िें सवज्ञि की संज्ञा दें तो वे ेघोर अज्ञानी का रूप भी धर सकतिैं, यहद िम उन्िें सवशिजकतमान् ्की संज्ञा दें तो वे एक ऐसे क्षणभंगुर जीव का रूप भी धारण कर सकते ि ैं जजसका अजस्तमव मात्र ि ी सदा संहदग्ध रिता ि ै। यहद सिी दृजष्टकोण से देखा जाए तो इन सभी ववपयियों के द्वारा िमें भगवान् ्की पूण िस्वतंत्रता का भान िोता ि ै। यिी निीं,ं वे िमारी स्वतंत्रता और बाध्यता की पररकल्पना से भी सवथिा परे ि ैं।

यो मामेिमसंमूढो जानानत पजरुषोत्तमम् ्।
स सिविद्‌जिनत मांसििभिेन भारत ।। १९।।

१९. हे भारत। मोहरदहत जो मनष्जय इस प्रकार मझेु परुजषोत्तम के रूप में जनता एिं देखता है िह सि–ज्ञाता अपनी प्राकृत सत्ता के हर रूप, हर प्रकार से मेरी भस्क्त करता है।

इनत गह्जयतमं ंशामत्रसमदमक्जतंमयानघ ।
एतद्बद्‌जध्िा बजद्धिमान्मयात्कृतकृत्यश्च भारत ।। २० ।।

२०. हे ननष्पाप अजुनुज! इस प्रकार यह गह्जयतम शामत्र मेरे द्िारा तझुेकहा गया है। हे भारत! इसे पूणुतुया जानने का अथु ुहै बजद्धि में पूणु ुहोना और परम अथु ुमें सिल होना।

जो कोई भी उन्िें इस प्रकार पुरुषोत्तम के रूप में जानता तथा देखता ि ै, वि कफर चािे यि जगत्–दृश्य िो या कफर इन दो परस्पर ववरोधी सिाओं का पृथक् आकषणि िो, इनमें से ककसी से भी कफर ववभ्रांत निीं ंिोता।... वि उनका आभलंगंन करता िुआ उन्िें अनतिांत कर जाता ि ै, उनके ववरोध को जीत कर सवववद्, समग्र-ज्ञानी बन जाता ि ै। वि आममा और वस्तुओंका, दोनों का संपूण िआशय जान लेता ि ै; वि भगवान् ्के समग्र समय को पुनः प्राप्त कर लेता ि ै, समग्रंमाम्‌् वि क्षर और अक्षर दोनों को पुरुषोत्तम में एकीभूत कर देता ि ै। वि अपनी सिा तथा समस्त भूतों की सिा की परम् ्आममा से, अपनी शजकत तथा सब शजकतयों के एकमात्र प्रभु से, जगत् ्में तथा इसके परे ववद्यमान समीपस्थ और दूरूस्थ सनातन से प्रेेम करता, उनकी पूजा करता, उनकी शरण लेता तथा उनका भजन करता ि ै। और, यि सब भी वि अपनी सिा के ककसी एक ि ी पाश्व िया अंश के द्वारा, एकमात्र आध्याममीकृत मन, हृदय की चौंधधयानेवाली प्रखर परंतु संकीण िज्योनत या केवल कमगित संकल्प की अभीप्सा के द्वारा निीं,ं अवपतु अपनी सिा एवं ंसंभूनत, अपनी आममा एवंप्रकृनत के सभी सुप्रदीप्त साधनों के द्वारा, सवभिाव से करता ि ै। अपनी अववचल स्वप्रनतष्ठ सिा की समता में भगवमस्वरूप िोता िुआ तथा उस समता में सब पदाथों एवं प्राणणयों के साथ एकमय िोता िुआ वि उस ननःसीम समता तथा गंभीर एकमव को अपनेमन,

हृदय, प्राण और शरीर के अंदर उतार लाता िै और उसकी नींव पर हदव्य प्रेम, हदव्य कम िएवं ंहदव्य ज्ञान के त्रैतै को अववभाज्य एवं समग्र रूप में स्थावपत करता िै। गीता के मोक्ष का माग िियी िै।

और आणखरकार कया यिी वि सच्चा अद्वैत निीं िै जो एकमेव सनातन सत् ्में लेश मात्र भी भेद निीं करता? यि चरम भेदशून्य अद्वैतवाद एकमेव को प्रकृनत की अनेकताओं में भी एक िी देखता िै, यि उसे सब पिलुओंमें एक िी देखता िै, आममा तथा जगत् ्के समस्वरूप में भी वि उसे उतना िी एक देखता िै जजतना कक ववश्वातीत के उस ििमि समस्वरूप में जो आता का मूल तथा जगत् ्का समय िै और जो न तो ववश्व-संभूनत की ककसी प्रकार की समयता से या ककसी वैजश्वक अथवा ननरपेक्ष ननषेध से िी बद्ध िोता िै। कम-से-कम गीता का अद्वैत तो यिी िै। श्रीगुरु अजुनि से किते िैं कक यि परम गुह्य शास्त्र िै; यि परम ज्ञान और ववज्ञान िै जो िमें सिा के उच्चतम रिस्य के मम िमें ले जाता िै। इसे पूण िरूप से जानने तथा ज्ञान में, संवेदन में शजकत एवं अनुभूनत में इसे अधधकृत करने ेका अथ ििै रूपांतररत बुद्धध में पूण ििोना, हृदय में हदव्य रूप से संतृपूत िोना तथा समस्त संकल्प एवं कमि–कलाप के परम प्रयोजन और उद्देश्य में कृतकृमय िोना। अमर िोने,े हदव्य परम प्रकृनत की ओर ऊपर उठने तथा सनातन धम िको धारण करनेका यिी माग ििै।

इस प्रकार पंद्रहिाँ अध्याय 'परुजषोत्तमयोग' समाप्त होता है।

----

* िमें मोक्ष की खोज कयों करनी चाहिये इसका सब से अधधक यथाथ िकारण व्यजकतगत रूप से जगत् ्के दु:ख से मुकुत िो जाना निीं ंिै, - यद्यवप वि मुजकत भी िमें प्राप्त िोगी िी, - वरन् ्यि िै कक िम भगवान्,् पुरुषोिम और शाश्वत के साथ एक िो जाय।ें पूणता, अथात्ि्परम जस्थनत, पववत्रता, ज्ञान, बल, प्रेम और सामथ्य,ि की खोज िमें कयों करनी चाहिए इसका सबसे अधधक यथाथ िकारण यि निीं ंिै कक व्यजकतगत रूप में िम हदव्य प्रकृनत का उपभोग करें, यि भी निीं ंकक िम देवताओं ंके समान बन जाय,ें - यद्यावप ऐसा हदव्य उपभोग भी िमें अवश्य प्राप्त िोगा, - वरन् ्यि ि िै कक इस मुजकत और पूणता को प्राप्त करना िी िमारे अन्दर भगवान् ्की इच्छा िै, यिी प्रकृनत में िमारी आममा का सवोच्च समय िै, यिी ववश्व में वद्धिनशील अभभव्यजकत का सदा-अभभप्रेत लक्ष्य िै। स्वतन्त्र, सवागिपूण िऔर आनन्दमयी हदव्य प्रकृनत को व्यजकत में अवश्य प्रकट िोना चाहिये जजससे कक यि संसार में भी अभभव्यकत िो सके। अववद्या (की अवस्था) में भी व्यजकत वस्तुतः ववराट् के अन्दर और ववराट् के प्रयोजन के भलये िी ननवास करता िै कयोंकक अपने अिं के प्रयोजनों और कामनाओं ंका अनुसरण करता िुआ भी वि ववश्वप्रकृनत के द्वारा बाध्य िोकर अपने अिंमूलक काय िसे इन लोकों के अन्दर उसी (प्रकृनत) के काय िऔर प्रयोजन में िी सियोग देता िै। परन्तु यि सियोग वि त्रबना सचेतन संकल्प के एवं अपूण िढंग से और उसकी अथि– ववकभसत एवं अद्धि-वेतन तथा अपूपेत एक संकल्प के एवं अपूण ििग िो अिं से मुकत चोकू लागवान से एकमव प्राप्त करना उसके व्यजकतभाव का मुजकत िै और यिी उसकी पररपूणता भी िै। इस प्रकार मुकत, शुद्ध और पूणता प्राप्त को मुजकत दैन्य आममा - जैसा प्रारका से िी अभभमत था, सचेतन तथा समय रूप में, ववराद और परात्पर भगवान् ्में और उसके भलये तथा उसके ववश्वगत संकल्प के भलये जीवन यापन करने लगता िै।

सोलिवााँ अध्याय

देव और असुर

गीता की ववचारधारा का ववकास एक ऐसे त्रबन्दु ुपर पिुाँच गया ि जिााँ केवल एक िी प्रश्न समाधान के भलए बाकी रि जाता ि, - िमारी बद्ध और दोषपूण ि प्रकृनत का प्रश्न, कक केवल भसद्धान्त-रूप में िी निंअवपतु अपनी सभी चेष्टाओं में, ननमनतर से उच्चतर सिा की ओर तथा अपने वतमिान कम–ि ववधान से शाश्वत धम िकी ओर यि अपना ववकास ककस प्रकार साधधत कर सकती ि। यि एक ऐसी समस्या ि जो गीता-प्रनतपाहदत कुछ एक भसद्धान्तों में अंतननिहित ि, ककन्तु ुजजतनी प्रधानता उसे दीााँ गई ि उसकी अपेक्षा अधधक प्रधानता के साथ ननरूवपत करने तथा अधधक स्पष्ट रूप में िमारी बुद्धध के समक्ष रखने की आवश्यकता ि।

....कयोंकक इस समय िमारे सब कमों का झुकाव एवं उनके रूप का ननधारिण प्रकृनत के द्वारा ककया जाता ि, और यि प्रकृनत यिााँ त्रत्रगुणाजममका प्रकृनत ि, और समस्त प्राकृत सिा में तथा प्रकृनतगत सभी कायों में ये तीन गुण ववद्यमान रिते िं, अपनेअज्ञान और ज़िता सहित तमस्, ् अपनी गनतशीलता और किया तथा आवेग, दुःख और ववकार से युकत रजस्, ् अपनेप्रकाश और सुख से युकत सत्त्व; और कफर समस्त प्राकृत सिाओं और कमों में इन चीजों का बंधन भी रिता िी ि। मान लें कक जीव अपनी अंतःसिा में त्रत्रगुण से ऊपर उठ जाता ि कफर भी यि प्रश्न उठता ि कक अपनी यंत्र-स्वरूप प्रकृनत में वि उनके किया-कलाप, पररणाम तथा बंधन से ककस प्रकार मुकत िोता ि? कयोंकक, गीता किती ि कक ज्ञानी मनुष्य को भी अपनी प्रकृनत के अनुसार िी कम िकरना िोगा। बाह्य अभभव्यजकत में गुणों की प्रनतकिया को अनुभव तथा सिन करना, पर पीछे अवजस्थत साक्षीस्वरूप सचेतन आममा में उनसे मुकत तथा ऊपर रिना िी पयाप्ति निं ंि; कयोंकक स्वतंत्रता और अधीनता का एक द्वैत, तथा जो कुछ िम भीतर िं और जो कुछ िम बािर िं उनके बीच, िमारी आममा और िमारी शजकत के बीच, अपनी सिा का जैसा स्वरूप िम जानते िं तथा िम जो संकल्प एवंकम िकरते िं उनके बीच एक अंतववरिोध कफर भी बना रिता ि। इसमें मुजकत किााँ, उच्चतर आध्याजममक प्रकृनत में पूण िउमकष ितथा रूपान्तर कि ााँि, सनातन धम,ि भागवत् ्सिा की अनंत पववत्रता एवं शजकत का ननज धम िकिााँ ि? यहद इस दिे में रिते िुए यि पररवतनि साधधत निं ककया जा सकता तब तो यि किना िोगा कक समपूण िप्रकृनत का रूपान्तर करना संभव निं ंऔर जब तक जीवन का यि

मृमृयुशील ढाचाँा पररमयकत खोल की भानाँत आममा से उतरकर अलग निीं िो जाता तब तक यि इंर सुलझे ेत्रबना ज्यों-का-मयों बना रिेगा। पर उस जस्थनत में कम िको यि इन यथोधचत निीिं सकता या कम-से-कम वि चरम भसद्धान्त तो से िी निींसकता: तब तो पूण िननस्तब्धता या, कम-से-कम, एक यथासमय पूण िननस्तब्धता, उििरेर वधमिान संन्यास और कमों का पररमयाग िी पूणमिव-प्राजप्त के भलए एक सच्चा उपदेश प्रतीत िोगा, - जैसे कक मायावादी दावा करता िी िै, जो किता िै कक जब तक िम कम िमें बने रितें तब तक गीता का माग िननःसंदे समुधचत माग िै, परंतु कफर भी समस्त कम िी भ्रम िै और ननस्तब्धता िी सवोच्च पथ िै। इस भाव से कम िकरना उसिम अवश्य िै पर कममियाग, ननवृवि एवं पूण िननस्तब्धता तक पिुँचने के एक सोपान के रूप में िी।

यिी वि कहठनाई िै जजसका उसिर गीता को अभी देना िै ताकक वि ईश्वरान्वेषक के भलए कमों का औधचमय भसद्ध कर सके....।।

इस ववषय पर िम पिले भी चचािकर चुके िैं कक केवल आममपरक सिा िी निींअवपतु वस्तुपरक या बािरी सिा भी गुणों की किया से मुकत िो सकती िै। इसके भलए गीता किती िै कक केवल भगवान् ्की भजकत के द्वारा िी ऐसा ककया जाना संभव िै। परंतु गीता ने यिा ्ँइस ववषय को ववस्तृतृता से उठाकर इसका जजस प्रमयक्ष रूप में समाधान ककया िै वैसा उसनेपिले निीं ्ंककया था। इस समाधान में गीता साथ िी साथ दो तरीके की प्रकृनतयों के लोगों के बीच भेद करती िै, एक िैं दैवी प्रकृनत से युकत लोग और दूसूरे िैं आसुरी प्रकृनत से युकत लोग। इनमें जो मूलतः दैवी प्रकृनत के लोग िैं वे िी भगवान् ्की ओर जा सकतिैं, दूसूरे निीं।

प्रश्न : देव और असुर तो दोनों भगवान् ्की िी देन िैं, तब कफर केवल दैवी प्रकृनत के लोग िी भगवान् ्की ओर कयों जा सकतिैं?

उत्तर : देव और असुर पराप्रकृनत के द्वारा सृषृट ककये जाते िैं। जब संसार की अभभव्यजकत िोती िै और उच्चतर लोकों से िोते िुए ननमनतर लोकों का ननमाणि िोता िै तब ननवतनि की प्रकिया में असुर सिायक िोते िैं परंतु चेतना जब ननश्चेतन स्तरों से िमववकास की गनत का अनुसरण कर अपनेमूलस्रोत तक पुनः आरोिण करती िै तब देवता उस गनत में सिायक िोतिैं और असुर इस आरोिण में बाधक िोतिैं। इसभलए िमारे पुराणों आहद में देवताओं को ननवृविपरक माना जाता िै और असुरों को प्रवृविपरक। इसभलए ननवतनि की प्रकिया में ननवृवि भाव सिायक निीं िोता उसमें तो प्रवृवि आवश्यक िै। इसीभलए ननवतनि में असुर सिायक िोते िैं। कम िकरने ेका अथ ि प्रकृनत के तीन गुणों के अधीन िोना िै; उसकी किया की इन अवस्थाओं के ऊपर उठने का अथ िआममा में नीरव िोकर जस्थत रिना िै। ईश्वर, पुरुषोिम, जो प्रकृनत के सब कायों और कियाओं के स्वामी िैं तथा जो अपनेहदव्य संकल्प के द्वारा उन सबका ननदेशन और ननधारिण करते िैं, ननःसंदे गुणों की इस यांत्रत्रक किया से परे िैं; वे प्रकृनत के गुणों से प्रभाववत या आबद्ध निीं ्ंिोते; परन्तु कफर भी ऐसा प्रतीत िोता िै कक वे सदा इन्िीं के द्वारा काय िकरते िैं, सदा स्वभाव की शजकत से तथा गुणों के मनोवैज्ञाननक यंत्र के द्वारा िी गठन करते िैं। ये प्रकृनत के तीन मूलभूत गुण िैं, यिा ्ँिमारे अन्दर जो कायविाहिका प्रकृनत-शजकत गहठत िो रिी िै उसकी ये आवश्यक कियाएँ िैं, और स्वयं जीव भी इस प्रकृनत के अन्दर भगवान् ्का एक अंश मात्र िै। यहद मुकत व्यजकत मुजकत के

बाद भी कम ि करता रिता ि ै, कमि–प्रपंच में ववचरण करता ि ै, तो वि प्रकृनत के अन्दर रिता ि ुआ तथा उसके गुणों के द्वारा सीमाबद्ध एवं ं उनकी प्रनतकियाओं के अधीन ि ोकर ि ी कम ि कर सकता तथा ववचरण कर सकता ि ै, और जब तक उसकी सिा का प्राकृत भाग बना रिता ि ै तब तक वि भगवान् ्की मुकतावस्था में कम ि निीं कर सकता। परन्तु गीता ने इससे ठीक ववपरीत बात किी ि ै, वि यि कक मुकत योगी गुणों की प्रनतकियाओं ं से छुटकारा पा लेता ि ै और वि चािे जो भी कम ि करे, चािे जजस प्रकार भी रिे, पर वि सदा ईश्वर में ि ी, उनके स्वातंत्र्य और अमृतमव की शजकत में ि ी, परमोच्च शाश्वत अनंत के ववधान में ि ी ननवास करता ि ै, उसी में गनत तथा कम ि करता ै, सविथा वतिमानोऽवप स योगी मनय वतिते। ऐसा प्रतीत ि ोता ि ै कक यिााँ एक परस्पर ववरोध एवं ं गनतरोध ि ै।

छठे अध्याय के इकतीसवें श्लोक में भी गीता ने स्पष्टतः किा कक 'जो योगी एकमव भाव में जस्थत ि ोकर समस्त भूतों में मुझसे प्ेरेम करता ि ै वि योगी चािे जजस प्रकार रिे और कम ि करे मुझ में ि ी रिता और कम ि करता ै।' अतः जो योगी भगवान् ्में ि ी रिता और कम ि करता ि ै उसके ऊपर कमबंधिन लागू निीं िोते। अलग-अलग स्थानों पर गीता बराबर ि ो इस ओर संकेत करती ि ै कक जब साधक भगवान् ्में ि ी ननवास करता ि ै तब वि कमबंधिन और गुणों से ऊपर रिता ि ै। अतः इस सारे पूरा प्रकाश ि ाला जाना आवश्यक ि ै। ववषय पर

"जब व्यजकत भागवत् ्चेतना में ननवास करता ि ै तब बािरी दृजष्ट को तो उसके कम ि गुणों के अधीन प्रतीत ि ो सकते ि ैं, कयोंकक बािरी दो को तो केवल उस कम ि की प्रकिया गोचर ि ोती ि ै उसके पीछे की ककया हदखाई निीं ं देती, परंतु वास्तव में उस पर ककसी प्रकार के कोई गुण और कमों के फल या पररणाम लागू निीं ं ि ोते। श्रीमाताजी के काय,ि या कफर भगवान् ्श्रीकृष्ण की कियाएँ भी ककसी सामान्य दृजष्ट को गुणों के अधीन प्रतीत ि ो सकती ि ै, परंतु वास्तव में तो वि भागवत् ्किया ि ोती ि ै जो ककसी भी बािरी प्रकिया से बाँधी निीं ं ि ोती और न ि ी उस पर गुण लागू ि ोते ि ैं कयोंकक वि ककसी कामना या ननजी ि ेतु से निीं अवपतु भागवत् ्संकल्प की अभभव्यजकत के भलए काय ि करती ि ै। अन्यथा मुकत व्यजकत भी गुणों के अधीन ि ोकर ि ी कम ि में प्रवृि ि ुआ नजर आता ि ै।

परन्तु ऐसा तभी हदखायी देता ि ै जब ि म ववश्लेषक मन के कठोर ताकककि ववरोधों के साथ गाठाँ बाधाँ लेते े ैं, तब निीं जब ि म आममा के स्वरूप, तथा प्रकृनत के अन्दर ववद्यमान अध्यामम-सिा पर मुकत एवं सूक्ष्म रूप से दृजष्टपात करते ि ैं। जो शजकत जगत् ्को चला रिी ि ै वि वास्तव में प्रकृनत के गुण निीं ं ि ैं, - ये गुण तो ि मारी सामान्य प्रकृनत का केवल ननमनतर पिलू ि ैं, उसका एक यंत्र मात्र ि ैं। वास्तववक चालक-शजकत तो एक आध्याजममक भगवमसंकल्प ि ै जो वतिमान में इन ननमन अवस्थाओं का प्रयोग कर रिा ि ै, पर जो स्वयं मानवीय संकल्प की भानाँत गुणों के द्वारा सीमाबद्ध एवं ननयंत्रत्रत निीं िोता, उनका यंत्र निीं ं बन जाता। ननःसंदेि, कयोंकक ये गुण अपनी किया में इतने सावभौिमक ि ैं, इनका मूल परमामा की शजकत के भीतर ननहित ककसी तत्त्व में ि ी िोना चाहिए; हदव्य संकल्प-बल में ऐसी शजकतयाँ अवश्य ि ोनी चाहिए जजनसे प्रकृनत के ये गुण उद्भूत ि ोते ि ैं। कयोंकक, ननमनतर सामान्य प्रकृनत में सभी कुछ पुरुषोिम की सिा की उच्चतर आध्याजममक शजकत से ि ो ननःसृत िोता ि ै, मिः प्रवतिते; वि त्रबना ककसी आध्याजममक मूल कारण के सविथा ककसी नवीन वस्तु के रूप में उद्भुत निीं ं िो जाता। आममा की मूल शजकत में कोई ऐसी चीज अवश्य ि ै जजससे ि मारी प्रकृनत का साजत्त्वक प्रकाश एवं सुख

उसकी राजभसक गनत तथा तामभसक ज़िता ननःसृत िुई िैं और जजसके ये अपूण िया ववकृत रूप िैं। ककन्तु एक बईत जब िम इन रूपों की अपूणतिा एवं ंववकृनत, जजसके अन्दर िम ननवाक करते िैं. िे परे इनके स्रोतों के ववशुद्ध रूप तक पिुँचतिैं तो िम पाते िैं कक, ज्यों िी िम आममा के अन्दर ननवास करने लगते िैं मयों िी, ये गनतयाँ एक सवथिा भभन्न रूप धारण कर लेती िैं। सिा और कम ितथा इन दोनों की त्रत्रगुणाममक अवस्थाएँ अपनेवतमिान सीभमत रूप से सवथिा भभन्न और किीं अधधक उच्चतर वस्तुएँ बन जाती िैं।

इसे िम एक उदिारण के माध्यम से समझ सकतिैं। जब व्यजकत कोई नाटक प्रस्तुत कर रिा िोता िै और उसे पूरी कथावस्तु का पता िोता िै तब वि अपनेभाग को अच्छे से अच्छे ढंग से ननभाता िै और आवश्यक सभी प्रकार के भावों को व्यकत करते िुए भी स्वयंभीतर से जानता िै कक यि केवल नाटक िै और इससे वि ववचभलत निीं ंिोता। परंतु दशकि को तो उसके भभन्न-भभन्न भावों की प्रतीनत िोती िै जबकक वास्तव में कलाकार की अववचल मानभसक जस्थनत उसे गोचर निींिोती। इसी प्रकार जो भगवान् ्के संकल्प की िी अभभव्यजकत करते िैं वेबािर से तो त्रत्रगुणाममक प्रकिया के द्वारा िी काम करते प्रतीत िोतिैं परंतुवास्तव में वे उन गुणों से भलप्त निीं ंिोते इसभलए उनकी किया त्रत्रगुणाजममका निीं िोती। दशकि को देखनेमें प्रतीत िो सकता िै कक कलाकार िब्रे े िी िोध में िै, जबकक भीतर से वि कलाकार अपने भाग को अच्छे ढंग से प्रस्तुत करके ब्रिी संतुजष्ट मिसूस कर रिा िो सकता िै। साथ िी, नाटक का उद्देश्य िोता िै कक उसके द्वारा एक संदेश हदया जाए और उसे इस रूप में प्रस्तुत ककया जाए कक दशकि उस संदेश को सिज रूप से ग्रिण कर सकें। उसी के अनुरूप संवाद, मंच, साज-सज्जा आहद की व्यवस्था की जाती िै ताकक उस नाटक का संदेश दशकि तक भली-भानाँत पिुँच जाए और उस पर उसका गिरा प्रभाव पि्र सके। इसी प्रकार भागवत् ्काय िकरते समय भी व्यजकत का उद्देश्य केवल यि िोता िै कक ककस प्रकार प्रभुका काय िसविोम ढंग से ककया जाए और उसके भलए वि जब, जिा ाँऔर जैसा आवश्यक िोता िै वैसा िी व्यविार करता िै। इसभलए वि जो भी भाव आवश्यक िोता िै विी अभभव्यकत कर देता िै। यहद िोध 1 की आवश्यकता िो तो वि िोध करने ेसे निीं ंहिचककचाता, यहद युद्ध, संिार आहद घोर कम िकरने िों तो उनसे भी निीं ंचूकता। इसीभलए बािरी दृजष्टकोण से तो ये सभी तामभसक या राजभसक काय िप्रतीत िो सकते िैं परंतु हदव्य कमी की चेतना में तो ये सभी कम िकेवल भागवत् ्संकल्प की अभभव्यजकत िोने के कारण त्रत्रगुणों की किया से परे रितिैं।

जब व्यजकत परमाममा की चेतना के अधधकाधधक समीप जाने लगता िै तब उसे भीतर से आभास प्राप्त िोने ेलगता िै कक कया करना चाहिये और कया निीं ंकरना चाहिये। तब उसे इससे सरोकार निीं ंरिता कक यि तामभसक काय िै या राजभसक या साजत्त्वक। उसकी चेतना में इन सभी चीजों का कोई स्थान निींरिता कयोंकक वि तो सवथिा एक भभन्न चेतना में ननवास करता िै। बािरी रूप से तो श्रीमाताजी भी ककसी पर िोष कर देती थीं, और ककसी के ऊपर िोध करनेका बािरी कारण िोतिुए भी अनुग्रि हदखाती थीं, ककसी को राजसी सुववधाएँ प्रदान करती थीं तो ककसी को केवल मूलभूत सुववधाएँ िी प्रदान करती थीं। इसभलए बािरी दृजष्टकोण से उनके व्यविार के द्वारा कोई भी कि सकता था कक उनको कियाएँ त्रत्रगुणाजममका थीं। परंतु वे सदा िी आममा के दृजष्टकोण से जैसा जजसके साथ आवश्यक िोता था वैसा िी उसके साथ व्यविार करती थीं। इसी कारण प्रमयेक के साथ व्यविार

में अंतर िोतेिुए भी प्रमयेक भली-भानाँत जानता था कक श्रीमााँ उससे अनतशय प्रेम रखती िैं और उसके भलए जो आवश्यक िै विी करती िैं।

श्रीअरववन्द के अनुसार पराप्रकृनत के अंदर अपनेसच्चेस्वरूप में जस्थत समता, तपस् ्और ज्योनत िी ननमन प्रकृनत में भ्रष्ट िोकर तमस्, ् रजस् ्और सत्त्व बन जाते िैं। इसभलए ये तो केवल भ्रष्ट रूप िैं, इनका कोई अजस्तमव निींिै। हदव्य कमी वास्तव में समता, तपस् ्और ज्योनत के अनुसार िी काम करता िै परंतुननमन प्रकृनत के वशीभूत िोने ेके कारण िम उन्िें उनके भ्रष्ट रूपों से समझ बैठते िैं।

इसे देखने का एक अन्य दृजष्टकोण यि िै कक वास्तव में इस जगत् ्में जगज्जननी के अनतररकत अन्य ककसी का अजस्तमव निींिै। जब भगवान् ्की पराशजकत जगज्जननी कती िोती िै तब उसे प्रकृनत किते िैं और जब वि किया का साक्षक्षमव करती िै तब उसे पुरुष कि देते िैं। अतः अभभव्यजकत में पराप्रकृनत िी िमारी आममा बनती िै, विी प्रकृनत बनती िै, और विी पुरुष बनती िै। सारी िीला उसी की िै। और केवल एक मानभसक उपकरण के माध्यम से देखने के कारण िी िमें यि िीला त्रत्रगुणमयी प्रतीत िोती िै जबकक वास्तव में ऐसा कुछ भी निींिै। यि तो वैसा िी िै जैसे कक रंगीन चश्मे के द्वारा िमें सारा जगत् ्उसी रंग का नजर आने ेलगता िै जबकक वि वैसा िोता निीं िै। अतः जब िम अपनी मानभसक चेतना के माध्यम से चीजों को देखने का प्रयास करते िैं तब िमें वे त्रत्रगुणमयी प्रतीत िोती िैं। यिा ाँतक कक जो उच्चतर गुण िैं वे भी केवल देखने का तरीका मात्र िी िैं कयोंकक वास्तव में तो सभी कुछ केवल जगदमबा के संकल्प के द्वारा िी संभसद्ध िोता िै और वि ककन्िीं भी गुणों या प्रकिया आहद से बाध्य निीं ंिै। ननमन प्रकृनत में गुणों का आभास अज्ञान की उपज िै। जब अज्ञान भमट जाता िै तब वि गुणों का आभास भी स्वयमेव िी लुप्त िो जाता िै। जैसे-जैसे चेतना के स्तर में बदलाव आता िै वैसे-वैसे िी यि जगत्–दृश्य बदलता जाता िै। जैसा संसार मनुष्यों को नजर आता िै वैसा पशुओं को निीं आता। और जैसा जगत् ्देवताओं को गोचर िोता िै वैसा मनुष्यों को गोचर निीं ंिोता। इसभलए चेतना के स्तर पर ननभरि करता िै कक जगत् ्की प्रतीनत कैसी िोगी। इसीभलए गीता किती िै कक जो भगवान् ्की भजकत करता िै वि तीनों गुणों से परे चला जाता िै। यि तो स्वाभाववक िी िै कक जब व्यजकत भगवान् ्की भजकत करता िै तब अधधकाधधक वि भगवान् ्की चेतना में ननवास करने ेलगता िै और चूँकक भगवान् ्की चेतना में गुणों का कोई अजस्तमव िी निीं िै इसीभलए वि साधक भी तीनों गुणों से परे चला जाता िै।

समस्त द्वंद्व और संघष िसे युकत जगत् ्की इस ववक्षुब्ध गनत के पीछे कया चीज िै? वि कौन-सी चीज िै जो मन को छूते िी, मानभसक रूप धारण करते िी कामना, चेष्टा, श्रम, भ्रांत संकल्प, पाप और दुःख-दिद की प्रनतकियाएँ उमपन्न करती िै? वि गनत में प्रवृ आममा का संकल्प िै, कमरित ववराट् भगवत्–संकल्प िै जो इन चीजों से प्रभाववत निीं िोता, वि मुकत एवं अनंत चेतन परमेश्वर की एक शजकत िै जजसमें कोई कामना निीं, कयोंकक वि ववश्व की समस्त संपदा की स्वाभमनी िै और अपनी गनत के सिज-स्फूत आनन्द की भोकत्री िै। ककसी प्रकार के प्रयमन तथा श्रम से कलांत न िोती िुई वि अपने साधनों तथा उद्देश्यों के ननबाधि प्रभुमव का उपभोग करती िै; संकल्प की ककसी भी त्रुहट के कारण पथ भ्रष्ट न िोती िुई वि आममा और वस्तुओंके एक ऐसे ज्ञान को

धारण करती ि ै जो उसके प्रभुमव और आनंद का मूल स्रोत ि ैः ककसी भी दुःख, पाप या वेदना से पराभूत ि ुए त्रबना वि अपनी सिा के और शजकत के आनंद और पववत्रता से युकत ि ै। जो जीव ईश्वर में ननवास करता ि ै वि इस आध्याजममक संकल्प के द्वारा काय िकरता ि ै, न कक बंधनग्रस्त मन के सामान्य संकल्प के द्वाराः उसकी समस्त किया-प्रवृवि इस आध्याजममक शजकत के द्वारा ि ोती ि ै, प्रकृनत के रजोगुण के द्वारा निीं, ठीक इस कारण कयोंकक वि अब और उस ननमनतर गनत, जजससे यि ववकृनत समबद्ध ि ै, में ननवास निीं करता, अवपतु हदव्य प्रकृनत में गनत के ववशुद्ध और पूण िमम िपर पिुँच गया ि ोता ि ै।

गुणों का संघष ितो ननमन प्रकृनत की अपूणति ा में (भगवान् ्की हदख प्रकृनत का) एक प्रकार का अपूण िप्रनतरूप मात्र ै; तीनों गुण जजन शजकतयों के द्योतक ि ैं वे ेभगवान् ्की तीन मूल शजकतयाँ ि ैं जो न केवल एक पूण िशाजन्तमय सन्तुलन में ि ी जस्थत ि ैं अवपतु हदव्य कम िके एक पूण िसामंजस्य में एकीभूत भी ि ैं। आध्याजममक सिा में तमस् ् हदव्य शांनत बन जाता ि ै, जो कक कोई ज़िता या काय िकरनेकी अक्षमता निींिोती अवपतु ुएक पूण िशजकल ि ोती ि ै जो अपनी समपूण िसामथ्य िको अपने अन्दर धारण कककये रिती ि ै और अमयन्त ववशाल एवं बृित् ्कम ितक को भी ननयजन्त्रत करनेतथा शाजन्त के ननयम के अधीन बनानेमें समथ ि ोती ि ै: रजस् ्आममा की आमम-भसद्धधकारी, प्रवतकि ववशुद्ुध संकल्पशजकत बन जाता ि ै, जो कक कामना, प्रयमन एवं आयासपूण िआवेश निीं रिती अवपतु ुसिा की विी पूण िशजकत ि ोती ि ै जो अनन्त, अक्षुब्ध एवं आनन्दपूण िकम िकरने ेमें समथ ि ै। सत्त्व एक ववकृत मानभसक प्रकाश न रिकर हदव्य सिा की वि स्वयंभू ज्योनत बन जाता ि ै जो सिा की पूण िशजकत की सारभूत अथवा आममा ि ै और हदव्य शाजन्त तथा कमसिमबन्धी हदव्य संकल्पशजकत दोनों के एकमवमय स्वरूप को आलोककत करती ि ै।.... वि ज्योनत प्रकाशपूण िअध्यामम-संकल्प से पररपूण ि ै और उसके ज्ञान तथा उसके कम िमें कोई खाई या ववषमता निीं ि ै। वि आनंद िमारा क्षीणतर मानभसक सुख निीं ि ै, अवपतु गंभीर, तीव्र, प्रगाढ़, स्वयंसत् ्आनंद ि ै; िमारी सिा जो कुछ भी करती ि ै, जजस भी वस्तु की पररकल्पना एवं सृजष्ट करती ि ै उस सब में वि आनन्द व्याप्त रिता ि ै, वि एक जस्थर हदव्य आनंद ि ै। मुकत जीव इस ज्योनत और आनन्द में अधधकाधधक गंभीर रूप से सिभाधगता करता ि ै, जजतना ि ी अधधक पूण िरूप में वि इसके अन्दर वधधति ि ोता ि ै, उतना ि ी अधधक समग्र रूप में वि अपने-आप को भगवान् ्के साथ युकत कर देता ि ै। जिाँननमन प्रकृनत के गुणों में रिते िुए, आवश्यक रूप से, एक असंतुलन बना रिता ि ै, उनकी मात्रा में अजस्थर रूप से बदलाव आता रिता ि ै, तथा आधधपमय जमाने के भलए सतत् ्संघष िरिता ि ै;

'तपस्, ध्रुत्–शजकत

विींइसके ववपरीत, अध्यामम-सिा की िमिर ज्योनत एवं आनन्द, जस्थरता और गनत-संकल्प एक-दूसरे का बहिष्कार निींकरते, परस्पर संघष िनिीं ंकरते, यिा ाँतक कक ये एक संतुभलत ि ी निीं ंरिते वरन् ्इनमें से प्रमयेक शेषे दो का एक अंग ि ै अब अपनी पूणति ा में ये सब एक एवं अववभाज्य ि ैं। िमारा मन जब भगवान् ्औरसकट

पिुँचता ि तो ऐसा प्रतीत िो सकता ि कक वि इनमें से एक का कान कर दूसूरे में प्रवेश कर रि ि, उदिरणाथ,ि ऐसा हदखायी दे सकता ि कक वि कम िकी प्रवृवि को मयागकर शांनत उपलब्ध करना चािता ि, पर इसका कारण यि ि कक पिले-पिल िम अपनेमन की चुनाव करने ेकी वृवि के द्वारा िी उनकी ओर अग्रसर िोतें। बाद में जब मि आध्याजममक मन से भी ऊपर उठनेमें समथ िो जाते ि तब िम देखते ि कक इन हदव्य शजकतयों में से प्रमयेक के अन्दर शेषे सब भी ववद्यमान ि और तब िम इस प्रारजमभक भूल से छुटकारा पा सकतें।

इस प्रकार िम देखतें कक जीव के प्रकृनत के गुणों की सामान्य िीन किया के अधीनस्थ िुए त्रबना भी कम िसंभव ि। वि किया मन-प्राण-शरीर रूपी जजस सीभमत सांचें में िम ढले ि उसी के ऊपर ननभरि करती ि; यि एक ववकृनत ि, एक अक्षमता, एक दोषपूण िया िीन मूल्य ि जजसे ज़िभौनतक में बद्ध मन और प्राण िम पर लादते ि। जब िम आममा में अभभवद्धिधत िोते ि तो प्रकृनत के इस धम िया ननमन ववधान का स्थान आममा का अमर धम िले लेता ि; तब मुकत अमर कम,ि हदव्य असीम ज्ञान, परामपर शजकत और अपार ववश्रांनत का अनुभव मिें प्राप्त िोता ि। पर कफर यि अवस्थांतर या संमिण संबंधी प्रश्न शेषे रि जाता ि; कयोंकक मध्यवती अवस्थाओं, प्रगनत के िमों का रिना आवश्यक ि, कयोंकक इस संसार में ईश्वर की कायपरंपरा में कोई भी चीज त्रबना ककसी प्रकिया या आधार के ककसी आकजस्मक किया के द्वारा निीं िोती। जजस चीज की िम खोज कर रि ि वि िमारे अपनिी अन्दर ि, परंतु िमें अपनी प्रकृनत के ननमनतर रूपों में से उसे ववकभसत करने के भलए उसे कियाममक रूप में अभ्यास में लाना िोगा। अतएव स्वयंगुणों की किया में भी ककसी ऐसे उपाय या सुववधाजनक साधन एवं आधार-त्रबन्दु ुका िोना आवश्यक ि जजसके द्वारा िम यि रूपांतर साधधत कर सकें। गीता इस उपाय को पाती ि सत्त्वगुण के पूण िववकास में जब तक कक वि अपनेशजकतयारक ववस्तार में एक ऐसे स्तर पर निीं ं पिुँच जाता जिाँसे वि अपने को अनतककलो कर सके तथा अपनेउद्गम में ववलीन िो सके। इसका कारण स्पष्ट ि कियोंकक सत्त्व प्रकाश और सुख (प्रसन्नता) की शजकत ि, एक ऐसी शजकत ि जो शांनत और ज्ञान ले आती ि, और अपनी उच्चतम जस्थनत में यि, जजस आध्याजममक ज्योनत एवं आनंद से उमपन्न िुआ ि, उसे कुछ-न-कुछ प्रनतभाभसत कर सकता ि, यिाँतक कक उसके साथ लगभग एक मानभसक तादाममय प्राप्त कर सकता ि। शेषे दो ि्रजस् ्

गुण [illegible] सात्त्वक गुण परा और अपरा प्रकृनत के बीच प्रथम मध्यस्थ ि। सत्त्वगुण को तब तक ववकभसत करना जब तक कक वि आध्याजममक ज्योनत, शाजन्त और प्रसन्नता या सुख से पररपूण िनिीं िो जाता, यिी प्रकृनत की इस प्रारजमभक साधना की पिली शत िि।

जब तक िमारी प्रकृनत अपने ननमन स्पंदनों में िी रमी रिती ि तब तक उसे इन गुणों की िी प्रतीनत िोती रिेगी। इसके भलए तो उच्चतर पराप्रकृनत को िी आकर इसकी सिायता करनी िोगी और इस ननमन प्रकृनत का रूपांतर करना िोगा। तभी गुणों की इस किया का अंत िो सकता ि। अन्यथा तो व्यजकत जब तक समाधध अवस्था में रिता ि तब तक तो उसके आममपरक भागों को त्रत्रगुणों से मुजकत भमल जाती ि परंतु ुज्यों िी वि इस ननमन प्रकृनत में आता ि मयों िी पुनः उसी प्रपंच में बाँध जाता ि। इसभलए इस ननमन प्रकृनत में भी व्यजकत सफल रूप से

गुणों से परे रिते िुए किया कर पाए, उसके भलए रूपांतर की आवश्यकता िै। और रूपांतर तभी साधधत िो सकता िै जब िम श्रीमाताजी की शजकत को अपनी प्रकृनत के द्वारा मुकत रूप से किया करने ेका मौका प्रदान करते िैं। यिी समपणि िै।

----

* उच्चतम प्रकृनत की किया के ये परम आध्याजममक एवं अनतमानभसक रूप ननमन प्रकृनत के तीन गुणों के अनुरूप िैं; इनका जो वणनि यिाँ ककया गया िै वि गीता से निीं भलया गया िै अवपतु वि आध्याजममक अनुभूनत के आधार पर प्रस्तुत ककया गया िै। गीता उच्चतम प्रकृनत की किया का, रिस्यम् ्उिमम्,् का ककंधचत् ्भी वणनि निीं करती, वि इसे जजज्ञासु पर छोड़ देती िै ताकक वि स्वयं ंअपनी आध्याजममक अनुभूनत के द्वारा इसे उपलब्ध करे। वि केवल उच्च साजमवक स्वभाव और कमविाली प्रकृनत का ननदेश भर कर देती िै जजसके द्वारा यि परम रिस्य प्राप्त ककया जा सकता िै, और साथ िी वि समव के भी ऊपर उठने तथा तीनों गुणों को पार करनेके भलए आग्रि करती िै।

• यि बात आमम-ववजय, पुरुषाथ िऔर साधना के द्वारा आरोिणशील िमारी प्रकृनत के दृजष्टकोण से िै। पर इसके साथ िी िमारी सिा का रूपांतर करने के भलए इसके अंदर हदव्य ज्योनत, उपजस्थनत और शजकत का अवतरण िोना तथा अधधकाधधक िस्तक्षेप करना भी आवश्यक िै; अन्यथा भसद्धध के चरम त्रबंदु ुपर तथा उसके परे रूपांतर साधधत निीं िो सकता। इसी कारण साधना की अंनतम गनत के रूप में पूण िआमम-समपणि की आवश्यकता िोती िै।

इस िम देखेंगे कक गीता के शेषे अध्यायों का संपूण िअभभप्राय यिी िै। परंतु प्रबोधनकारी प्रकिया की वववेचना करने से पिले इसकी भूभमका के रूप म ेंवि दो प्रकार की सिाओं, देव और असुर, के बीच भेद हदखलाती िै: कयोंकक देव एक उच्च आमम-रूपांतरकारी साजत्त्वक किया में समथ िैं, असुर असमथ।ि िमें यि देखना िोगा कक इस भूभमका का उद्देश्य तथा इस भेद की यथाथ िउपयोधगता कया िै। सभी मनुष्यों की सामान्य प्रकृनत एक-सी िै; वि तीन गुणों का भमश्रण िोती िै; अत:, ऐसा प्रतीत िोगा कक सत्त्वगुण को ववकभसत और पररपुष्ट करनेतथा उसे हदव्य रूपांतर की ऊँचाइयों की ओर उन्मुख कर देने की क्षमता सबके अंदर िै। चूँकक िमारी सामान्य प्रवृवि वास्तव में अपनी बुद्धध और संकल्प को अपनेराजभसक या तामभसक अिंभाव का दास बनानेकी तथा अपनी बेचैन एवं असंतुभलत गनतशील कामना या आमम-ववलासी अथवा भोग में आसकत अकमणण्यता और ननजष्ियता के सेवक बना देने की ओर िोती िै, िम मान सकते िैं कक यि केवल िमारी अववकभसत आध्याजममक सिा की एक अस्थायी प्रवृवि एवं ंइसके अपूण िववकास की अपररपकव अवस्था िी िो सकती िै, और यि तब अवश्य दूर िो जाएगी जब िमारी चेतना आध्याजममक श्रेणी में ऊँची उठ जाएगी। परंतुवास्तव में िम देखते िैं कक मनुष्य, कम-से-कम एक स्तर-ववशेषे से ऊपर के मनुष्य, अधधकांशतः दो श्रेणणयों के अंदर आते िैं, एक तो वे लोग जजनमें ज्ञान, आमम-संयम, परोपकार तथा पूणिता की ओर प्रवृवि रखने वाली साजत्त्वक प्रकृनत की प्रबल शजकत िोती िै और दूसरे वे जजनमें राजभसक प्रकृनत की प्रबल शजकत िोती िै जो अिंकारमय मििा, कामना-पूनत िकी ओर तथा अपनेननजी दृढ़ संकल्प एवं ंव्यजकतमव में भलप्तता की ओर मुड़ी रिती िै जजसे (इस दृढ़ संकल्प और व्यजकतमव को) वे भगवान् ्की सेवा के भलए निीं,ं अवपतु अपनेअभभमान, यश और सुख के भलए जगत् ्पर लादना चािते िैं।

----

* अज्ञान का अथ िै अवववद्या, पृथक्कारी चेतना और उससे ननकलने वाले अिंकारमय मन और प्राण तथा वि सब जो पृथक्कारी चेतना तथा अिंकारमय मन और प्राण के स्वभाव के अनुरूप िी िो... भमथ्यामव, दूसरी ओर, यि अवववद्या निीं िै, अवपतु उसका एक घोर पररणाम िै। । यि एक आसुररक शजकत के द्वारा सृषृट िोता िै जो इस सृजृष्ट में िस्तक्षेप करती िै और जो कक केवल समय से िी ववजच्छन्न निीं िै जजसके कारण कक वि ज्ञान में सीभमत और भ्रांनत की ओर खुली िै, अवपतु समय के ववरुद्ध ववरी करती िै या समय को केवल ववकृत करने के भलये िी उसे अधधकृत करने की अभ्यासी िोती िै...

ये वे शजकतयाँ और सिाएँ िैं जो अज्ञान के जगत् ्में अपने रचे भमथ्यामवों को बनावे रखने में और उन्िें ऐसे समय के रूप में सामनेरखने में रुधच रखती िैं जजनका अनुसरण मनुष्यों को आवश्यक रूप से करना िी िोगा। भारत में उन्िें असुर, राक्षस, वपशाच (िमश: मानसीकृत प्राण, मध्य प्राण और ननमनतर प्राण के लोकों की सिाएँ) की संज्ञा दी गई िै जो कक देवताओं, ं

अथाि्ज्योनत की शजकतयों के ववरुद्ध िैं।

यहद कोई ववरोधी शजकतयााँनिीं िोती, और कफर भी उनके त्रबना िी िमववकासमय जगत् ्िोता, तो अज्ञान तो तब भी िो सकता था परंतु अज्ञान में कोई ववकृनत या भ्रष्टता निीं ंिोती। सभी कुछ एक आंभशक समय िोता जो अपूण िउपकरणों के द्वारा काय िकर रिा िोता परंतु एक ववकासशील अभभव्यजकत की इस या उस अवस्था के भले-से-भले प्रयोजनों के भलए काय ि कर रिा िोता।

* असुर और राक्षस आहद पृथ्वी की निीं अवपतु अनत-भौनतक जगतों से संबद्ध सताएँ िैं: परंतु वे पाधथवि जीवन पर किया करती िैं और मानव जीवन और चररत्र और कम िपर अधधकार जमाने के भलये देवताओंसरती िैं और मानव जीवन और चररत्र िैं जो ज्योनत की शजकतयों सेसंघष िकरती िैं।

कभी-कभी वे मनुष्यों के द्वारा काय िकरने के भलये उन्िें अधधकृत कर लेती िैं। कभी-कभी मनुष्य-शरीर में जन्म ले लेती िैं। जब जागनतक लोला में उनका उपयोग खमम िो जाएगा तब वे या तो पररवनतति िो जाएँगी या त्रबलक िो जाएँगी या पृथ्वी-लीला में िस्तक्षेपे करने का कफर और प्रयमन निीं करेंगी।

ये देवों और दानवों या असुरों के मानवीय प्रनतननधध िैं। यि भेद भारतीय धाभमकि प्रतीकवाद में अमयंत प्राचीन िै।... िमारे मन की अपेक्षा भौनतक आवरण के पीछे नछपे िुए वस्तुओं के समय की ओर अधधक खुले िुए प्राचीन मानव के मन ने मानव-जीवन के पीछे उन मिान् ्वैश्व शजकतयों या सिाओं को देखा था मत ववश्व-शजकत की कुछ एक प्रवृवृयों या कोहटयों की, दैवी, आसुरी, सियो और पैशाची प्रवृवृयों या कोहटयों की प्रनतननधध िैं; और जो लोग अपने अंदर प्रकृनत की इन ववभशष्ट प्रवृवृयों का प्रबल रूप से प्रनतननधधमव करते थेनेस्वयंभी देव, असुर, राक्षस और वपशाच" समझे जाते थे। गीता अपनेप्रयोजनों के भलए इस भेद को स्वीकार करती िै और इन दो प्रकार की सिाओं के ववभेद को ववशद रूप से ववकभसत करती िै, द्वौ भूतसगौं। वि पिले िी उस प्रकृनत का वणनि कर चुकी िै जो आसुरी और राक्षसी िै और ईश्वर-ज्ञान, मुजकत और पूणतिा में बाधा िालती िै; अब वि इन चीजों की ओर मुिी िुई दैवी के साथ इसकी तुलना करती िै।

प्रश्न : कया श्रीअरववन्द की टीका का यि अभभप्राय िै कक जजन लोगों में आमम-रूपांतरकारी साजत्त्वक किया की संभावना िै वे दैवी प्रकृनत के िोतेिैं अन्यथा आसुरी प्रकृनत के िोतेिैं?

उत्तर : वास्तव में अधधकांश लोगों में दैवी और आसुरी दोनों िी वृनृतयों का कुछ भमला-जुला रूप िोता िै और इसभलए अपनेजीवन में वे ेकोई भी ननणाधयक काय िनिीं ंकर पाते और एक ब्रा िी सामान्य, ननस्तेज, अनुपयोगी प्रकार का जीवन िी जीते िैं। केवल कुछ थोड़े िी िैं जजनमें प्रबल रूप से या तो दैवी प्रकृनत का प्रभाव िोता िै या कफर आसुरी प्रकृनत का। ऐसे लोग अपने जीवन में अनतववशाल, मिान् ्या घोर कम िसंभसद्ध करते िैं। पृथ्वी पर जो भी मिान् ्उपलजब्धयााँ या अनतववराट् कम िककये गए िैं वे ऐसे िी लोगों के द्वारा ककये गए िैं। िमारे पुराणों आहद में िम ऐसे िी दैवी प्रकृनत के व्यजकतयों या कफर आसुरी प्रकृनत के व्यजकतयों का वणनि पातेिैं। देव और असुर दोनों िी अपने-अपनेस्तर ववशेषे पर बाँधे िोतेिैं इसभलए इनमें से कुछ पृथ्वी पर मनुष्यों को प्रभाववत कर, उनके साथ संयुकत िोकर, या उन्िेंआंभशक रूप से या पूण िरूप से अपनेअधधकार में लेकर अपनी अभभव्यजकत का प्रयास करते िैं। यिााँतक कक कभी-कभी तो वे मानव देि में जन्म भी ग्रिण कर सकते िैं। केवल मानव िी िै जो िमववकासमय सिा िै। अतः जो दैवी प्रकृनत के संपकि में िैं या उनसे प्रभाववत िैं वे मनुष्य तो आमम-रूपांतर, आमम-ववकास कर सकतेिैं जबकक जो आसुरी प्रकृनत के प्रभाव में िैं वे यि ववकास निीं कर सकते। जब आसुरी वृवि का प्रभाव िोता िै तब वि मनुष्य के चैमय पुरुष को दबानेका, उसे ननष्काभसत करने ेका प्रयास करता िै। और जब पूण िआसुरी प्रभाव िोता िै, या कफर जन्म िी आसुरी प्रकृनत का िोता िै तब उसमें चैमय पुरुष निींिोता, और यहद िोता भी िै तो वि इतना दब चुका िोता िै कक त्रबल्कुल ननष्प्रभावी िो जाता िै। िालाकााँक यि एक ऐसा ववषय िै जो अमयंत जहटल िै।

प्रश्न : अज्ञान और भमथ्यामव के बीच कया भेद िै?

उत्तर : भमथ्यामव मानभसक चेतना के प्रादुभािव के साथ आता िै उससे पिले की चेतना के स्तर पर िम भमथ्यामव निीं पाते। पशु ुऔर वनस्पनत जगत् ्में िम भमथ्यामव निीं पाते। श्रीमाताजी तो अपनी एक वाताि(११ माच ि१९६१) में ऐसे एक काल का वणनि करती िैं। यि वाताइस ववषय को बिुत स्पष्ट कर देती िै इसभलए िम इसके अंश यिााँप्रस्तुत करते िैं। श्रीमाताजी से जब यि पूछा गया कक 'कया यि सच िै कक कोई पाधथवि स्वग िभी था? मनुष्य को विााँसे कयों ननकाल हदया गया?' तो इसके उिर में श्रीमााँ किती िैं, "ऐनतिाभसक दृजष्टकोण से (म ैं यिा ाँमनोवैज्ञाननक दृजष्टकोण से निीं, ं ऐनतिाभसक दृजष्टकोण से कि रिी िँ). यहद म ैंअपनी स्मृनृतयों के आधार पर किूँ, - म ैंइसे प्रमाणणत तो निीं ंकर सकती; वस्तुतः कुछ भी प्रमाणणत निीं ंककया जा सकता, और मुझे ेनिीं लगता कक यथाथतिः कोई ऐनतिाभसक प्रमाण िै भी, अथाित्,् ऐसा प्रमाण जजससे सुरक्षक्षत रखा गया िो, कम-से-कम ऐसा कोई प्रमाण अभी तक तो भमला निीं ंिै – ककंतु मुझे ेजो याद िै उसके अनुसार, पृथ्वी के इनतिास में ननश्चय िी एक ऐसा समय था जब एक प्रकार के पाधथवि स्वग िका अजस्तमव था, इस अथ िमें कक वि एक पूणतिया सामंजस्यपूण िऔर प्राकृनतक जीवन था; अथात्ि,् मन की अभभव्यजकत त्रबना ककसी ववकार या ववरूपता के प्रकृनत की आरोिणकारी गनत के साथ तब तक भी पूण िसिमनत और सामंजस्य में थी। यि स्थूल रूपों में मन की अभभव्यजकत की पिली अवस्था थी।

यि ककतने समय तक री? यि किना कहठन ि ै। ककंतु ुमनुष्य के भलये यि एक ऐसा जीवन था जो कुछ-कुछ पशु–ुजीवन के उमफुल्लन से भमलता था। मुझे ेएक ऐसे जीवन की स्मृनत ि ै जजसमें शरीर अपनेप्राकृनतक वातावरण के पूणतिः अनुकूल था और जलवायु शरीर को आवश्यकताओं के और शरीर जलवायु की आवश्यकताओं के अनुकूल था। जीवन ठीक वैसे िी पूणतिया सिज और स्वाभाववक था जैसे कक एक अधधक प्रबुद्ध और सचेतन पशु–ुजीवन िोता ि ै; परंतु ुइसमें वे कोई भी जहटलताएँ और ववकृनतया ाँनिीं ंथींजजन्िें मन अपनेववकासिम में बाद में ले आया। मुझेउस जीवन की स्मृनत ि ै - मुझेयि स्मरण था और जब म ैंसमग्र रूप से पृथ्वी के जीवन के प्रनत सचेतन िुई तब मनैं ेइसे कफर से जीवन में भी देखा। ककंतु म ैंयि निीं ंकि सकती कक यि ककतने ेसमय रिा और न िी यि कक इसका ववस्तार किााँ तक था। म ैंनिींजानती। मुझे ेकेवल अवस्था या जस्थनत का िी स्मरण ि ै, अथात्ि ्ज़ि-प्रकृनत कैसी थी, उस समय मानव-रूप और मानव-चेतना कैसी थी और पृथ्वी के अन्य सब तत्त्वों के साथ उसका समन्वय कैसा था - साथ, तथा वनस्पनत के जीवन के साथ ऐसा उमकृष्ट समन्वय। वस्तुओंके - पशु–ुजीवन के प्रयोग का, वनस्पनतयों और फलों के गुणों का, वस्तुतः जो कुछ प्रकृनत में बनस्पनत-जगत् ्ि में दे सकता था उस सबका वािााँएक प्रकार का सिज ज्ञान था। कोई आिामकता निीं, ं कोई भय निीं, ं कोई अंतववरोध निीं, न कोई घषणि और न िी ककसी भी प्रकार की ववकृनत िी - मन पववत्र, सरल और प्रकाशयुकत, जहटलतारहित था।

मिववकास की प्रगनत, उसकी अग्रगनत के साथ िी, जब मन ने अपने अंदर, अपनिी भलये, ववकभसत िोना शुरू कर हदया तब ये समस्त जहटलताएँ और ववकृनतया ाँआरंभ िुईं।...

....मुझे ेयि स्मृनत बार-बार, भभन्न-भभन्न पररजस्थनतयों में, कई बार प्राप्त िुई ि ै। उसमें ठीक वैिी दृश्य या प्रनतमूनतयााँ निीं थीं, कयोंकक यि कोई ऐसी वस्तु निींथी जजसे मनैं देखा िो, यि तो एक ऐसा जीवन था जो मनैं जजया था। कुछ समय तक, रात-हदन एक प्रकार की समाधध की अवस्था में म ैंएक ऐसे जीवन में गई जजसे मनैं जजया था, और मुझमें इस बात की पूरी सचेतनता थी कक यि पृथ्वी पर मानव आकार के प्रस्फुटन की अवस्था थी - उन पिले मानव आकारों की जो भागवत् ्सिा को मूनतमंति करने में सक्षम थे। िा, ाँ ऐसा िी था। पिली बार म ैंएक पाधथवि आकार में, एक आकार ववशेषे में, एक वैयजकतक आकार में अभभव्यकत िो सकी थी - ककसी 'सामान्य' जीवन में निींअवपतु एक व्यजष्टगत रूप में - अथात्ि ् पिली बार इस ज़ि-पदाथ िके मानसीकरण के द्वारा, ऊपर की सिा और नीचेकी सिा को संयुकत ककया गया था। मनैं ेइसे अनेकों बार जजया ि ै, पर सदा िी एक जैसे बािरी पररवेश में और एक िी जैसी अनुभूनत - त्रबना ककसी जहटलता के, त्रबना ककन्िींसमस्याओं के, त्रबना इन प्रश्नों के ऐसी अद्भुत िषपूण िसरलता की अनुभूनत; विााँऐसी कोई समस्याएँ निीं थीं, ऐसा कुछ भी निीं ंथा! था तो बस व्यापक प्ेरेम और सामंजस्य में जीने का िष ि- फूल, धातु, पशु ु: सभी सामंजस्य में थे।

यि तो इसके बिुत समय बाद िी ऐसा िुआ - यि भी एक व्यजकतगत आभास िी ि ै - बिुत समय बाद, कक चीजें गिबि िोनेलगीं। कदाधचत् ्इसभलये कयोंकक सामान्य िमववकास के भलये कुछ-कुछ मानभसक दृढ़ीकरण आवश्यक था, अननवाय ििो गया था, जजससे कक वि ककसी और चीज तक पिुाँचने ेके भलये तैयार िो जाय। और यिीं

जजसा .... उफ्! यि तो ककसी गड्ढे में, कुरूपता में, अन्धकार में जा धगरनै; इसके बाद सभी कुछ इतना काला, इतना भद्दा, इतना कहठन, बदलता पीड़ादायक िो गया, यि सचमुच, िााँ, सचमुच िी पतन का आभास देता िै।" (CWM 10, 88-91)

श्रीमाताजी के इस कथन से यि स्पष्ट िो जाता िै कक पृथ्वी पर ऐसे समय रिे िैं जब पूण िसामंजस्य स्थावपत था और चीजों में वि कुरूपता और ववकृनत निींथी जो मन के ववकास के साथ िमें देखने को भमलती और श्रीअरववन्द भी अपनेसाववत्री मिाकाव्य के एक संदभ िमें पूछे गए प्रश्नों के उिर में कुछ-कुछ इस प्रकार प्रकाभशत करते िुए किते िैं कक, "यहद कोई प्रनतरोध न िो तो आवश्यक निीं कक अचेतन से िोने वाला िमववकास पीड़ादायक िो; यि सोच समझकर धीरे-धीरे चलनेवाला और भगवान् ्का सुंदर प्रस्फुटन िो सकता था। ककसी को भी यि देखने में समथ ििोना चाहिये कक बािरी प्रकृनत ककतनी सुंदर िो सकती िै और सामान्यतः िोती िी िै, यद्यवप यि स्वयं ऊपर से देखने में 'ननश्चेतन' िै। तब आंतररक प्रकृनत में िोनेवाले चेतना के ववकास के साथ इतना अधधक भद्दापन और बुराई कयों जुड़ गईं जो बािरी सृजृष्ट के सौंदय िको त्रबगाड़ देती िै? अज्ञान से उमपन्न िोने ेवाली ववकृनत के कारण, जो कक 'जीवन' के साथ आई और 'मन' में अभभवधधत िो गई - विी िै भमथ्यामव, वि अशुभ जो ननश्चेतना की पूण िननरा के कारण उमपन्न िुआ और यि ननरा िी इसके काय िको उस गुह्य चेतन पुरुष की प्रकाशपूणता से दूरू करती िै जो सदा-सवदा इसके भीतर ववद्यमान रिता िै। परंतु ऐसा िोना आवश्यक निीं था, यहद इसके भलए परामपर प्रभु की सवज्ञानतमी संकल्पशजकत न िोती और इसका तामपय िि यि िै कक ननश्चेतना और अज्ञान के द्वारा ववकृनत की संभावना अभभव्यकत िोनी चाहिये ताकक अभभव्यजकत के अवसर के कारण उन्िें समाप्त ककया जा सके, चूाँकक सभी संभावना को किीं ंन किीं तो अभभव्यकत िोना िी िै : अतः एक बार जब यि समाप्त कर दी जाती िै तो जितत्त्व में 'भागवत् ्अभभव्यजकत' अन्यथा जैसी िुई िोती उससे भिन्न िोगी कयोंकक इस कहठन सृजृष्ट के अंदर जजतनी भी संभावनाएाँ नछपी पड़ी िैं वे सब की सब एक साथ संयुकत िो जाएाँगी - उनमें से कोई-कोई िी निीं जैसा कक ककसी अधधक आसान और कम श्रमसाध्य सृजृष्ट में स्वभावतया घहटत िोता।" (CWSA 27, p. 304)

इस प्रकार श्रीअरववन्द भी इसकी पुजष्ट करते िैं कक ककसी समय ववशेष पर भागवत् ्संकल्प ने ऐसी संभावना देखी और भमथ्यामव को अभभव्यजकत का अवसर प्रदान ककया ताकक इस सृजृष्ट का कुल पररणाम अधधक समृद्ध िो सके और अभभव्यजकत प्रदान करके इन अंधतर शजकतयों को आमूल नष्ट ककया जा सके। यहद इन्िें अवसर न हदया जाता तो िम कल्पना कर सकतिैं कक प्रकृनत में अज्ञान तो िोता परंतुभमथ्यामव िोना आवश्यक निीं ंथा। तब ववकास अज्ञान से ज्ञान की ओर, सौंदय िसे अधधक सौंदय िकी ओर िोता। प्रकृनत में िम अज्ञान तो देखतिैं परंतु भमथ्यामव निीं। यिााँतक की भीषण प्राकृनतक आपदाएाँ, जैसे कक आाँधी-तूफान, चिवात, ज्वालामुखी आहद भी केवल मानव चेतना के भलए तो अधधक ग्राह्य निीं िैं परंतुअपनेआप में उनमें कोई भमथ्यामव निींिै। पशुजगत् ्में िम जीवन के भलए संघष िअवश्य देखते िैं परंतु भमथ्यामव निीं देखते। भमथ्यामव तो तब िोता िै जब िम ककसी गलत चीज को सिी भसद्ध करनेका प्रयास करते िैं। वनस्पनत और पशु ुजगत् ्में ऐसा कोई प्रयास हदखाई निींदेता। यहद भमथ्यामव न िोता तो िमववकास उन ववद्याधथयों की प्रगनत के जैसा िोता जो धीरे-धीरे अज्ञान से अधधक ज्ञान की ओर अग्रसर िो रिे िैं। परंतुभमथ्यामव िी िै जो ववकृनत लाता िै, जो

असमय को समय के स्थान पर प्रनतस्थावपत करने का प्रयास करता िै। उदािरण के भलए यहद बालक गणणत में कोई गलत िल करता िै तो वि िै अज्ञान, परंतु यहद वि गलती बताने पर भी अपनिी िल को सिी भसद्ध करने पर ज़ोर रिता िै, तो यि िै भमथ्यामव। अतः पृथ्वी के ववकास की ककसी अवस्था ववशेष पर इस भमथ्यामव के तत्त्व को िाला गया था जो कक श्रीअरववन्द व श्रीमाताजी के अनुसार अनतमानभसक अवतरण के बाद समाप्त िो जाएगा। तब पृथ्वी पर ववरोधी शजकतयों का कोई िस्तक्षेप निीं ंरिेगा। ऐसा िोने ेसे िमववकास में िमें आज जो ववषमताएँ हदखाई देती िैं, वे न रिेंगी और यि ब्रिे िी सुचारू रूप से गनत कर सकेगा। और जब यि ववकृत करने वाला तत्त्व न िोगा तो सिा का प्रमयेक स्तर सिज रूप से अपने-आप को अभभव्यकत करके अपनी पराकाष्ठा तक पिुँच सकेगा, िालाकँक िमारे भलए इसकी पररकल्पना करना सिज िी संभव निीं िै कक प्राणणक और मानभसक जगत् ्ककस प्रकार अपनी ववराट् संभावनाओं को अभभव्यकत करेंगे जो कक वतमिान में केवल अपनी क्षुर वृवि की पूनत िके िी साधन बनिुए िैं।

इस सब में मुख्य बात यि िै कक अधधकांश मनुष्यों की प्रकृनत में दैवी और आसुरी प्रकृनत के भमश्रण िोते िैं। कुछ थोड़े ेमनुष्यों में दैवी गुण प्रबल िोतिैं और कुछ में आसुरी। परंतु बिुत ववरले िी िैं जजनमें कक इन वृवियों का पूण िअधधग्रिण िो जाता िै। िमारे पुराणों आहद में िम इन्िीं दैवी और आसुरी वृवियों या प्रकृनतयों द्वारा पूण ि रूप से अधधग्रीत लोगों के बीच के संघष िके ववषय में उल्लेख पाते िैं। जब दैवी अधधग्रिण िोता िै तब व्यजकत धीरे-धीरे आमम-रूपांतर करके उिरोिर ऊध्व िगनत करता िै। परंतुआसुरी प्रभाव में व्यजकत पिले धीरे-धीरे आसुरी वृवियों की ओर मुिने ेलगता िै। ऐसे में वि धीरे-धीरे दूसूरों के दुःख-ददि के प्रनत मुिन्वेदनशील िोने लगता िै, ककन्िींभी सुंदर, शुभु चीजों के प्रनत सधच खो बैठता िै। उसमें गिरे भावों के प्रनत कोई संवेदन निीं ंरिता। और पूण ि अधधग्रिण तब िोता िै जब वे आसुरी वृवियाँ व्यजकत के चैमय पुरुष को त्रबल्कुल दबा देने और, उससे भी अधधक, उसे ननकाल बािर कर देने में सफल िो जाती िैं। एक बार चैमय के बािर ननकल जाने पर ननष्कंटक रूप से आसुरी सिाओं का अधधग्रिण िो जाता िै। श्रीमाताजी की पुस्तकों से िमें पता लगता िै कक स्टाभलन संभवतः जन्म से िी आसुरी था अथात्िजन्म से िी उसमें चैमय पुरुष निीं ंथा जबकक हिटलर का तब धीरे-धीरे पूण िअधधग्रिण िो गया जब उन सिाओं ने उसके चैमय को दबाकर अपना अधधकार जमा भलया।

मिाभारत के वन पव िके एक प्रसंग में िम इस दैवी और राक्षसी प्रववृि और उनके अधधग्रिण का एक बिुत िी सटीक उदािरण पातिैं। जब दुयोधन को गंधव िपकि कर ले गए और उसे बंदी बना भलया तब अजुनि ने उसे उनसेमुकत कराया। इससे दुयोधन को ब्रिी िी शभमंदगी मिसूस िुई और उसने अन्न-जल मयाग कर प्राण मयागनेकाप्रण ले भलया। िालाकँक कण िने अनेक प्रकार की नीनतपूण िबातों से उसे मनानेका प्रयास ककया परंतु वि निींमाना। तभी ननमनतर जगतों के दैमयों और राक्षसों ने बुलाकर दुयोधन को समझाया कक उसे आसुरी काययोंकाननभमि और यंत्र बनना िै और दैवी प्रकृनतसंपन्न पांविों से युद्ध कर उन्िें परास्त करना िै इसभलए उसकाजीववत रिना आवश्यक िै। इस प्रकार उनकी बातों में आकर वि मान गया और अधधकाधधक आसुरी वृवियोंकायंत्र बन गया।

इस वृिांत के माध्यम से िमें यि भशक्षा प्रदान करने ेका प्रयास ककया गया िै कक ऐसी आसुरी सिाएँ िैं जो मनुष्य को अपना यंत्र बना लेती िैं, उन्िें अधधकृत कर लेती िैं और संसार में उनके द्वारा भगवद्ववरोधी कायों को अंजाम देती िैं। परंतु ये सारे ववषय बिुत िी जहटल िैं और इनके संबंध में कुछ मोटे संकेतों के अनतररकत अधधक कुछ सामान्य ननयम निंबनाए जा सकते। केवल इतना कि सकते िैं कक दो प्रकार को प्रकृनतया ोँिोती िैं - दैवी और आसुरी जजनमें से दैवी प्रकृनत संपत्र लोग भगवान् ्के यंत्र िोतिैं और दूसूरे वाले उनकी किया में बाधक िोते िैं। परंतु एक अधधक गिरे दृजष्टकोण से देखने पर दोनों की िी किया का कुल पररणाम भागवत् ्संकल्प की अभभव्यजकत िी िोता िै। आसुरी प्रवृवि म ेंभी अपनेभीतर किीं ंन किीं यि बोध िोता िै कक उसका कल्याण भगवान् ्के ववरोध के कारण िी िो सकता िै। रावण आहद के संबंध में भी िमें पता लगता िै कक भीतर से वे जानते थे ेकक भगवान् ्से द्वेष और ववरिो करने ेसे िी उनका कल्याण िो सकता िै और वास्तव में िी उन्िें अंत में योधगयों के भलए भी दुलुभि सद्गनत प्राप्त िुई।

श्रीभगिान् ्उिाच

अभयंसत्त्सिंशद्जधिज्ञुानयोगव्यिस्मथनतः ।
दानंदमश्ि यज्ञश्ि मिाध्यायमतप आज्िुम् ्॥ १॥

१. श्रीभगिान् ्ने कहाः अभय, प्रकृनत की शद्जधि, ज्ञानयोग में दृढ़ता, दान, आत्मसंयम और यज्ञ, शामत्रों का अध्ययन, तपमया, तथा मपष्टिाददता।

अदहंसा सत्यमक्रिोमत्यागः शास्न्तरपैशनजम् ्।
दया भूतेष्लिोलप्जत्िंमादिुं हीरचापलम् ्।। २।।

२. दूसूरों को पीिा न पहजूँचाना, सच्चाई, क्रिो न करना, त्याग, शास्न्त, दोष-दृस्ष्ट से विरत, सममत प्राणणयों के प्रनत दया का भिा रखना, लोभ न करना, मृदृतजा, विनम्रता, और दृढ़ता (चपलता से रदहत)।

तेजः क्षमा िृनृतः शौचमद्रोहो नानतमाननता ।
भिस्न्त संपदं दिैीमसभजातमय भारत ।। ३।।

३. तेज, क्षमा, िैयु,ु पवित्रता, द्रोह तथा असभमान विहीनता – ये सब हे भारत! उनके संपदाएँ हैं जो दिैी प्रकृनत से संपन्न हो जन्म ग्रहण करते हैं।

दम्भो दपो ऽसभमानश्ि क्रिोः पारुष्यमेि च ।
अज्ञानं चासभजातमय पाथु ुसंपदमासरजीम् ्।। ४।।

४. हे पाथु।ु दम्म, दपु ुऔर असभमान, क्रिो और उसके साथ ही कटजता ता अज्ञान, हे पाथु!ु उनके गणज या संपदाएँ हैं जो आसरजी प्रकृनत से संपण तो जन्म ग्रहण करते हैं।

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।

मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ।। ५।।

५. दैवी संपदाएँ मोक्ष की ओर ले जानेवाली कही गई हैं और आसुरी संपदाएँ बंधन की ओर। हे पाण्डव ! शोक मत कर, तेरा दैवी प्रकृति से संपन्न जन्म हुआ है।

----

*...इसकी मृदुता, आत्म-त्याग और आत्म-संयम...समस्त दुर्बलता से मुक्त होतीं: इसमें होता है तेज और आत्मबल, धृति या दृढ़ संकल्प, न्याय के अनुसार तथा सत्य और अहिंसा के अनुसार जीवन-यापन करनेवाली आत्मा की निर्भयता, तेजः, अभयम्, धृतिः, अहिंसा, सत्यम्। दैवी संपदा से संपन्न मनुष्य की समस्त सत्ता एवं समस्त प्रकृति पूर्ण रूप से शुद्ध होती है; उसके अंदर ज्ञान-पिपासा और ज्ञानयोग में दृढ़ एवं स्थिर प्रतिष्ठा होती है।

श्रीगुरु कहते हैं कि अर्जुन देव-प्रकृति का है। उसे यह विचार करके शोक करनेकी आवश्यकता नहीं कि युद्ध और वध को अंगीकार करने से वह आसुरी आवेगों के अधीन हो जाएगा। जिस कार्य पर सब कुछ निर्भर करता है, जो युद्ध अर्जुन को करना है, जिसमें देहधारी ईश्वर उसके सारथि हैं और जगत् के प्रभु ने काल-पुरुष के रूप में प्रकट होकर जिसके लिए आदेश दिया है, वह धर्म के राज्य, सत्य, सदाचार और न्याय के साम्राज्य की स्थापना का संघर्ष है। वह स्वयं देवप्रकृति में उत्पन्न हुआ है; उसने अपनेअन्दर सात्त्विक स्वभाव का विकास किया है, यहाँ तक कि अब वह उस अवस्था में पहुँच गया है जहाँ वह उच्च रूपांतर के योग्य है तथा त्रैगुण्य से और इसलिए सात्त्विक प्रकृति से भी मुक्ति लाभ करने में समर्थ है।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।

दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ।। ६।।

६. इस लोक में दो प्रकार के प्राणी सृष्ट होतेहैं, दैवी और आसुरिक; दैवी स्वभाववालों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जा चुका है। हे पार्थ! अब आसुरिक स्वभाव वालों का वर्णन तू मुझसे सुन।

देव और असुर का भेद सारी-की-सारी मनुष्यजाति को समाविष्ट नहीं करता, यह इसके सभी व्यक्तियों पर कठोर रूप से प्रयोज्य नहीं है और न ही मनुष्यजाति के नैतिक या आध्यात्मिक इतिहास की सब अवस्थाओं में अथवा वैयक्तिक विकास के सभी चरणों में तीव्र और सुनिश्चित रूप से पाया जाता है। तामसिक मनुष्य, जो संपूर्ण जाति का इतना बड़ा भाग है, गीता में जिस प्रकार श्रेणियों का वर्णन है उस अनुसार किसी भी श्रेणी के अन्दर नहींआता, हालाँकि उसके अंदर अल्प मात्रा में दोनों ही तत्त्व हो सकतेहैं और यद्यपि अधिकांश में वह रहते-रहते निम्नतर गुणों की ही सेवा करता है। सामान्य मनुष्य साधारणतः एक मिश्रण होता है; परंतु कोई एक या दूसरी प्रवृत्ति अधिक सुनिश्चित होती है, वह उसे प्रधान रूप से राजस-तामसिक या सात्त्विक-राजसिक बनाती चली जाती है और ऐसा कहा जा सकता है कि वह उसे दैवी निर्मलता या दानवी विक्षुब्धता में से किसी एक

पररणनत के भलए तैयार कर रिी िै। कयोंकक, यि ाँगुणाजममका प्रकृनत के ववकास में एक प्रकार की ववशेषे पररणनत िी गीता का लक्ष्य िै, जैसा कक मूल में ककये गये वणनिों से स्पष्ट पता लग जाएगा। एक ओर तो सत्त्वगुण का उन्नयन, अजन्मे देवता का उमकष िया प्राकट्य िो सकता िै, दूसूरी ओर प्रकृनतगत जीव के रजोगुण का उन्नयन एवं असुर का पूण िप्रादुभुावि िो सकता िै। इनमें से एक तो मोक्ष की उस गनत की ओर ले जाता िै जजस पर गीता अब बल देनेवाली िै; इसके द्वारा सत्त्वगुण से बिुत ऊपर उठ जाना तथा भागवत् ्सिा के साधमय िमें रूपांतररत िोनिा संभव िो जाता िै, ववमोक्षाय। दूसूरा िमें इस ववश्वगत संभावना से दूरू ले जाता िै तथा िमारे अिं-बंधन को बिुी तेजी से बढ़ाता िै। इस समस्त भेद का मम िियी िै।

प्रिवृत्तं ंच ननिवृत्तं ंच जना न विदरजासरजाः ।
न शौचं नावप चाचारो न सत्यंतेष जविद्यते ॥ ७॥

७. आसरजरक प्रकृनत िाले मनजष्य कमु ुकरने की सच्ची विधि को और कमु ुसे ननिृत्त होने की विधि को नहींजानते; उनमें न शधजचता होती है, न सदाचार और न ही सत्य।

असत्यमप्रनतष्ठं ते जगदाहजरनीश्िरम् ्।
अपरमपरसंभूतं ककमन्यत्कामहैतकजम् ्।। ८।।

८. िे कहतेहैं कक "यह जगत् ्ईश्िर रदहत है, असत्य है, ननरिार है, किल परमपर संयोग के द्िारा उद्भतज है, इसका एकमात्र हेत जकामना है और कजछ नहीं।"

एतांदृस्टमिष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबद्जियः ।
प्रभिन्त्यग्रजकमुाणः क्षयाय जगतोऽदहताः ।। ९।।

९. दृढ़तापिूकु इस दृस्ष्ट को बनाए रखते हजए, अल्पबजद्धि, उग्र और पाप कमों को करने िाली ये नष्ट अथिा भ्रष्ट आत्माएँू जगत् ्के नाश के सलए उसके शत्रजरूप में उत्पन्न होती हैं।

काममाधश्रत्य दष्जपूरं दम्भमानमदास्न्िताः ।
मोहाद्गृहीत्िासिद्ग्राहान्प्रितुन्ते ेऽशधजचव्रताः ।। १०।।

१०. अपूरणीय या अतृप्य कामना, दम्भ, दपु ुऔर अनतशय असभमान में सलए होकर, मूढ़तािश समथ्या मतों को रखते हजए, अशद्जि ननश्चयों को िारण करके िे जगत् ्में कमु ुकरते हैं।

धचन्तामपररमेयां च प्रलयान्तामपजाधश्रताः ।
कामोपभोगपरमा एतािददनत ननस्श्िताः ।। ११ ।।

११. ऐसी असंख्यों दस्जश्चंताओंसे ग्रमत जो किल उनकी मृतृ्यजके साथ ही समाप्त होंगी, कामनाओंकी तृनृत को ही परम लक्ष्य मानतेहजए, और इस विषय में ननस्श्चत रहतेहजए कक बस ऐसा ही है।

आशापाशशतैबुद्िा: कामक्रोिपरायणा: ।

ईहन्ते कामभोगाथुमुन्यायेनाथुसुञ्चयान् ्।। १२॥

१२. सकैंाि आशारूप पाशों से बंि हजए, कामना और क्रोि के िशीभूत, कामना की तृसृप्त के सलये अन्यायपूिकु घन का संचय करने के सलये प्रयास करते रहतेहैं।

इदमद्य मया लब्िसममं प्राप्मये मनोरथम् ्।

इदममतीदमवप मे भविष्यनत पनजिुनम् ्।। १३।।

१३. "आज मनैं ेइस काम्य पदाथु ुको प्राप्त कर सलया है, कल उस दूसूरे पदाथु ुको प्राप्त करूंगा; इतना िन मेरे पास आज है, कल म ैंऔर अधिक प्राप्त कर लूंगा।

असौ मया हतः शत्रहुजननष्ये चापरानवप ।

ईश्िरोऽहमहं भोगी ससद्िोऽहं बलिान्सखजी।। १४ ।।

१४. "अपने इस शत्र जको मनैं ेमार डाला है और शेषे दूसूरों को भी म ैंमार डालूंगा; म ैंप्रभ जहूँ, म ैंउपभोग करनेिाला हूँ, म ैंसिुसंपन्न या ससद्ि, बलिान् ्और सखजी (भानयशाली) हूँ;

आढ्िो ऽसभजनिानस्मम कोऽन्योऽस्मत सदृशो मया ।

यक्ष्ये दामयासम मोददष्य इत्यज्ञानविमोदहता: ।। १५।।

१५. म ैंिनिान् ्हूँ, उच्च कजल में उत्पन्न हजआ हूँ, मेरे समान दूसूरा कौन है? म ैंयज्ञ करूँगा, दान करूंगा, म ैंआमोद-प्रमोद करूँगा", इस प्रकार अज्ञान से विमूढ़ होकर;

अनेकधचत्तविभ्रान्ता मोहजालसमािृता: ।

प्रसक्ता: कामभोगेष जपतस्न्त नरकेऽशचजौ ।। १६ ।।

१६. अनेक विचारों से विश्रांत होकर भटकते हजए, मोह जाल में िंसे हजए और अपनी कामनाओंकी तृसृप्त और भोगों में आसक्त िे मनष्जय एक अपवित्र नरक में धगरते हैं।

आत्मसम्भाविता: मतब्िा िनमानमदास्न्िता: ।

यजन्ते नामयज्ञैमते दम्भेनाविधिपूिकुम् ्।। १७।।

१७. अपने-आपको ब्रड़ा माननेवाले, ढीठ, धन और मान के नशे में चूर, वे दंभपूर्वक ऐसे यज्ञ करते हैं जो कक केवल नाम के ही यज्ञ होतेहैं और विधिपूर्वक यज्ञ नहीं होते।

अहंकारं बलं दपुं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।

मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ।। १८।।

१८. अहंकार, बल, दपु, कामना और क्रोध के वशीभूत ये विद्वेषपूर्ण लोग अपने स्वयं के शरीरों में और दूसरों के शरीरों में स्थित मुझ ईश्वर की निंदा (अवज्ञा) करते हैं।

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।

क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ।। १९।।

१९. इन पापी और क्रूर द्वेषियों को, इन (नीच-से-नीच) नराधमों को मैं निरंतर संसार में आसुरी योनियों में डालता रहता हूँ।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।

मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ।। २० ।।

२०. हे कौन्तेय! अनेक जन्मों तक आसुरी योनि को प्राप्त करते हुए वे मूढ़ मनुष्य मुझे प्राप्त नहींहोतेऔर आत्म-प्रकृति की निम्नतम अवस्था में धगरतेजाते हैं।

यह जो जीवंत वर्णन है इसके द्वारा द्योतित भेद का पूरा महत्त्व स्वीकार करते हुए भी, इसका जितना अर्थ है उससे अधिक इसमें से बलपूर्वक निकालना उचित नहीं। जब यह कहा जाता है कि इस जगत् में, देव और असुर, दो प्रकार की जीव-सृष्टि पायी जाती है, तो इसका यह अर्थ नहीं होता कि असुर ने बर ने आरंभ से ही मानव-जीवों को इसी प्रकार का बनाया है और कि अत एव, प्रकृति के अंदर प्रत्येक की जीवनधारा अटल रूप से निश्चित है, न ही इसका यह अर्थ होता है कि सबकी एक कठोर आध्यात्मिक पूर्वनिर्धारित तय है और जिन लोगों को भगवान् ने आरंभ से ही त्याग रखा है वे उनके द्वारा अंधे बना दिये जाते हैं, ताकि उन्हें शाश्वत विनाश तथा नरक की अपवित्रता में धकेला जा सके। सभी जीव भगवान् के सनातन अंश हैं, जैसे देवता वैसे असुर भी; सभी मोक्ष लाभ कर सकते हैं: यहाँ तक कि घोर-से-घोर पापी भी भगवान् की ओर मुड़ सकता है। परंतु प्रकृति के अंदर जीव का विकास एक सिलसिलेवार क्रम, एक क्रमअभिव्यक्ति है जिसमें स्वभाव तथा स्वभावनियत कर्म सदा ही प्रधान शक्तियाँ होती हैं; और यदि जीव के स्वभाव की अभिव्यक्ति में कोई अनति, उसकी इच्छा में कोई अव्यवस्था उसे कर्म को कुटिल पथ की ओर फेर दे, यदि राजसिक गुणों को प्रधानता दी जाए, सत्त्व का ह्रास करके उनका विकास किया जाए, तो निश्चय ही, कर्म-प्रवृत्ति तथा उसके परिणाम उस सत्त्वगुण के उत्कर्ष में परिसमाप्त नहीं होते जो मोक्ष की गति में समर्थ है, अपितु वे निम्न प्रकृति के विकारों की पराकाष्ठा में ही परिसमाप्त होते हैं। यदि मनुष्य इस भ्रांत पथ पर चलना बंद नहीं करता तथा इसे त्याग नहीं देता तो अंततः उसके अंदर असुर पूर्णरूपेण

जन्म ले लेता िै, और जब एक बार वि ज्योनत एवं समय से प्रबल रूप से पराङ्गमुख िो जाता िै, तो अपनेअंदर हदव्य शजकत का अमयधधक दुरुपयोग िोने ेके कारण िी वि कफर अपने पतन की घातक गनत को तब तक निीं उलट सकता जब तक वि उन गिरे गर्तों की थिा निीं ले लेता जजनमें कक वि पनतत िुआ िै, जब तक वि उनके तल तक निींपिुँच जाता और यि निीं देख लेता कक यि माग िउसे किाँ ले आया िै, कैसे इसने उसकी शजकत को समाप्त कर हदया िै तथा व्यथ िमें गाँवा हदया िै और कैसे वि स्वयं भी जीव-प्रकृनत की ननमनतम अवस्था में धगर गया िै, जो कक नरक िै। जब वि यि सब समझकर ज्योनत की ओर मिु जाता िै केवल तभी गीता का यि दूसूरा समय उसके सामनेआता िै कक अधम से अधम साथी भी, अमयंत अपववत्र एवं ंघोर दुराचारी भी ज्यों िी अपने अंतःस्थ परमेश्वर का भजन और अनुसरण करने ेकी ओर झुकता िै मयों िी उसका उद्धार िो जाता िै। तब केवल उस झुकाव के द्वारा िी वि अमयंत शीघ्र साजत्त्वक माग िपर पिुँच जाता िै जो पूणतिा और मुजकत की ओर ले जाता िै।

----

*इन दो प्रकार के सृष्ट जीवों के भेद का पूण िसमय उन अनतभौनतक स्तरों में िोता िै जिा ाँआध्याजममक िमववकास का ननयम गनत को ननयंत्रत निीं करता। जैसेदेवताओंके लोक िैं, वैसे असुरों के भी लोक िैं, और िमारे पीछे अवजस्थत इन लोकों में अपरररवतनीय प्रकार की सिाएँिैं िैं जो ववश्व की प्रगनत के भलए आवश्यक पूण िहदव्य सृजृष्ट-लीला को सिका देती िैंऔर सिा के इस भौनतक स्तर में भूतल पर तथा मनुष्य के जीवन और प्रकृनत पर अपना प्रभाव भी िालती िैं।

त्रिविं ंनरकमयेदं द्िारं नाशनमात्मनः ।

कामः क्रिोमतथा लोभमतममादेतत्त्रयं त्यजेत् ्।। २१ ।।

२१. काम, क्रिो और लोभ ये नरक के त्रिवि द्िार हैं जो जिी के नाश की ओर ले जानिाले हैं: इससलये मनष्जय इन तीनों का पररत्याग करे।

एतैविमुक्जतः कौन्तेय तमोद्िारैस्त्रिसभनुरः ।

आचरत्यात्मनः श्रेयमततो यानत परां गनतम् ्।। २२।।

२२. हे कौन्तेय! अन्िकार के इन तीनों द्िारों से मक्जत हजआ मनष्जय अपनी आत्मा के सलए जो कल्याणकारी है उसका सिान करता है और परम गनत या पद को प्राप्त हो जाता है।

यः शामत्रविधिमत्जसृज्य ितुते कामकारतः ।

न स ससद्धिमिाप्नोनत न सजखं ंन परां गनतम् ्।। २३ ।।

२३. जो मनष्जय शामत्र के ननयम की अिहेलना करके अपनी कामनाओं के आिेगों के अनसजार आचरण करता है, िह मनष्जय न ससद्धि को प्राप्त होता है, न सजख को और न परम गनत या स्मथनत को।

तममाच्छामत्रं ◌ंप्रमाणं ते कायुाकायुवुयिस्मथतौ ।

ज्ञात्ाि शामत्रविानोक्तं कमु ◌ुकतुसुजमहाहुसस ।। २४।।

२४. इससलये ककस कमु ◌ुको करना चादहये और ककसे नहीं करना चादहये इसका ननणुयु करने के सलये तेरे सलये शाख ही प्रमाण होने ◌ेचादहए। अतः शाख ने क्या विान बतलाया है उसे जानकर इस संसार में तजझे ◌ेअपना कमु ◌ु करना चादहये।

कामना के ननयम का अनुसरण करना िमारी प्रकृनत का सच्चा ववधान निीं ◌ंिै; इसके कमों का एक अधधक उच्च और न्यायसंगत आदश िभी िै। परंतु वि किााँ ननहित िै अथवा उसे कैसे प्राप्त ककया जाए? पिली बात यि िै कक मनुष्यजानत इस न्यायोधचत और उच्च ववधान की खोज सदा िी करती रिी िै और जो कुछ उसने उपलब्ध ककया िै वि उसके शास्त्र में भलवपबद्ध िै, वि शास्त्र िै ज्ञान और ववज्ञान का ववधान, नैनतकता, धम ितथा श्रेष्ठ सामाजजक जीवन का ववधान, मनुष्य, ईश्वर और प्रकृनत के साथ िमारे यथाथ िसंबंधों का रीनत-ररवाजों का समूि निीं अच्छे िोतिं तो कुछ खराब, और जजनका अनुसरण तामभसक मनुष्य िी अच्छे िोतरवश रूहढ़बद्ध मन त्रबना समझे-बूझे करता िै। शाख वि ज्ञान और भशक्षा िै जो अंतबोध, अनुभव और प्रज्ञा के द्वारा प्रनतजष्ठत िै, शाख िै जीवन की ववद्या, कला और आचारनीनत, और साथ िी वे श्रेष्ठतम आदश िजो मनुष्यजानत को उपलब्ध िैं। जो अद्धि-प्रबुद्ध मनुष्य शास्त्र के ननयमों का पालन करना छोड़कर अपनी अंध-प्रेरणाओं एवं कामनाओं के मागनिनदेश का अनुसरण करता िै वि इजन्द्रय-तृजृप्त तो प्राप्त कर सकता िै, पर सुख निीं, कयोंकक आंतररक सुख की प्राजप्त तो केवल समुधचत प्रकार से जीवन यापन करने से िी िो सकती िै। वि पूणतिा की ओर निीं ◌ंबढ़ सकता, सवोच्च आध्याजममक जस्थनत निीं ◌ंप्राप्त कर सकता। पशु-जगत् ◌्में सिज-प्रववृि और कामना का ववधान प्रमुख ननयम प्रतीत िोता िै, परंतु मनुष्य का मनुष्यमव समय, धम,ि ज्ञान और यथोधचत जीवनधारा का अनुसरण करनेसे िी ववकभसत िोता िै। इसभलए पिले उसे उस शास्त्र के अनुसार, लोकसममत समय-ववधान के अनुसार आचरण करना िोगा जजसे उसनेअपनेननमनतर अंगों को अपनी बुद्धध तथा ज्ञानपूण िसंकल्प के द्वारा ननयंत्रत्रत करने के भलए ननभमति ककया िै, उसी को उसे अपनेआचार-व्यविार, कायि-कलाप तथा किव्यि-अकिव्यि का ननणयि करनेके भलए प्रमाणरूप मानना िोगा। और यि उसे तब तक करना िोगा जब तक अंधप्रेररत कामनामनक प्रकृनत आमम-संयम के अभ्यास के द्वारा भशक्षक्षत निीं िो जाती, क्षीण िोकर दब निीं जाती और जब तक मनुष्य पिले तो मुकततर ज्ञानपूण िमागि-दशनि के भलए और कफर आध्याजममक प्रकृनत के परमोच्च ववधान एवं परम स्वातंत्र्य के भलए तैयार निीं िो जाता।

कयोंकक, शास्त्र अपनेसाधारण रूप में ऐसा अध्यामम-ववधान निीं ◌ंिै, यद्यवप अपनेसवोच्च भशखर पर आध्याजममक जीवन का ववज्ञान एवं ◌ंभशल्प अथात्ि◌्अध्यामम-शास्त्र बन जाता िै, - स्वयंगीता भी अपनी भशक्षा को एक उच्चतम और परम-गुह्य शास्त्र किती िै। अपनेसवोच्च भशखर पर शाल साजमवक प्रकृनत के अनतिमण की ववध अपने सवोच्च कर देता िै और आध्याजममक रूपांतर की साधना का ववकास करता िै। तो भी समस्त शाख निीं। परम लक्ष्य तो िै आममा का स्वातंत्र्य जजसमें जीव सब धमों का पररमयाग कछ एक प्रारंभभक धमों के आधार

पर ननभमति िोतिं: वे ेसाधन िोतिं, लक्ष्य कर कम िके अपनेएकमात्र ववधान के भलए परमेश्वर की ओर मुिता िै, सीधे कारवत् ्संकल्प के द्वारा कम िकरता िै और हदव्य प्रकृनत के स्वातंत्र्य में ननवास करता िै, धम िमें निीं, अवपतु आमममा में ननवास करता िै। अजुनि का अगला प्रश्न गीता की भशक्षा के इसी प्रकार के ववकास का सूत्रपात करता िै।

पशु–ुजगत् ्में भय और कामना के अनतररकत अन्य कोई चालक शजकत निीं ंिोती। जजन मनुष्यों या समाजों में केवल कामना िी प्रमुख चालक शजकत िो और कोई आमम-अनुसंधान आहद का ववधान न िो तो ऐसे मनुष्यों या समाजों को पशुतुल्य िी समझना चाहिये। मनुष्यमव का अथ िीि आमम-अनुसंधान, आमम-पररष्करण, संस्कारण आहद िोता िै। मानभसक या साजत्त्वक ववकास के साथ िी व्यजकत जीवन के सच्चेववधान की खोज करता िै। अपनेआप को ववकभसत करने ेका, सुसंस्कृत बनानेका, उिरीर ववकास का, आंतररक और बाह्य ज्ञान की खोज का प्रयास करता िै। जब व्यजकत शास्त्रों के वचनों के अनुसार, आममा के गिरे ववधान के अनुसार जीवन को बदलने का प्रयास करता िै तभी पशु ुसे भभन्त्र िोता िै। जब व्यजकत में कुछ-कुछ मानभसकता का ववकास िोता ैऔर वि अपनी कामनाओं आहद के बारे में सचेतन िोता िै तब उन्िेंशास्त्र के अनुसार संयत करनेका प्रयास करता िै। िालाकाँक पाश्चामय संस्कृनत में सारा प्रयास अपनी कामनाओं की अधधकाधधक तृजृप्त की ओर रिता िै जजसमें सारे समाज की व्यवस्था इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर करनेका प्रयास ककया गया िै कक वस्तुओं आहद का ननयोजन इस प्रकार ककया जाए कक ककसी भी व्यजकत की कामना की पूनत िके अधधकारों का िनन िुए त्रबना सब अधधक से अधधक अपनी कामनाओं को तुष्ट कर सकें। परंतु भारतीय संस्कृनत में सदा िी आममा का और उच्चतर ववधान का बोध रिा िै इसभलए भले िी यिा ाँकामनाओं को अस्वीकार निीं ककया गया िै परंतु उन्िें सदा िी शास्त्र के अंकुश में रखा गया िै और मनुष्य को सदा िी उस उच्चतर उद्देश्य की ओर प्रेररत ककया गया िै। प्रमयेक मनुष्य के आंतररक ववकास को ध्यान में रखकर इस प्रकार एक अटूट स्तरानुगत ववकास की व्यवस्था की गई जजसमें िर कोई अपनी वतमिान जस्थनत से अपनेसच्चे लक्ष्य की ओर जा सके। सारे समाज को पग-पग पर ऐसे मित् ्ववचारों, मिान् ्आदशों, नीनतयों, व्यवस्थाओं, ववधध- ववधानों, किया-अनुष्ठानों, रूपकों आहद से पररवेजष्टत कर हदया गया कक व्यजकत को सदा िी िर क्षण अपनेसच्चे लक्ष्य का न केवल स्मरण िी िो आता था अवपतु उस ओर गनत करने ेमें भारी सिायता भी प्राप्त िोती थी। साथ िी इस पूरी व्यवस्था में सदा िी यि नमनीयता रखी गई कक जो कोई इस सारे ववधान को मयागकर अपने आमम-अनुसंधान में जाना चािे वि इसके भलए स्वतंत्र िो और स्वतंत्र रूप से अपने ववकास के ननजी माग िको खोज ननकाले जजससे कक सारा िी समाज इससे लाभाजन्वत िो सके। इसी कारण िम मिान् ्व्यजकतमवों की एक अटूट परंपरा पातिं जजन्िोंने सारे पूवनिनभमति ववधानों को छोिकर नवीन मागों का अनुसंधान और अन्वेषण ककया।

इस प्रकार सोलहिूँ अध्याय 'दैवासुरसंपद्विभागयोग' समाप्त होता है।

सत्रिवा ाँअध्याय

त्रत्रगुण श्रद्धाऔरकमि

, ,

गीता व्यजकतगत कामना की स्वच्छंदता के अनुसार ककये जानेवाले कम िमें और शास्त्र के अनुसार ककये जानेवाले कम िमें भेद कर चुकी िै। शास्त्र शब्द से िमें जीवनसंबंधी उस सवसिममत ववद्या एवं कला को समझना िोगा जो मनुष्यजानत के सामूहिक जीवन का, उसकी संस्कृनत, धम िएवं ववज्ञान का, जीवन के सवश्रेष्ठ ववधान की उसकी उत्तरोत्तर खोज का पररणाम िै, – परंतु उस मनुष्यजानत के जीवन का पररणाम िै जो अभी भी अज्ञान में गनत कर रिी िै और एक अधूरे प्रकाश में िी ज्ञान की ओर अग्रसर िो रिी िै। व्यजकतगत कामना का कम ििमारी प्रकृनत की असंस्कृत अवस्था से संबंध रखता िै और वि अज्ञान या भमथ्या ज्ञान और एक अननयंत्रत या कुननयंत्रत राजभसक अिंकार से प्रेररत िोता िै। शास्त्र के द्वारा ननयंत्रत कम िबौद्धधक, नैनतक, सौंदयाममिक, सामाजजक और धाभमकि संस्कृनत का एक पररणाम िोता िै; वि एक प्रकार के यथोधचत जीवन-यापन, सामंजस्य एवं समुधचत व्यवस्था के भलए ककये गये प्रयमन का मूत िरूप िोता िै, और स्पष्ट िी वि मनुष्य के साजत्त्वक अंश का एक प्रयास िोता िै जो राजभसक तथा तामभसक अिंकार पर प्रभुमव करने, उसे संयत और ननयंत्रत करने के भलए अथवा, जिााँइसे स्वीकार करना आवश्यक िोता िै विााँ, इसका पररचालन करनेके भलए ककया जाता िै; वि प्रयास पररजस्थनतयों के अनुसार कम या अधधक उन्नत या ववकभसत िोता िै। वि आगे की ओर एक कदम बढ़ाने का एक साधन िोता िै, अतएव मनुष्यजानत को पिले इसमें से गुजरना िोगा और इस शास्त्र को अपनेकम िका ववधान बनाना िोगा बजाय अपनी व्यजकतगत कामनाओंकी प्रेरणा का अनुसरण करनेके..

मनुष्य की असंस्कृत प्रकृनत ननरंकुश प्रकार की िोती िै जजसमें वि पशु ुकी भानाँत अपनी इच्छाओं, कामनाओं, वासनाओं, आवेगों आहद को अननयंत्रत रूप से पूरी करनेकी चेष्टा करता रिता िै। जब मनुष्य समूिगत जीवन जीना आरंभ करता िै तब उसे केवल ननजी तुजष्टयों को िी निीं ंअवपतु सामूहिक तुजष्टयों को भी ध्यान में रखना िोता िै। तब ककसी प्रकार के ननरंकुश व्यविार की बजाय उसे सामूहिक ववधान के अनुसार आचरण करना िोता िै कयोंकक अिं की तुजष्ट के बोध के साथ िी साथ उसमें यि बोध भी आ जाता िै कक अपनी कामनाओं की पूनत िका जजतना अधधकार स्वयंउसे िै उतना िी अधधकार अन्य दूसूरों को भी का साथ िी सामूहिक जीवन में वि समूि से कुछ प्राप्त करता िै और बदले में उसे अपना योगदान प्रदान करता िै। इस प्रकार घोर स्वाथ िऔर पाशववकता के जीवन की बजाय वि एक सामूहिक ववधान के अनुसार जीवन यापन करने ेलगता िै। जब धीरे-धीरे उसके मन का ववकास िोता िै, उसकी सौंदयपिरक आहद क्षमताओं का ववकास िोता िै तब वि चीजों को करने ेके सिी ववधान को, उनके बीच के सामंजस्य को खोजनेलगता िै। चीजों को करने ेके उधचत ववधान को िी शास्त्र किते िैं। धीरे-धीरे भौनतक, प्राणणक, मानभसक और मनोवैज्ञाननक प्रकृनतयों का अवलोकन कर वि उन सभी के सिी ववधानों को खोजने और उन्िें शास्त्र के रूप में जीवन में प्रयुकत करने का प्रयास करता िै। भौनतक प्रकृनत के अवलोकन से उसे कृवष आहद का, वस्तुओं के साथ उधचत व्यविार का, भौनतक ऊजिा के समुधचत ननयोजन आहद के ववधान या शास्त्र का पता लगता िै। प्राणणक तथा मनोवैज्ञाननक प्रकृनतयों के अवलोकन से उसे परस्पर संबंधों के सिी ववधान का, भावनाओं आहद के ननयमन का, आचार-व्यविार के ववधान का, ववचारों के सौंदय िका, चीजों के बीच के सामंजस्य का बोध िोता िै। इस प्रकार केवल ननरंकुश स्वाथपूिनत िकी बजाय व्यजकत उधचत ववधान या शास्त्रों के अनुसार जीवन-यापन करने का प्रयास करता िै। इस प्रकार यि साजत्त्वक प्रकृनत द्वारा ननरंकुश राजभसक और तामभसक प्रकृनत को संयभमत करने ेका उपाय िै। शास्त्र की सिायता से व्यजकत जब अपनी स्वेच्छाचारी वृवियों पर लगाम लगानेमें कुछ-कुछ सफल िोता िै तब संभव िै कक उसकी सिायता से वि कुछ-कुछ धम िऔर अध्याामम की हदशा में भी गनत करे। परंतुमनुष्यजानत को अपनेववकासिम में इस अवस्था से गुजरना िी िोता िै। इससे गुजर कर िी वि ककसी अधधक सुसंस्कृत अवस्था तक पिुँच सकती िै।

परंतु िम यि भी देखतिैं कक मनुष्य के अंदर एक अधधक स्वच्छंद प्रवृवि भी िै जो उसकी कामनाओं के अनुसरण करने ेसे तथा ववधान को, ननधाररित ववचार को, शास्त्र के सुरक्षक्षत ननयामक ववधध-ववधान को स्वीकार करने के संकल्प से भभन्न िै। जिाँव्यजकत को प्राय: िी, विींसमाज को अपने जीवन के ककसी भी क्षण में शास्त्र से मुँि मोड़ते, उससे ऊबते देखा जाता िै, वि अपनेसंकल्प और श्रद्धा-ववश्वास के उस रूप को छोड़ देता िै और ककसी अन्य ववधान की खोज में ननकल पड़ता िै जजससे वि अब जीवन-यापन के यथाथ िववधान के रूप में स्वीकार करने तथा अजस्तमव के एक अधधक मित्त्वपूण िया उच्चतर समय के रूप में माननेकी ओर अधधक झुका िुआ िोता िै। यि उस समय िो सकता िै जब प्रचभलत-प्रनतजष्ठत शास्त्र कोई जीवंत वस्तु निींरिता और रीनत-ररवाजों और लोकाचारों के समूि में अपभ्रष्ट या रूढ़ िो जाता िै। अथवा यि इसभलए िो सकता िै कक शास्त्र अपूण िपाया जाता िै या अपेक्षक्षत प्रगनत के भलए और अधधक उपयोगी निीं ंपाया जाता; एक नया समय, जीवन-यापन का एक अधधक पूण िववधान अननवाय ििो जाता िै... यि आंदोलन व्यजकत से प्रारंभ िोता िै जो कक वतमान ववधान से अब और अधधक संतुष्ट निीं ंरिता, कयोंकक वि देखता िै कक वि ववधान उसके अपने-आप के और जगत्–अजस्तमव के

संबंध में उसकी धारणा एवं ंववशालतम या तीव्रतम अनुभूनत से अब और मेल निीं खाता और इसभलए वि उस पर ववश्वास तथा आचरण करने ेके भलए उसमें अपनेसंकल्प को पिले की तरि ननयोजजत निीं ंकर सकता। वि उसके आंतररक भाव या जस्थनत से मेल निीं ंखाता, उसके भलए अब वि 'सत्'् अथात्ि्कोई ऐसी वस्तु निीं ंरिता जजसका वस्तुतः अजस्तमव िो, न िी वि उसके भलए यथाथ िववधान, उच्चतम या सवश्रेिष्ठ या यथाथ िरूप में कल्याणकर रिता िै; वि उसकी सिा या सव िसिा का समय एवं ववधान निींरिता। शास्त्र व्यजकत के भलए एक ननवैयैजकतक वस्तु िोता िै, और वि ननवैयजकतकता िी उसे व्यजकत के अंगों के संकीण िवैयजकतक ववधान के ऊपर उसकी प्रामाणणकता प्रदान करती िै; पर इसके साथ िी वि शास्त्र समजष्ट के भलए ननजी िोता िै और उसकी अनुभूनत, उसकी संस्कृनत या उसकी प्रकृनत की उपज िोता िै। वि अपनेसमस्त रूप और भाव में आममा की पररपूणतिा का आदश िववधान या िमारी प्रकृनत के स्वामी का सनातन ववधान निीं िोता, भले िी उसके अंदर उस अनत िमिर वस्तु के संकेत, तैयारी, प्रकाशप्रद आभास कम या अधधक मात्रा में कयों न ववद्यमान िों। और व्यजकत समजष्ट को अनतिम कर उससे आगे बढ़ा िुआ िो सकता िै और एक िमिर समय, एक प्रशस्ततर माग,ि प्राण-पुरुष के एक गंभीरतर प्रयोजन के भलए तैयार िो सकता िै।

अतः व्यजकत की इच्छाओं, कामनाओं, अंध प्रवृवृयों आहद को ननयंत्रत्रत करने में शास्त्र की अमयधधक उपयोधगता िै। परन्तु मनुष्य के अन्दर इन वृवृयों के अनतररकत ऐसे भी भाग िैं जो बिुत गिराइयों में ननवास करते िैं। अतः जजनमें ये भाग सकिय िोतेिैं और बिारी प्रकृनत ननरव अपना प्रभाव और प्रकाश िालते िैं उन्िें समाज के ननधाररित ववधान पर अपना प्रभाव अमयंत संकीण िया अनुपयोगी लगनेलगते िैं या कफर या शाख भाररक पुकार से ववसंगत लगनेलगते िैं, कयोंकक कोई भी अपनी ववधान िमारे गिरे भागों पर बाध्यकारी निीं ंिो सकते। वे तो तभी तक उपयोगी िोतेिैं जब तक कक व्यजकत इतना अपररपकव िोता िै कक तुझे ेइन बिारी सिारों की आवश्यकता िोती िै। परंतु जब एक बार कुछ गिरे भाग सकिय िो जाते िैं तब उनके प्रभाव से व्यजकत गोचर प्रतीनतयों के भीतर के समय का अन्वेषण करनेलगता िै। और यहद व्यजकत में यि अन्वेषण गिन िो और साथ िी उसमें पयाप्ति सामथ्य िो तो वि प्रनतजष्ठत शास्त्रों का ववरोध कर अपने िी नये माग िकी खोज और ननमाणि कर सकता िै। सामान्यतः ऐसे िी लोग समाज में ककन्िीं भी मिान् ्पररवतनिों के सूत्रधार िोतेिैं। जजतनेभी मिान् ् व्यजकतमव िुए िैं उन सब के ववषय में यिी एक बात सवसिामान्य रिती िै कक या तो उनकी आममा प्रनतजष्ठत शास्त्रों से बाँधना स्वीकार निीं ंकरती और उनका ववरोध करती िै या कफर यहद वे उन्िें स्वीकार करते भी िैं तो अपनिी ववभशष्ट तरीके से उन्िें सवथिा अनतिम कर जाते िैं और अपनिी नए पथ का ननमाणि करते िैं। इसी प्रकार समय-समय पर समाज को एक नई हदशा भमलती िै तथा जीवन जीनेके तरीकों में अधधक समृद्धता आती िै। परंतु ुशास्त्र के प्रनत यि ऊब ककसी व्यजकत में िी निींअवपतु ुसमजष्टगत रूप से पूरी जानत में भी आ सकती िै। ककतनी िी बार िम ककसी राष्ट्र में पूरी की पूरी शासन प्रणाली के ववरुद्ध आम ववरोध देखते िैं जजसमें केवल कोई व्यजकत िी निीं अवपतु पूरा समाज िी तय ववधानों के ववरोध में उतर आता िै और उसे मयाग कर ककसी नए ववधान की खोज और स्थापना करता िै और जब उस ववधान की भी समय सीमा और उपयोधगता समाप्त िो जाती िै तब वि भी ककसी न ककसी तरि मयाग हदया जाता िै। ववश्व का सारा इनतिास िमें इस प्रवृवृ का पयाप्ति साक्ष्य प्रदान करता िै। अतः िमारे ऊँचे से ऊँचेववधान भी अपने समय पर तो प्रचलन में रितेिैं परंतु जब उनका

समय समाप्त िो जाता िै और वे रूढ़ बन जाते िैं तो ककसी नए ववधान के द्वारा उन्िें प्रनतस्थावपत कर हदया जाता िै। चूंकक पाधथवि अभभव्यजकत िमववकासमय िै इसभलए यि सभी चीजें बदलती रिती िैं जजसके कारण जो चीज ककसी समय ववशेषे पर व्यजष्ट या समजष्ट के भलए सियक िोती िै विी कालांतर में आवश्यक निीं ंकक सियक बनी रिे अवपतुएक समय के बाद वि आगे की प्रगनत में बाधक भसद्ध िोती िै।

इसभलए िम यि आशा निींकर सकतेकक एक गौतम बुद्ध शास्त्रों के अनुसार िी गनत करें। या कफर समजष्टगत रूप से ऐसा संभव निीं ंिै कक अतीत में िुई फ्रांसीसी िांनत को तथा पुनजागिरण को रोका जा सके। इन सभी व्यजष्टगत और समजष्टगत उदािरणों में िम देखतिैं कक एकाएक िी सारे समाज के मूल्यों का पुनगठिन और नवननमिाण िो जाता िै। पुराने ेमूल्यों को नए मूल्यों के द्वारा प्रनतस्थावपत कर हदया जाता िै। इस प्रकार िम सदा िी दो वृवियों को कियारत देखतिैं। एक वृवि िै उधचत ववधान या शास्त्र के ननमाणि की वृवि जो व्यजकत और समाज को ननरंकुश आचरण से रोकती िै और उसे संस्काररत करती िै और इसके साथ िी दूसरी वृवि िै इन शास्त्रों में अधधक नमनीयता लानेकी तथा इनका अनतिम करने की।

ककंतु तब कफर एक ऐसे कम िका सुननजश्चत आधार कया िोना चाहिए जो कामना के ननदेश तथा प्रचभलत ववधान दोनों से िटकर चलता िै? कयोंकक, कामना के ननयम का अपना एक प्रभुमव िोता िै जो िमारे भलए अब और वैसे िी सुरक्षक्षत या संतोषजनक निीं रिता जैसा वि पशु ुके भलए िोता िै या कफर जैसा वि आहदम मानवता के भलए रिा िोगा, परंतु कफर भी अपनी सीमा के भीतर यि िमारी प्रकृनत के एक अनत जीवंत भाग पर आधाररत और उसके प्रबल संकेतों के द्वारा संपुष्ट िोता िै; इस धम िअथवा शास्त्र के पीछे िोतिैं धचर-प्रचभलत ववधान की समस्त प्रामाणणकता, पुराने ेसमय में उसे भमली सफल अनुमोदन या स्वीकृनत और एक सुननजश्चत अतीत-अनुभूनत। ककंतु यि नया प्रयास अज्ञात या अंशतः-ज्ञात की ओर एक शजकतशाली अभभयान, एक सािभसक ववकास और एक नूतन ववजय का स्वरूप रखता िै, तो कफर वि कौन-से सूत्र का अनुसरण करे, वि कौन-सा मागदिशकि प्रकाश िै जजस पर यि प्रयास ननभरि करे या भरोसा रखे या िमारी सिा के अंदर इसका दृढ़ आधार कया िो सकता िै? इसका उिर यि िै कक वि सूत्र और आधार िमें मनुष्य की श्रद्धा में भमलेगा; श्रद्धा अथात्् िजजससे वि अपने-आप के तथा सिा के समय के रूप में देखता या समझता िै उस पर ववश्वास करने तथा उसे जीने का संकल्प। दूसूरे शब्दों में इस प्रयास का अथ िि मनुष्य का अपनेसमय, अपनेजीवन-ववधान, अपनी पूणतिा और भसद्धध के पथ की उपलजब्ध के भलए अपनी ननज सिा के प्रनत या कफर अपनी सिा या ववश्व-सिा के अंदर ववद्यमान ककसी शजकतशाली एवं बाध्यकारी वस्तु के प्रनत पुकार करना। और सब कुछ ननभरि करता िै उसकी श्रद्धा के स्वरूप के ऊपर, अपनेअंदर या जजस ववश्वाममा का वि एक अंश या प्राकट्य िै, उसके अन्दर ववद्यमान जजस वस्तु के प्रनत वि अपनी श्रद्धा अवपति करता िै उसके ऊपर और इसके द्वारा वि अपनी वास्तववक आममा तथा ववश्व की आममा या उसकी वास्तववक सिा के ककतना ननकट पिुँचता िै इस बात के ऊपर। यहद वि तामभसक, मूढ़ एवं ंतमसाच्छन्न िै, यहद उसकी श्रद्धा अज्ञानयुकत तथा संकल्प अक्षम िै तो वि ककसी भी यथाथ िवस्तु तक निींपिुँच पाएगा तथा अपनी ननमन प्रकृनत में जा धगरेगा। यहद वि भमथ्या राजभसक प्रकाशों के प्रलोभन में पड़ गया तो वि अपनेस्वेच्छाचारी संकल्प के द्वारा ऐसे उपमागों में भटक सकता िै जो उसे दलदल

या गह्वर की ओर ले जा सकते ि ैं। दोनों ि ी जस्थनतयों में उसके उद्धार का एकमात्र अवसर इस बात में ि ै कक उसके अंदर सत्त्वगुण कफर से प्रबलता प्राप्त कर ले और वि उसके अंगों पर एक नयी ज्ञानदीप्त ननयम-व्यवस्था लागू करे जो उसे उसके स्वच्छंद संकल्प की प्रचंि भ्रांनत या उसके तमसाच्छन्न अज्ञान की ज़ि भ्रांनत से मुकत कर देगी। इसके ववपरीत, यहद उसकी प्रकृनत साजत्त्वक ि ै और यहद उसे आगे बढ़नेके भलए साजत्त्वक श्रद्धा एवं ंननदेश प्राप्त ि ै तो एक अब तक अनुपलब्ध उच्चतर आदशववधान उसे दृजष्टगोचर ि ो जाएगा जो उसे ककन्ीं ववरले प्रसंगों में साजत्त्वक प्रकाश से भी ऊपर सि ा और जीवन की उच्चतम हदव्य ज्योनत एवं हदव्य प्रणाली की ओर कुछ दूरू तो ले ि ी जा सकता ि ै। कयोंकक यहद उसके अंदर साजत्त्वक प्रकाश इतना प्रबल ि ो कक वि उसे अपनी चरम सीमा तक ले जाए तो वि उस सीमा से आगे बढ़कर भागवत् ् ववश्वातीत एवं ंननरपेक्ष सि ा की ककसी प्रथम रजश्म में प्रवेश के भलए माग ि बनानेमें समथ ि ोगा। आमम-अनुसंधान के सभी प्रयमनों में ये संभावनाएँ ववद्यमान ि ैं; ये इस आध्याजममक अभभयान की शत ें ि ैं।

अब ि में यि देखना ि ै कक गीता अध्यामम-भशक्षा और आमम-साधना की अपनी पद्धनत के अनुसार इस प्रश्न का कैसा समाधान करती ि ै। कयोंकक अजुनि तुरंत ि ी एक ऐसा संकेताममक प्रश्न करता ि ै जजससे यि समस्या या इसका एक पक्ष उपजस्थत ि ोता ि ै।

यि एक ब़िा ि ी मूलभूत प्रश्न ि ै। कम ि का एक ववधान तो कामना ि ो सकती ि ै जजसका कक ननयंत्रण शास्त्र के द्वारा और शास्त्र के आधार पर ककया जाता ि ै। परंतु जब शास्त्र का आधार छो़ि हदया जाए तब कफर वि कौनसा आधार ि ो जजस पर कक कम ि को प्रनतजष्ठत ककया जाए? और कफर उस कम ि के सि ी या गलत ि ोने की कसौटी या मापदंि किया ि ो? यि कसौटी ि ै व्यजकत की श्रद्धा जो ननधािररत करती ि ै कक वि कम ि सि ी ि ै या नि ीं। इसी को गीता तीन भागों में ववभाजजत करके 'श्रद्धात्रयववभागयोग: का ननरूपण करती ि ै। इसी संदभ ि में वि कि ती ि ै कक वास्तव में जजसकी जो श्रद्धा ि ोती ि ै व्यजकत उसी के अनुसार ि ोता ि ै और भववष्य में भी व्यजकत वि ी बन ेगा जो उसकी श्रद्धा ि ोगी।

मनुष्य को जो श्रद्धा ि ोती ि ै अथात् ि ्अपनी सि ा का जो समय मिसूस ि ोता ि ै उसी के अनुसार वि अपने जीवन को ढालनेका प्रयास करता ि ै। इसी कारण समान ि ी पररवेश में पले-बढ़े ि ोने पर भी भभन्न श्रद्धा ि ोने ेपर व्यजकत भभन्न-भभन्न जीवन व्यतीत करते ि ैं। उदाि रण के भलए ककसी को अपने इष्ट में अपनी सि ा का समय नजर आता ि ै, ककसी को अपनेगुरु के अंदर वि समय हदखाई देता ि ै, ककसी अन्य को श्रद्धा के ककसी अन्य पात्र में यि समय हदखाई देता ि ै तो वि अपनेजीवन को उस अनुसार हदशा प्रदान करने ेका प्रयास करता ि ै और तब वि ी उसके कम ि का आधार बन जाता ि ै। यहद यि श्रद्धा तामभसक या राजभसक प्रकार की ि ो तो दोनों ि ी उसे गत ि में ले जाती ि ैं। इनसे ननकलने का उपाय ि ै कक साजत्त्वक श्रद्धा का ववकास ककया जाए। यहद ककसी की प्रकृनत साजत्त्वक प्रकार की ि ो और उसमें साजत्त्वक श्रद्धा ि ो तो यि संभावना ि ै कक उसे एक ऐसे आदश ि के दशनि ि ों जो उसे अब तक गोचर नि ीं ि ुआ था और यि भी संभव ि ै कक उस साजत्त्वक श्रद्धा के प्रभाव से उसे ककन्ीं ववरले क्षणों में साजत्त्वकता से भी ऊपर की ज्योनत के दशनि ि ों। इस प्रकार श्रीअरववन्द अपनी हटप्पणी में ये सारी संभावनाएँ

प्रकट करते िैं जो उस व्यजकत के साथ िो सकती िैं जो शास्त्र को छोि़कर ककसी नए माग िके अनुसार चलनेका प्रयास करता िै।

प्रश्न : यिााँ श्रद्धा की जो बात कर रिे िैं उसमें समस्या कया श्रद्धा में िै या जजस चीज के ऊपर श्रद्धा रखी गई िै, उसमें िै?

उत्तर : समस्या श्रद्धा में निींअवपतु उस माध्यम में िै जजसके द्वारा वि अभभव्यकत िोती िै। श्रद्धा तो अपनेआप में सदा िी सिी िोती िै परन्तुउसकी अभभव्यजकत के माध्यम पर ननभरि करता िै कक वि ककतनेशुद्ध रूप में अभभव्यकत िो पाती िै।

प्रश्न : तो कया इसका यि अथ ििै कक िमारी सिा के कुछ भाग उस श्रद्धा को स्वीकार निींकरते?

उत्तर : इसमें स्वीकार करने का प्रश्न निीं िै। उन भागों में अपने को उिर: के प्रनत अनतशय आग्रि रिता िैजजन्िें छोि़ने के भलए ने तौर से निीं िोतेइसभलए श्रद्धा उसी के अनुरूप अभभव्यकत िोती िै। तैयार में के भलए ककसी धाभमकि व्यजकत के अन्दर श्रद्धा उस धम िकी उदारखा के अन्दर िी अभभव्यकत िोती िै कयोंकक उस व्यजकत के भलए उस धम िकी सीमाओं को अनतिम कर जाना सिज निीं िोता। इसी कारण श्रद्धा की किया प्रायः एक सीमा तक िी संपन्न िो पाती िै और उसको स्वतंत्र किया बिुत िी कम देखने को भमलती िै। साथ िी, जजसे िम सामान्यतः श्रद्धा किते िैं उसकी किया भी तभी तक िोती िै जब तक कक व्यजकत को उस समय के साक्षात् ्दशनि न िुए िों। कयोंकक एक बार वि प्रमयक्ष दशनि िोने ेके पश्चात् ्कफर श्रद्धा का स्वरूप वैसा निीं ंरिता। तब वि व्यजकत के भलए एक त्रबल्कुल सिज और ननजश्चत तथ्य बन जाती िै। जजसे िम प्रायः श्रद्धा किते िैं वि तो तभी तक रिती िै जब तक कक व्यजकत को वि समय केवल भीतर िी गोचर िुआ िै परंतु बािरी भागों को अभी भी श्रद्धा के रूप में िी उसे स्वीकार करना पि़ता िै। परंतु जब एक बार वि समय गोचर िो जाता िै तब कफर इसमें श्रद्धा की इस तरि की भूभमका निींरि जाती कयोंकक तब वि िमारी सिा का एक सिज तथ्य या वास्तववकता बन जाती िै जजसे व्यजकत त्रबना ककसी संदेि की छाया के जीवन में अभभव्यकत करता िै।

अजुनि उवाच

ये शास्त्रववधधमुमसृज्य यजन्ते श्रद्धयाजन्वताः ।

तेषांननष्ठा तु ्का कृष्ण सत्त्वमािो रजस्तमः ।। १॥

१. अजुनि ने किा: िे कृष्ण! जो मनुष्य शास्त्र के ववधान का पररमयाग कर के परन्तु श्रद्धा से पररपूण ििोकर यज्ञ करते िैं, उनके अंदर भजकत का वि एकननष्ठ संकल्प (ननष्ठा) ककस प्रकार का िै? वि सत्त्व िै, रजस् ्िै अथवा तमस् ्िै?

श्रीभगिान् ्उिाच

त्रीविा भिनत श्रद्िा देदहनांसा मिभािजा ।

सास्त्त्किी राजसी चिै तामसी चेनत तां ्शृणु ज॥ २॥

२. श्रीभगिान् ्ने कहाः देहिाररयों की उनके मिभािा से उत्पन्न हजई श्रद्िा तीन प्रकार की होती है देह सारों को नजससक और तामससक। इनके बारे में तू सजन।

जब िम अपनी कामनाओंके अनुसार जीते िैं, उन्िींके अनुसार िोतेऔर कम िकरते िैं तो वि िमारी उस श्रद्धा की िी एक अनवरत किया िोती िै जो अधधकांशतः िमारी प्राणणक और भौनतक, तामभसक और राजभसक प्रकृनत से संबद्ध िोती िै। और जब िम शास्त्र के अनुसार बनने, जीवन यापन करनेऔर कम िकरनेकी चेष्टा करते िैं तो िम जजस श्रद्धा की ननरंतर किया के द्वारा अग्रसर िोते िैं वि – यहद यि मान कर चलें कक वि कोई सामान्य श्रद्धा-ववश्वास मात्र न िो तो - एक साजत्त्वक प्रवृवि की िोती िै जो िमारे राजभसक और तामभसक भागों पर अपने को लादने ेके भलए सतत् ्रूप से प्रयास कर रिी िोती िै। जब िम इन दोनों चीजों को छोि़ देते िैं और मिारे अपने खोजेिुए या िमारे ननजी रूप से स्वीकार ककये गए ककसी आदश िके अनुसार या समय की ककसी अनूठी पररकल्पना के अनुसार बनने, जीवन यापन करने ेऔर कम िकरने का यमन करते िैं तो वि भी उस श्रद्धा की एक ननरंतर किया िोती िै जो िमारे प्रमयेक ववचार, संकल्प, भाव और कम िपर ननरंतर ननयंत्रण रखनेवाले इन तीन गुणों में से ककसी एक के अंतगति िो सकती िै। और कफर, जब िम हदव्य प्रकृनत के अनुसार बनने, जीनेऔर कम िकरने ेका यमन करते िैं, तब भी िमें श्रद्धा की सतत् ्किया के द्वारा िी बढ़ना िोता िै; और यि श्रद्धा गीता के अनुसार उस साजत्त्वक प्रकृनत की श्रद्धा िोनी चाहिये जो अपनेआप की सुस्पष्ट सीमाओं की पराकाष्ठा तक पिुँच कर उन्िें अनतिम करने ेकी तैयारी कर रिी िो। परंतुइनमें से सभी चीजों में तथा इनमें से प्रमयेक में प्रकृनत की कोई गनतशीलता या अवस्थान्तर अंतननहित िै, ये सभी ककसी आंतररक या ककसी बाह्य किया को या कफर आंतररक तथा बाह्य दोनों िी कियाओं को मानकर चलती िैं। तो कफर इस किया का स्वरूप कया िोगा? गीता मिारे 'कतव्यिं कम'ि अथात््करनेयोग्य कम िके तीन मुख्य तत्त्व बताती िै, और ये िैं यज्ञ, दान और तप। कयोंकक जब अजुनि द्वारा बाह्य और आंतररक मयाग, 'संन्यास' और 'मयाग' में भेद के ववषय में प्रश्न ककया जाता िै तब श्रीकृष्ण द्वारा इस बात पर बल हदया जाता िै कक इन तीन चीजों को कभी भी निीं मयागना चाहिए, अवपतु ुइन सभी को तो बराबर करते hat 5T रिना चाहिए, कयोंकक ये िी िमारे भलए 'किव्यिं कम'ि िैं और ये ज्ञानी मनुष्य को पववत्र करते िैं। दूसूरे शब्दों में ये कम िीिी िमारी पूणताि के साधन िैं। परंतु ुसाथ िी ये अज्ञानी द्वारा अज्ञानपूवकि या अपूण िज्ञान के साथ ककये जा सकतिें।

वास्तव में, आरंभ में जब िमारी बाह्य सिा अपररपकव िोती िै, तथा ववकभसत या सुसंस्कृत निींिोती, तब श्रद्धा को अपनी अभभव्यजकत प्राणणक और भौनतक, तामभसक और राजभसक प्रकृनत के अनुसार िी करनी िोती िै। इसमें व्यजकत कामनाओं के आधार पर िी कम िकरता िै। परंतु जब कुछ ववकास िोने ेपर वि ननजी कामनाओं की तुजष्ट िेतुकम िकरने ेकी बजाय ककसी श्रे्रेष्ठ आदश िके आधार पर कम िकरना चािता िै, उधचत कम ि

करना चिाता िै तब यि साजत्त्वक प्रकृनत की किया िोती िै जजसमें व्यजकत अपनेजीवन को शास्त्रसममत आधार पर ननयोजजत करना चिाता िै और उसके अनुसार अपनी ननरंकुश भौनतक और प्राणणक प्रकृनत पर कुछ-कुछ अंकुश लगाने का प्रयास करता िै। िमारे तामभसक भाग सदा िी अपने क्षुर सुख-दुःख के अनुसार किया करते िैं, राजभसक भाग अपनी प्राणणक वृवृयों की, कामनाओं, लालसाओं, अपने अिं की तुजष्टयों की पूनत िका प्रयास करते िैं। परंतु मनुष्य की साजत्त्वक प्रकृनत का प्रयास जीवन को ककसी उधचत ववधान के अनुसार ननयोजजत करने का िोता िै और जब व्यजकत सच्चाई के साथ इस ओर चलने का प्रयास करता िै तब इससे उद्दण्ड् निनमन प्रकृनत की ननरंकुश किया पर बिुत कुछ लगाम लग जाती िै।

परंतु कुछ ऐसे भी लोग िोते िैं जो शास्त्रसममत जीवन यापन न कर के अपनी िी ककसी अन्य ववधान के अनुसार जीवन यापन करना चिाते िैं। और शास्त्र ववरोधी यि भाव ककसी तामभसक प्रेरणा से प्रेररत िो सकता िै, राजभसक प्रेरणा से प्रेररत िो सकता िै या कफर साजत्त्वक प्रेरणा से प्रेररत िो सकता िै या कफर ककन्िीं दो प्रेरणाओं के भमश्रण से िो सकता िै। यिी अजुनि का प्रश्न था कक वि श्रद्धा तामभसक िोती िै या कफर राजभसक या साजत्त्वक। इस ववषय में श्रीअरववन्द किते िैं कक यि श्रद्धा तीनों गुणों में से ककसी एक या अधधक के अनुसार िो सकती िै, यिा िाँतक कक यि इन तीनों गुणों से परे की भी िो सकती िै। और उस श्रद्धा के आधार पर िी व्यजकत को अपने नवीन पथ पर अग्रसर िोना िोता िै।

जैसा कक िम पिले भी चचिा कर चुके िैं कक ककस प्रकार गीता के ववषयों को प्रायः उनके मूल व्यापक स्वरूप में न समझकर ककसी सतिी संकीण ितथा स्थूल अथ िमें लेने की भूल की जाती िै उसी प्रकार यज्ञ, तप व दान को भी उनके मनोवैज्ञाननक और आध्याजममक अथ िमें न लेकर केवल एक बािरी किया के रूप में िी समझ भलया जाता िै। यज्ञ, जो कक इस सृजष्ट का एक मूलभूत ववधान िै जजसे कके िये त्रबना कोई रि िी निीं िसकता, उसे केवल कोई बाह्य आनुष्ठाननक यज्ञ िी मान भलया जाता िै जबकक यज्ञ, तप और दान ऐसी मूलभूत चीजें िैं जजन्िें इस सृषृट जगत् िमें कोई भी कके िये त्रबना रि िी निींसकता। यज्ञ, तप और दान का ववधान तो इस जगत् िके ननमाणि में ननहित िै अतः भले व्यजकत इन्िें स्वेच्छा से िकरे या कफर इन्िें प्रकृनत की बाध्यकारी शजकत के द्वारा उस पर लादा जाए, परंतुककसी भी दशा में कोई भी इनसे बच निीं िसकता। इतना अवश्य िै कक यहद व्यजकत सिष िी यि किया करता िै तो उसे इनका आध्याजममक और मनोवैज्ञाननक लाभ प्राप्त िोता िै, जबकक यहद अवश रूप से प्रकृनत द्वारा उससे वे कराए जाते िैं तो उसे उनका वि लाभ प्राप्त निीं ििोता।

यज्ञ का अथ ििै परस्पर आदान-प्रदान के द्वारा पववत्र बनाना। जब व्यजकत अपनी िी इच्छाओं, कामनाओं को पूरा करना चिाता िै तथा अन्य ककसी से कोई सरोकार निींरखता तब वि तामभसक यज्ञ िोता िै। जब व्यजकत केवल अपनी िी इच्छाओंआहद की पूनत िपर केंहरत रिने की बजाय दूसरों की सिा को भी स्वीकार करता िै और उनके सुख-आराम के ववषय में भी सोचता िै और उसे यि भान िोता िै कक सामूहिक जीवन में यहद वि दूसूरों से कुछ प्राप्त करना चिाता िै तो उसे स्वयंभी कुछ योगदान करना िोगा, जब इस भाव से व्यजकत कम ि करता िै तब यि राजभसक यज्ञ िोता िै। परंतुइन ककन्िीं भी कारणों को छोड़कर जब व्यजकत जो उधचत िै, श्रेष्ठ

ै, शास्त्रसममत िै, उस अनुसार कम िकरता िै, चिो इसके प्रनतफल में उसे स्वयंकुछ भी न प्राप्त िो, तो यि साजत्त्वक यज्ञ िोता िै। परंतु इन सबसे भी आगे जब व्यजकत सिज रूप से गुरु-आज्ञा से प्ेरेररत िोकर अनन्य रूप से उसी के अनुसार कम िकरता िै, जजसमें कम िका अन्य कोई िेतु निीं िोता, तब वि ननखैगुण्य यज्ञ िोता िै। इसमें मि देख सकते िैं कक इस प्रकार व्याख्या ककये जानेपर यज्ञ का जो संकीण िआनुष्ठाननक अथ िभलया जाता िै वि त्रबल्कुल बदल जाता िै और यज्ञ का ववधान एक व्यापक आध्याजममक और मनोवैज्ञाननक रूप ग्रिण कर लेता िै।

इसी प्रकार तप से भी सामान्यतः जजन तपश्चयामिमक कियाओं से अथ िलगाया जाता िै केवल विी न ीकिर इसका गिन मनोवैज्ञाननक अथ िभी िै। तप का अथ िै अपनी शजकतयों तथा ऊजाओं को एकाग्र करना, उन्ि संकेंहरत करना। ककसी छोटे से छोटे काय िके भलए भी िमें कुछ ऊजिा को एकाग्र करने ेकी आवश्यकता िोती िै। व्यजकत जजतना िी अधधक अपनी शजकतयों को एकाग्र करनेमें सफल िोता िै उतना िी मित् ्काय िवि अपने जीवन में संभसद्ध कर पाता िै। ववश्व में जजन्िोंने भी्मिान उपलजब्धयााँ की िैं वे ेऐसे लोग रिे जजनमें अपनी शजकतयों को अपनेउद्देश्य पर केंहरत करनेकी ववलक्षण क्षमता रिी िै। अपनी शजकतयों को जजस उद्देश्य के प्रनत िम एकाग्र करते िैं उस अनुसार वि तप तामभसक, राजभसक और साजत्त्वक िोता िै। अतः यि इस पर ननभरि करेगा कक व्यजकत अपनी ऊजाओं को ककन िेतुओं की पूनत िके भलए एकाग्र करता िै। यहद ककन्िीं ननमन भौनतक िेतुओंकी पूनत िके भलए वि अपनी शजकतयों को एकाग्र करता िै तो वि तामभसक तप िोगा, यहद ककन्िीं प्राणणक कामनाओं, लालसाओं या अन्य अिंपरक आवेगों को पूनत िके भलए एकाग्र करता िै तो वि राजभसक तप िोगा और यहद ककन्िीं आदशों के प्रनत, ककसी श्ेरेष्ठ उद्देश्य के प्रनत, ककसी मानभसक ववचार के प्रनत वि अपनी शजकतयों का केन्रीकरण करता िै तो वि साजत्त्वक तप िोगा। इसी प्रकार जब भगवद्प्ेरेरणा से प्ेरेररत िोकर सिज रूप से वि अपनी अंतःप्ेरेरणा के अनुसार अपनी शजकतयों को अवपित करता िै और उसमें ककसी प्रकार की कोई अिंपरक तुजष्टयों की पूनत िनिीं ंखोजता तब इसे ननस्त्रैगुण्य तप किते िैं।

यिी बात दान के ववषय में भी लागू िोती िै। अपनी शजकत या ऊजिा को एकाग्र कर के जब िम उसे कम िमें ननयोजजत करते िैं तब उसे दान किते िैं। ककसी भी िेतु ुकी पूनत िके भलए िमें कुछ न कुछ व्यय अवश्य करना िोता ै। वि व्यय रव्याममक िो सकता िै, भावनाममक िो सकता िै, ववचाराममक या मनोवैज्ञाननक या कफर अन्य ककसी भी प्रकार का िो सकता िै। अतः ककन्िींननमन िेतुओंके भलए अपनी शजकत व्यय करना तामभसक दान िोता िै। जब िम प्राणणक तुजष्टयों के भलए जजस ककसी भी रूप में शजकत व्यय करते िैं तब वि राजभसक दान िोता ै, विींककसी प्रनतफल की आशा के त्रबना जब िम ककसी आदश िके भलए अपनी ऊजिा या कोई रव्य या अन्य कुछ व्यय करते िैं तब उसे साजमवक दान किते िैं। इसमें व्यजकत उस कम िके पररणामों से सरोकार निीं ंरखता चािे उसके भलए सुखद िों या दुःखद, लाभदायक िों या िाननकारक, शुभ िो या अशुभ। वि तो इसभलए उस कम को करता िै कयोंकक उसे वि करना उधचत लगता िै। िालाकााँक गीता में यज्ञ, तप और दान का ववधान केवल त्रत्रगुणमय िी बताया गया िै, परंतु अपनी टीका में श्रीअरववन्द अपनेअनुभव के आधार पर इनमें ननखैगुण्य के ववधान को भी समाहित कर लेते िैं। आगे भी इस ववषय पर गीता में ववशद चचिा आएगी।

इस प्रकार इन तीन तरीकों से श्रद्धा अपनेआप को अभभव्यकत करती ि ै। और प्रमयेक के गठन के अनुसार सभी में यि अभभव्यजकत भभन्न-भभन्न िोगी। साथ िी यज्ञ, तप और दान के इस व्यापक अथ िसे यि स्पष्ट िो जाता िै कक ये केवल कोई बािरी या आनुष्ठाननक कियाएँ िी निीं िैं, जैसा कक प्रायः िी इन्िें समझा जाता िै, अवपतुये तो िमारी सिा के वे मूलभूत समय िैं जो सभी के ऊपर लागू िोतीं िैं जजनसे कोई भी छूट निीं सकता। परंतु यहद अवश रूप से िी व्यजकत इन्िें करता िै तो उसे इनका कोई आध्याजममक लाभ निीं प्राप्त िोता, विीं यहद सचेतन रूप से वि इन्िें करता िै तो इससे वि अपने सच्चेस्वरूप की ओर उत्तरोत्तर गनत करता जाता िै और साथ िी सचेतन रूप से करने े पर यि एक बिुत िी आनन्ददायक किया बन जाती िै। इसीभलए गीता की प्रस्तावना में िी श्रीअरववन्द यि स्पष्ट कर देते िैं कक गीता की भशक्षा में ऐसा कुछ निीं िै जो तमकालीन आय िजानत के भलए िी लागू िोता िो और जजसका वतमान समय में कोई मित्त्व न रि गया िो। गीता के जो ववषय िमें देश-काल मयाहदित भी प्रतीत िोतें िैं, जैसे कक चातुवण्यि,ि यज्ञ-तप-दान आहद, यहद उन्िें उनके सिी मनोवैज्ञाननक तथा आध्याजममक अथों में भलया जाए तो वे ेएक व्यापक और सनातन स्वरूप अपना लेते िैं जो सभी समयों और स्थानों में समान िी रूप से प्रयोजनीय रिते िैं।

सत्त्वानिरूजपा सिुमुय श्रद्िा भिनत भारत ।

श्रद्िामियोऽयं परुजषो यो यच्छ्रूद्ि: स एि सः ।। ३।।

३. हे भारत! प्रत्येक मनष्जय की श्रद्िा उसकी सत्ता के उपादान द्िारा प्रदत्त रूप ग्रहण कर लेती है। यह पजरुष, मनष्जयगत यह जीि, श्रद्िा का बना हजआ है; और िह श्रद्िा उसके भीतर जो भी है, िह मनष्जय िही है, और िही हि है।

....एक अद्भुत पंजकत जजसमें गीता िमें बताती िै कक यि पुरुष, मनुष्य के अंदर ववद्यमान यि जीव, मानो श्रद्धा का, अथात्ि् संभूनत के संकल्प, अपने-आप में तथा जगत् ्की सिा में ववश्वास का बना िुआ िै, और उसके अंदर का वि संकल्प, वि श्रद्धा या संघटक ववश्वास कोई भी कयों न िो, वि विी िै और विी वि िै, 'श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रूद्धः स एव सः।' यहद िम इस अथगिभभति उजकत पर कुछ सूक्ष्मता से ववचार करें तो िम पाएँगे कक यि एक िी पंजकत अपने धगने-चुने ेबलपूण िशब्दों में आधुननक उपयोधगतावाद के भसद्धांत की प्रायः सारी िी पररकल्पना को अंतननहिित रखती िै। कयोंकक यहद मनुष्य या उसकी अंतराममा अपनी अंतरस्थ श्रद्धा से बनी िुई िै (श्रद्धा यिाँ अपने समय के दशनि करता िै और जजसे जीने का संकल्प करता िै, उसके भलए विी सिकी सिा का, उसके ननज स्वरूप का समय िै जजसकी सृजष्ट उसी ने की िै या कर रिा िै और उसके भलए उसके अनतररकत और कोई यथाथ िसमय निीं िो सकता। यि समय उसके आंतर और बाह्य कम िका तथ्य िै, उसकी का, अंतराममा की कियाशजकत का तथ्य िै, उसके अंदर जो वस्तु ननमय अपररवतनीय िै उसका तथ्य निीं। वि आज जो कुछ भी िै वि उसकी अपनी प्रकृनत के ककसी अतीत संकल्प के द्वारा िी गहठत िुआ िै। इस समय उसके अंदर कुछ जानने, ववश्वास करने ेतथा अपनी बुद्धध और प्राणशजकत में विी कुछ बन जाने का जो संकल्प िै वि उसके अतीत संकल्प को संपुर करता तथा चालू ूरखता िै। उसकी मूल सिा तक में यि जो संकल्प और श्रद्धा कियाशील

 297 ि वि कोई भी नया रूप कयों न ग्रिण करे, वि भववष्य में उसी नये रूप में पररणत िोता जाएगा। िम मन और
प्राण के अपने ननज कम िमें सि के एक अपनी समय की सृजृष्ट करते िैं, यि इस बात को किने ेका एक दूसूरा ढंग ि कक िम स्वयंी अपने स्वरूप की सृजृष्ट करते िैं, िम स्वयंी अपने ननमाताि िैं।

व्यजकत की जो भी श्रद्धा िोती ि विी वि बन सकता ि। यहद ऐसा न िोता तब तो आध्याजममक पथ पर चलनेका कोई आधार िी नींरिता। जब कोई योग पथ पर आता ि तब ऐसा वि केवल श्रद्धा के सिारे िी कर सकता ि कयोंकक इसका अन्य कोई प्रमाण तो िोता िी नीं। केवल श्रद्धा िी ि जो ककसी भी बािरी प्रमाण के अभाव में भी व्यजकत को अपनेउद्देश्य की हदशा में सतत् लगाए रखती ि। इसभलए चािे बािरी प्रतीनत कुछ भी कयों न िो, चािे मन में ककतनेभी संदेि कयों न उठते िों, कफर भी भीतर कोई ऐसी चीज िोती ि जो जानती ि कक उसे अमुक काम करना ि, या अमुक अभभयान पर ननकलना ि और श्रद्धा के कारण िी सब कुछ के बावजूद वि अपनेलक्ष्य को प्रास करता ि। अतः गीता का यि एक मूलभूत समय ि कक व्यजकत की जो भी श्रद्धा ि वैसा वि ननजश्चत रूप से बन सकता ि। और यि तथ्य व्यजकत को वि शजकत प्रदान कर देता ि जो उसे रह्माण्ड के सभी ननयम-ववधानों को अनतिम करने ेमें सक्षम बना देती ि कयोंकक तब सारा खेल तो श्रद्धा का िी रि जाता ि। श्रद्धा के ववरुद्ध कोई ऊँचेसे ऊँचा ववधान भी ननष्फल िो जाता ि। इसका अपना िी अद्भुत ववधान िोता ि। गीता के अनुसार वतमान में व्यजकत जो कुछ भी ि वि उसकी अतीत श्रद्धा का पररणाम ि, और भववष्य में वि जो कुछ भी िोगा वि उसकी वतमान श्रद्धा का पररणाम िोगा। वास्तव में तो श्रद्धा के अनतररकत अन्य कोई शजकत मनुष्य के ऊपर बाध्यकारी नीं िो सकती। यहद ऐसा न िोता तब तो साधना या आध्याजममक उपलजब्ध संभव िी नीं िोतेकयोंकक िमारी सतिी सि के पास ऐसा कोई साधन नीं जजसकी सिायता से वि अपने-आप को अनतिम कर सके। और जजस भागवत् उपलजब्ध की या साक्षामकार की िम बात करते िैं, या कफर जजन ननवाणि आहद जस्थनतयों की बात करते िैं, वे भी ककन्िीं बािरी साधनों से उपलब्ध नींिो सकीं। और ये सारी ऐसी मनोवैज्ञाननक जस्थनतयाँ ि जजनके ववषय में व्यजकत को आरंभ में िी कोई अनुभव नीं िोता। इसभलए आरंभ करने का तो व्यजकत के पास कोई आधार िी नीं िोता। बािरी दृजष्टकोण से तो अवश्य िी यि एक त्रबल्कुल असंगत बात िोती ि कक व्यजकत ककसी ऐसी चीज के भलए अपनेजीवन को दावँ पर लगा देता ि जजसके ववषय में वि कुछ भी नींजानता। परंतु श्रद्धा का ववधान िी सवथिा भभन्न प्रकार का िोता ि। इसके ववषय में योगी श्रीकृष्णपे्रेम किते िैं, "... आध्याजममक अथ िमें श्रद्धा कोई मानभसक ववश्वास नीं ि जो ववचभलत िो सके और बदल सके। मन में यि ऐसा रूप ले सकती ि, पर वि ववश्वास स्वयं श्रद्धा नीं ि, वि तो उसका केवल बािरी रूप ि। ठीक वैसे िी जैसे देि, बािरी आकृनत तो बदल सकती ि पर आममा विी बनी रिती ि, वैसी िी बात यिा ँभी ि। श्रद्धा अन्तराममा में ववद्यमान एक ननश्चयता ि जो तकि-बुद्धध पर, ककसी एक या दूसूरे मानभसक ववचार पर, पररजस्थनतयों पर, मन या प्राण या शरीर की ककसी एक या दूसूरी क्षणणक अवस्था पर ननभरि नींकरती। यि प्रच्छन्न, अंधकारग्रस्त या आच्छाहदत, यिाँतक कक बुझ चुकी या नष्ट िो चुकी भी प्रतीत िो सकती ि, परंतु अंधकार का तूफान ननकल जानेपर यि पुनः उभर कर आती ि; अब भी यि आममा में प्रज्ज्वभलत गोचर िोती ि जबकक व्यजकत ने सोचा था कक यि सदा के भलए बुझाई जा चुकी ि। मन अजस्थर संदेिों का समुर िो सकता ि और तब भी वि श्रद्धा भीतर में िो सकती ि, और यहद ऐसा ि, तो वि संदेि-प्रताड़ित मन को भी माग िमें लगाए रखेगी

ताकक वि भी अपनेस्वभाव के बावजूद अपनेननयत लक्ष्य की ओर चलता रि। श्रद्धा अध्यामम सिा की, भगवान् ् की तथा आममा के आदश िकी एक आध् ्याजममक ननजश्चनत ि, ऐसी कुछ जो उस आदश िसे तब भी धचपकी रिती ि जब वि जीवन में चररताथ िन िो रि िो, तब भी जब प्रमयक्ष तथ्य अथवा कठोर पररजस्थनतयााँउसका ननषेध करती, उसे गलत ठिराती प्रतीत िोती िैं। मनुष्य के जीवन में यि एक सामान्य अनुभव ि; यहद ऐसा न िोता, तो मनुष्य अजस्थर मन का एक णखलौना अथवा पररजस्थनतयों की कठपुतली-मात्र िोता।" (योगी श्रीकृष्णपे्रम, पृष्ठ ३७-३८)

मिें यि ध्यान रखना चाहिये कक जब िम कितेिैं कक मनुष्य विी बन जाता ि जो उसकी श्रद्धा िोती ि तो यि उसकी संभूनत का समय िोता ि। यि िमारे शाश्वत समय के ववषय में निीं ंिोता कयोंकक वि तो िमारी सिा के द्वारा पूणतिः अभभव्यकत िो िी निीं पाता, उसकी तो केवल आंभशक अभभव्यजकत िी िो पाती ि। वास्तव में श्रद्धा गिरे अथ िमें िमारे अंदर श्रीमााँ का वि ननहित ववभशष्ट संकल्प ि जो िमारी सिा के द्वारा अभभव्यकत िोना चािता ि और चूंकक वि स्वयंश्रीमााँ का संकल्प ि इसभलए वि अमोघ ि। और कयोंकक िम उस संकल्प के ववषय में सचेतन निीं िोते इसभलए वि श्रद्धा के रूप में आता ि। यि सारा जगत् ्िमें जैसा हदखाई देता ि वैसा वि िमारी श्रद्धा के कारण िी हदखाई देता ि। यहद िमारी श्रद्धा बदल जाती ि तो िमारी चेतना के भलए सारा दृश्य भी बदल जाएगा। इस अथ िमें श्रद्धा सवशिजकतशाभलनी ि। व्यजकत इसके आधार पर सब कुछ का ननमाणि कर सकता ि।

परंतु त्रबल्कुल स्पष्टतः िी यि समय का केवल एक पिलू ि, और सभी एक पक्षीय उजकतयााँ ववचारक के भलए संदिेास्पद िोती िैं। िमारा अपना व्यजकतमव जो कुछ ि या जजस भी चीज की यि सृजष्ट करता ि, केवल विी समय निीं; वि सब तो केवल िमारी संभूनत का समय ि, एक ववस्तृततम गनत के अंदर केवल ककसी एक त्रबंदुववशेषे या रेखा पर हदया गया बल ि। िमारे व्यजकतमव के परे, सवप्रिथम एक ववश्वव्यापी सिा तथा एक ववश्वव्यापी संभूनत ि, जजसकी िमारी सिा और संभूनत एक क्षुर गनत मात्र ि; और उसके भी परे ि सनातन सिा जजसमें से यि समस्त संभूनत या भूतभाव उमपन्न िोता ि और जो इसकी संभाव्य शजकतयों, इसके तत्त्वों, मूल पे्ररक भावों और चरम उद्देश्यों का स्रोत ि।... (पुरुष) एक िी समय में ये सभी चीजें िो सकता ि, अथिात् ्एक ऐसी सनातन आममा िो सकता ि जो ववश्व में ववराट् स्वरूप तथा उसके प्राणणयों में व्यजष्टगत रूप धारण ककये ि; इसी प्रकार वि इन तीनों रूपों में से ककसी एक में अपनी चेतना को स्थावपत करके प्रकृनत की किया को अस्वीकार कर सकता ि अथवा इसे अपनेननयन्त्रण में रख सकता ि या इसके प्रनत प्रनतकिया कर सकता ि, उस एक भाव के अनतररकत अन्य दोनों रूपों या भावों को उसके पीछे या उससे दूरू रख सकता ि, अपने-आप को शुद्ध सनातन सिा, आममधारक ववराट् सिा या एकांगी व्यजकतगत सिा के रूप में जान सकता ि। इसकी प्रकृनत का जो भी बाह्य स्वरूप िो, पुरुष विी बनता प्रतीत िो सकता ि और अपनी चेतना के सममुखीन सकिय भाग में अपने आप को उसी रूप में देखता प्रतीत िोता ि; परंतु वि कभी भी केवल जजतना हदखायी देता ि उतना िी सब कुछ निीं िोता; इसके अनतररकत वि उतना और भी बिुत कुछ िोता ि जो कुछ वि बन सकता ि; गुप्त रूप में, इसका जो भी अंश अभी तक छुपा िुआ ि, यि वि सब िी ि। वि काल में िोनेवाले अपनेककसी भी ववशेषे आमम-रूपायन के द्वारा अटल रूप में सीभमत निीं ंिो जाता, अवपतु उसे भेदकर उससे परे जा सकता ि, उसे नछन्न-भभन्न कर

सकता ि◌ै या ववकभसत कर सकता ि◌ै, अपनी इच्छानुसार ककसी भी रूप-रचना का चुनाव या पररमयाग या नव-ननमाणि कर सकता ि◌ै, अथवा अपने अन्दर से ककसी ग◌िमिर आमम-रूपायन को प्रकट भी कर सकता ि◌ै। अपने उपकरणों में अपनी चेतना के समपूण ि◌सकिय संकल्प के द्वारा यि अपने-आप को जो मानता ि◌ै या जो ववश्वास रखता ि◌ै विी यि ि◌ोता ि◌ै या विी यि बनता चला जाता ि◌ै, यो यच्छ्रद्धः स एव सः, अथात्◌् जो कुछ बन सकने में वि ववश्वास रखता ि◌ै तथा जैसा बन सकनेमें इसकी पूण ि◌श्रद्धा ि◌ोती ि◌ै, इसकी प्रकृनत उसी में बदलती जाती ि◌ै, यि उसी को ववकभसत या उपलब्ध करता ि◌ै।

पुरुष (अंतराममा) का अपनी प्रकृनत के ऊपर यि अधधकार आममभसद्धधयोग में चरम मित्त्व रखता ि◌ै; यहद यि न ि◌ोता तो ि◌म सचेतन प्रयमन और अभीप्सा के द्वारा अपने वतमिान अपूण ि◌मानव-जीवन के ननयत या ननधारिरत चि में से कभी निीं ननकल सकते थे; (उस जस्थनत में) यहद कोई ग◌िमिर पूणति ि◌मारे भलये अभभप्रेत ि◌ोती तो ि◌में प्रतीक्षा करनी ि◌ोती कक प्रकृनत ववकास की अपनी मन्द या तीव्र प्रकिया के द्वारा उसे साधधत करे।

इसमें एक नया तत्त्व यि जुि गया ि◌ै कक ि◌मारी सिा का एक व्यजष्टगत पक्ष ि◌ोने के साथ ि◌ी साथ समजष्टगत पिलू भी ि◌ै। यिी निीं,◌ं व्यजष्ट और समजष्ट से परे ि◌मारी सिा का परामपर पिलू भी ि◌ै। इसभलए ि◌मारी श्रद्धा भी केवल व्यजष्टगत ि◌ी निीं ◌ंि◌ोती। अतः यि संभव ि◌ै कक ि◌मारी समजष्टगत चेतना की ग◌िमिर श्रद्धा की चररताथतिा के भलए व्यजष्टगत श्रद्धा की चररताथतिा को प्रतीक्षा करनी पिे।◌े साथ ि◌ी यि संभावना भी रिती ि◌ै कक व्यजकत अपनी चेतना में अपनेपरामपर पिलू की श्रद्धा को भी सकिय कर सके। इसी अथ ि◌में कि सकतिैं कक अपनी पूण ि◌सिा में व्यजकत के अनतररकत अन्य ककसी की सिा ि◌ै ि◌ी निींऔर सारी अभभव्यजकत केवल उसी का भीतर से प्रक्षेपण ि◌ै। इसभलए ककसी चरम अथ ि◌में यि व्यजकत पर ननभरि करता ि◌ै कक वि व्यजष्टभावापन्न अिमाममक चेतना में बनेरिना चािता ि◌ै या कफर अपनी वैजश्वक सिा की चेतना में ननवास करना चािता ि◌ै या कफर इन सबसे परे की चेतना में ननवास करना चािता ि◌ै या कफर एक ि◌ी साथ तीनों चेतनाओं में ननवास करना चािता ि◌ै। यहद ऐसा न ि◌ोता तब तो व्यजकत अवश रूप से प्रकृनत के ववधान से बाध्य ि◌ोता और जजस मंद गनत से वि ववकास करती ि◌ै उसे उसी का अनुसरण करना ि◌ोता। ऐसे में तो ककसी प्रकार की आध्याजममक साधना या चेतना में सचेतन आरोिण की तो कोई संभावना ि◌ी निीं ◌ंि◌ोती। परंतु ऐसा निीं ◌ंि◌ै। व्यजकत सच्चेअथों में पूणतिः स्वतंत्र ि◌ै और जैसी उसमें श्रद्धा ि◌ोगी वैसा वि ननजश्चत ि◌ी बन सकता ि◌ै। यि एक बिा ि◌ी रिस्यमय और गुह्य समय ि◌ै जो ि◌में प्रतीत ि◌ोती अंध ननयनत से छुटकारा प्रदान कर परम आशा से भर देता ि◌ै। वतमिान में यहद व्यजकत बाह्य प्रकृनत से इतना वशीभूत और बाध्य प्रतीत ि◌ोता ि◌ै तो इसका कारण भी यिी ि◌ै कक आममा ने ककसी उद्देश्य की पूनत ि◌के भलए स्वयं सचेतन रूप से अपने ऊपर इन पररजस्थनतयों को लादा ि◌ै। यहद उसका चयन इससे भभन्न ि◌ोता तो उसी के अनुसार बािरी पररजस्थनतयाँ भी भभन्न ि◌ोतीं। इसी अथ ि◌में गीता का यि वचन सवथिा ननरपेक्ष प्रकार का ि◌ै कक 'यो यच्छ्रद्धः स एव सः'।

यजन्ते सास्त्त्विका दिान्यक्षरक्षांसस राजसाः ।

प्रेतान्भूतगणांश्िान्ये यजन्ते तामसा जनाः ।। ४।।

४. सास्त्त्कि मनष्जय दिताओं को यज्ञ समवुपतु करते हैं, राजससक मनजष्य यक्षों और राक्षसों को, और दूसूरे, तामससक मनष्जय पे्रेतों और भूतों को यज्ञ अवुपतु करते हैं।

अशामत्रविदहतं घोरं तप्यन्तेये तपो जनाः ।
दम्भाहंकारसंयक्जताः कामरागबलास्न्तिाः ।। ५।।
कषुयुन्तः शरीरमथंभूतग्राममचेतसः ।
मांचैान्तःशरीरमथं तास्न्दि्यिासरजननश्यिान् ्।। ६।।

५-६. दम्भ और अहंकार से ग्रससत, कामनाओंऔर आैगों के बल दृारा माहीत, जो मनष्जय अशाखसम्मत भीषण तप करते हैं, मथूल शरीर के जाभूत पंचभूतों को और शरीर में ननिास करनेिाले मझेज ेभी कष्ट पहंजचाते हैं। उन संज्ञाहीन अविेकी जनों को आसरजी ननश्चयों या संकल्पों िाला जान।

आहारमत्विप सिुमुय त्रविो भिनत वप्रयः ।
यज्ञमतपमतथा दानंतेषांभेदसममं शृणृ ज।। ७।।

७. जो भोजन प्रत्येक को वप्रय होता है िह भी त्रवि मिरूप का होता है, और िैसे ही यज्ञ, तप और दान भी (तीन-तीन प्रकार के होतेहैं), उनके इस भेद को सजन।

समस्त स्फूर्ति–गनतशील किया को मूलतः इन तीन अंगों में ववश्लेवषत ककया जा सकता िै। कयोंकक समस्त शजकतशाली किया में, प्रकृनत की समस्त गनतशीलता के अंदर एक ऐजच्छक या अनैजच्छक तपस्या ननहित रिती िै, िमारी शजकतयों या क्षमताओंकी या ककसी एक क्षमता की तेजजस्वता और एकाग्रता रिती िै जो िमें कुछ उपलब्ध या अजजति करने या कुछ बननेमें सिायता देती िै, विी तपस् ्िै। समस्त किया में, जो कुछ िम िैं या जो कुछ िमारे पास िै उसका दान अथात् ि्एक प्रकार का व्यय ननहित रिता िै जो उस उपलजब्ध का, उस अजनि या संभूनत का मूल्य िोता िै, विी दान िै। समस्त किया में अधधभौनतक शजकतयों या ववश्वशजकतयों के प्रनत या िमारे कमों के परम प्रभु के प्रनत एक यज्ञ भी ननहित िोता िै। प्रश्न यि िै कक कया िम ये काय िअचेतन एवं ननजष्यि रूप से करते िैं, अथवा अधधक-से-अधधक एक बुद्धिीन, अज्ञ, अधचेतन संकल्प के साथ, या एक ऐसी शजकत या ऊजजस्वता के साथ करते िैं जो अज्ञानयुकत या ववकृत रूप से चेतन िोती िै या एक ऐसे संकल्प के साथ जो ववज्ञ रूप से चेतन तथा ज्ञान पर सुप्रनतजष्ठत िोता िै, दूसूरे शब्दों में, प्रश्न यि िै कक कया िमारे यज्ञ, दान और तप तामभसक प्रकृनत के िैं या राजभसक या साजत्त्वक प्रकृनत के।

कयोंकक, यिााँकी सभी वस्तुएाँ, भौनतक वस्तुओंसमेत, इसी त्रत्रववध स्वरूप की िैं। उदािरणाथ,ि गीता िमें बताती िै कक िमारा भोजन अपनेगुण के अनुसार तथा शरीर पर िोनेवाले अपनेप्रभाव के अनुसार साजत्त्वक, राजभसक या तामभसक िोता िै।

गीता यि ाँकिती ि कक 'साजत्त्वक मनुष्य देवताओं को यज्ञ समवपति करते िैं, राजभसक मनुष्य यक्षों और राक्षसों को, और दूसूरे, तामभसक मनुष्य प्रेेतों और भूतों को यज्ञ अवपति करते िैं।' यहद िम इसे भौनतक अथ िमें लें तो यि समझना कहठन ि कक ककस प्रकार व्यजकत देवताओंको या कफर भूतों, प्रेेतों या राक्षसों को यज्ञ अवपति करता ि। कुछ लोग इससे ककन्िीं तंत्र पद्धनतयों की साधना, अघोर साधना आहद का अथ िलगाते िैं। परंतु यहद गीता का अथ िऐसी ककन्िीं िंसंकीण िसाधना पद्धनतयों से िोता तब तो यज्ञ ववधान आज के समय में अब और अधधक प्रासंधगक निीं रिता जबकक गीता तो यि ाँऐसे ककसी भी देश-काल से सीभमत तत्त्व की चचािनिीं ंकर रिी ि। वि जजस यज्ञ-ववधान की चचाकरती ि वि तो सभी समयों में और सभी पर समान िी रूप से लागू िोता ि। तब कफर आणखर भूतों, प्रेेतों, राक्षसों, देवताओं आहद को यज्ञ अवपति करने का अथ िकया ि? वस्तुतः, जो तामभसक वृवि वाले लोग िैं वे अधधकाधधक केवल ग्रिण करना चािते िैं, बदले में कुछ देना निींचािते। इसे िी भूतों और प्रेेतों को यज्ञ समवपति करना कितेिैं। ऐसा इसभलए ि कयोंकक तामभसक मनोवृवि वाले व्यजकत के मन, प्राण और शरीर में भूतों-प्रेेतों का वास िोता ि और वे िी मनुष्य की सिा को अधधकृत कर के उसके द्वारा अपनी किया करते िैं। इससे आगे जब व्यजकत केवल अपनेआप के ववषय में िी न सोचकर दूसूरों के ववषय में भी सोचता ि और यि जानता ि कक सामूहिक जीवन में वि यहद दूसूरों के प्रनत कुछ करेगा तभी प्रनतफल में दूसूरे भी उसे समय पर सिायता करेंगे। इसे राजभसक यज्ञ कितेिैं जजसमें व्यजकत यक्षों और गंधवो को यज्ञ अवपति करता ि। राजभसक व्यजकत की सिा यक्ष, गंधव िआहद सिाओं के अधधकार में िोती ि और वे िी उसके माध्यम से काम करते िैं और अपनिेतुओं को भसद्ध करने ेका प्रयास करते िैं।

साजत्त्वक मनुष्य देवताओं की पूजा करता ि। देवताओं की पूजा करने का अथ िि कक व्यजकत अपनी भौनतक और प्राणणक प्रकृनत से ग्रभसत न िोकर उधचत तथा श्रेेष्ठ का ववचार कर के काय िकरता ि। इसमें व्यजकत को प्रनतफल की आशा निीं रिती और न िी अपने काय िके पररणाम की कोई धचंता िोती ि। अपनेकाय िके पररणाम के रूप में उसे सुख िो या दुःख, लाभ िो या िानन, वि इन सबको अनदेखा कर के जो करने ेयोग्य ि इसका ववचार कर के कम िकरता ि।

साजमवक वृवि वाले व्यजकत में सच्चाई, सद्भावना, संतोष, प्रेेम, सामंजस्य आहद गुण देखनेको भमलतेिैं जजसमें दैवी प्रकृनत का प्रभाव रिता ि। अब व्यजकत साजमवकता में और आगे बढ़ता ि तब उसके अंदर भगवान् ्की पूजा, देवताओं के प्रनत आस्था, भगवान् ्के प्रनत समपणि भाव आहद गुण हदखाई देते िैं। परंतुश्रीअरववन्द के अनुसार साजमवक भाव में भी व्यजकत त्रत्रगुणों से परे निींजा सकता। वि रिता त्रत्रगुणों के बंधन में िी ि। श्रीरामकृष्ण परमिंस का भी यिी किना था कक ये तीनों गुण उन तीन जंजीरों के समान िैं जजनमें तामभसक गुण लोिे की, राजभसक गुण चाँदी की और साजमवक गुण सोनेकी जंजीर के समान ि, परंतुिैं सभी जंजीरें िी जजनमें कक मनुष्य बंध जाता ि। इन सब जस्थनतयों से ऊपर की जस्थनत वि ि जब व्यजकत स्वयंको जगदमबा के िाथों में सौंप देता ि और केवल उन्िीं िंकी प्रेेरणा के अनुसार किया करता ि। यि त्रत्रगुणों से परे ननस्त्रैगुण्य की जस्थनत की ओर अग्रसर िोना ि जजसमें व्यजकत जजतना िी अधधक पूण िरूप से अपने आप को जगज्जननी जगदंबा के िाथों में देता ि उतना िी अधधक गुणों की किया से मुकत िोता जाता ि। यि व्यजकत को मनुष्यता की सीमाओंसे ऊपर

उठा देता ि ै। श्रीअरववन्द के अनुसार देवताओंआहद की पूजा करना भूतों, प्रेतों आहद की पूजा करने से तो बिुत अधधक श्रेष्ठ ि ै परन्तु वास्तव में श्रीमाताजी को पूण ि रूप से अपनेआप को समवपति करना िी एकमात्र सच्चा काय ि ै। वस्तुतः यि समपणि अंतराममा की सिज पुकार िोती ि ै कयोंकक पराप्रकृनत स्वयंिी जीव बनती ि ै इसभलए अपनेननज स्वरूप के प्रनत पुकार या आकषणि िोना आममा का सिज स्वभाव ि ै। और जब व्यजकत अपनेआप को श्रीमाताजी के िाथों में सौंप देता ि ै तब जो भी काय ि वि करता ि ै वि उन्िीं की अभभव्यजकत िोने के कारण श्रेष्ठतम िी िोगा। उस भाव में ककन्िीं ननमन चीजों के प्रवेश की कोई संभावना निींिोती। िालाकाँक गीता इस जस्थनत का वणनि निींकरती परंतु श्रीअरववन्द अपने अनुभव के आधार पर इसका ननरूपण करते िैं।

यज्ञ के बाद गीता तप की चचाि करती ि ै। िमारे पुराणों में वणणति कथाओंमें िम प्रायः िी पातिें कक अधधकांशतः जजतना कठोर तप दैमय, असुर, राक्षस आहद करते िैं मनुष्य तो कदाधचत् ्िी उतने कहठन तप कर पातिें। हिरण्यकभशपु, रावण आहद द्वारा ककये जजस प्रकार के भीषण तपों का िम वणनि पातिें वे तो ककसी सामान्य मनुष्य की कल्पना से भी सवथिा परे िैं। अपनी आसुरी वृवि के प्रभाव से उनके अंदर कुछ प्राप्त करने ेकी अमयंत प्रबल इच्छा िोती ि ै जजसके कारण वे ऐसे कठोर तप करते िैं। इसीभलये छठे श्लोक में भगवान् ्कित ेिैं कक 'दमम और अिंकार से ग्रभसत, कामनाओंऔर आवेगों के बल द्वारा चाभलत, जो मनुष्य अशास्त्रसममत भीषण तप करते िैं, स्थूल शरीर के अंगभूत पंचभूतों को और शरीर में ननवास करनेवाले मुझेभी कष्ट पिुँचाते िैं; उन संज्ञािीन अवववेकी जनों को आसुरी ननश्चयों या संकल्पों वाला जान।' इस प्रकार का तप आसुरी प्रकार का िोता ि ै। यि तो तप का चरम रूप ि ै। परंतु वास्तव में तप का अथ िि ै अपनी शजकतयों और ऊजिाओंको ककसी िेतु ुके भलए एकाग्र करना। कोई भी काम करने ेके भलए व्यजकत को कुछ न कुछ शजकत एकाग्र करनी िी िोती ि ै। कोई भौनतक किया को करनेके भलए भी व्यजकत को उसमें ध्यान देना पड़ता ि ै। भोजन पकाने, बाजार से सामान लानेआहद जैसी दैनंहदन कियाओं को भी सिी रूप से करनेके भलए अपनेध्यान को एकाग्र करने की आवश्यकता िोती ि ै। यहद व्यजकत को परीक्षा उिीण िकरनी िो तो उसके भलए भी उसे विाँककसी िद तक अपनी इंहरयों आहद को संयभमत करके अपनेऊपर कुछ अनुशासन लागू करना िोता ि ै, प्रश्नों के उिर भलखने के भलए अपनेध्यान को एकाग्र करना िोता ि ै। यहद वि ऐसा निीं कर पाता तो वि परीक्षा में सफल निींिो सकता। यिाँ तक कक अनुशाभसत जीवन जीनेके भलए भी व्यजकत को अपनी इंहरयों पर कुछ िद तक ननयंत्रण करना िोता ि ै अन्यथा तो सामान्य जीवन भी सुचारू रूप से निींचल सकता। अतः मूलतः तो ककसी भी चीज के भलए व्यजकत को अपना ध्यान और अपनी ऊजिा को एकाग्र करना िोता ि ै। परंतु जब सामान्य से कुछ अधधक मात्रा में अपनी ऊजाओं को एकाग्र करना िोता ि ै तब िम उसे तप की संज्ञा दे देते िैं। गीता के अनुसार तप भी तीन प्रकार का िोता ि ै - साजमवक, राजभसक और तामभसक। यि कम िके िेतु पर ननभरि करता ि ै कक वि तप तामभसक िोगा या राजभसक या कफर साजत्त्वक। यिी बात दान के भलए भी लागू िोती ि ै।

प्रश्न : अशास्त्रसममत भीषण तप का कया अथ िि ै?

उत्तर : शास्त्रसममत तप में शास्त्र द्वारा ननधारिरत मानक या मापदंड िोते िैं। उदिारण के भलए संगीत, नृमृय आहद सभी कलाओं का अपना-अपना ववधधवत् ् शास्त्र िोता िै जजसकी मयादिाओं का पालन करना िोता िै तभी वि प्रामाणणक और शास्त्रसममत िोता िै अन्यथा तो उसे त्रुहटपूण िीि माना जाता िै। शास्त्र का अथ िीिै सुदीघ ि अनुभव द्वारा भसद्ध और प्रामाणणत ववधान जजनका पालन करनेपर िी सवोिम पररणाम प्रास िो सकतेिैं। उदिारण के भलए भोजन पकानेकी भी अपनी एक तय प्रकिया िै। उसका सिी अनुसरण कर के िी व्यजकत सिी भोजन पका सकता िै। यहद इसमें वि मनमौज के अनुसार चले तो कदाधचत् ्िी अच्छा भोजन पका पाएगा। इसी प्रकार सभी चीजों के प्रयोग या अनुभव-भसद्ध ववधध-ववधान िोतेिैं। जो आसुरी प्रवृवि के लोग िैं वे अपनेदंभ और अिंकार तथा कामनाओंआहद से ग्रभसत िोकर शास्त्र की अविेलना कर के अपनेशरीर आहद भागों को कष्ट में िालकर तप करते िैं। ऐसे तप को अशास्त्रसममत किते िैं।

प्रश्न : बिुत से लोग अपने शरीर को बिुत कष्ट देकर तपस्या करते िैं जैसे कक एक पैर पर खड़े ेरिना, तेज गमी में अपनेचारों ओर आग का घेरा बनाकर उसके बीच में बैठ जाना आहद-आहद, तो यि भी अशास्त्रसममत िै?

उत्तर : इसके ववषय में श्रीमाताजी जो किती िैं वि जानकर िमें यि भान िो जाएगा कक वास्तव में यि सब कष्ट देना सिी िै या निीं। वे किती िैं, "...पिले मुझेएक प्रश्न स्पष्ट कर देना चाहिये जो अधधकतर लोगों के मन में बिुत सारी गलतफिभमयों और उलझनों का कारण िै। यि िै तपश्चयामिमक कियाओंके बारे में, जजन्िें लोग आध्याजममक साधना समझनेकी भूल कर बैठते िैं। ये कियाएँ, जजनमें शरीर के साथ दुवुर्यविार ककया जाता िै, इसभलए कक, आममा को उससे मुकत ककया जा सके, वास्तव में आध्याजममक साधना की एक ऐंहरय ववकृनत िैं; कष्ट पाने की एक प्रकार की ववकृत आवश्यकता िी िै जो तपस्वी से आमम-पीड़न करवाती िै। साधु का कीलों के त्रबछौने ेपर सोना और ईसाई संन्यासी का कोड़े ेखाना और टाट की वेशभूषा पिनना न्यूनाधधक रूप से पीड़ा के प्रनत आसजकत को नछपी िुई प्रवृवि िै जजसे न तो स्वीकार ककया जाता िै, न स्वीकार करने ेयोग्य िी िै। यि उग्र संवेदनों के भलये एक अस्वस्थ चाि या अवचेतन आवश्यकता िै। वास्तव में, ये चीजें आध्याजममक जीवन से कोसों दूरू की िैं कयोंकक ये भदी, ननमनकोहट की, अंधकारपूण िऔर रुग्ण िैं; जबकक इनके ववपरीत, आध्याजममक जीवन प्रकाश और संतुलन, सौंदय िऔर आनंद का जीवन िै। उन चीजों का आववष्कार और गुणगान तो शरीर पर की जानेवाली एक प्रकार की मानभसक और प्राणणक िूरता द्वारा िी ककया जाता िै। परंतु चािे वि अपने शरीर के साथ िी कयों न िो, पर िूरता आणखर िूरता िी िै, और सभी प्रकार की िूरता भारी ननश्चेतना का धचह्न िै। अचेतन प्रकृनतयों को तीव्र संवेदनों की आवश्यकता िोती िै, कयोंकक उनके त्रबना उन्िें कुछ मिसूस िी निीं िोता; और िूरता, जो कक एक प्रकार की उमपीड़न की आसजकत िै, बिुत तीव्र संवेदन पैदा करती िै। इस प्रकार की कियाओं का उद्देश्य यि माना जाता िै कक सभी प्रकार के संवेदनों को समाप्त कर हदया जाये ताकक शरीर िमारी आममा की ओर की उड़ान में और अधधक बाधा न दे सके; परंतु इस पद्धनत की उपयोधगता संदेिास्पद िै। यि भली-भानाँत जानी िुई बात िै कक तेजी से प्रगनत करनेके भलए व्यजकत को कहठनाइयों से िरना निींचाहिये; इसके ववपरीत, प्रमयेक सुअवसर पर कहठन चीज करने ेका चयन करने ेसे व्यजकत अपनी संकल्प-शजकत को बढ़ाता िै और स्नायुओंको बभलष्ठ

करता ि ै। वास्तव में, तपस्या की ववकृनतयों और उनके ववघटनकारी पररणामों के द्वारा सुख की ववकृनतयों और उनके अज्ञानमय पररणामों के साथ संघष िकरनेकी अपेक्षा, संयम और संतुलन के साथ समुधचतता और जस्थरता का जीवन त्रबताना किीं ंअधधक कहठन ि ै। अपनी भौनतक सिा के साथ इस िद तक बुरा व्यविार करना कक वि शून्यवत् ्िो जाये, इसकी अपेक्षा, उसमें जस्थरता और सरलता के साथ सामंजस्यपूण िउसिीर ववकास कर पाना बिुत अधधक कहठन ि ै। बिे ेगव िके साथ अपनेसंयम या मयाग का प्रदशनि करने के भलये शरीर को उसके भलये आवश्यक आिार और शुद्ध अभ्यासों से वंधचत करनेकी अपेक्षा, सौमय रूप से और कामना के त्रबना जीना किीं अधधक कहठन ि ै। रोग या दुभािवना की अविेलना करने ेऔर उसकी ओर ध्यान न देने और उसे अपना ववनाशकाय ि करते रिने देनेकी अपेक्षा, उस पर आंतररक और बाह्य सामंजस्य, शुद्धध और संतुलन द्वारा ववजय प्राप्त करना या रोग को टाल देना बिुत अधधक कहठन ि ै। और सबसे कहठन काम ि ै चेतना को सतत् ्रूप से उसकी क्षमता के भशखर पर बनाये रखना और शरीर को कभी ननमनतर आवेगों या प्रेरणाओं के प्रभाव में आकर काम न करने े देना।" (CWM 12, 49-50)

श्रीमाताजी के वचनों से यि स्पष्ट िी िो जाता ि ै कक वास्तव में तपस्या के ऐसे ककन्िीं भी तथाकधथत तरीकों का सच्ची आध्याजममकता से कोई संबंध निीं ंि ै। श्रीमाताजी व श्रीअरववन्द ने तो अपनेयोग में सदा िी ऐसी ककन्िीं भी चीजों को अपनेसे दूर रखने पर बल हदया ि ै कयोंकक ये सभी चीजें केवल प्राणणक प्रकृनत के तीव्र संवेदनों की तृष्णा की िी पूनत िकरती िैं, अिंकार को बढ़ा देती िैं और भगवद्-ववरोधी सिाओं को पुष्ट करती िैं तथा साधक के सच्चेसंतुलन को सवथिा त्रबगाड़ देती िैं।

आयःजसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीनतवविधिनाः ।
रमयाः स्मननिाः स्मथरा हृद्या आहाराः सास्त्त्किवप्रयाः ॥ ८॥

८. जो भोजन जीवन, प्राण-शस्क्त, बल, स्मामथ्य, हषु ुतथा प्रसन्नधचत्तता को बढ़ानेवाले हैं, जो रसयक्ुत, नमु ु (घृतादद स्मननि पदाथयुुक्जत), पस्जष्टकारक अथिा स्मथर रहने िाले (दीघकुाल तक शरीर में रहने िाले), हृदय को तृप्त करनेवाले हैं, िे सास्त्त्कि मनष्जयों को वप्रय होतेहैं।

क्द्म्लिलिणात्यष्जणतीक्ष्णरूक्षविदादहनः ।
आहारा राजसमयेष्टा दःजखशोकामयप्रदाः ।। ९।।

९. जो भोजन कड़िे, खट्टे, (अत्यधिक) नमकिाले, अत्यधिक उष्ण, तीखे, रूखे (जैसे भिाड़ में भनेज अन्न) और दाहजनक होते हैं तथा जो पीड़ा, शोक और रोग उत्पन्न करनेवाले हैं िे राजससक मनष्जयों को वप्रय होतेहैं।

यातयामं गतरसं पूनत पयुवुजषतंच यत् ्।
उस्च्छष्टमवप चामेध्यं ंभोजनंतामसवप्रयम् ्।। १० ।।

१०. जो भोजन त्बग़ि गया है, मिादहीन है, दगंजिंयक्जत है, परजाना है, दूसूरों का जूठा है और जो अपवित्र है, िह तामससक मनष्जयों को वप्रय होता है।

इन तीन गुणों की किया सवव्यािपी िै। दूसूरे छोर पर ये गुण मन और आममा की चीजों, यज्ञ, दान और तप, पर भी इसी प्रकार लागू िोर्ति: प्राचीन भारतीय संस्कृनत के प्रतीकवाद ने इन तीन चीजों के जजन रूपों की पररकल्पना की थी उन्हिं प्रचभलत रूपों के अनुसार गीता इनमें से प्रमयेक के तीन प्रकार के ववभाग करती िै। परंतु, स्वयंगीता यज्ञ के ववचार को जो अमयंत व्यापक अथ िप्रदान करती िै उसे स्मरण रखते िुए, िम सिज िी इन संकेतों के स्थूल अथ िको ववस्तृत करके इनका एक उदारतर मम िप्रकाभशत कर सकते िैं।

अिलाकाङ्ज्ञक्षसभयुजुत्रो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेिनत मनः समिााय स सास्त्त्किः ।। ११ ।।
११. स्जस यज्ञ को त्बना िल की कामना के, यथाथु ुविधि के अनसजार, करनेयोनय कमु ुको सच्चेयज्ञ के रूप में मानतेहजए उसके भिा पर मन को केंदद्रत और स्मथत करके अनष्जठान ककया जाता है, िह सास्त्त्कि यज्ञ होता है।
अतः, गीता जजस आदश िकी तथा जजस प्रकार के कम िकी मागाँ करती िै, यि साजमवक यज्ञ उसके अमयंत ननकट िै और यि उसकी ओर सीधे िी ले जाता िै; परंतु यि कोई चरम और परम आदश िनिीं ंिै, यि अभी भी उस भसद्ध पुरुष का कम िनिीं ंिै जो हदव्य प्रकृनत में ननवास करता िै। कयोंकक, यि एक ननयत-ननधारिरत धम िके रूप में समपन्न ककया जाता िै, और यि देवताओं के प्रनत, िमारे अंदर या ववश्व के अंदर अभभव्यकत भगवान् ्की ककसी आंभशक शजकत या रूप के प्रनत यज्ञ या सेवा के रूप में अवपति ककया जाता िै। ननःस्वाथ िधाभमकि श्रद्धा-ववश्वास के साथ ककया गया कम िया स्वाथ–रहित भाव से मानवजानत के भलए ककया गया कम िअथवा न्याय या समय के प्रनत ननष्ठा से प्ेरेररत िोकर ननवैयैजकतक भाव से ककया गया कम िइस साजत्त्वक प्रकृनत का िोता िै, और इस प्रकार का कम ििमारी पूणताि के भलए आवश्यक िै; कयोंकक यि िमारे ववचार, संकल्प तथा िमारे प्रकृनतगत उपादान को शुद्ुध करता िै। परंतु साजत्त्वक कम िकी जजस सवोच्च पररणनत तक िमें पिुँचना िै वि और भी व्यापकतर तथा मुकततर प्रकार की िै; वि एक उच्च कोहट का चरम यज्ञ िै जजसे िम पुरुषोिम को पाने की अभीप्सा से या सभी कुछ में वासुदेव के दशनि करते िुए परम और समग्र भगवान् ्के प्रनत ननवेहदत करते िैं; वि एक ऐसा कम ििै जो ननवैयैजकतक एवंववश्वगत भाव से, जगत् ्के मंगल के भलए तथा ववश्व में भगवमसंकल्प की पररपूनत िके ननभमि ककया जाता िै। वि पररणनत कफर अपनेसे भी परे, अमर धम िकी ओर ले जाती िै। कयोंकक तभी एक ऐसी मुजकत प्राप्त िोती िै जजसमें लेशमात्र भी कोई वैयजकतक कम,ि धम िका कोई साजत्त्वक ववधान और शास्त्र की कोई बाध्यता निीं ंरिती। विााँस्वयं ननमन बुद्धध और संकल्प भी अनतिांत िो जाते िैं और उनकी जगि एक उच्चतर प्रज्ञा मिारे कम िको प्ेरेररत और पररचाभलत करती िै तथा उसके लक्ष्य पर प्रभुमव रखती िै। तब व्यजकतगत फल का कोई प्रश्न िी निीं ंरिता; कयोंकक जो संकल्प काय िकरता िै वि िमारा अपना निीं, अवपतु एक परमोच्च संकल्प िोता िै जजसकी कक िमारी अंतराममा एक यंत्र मात्र िोती िै... तब कोई व्यजकतगत कम िनिीं ंरिता, कयोंकक सभी कम ििमारे कमों के प्रभुके प्रनत उमसग िकर हदये जाते िैं और तब वे िी िैं जो िमारी हदव्यीकृत प्रकृनत के द्वारा

कम िकरते िैं। विााँकोई यज्ञ भी निींिता, - िा,ाँ िम यि अवश्य कि सकतेिैं कक यज्ञ के अधीश्वर जीव में ववद्यमान अपनी शजकत के कमों को अपनी िी ववश्वरूपमय सिा के प्रनत अवपति कर रिे िोतेिैं। यज्ञरूप कम िके द्वारा आमम-अनतिमण की जो परमोच्च जस्थनत मा िोोती िै। यि यिी िै, यिी उस जीव की पूणावित्या िै जो हदव्य प्रकृनत में अपनी पूण िचेतना लाभ कर लेता िै।

गीता साजत्त्वक यज्ञ तक िी ठिर जाती िै। परंतु ुश्रीअरववन्द के अनुसार यि हदव्य प्रकृनत में ननवास करने वाले भसद्ध पुरुष का यज्ञ निींिता। श्रीअरववन्द साजत्त्वक यज्ञ से भी आगे उस जस्थनत तक ले जाते िैं जिााँ व्यजकत के अंदर ककसी प्रकार का कोई व्यजकतगत संकल्प निीं ंरिता। उसका कम ितब कक नहींदेवताओंके ननभमि निीं ंिोता अवपतु अब उसके कम िका आरंभ, उमप्रेरण और ननयोजन स्वयं भगवान् ्की परा प्रकृनत या हदव्य प्रकृनत करती िै जो कक परम् ्प्रभु से एक िोती िै। अतः इसमें व्यजकत के अपने संकल्प-ववकल्प आहद का तो कोई स्थान िी निीं िोता। इस प्रकार चेतना की यि जस्थनत साजत्त्वक यज्ञ से सवथिा भभन्न प्रकार की िोती िै।

असभसंधाय तज िलंदम्भाथुमुवप चैि यत् ्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं ंयज्ञं विद्धि राजसम् ्।। १२ ।।

१२. हे भरतश्रेष्ठ! जो यज्ञ िल को ध्यान में रखते हजए, और ददखािट के सलये भी ककया जाता है, उस यज्ञ को तू राजससक जान।

मिारे कमों का मूल्य केवल उनकी प्रतीयमान बाह्य हदशा से िी ननधारिरत निीं ंिोता, न वि उन देवताओं ं के द्वारा ननधािररत िोता िै जजनके नाम की दुिाई देकर िम अपनेकमों का अनुमोदन कर सकते िैं और न िी उस सच्चेबौद्धिक ववश्वास के द्वारा जो उनके अनुष्ठान में िमारा समथनि करता प्रतीत िोता िै, अवपतु ुवि ननधारिरत िोता िै आंतररक जस्थनत, िेतु ुऔर हदशा के द्वारा। जिा ाँकिंिमारे कमों में अिंकार की प्रधानता िोती िै, विााँिमारा कम िराजभसक यज्ञ बन जाता िै।

विधिहीनमसृष्टान्नं ंमन्त्रहीनमदक्षिणम् ्।
श्रद्धाविरदहतं यज्ञं तामसंपररचक्षते ।। १३।।

१३. जो यज्ञ उधचत विधि के अनसजार अनस्जष्ठत न हो, अन्नदान से रदहत, मन्त्र के त्बना, परजोदहत को दक्षिणा ददये त्बना, श्रद्धा से शून्य हो उस यज्ञ को तामससक कहतेहैं।

तामभसक यज्ञ वि कम िैं जो त्रबना श्रद्धा के ककया जाता िै, अथात्किये जानेवाले कम िके ककसी पूण ि सचेतन बोध, उसकी स्वीकृनत एवं उसके करने के संकल्प के त्रबना िी ककया जाता िै जजसे कफर भी प्रकृनत िमसे बरबस करवाती िै। वि यंत्रवत् ्ककया जाता िै, कयोंकक जीवनधारण के भलए उसे करना आवश्यक िोता िै, कयोंकक वि िमारे सामने आकर उपजस्थत िो जाता िै, और कयोंकक दूसूरे लोग उसे करते िैं, अथवा ककसी अन्य ब्रिी मुसीबत से बचनेके भलए ककया जाता िै जो उसे न करने से पैदा िो सकती िेतु से ककया जाता िै। और िै. या कफर

मारा स्वभाव पूरी तरि से इसी (तामभसक) प्रकार का ि◌ो तो यि कम ि◌भी संभवतः लापरविाी से, उदासीन भाव से यंत्रवत् ◌्तथा गलत ढंग से ि◌ी ककया जाना ि◌ै। वि ववधध के अनुसार अथवा शास्त्र के यथाथ ि◌ववधान के अनुसार निीं ककया जाएगा, और उसका गनतिम उस यथायथ ववधध के अनुसार पररचाभलत निीं ि◌ोगा जो जीवन की कला और ववधान के द्वारा तथा करणीय कम ि◌के सच्चे ववज्ञान के द्वारा ननधाररत ि◌ै। उस यज्ञ में ि◌व्य-दान निीं ◌ंि◌ोगा, – और भारतीय कमकिांि में यि किया एक उस सियक या उपकारी दानतत्त्व का प्रतीक ि◌ै जो वास्तववक यज्ञ किलानेवाले प्रमयेक कम ि◌के अंदर ननहित ि◌ोता ि◌ै, दूसूरों को हदया जानेवाला यि दान एक अननवाय ि◌वस्तु ि◌ै, यि दूसूरों की एवं जगत् ◌्की फलप्रद सियता ि◌ै जजसके त्रबना ि◌मारा कम ि◌एक सवथिा स्वाथपूिण ि◌वस्तु ◌ुबन जाता ि◌ै और वि एकसूत्रता तथा आदान-प्रदान के सच्चे ववश्व-ववधान का उल्लंघन करने ◌ेवाला बन जाता ि◌ै। वि कम ि◌उस दक्षक्षणा के त्रबना ि◌ी संपन्न ककया जाएगा जो कक यज्ञीय कम ि◌के पुरोहितों को हदया जानेवाला एक अमयावश्यक दान या आममदान ि◌ै, भले ि◌ी वि दान ि◌मारे कम ि◌के ककसी बाह्य मागदिशकि एवं सियक को हदया जाए या अपने अंदर जस्थत प्रच्छन्न या व्यक्त भगवान ◌्को। वि मंत्र के त्रबना अथात् ि◌्उस समपणिाममक ववचार के त्रबना ि◌ी ककया जाएगा जो कक ि◌मारे उस संकल्प तथा ज्ञान की पावन दि ि◌ै जो ि◌मारे यज्ञ के उपास्य देवों की ओर ऊपर उठे ि◌ोते ि◌ैं। तामभसक मनुष्य अपना यज्ञ देवताओं को अवपति निीं करता, अवपतु ननमन आधधभौनतक शजकतयों को या आवरण के पीछे अवजस्थत उन स्थूलतर प्रेतामममाओं को अवपति करता ि◌ै जो उसके कायों के द्वारा अपना भोग-साधन करते ि◌ैं तथा उसके जीवन को अपनेअंधकार के द्वारा आच्छन्न कर देते ि◌ैं।

प्रश्न : बारिवें श्लोक की टीका में श्रीअरववन्द किते ि◌ैं कक, "जिाँ किीं ि◌मारे कमों में अिंकार की प्रधानता िोती ि◌ै, विाँ ि◌मारा कम ि◌राजभसक यज्ञ बन जाता ि◌ै।" अिंकार की प्रधानता तो सभी मनुष्यों में रिती ि◌ै, तो कफर केवल राजभसक मनुष्यों में ि◌ी अिंकार की प्रधानता कयों बताई गई ि◌ै?

उत्तर : यों तो अिंकार सत्त्व, रजस् ◌्और तमस् ◌्तीनों ि◌ी गुणों में रिता ि◌ै परंतुअधधक प्रकट रूप से ि◌में वि राजभसक प्रवृवि में ि◌ी हदखाई देता ि◌ै। तामभसक व्यजकतयों में तो घोर अिंकार ि◌ोता ि◌ै, वे केवल अपनिी ववषय में सोचते ि◌ैं और त्रबना कुछ व्यय ककये केवल ग्रिण ि◌ी करना चािते ि◌ैं। परन्तु राजभसक व्यजकत में इसकी अभभव्यजकत अधधकतम ि◌ोती ि◌ै। राजभसक व्यजकत प्राण प्रधान ि◌ोता ि◌ै जजसमें गनतशील और कमप्रिधान प्रकृनत की प्रधानता रिती ि◌ै। यिाँ तक कक भौनतक और मानभसक काययों को भी करने ◌ेके भलए प्राणणक ऊजिा आवश्यक िोती ि◌ै। इसभलए प्राणप्रधान व्यजकत में अनतशय रूप से अपनी सिा को प्रनतजष्ठत करने ◌ेकी, बिुत ब्रिा काय ि◌ संभसद्ध करके अपना नाम कमाने की प्रबल प्रवृवि ि◌ोती ि◌ै। इसी कारण अिंकार की अधधकतम अभभव्यजकत राजभसक प्रकृनत में ि◌ोती ि◌ै। बाकी के दो गुणों में अिं तो ि◌ोता ि◌ै परंतु उसमें ककसी मित् ◌्उपलजब्ध से भमलने वाली तुजष्ट और उससे पररवधधति ि◌ोने ◌ेवाला अभभमान या घमंि निीं ि◌ोता। केवल राजभसक व्यजकत ि◌ी ि◌ै जो भीषण कम ि◌करनेसे भी निीं ◌ंचूकता यहद उससे उसके अिं की तुजष्ट ि◌ोती ि◌ो और लोग स्वीकार करते ि◌ों कक उसनेबिुत िी भीषण और अद्ववतीय कम ि◌ककया ि◌ै।

गीता तीन प्रकार के साजत्त्वक तपों का ननरूपण करती ि◌ै।

दिद्विजगरुजप्राज्ञपूजनं ंशौचमाजिुम् ्।
ब्रह्मचयुमुदहंसां च शारीरं तप उच्यते ।। १४।।

१४. दिता, द्विज, गरुज और ज्ञानी की पूजा करना, शधजचता, मपष्टिाददता, ब्रह्मचयु ुतथा अदहंसां का पालन करना, इन्हें शारीररक तप कहा जाता है।

जजस प्रचभलत अथ िमें िम इस तप शब्द को लेते िैं गीता की पररभाषा का उससे कोई संबंध निींिै प्रचभलत तौर पर तप शब्द से िम शारीररक उमपीि़न का अथ िलगाते िैं परंतु गीता का तप ऐसा निीं िै िालाकाँक जजस तप की गीता बात करती िै वि तो ककन्िींभी भीषण से भीषण शारीररक उमपीि़नों से भी किीं ंअधधक कहठन िै। शरीर को कष्ट देनेसे तो व्यजकत का अिं अमयधधक पुष्ट िोता िै और फूल उठता िै। परंतु गीता के तप का पालन करने में तो प्राण का भी संयमन िो जाता िै इसभलए यिी वास्तववक तप िै। इसमें ककसी प्रकार का कोई उमपीि़न निीं ंिै, ककसी प्रकार की कोई अस्वास्थ्यकर चीज निीं ंिै अवपतु ुयि तो अपनेआप पर अनुशासन लागू करके अपनी ऊजाओं को एकत्रत्रत करना और ऊध्वमुिखी ववकास करना िै जबकक शरीर को यंत्रणा देकर ककसी प्रकार का कोई सच्चा ववकास निीं ंिोता अवपतु यि तो एक ववकृत प्राण की िी ननशानी िोती िै जजससे तीव्र संवेदनों की और अपने भिके िुए अिंकार की तुजष्ट की चाि िोती िै जो उसे शरीर को यंत्रणा प्रदान करके प्राप्त िोती िै। पंरतु गीता का तप तो त्रबल्कुल िी भभन्न प्रकार का िै। रह्मचय िके ववषय में श्रीअरववन्द जो किते िैं वि बिुत िी उद्बोधक िै। वे किते िैं, "अंतःजस्थत शजकत को बढ़ानेऔर उसे ऐसे उपयोगों में लानेकी, जो उसके धारक को या मानवजानत को लाभाजन्वत करे, पिली और अमयंत आवश्यक शत िै रह्मचय िका अभ्यास । सारी मानवी शजकत का एक भौनतक आधार िोता िै। युरोपीय भौनतकवाद द्वारा की गई भूल यि िै कक वि भौनतक आधार को िी सवस्वि और भ्रमवश मूल-स्रोत मान बैठता िै। जीवन तथा शजकत का स्रोत भौनतक निीं, अवपतु आध्याजममक िै, ककंतु जजस आधारभशला, नींव पर जीवन और शजकत प्रनतजष्ठत एवं ंकियाशील िोती िैं, वि भौनतक िै। प्राचीन हिंदूं ू कारण और प्रनतष्ठा - सिा के ऊपरी और ननचले छोरों - के बीच के भेद को स्पष्ट रूप से समझतेथे। भू या स्थूल भौनतक तत्त्व प्रनतष्ठा िै तथा रह्म या आमम-तत्त्व कारण िै। भौनतक का अध्यामम में उमकषणि िी रह्मचय िै, कयोंकक दोनों के सजममलन से वि शजकत जो एक (रह्म या आममा) से ननसृतृ िोकर दूसूरे (भौनतक तत्त्व) को उमपन्न करती िै, वृद्धधध को प्राप्त िोती और स्वयंको चररताथ िकरती िै।

यि रह्मचय िका ताजत्त्वक भसद्धांत िै। इसका कियाममक प्रयोग ननभरि िोता िै शजकत के मानव आधार की भौनतक और मनोवैज्ञाननक रचना के ठीक-ठीक ज्ञान पर। मूलभूत भौनतक इकाई िै रेतस्,् जजसमें कक मनुष्य के अंतःजस्थत तेजस्,् अथात्ि् ऊष्मा और प्रकाश और ववद्युत् ्शजकत अंतननहिित और नछपे पड़े िैं। सारी ऊजा ि रेतस् ्में ननगूढ़ रूप से ववद्यमान िै। यि शजकत या तो स्थूल भौनतक रूप में व्यय की जा सकती िै या संरक्षक्षत की जा सकती िै। समस्त उिेजना, भोगेच्छा, कामना, इस शजकत को स्थूल रूप में या एक उमकृष्ट सूक्ष्मतर रूप में शरीर से बािर फेंककर उसे नष्ट कर देती िैं। अनैनतक आचरण उसे स्थूल रूप में बािर फेंक देता िै; अनैनतक ववचार सूक्ष्म रूप में। दोनों िी दशा में शजकत नि िोती िै, और व्यभभचाररता जैसे शारीररक िोती िै वैसे िी

मानभसक और वाधचक भी िोती िै। इसके ववपरीत, समस्त आमम-संयम शजकत को रेतस् ्में संरक्षक्षत करता िै और संरक्षण सदा िी अपने साथ संवद्धिन लाता िै। ककंतु भौनतक शरीर की आवश्यकताएँ सीभमत िैं और अनतररकत शजकत से अवश्य िी उसके एक संधचत भंिार का ननमाणि िोगा जजसे भौनतक के अनतररकत अन्य ककसी उपयोग में प्रयुकत िोना चाहिये। प्राचीन भसद्धांत के अनुसार रेतस् ्जल िै जो प्रकाश और ऊष्मा और ववद्युत् ्से, एक शब्द में, तेजस् ्से पररपूण िि। रेतस् ्का अनतरेक सवप्रिथम ऊष्मा या तपस् ्में पररवनतति िोता िै, जो समस्त तंत्र को उद्दीप्त करता िै, और इसी कारण आमम-संयम और तपस्या के सभी रूपों को तपस् ्या तपस्या किते िैं, कयोंकक वे ऊष्मा या उस उमपे्रेरक शजकत को उमपन्न करते िैं जो शजकतशाली कम िऔर भसद्धध का मूल-स्रोत िै; द्ववतीयत:, वि वास्तववक तेजस्,् अथात् िप्रकाश में, उस शजकत में पररवनतति िोता िै जो समस्त ज्ञान का उद्गम िै; तृतीयत:, वि ववद्युत् ्में रूपांतररत िोता िै जो सारे शजकतशाली कम,ि चािे बौद्धधक िो या शारीररक, का आधार िै। और कफर ववद्युत् ्में ननहित िै ओजस् ्या प्राण-शजकत, वि आहद-शजकत जो आकाश से उमपन्न िोती िै। रैतस् ्जल से तपस्,् तेजस्,् और ववद्युत् ्में तथा ववद्युत् ्से ओजस् ्में पररष्कृत िोकर शरीर को शारीररक बल, ऊजाि और मेधा-शजकत से भर देता िै और अपनेअंतनतम स्वरूप ओजस् ्के रूप में ऊध्वगिामी िोकर मजस्तष्क में पिुँचता िै तथा उसे उस मूल ऊजाि से अनुप्राणणत कर देता िै जो ज़ि-तत्त्व का सबसे पररष्कृत रूप िै तथा आममतत्त्व के सबसे अधधक ननकट िै। वि ओजस् ्िी िै जो आध्याजममक शजकत या वीय िको उमपन्न करता िै जजसके द्वारा मनुष्य आध्याजममक ज्ञान, आध्याजममक पे्रेम तथा श्रद्धा, आध्याजममक बल प्राप्त करता िै। इसका ननष्कष ियि िै कक जजतना िी िम रह्मचय िके द्वारा तपस्,् तेजस्,् ववद्युत् ्और ओजस् ्के भंिार को अधधक बढ़ा सकेंगे, उतना िी अधधक िम स्वयं को शरीर, हृदय, मन और आममा के कायों के भलए पूणि–ववशुद्ध शजकत से भर देंगे।" (CWSA 1: 372-73)

प्रश्न : यिा ँ'पूजा' से कया अभभप्राय िै?

उत्तर : पूजा से तामपय िि कक देवता, द्ववज, गुरु और ज्ञानी को उच्चासन पर प्रनतजष्ठत करना, उनका सममान करना, उन्िें मित्त्व देना और उन्िें िी वास्तव में अनुकरणीय मान कर उनकी आज्ञापालन करना। बिुत बार व्यजकत द्ववज, गुरु आहद के सामने िाथ जोि़ कर, उन्िें प्रणाम आहद करके उनके प्रनत आदर व्यकत तो करता िै परंतु अपनेमन में वि उनके प्रनत अवज्ञा का भाव रखता िै, इस अथ िमें कक वि अपने िी बिाा जीवन की श्रे्रेष्ठता का भाव रखता िै और गुरुजन के पास जाकर भी अपनी संपवि, सुख-साधन, अपनेप्रभावक्षेत्र आहद के अिंकार से भरा रिता िै। परंतु जजस तपी का गीता यिा ँउल्लेख करती िै वि ऐसा निीं िोता। वि तो देवता, द्ववज, गुरु और ज्ञानी को वास्तव में िी श्रे्रेष्ठ मानता िै और उनके प्रनत उसी भाव से अपनी किया करता िै। ये सारे गुण भी शारीररक चेतना से िी समबद्ध िैं िालाकाँक इन्िें किरने में मनोववज्ञान भी साथ में रिता िै। गीता जजन शारीररक तपों का वणनि करती िै वे िी इतने ेअसाध्य प्रतीत िोतेिैं कक इन्िें किर पाना तो एक बिुत लंबे अनुशासन और अभ्यास की मागँा करता िै।

अनद्ुवेगकरं िाक्यंसत्यं ंवप्रयदहतं च यत् ्।

मिध्यायाभ्यसनं चैि ाङ्मयंतप उच्यते ।। १५।।

१५. आघात न पहजूँचाने िाली, सत्य, वप्रय और दहतकर बोलनेिाली िाणी को, तथा शामत्रों के ननयसमत मिध्याय को िाणी के तप कहते हैं।

गीता शारीररक तपस्या के बाद अब जजस वाणी की तपस्या का ननरूपण कर रिी िै वि तो और भी अधधक सूक्ष्म िै और जजस प्रकार की िमारी प्रकृनत िै, जजसमें अंध वृविृयों, कामर्ोधाहद ररपुओं का िमारे ऊपर अधधकार रिता िै, ऐसे में सच्चेरूप में समय, वप्रय और हितकर वाणी बोलना तो लगभग असंभव-सा प्रतीत िोता िै। और यि वप्रय और हितकर वाणी भी केवल कोई बािरी रूप से वप्रय बोलना निींअवपतु सच्चे अथों में ऐसा करना िै। साथ िी, स्वाध्याय, अथात्ि् अपनेआप का अध्ययन ककये त्रबना तो िम अपना संतुलन बनाए निींरख सकते। स्वाध्याय तो संतुलन का आधार िै। वाणी की तपस्या या संयमन के ववषय में श्रीमाताजी के शब्द बड़े िी प्रकाशक िैं। वे किती िैं, "मानभसक संयम या तपस्या का प्रश्न मन में तुरंत िी उन लंबे घ्यानों की छवव ले आता िै जो ववचारों पर ननयंत्रण और उसकी पररणनत के रूप में आंतररक नीरवता की ओर ले जाते िैं। योग-साधना का यि पक्ष इतना सुपररधचत िै कक इसके बारे में ववस्तार से कुछ किने की आवश्यकता निीं। ककंतु ुइसका एक और पक्ष भी िै जजस पर प्रायः कम ध्यान हदया जाता िै, वि िै वाणी का संयम। बिुत िी ववरले अपवादों को छोड़कर, साधारणतः गपबाजी या बेमतलब की बातचीत के ववरुद्ध पूण िमौन को िी रखा ककया जाता िै। और कफर भी वाणी का ननयंत्रण करना पूण िननरोध की अपेक्षा अधधक मिान् ्और फलप्रद तपस्या िै।

...िालाकाँक, व्यजकत को यि न समझना चाहिये कक बोले िुए शब्दों का मूल्य बातचीत के ववषय पर ननभरि ै। तुम आध्याजममक ववषयों पर भी उसी तरि व्यथ िमें बकवाद कर सकते िो जैसे अन्य ककसी भी ववषय पर, और इस प्रकार की बकवाद सबसे अधधक भयंकर बकवादों में से एक िो सकती िै। उदािरण के भलये, नया साधक जो थोड़ा बिुत जानता िै उसे औरों में बाटाँनेके भलये बिुत उमसुक रिता िै। परंतु जैसे-जैसे वि माग िपर आगे बढ़ता िै, वैसे-वैसे उसे अधधकाधधक पता लगता िै कक वि बिुत अधधक निींजानता और दूसरों को भसखानेका प्रयास करने से पिले उसे अपनेज्ञान के मूल्य के बारे में ननजश्चत िोना चाहिये, जब तक कक अंत में वि बुद्धधमान् ्न िो जाए और यि अनुभव न करने लगे कक कुछ भमनटों तक उपयोगी बात करनेके भलये घंटों की नीरव एकाग्रता की आवश्यकता िोती िै। इसके अनतररकत, जिाँआंतररक जीवन और आध्याजममक साधना की बात आती िै, वाणी के उपयोग पर और भी अधधक कठोर अनुशासन रखना िोगा और जब तक त्रबल्कुल िी आवश्यक िी न िो तब तक कुछ न किा जाये।...

....अंत में ननष्कष िस्वरूप, म ैंयि किूँगीः यहद तुम चािती कक तुमिारी वाणी समय को अभभव्यकत करे और 'शब्द' की शजकत प्राप्त करे तो कभी भी पिले से मत सोचो कक तुम कया किना चािोगे, यि ननश्चय न करो कक कया किना अच्छा या बुरा िोगा, तुम जो किने वाले िो उसके प्रभाव के बारे में हिसाब न लगाओ। अपनेमन में नीरव रिो और 'सवर्–प्रज्ञा', 'सवर्–ज्ञान', 'सवर्–चेतना' के प्रनत सतत् ्अभीप्सा के सच्चे भाव में जस्थर रिो। तब, यहद तुमिारी अभीप्सा ननष्कपट िै, यहद यि खूब संपदा-संपन्न िोने ेऔर सफल िोने ेकी मित्त्वाकांक्षा को नछपाने के

भलये एक आवरण निीं ंिै, यहद वि शुद्ध, सिज और सवांगीण िै, तो तुम सरलता के साथ बोल सकोगे, विी शब्द बोलोगे जो बोले जानेचाहिये, न अधधक, न कम, और उनमें सृजृनशील शजकत िोगी।" (CWM 12, 57-64)

मनः प्रसादः सौम्यत्िंमौनमात्मविननग्रहः ।

भिासंशद्जधिररत्येतत्तपो मानसमच्जयते।। १६ ।।

१६. मन की शांत-धचत्तता, सौम्यता, मौन, आत्मसंयम, विचारों की शद्जिता, इन्हें मानस तप कहा जाता है।

श्रद्िया परया तप्तं तपमतस्त्रविंं नरैः ।

अिलाकाङ्ज्ञक्षसभयुकुजतैः सास्त्त्किं पररचक्षते ।। १७।।

१७. योगयक्जत लोगों द्िारा, िल की कामना से रदहत हो परम श्रद्िा के साथ इस त्रविि तप का अनजष्ठान करना सास्त्त्कि कहा जाता है।

इसमें वे सभी चीजें समाववष्ट िो जाती िैं जो राजभसक एवं अिकारमय प्रकृनत को शांत या अनुशाभसत करती िैं और वे ेसब भी जो इसके स्थान पर शुभु और पुण्य के सुखद और शांत तत्त्व की प्रनतष्ठा करती िैं। यि साजमवक धम िका तप िै जजसे प्राचीन भारतीय संस्कृनत की व्यवस्था में इतना अधधक मित्त्व प्रदान ककया गया था। इसकी इससे िमिर पररणनत िोगी बुद्धध और संकल्प की एक उच्च पववत्रता, आममा की समता, गंभीर शांनत और जस्थरता, व्यापक सिानुभूनत तथा एकमव की तैयारी, अंतःपुरुष के हदव्य िष िकी मन, प्राण और शरीर के अंदर एक झलक या आभास। विााँउस उच्च भशखर पर नैनतक आदश ितो पिले िी आध्याजममक प्रकार और स्वरूप में पररणत िोने ेलगता िै। और इस पररणनत को भी अपने-आप को अनतिम कराया जा सकता िै, इसे भी एक उच्चतर और मुकततर ज्योनत में उन्नीत ककया जा सकता िै तथा यि भी परा प्रकृनत की शांत-जस्थर देवतुल्य शजकत में पररणत िो सकती िै। और तब जो कुछ शेषे रिगा वि िोगा आममा का ननमलि या शुद्ध तपस्,् सिा के सभी अंगों में एक उच्चतम संकल्प एवं ंज्योनतमयि शजकत, जो ववशाल और ठोस शांनत तथा गंभीर एवं ंववशुद्ध आनंद में काय िकरेगी। तब कफर तप की और आवश्यकता निीं ंरिगी, कोई तपस्या निीं रिगी, कयोंकक सब कुछ सिज-स्वाभाववक रूप से हदव्य िोगा, सब कुछ वि तपस् ्िी िोगा। विााँनीचेकी शजकत का कोई पृथृक् पररश्रम निीं ंरिगा, कयोंकक प्रकृनत की शजकत पुरुषिोम के परामपर संकल्प में अपना सच्चा उद्गम और आधार प्राप्त कर चुकी िोगी। तब, इस उच्च स्रोत से प्रवनततिि िोने ेके कारण, इस शजकत की कियाएँ ननमनतर स्तरों पर भी एक सिजात पूण िसंकल्प से तथा एक अंतननहिित पूण िमागनिनदेशक के द्वारा स्वाभाववक एवं स्वतः-स्फूत िरूप में ननःसृतृ िोगी। ककन्िींभी वतमिान प्रचभलत धमों में से ककसी का भी बंधन निींरिगा: कयोंकक विााँ एक मुकत कम ििोगा जो राजभसक और तामभसक प्रकृनत से बिुत ऊपर तो िोगा िी पर साथ िी कम िके साजत्त्वक ननयम की अनत-सतकि और संकीण िसीमाओंसे भी बिुत परे िोगा।

सत्कारमानपूजाथं ंतपो दम्पेन चिै यत् ्।

कक्रयते ेतददह प्रोक्तं राजसंचलमध्रिजम् ्।। १८ ।।

१८. ददखिो के सलए और मनष्जयों से सत्कार, मान और पूजा प्राप्त करने ेके दहये जो तप ककया जाता है, उसे यहा ूँ राजससक कहा जाता है; यह अस्मथर और अननत्य होता है।

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया कक्रयते तपः ।

रमयोत्सादनाथं ंिा तत्तामसमदजाहृतम् ्।। १९।।

१९. जो तप मूढ़ दरजाग्रह, आत्म-उत्पीड़न के सदहत या दूसूरों को पि़ीा पहंजचाने ेके उद्देश्य से ककया जाता है, उसे तामससक कहा जाता है।

तपस्या की भाँनत समस्त दान भी अज्ञ तामभसक, बाह्यिांबंरपूण िराजभसक या ननःस्वाथ िऔर ज्ञानदीप्त साजत्त्वक प्रकृनत का िोता िै।

दातव्यसमनत यद्दानंदीयतेऽनपजकाररणे ।

देशे ेकाले च पात्रे ेच तद्दानंसास्त्त्किं ममृतम् ्।। २० ।।

२०. जब दान दान के ही भिा से ददया जाए, उसको ददया जाए स्जससे कोई प्रनतिल की अपेक्षा न की जाती हो, और उधचत मथान पर ददया जाए, उधचत समय पर ददया जाए और उधचत पात्र को ददया जाए, उस दान को सास्त्त्कि कहा गया है।

साजत्त्वक प्रकार के दान की पराकाष्ठा कम िके अंदर दूसूरों के प्रनत, जगत् ्तथा परमेश्वर के प्रनत एक व्यापक आममदान एवं ंआमम-समपणि के तत्त्व को िमशः अधधकाधधक ले आएगी जो कक गीता द्वारा प्रनतपाहदत कमों के यज्ञ का उच्च उमसग िििी िै। हदव्य प्रकृनत में ऊध्वतिम जस्थनत आमम-दान की भिमि पररपूणतिा िोगी जो जीवन के ववशालतम अथ िपर आधाररत िोगी। यि समस्त बुिववध ववश्व भगवान् ्द्वारा इन सब भूतों को अपना स्वयंका और अपनी शजकत का दान करनेके कारण और इन सब भूतों में अपनी सिा और आममा को मुकतिस्त प्रवाहित करने से उमपन्न िोता िै और सतत् ्जस्थनतशील रिता िै; वेद किता िै कक ववश्व-सिा पुरुष का यज्ञ िै।

भसद्ध जीव का भी समस्त कम ििोगा - अपना तथा अपनी शजकतयों का इसी प्रकार सतत् ्रूप से हदव्य दान करना, भगवान् ्के अंदर तथा उनके प्रभाव और पे्रेरणा के द्वारा उसने जो ज्ञान, ज्योनत, बल, पे्रेम, िष,ि सिाायप्रद शजकत उपलब्ध की िै उसे अपनेचारों ओर सबके ऊपर, उनकी ग्रिण-सामथ्य िके अनुसार उँिलि देना, अथवा इस समस्त जगत् ्तथा इसके प्राणणयों पर प्रवाहित कर देना। िमारी सिा के स्वामी के प्रनत जीव के समग्र आममदान का संपूण िपररणाम यिी िोगा।

यि समग्र आममदान ननखैगुण्य िोता िै। भगवान् ्से िमें जो भी ज्ञान, ज्योनत, बल, पे्रेम, िष,ि सिाायप्रद शजकत प्राप्त िोती िै उसे अपने चारों ओर सबके ऊपर, उनकी ग्रिण-सामथ्य िके अनुसार उँिलि देना िोगा।

देश, काल और पात्र का ववचार करके ककये जानेवाला दान तो साजत्त्वक िोता िै परन्तु सिज रूप से भगवद् पे्रेरणा से सब पर िी उँड़ेलि देना ननत्रैगुण्य िोता िै, जैसे परमाममा अपना पे्रेम सभी प्राणणयों पर समान िी रूप से उँड़ेलिते िैं चािे वि नाजस्तक िो अथवा आजस्तक, पापी िो अथवा पुण्याममा।

यत्त जप्रत्यपजकाराथं ्िलमद्जददश्य िा पनजः ।

दीयते च परररस्क्लष्टं तद्दानं राजसंममृतृम् ्।। २१ ।।

२१. जो दान अननच्छापिूकु ककसी प्रकार के बदले की आशा से अथिा ककसी प्रनतिल की इच्छा से या ककसी िल तथा परजमकार की दृस्ष्ट से ददया जाता है िह दान राजससक कहा जाता है।

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।

असत्कृतमिज्ञातं ्तत्तामसमदजाहृतम् ्।। २२।।

२२. जो दान अनपजयक्जत देश और काल में तथा अयोनय पात्र को नतरमकार और अिहेलनापिूकु ददया जाता है िह तामसी कहा जाता है।

ॐ तत्सददनत ननदेशो ब्रह्मणस्मत्रििः ममृतृः ।

ब्राह्मणामतेन िेदाश्ि यज्ञाश्ि विदहताः परजा ।। २३ ।।

२३. ॐ-तत्–सत्,् इसे ब्रह्म की त्रििि परराभाषा या व्याख्या कहते ्हैं स्जसके द्िारा पिू ुकाल में ब्राह्मण और िेद और यज्ञ सृष्ृट हजए हैं।

गीता इस अध्याय का उपसंिार एक ऐसे कथन से करती िै जो प्रथम दृजष्ट में दुबोध प्रतीत िोता िै। वि किती िै कक ॐ, तत्,् सत्,् यि सूत्र उन रह्म की त्रत्रववध परराभाषा िै जजनके द्वारा पुराकाल में राह्मणों, बेदों और यिा ॉँकी सृजष्ट िुई थी और इसी सूत्र में उनका समस्त गभभनत अथ िननहित िै। 'तत् ्ननरपेक्ष सिा का द्योतक िै। 'सत्'् परम् ्और ववश्वमय सिा के मूलतत्त्व का द्योतक िै। 'ओम्'् त्रत्रववध रह्म का, बहिमुखि, अन्तमुखि या सूक्ष्म तथा अनतचेतन कारण-पुरुष का प्रतीक िै। अ, उ, म - यि प्रमयेक अक्षर इन तीन में से एक-एक को आरोिणक्म में द्योनतत करता िै और अपनेसमूचे रूप में यि अक्षर उस तुरीय अवस्था का बोधक िै जो ननरपेक्ष सिा की ओर उठ जाती िै।

तममादोसमत्यजदाहृत्य यज्ञदानतपः कक्रयाः ।

प्रितुनुतेिििानोक्ताः सततं ्ब्रह्मिाददनाम् ्।। २४।।

२४. इससलये शास्त्रिधान के अनसजार प्रनतपाददत यज्ञ, दान, तप की कक्रयाओं को ब्रह्मिाददयों के द्िारा सदा ही ॐ के पिू–ुउच्चारण द्िारा आरंभ ककया जाता है।

तददत्यनसभसंघाय िलं यज्ञतपः कक्रयाः ।

दानकक्रयाश् विविाः कक्रयन्ते मोक्षकाङ्क्षसभः ।। २५।।

२५. मोक्ष की इच्छा रखनेिाले व्यस्क्तयों के द्िारा िल की कामना के त्रबना और तत् ्के उच्चारण के साथ ही यज्ञ, तप और दान की विवि कक्रयाओं का अनष्ुठान ककया जाता है।

सद्भािे सािभुाि ेच सददत्येतत्प्रयज्ुयते।

प्रशमते कमणुण तथा सच्छब्दः पाथ ुयज्ुयते।। २६॥

२६ . हे पाथ!ु यथाथतुा या सत्तत्ि के और श्रेष्ठता के अथ ुमें सत् ्शब्द का प्रयोग होता है और श्रेष्ठ कम ुके अथ ुमें भी सत् ्शब्द प्रयक्ुत होता है।

यज्ञे तपसस दाने च स्थनतः सददनत चोच्यते ।

कम ुचैि तदथीयं सददत्यिेासभिीयते ।। २७।।

२७. यज्ञ, तप तथा दान में दृढ़ प्रनतष्ठा भी सत् ्कही जाती है और तत् ्के सलये ककये जानेिाले समस्त कम ुभी सत् ्ही कहे जाते हैं।

अश्रद्िया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ्।

असददत्युच्यते पाथ ुन च तत्प्रेत्य नो इह ।। २८ ।।

२८. हे पाथ!ु हिन, दान, तप या अन्य कोई कम,ु जो कुछ भी त्रबना श्रद्िा के ककया जाता है िह असत् ्कहा जाता है; िह इस लोक में और परलोक में व्यथ ुअथिा ननष्िल है।

और कयोंकक श्रद्धा िमारी सिा का केंरीय तत्त्व िै, इनमें से कोई चीज यहद त्रबना श्रद्धा के की जाए तो वि एक भमथ्यामव िोती िै, इिलोक में या परतर लोकों में उसका कोई सच्चा अथ िया सच्चा सार निींिोता, इि-जीवन में या ममय िजीवन के पश्चात् ्िमारी धचन्मय आममा के भिर लोकों में हटके रिनेया सृजन करनेके भलए उसमें कोई समय या शजकत निींिोती। अंतराममा ववश्वास िी निीं ंकरने ेतथा अपनी दृजष्ट और ज्ञान के अनुसार कम िकरनेतथा अपनेको गढ़नेके भलए अंतराममा का एकाग्र संकल्प िी अपनी शजकत के द्वारा िमारे ववकास की या अभभव्यजकत की संभावनाओं की मयादि ननधारिरत करता िै, और िमारी संपूण िबाह्यान्तर सिा, प्रकृनत और कम िके सहित उस सबकी ओर - जो कुछ उच्चतम, हदव्यतम, समयतम और शाश्वत िै - मुिी िुई यि श्रद्धा एवं संकल्प िी िै जो िमें परम भसद्धध की प्राजप्त में समथ िबना देगा।

श्रद्धा िी प्रधान तत्त्व िै जो िमारी गिराइयों से आती िै। आणखर श्रद्धा की आवश्यकता कया िै? ऐसा इसभलए िै कयोंकक िमारी मानभसक, प्राणणक और भौनतक सिा सीभमत िै अतः यि न तो परामपर के संकल्प को

समझ सकती ि ै और न उसे अभभव्यकत कर सकती ि ै। श्रद्धा िमें उस काय िमें ननयोजजत करती ि ै जजसे समझने के भलए िमारी बुद्धध अक्षम िोती ि ै। परंतु ुसभी ववपरीत और ववषम प्रतीनतयों के बावजूद भी श्रद्धा िमें उस संकल्प के प्रनत लगाये रखती ि ै। यहद ऐसा न िोता तो जजस प्रकार की भौनतक और मानभसक चेतना की संरचना में िम फंसे रिते िैं उसमें से कभी ननकल िी निीं ंसकतेथे। यि तो एक प्रकार से उच्चतर स्तरों से ननमनतर स्तरों पर िाली गई वि िोरी ि ै जजसकी सिायता से व्यजकत ऊपर चढ़ सकता ि ै। व्यजकत से यि वि काय िसंभसद्ध करा लेती ि ै जो कक उसकी सोच-समझ आहद के सवथिा ववपरीत भी िो सकता ि ै।

जैसे-जैसे िमारी चेतना का ववकास िोता ि ै वैसे-वैसे कफर यि श्रद्धा ज्ञान का रूप ले लेती ि ै। परन्तु ु ककतना भी ववकास कयों न िो जाये कफर भी िम देखेंगे कक ककन्िीं क्षणों पर श्रद्धा की आवश्यकता बनी िी रिती ि ै कयोंकक मानव बुद्धध चािे ककतनी भी ववशाल कयों न िो जाए कफर भी पूरी तरि से हदव्य जननी की किया को भला ककतना समझ सकती ि ै। साथ िी, स्वयं श्रद्धा का रूप भी बदलता रिता ि ै और यि उत्तरोत्तर वधधत िोती रिती िै। तब स्वयं अपनेजीवन में भी िम ऐसे कायों को सिज रूप से करनेलगते िैं, भले सचेतन रूप से या कफर अभ्यासवरा, जो ककन्िीं भी बािरी मानदंिों से या तो त्रबल्कुल असंभव प्रतीत िोतेिैं ग मानभसक दृजष्टकोण से त्रबल्कुल असंगत प्रतीत िोतेिैं। श्रीअरववन्द ने अपनी कृनतयों में श्रद्धा के ववषय में बिुत ववस्तार से वणनि ककया िै।

प्रश्न : ॐ-तत्–सत् ्में जो तत् ्ि ै उसे ननरपेक्ष सिा बताया गया ि ै। ननरपेक्ष सिा से कया तामपय िि ै?

उत्तर: श्रीमााँ के अनुसार ॐ भगवान् ्का िस्ताक्षर ि ै। उनका नाम ि ै। तत् ्अथात् ्'वि' और सत् ्का तामपय िि ै संभूनत। रह्म की अभभव्यजकत बिुत जहटल ि ै। समपूण िरह्मांिॐ की मूल ध्वनन से िी उमपन्न िुआ ि ै। इसको मनुष्य का मन निींसमझ सकता। बीज मंत्रों में "ॐ ह्रीं कलीं" आहद ववभभन्न प्रकार के नाद का कया तामपय िि ै इसको िमारा मन कभी समझ निीं ंसकता। नाद मन की अपेक्षा अधधक गिन ि ै और ववशालतर अभभव्यजकत करनेमें सक्षम ि ै। इसीभलये भारतीय सभ्यता में शब्द को रह्म किा गया ि ै। अतः माना जाता ि ै कक जब िम मंत्रों का उच्चारण करते िैं तो वे सृजष्ट किया को सशकत बना कर उसे अधधक समृद्ध बनाते िैं। परंतु यि रिस्य अब लुप्त िो गया ि ै।

यहद िम उच्चतर चेतना से जुड़ े िों तो सब कुछ केवल संकल्प मात्र से िी साधधत कर सकतेिैं। तब िमारे मन में जो ववचार ि ै वि भी बिुत प्रभावशाली बन जाता ि ै। तब किने मात्र से वांनछत चीज का ननमाणि ककया जा सकता ि ै। यि संकल्प सब व्यवस्था करने में सक्षम ि ै। गुह्यववद्ाओंका मानना ि ै कक संसार में जजतनेभी मित् ् काय ितथा मिान् ्िांनतयााँिुई िैं वे सब भी ऋवषयों के संकल्प का िी पररणाम िैं जो भौनतक रूप से अपने तरीके से अभभव्यकत िोती िैं। श्रीमाताजी की किया भी जब िम देखते िैं तो पाते िैं कक ककस प्रकार संकल्प मात्र से वे अपनी किया संभसद्ध करती थीं। अन्यथा वैजश्वक स्तर पर तो किया करनेका और कोई दूसरा साधन िी निीं ंि ै।

इस प्रकार सत्रहिूँ अध्याय 'श्रद्त्रियविभागयोग' समाप्त होता है।

अठारिवााँ अध्याय

।. त्रत्रगुण,मनऔरकमि

त्रत्रगुण के ववषय में, तथा उच्चतम साजत्त्वक साधना की अपने आप को अनतिम करने वाली पराकाष्ठा के द्वारा गुणों से परे त्रत्रगुणातीता को भी आने ेके मूलभूत ववचार के प्रकाश में गीता ने कम िके ववश्लेषण को अपने जक संपूण िनिींककया ि ै। श्रद्धा, अथात्ि्जो समय िमनेदेख भलया ि ै उस पा ववश्वास करने, े विी बन जाने, उसे

जानने, े उसे जीनेतथा कायि–रूप में पररणत करने ेका संकल्प िी ि ै जो ककसी स्वयं-ववकसनशील कम िके पीछे, और सबसे बढ़कर, कमों के द्वारा जीव के अपनी पूण ि आध्याजममक भ्मिा या जस्थनत में ववकभसत िोनेके पीछे

जस्थत प्रधान तत्त्व, अपरररिय ि शजकत ि ै। परन्तु इसके साथ िी मानभसक शजकतयााँ, उपकरण या साधन एवं अवस्थाएं भी िैं जो कम िकी गनत, हदशा तथा स्वरूप का गठन करनेमें सियक िोती िैं और इसभलए इस मनोवैज्ञाननक या आंतररक साधना की पूण िसमझ प्रात करने ेमें मित्त्व रखती िैं। इससे पिले कक गीता अपनेउस मिान् ्चरम भसद्धान्त की ओर, जो कुछ भशक्षा वि देती ि ै उसकी पररणनत की ओर, उस उच्चतम रिस्य की ओर जो कक सभी धमों के आध्याजममक अनतिमण का रिस्य ि ै, एक हदव्य परामपरता की ओर अग्रसर िो, वि इन तत्त्वों (मा**ववषय के इस अंशों की हम**)मसंक्षिप्त एवं मनोवैज्ञाननक ववश्लेषण आरंभ करतीि ै। जजसमें वि संन्यास और मयाग के तत्त्व तथा इनके भेद के ववषय में पूछता ि ै।

इस अध्याय के प्रथम उनचालीस श्लोकों में गीता जजस तत्त्व का ननरूपण करने ेजा रिी ि ै श्रीअरववन्द ने उसका यिााँ संकेत कर हदया ि ै। इस अंश में श्रीअरववन्द ने जीवन की जजस सबसे मित्त्वपूण िऔर मूलभूत बात की

ओर संकेत ककया िै वि िै श्रद्धा, 'अथात्ि्जो समय िमने देख भलया िै उस पर ववश्वास करने,े विी बन जाने, उसे जानने,े उसे जीनेतथा कायरूप में पररणत करने ेका संकल्प िी िै जो ककसी स्वयं-ववकसनशेते कम िके पीछे, और सबसे बढ़कर, कमों के द्वारा जीव के अपनी पूण िआध्याजममक िमिा या जस्थनत में ववकभसत िोने के पीछे जस्थत प्रधान तत्त्व, अपररिाय िशजकत िै।' यि केवल आध्याजममक साधना का िी मूलभूत समय निीं ंिै अवपत िमारे सारे जीवन का भी सार िै। कोई भी मनुष्य त्रबना श्रद्धा के कुछ भी प्राप्त निीं ंकर सकता। श्रद्धा वि समय िै जजसे नयजकत का मन भले िी न समझता िो परन्तु जजसे व्यजकत ने भीतर से देख भलया िोता िै। श्रद्धा व्यजकत को समय का आस्वादन प्रदान कर देती िै।

प्रश्न : कया समय को देख लेने का अथ ििी उसे अनुभव करना िै?

उत्तर : उदिारण के भलए, जब िम ककसी धचत्र को देख लेते िैं तो दृजष्ट के द्वारा उसके ववषय में सुननजश्चत िो जाते िैं। उसी प्रकार जब श्रद्धा के माध्यम से िम समय को देख लेते िैं तब इस ववषय में पूणतिः आश्वस्त िो जाते िैं कक समय कया िै भले िी मानभसक रूप से िम उसे न समझते िों। उदिारण के भलए, आध्याजममक जीवन में अधधकांशतः िी ऐसा िोता िै कक जब व्यजकत अपने भलए ननयत गुरु के पास जाता िै तब भले िी उसे उसके अनुभवों, भसद्धधयों आहद के बारे में कुछ भी पता न िो परंतु ुभीतर से श्रद्धा स्पष्ट रूप से यि जान जाती िै कक विी व्यजकत उसे उसके गंतव्य तक ले जा सकता िै। इसी श्रद्धा के आधार पर व्यजकत अपना संपूण िजीवन, भाव, कम,ि सवस्ि अनन्य रूप से गुरु रूप में स्वीकार कर उसे समवपति कर देता िै और उसी श्रद्धा के आधार पर वास्तव में अपनेगंतव्य तक पिुँच जाता िै। भले िी स्वयं गुरु को अमुक दशनि या भसद्धध प्राप्त िो या न िो, परंतु अपनी श्रद्धा के प्रभाव से व्यजकत को उसके माध्यम से जो कुछ भी आवश्यक िै वि ननजश्चत िी प्राप्त िो जाता िै। श्रद्धा एक बिा िी अद्भुत ववधान िै। यहद भीतर श्रद्धा न िो और केवल बािरी व्यजकतमव से, भसद्धधयों आहद से िी प्रभाववत िोकर व्यजकत ककसी गुरु के पास जाता िै तो उसे उससे कोई भी सच्चा लाभ निीं ंिो सकता कयोंकक स्वीकार तो व्यजकत विी करता िै जो भीतर से उसकी श्रद्धा िोती िै अन्यथा तो जैसे बाजार में व्यजकत देखता-परखता तो िजारों चीजें िैं परंतु खरीदता विी िै जो उसी खरीदना िोता िै और कभी-कभी तो कुछ भी निीं खरीदता, उसी प्रकार श्रद्धा के अभाव में व्यजकत जीवन भर सौदेबाजी भले िी कर सकता िै परंतु वास्तव में उसे कोई सच्ची उपलजब्ध निींिोती।

इसीभलये तो रामायण में बालकाण्िमें तुलसीदास जी किते िैं -

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाववश्वासरूवपणौ।
याभ्यांववना न पश्यजन्त भसद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ्।।

अथात्ि्श्रद्धा और ववश्वास के स्वरूप श्रीपावतिीजी और श्रीशंकरजी की म ैंवन्दना करता िूँ, जजनके त्रबना भसद्धजन अपनेअन्तःकरण में जस्थत ईश्वर को निींदेख सकते।

यहद िम श्रद्धा के इस तत्त्व को केवल गीता के िी पररपे्रेक्ष्य में न देखकर व्यापक अथ िमें भली प्रकार समझ सकें तो िम यि स्पष्टतः देख पाएँगे कक ककस प्रकार िमारा सारा जीवन श्रद्धा के अनतरररकत और कुछ िै िी निीं, अवपतु उसी का पररणाम िै। िमारा भावी जीवन भी िमारी वतमिान श्रद्धा का िी पररणाम िोगा। जजसे मि सामान्य तौर पर आध्याजममक जीवन किते िैं केवल उसी में निींअवपतु सामान्य जीवन में भी श्रद्धा अपररिाय ितत्त्व िै। जब व्यजकत के मन में भीतरी श्रद्धा की प्रनतछाया के रूप में यि प्रबल ववचार आता िै कक उसे अमुक पेशे ेमें जाना िै, उद्योग, कृवष, खेल, राजनीनत, अभभनय या कफर अन्य ककसी क्षेत्र में जाना िै तब वि उस ववचार की हदशा में अपनी सारी ऊजाि, अपना संकल्प और उपलब्ध संसाधन लगाता िै। अपनेपेशे ेके इस चयन का िम भले िी कोई बािरी कारण बता सकतेिैं, परंतु वास्तव में तो यि चयन भीतर की श्रद्धा के आधार पर िोता िै भले वि श्रद्धा तामभसक िो, या राजभसक िो या कफर साजत्त्वक िो। और व्यजकत जजतना िी अधधक एकाग्र रूप से अपनेचयननत क्षेत्र की हदशा में अपनी ऊजािलगाता िै उतना िी अधधक वि उसमें सफल िोता िै। जजस व्यजकत में श्रद्धा जजतनी िी प्रखर िोती िै उतना िी प्रखर, दृढ़ और एकननष्ठ उसका संकल्प िोता िै और उसी के अनुपात में उसकी उपलजब्ध िोती िै। विीं यहद ककसी में श्रद्धा सुस्पष्ट न िो, उसका संकल्प भी दृढ़ न िोकर ववचभलत िोता रिता िो, तो ऐसा व्यजकत जीवन में अधधक कुछ संभसद्ध निीं कर पाता। अतः साधारण जीवन में भी श्रद्धा के त्रबना व्यजकत कभी कुछ निींकर सकता। श्रद्धा तो परमाममा का रूप िी िै इसभलए यहद वि अटल रूप से आ जाती िै तो ननजश्चत िी चररताथ िोती िै।

कोलमबस के िी उदािरण से िम देख सकते िैं कक ककस प्रकार एकमात्र श्रद्धा के आधार पर उसनेअपना समुरी अभभयान शुरू ककया था। जजस समय उसनेव्यापार करने ेके भलए समुरी रास्तेकी खोज करने का ननश्चय ककया उस समय ककसी को भी सिी-सिी भौगोभलक ज्ञान न िोने ेके कारण कोई भी उसके साथ यात्रा पर जानेके भलए तैयार न था। अन्य कोई जब उसके साथ जानेके भलए तैयार न था तब उसे सजा काट रिे कैहदयों को मजबूरन अपने साथ यात्रा पर ले जाना पड़ा। यि ाँतक कक वे भी यात्रा की बजाय कैद में िी रिना अधधक पसंद कर रिे थे। ककया िी, सभी को यि भय था कक एक सीमा के बाद समुर का अंत आते िी सभी धरती से बािर धगर जाएँगे। यात्रा के दौरान भी जब बिुत समय तक दूरू-दूरू तक समुर िी हदखाई देता था तब सभी समय-समय पर िताश िोकर बिुत ववचभलत िो जाते थे और भयभीत िो जाते थे। यिी निीं,ं जिाजी दल ने समय-समय पर कोलंबस को मार िालनेकी भी योजना बनाई ताकक उससे पीछा छुड़ाकर पुनः लौट सकें भले पुनः लौटकर उन्िें कैद में िी कयों न रिना पड़े।े ऐसे में केवल भीतर से श्रद्धा िी थी जजसने कोलमबस को डटे रिने की शजकत दी। अंततः जब एक हदन उन्िोंने आसमान में पक्षी देखे, पानी में फल लगी पेड़ की बिती िुई शाखा देखी तब उन्िें राित की साँस भमली कक जमीन पास िी िै। इस प्रकार िम देख सकते िैं कक श्रद्धा कैसी प्रबल शजकत िै जजसके सिारे व्यजकत कुछ भी कर सकता िै भले िी उसकी बािरी प्रकृनत कंवपत और ववचभलत िी कयों न िो रिी िो। आध्याजममक जीवन में तो श्रद्धा के त्रबना कुछ भी संभसद्ध िो िी निीं सकता।

अजुनुज उिाच

संन्यासमय महाबाहो तत्त्सिमच्छासम िददतजम् ् ।

त्यागमय च हृषीकेश पृथक्केसशननषूदन ।। १।।

१. अजुजनु ने कहाः हे महाबाहो ! म ैंसंन्यास और त्याग के तत्त्किो जाननेकी इच्छा रखता हूँ, और हे हृषीकेश। उनके भेद' को भी जानना चाहता हूँ, हे केसशननषूदन (केसश नामक दैत्य का विनाश करनेिाले श्रीकृष्णा)।

श्रीभगिान् ्उिाच

काम्यानां कमुणांन्यासंसंन्यासं कियो विदःज ।

सिकुमुिलत्यागं प्राहजमत्यागं ंविचक्षणाः ।। २॥

२. श्रीभगिान् ्ने कहाः ऋवषयों ने कामना द्िारा प्रेररत ककये गये कमूँ के पररत्याग को संन्यास माना है; और सममत कमूँ के िल के पररत्याग को ज्ञाननयों द्िारा त्याग कहा जाता है।

इस अथ िमें संन्यास निींमयाग िी श्रेयस्कर माग िै। जजस चीज का मयाग करने की आवश्यकता िै वि कामनाममक कम िनिीं ंिै अवपतु उस कामना को िमसे दूरू कर देनेकी आवश्यकता िै जो कम िको वैसा कामनाममक स्वरूप प्रदान कर देती िै। कमों के प्रभु के ववधान के अंदर कम िका फल प्राप्त िो सकता िै, ककन्तु कम िकरने के पुरस्कार या उसकी शत िके रूप में फल की कोई अिपूण िमागँ त्रबल्कुल निीिंनी चाहिए। अथवा ऐसा भी िो सकता िै कक फल त्रबल्कुल भी न भमले और कफर भी िमें कम िको 'कतव्यिंकम'ि (एक करनेयोग्य कम)ि के रूप में करना िी चाहिए, वि चीज जजसकी िमारे अंतःस्थ प्रभु िुमसे मागँ करते िैं। सफलता और ववफलता उन्िींके िाथों में िै और उन्िेंवे अपनेसवज्ञि संकल्प तथा अबोधग्राह्य प्रयोजन के अनुसार ननधाररत करेंगे। कम िका, वस्तुतः समस्त कम िका, अंत में मयाग करना िोगा, (परंतु) ऐसा भौनतक रूप से, कम िका पररिार करके, ननश्चल-ननजष्िय रि कर निीं,ं अवपतु आध्याजममक रूप से, िमारी सिा के उन स्वामी के प्रनत कमों का मयाग करना िोगा केवल जजनकी िी शजकत से कोई भी कम िसंभसद्ध ककया जा सकता िै। अपनेआप को किाि के रूप में मानने ेके भमथ्या ववचार का मयाग करना िोगा;

---

*गीता का इस अमयंत मित्त्वपूण िभेद को प्रायः िी गुंजाररत करना, बारंबार इस पर बल देना उिरकालीन भारतीय मन के परवती इनतिास द्वारा यथेष्ट रूप से औधचमयपूण िभसद्ध कर हदया गया िै कयोंकक यि ााँिम भारतीय मन को इन दो अमयंत भभन्न ववषयों में ननरंतर िी ववभ्रम अथवा अस्तव्यस्तता की जस्थनत में देखते िैं और गीता द्वारा कम िके ववषय में दी गई इस भूम अथवा अस्तव्यस्तताक की अधधक-से-अधधक संन्यास के परम देखते ेकी एक प्रारजमभक अवस्था के रूप में गौण मित्त्व प्रदान ककये जानेकी िैं। सच पूछो तो, जब प्रबल प्रवृवि लोग मयाग की बात करते िैं तब वे इस शब्द का जो अथ िसमझतेिैं या कम-से-कम इसके जजस अथ िपर वे बल देतेिैं, वि सदा जगत् ्का बाह्य मयाग िी िोता िै, जब कक कैम इसके जजस से ववपरीत दृजष्टकोण अपनाती िै कक वास्तववकता नगरतर में कम िकरनेऔर जीवन यापन करने को अपने आधार िै मठ-मंहदर, गुिा-कंदरा या धगरर-श्रृंग की ओर पलायन को। यथाथ िमयाग िै कामना को मयाग कर कम िकरना और यथाथ िसंन्यास भी यिी िै।

कयोंकक वास्तव में यि ववश्व-शजकत िी िै जो िमारे व्यजकतमव तथा िमारे अिं के द्वारा काय िकरती िै। गीता की भशक्षा में अपनेसब कममों को आध्याजममक रूप से प्रभु तथा उनकी शजकत को सौंप देना िी सच्चा संन्यास िै।

यिा ाँमुख्य रूप से दो बातें समझाई गई िैं। एक तो यि कक कामनामय कमों का पररमयाग कर देना चाहिये। ककन्तु तब तो कम िमात्र का िो मयाग करना िोगा कयोंकक समस्त कमों की वतमान प्ेरेरक शजकत तो कामना िी िै। परंतु इसके उपाय के रूप में बताया गया िै कक कमों का मयाग निीं ंअवपतु कमों को जो चीज दूवूषत करती िै उसी का मयाग करना िै। अपनेआप में कोई भी कम िखराब या अच्छा निींिोता। उसके पीछे का भाव िी िै जो उसे वैसा स्वरूप प्रदान कर देता िै। परंतु यहद िम देखें तो वास्तव में न तो कमों का मयाग संभव िै और न िी कामना का। यिी दुवुवधा अजुनि के सामने थी कक सामान्यतः तो िम कामों का चयन उनसे भमलने वाले फल के अनुसार या कफर ककसी अवप्रय बीज से बचने के भलए करते िैं, परंतुयहद कमों के इस आधार को िी िटा हदया जाए तब कफर व्यजकत कम िका चयन ककस आधार पर करेगा। इसी के समाधान के रूप में पिले िी गीता कि चुकी िै कक कमों को यज्ञ रूप से और भगवान् ्की प्रसन्नता के ननभमि करने ेपर उनमें जो कामना का दोष िै वि धीरे-धीरे समाप्त िो जाता िै और तब वे कम िहदव्य कम िबन जाते िैं। जब िम इस भाव से काय िकरते िैं कक श्रीमाताजी को, या कफर िमारे इष्ट को कौनसा काय िपसंद िोगा और कौनसा निीं, ं तो इतने भर से भी कुछ ननवषद्ध कम ितो स्वतः िी बंद िो जाएँगे जजन्िें िम अभ्यासवश या कफर अचेतनतापूवकि ककये जा रिे थे। और ज्यों-ज्यों िम अधधकाधधक सचेतन िोते जाएँगे मयोंिी-मयों िमें अधधक स्पष्ट रूप से हदखने लगेगा कक कौनसे कम िननवषद्ध िैं और कौनसे कम िकरने योग्य िैं। इस प्रकार यि भाव भी धीरे-धीरे िमारे कमों के संपूण िस्वरूप को िी बदल देता िै। इस ववषय में तो िम पिले भी ववशद चचाि कर चुके िैं।

त्याज्यंदोषिददत्येके कमु ्प्राहजमुनीवषणः ।
यज्ञदानतपःकमु ्न त्याज्यसमनत चापरे ।। ३।।

३. कजछ मनीषी लोग कहतेहैं कक "सममत कमों का इस प्रकार पररत्याग कर देना चादहये जैसे ककसी दोष का"; और दूसूरे ऐसा कहते ेहैं कक "यज्ञ, दान और तपरूप कमूँ का पररत्याग नहींकरना चादहये।"

कफर भी यि प्रश्न उठता िै कक कौन-कौन से कम िककये जाने चाहिये? जो लोग संपूण िबाह्य भौनतक मयाग का पक्ष लेते िैं वे भी इस गिन ववषय में एकमत निीं ंिैं। कुछ लोग यि किेंगे कक सभी कमों को िमारे जीवन से बिार ननकाल फेंकना चाहिए, मानो ऐसा करना संभव भी िो। परन्तुजब तक िम इस दिे में िैं तथा जीववत िैं तब तक ऐसा संभव निीं; न िी मुजकत इस बात में िो सकती िै कक िम अपनी सकिय सिा को समाधध के द्वारा भमट्टी के ढेले और पमथर के टुकड़े ेकी-सी ननजीव ननश्चलता में पररणत कर दें।...तो कफर ककये जाने वाले कम ि कौन से िैं? एक नैजष्ठक संन्यासवादी उिर यि िोगा, जो कक गीता ने उल्लेख निीं ककया िै - कयोंकक संभवतः यि उिर उस समय सवथिा प्रचभलत निीं था – कक ऐजच्छक कमों के रूप में केवल भभक्षाटन, भोजन और ध्यान को िी स्वीकार करना िोगा और वैसे इनके अनतररकत केवल आवश्यक शारीररक कियाओं को करना िोगा। परंतु प्रमयक्षतः िी इसका एक अधधक उदार और व्यापक समाधान था यज्ञ, दान और तप रूपी अमयंत साजत्त्वक

कियाओं ंको जारी रखना। और गीता किती िै कक इन्िें अवश्य िी करना चाहिए कयोंकक ये मनीषी को शुद्ध करते िैं।

कुछ मनीषी सारे िी कमों के पररमयाग का प्रनतपादन करते िैं परंतु वास्तव में यि लागू करना संभव निीं िै कयोंकक कम िकेवल भौनतक िी निीं अवपतु प्राणणक, मानभसक और मनोवैज्ञाननक भी िोते िैं। इसभलए कमों के पररमयाग में केवल भौनतक कमों का पररमयाग करने ेका प्रयास करना एक मूखतिापूण िऔर असंगत बात िै। कमों का मयाग निीं िो सकता। तब कफर कम िककस प्रकार ककये जानेचाहिये? इसके भलए कुछ मनीषी कमों को यज्ञ, तप और दान के रूप में करने का प्रनतपादन करते िैं। इस ववषय में पिले िी िम ववशद चचाकर चुके िैं कक ककस प्रकार यज्ञ, तप और दान शब्दों से जो िम केवल स्थूल भौनतक कियाओं से अथ िलगाते िैं वि निीं, अवपतु ये मिारी सिा और अजस्तमव मात्र के, सारी सृजष्ट के मूलभूत तत्त्व िैं जजनके त्रबना यि सृजष्ट िी निीं ंिो सकती। जब मि इस व्यापक अथ िमें यज्ञ, तप और दान को समझतेिैं तभी िमें यि अनुभव िोता िै कक इन पदों से गीता का जो अभभप्राय िै वि वास्तव में कोई देश-काल मयाहिदत ववषय निीं िै जो कक ककसी समय ववशेषे पर प्रासंधगक रिा िो परंतु अब जजसकी कोई प्रासंधगकता न रिी िो। गीता के यज्ञ, तप और दान तो सभी समयों में, सभी स्थानों पर और सभी पर समान िी रूप से लागू िोते िैं।

ननश्चयं ंशृणु जमे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो दह पुरुजषव्याघ्र त्रत्रवविः संप्रकीनततुः ।।४।।
४. हे भरतश्रेष्ठ! त्याग के विषय में मेरे मतों अथवा ननणुयों को सनज। हे पुरुजषव्याघ्र (नरों में व्याघ्र के समान)! त्याग को त्रत्रववि बताया गया है।

यज्ञदानतपः कमु ुन त्याज्यंकायुमेव तत् ्।
यज्ञो दानंतपश्चैव पावनानन मनीवषणाम् ्।। ५।।
५. यज्ञ, दान और तपरूप कमूँ का पररत्याग नहीं ंकरना चादहये। यज्ञ, दान और तप मनीवषयों को पवित्र करनेवाले हैं; इसभलए, उनका अवश्यमेव ही अनष्ठान करना चादहए।

एतान्यवप तज कमुाणण सङ्गंत्यक्त्वा िलानन च ।
कतुव्यानीनत में पाथु ुननस्श्चतं मतमत्तजमम् ्।। ६।।

६. ककंतज ये कमु ुभी आसस्क्त और िल की कामना का पररत्याग करके ककये जानेचादहये। हे पाथु।ु यही मेरा ननस्श्चत और उत्तम मत है।

अतः गीता इस पर बल देती िै कक व्यजकत को सदा िी यज्ञ, तप और दान का अनुष्ठान करते रिना चाहिये और वि भी आसजकत रहित िोकर भगवान् के प्रीमयथ।ि आध्याजममक जीवन में तो ये कियाएँ अपररिाय िैं इसभलए कभी भी साधक को यज्ञ, तप और दान निीं छोड़नेचाहिये। केवल इन्िींके अनुष्ठान से साधक अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर िो सकता िै।

ननयतमय त जसंन्यासः कमुणो नोपपद्यते ।
मोहात्तमय पररत्यागमतामसः पररकीनततुः ।। ७।।

७. ननश्चय ही ननयत कमों का पररत्याग उधचत नहीं है; मोहिश उनका पररत्याग करना तामससक कहा गया है।

.....एक अधधक व्यापक दृजष्ट से, तथा इन तीनों कायों (यज्ञ, दान और तप) को इनके व्यापकतम अथ िमें समझतेिुए, जजस काय िका अनुष्ठान ककया जाना िै वि िै यथोधचत रूप से ननयंत्रत्रत कम,ि 'ननयतंकम,ि अथात्ि्
वि कम िजो शास्त्र के द्वारा, समुधचत ज्ञान, समुधचत कम,ि समुधचत जीवनयापन की ववद्या एवं कला के द्वारा या मूल स्वभाव के द्वारा ननयंत्रत्रत िो, 'स्वभावननयतं कम'ि, अथवा अंततः और सबसे श्ेष्ठ रूप में वि कम िजो मिारे अन्दर और ऊपर अवजस्थत भगवान् के संकल्प के द्वारा ननयंत्रत्रत िो। इनमें से अजन्तम िो मुकत पुरुष का वास्तववक तथा एकमात्र कम िै, मुकतस्य कमी इन कमों का पररमयाग करना एक उधचत वृवि निीं िै... इस अज्ञानपूण िववश्वास के साथ कमों का मयाग कर देना कक सच्ची मुजकत पानेके भलए ऐसा पररमयाग पयािप्त िै, एक
तामभसक मयाग िै। िम देखते िैं कक कमों के मयाग में भी गुण उसी प्रकार िमारा पीछा करते िैं जजस प्रकार कक
कमि–प्रवृत्ति में। अकम िमें आसजकत रखते िुए 'संग' ... कमों का मयाग िै, वि भी उसी प्रकार एक तामभसक मयाग िोगा।
सात्त्विककम िोते वे िैं जो सिज स्वभाव से भगवान् के प्रीमयथ िककए जाते िैं, जजन्िें कोई मुकतस्य कम िकिा जाता िै और जो मनुष्य की चेतना को परमाममा की चेतना की ओर ले जाते िैं और उसके साथ जोड़ देते िैं।

प्रश्न : ननयत कमों का कया अथ िै?

उत्तर : ननयत कम िवे कम िैं जो व्यजकत की श्रद्धा के द्वारा तय ककये गए लक्ष्य के अनुरूप ननयत िोते िैं। उदािरण के भलए, जब श्रद्धा के द्वारा व्यजकत एक गुरु अपनाता िै तो उसके ननयत कम िैं गुरु की सेवा और उनकी आज्ञापालन। इन कमों का भशष्य पररमयाग निीं कर सकता। गुरु के प्रीमयथ िकम िकरना िी अब उसका धम ि बन जाता िै और विी उसके भलए ननयत कम िै। इसमें भशष्य के भलए यज्ञ, तप और दान के अनतररकत अन्य कोई कम ितो रिते िी निीं। भशष्य अपनी सभी ऊजाओं और बहिगामिी इंहरयों को संयभमत करनेका तप करता िै, उन्िें गुरु सेवा में ननयोजजत करने का दान करता िै और कमों को गुरु की प्रसन्नता के ननभमि करने का यज्ञ करता िै। इस प्रकार साधक के संपूण िजीवन को सारी कियाएँ यज्ञ, तप और दानस्वरूप िोती िैं। सामान्य जीवन में भी विी व्यजकत सफल िोता िै जो अपनेलक्ष्य के प्रनत अपनी ऊजाओं को एकत्रत्रत करके उसमें ननयोजजत करता िै।

जजतना िी वि अपनेलक्ष्य के प्रनत एकननष्ठ रिता ि ै उतनी िी शीघ्र और अधधक सफलता उसे प्राप्त िोती ि ै। विीं, जो उसमें व्यय िोने वाले श्रम, ऊजाि, साधन आहद से सकुचाता ि ै या उसमें प्रमाद करता ि ै वि कभी भी समुधचत रूप से लक्ष्य की प्राजप्त निीं कर सकता। अतः श्रद्धा से जब लक्ष्य ननधािररत िो जाता ि ै तब उसी के अनुरूप कम िभी ननयत िोतेिैं और उन्िें करना तामभसक वृवि या तामभसक मयाग ि ै।

दःुखभमत्येव यत्कमि ्कायक्लेशभयात्त्यजेत ्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत ्।। ८॥

८. जो कमों का पररत्याग इससलए करता है क्योंकक िे दःुख के कारक हैं अथिा कायाक्लेश के भय से पररत्याग करता है िह राजससक त्याग करता है और इस प्रकार राजससक त्याग करने के कारण त्याग के िल को नहीं प्राप्त करता।

यि बौद्धधक ननराशावाद अथवा प्राणणक कलाजन्त का पररणाम ि;ै इसका मूक आधार अिंकार में ि ै। ऐसे मयाग से कोई मुजकत निीं प्राप्त िो सकती जो इस स्व-केंहरत या अिंमूलक भाव से शाभसत िो।

प्रश्न : कया राजा भतृिरर के मयाग को राजभसक मयाग किा जाएगा?

उत्तर : भतृिरर के मयाग में ननराशा या कफर जीवन के प्रनत ववरजकत का भाव अवश्य था परंतु वे अपने राजकाय िमें आवश्यक श्रम से ननवृि िोने के भलए मयाग निीं कर रिे थे। राजकाय िका ननवाि तो वे बिुत िी सिजता से कर रिे थे। परन्तु जब उन्िोंने देखा कक जजसकी प्रसन्नता िेतु ननभमि वे अपने काय िकर रिे ि ैं वि उस योग्य निीं ि ै तब उनके अंदर वैराग्य उमपन्न िुआ।

एक सच्चे दृजष्टकोण से देखा जाए तो मयाग और वैराग्य आहद शब्द तो संसार जजस प्रकार का ि ै उसके प्रनत िमारी अनतशय आसजकत को िी दशातेि ैं। जब व्यजकत को अपने बािरी स्वरूप में यि संसार बिुत िी मित्त्वपूण िलगता ि ै तभी वैराग्य या मयाग जैसी भावनाएँ आती ि ैं। अन्यथा यहद व्यजकत को गिरे ववषयों में, अपनी आंतररक सिा में आनन्द की अनुभूनत िो रिी िो तब ऐसे में तो मयाग आहद की कोई भावना आ िी निीं सकती। ककसी पमथर के बदले यहद ककसी को बिुमूल्य मणण की प्राजप्त िो रिी िो तब इसमें ककसी प्रकार के मयाग का तो कोई प्रश्न िी निीं ि ै। एक सच्ची चेतना में रिने पर तो व्यजकत को उिरोिर प्रगनत के साथ अधधकाधधक आनंद की प्राजप्त िोती ि ै। सच किें तो उस चेतना में रिने वाले व्यजकत को तो वे लोग मयागी या दररर प्रतीत िोते िैं जो आममा की ननधधयों को छोड़कर क्षणभंगुर चीजों के पीछे ननरथकि िी भटकते रिते ि ैं और थोड़े से लाभ के भलए जीवन भर भारी मूल्य चुकाते रिते ि ैं। ज्यों-ज्यों आध्याजममक माग िमें व्यजकत आगे बढ़ता ि ै मयों िी मयों भगवान ्उस पर अधधकाधधक अपनी शजकतयों का, अपनी कृपा, चेतना, ज्ञान आहद ननधधयों का वषणि करते ि ैं और व्यजकत इस पाधथवि सीभमतता से मुकत िो व्यापकता में ननवास करनेलगता ि ै। तो ऐसे में ककसी प्रकार के मयाग की किाँसंभावना ि ै। इसी कारण आध्याजममक पथ के एक साधक को िम भगवान ्के प्रनत गिरी कृतज्ञता

के भाव से भरा िुआ पाते िैं कयोंकक उसे अनुभव िोता िै कक भगवान् ्उसे जब-जिााँऔर जजस चीज की आवश्यकता िोती िै वि स्वयमेव िी प्रदान कर देते िैं और िर चीज में उनकी कृपा के अनतररकत और कुछ िै िी निीं। व्यजकत ऐसी उच्च चेतना और जस्थनत में पिुंच जाता िै जिााँएक व्यापक दृजष्ट से वि चीजों को देख और ववचार सकता िै। जिााँपिले वि छोटी-छोटी कामनाओंसे सारे हदन प्रताड़ित रिता था, अज्ञान के अंधकार से पीड़ित रिता था, क्षुर चेतना में सीभमत िो यंत्रणा से गुजर रिा िोता था विींजब वि चेतना में आरोिण करता िै तब भगवान् ्उसे इन सभी चीजों से मुकत कर देते िैं और अपनेआनंद से सराबोर कर देते िैं। ऐसे में कृतकृमय िोने के अनतररकत तो अन्य कोई भाव रिता िी निीं। इसीभलए यहद वास्तव में व्यजकत माग िपर िै तो कभी उसे मयाग का अनुभव निींिो सकता। जजन्िे अभी उस अवस्था का अनुभव निीं ंिै और जो अभी भी उन्िींभोगों में क्षुर ऐंहरयक सुखों को लूटने का प्रयास कर रिे िैं उन्िें संभवतः एक साधक मयागी प्रतीत िो सकता िै परंतु यहद स्वयं साधक को यि मयाग प्रतीत िोता िै तो यि उसके पथ पर न िोने ेकी एक अचूक ननशानी िै।

कायुसुमत्यिे यत्कमु ुननयतं ंकक्रयतेऽजुनुज ।
सङ्गंत्यक्त्िा िलंचिै स त्यागः सास्त्त्किो मतः ॥ ९॥

९. हे अजुजनु! जब व्यस्क्त कतुवुयंकमु ुके भिा से, कमु ुके प्रनत और कमिुल में आसस्क्त का पररत्याग करके ननयत कमु ुकरता है, उस त्याग को सास्त्त्वक माना जाता है।

न द्वेष्ट्यकजशलं कमु ुकजशले नानषजज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेिावी नछन्नसंशयः ।। १० ।।

१०. सत्त्वगणज से पूणु ुरूप से संपन्न और संशयरदहत बद्जधिमान् ्त्यागी का अवप्रय कमु ुके प्रनत कोई द्वेष नहीं होता और वप्रय या रुधचकर कमु ुके प्रनत कोई आसस्क्त नहींहोती।

ककसी वप्रय, कामय, लाभजनक या सौभाग्यप्रद कम िके प्रनत अवश्य िी कोई आसजकत निीं ंिोनी चाहिए और उस कम िको इसभलए निींकरना चाहिए कयोंकक उसका ऐसा (अनुकूल, रुधचकर) स्वभाव िै; ककन्तुइस प्रकार का कम िभी तब करना िी िोगा, - पूण िरूप से, ननःस्वाथ िभाव से तथा आममा की सिमनत के सहित करना िोगा, - जब वि ऐसा कतव्यिं कम िो जजसे करने की मागँ िमारे ऊपर तथा अन्दर से की जाती िो। ककसी अवप्रय, अकामय या अतृजृप्तकर कम िके प्रनत या जो कम िअपनेसाथ दुःख, ववपदा, ववषम अवस्थाएँ एवं अननष्ट पररणाम लाता िै या ला सकता िै उसके प्रनत कोई घृणा निींिोनी चाहिए; कयोंकक वि भी जब एक कतव्यिं कम िो, तब उसे भी पूण ि रूप से, ननःस्वाथ िभाव से तथा उसकी आवश्यकता एवं ंप्रयोजन को गिराई के साथ समझतेिुए अंगीकार करना िोगा। ज्ञानी मनुष्य काम-पुरुष की जुगुप्साओं ंतथा दुववुधाओंतथा उस साधारण मानवीय बुद्धध के संशयों को दूरू िटा देता िै जो क्षुर व्यजकतगत, रूढ़ या कफर सीभमत मानदंडों के द्वारा आकाँती िै।

न दह देहित्ा शक्यं ंत्यक्तं जकमुाण्यशेषेतः ।

यमत जकमिुलत्यागी स त्यागीत्यसभिीयते ।। ११ ।।

११ . का पूणुतुया पररत्याग करना संभि ही है; ननश्चय ही जो कमिुल का त्याग करता है उसे ही त्यागी कहा जाता है।

मयाग का, सच्चे मयाग, सच्चे संन्यास का मूल अथ िकोई कममियाग या ननजष्यिता का ननदेश निीं ंिै, अवपतु वि िै ननष्काम आममा, ननःस्वाथ िमन, तथा अिंभाव से िट कर मुकत ननव्यजिकतक एवं आध्याजममक प्रकृनत में अवजस्थत िोने ेका ववधान। आंतररक मयाग का यि भाव िी साजत्त्वक साधना की उच्चतम पररणनत की सवप्रिथम मानभसक जस्थनत िै।

अननष्टसमष्टं समश्रं च त्रविंिकमुणुः िलम् ्।
भित्यत्याधगनां प्रेत्य न त जसंन्याससनां क्िचत् ्।। १२ ।।

१२. कमु ुका त्रविवि िल होता है, वप्रय, अवप्रय और समश्र, जो उन लोगों के सलए मृत्ुयज के बाद भी बना रहता है स्जन्होंनेत्याग नहीं ंककया है; यह कमिुल उनके सलए कभी नहीं ंबना रहता स्जन्होंने त्याग कर ददया है।

पञ्चैतानन महाबाहो कारणानन ननबोि मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानन ससद्ियेि सिकुमुणुाम् ्।। १३।।

१३. हे महाबाहो ! सममत कमों के संससद्िहोनेके सलये सांख्य ससद्ान्ति में कहे गये इन पाचूँ कारणों को मझुसे जान।

अधिष्ठानंतथा कतुा करणं च पृथग्िस्िनम् ्।
विविविाश्च पृथक्चेष्टा दिैं चैात्र पञ्चमम् ्।। १४।।

१४. ये हैं आिार, कत्तुा, विसभन्न करण, अनेक प्रकार की चेष्टाएँ, और पाचूँिा, दिै, भानय।

आधार, कतिा, ववभभन्न करण, चेष्टाएँ, और दैव इन सब को कम िका ननभमि कारण किा गया िै कयोंकक वास्तव में कम िकेवल माँजगदमबा ननरम िी ननधारिरत िोतीिं। प्रमयेक कम िके पीछे एकमात्र वे िी कत्री िै। भगवान् ्श्रीकृष्ण ने भी अजुनि को ग्यारिवें अध्याय में किा कक 'ननभमरी िैं। भव सव्यसाधचन्' ्। िमारा कतिा का भाव, िमारी चेष्ेटाएँ आहद सब केवल ननभमि िैं। यि ननभमि मात्र िोने ेका भाव भी केवल मानभसक चेतना ये िी मिसूस िोता िै, पशुओं को इसका कोई भान निीं िोता। िमारी मानभसक चेतना का गठन इस प्रकार का िै कक िमें कतापिन का बोध िोता िै। अतः उपयुकित पाचाँ तत्त्व केवल ननभमि का िी गठन करते िैं न कक पररणाम का। पररणाम तो माँजगदमबा के द्वारा िी ननधारिरत िोता िै।

प्रश्न : अधधष्ठान, कतिा, करण, चेष्टा, और दैव, इन पाचाँ को िम ककस रूप में समझ सकतिें?

उत्तर : पिला ि ै अधधष्ठान अथात् ि् मानव दिे, प्राण और मन का ढाचाँा जो कक सभी का भभन्न-भभन्न ि ै। यहद ककन्ीिं जुिवा ाँबच्चों की दिे एक जैसी भी ि ो तो भी उनका मन, प्राण का ढाचाँा सवथिा भभन्न-भभन्न ि ोता ि ै जजसके कारण एक ि ी प्रकार की किया भी दोनों भभन्न-भभन्न रूप से करेंगे। दूसरा ि ै कतिा अथात् ि ् यि भान कक व्यजकत कम ि कर रिा ि ै। कतापिन के भाव के भी अनेक स्तर ि ैं। मनुष्य का अिं जजतना ि ी स्थूल ि ोगा उतना ि ी अधधक दु:ख-ददि और पररश्रम उसे काय ि में मिसूस ि ोगा। वीिंयहद अिं स्थूल न रिकर सूक्ष्म ि ो गया ि ै, तो काय ि का स्वरूप भी तब उतना स्थूल रूप से अभिममक नीिंरिेगा। यि किापिन का भाव भी एक मनोवैज्ञाननक चीज ि ै। तीसरा ि ै, उपकरण अथिात् ् वे ववभभन्न करण या साधन – जैसे कक बुद्धध, संकल्प, अध्यवसाय आहद मनोवैज्ञाननक शजकतयााँ - जजनकी सियता से कम ि ककया जाता ि ै। इसके बाद चौथा तत्त्व ि ै चेष्टा अथिात् संकल्प की प्रगाढ़ता। यि एक सामान्य तथ्य ि ै कक व्यजकत को ककसी काय ि की भली-भानाँत समझ ि ो और उसके ववषय में सारी जानकारी भी ि ो, परंतु यहद चेष्टा ि ी न ि ो तो वि काय ि साधधत निीं ंि ोता। और अंनतम तत्त्व ि ै दैव अथात् ि् वे सभी शजकतयााँ जो मनुष्य के सीववत सामथ्य ि के वश में निीं ि ैं। यहद मनुष्य उन शजकतयों के संपकि में आकर उन्ें अपनेजीवन में सकिय कर सके तो इनकी सियता से अप्रमयाभशत काय ि कर सकता ि ै। त्रबना ि मारे इनके ववषय में सचेतन ि ुए भी इनका कयोंकक आणखर इन उच्चतर शजकतयों के ि स्तक्षेप के द्वारा मााँजगदमबा अमारे भीतर परमाममा का संकल्प साधधत करती ि ैं। इस प्रकार ये सारे ि ात भमला कर ननभमि बनतेिैं। और वास्तव में संभसद्ध वि ी ि ोता ि ै जो भगवान् ् द्वारा ननयत ि ोता ि ै। ये पाचाँों ि ी तत्त्व मनोवैज्ञाननक ि ैं। गीता में भगवान् ् इनका अब ववस्तार से वणनि करेंगे।

---

*ये पाचाँ इस प्रकार ि ैं, पिला 'अधधष्ठान', अथात् ि् दिे, प्राण और मन का ढाचाँा जो प्रकृनत के अन्दर जीव का आधार या अवलमबनभूम ि ै, उसके बाद ि ै 'कतिा', तीसरा ि ै 'करण', अथिात् प्रकृनत के ववववध उपकरण, चौथा ि ै 'चेष्टा:', अथात् ि् ववभभन्न प्रकार के प्रयमन जो कमि–शजकत का गठन करतेिैं, और अंनतम ि ै 'दैवम्' ् या दैव, अथात् ि् मानवीय कतृमिव से, प्रकृनत की गोचर कमि–पद्धनत से भभन्न शजकत या शजकतयों का प्रभाव, वे शजकतयााँ इनके पीछे रिकर कम ि को संशीधधत करती ि ैं तथा कम ि और कमफिल के ननयमानुसार फल का ववधान करती ि ैं। इन पाचाँ तत्त्वों के परस्पर-संयोगों से ि ी कम ि के सब ननभमि-कारण गहठत ि ोते ि ैं; इस प्रकार, मनुष्य अपने मन, शरीर और वाणी से जो कोई भी कम ि करता ि ै उसका रूप-स्वरूप और पररणाम इन्ीं के द्वारा ननधाररित ि ोते ि ैं।

शरीरिाङ्मनोसभयुतुकमु ्प्रारभते नरः ।
न्याय्यं ि ा विपरीतं ि ा पञ्चैते तमय हेतिः ।। १५।।

१५. शरीर, ि ाणी और मन के द्िारा मनष्जय उधचत अथिा अनधजचत जो भी कमु ्प्रारम्भ करता है उसके ये पाचूँ ननसमत्त कारण होतेहैं।

तत्रैंसनत कतुारमात्मानं किलं त जयः ।

पश्यत्यकृतबद्जधित्न्नि स पश्यनत दमुजनुतः ।। १६।।

१६. परंतज िमतजस्मथनत ऐसी होनेपर भी जो मनष्जय अज्ञानमय बद्जधि होनेके कारण किल अपने-आप को (अपने व्यस्क्तगत अहं को) ही कतुा जानता है िह दमुजनुत (विकृत बद्जधि िाला) मनष्जय यथाथु ुनहींदेखता।

यमय नाहंकृतो भािो बद्जधियुमुय न सलप्यते।

हत्ाविप स इमालूँलोकान्न हस्न्त न ननबध्यते ।। १७।।

१७. जो मियं कतुा होने ेके अहंभाि से मक्जत है, स्जसकी बद्जधि (कमिुल में) असलप्त है, िह इन सब मनष्जयों को मारकर भी नहींमारता और न कमु ुसे बद्िहोता है।

जब िम अिं से मुकत िो जाते िैं तब िमारी पीछे अवजस्थत सच्ची आममा, ननव्यजिकतक और ववश्वगत आममा सामने आ जाती िै, और ववश्वाममा के साथ अपने एकमव की आमम-दृजष्ट में वि ववश्व-प्रकृनत को कम िकी कती के रूप में और उसके पीछे अवजस्थत भगवमसंकल्प को ववश्व-प्रकृनत के स्वामी के रूप में देखती िै। जब तक मिें यि ज्ञान निीं ंप्राप्त िोता केवल तभी तक िम अिं के ऐसे स्वरूप से और कत्रतापन के उसके संकल्प से बंधे िोते िैं और शुभाशुभु कम िकरते तथा अपनी तामभसक, राजभसक या साजत्त्वक प्रकृनत की तुजष्ट प्राप्त करते िैं। परन्तु एक बार जब िम इस उिर ज्ञान में वास करने ेलगते िैं तब कम िके स्वरूप और उसके फल या पररणाम से आममा के स्वातंत्र्य में कोई अन्तर निींपड़ सकता। बिर से वि कम िकुरुक्षेत्र के इस मिान् ्युद्ध और संिार जैसा घोर कम िो सकता िै; परन्तु मुकत पुरुष उस संघष िमें भाग भले िी लेता िै और इन सब प्रजाओंका भले िी वध भी करता िै, कफर भी वि ककसी का वध निीं करता और अपनेकम िसे बद्ध निींिोता, कयोंकक वि कम ि सवलिोकमिेश्वर का िोता िै और उन्िोंने अपनेगुप्त सवशिककीता, संकल्प में पिले से िी इन सब सेनाओं का वध कर रखा िोता िै... मुरा पुरुष ववश्वाममा से एकामम िो जीवंत यंत्र की भानाँत अपनेननयुकत काय िको संपन्न करता िै... उसे इस बात का ज्ञान िोता िै कक पराशजकत िी उसके संपन्नग्राण-शरीररूपी आधार, 'अधधष्ठान', के अन्दर एकमात्र कती के रूप में दैव-ननयत कमों को संपन्न कर रिी िै, और वि दैव वास्तव में दैव, कोई यांत्रत्रक कम–ववधान निीं अवपतु एक ज्ञानमय सवदिशी संकल्प िै जो मानव-कम िके पीछे कियारत िै.....

इस प्रकार यि स्पष्ट िै कक कम िी एकमात्र मित्त्वपूण िवस्तुनिीं ंिै; जजस ज्ञान के आधार पर िम कम ि करते िैं उसके कारण आध्याजममक दृजष्ट से अमयधधक अन्तर आ जाता िै। गीता किती िै कक तीन चीजें िैं जो कमाँ की मानभसक प्ेरेरणा का गठन करती िैं...

ज्ञानंज्ञेयं पररज्ञाता त्रत्रविा कमुचुोदना ।

करणं कमु ुकतेनत त्रत्रविः कमुसुंग्रहः ।। १८ ।।

१८. ज्ञान, ज्ञेय विषय और ज्ञाता, ये तीन कमु ुमें प्रितृ्त करनेिाले तत्त्ि हैं: कतु्ा, उपकरण, और ककया जानेिाला कमु, ु ये तीनों कमु ुको एक साथ संगृहीत करते हैं (और उसे संभि बनाते हैं)।

साजत्त्वक मन, जो सदैव उधचत समस्वरता और उधचत ज्ञान की खोज करता िै, साजत्त्वक मनुष्य का प्रधान उपकरण या साधन िोता िै और शेषे सारे यंत्र को चलाता िै। कामना-पुरुष के द्वारा समथनि-प्राप्त अिंमय काम-संकल्प राजभसक कमी का प्रधान करण िोता िै। भौनतक मन और स्थूल प्राणणक प्रकृनत की अज्ञ सिजवृवृ या अनालोककत प्रवृवृ तामभसक कमी की मुख्य करण-शजकत िै। मुकत व्यजकत का साधन िोती िै एक िीमिर आध्याजममक ज्योनत और शजकत जो उच्चतम साजत्त्वक बुद्धध से किीं अधधक उच्चतर िै, और वि उसके अन्दर पराभौनतक केंर से एक पररव्याप्त करनेवाले अवतरण के द्वारा काय िकरती िै तथा पववत्रीकृत और ग्रिणशील मन, प्राण और शरीर को अपनी शजकत की ननमलि वाहिका के रूप में प्रयोग करती िै।

ज्ञानंकमु ुच कतु्ा च त्रिधैि गणभेदतः ।
प्रोच्यते गणसंख्याने ेयथािच्छृण जतान्यवप ।। १९।।

१९. सांख्य कहता है कक ज्ञान, कमु ुऔर कत्ता गणज-भेद के अनसजार तीन प्रकार के होते हैं; उन्हें भी तू यथाित् ्सनज।

सिुभूतेष जयेनैकं भािमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेष जतज्ज्ञानं ंविद्धि सात्त्त्किम् ्।। २० ।।
२०. स्जस ज्ञान के द्िारा (मनष्जय) सममत भूतों में एक अविनाशी सत् ्को, सममत विभक्त पदाथों में एकतम अविभक्त को, देखता है, उस ज्ञान को तू सात्त्त्िक जान।

साजत्त्वक ज्ञान.... अजस्तमव को इन सब ववभाजनों के अन्दर एक िी अववभाज्य समग्र, सभी भूतभावों के अन्दर एक िी अववनाशी सिा के रूप में देखता िै: यि उसके कम िके ववधान को तथा सिा के समग्र उद्देश्य के साथ ककसी ववभशष्ट कम िके समबन्ध को अधधकृत करता िै; यि संपूण िप्रकिया के प्रमयेक िम, प्रमयेक चरण को उसके समुधचत स्थान में सुव्यवजस्थत करता िै। ज्ञान के सवोच्च भशखर पर यि दृजष्ट जगत् ्में, इन सब अनेकानेक भूतों में अवजस्थत एक आममा का, सब कमों के एक िी स्वामी का ज्ञान बन जाती िै, यि ज्ञान बन जाती िै कक ववश्व की शजकतयाँभगवान् ्की िी अभभव्यजकतयाँ िैं और स्वयंकम िभी मनुष्य, उसके जीवन एवं मूल स्वभाव में िोनेवाली उनके परम संकल्प और ज्ञान की कियाएँ िैं। व्यजकतगत संकल्प पूण िरूप से सचेतन, ज्ञानदीप्त, आध्याजममक रूप से प्रबुद्ध िो जाता िै, और वि एकमेव में ननवास करने ेतथा कम िकरनेऔर उनके परम आदेश की उिरोिर पूणतिा के साथ अनुपालना करने लगता िै, मानव-रूप में उनकी ज्योनत और शजकत का एक अधधकाधधक ननदोष यंत्र बनता जाता िै। साजत्त्वक ज्ञान की इस पराकाष्ठा के द्वारा िी परमोच्च मुकत कम ि की जस्थनत आती िै।

पृथक्त्िेन तु यज्ज्ञानं नानाभािान्पृथग्विधान् ्।

वित्त सिंष जभूतेष जतज्ज्ञानंविद्धि राजसम् ्।। २१ ।।

२१. जो ज्ञान विविि प्रकार के पदार्थों को किल पृथक्-पृथक् ही देखता है और सममत भूतों में किल पृथक् पृथक् व्यापारों को देखता है उस ज्ञान को तू राजससक जान।

यत्त जकृत्मनिदेकस्ममन्काये सक्तमहैतकजम् ्।
अतत्त्ाथिुदल्पं च तत्तामसमदजाहृतम् ्।। २२।।

२२. जबकक, जो (ज्ञान) क्षद्रज है और ककसी एक काय ुको त्वना ककसी कारण के, त्वना तत्त्तिः उसका अथ ुजानेही ऐसे पक़ि लेता है मानो िही समय या सब कजछ हो, उसे तामससक कहा गया है।

----

* यि जानना ज्ञान के, प्रायः ववश्रृंखल ज्ञान के कुछ ऐसेखंाि का अस्तव्यस्त भमश्रण िोता ि जजनर्मेंिन िमारे अद्धि-ज्ञान और अद्धि-अज्ञान के संभ्रम में से ककसी प्रकार का रास्ता बनाने के भलए बलपूवकि संयुंकत ककये िोता ि। या कफर यि एक चंचल राजभसक बुिववध किया िोती ि जजसमें न तो कोई जस्थर ननयामक उच्चतर आदश ििोता ि और न िी ज्योनत और शजकत का कोई वववेकी ववधान िोता ि।

तामभसक मन वास्तववक काय–कारण की खोज नििंकरता, अवपतु अपने-आप को ककसी एक किया में या कायपिररपाटी में िठपूण िआसजकत के साथ तल्लीन कर देता ि, व्यजकतगत कम िका जो छोटा-सा भाग उसकी आखाँ के सामनिेोता ि उसे छोि़कर वि और कुछ भी निीं ंदेख सकता और वास्तव में वि यि भी निीं ंजानता कक वि कया कर रि ि, बजल्क अंधे की तरि प्रकृनतगत प्रवृवि को उसके कम िके द्वारा काय िकरने ेदेता ि जजसके
पररणामों के समबन्ध में उसे न कोई कल्पना, न पूवदृिजष्ट या व्यापक समझ िो िोती ि।....
इसी प्रकार, तीन और चीजें िं - िकिा, करण (साधन) और कम ि- जो भमलकर ककसी कम िको संगहठत करती िं तथा उसे समभव बनाती िं। यिा ंभी गुणों का भेद िी इन तत्त्वों में से प्रमयेक का स्वरूप ननधारिरत करता ि।

ननयतं ंसङ्गरदहतमरागद्र्षितः कृतम् ्।
अिलपेर्प्सनजा कम ुयत्तत्सास्त्त्किमच्जयते।। २३।।

२३. जो कम ुिल की इच्छा न रखनिेाले व्यस्क्त के द्ारा यथित् ्ननयंत्रत, आसस्क्त रदहत, राग एि ंद्र्षि के त्वना ककया जाता है िह सास्त्त्कि कहा जाता है।

साजत्त्वक कम िवि ि जजसे मनुष्य बुद्धध और ज्ञान के ननमलि प्रकाश में तथा उधचत कम िअथवा कतव्ययि अथवा ककसी आदश िद्वारा अपेक्षक्षत कम िके ननवैयैजकतक भाव से शांतधचिता के साथ समपन्न करता ि, जजसे

ऐसे कम िके रूप में ककया जाता ि ै कक वि करनेयोग्य ि ै भले ि ी उस कम िका उसे इस लोक में या ककसी अन्य लोक में कैसा भी फल प्राप्त ि ो, ऐसा कम िजो त्रबना आसजकत के, कम िकी उमसिी या उबाऊ प्रकृनत के प्रनत कोई रुधच या अरुधच न रखते ि ुए, केवल अपनी ववचारशजकत और यथोधचतता के बोध की संतुजष्ट के भलए तथा सुबोध बुद्धध, प्रबुद्ध संकल्प, शुद्ध ननःस्वाथ िमन तथा उच्च तृतृ आममा की संतुजष्ट के भलए ककया जाता ि ै। सत्त्व की चरम पररणनत की सोमा पर यि रूपांतररत ि ोकर एक उच्चतम ननवैयजकतक कम िबन जाएगा जो पिले की तरि बुद्धध के द्वारा निीं ंअवपतु ि मारी अंतःस्थ आममा के द्वारा आहदष्ट ि ोगा, एक ऐसा कम िजो प्रकृनत के परमोच्च धम िके द्वारा पररचाभलत ि ोगा, ननमन अि ं और उसके ि ल्के या भारी बोझ से मुकत ि ोगा, यि ा ँतक कक सवोिम अभभमत, उमकृष्टतम कामना, शुद्धतम व्यजकतगत संकल्प या उच्चतम मानभसक आदश िके सीमाबंधनों से भी ववमुकत ि ोगा। विा ँ इनमें से कोई भी रुकावटें निीं रिेंगी; इनके स्थान पर प्रनतजष्ठत ि ोगा एक सुबोध आध्याजममक आमम-ज्ञान और प्रकाश, कम िकरनेवाली अमोघ शजकत का तथा जगत् ्के भलए और जगदीश्वर के भलए ककये जानेयोग्य कम िका एक अचूक अंतरंग बोध।

यत्त जकामेप्सनजा कमु ्साहङ्कारेण ि ा पनजः ।

कक्रयते ्बहजलायासं तद्राजसमदजाहृतम् ्।। २४।।

२४. ककंतजकामना की तस्जष्ट के सलए, अथिा अहंभिा से और बहजत अधिक (अननयसमत) पररश्रम से ककया गया कमु ् राजससक कहा गया है।

अनबजन्् क्षियं दहंसांमनिेक्ष्य च पौरुषम् ्।

मोहादारभ्यते कमु ्यत्तत्तामसमच्जयते।। २५॥

२५. जो कमु ्त्बना अपनी सामथ्यु ्का विचार ककये, त्बना उसके पररणामों, उससे होने ि ाली हानन अथिा (दूसरों को होने ि ाली) क्षनत को ध्यान में रखे मोह के ि शीभूत होकर आरंभ ककया जाता है, उसे तामससक कहा जाता है।

तामभसक कम िवि ि ै जो सिज-वृवियों, आवेगों और दृजष्टिीन ववचारों की यंत्रवत् ्पालना करते ि ुए, भ्रभमत, मूढ़ या ववमोहित और अज्ञानी मन के साथ ककया जाता ि ै, और यि सब ककया जाता ि ै शजकत या सामथ्य ि को ध्यान में रखे त्रबना, अथवा अंधे रूप से दुष्प्रयुकत प्रयमन की क्षनत एवंिानि का, अथवा आवेग, प्रयास या पररश्रम के पूववविी कारण और पररणाम तथा उधचत अवस्थाओं का कुछ भी ववचार ककये त्रबना।

मक्जतसङ्गोऽनहंवादी घृत्यत्जसाहसमस्न्तिः ।

ससद्यिससद्योनुनविुकारः कतुा सास्त्त्कि उच्यते।। २६।।

२६. जो आसस्क्त से रदहत, अहंभिा से रदहत, दृढ़-ननश्चयता और उत्साह से यक्जत, सिलता और असिलता से अप्रभावित रहता है, ि ह कतुा सास्त्त्कि कहा जाता है।

साजत्त्वक कतिा इस सब आसजकत, इस अिभाव, इस उग्र बल या आवेशाममक दुबुलिता से मुकत िोता िै; उसका ऐसा मन एवं ऐसी इच्छाशजकत िोती िै जो सफलता से फूल निीं जाती, ववफलता से णखन्न निीं िोती, जो कम िकरना िोता िै उसमें वि दृढ़ ननवैयजकतक संकल्प, शान्त शुद्ुध उमा गो उच्च, शुद्ुध, ननःस्वाथ िउमसािा से पूण िििोती िै। सत्त्व की पराकाष्ठा पर और उसके परे यि संकल्प, उमंग और उमसािा आध्याजमममक तपस् ्की सिज ककया बन जाते िैं और अन्त में तो ये एक उच्चतम आममबल, प्रमयक्ष भगवत्–्रीका, मानव-यंत्र में हदव्य शजकत की बलशाली और दृढ़-जस्थर गनत, रष्ट संकल्प एवं ववज्ञानमय मनीषा के स्वयं सुननजश्चत पग और इसके साथ िी मुकत प्रकृनत के कमों में स्वतंत्र आममा का ववशाल आनंद बन जाते िैं।

रागी कमिुलप्रेप्सलजब्जो दहंसांत्मकोऽशधजचः ।
हषुशुोकास्न्तिः कतुा राजसः पररकीनततुः ।। २७।।

२७. जो अिौशी है, व्याकजलता के साथ कमिुल की असभलाषा करता है, लोभी, दहंसांत्मक, अपवित्र है, और हषु ु और शोक से चासलत होता है, ऐसे कतुा को राजससक कहा गया है।

दूसूरी ओर, राजभसक िकिा वि िोता िै जो कम िमें आतुरतापूवकि आसकत रिता िै, उसे जल्दी से समाप्त करने ेपर तुला िोता िै, फल, पुरस्कार और पररणाम के भलए तीव्र रूप से उमकंहठत रिता िै, हृदय से लोभी और मन से अपववत्र िोता िै, जजन साधनों का वि प्रयोग करता िै उनमें वि प्रायः उग्र, िूर और पाशववक िोता िै; जब तक उसे अपनी वांनछत वस्तु की प्राजप्त िोती रिती िै, उसकी कामना-वासना की पूनत ितथा उसके अिं की मागोंं का समथनि िोता रिता िै तब तक वि इस बात की कुछ परवाि निीं करता कक वि ककसे िानन पिुँचाता िै या दूसूरों की ककतनी क्षनत करता िै। सफलता में वि िष िके मारे फूला निीं ंसमाता, ववफलता में वि बुरी तरि से व्यधथत और अिोत िोता िै।

अयक्जतः प्राकृतः मतब्ि शिठो नैष्कृनतकोऽलसः ।
विषादी दीघुसूत्री च कतुा तामस उच्यते ।। २८॥

२८. जो विसंगनतयों से भरा है, असशष्ट, ढीठ, िूतु,ु दूसूरों का बरजा चाहने िाला, विषादयक्जत, आलसी और कमु ुमें विलंब करने या उसे टालने िाला है, ऐसा कत्तुा तामससक कहा जाता है।

तामभसक िकिा वि िै जो अपने-आप को वास्तव में कम िमें निीं लगाता, अवपतु एक यांत्रत्रक मन से कम ि करता िै, अथवा साधारण जनता के अमयंत असंस्कृत ववचार का अनुसरण करता िै, सामान्य ढरे पर चलता रिता िै या अंघ भ्रांनत और पूवाग्रिि में अमयासकत िोता िै। वि मूढ़ता पर अिा रिता िै, अपनी गलती पर िठ करता िै और अपनेअज्ञानमय कम िपर मूखतिापूण िगव िअनुभव करता िै; उसके अन्दर संकीण िऔर कुहटल धूतति सच्ची बुद्धध का स्थान ले लेती िै; जजनसे उसे व्यविार करना िोता िै उनके प्रनत, ववशेषेकर अपनेसे अधधक बुद्धधमान् ्एवं श्रेष्ठ लोगों के प्रनत उसके अन्दर मूढ़ एवं ंधृष्टतापूण िघृणा िोती िै। ज़िातापूण िआलस्य, मंदता,

कम िमें ववलंब या टालनेको प्रवृवृ, भशधथलता, उमसािा या ननष्कपटता का अभाव उसके कम िके लक्षण िोतिं। तामभसक मनुष्य साधारणतः कम िकरने में मंद, अपनी गनत में ववलंबकारी, सिज िी णखन्न िोने ेवाला, और यहद कोई काय िउसके सामथ्य,ि प्रबमन या धैय िपर जोर िालता िै तो उसे शीघ्र िी छोड़ देने के भलए तैयार रिता िै।

बद्जिेभेदं िृतेश्चै गणतस्त्रविं शृणु ज।

प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन िनञ्जय ।। २९ ।।

२९. हे िनञ्जय! बद्जधि का और घृनत का गणजों के अनसजार त्रववि भेद भी पूणु ुरूप में तथा पृथक् पृथक् रूप में सनज।

सज्ञान संकल्प से युकत बुद्धध एक मानुषी संपदा िै और यि मनुष्य के अन्दर जजस रूप में या जजतनी मात्रा में िोती िै उसी के अनुसार उसमें काय िकरती िै और उसी के अनुसार िी यि मनुष्य के मन की भानाँत यथोधचत या ववकृत, तमाच्छाहदत या आलोकत, संकीण िऔर क्षुर या ववशाल एवं व्यापक िोती िै। उसकी प्रकृनत की मेधा-शजकत, 'बुद्धध' िी उसके भलए कम िका चुनाव करती िै अथवा बिुधा यि उसकी जहटल सिज-वृवियों, आवेगों, ववचारों और कामनाओंके अनेक सुझावों में से ककसी एक या दूसरे को स्वीकृनत प्रदान करती िै तथा उसका अनुमोदन करती िै। यिी उसके भलए उधचत या अनुधचत, कतव्यि या अकतव्यि, धम िया अधम िका ननणयि करती िै। और 'धृनत', अथात् िसंकल्प की दृढ़ता, मानभसक प्रकृनत की वि ननरंतर शजकत िै जो कम िको धारण करती तथा उसे संगनत और दृढ़ता प्रदान करती िै। यिा ाँभी त्रत्रगुण का प्रभाव देखने में आता िै।

प्रिवृत्तं ंच ननिवृत्तं ंच कायाकाये भयाभये ।

बन्िमोक्षं च या िेवत्त बद्जधिः सा पाथु ुसास्त्त्विकी ।। ३० ।।

३०. हे अजुजनु जो बद्जधि प्रिवृत्त (कमु ुकरने के ििवान को) और ननिवृत्त (कमु ुसे दूरू होने के ििवान को), करने योनय कमु ुको और न करनेयोनय कमु ुको, भय और अभय को, बंनि और मजस्क्त को तत्तिः जानती है, िह सास्त्त्विक होती है।

ववश्व की गनत को, प्रवृवृ (कमि-ववधान) और ननवृवृ (अकमि-ववधान) को, कतव्यि और अकतव्यि कम िको, जीव के भलए जो ननरापद िै और जो संकटप्रद िै उसे, जजस चीज से भय करने ेऔर पीछे िटनेकी आवश्यकता िै उसे और जजस चीज का संकल्प के द्वारा आभलंगंन करनेकी आवश्यकता िै उसे, जो वस्तु मनुष्य की आममा को बाधाँती िै और जो उसे बंधन से पुक करती िै उसे साजत्त्वक बुद्धध उसके उधचत स्थान, उधचत रूप और उधचत मान में देखती िै। अपनेप्रकाश की मात्रा के अनुसार और उच्चतम पुरुष एवं आममा की ओर अपनेऊध्वमुिख आरोिण में यि ववकास की जजस अवस्था तक पिुाँची िै उसके अनुसार यि अपने सचेतन संकल्प की दृढ़ता के द्वारा इन्िीं चीजों का अनुसरण या वजनि करती िै। अभीप्साशील बुद्धध जब साधारण तकिबुद्धध एवंमानभसक संकल्प से परे की वस्तुओं पर जस्थर रूप से एकाग्र िो जाती िै, भशखरों की ओर उन्मुख रिती िै, इजन्रयों और प्राण के जस्थर

ननयंत्रण, मनुष्य की उच्चतम आममा, ववश्वमय भगवान् ्एवं ववश्वातीत आमम-तत्त्व के साथ योगयुकत िोने ेमें प्रवृि रिती िै तब इसकी उस उच्च धृनृत के द्वारा साजत्त्वक बुद्धध की चरम पररणनत उपलब्ध िोती िै। सत्त्वगुण के द्वारा विााँ पिुाँचने पर िी मनुष्य गुणों को पार कर सकता िै, मन और उसकी संकल्प-शजकत एवंबुद्धध की सीमाओंके परे आरोिण कर सकता िै और स्वयंसत्त्व भी उस तत्त्व में ववलीन िो सकता िै जो गुणों के ऊपर तथा इस उपकरणीय प्रकृनत के परे िै। विााँजीव ज्योनत में सुप्रनतजष्ठत तथा आममा, अध्यामम-सिा एवं ंभगवान् ्के साथ दृढ़ एकमव-पद पर आसीन िो जाता िै। उस भशखर पर पिुाँच कर िम अपनेअंगों में हदव्य किया की मुकत स्वच्छंदता के साथ प्रकृनत को पररचाभलत करने ेका भार परम देव के ऊपर छोड़ सकते िैं: कयोंकक विााँ न तो कोई ऐसी दोषपूण िया भ्रांत किया िोती िै और न िी त्रुहट या असमथिता का कोई ऐसा तत्त्व िोता िै जो आममा की ज्योनतमयि पूणिता एवं शजकत को तमसाच्छन्न या ववकृत कर सके। इन सब ननमन अवस्थाओं, ननमन धमों का मि पर कोई अधधकार निीं ंरिता; अनंत भगवान् ्मुकत पुरुष के अन्दर कम िकरते िैं, विााँ मुकत आममा के अमर समय और धम िके अनतररकत और कोई धम िनिीं ंिोता, कोई कम ितथा ककसी प्रकार का बन्धन निीं ंिोता।

यया िमुमिुमं ंच कायं ंचाकायुमिुं च ।

अयथिात्प्रजानानत बद्जधिः सा पाथु ुराजसी ।। ३१।।

१९. हे पाथी स्जस बद्जधि के द्वारा मनष्जय िमु ुको और अिमु ुको तथा कतुवु्य को और अकतुवु्य को उधचत रूप में (ठीक-ठीक) नहींजानता िह बद्जधि राजससक होती है।

राजभसक बुद्धध जब भ्रांनत और अशुभ के भलए िी भ्रांनत और अशुभ का चुनाव जान-बूझ कर निींकरती तब वि धम िऔर अधम ितथा कतव्यि और अकतव्यि में ववभेद कर तो सकती िै, पर ऐसा वि सिी-सिी निींअवपतु उनके यथाथ िमानों को तोड़-मरोड़ कर तथा उनके मूल्यों को ननरन्तर ववकृत करके िी करती िै और इसका कारण यि िै कक इसके तकि और संकल्प अि के तकि और कामना के संकल्प िोतेिं और अिंता तथा कामना की ये शजकतयााँ अपनेअिमूलक उद्देश्य की भसद्धध के भलए समय और धम िको अयथावत् ्ननरूवपत करती िैं तथा उन्िें ववकृत कर देती िैं। जब िम अि और कामना से मुकत िोकर, केवल समय और उसके पररणामों से िी समबन्ध रखते िुए शान्त, शुद्ध, ननःस्वाथ िमन के द्वारा धीर-जस्थर भाव से वस्तुओंपर दृजष्टपात करते िैं केवल तभी िम उन्िें सिी रूप से तथा उनके यथाथ िमूल्यों सहित देखने की आशा कर सकतेिं। परन्तु राजभसक संकल्प-शजकत अपनेस्वाथ िएवंसुख का और जजसे वि धम िएवं न्याय समझती िै या समझना पसंद करती िै उसका अनुसरण करती िुई अपनी आसजकतपूण िआकांक्षाओं एवं कामनाओं की तृजप्त पर िी अपना ध्यान दृढ़तापूवकि लगाये रिती िै। इसकी प्रवृवि सदा इसी ओर िोती िै कक इन चीजों को ऐसा रूप दे दे जो इसकी अपनी कामनाओंकी सवाधिधक चापलूसी तथा समथनि करनेवाला िो और साथ िी, जो साधन इसे अपने कम िऔर प्रयमन का वांनछत फल प्राप्त करने ेमें सवोिम रूप से सिायता देते िों उन्िें यथाथ िया समुधचत ठिराए। मानवीय बुद्धध और संकल्प के संपूण ि असमय और अनाचार में से तीन-चौथाई का कारण यिी िै। प्राणणक अि पर प्रबल आधधपमय रखनेवाला रजस् ् मिान् ्पापी और सुननजश्चत कुमागदिशकि िै।

अिमु िुमुसुमनत या मन्यते तमसिृता ।
सिाथुास्न्पिरीतांश्ि बिद्जधिः सा पाथु ुतामसी ।। ३२।।
३२. हे पाथु।ु अंकिार से ढकी हजई जो बजद्धि अिमु ुको िमु ुसमझती है और सममत पदाथों को विपरीत या विकृत रूप में समझती है िह तामसी होती है।

तामभसक तकिबुद्धध एक भमथ्या, अज्ञानी और तमसाच्छन्न उपकरण िोती िै जो िमें सब चीजों को मंद और दोषपूण िप्रकाश में, कुधारणाओंके क्िासे में देखनेके भलए तथा वस्तुओंऔर व्यजकतयों के मित्त्व की मूखतिापूवकि उपेक्षा करने ेके भलए बाध्य कर देती िै। यि बुद्धध प्रकाश को अंधकार और अंधकार को प्रकाश किती िै, जो सच्चा धम िनिीं ंिै उसे ले लेती िै और उसे िी धम िके रूप में थामे रखती िै, जजस काय िको करना उधचत निीं उसमें रत रिती िै और िमारे सामने उसका एकमात्र करने ेयोग्य उधचत काय िके रूप में समथनि करती िै। इसका अज्ञान अपराजेय िै और इसकी धृनृत या संकल्पगत दृढ़ता अपनेअज्ञान की संतुजष्ट एवं ंउसके ज़ि अिकार को दृढ़ता से पक़िे ेरिने ेमें िी िै। यि सब तो इसकी अंध किया का पिलू िै; परंतु इसके साथ िी लगा रिता िै ज़िता और अशकतता का भारी दबाव, मंदता और ननरा में दृढ़ जस्थनत, मानभसक पररवतनि और उन्ननत के प्रनत अरुधच, जो भय, शोक और ववषाद िमारी प्रगनत को रोकते िैं अथवा िमें िीनता, दुबुलिता और कायरता से भरे मागों में िी फाँसाये रखते िैं उनके ववषय में मन की संलग्नता। तामभसक संकल्प और बुद्धध के लक्षण िैं - भीरुता, कातरता, छल-चातुरी, अलसता, अपनेभयों, भमथ्या संदेिों, सतकिताओं एवंकिव्यि-ववमुखताओंका और िमारी उच्चतर प्रकृनत की पुकार से च्युनत एवं ंपराङ्मुखता का मन के द्वारा समथनि, न्यूनतम प्रनतरोधवाली हदशा का सुरक्षक्षत अनुसरण जजससे कक िमें अपनेपररश्रम का फल अजजति करनेमें कष्ट, कलेश और संकट कम-से-कम िो, - यि किती िै कक चािे कोई भी फल न भमले या केवल कोई अनत तुच्छ फल िी भमले पर कोई मिान् ्एवं श्रेष्ठ पुरुषाथ िया कठोर एवंसंकटपूण िपररश्रम और सािस-काय िन करना प़िे।े

धृत्या यया िारयते मनः प्राणेस्न्द्रयकक्रयाः ।
योगेनाव्यसभचाररण्या िृनृतः सा पाथु ुसास्त्त्किी ।। ३३।।
३३. हे पाथु!ु स्जस अडडग िृनृत से, योग के द्िारा, व्यस्क्त मन, प्राण और इस्न्द्रयों की कक्रयाओं को ननयंत्रत करता है, िह िृनृत सास्त्त्कि होती है।

यया त जिमुकामाथुान्धृत्या िारयतेऽजुनुज ।
प्रसङ्गेन िलाकाङ्क्षी घृनृतः सा पाथु ुराजसी ।। ३४ ।।
३४. हे अजुजनु स्जस घृनृत से मनष्जय तीव्र आसस्क्त के साथ िल की कामना करता हजआ िमु,ु अथु ुऔर काम में स्मथरता से प्रिृत्त होता है, हे पाथी िह िृनृत राजससक होती है।

यया स्िप्नं भयंशोकं विषादं मदमेि च ।

न विमञ्जश्चनत दमेजिा ि्नृतः सा पाथु ्तामसी ।। ३५।।

३५. हे पाथु।् स्जस घृनृत से विपरीत या विकृत बद्जाधिाला मनष्जय ननद्रा, भय, दहंतां, शोक, और असभमान को भी नहीं ंछोि़ता है, िह ि्नृत तामससक होती है।

सखं स्त्दिानीं त्रीविं शृणृ जमे भरतषुभु ।
अभ्यासाद्रमतेयत्र दःजखान्तं च ननगच्छनत ।। ३६।।
यत्तदग्रे विषसमि पररणामेऽमृतोपमम् ्।
सास्त्त्किं प्रोक्तमात्मबद्जधिप्रसादजम् ्।। ३७।।
तत्सखं

३६-३७. हे भरतश्रेष्ठ अब तू मुझसे त्रीवि सखोंविषय में सनज। स्जस सखज करता है और जो दःजख-कष्ट का अंत कर देता है, जो प्रारंभ में विष के समान होता है परंत जअंत में अमृत् के समान होता है, आत्मा के समजपष्ट ज्ञान से उत्पन्न िह सखज सास्त्त्कि कहा जाता है।

साजत्त्वक मन और स्वभाव के ववभशष्ट गुण िोतें सामंजस्य और सुव्यवस्था, ननश्चल सुख, एक ववशद और शांत संतोष और एक आंतररक ववश्राम और शांनत... यि सुख बाह्य वस्तुओंपर ननभरि निीं ंकरता, अवपतु एकमात्र िमारे अपनेऊपर और िमारे अंदर जो कुछ भी सवश्रेष्ठ तथा अंतरतम िै उसके कुसुभमत िोनेके ऊपर ननभरि करता िै। परंतु आरंभ में यि सुख िमारी सामान्य संपदा निीं ंिोता; इसे आमम-अनुशासन के द्वारा, आममा के पुरुषाथ िके द्वारा और उच्च एवं कठोर प्रयास के द्वारा अजजति करना िोता िै। आरंभ में इसका अथ ि ीिता िै अभ्यस्त सुख की अमयधधक िानन, बिुत अधधक कष्ट और संघष,ि िमारी प्रकृनत के मंथन से उमपन्न ववष, शजकतयों का एक दु्ःखदायी संघष,ि िमारे अंगों की दुषुप्रवृवृि या प्राणणक चेष्टाओं के दुराग्रि के कारण पररवतनि के प्रनत अमयधधक ववरोि और ववरोध, परंतु अंत में इस कटुता के स्थान पर अमृतृमव की सुधा उद्भूत िोती िै और जैसे-जैसे िम उच्चतर आध्याजमषक प्रकृनत की और आरोिण करते जाते िैं वैसे-वैसे िमारे दु्ःख का अंत िोता जाता िै, शोक-संताप का अनायास िी लोप िोता जाता िै। यिी वि सवानितशयी सुख िै जो साजत्त्वक साधना की पररणनत के चरम त्रबंदु ्या सीमा पर िमारे ऊपर उतर आता िै।

साजत्त्वक प्रकृनत का आमम-अनतिमण केवल तभी साधधत िोता िै जब िम मिान् ्पर अभी भी अपेक्षाकृत िीन साजमवक सुख से परे, मानभसक ज्ञान और पुण्य एवं शांनत से भमलनेवाले सुखों से परे जाकर आममा की शाश्वत शांनत और हदव्य एकमव का आध्याजममक परमानंद प्राप्त कर लेते िैं। वि आध्याजममक सुख अब और अधधक साजत्त्वक 'सुख' निीं ंरिता अवपतु ्परम आनंद िो जाता िै। आनंद िी वि गुप्त तत्त्व िै जजससे सब वस्तुएँ उमपन्न िुई िै. जजसके द्वारा सब वस्तुएँ अजस्तमव में बनी रिती िैं और जजसकी ओर वे अपनी आध्याजममक पररणनत में ऊपर उठ सकती िैं। उस आनंद की उपलजब्ध की तभी िो सकती िै जब मुकत व्यजकत

अिकार और उसकी कामनाओंसे मुकत िोकर अंततः अपनी उच्चतम आममसिा से सव िभुता से तथा परमेश्वर से एकीभूत िोकर आममा के पूणतिम आनंद में ननवास करता िै।

ननत्रैगुण्य की अवस्था में सदा िी पूणतिम आनंद िोता िै। साजमवक अवस्था में कम िसे पिले पररश्रम या दुःख िोता िै परंतु अंततः आनंद या सुख प्राप्त िोता िै, राजभसक अवस्था में पिले सुख का अनुभव िोता िै परंतु पररणाम दुःखांत िोता िै, विंतामभसक अवस्था में पिले भी दुःख िोता िै और बाद मेंभी दुःख िोता िै।

विषयेस्न्द्रयसंयोगाद्यत्तदग्रे ऽमृतोपमम् ।
पररणामे विषसमि तत्सखं ंराजसं ममृतम् ।। ३८।।

३८. जो सखइन्द्रयों के उनके विषयों के साथ संयोग से उत्पन्न होता है, प्रारंभ में अमृत के समान प्रतीत होता है, परंत जअंत में विष के समान होता है िह सखराजसक कहा गया है।

राजभसक मनुष्य का मन एक अधधक उग्र अथवा तीक्ष्ण और मादक प्याले का रसास्वादन करता िै; शरीर और इंहरयों का तथा इंहरयासकत या प्रचंरूप से गनतमय संकल्प एवं बुद्धध का तीव्र, चंचल एवंसकिय सुख िो उसके भलए जीवन का समस्त आनंद और जीवन-धारण का वास्तववक अथ ििोता िै। प्रथम स्पश िमें तो यि सुख अधरों के भलए सुधामय िोता िै, परंतु प्याले के तल में एक प्रच्छन्न ववष रखा िोता िै और पीने के बाद इसका पररणाम िोता िै ननराशा की कटुता, ववतृषूणा, कलाजन्त, ववरिी, जुगुप्सा, पाप, यातना, िानन, अननमयता। और ऐसा िोना अननवाय ििी िै कयोंकक इन सुखों के बाह्य रूप वे चीजें निीं िैं जजन्िें िमारी अंतरस्थ आममा सचमुच में जीवन से प्राप्त करना चािती िै; बाह्य रूप की नश्वरता के पीछे और परे भी कोई चीज िै; कोई धचरस्थायी, संतोषप्रद और स्वतः-पयाप्ति वस्तु भी िै।

यदग्रे चानबजन्िे च सखं मोहनमात्मनः ।

ननद्रालमयप्रमादोत्थं तत्तामसमदजाहृतम् ।। ३९।।

३९. और स्जस सखज से जिी प्रारंभ में और अंत में विमोदहत रहता है और और प्रमाद से उत्पन्न होता है उसे तामससक कहा गया है ।

प्रकृनत ने इसे [तामभसक अिकार को] मूढ़ता और अज्ञानता में, गिा के पेट प्रकाशों, ज़ि संतोष, इसके क्षुर या ननकृष्ट िषों और इसके भद्दे सुखों में िी एक उमसुक संतुजष्ट पाने का ववशेषे सौभाग्य प्रदान ककया िै। भ्रांनत िी इस सुख-संतोष का आरंभ िै और मिो-भ्रांनत िी इसका पररणाम िै; परंतु कफर भी गिा के ननवासी को अपनी मिो-भ्रांनतयों में एक मंद-ननस्तेज सुख प्राप्त रिता िै जो ककसी भी प्रकार सरािनीय न िोतिुए भी उसके भलए यथेष्ट िोता िै। तमस् या ज़िता और अज्ञान में एक तामभसक सुख आधाररत िै।

॥. स्वभाव और स्वधम ि

सामान्य स्तर पर समस्त कम ित्रत्रगुण के द्वारा ननधारिरत िोता ि;ै करने योग्य कम,ि 'कतव्यिंकम'ि, दान, तप और यज्ञ का त्रत्रववध रूप ले लेता ि,ै और इन तीन में से कोई भी एक या ये सभी ककसी भी गुण का स्वभाव धारण कर सकतिं। अतएव िमें इन चीजों को इनके सामथ्यानिुसार उच्चतम संभव साजत्त्वक भशखर तक ऊँचा उठाते िुए िी आगे बढ़ना िोगा और कफर उस भशखर से और भी परे एक ऐसी ववशालता की ओर जाना िोगा जजसमें सभी कम िएक मुकत आमम-दान, हदव्य तपस् ्की एक शजकत, आध्याजममक जीवन का एक ननमय यज्ञ बन जाते ैं। परंतु ुयि एक सवसिामान्य ननयम िै और इन सब वववेचनों के द्वारा सवथिा व्यापक भसद्धांतों की िी व्याख्या की गयी ि,ै ये सब कमों और सब मनुष्यों पर समान रूप से, त्रबना ककसी भेदभाव के लागू िोतिं। आध्याजममक ववकास के द्वारा अंत में सभी इस प्रबल अनुशासन, इस व्यापक पूणतिा, इस उच्चतम आध्याजममक जस्थनत तक पिुँच सकते िैं। परंतु जिाँमन और कम िका सवसिाधारण ननयम सभी मनुष्यों के भलए एक-सा ि,ै विाँ िम यि भी देखतिं कक वैववध्य का भी एक शाश्वत ननयम िै और प्रमयेक व्यजकत मानवीय आममा, मन, संकल्प-शजकत और प्राण के सावभिौम ननयमों के अनुसार िी निंअवपतु अपनी प्रकृनत के अनुसार भी कम िकरता ि;ै प्रमयेक मनुष्य अपनी पररजस्थनतयों, क्षमताओं, प्रवृवृ, चररत्र एवं शजकत-सामथ्य िके ननयम के अनुसार ववभभन्न कतव्यिों को पूण ि करता या ववभभन्न हदशा का अनुसरण करता ि।ै अध्यामम-साधना में इस वैववध्य को, प्रकृनत के इस व्यजकतगत ननयम को कया स्थान देना चाहिए?

यिा ाँश्रीअरववन्द इस बात का स्पष्टीकरण कर रिे िैं कक आणखर गीता में स्वभाव की चचिा िी कयों आई ैं। सभी मानवों के एक सामान्य गनतिम में प्रमयेक व्यजकत पिले तमस् ्से रजस् ्की ओर, कफर रजस् ्से सत्त्व की ओर और अंततः सत्त्व से ननलैगुण्य की ओर आरोिण करेगा। िालाकाँक इस सामान्य गनतिम में भी सदा िी यि संभावना रिती िै कक कोई व्यजकत ककसी भी अवस्था से सीधे िी ननखैगुण्य की जस्थनत में जा सकता ि।ै यि तो एक ऐसा अप्रमयाभशत ववधान िै जजसकी सदा िी संभावना तो रिती िै परंतुयि कोई सामान्य िम निं ंि।ै सामान्य िम तो गीता में वणणति तमस्,् रजस् ्और सत्त्व से उिरोर िोता िुआ ववकास ि।ै परंतु जब िम मनुष्यों को देखते िैं तो स्वयं इन तीन गुणों में भी अनंत वैववध्य पाते िैं। न केवल प्रमयेक जीव िी अपने आप में भभन्न ि,ै अवपतु स्वयं व्यजकत के अपनेववकासिम के ववभभन्न चरणों में िम उसके गठन में वैववध्य या भभन्नता पातिं। कोई प्रधानतः तामभसक प्रवृवृ का व्यजकत भी सदा िी एक िी अवस्था में निं ंरिता। उसके अंदर भी िम समय-समय पर बदलाव आते देखते िैं। इसी ओर श्रीअरववन्द यिाँसंकेत कर रिे िैं कक यहद िम ववकासिम को केवल तमस्,् रजस् ्और सतत्त्व के आरोिण के द्वारा िी समझाएँ तो उससे इस सारे वैववध्य का रिस्य या उसका औधचमय स्पष्ट निंिोता। सत्त्व, रजस् ्और तमस् ्तो सभी के ऊपर समान िी रूप से लागू िोतिं चािे वि स्त्री िो या पुरुष, वृद्ध िो या युवा, चािे वि ककसी भी वण िका िो, ककसी भी पेशे ेका कयों न िो। परंतु कफर भी प्रमयेक के अंदर दूसूरे से भभन्नता और ववभशष्टता का ववधान भी गोचर िोता ि।ै साधना के पथ पर भी िम देखतिं कक ककसी समान िी धारा के दो साधकों का ववकासिम भी भभन्न-भभन्न िोता ि।ै ककसी समान िी गुरु के पास भी ककन्िीं दो

साधकों के आंतररक अनुभव, उनका ववकासिम भभन्न-भभन्न िोता िै। इस दृजष्टकोण से प्रमयेक व्यजकत अपने आप में भभन्न िै, प्रमयेक अपनेआप में ववभशष्ट िै। िममें से प्रमयेक उस हदव्य शजकत की एक ववभशष्ट अभभव्यजकत िै जो सभी में तत्त्वतः एक िी समान िै। इसी कारण जो घटनिाम ककसी एक के जीवन में घहटत िोता िै, जजन अनुभवों, उतार-चढ़ावों आहद से वि गुजरता िै ठीक वैसा िी पूरी सृजृष्ट में अन्य ककसी के साथ निीं िोता। िालाकाँक कुछ चीजों में व्यजकत का दूसूरों से सामय िो सकता िै परंतु वास्तव में भभन्नता तो रिती िी िै कयोंकक परमाममा में इतने अनंतववध तत्त्व और अनंतववध आयाम िैं कक उन्िें ककसी भी चीज की पुनरावृवि करने की कोई आवश्यकता निीं। इसी कारण वनस्पनत जगत् तक में भी ककसी एक िी पेड़ के दो पिे भी िम एक समान निीं पाते। चािे भेद ककतना भी सूक्ष्म कयों न िो, परंतु रिता अवश्य िै।

प्राचीन भारतीय संस्कृनत की यि ववलक्षणता रिी िै कक उसे आरंभ से िी इस वैववध्य का भान था। वि जानती थी कक परमाममा के अनंत गुण िैं, अनंत आयाम िैं और प्रमयेक जीव के अंदर वे अपनी शजकत की कोई ववभशष्ट अभभव्यजकत करते िैं। और मानव जीवन का लक्ष्य िै अपनी उसी असीम चेतना की ओर ववकास करना। श्रीअरववन्द के शब्दों में, "भारतीय संस्कृनत आममा को िमारी सिा के समय के रूप में मानती िै और िमारे जीवन को आममा की अभभवृद्धध एवं ववकास के रूप में।...इस आममा की ओर, इस परमेश्वर की ओर, सावभौम सिा, सनातन, अनंत की ओर सीभमत चेतना का उिरोिर ववकास, एक शब्द में, उसकी साधारण अज्ञ स्वाभाववक सिा का उज्ज्वल हदव्य प्रकृनत में ववकास के द्वारा आध्याजममक चेतना में ववकास, यि िी भारतीय ववचारधारा के भलए जीवन का अथ िएवं मानव जीवन का लक्ष्य िै।" (CWSA 20: 214)
अतः भारतीय संस्कृनत की संपूण ितन्मयता एक ऐसी व्यापक व्यवस्था तैयार करने पर थी, या यों किें कक भागवत् प्रेरणा की किया से स्वयं िी एक ऐसी अनतववशाल संरचना तैयार िो गई जजसका लक्ष्य था प्रमयेक जीव को यथाशीघ्र उसके सच्चेलक्ष्य तक ले जाने में यथासंभव सिायता प्रदान करना। भारत की सामाजजक व्यवस्था इसी अवधारणा पर ननभमत थी। उसका दशनि, धम,ि साहिमय, कला आहद सभी इसी की अभभव्यजकत करते थे। सारी शासन व्यवस्था, भशक्षा प्रणाली आहद सभी व्यवस्थाएँ इसी एक लक्ष्य की पूनत िकी संभसद्धध का लक्ष्य रखते थे। समूचे राष्ट्र की सारी छोटी-बड़ी चीजें इस एक िी हदशा में गनत करती थीं। इस अनन्य भाव से भाववत उमकंठा ने िी सनातन धम िको जन्म हदया। सनातन धम िवि सबसे पूण िऔर प्रभावशाली साधन िै जो अमयंत उदाि आध्याजममक लक्ष्य की प्राजप्त की ओर व्यजष्ट और समजष्ट दोनों को िी यथासंभव प्रभावी रूप से अग्रसर करने की चेष्टा करता िै। और इस चेष्टा में उसने व्यजकत और समाज के संपूण िजीवन को पग-पग पर ऐसे रूपकों, बाह्य अनुष्ठानों, आदशों, नीनत-ववधानों आहद से इस प्रकार पररवेजष्टत ककया कक ये सभी व्यजकत और समाज को उस परम लक्ष्य के ववषय में सतत् सचेतन रखते थे और उस ओर गनत करनेमें सिायता करते थे भले कोई अपने ववकास के पड़ाव पर ककसी भी सोपान पर कयों न खड़ा िो। साथ िी मनुष्य की सिा के केवल मानभसक, बौद्धधक या नैनतक भागों की तुजष्ट को िी निीं सिा के उसके ननिले, सुखभोगवादी भागों की द्वारा संगे भी प्रदान अवपतु सभी भागों को ककसी उच्चतर ववधान के द्वारा संयभमत करनेकी भी व्यवस्था की गई थी। सिा के ननिले भागों की तुजष्ट के भलए व्रत-मिोमसव, भानुष्ठान, तंत्र आहद की व्यवस्था की गई थी, इसी प्रकार सिा के अन्य अनुशा के

भलए भभन्न-भभन्न व्यवस्था की गई थी। मनुष्य की प्रकृनत के या उसके ववकास की अवस्था के गिरे अध्ययन के आधार पर भारतीय संस्कृनत ने मनुष्यों को मोटे रूप से तीन गुणों के ववभाजन के अनतररकत नतिरे चतुष्टय में बाटाँ। ये िैं **चार परुजषाथु** ु- अथ,ि काम, धम ि और मोक्षः **चार आश्रम** रह्मचय,ि गृिस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास; **चार**

णिु ुराह्मण, क्षत्रत्रय, वैश्य एवं ंशूर। इनमें से जो चातुवण्यि िववभाग िै वि ककसी पेशे ेपर निीं अवपतु मनुष्य के मनोवैज्ञाननक ढाचेँ पर आधाररत िै। इस आधार पर ककसी एक िी बिृ ेपररवार में भी ये चारों िी वण िदेखने को

भमल सकते िैं। इन चतुष्टयों के ववषय में श्रीअरववन्द किते िैं कक भारतीय संस्कृनत की "...प्रणाली का ढाँचा एक नतिरे चतुष्टय से गहठत था। इसका प्रथम चि जीवन के चार प्रकार के लक्ष्यों का समन्वय और िम था, प्राणणक कामना और सुखोपभोग, वैयजकतक और सामाजजक हित, नैनतक अधधकार तथा ननयम, और आध्याजममक मोक्ष। इसका दूसूरा चि था समाज की चातुवण्यि–व्यवस्था जो सावधानी के साथ िमबद्ध की गयी थी तथा अपने ननहदिष्ट आधथकि किव्यिों से और गंभीरतर सांस्कृनतक, नैनतक एवंआध्याजममक अथ िसे संपन्न थी। इसका तीसरा, अमयंत मौभलक चि और, ननःसंदेि, इसके सवसिमावेशी जीवनादशों में अद्ववतीय आदश िथा – जीवन की आनिुभमक अवस्थाओं का चतुववधि स्तर-ववभाग एवं परंपरा, ववद्याथी, गृिस्थ, वानप्रस्थ और स्वतंत्र समाजातीत मनुष्य। यि ढाचाँा, व्यापक और उदिा जीवन-भशक्षण की ये प्रणाभलयाँ इस सभ्यता के परवती वैहदक एवं वीरमवपूण ियुग में अपनी शुदु्ध अवस्था में, कठोरता और उदारता के अपनेमिान् ्स्वाभाववक संतुलन के साथ और अपनी उमकृष्ट प्रभावशाभलता में बराबर बनी रिी..." (CWSA 20: 217)

इस प्रकार चार-चार के तीन ववभागों के परस्पर संयोजन के द्वारा िमें मानव प्रकृनत और उसके ववकास की अवस्था के चौंसठ मोटे ववभाग भमलतिैं। इनमें यहद तीन गुणों के ववभाग को और भमला हदया जाए तो इनके संयोजन से एक-सौ बानवेववभाग भमलतिैं जजनमें मानवों को उनकी प्रकृनत और उनके ववकास की अवस्था के अनुसार श्रेणीबद्ध ककया जा सकता िै। िालाकाँक इतने ेव्यापक ववभाजनों के बाद भी ये सभी उस व्यजकत पर लागू निीं ंिोतेथे ेजजसे गुरु के मागदिशनि का परम् ्सौभाग्य प्राप्त िो गया िो। गुरु-वाकय के अनतररकत उस पर अन्य ककसी प्रकार का कोई शास्त्र या ववधान लागू निीं ंिोता था। परंतु अपने आप में वि अवस्था भी एक बिृी िी उच्च अवस्था िोती िै जब व्यजकत को अपनी आममा के प्रनतननधधस्वरूप सद्गुरु प्राप्त िोने की और उनकी छत्रछाया में ववकभसत िोने की मित् ्अनुकंपा प्राप्त िो। अतः यि एक बिृी िी ववलक्षण और ववरली जस्थनत िै जो अधधकांश के भलए लागू निीं िोती। अधधकांश को ववकास के भलए सिायता की आवश्यकता रिती िी िै। और इसी के भलए भारतीय संस्कृनत ने नतिरे चतुष्टयों का ननमाणि ककया।

यिा ंिमें ध्यान रखना चाहिये कक ये सारे िी चि एक सामान्य ववकास परंपरा का िी ननरूपण करते िैं परंतु एक उन्मुकत आममा के भलए ये बाध्यकारी निींिैं। जजस भी अवस्था में व्यजकत को आममा का आह्वान प्राप्त िो जाता था उसके बाद यि सवमिान्य था कक ऐसे व्यजकत के ऊपर तब आममा के अनतररकत अन्य कोई ववधान या ककसी प्रकार का वणाश्रिम धम िबाध्यकारी निींिोता था। तब वि अपने िी भीतरी ववधान के अनुसार जीवन यापन करने ेऔर ववकास करने के भलए मुकत िो जाता था। इस प्रकार िम देखते िैं कक भारतीय संस्कृनत का संपूण िढाचाँ मानव प्रकृनत, उसके ववकास की आंतर और बाह्य अवस्था के एक भली प्रकार अध्ययन पर

आधाररत था। और ऊपर वणणति ये सारे ववभाजन करने के बाद भी िमारे ऋवषयों ने सदा िी देश, काल और पात्र के ननयम को िी सवोपरर रखा। इस सारी अनतशय जहटलता और नमनीयता का यिी कारण था कक भारतीय संस्कृनत को परमाममा की अभभव्यजकत के वैववध्य का गिरा बोध था जजसकी कक गीता में यिा ाँचचािआई िै। अतः गीता इसी पर बल देती िै कक इस वैववध्य के अनुसार व्यजकत का जो ववभशष्ट आंतररक ववधान िै, जो कक उसका स्वभाव ै उसी का पालन करना उसका स्वधम िि। अतः व्यजकत का प्रथम कतव्यि िै कक अपनी अंतननिहित प्रकृनत, अपने स्वभाव की खोज करे और अपनी सतिी प्रकृनत के भाव से अपने उस स्वभाव की ओर गनत करे। ककसी एक िी पररवार में पैदा िुए तीन बच्चों की सतिी प्रकृनत तो एक समान िो सकती िै परंतु संभवतः तीन बच्चीतरी प्रकृनत, उनका स्वभाव, सवथिा भभन्न-भभन्न प्रकार का िो। उनकी िारतीय संस्कृनत सवप्रिथम व्यजकत के स्वभाव की खोज करने ेपर ध्यान देती थी। यहद व्यजकत का स्वभाव ज्ञान-प्राजप्त का िो और उसे कृवष काय िमें या सेवा-काय िमें लगा हदया जाए तो वि अपनेआप को सवथिा अनुपयुकत पाएगा। वींयहद व्यजकत का स्वभाव सेवा-काय िकरनेका िो और उसे इससे भभन्न ककसी काय िमें लगा हदया जाए तो वि उस काय िको कभी भी सिी रूप से नींकर पाएगा। इसभलए स्वभाव ननयत कम िपर बल हदया जाता था। और अपने इस अंतननिहित भाव या अपने स्वभाव से व्यजकत

को 'मद्भाव' अथात् ि्भगवान् ्के भाव में जाना िोता था।

गीता ने इस बात पर कुछ बल हदया िै, यिााँतक कक इसे एक बिा भारी प्रारंभभक मित्त्व भी हदया िै। अपनी शुरुआत में िी उसनेकिा िै कक क्षत्रत्रय का स्वभाव, ववधान और कतव्यि िी अजुनि के कम िका ननज ववधान ै, उसका 'स्वधम'ि िै; इसके आगे उसनेप्रभावपूण िबल के साथ इस बात का प्रनतपादन ककया िै कक अपनेननज स्वभाव, धम िएवंकतव्यि का पालन और अनुसरण अवश्य करना चाहिए, – भले वि दोषपूण ििी कयों न िो तब भी वि ककसी दूसूरे की प्रकृनत के धम िको भली प्रकार अनुष्ठान करनेसे किीं अधधक श्रेेयस्कर िै। परधम िमें ववजय-लाभ करनेकी अपेक्षा स्वधम िमें मृमृयु मनुष्य के भलए किीं अधधक अच्छी िै। परधम िका अनुसरण अंतराममा के भलए भयावि िै, िम कि सकतेिैं कक यि उसके ववकास की स्वाभाववक प्रणाली के ववरुद्ध िोता िै, उस पर यांत्रत्रक रूप में लादी िुई वस्तु िोती िै और इसभलये आममा के सच्चे स्वरूप की ओर िमारे ववकास के भलए एक ऐसी वस्तुिोता िै जो बािर से आयानतत, कृत्रत्रम तथा ववनाशकारी िै। जो कुछ सिा के अंदर से बािर आता िै विी उधचत और स्वास्थ्यकर वस्तु, यथाथ िप्रवृवृ िै, न कक वि जो बािर से उस पर लादा जाता िै अथवा प्राण की जबरदजस्तयों या मन की भ्रांनत के द्वारा उस पर थोपा जाता िै। यि स्वधम िचार सामान्य प्रकार का िोता िै जजसे प्राचीन भारत की सामाजजक संस्कृनत के 'चातुवण्यि'ि व्यवस्था के कम िमें बाह्य रूप से ननरूवपत ककया गया िै। गीता किती िै कक यि वण–व्यवस्था एक हदव्य ववधान के िमानुरूप िी िै, "इसकी सृजृष्ट गुणों और कमों के ववभाग के अनुसार मनैं िी की थी", – जजसकी सृजृष्ट आहदकाल से जगमपनत ने िी की थी। दूसूरे शब्दों में, सकिय प्रकृनत की चार भभन्न श्रेेणणयााँ िैं, अथवा प्रकृनतगत जीव के चार मूल रूप या 'स्वभाव' िैं, और प्रमयेक मनुष्य का काय िएवं उपयुकत कतव्यि उसके ववभशष्ट स्वभाव के अनुरूप िोता िै। अब इसकी अंनतम रूप से, अधधक सटीक और सूक्ष्मतर ब्यौरों के साथ व्याख्या की गयी िै। वणाश्रिम धम िऔर पुरुषाथ िके ववषय में तो िम पिले िी ववशद चचािकर चुके िैं। गीता वणों के द्वारा जजस मनोवैज्ञाननक अवस्था की बात करती िै उसके अनुसार यहद

ऐनतिाभसक रूप से देखा जाए तो िमारी संस्कृनत में िम वैश्यों की प्रधानता पातिैं और अन्य वणों की न्यूनता पातिैं।

प्रश्न : जब अपनेववशुद्ध रूप में वणों को आंतररक प्रकृनत के द्वारा ननधाररत माननतिैं तब कफर कया आनुवांभशकता के द्वारा भी गुण संतनत में िस्तांतररत िोतिैं?

उत्तर : यि एक ब़िा िी जहटल ववषय िै जजसका कोई सामान्य ननयम ननधाररत निीं ंककया जा सकता। अवश्य िी आनुवांभशकता से कुछ गुण िस्तांतररत िोतिैं और इसी कारण जानतगत ववशेषेताएँ देखनेको भमलती िैं। परंतु अधधकांशतः जब िम आनुवांभशकता की बातें करते िैं तब उसे व्यापाररक पेशों से समझ बैठते िैं जबकक वण िकोई सतिी निीं ंअवपतु आंतररक ववषय िै। मिाभारत आहद में िम देखतिैं कक कई बार पूरे के पूरे क्षत्रत्रय वंश राह्मणों के काय िकरने लगते िैं और इसी प्रकार राह्मण वंश क्षत्रत्रयों के काय िकरनेलगते िैं। साथ िी जब अंतजातिीय ववविा आहद िोने लगे तब वणों का सजममश्रण िोने ेलगा इसभलए बािरी जानतयों का ढाचाँा तो इससे और अधधक ववशुद्ध रूप में निीं ंरि पाया परंतु तब भी जो भीतरी प्रकृनत िै उसके अनुसार व्यजकत के भभन्न-भभन्न स्वभाव का ननयम तो कफर भी लागू िोता िै। साथ िी, िमें यि भी ध्यान रखना चाहिये कक जजस वण–व्यवस्था का भारतीय संस्कृनत में िम उल्लेख पातिैं वि केवल आयों पर िी लागू िोती िै। आय िका अथ िै वि व्यजकत जो आमम-अनतिमण करने ेकी, अपनी जजस ककसी भी जस्थनत में वि िै उससे आगे जानेकी अभीप्सा करता िै और उसके भलए चेष्टा करता िै। अतः आय िसंस्कृनत में प्रमयेक व्यजकत अपने वतमिान स्तर से सदा िी ववकभसत िोकर उच्चतर चेतना में जाने की चेष्टा करता था। इस दृजष्ट से राह्मण और शूरू में कोई भेद निींथा। एक शूरू जो सतत् ्आमम-अनतिमण की चेष्टा करता था वि उस राह्मण से श्रेष्ठ माना जाता था जो अपनी जस्थनत से संतुष्ट िो।

जिा ाँतक जानतगत ववशेषेता और आनुवांभशकता की बात िै तो उन्नीसवीं शताब्दी तक यि मान्यता रिी िैकक यूरोपीय श्वेतवण िजानतयो उन्नीसवर िैं, अफ्ीकी जानतयाँ सबसे ननचले स्तर पर िैं और बाकी सभी शीनतयाँ इनके बीच में आती िैं। इसे प्रमाणणत करने ेके भलए ववज्ञान को जक पूरी की पूरी शाखा को िी ववकभसत ककया गया। यिी मान्यता पूरे एकक में भारी नरसंिारि और रकतपात का कारण बनी जजसका कक ववश्व का इनतिास साक्षी िै। परंतु आनुवांभशक ववज्ञान में िुई आधुननकतम खोजिेमें वंशाणुओं(Genes) के अध्ययन के आधार पर ढ़ेि लाख साल से भी अधधक पीछे तक के इनतिास तक ले जा सकती िैं और 'द रीयल ईव * पुस्तक में िम पातिैं कक सबसे पिले अफ्ीका से एक समिू ने लगभग ८५,००० वषों पूव िपलायन ककया। विी समिू हिन्दुसुतान से िोकर संसार के अन्य सभी भागों में फैल गया। हिन्दुसुतान में करीब २० से ३० िजार वषों तक रुकने के बाद िी उनमें से कुछ लोग बािर जानेलगे। इसी कारण आज जब िम ववश्व की सारी संस्कृनतयों का बारीकी से अध्ययन करें तो िमें सब में भारतीय मूल के दशनि िोंगे। आज ववश्व भर में इस खोज को अधधकाधधक स्वीकार ककया जा रिा िै कयोंकक यि खोज आनुवांभशकीय ववज्ञान पर आधाररत िै। इसी आधार पर प्रमाणणत िोता िै कक ववश्व भर में ककसी समय वैहदक संस्कृनत या उसके अंश अवश्य रिे िैं और संसार के सारे धम,ि दशनि, मत आहद सभी का विी

मूल रिा ि◌ै। भीतर से सभी जानतयों में सामय ि◌ोने ◌ेपर भी जो बिारी रंग-रूप का ि◌में अंतर हदखाई देता ि◌ै वि तो केवल भभन्न बिारी पररवेश और खान-पान के कारण ि◌ै।

इसी ववज्ञान के आधार पर यि भी अब असंहदग्ध रूप से प्रमाणणत ि◌ो चुका ि◌ै कक भारत में भी जो आय ि◌ और रववि़ जानतयों का भेद ककया जाता रिा ि◌ै वि भी ननराधार ि◌ै। आयों द्वारा रववि़ भारत पर ि◌ोमण के ननराधार भसद्धांत की ि़ि◌ में भारत की अखण्िता को ति◌ोने का प्रयास ककया जाता रिा ि◌ै। स्वामी वववेकानन्द ने तो पिले ि◌ी इस भसद्धांत का त्रबल्कुल स्पष्ट शब्दों में खण्नि कर हदया था कक आय ि◌और रववि़ जानत जैसा कोई भेद ि◌ै ि◌ी निीं और समस्त भारतीय जन एक ि◌ी जानत ि◌ैं। अभाव ववज्ञान की सिायता से इस भसद्धांत की ननस्सारता अकाट्य रूप से अगणणत ि◌ो ि◌ी चुकी ि◌ै और यि भसद्ध ि◌ो चुका ि◌ै कक रंग-रूप, बोली, अपमान सिन आहद की भभन्नताएँ केवल सतिी ि◌ैं जबकक मूलतः सभी एक ि◌ी वंशवृक्ष से ननकलतिैं और सभी एक ि◌ी ि◌ैं। िालांकक यि बात केवल वतमिान सृजृष्ट चि के संबंध में ि◌ै जबकक गीता तो अनेकानेक सृजृष्ट चिों की बात करती ि◌ै। गीता आनुवांभशकता आहद की बातें निीं ◌ंकरती। गीता को वणि–व्यवस्था तो गुणाममक ि◌ै जजसका आनुवांभशकता से कोई अधधक संबंध निीं ◌ंि◌ै। इसीभलए गीता की भशक्षा के अनुसार ककसी एक ि◌ी पररवार में एक से अधधक वण ि◌भी देखने को भमल सकतिैं। ककन्िीं एक ि◌ी माता-वपता की चार संतानें भी चार भभन्न-भभन्न वणों की िो सकती ि◌ैं। इस भेद को ि◌में सदा ि◌ी ध्यान में रखना चाहिये।

----

*The Real Eve by Stephen Oppenhmer, 2004, Publisher: Constable & Robinson Ltd.

अब इस बात पर आते ि◌ैं कक ककस प्रकार व्यविार में आनुवांभशकता को वण ि◌का आधार माना जानेलगा। इसमें अनेकानेक तत्त्व ि◌ैं जो सारे ववषय को जहटल बना देते ि◌ैं। अतः कोई भी सामान्य ननयम तय निींककया जा सकता। इसमें से कुछ तत्त्वों की तो ि◌म चचाि कर सकतिैं जजसके कारण आनुवांभशकता या कफर परंपरागत गनत के पीछे का रिस्य समझ में आता ि◌ै। इसका एक तत्त्व तो यि ि◌ै कक भारतीय संस्कृनत में सामाजजक ढाचाँ का **नइसमप्रण**कार ककया गया था कक प्रमयेक वण ि◌के भलए सुननधाररत धम ि◌बनाए गए थे जो उस वण ि◌के सभी लोगों पर यथायोग्य तरीके से बाध्यकारी ि◌ोते थे। क्षत्रत्रय कुल में पैदा ि◌ुए बालक को जन्मकाल से ि◌ी ऐसी ववधधवत् ◌् भशक्षा, ऐसे संस्कार, प्रभशक्षण, अभ्यास आहद प्रदान ककये जाते थे ◌ेकक उसे उस वण ि◌में ववकभसत ि◌ोने ◌ेका अनुकूलतम वातावरण व अधधकतम सुअवसर प्रदान ककया जा सके। इसी प्रकार सभी वणों के अपने-अपने सुननधाररत धम ि◌ि◌ोतेथे ◌ेजो बिुत ि◌ी व्यापक भी ि◌ोतेथे और साथ ि◌ी ब्यौरेवार तरीके से व्यजकत को पग-पग पर हदशाननदेश भी प्रदान करते थे। परंतु इस व्यवस्था को भी ननरंकुश रूप से निीं ◌ंलागू ककया गया था। यहद ककसी का आंतररक स्वभाव त्रबल्कुल स्पष्ट ि◌ो, या ककसी को गुरु के सात्रत्रध्य का परम् ◌्सौभाग्य प्राप्त ि◌ो, या कफर व्यजकत की आममा की पुकार प्रबल ि◌ो तो ऐसे में यि व्यवस्था उसे एक उच्चतर ववधान का पालन करने के भलए स्वतंत्र छोि़ देती थी। और चूंकक इस सारी व्यवस्था में ऋवष ि◌ी शीषस्थि व्यजकत ि◌ोता था और उसका ननणयि अंनतम ि◌ोता था इसभलए इसमें ककसी प्रकार की त्रुहट की कोई संभावना निीं ◌ंथी। साथ ि◌ी उसे समाज को देश-काल के अनुसार

कोई नया धम िप्रदान करने ेका भी अधधकार था। अतः सामान्यतः व्यजकत को उस वणा–ववशेषे के धम िसे इतना पररवेजष्टत कर हदया जाता था कक उसमें ववकभसत िोने ेका उसे अधधक से अधधक वातावरण प्राप्त िो सके।

इसके अनतररकत परंपरा के िम को ककस प्रकार आगे बढ़ाया जाता िै उसका एक और तरीका िमें भारतीय संस्कृनत में गुरु-परंपरा के द्वारा गोचर िोता िै। यि एक प्रचभलत बात िै कक गुरु परंपरा में गुरु जब अपनी परंपरा को आगे ले जानेके भलए ककसी योग्य भशष्य को उसका भार सौंपते िैं तो वे केवल उसे अधधकार का स्तांतरण िी निीं ंकरते अवपतु आध्याजममक गुणों का भी िस्तांतरण करते िैं और साथ िी साथ कयोंकक यि सारा कायभिारा–स्तांतरण एक भीतर से ननधाररत प्रकिया िोती िै इसभलए भशष्य के अंदर आवश्यक आध्याजममक गुण
व शजकतयों का अवतरण या प्राकट्य भी िोता िै। इसीभलए कई बार सतिी रूप से सामान्य से प्रतीत िोते व्यजकत को भी जब वि कायभिार सौंपा जाता िै तब िम देखतिैं कक उसमें अप्रमयाभशत गुणों का और आध्याजममक प्रकाश का प्राकट्य िो जाता िै। और यि एक बिी िी गुह्य और सूक्ष्म प्रकिया िै जो कक आज भी गुरुओं ंकी परंपरा में िमें
देखने को भमल सकती िै जजसका कक ककसी भौनतक आनुवांभशकता से कोई संबंध निीं िै। श्रीमाताजी ने भी अपनी
कृनतयों में इस ववषय पर प्रकाश िाला िै और स्वयंअपनेअनुभव को अभभभलणखत ककया िै कक ककस प्रकार श्रीअरववन्द की दि मयाग के बाद जजस प्रकाशपूण िमन को श्रीअरववन्द ने भसद्ध ककया था वि श्रीमाताजी में स्तांतररत िो गया और वे िोकिती िैं कक िस्तांतरण की इस प्रकिया का उन्िें ठोस रूप से संवेदन प्राप्त िुआ। अतः चेतना का िस्तांतरण संभव िै और िोता िी िै। यि िै कक अपने जीवन काल में जब व्यजकत अभ्यास के द्वारा अपने ककसी अंग को भसद्ध कर लेता िै, पूण िरूप से सचेतन बना लेता िै तो बिुत िद तक उस अंग ववशेषे का स्वतंत्र सचेतन अजस्तमव बन जाता िै जो उस व्यजकत की मृमृयुके बाद भी अपनी अभभव्यजकत के माध्यमों की खोज करता िै। श्रीमाताजी इस ववषय में एक वपयानो-वादक का उदिारण देती िैं जो कक एक सामान्य संगीतकार था। परंतुश्रीमाताजी ने किा कक ककसी संगीत प्रस्तुनत के दौरान सुअवसर पाकर उसमें ककसी मिान् ्वपयानो-वादक के िाथों की चेतना का अवतरण िो गया और विी जो पिले सामान्य संगीत बजाता था, उसी ने उस अवतरण के कारण एक ववलक्षण संगीत प्रकट ककया। अतः इस प्रकार की घटनाएँ भी संभव िैं जजसमें केवल कोई भसद्ध भौनतक अंग िी निीं,ं अवपतु कुछ ववशेषे गुणों का भी अवतरण िो सकता िै। ककसी त्रबल्कुल कायर व्यजकत में भी ककसी समय परम् ्शौय िका अवतरण िो सकता िै। कला आहद के क्षेत्र में तो िमें इसके अनेक उदिारण देखने-सुननेको भमलतिैं। और ककसी मात्रा में तो सभी के अंदर यि सूक्ष्म प्रकिया चलती िी रिती िै। बेदों में इन शजकतयों या क्षमताओं को ऋभुआहद शजकतयों की संज्ञा दी गई िै। यहद इस प्रकार पूव िमें ववकभसत की गई इन क्षमताओं को सुरक्षक्षत रूप से आगामी पीहढ़यों तक िस्तांतररत न ककया जा सकता तब तो ककसी प्रकार का कोई पाधथवि ववकास अधधक संभव िी निीं ंिो पाता कयोंकक भले कोई व्यजकत ककतना भी ववकास कयों न कर ले या ककन्िींक्षमताओं को ककतनेभी ववभशष्ट रूप से ववकभसत कयों न कर ले, तो भी उसकी मृमृयुके साथ िी वे सभी तो नष्ट िो जातीं। परंतु ऐसा निीं। पाधथवि अभभव्यजकत में जो भी कोई ववकास किींभी साधधत ककया जाता िै, वि

प्रकृनत द्वारा संरक्षक्षत रखा जाता ि◌ै। इसी कारण ककसी काल में अमुक प्रगनत करने ◌ेमें जजतना समय लगता ि◌ै, आगामी पीढ़ी को उस हदशा में प्रगनत करने में उतना समय नि◌ींलगता। और इसी तरि उि◌िीर ववकास चलता रिता ि◌ै। अतः एक सतत् ◌्आदान-प्रदान चलता ि◌ी रिता ि◌ै। पर चूंकक ि◌म सूक्ष्म कियाओं को देख और अनुभव नि◌ीं कर पातेइसभलए उनके ववषय में ि◌म अनभभज्ञ रिते◌ीं। परंतुजजनमें भी कुछ सूक्ष्म दृजष्ट ि◌ै वे देख पाते◌ीं कक ककस प्रकार इच्छाएँ, कामनाएँ, आवेग आहद अनेकानेक भाव सदा ि◌ी तरंगों के रूप में ि◌मारे अंदर प्रवेश करते ि◌ैं और ि◌मारे अंदर अनुकूल-प्रनतकूल प्रनतकियाएँ पैदा करते ि◌ैं। और जिााँवातावरण सकारामक ि◌ोता ि◌ै विााँइन सब आवेगों आहद का बल नष्ट ि◌ो जाता ि◌ै। ि◌मारे पुराणों आहद में ि◌में वणनि भमलते◌ीं कक ककस प्रकार ऋवषयों के आश्रमों में हिंसंक पशु ◌ुभी अपनी हिंसंक प्रकृनत छोड़ देते थे और संयभमत रूप से व्यविार करते थे।

अतः जब कालान्तर में 'स्वभाव' की पिचान - जजसे करना कभी भी आसान नि◌ीं ◌ंथा - जन्म के आधार पर की जाने लगी, कयोंकक बदलती पररजस्थनतयों में ऐसा करना ि◌ी सुगम था, तब एक बािरी मापदण्(बिदमा) के आधार पर 'स्वभाव' का ननधारिण करने से जो त्रुहुटया ◌ाँआ (जन्नती ि◌ैं उनका पररमाजनि उपरोकत बतलाये गये प्रमयेक वण ि◌ववशेषे के भलए सुननधाररित ककये गए धम ि◌व अमयन्त बुद्धिमानी व दक्षता से स्थावपत ककये गए (बाह्य, भावाममक एवं ◌ंमानभसक) भशक्षण-प्रभशक्षण के ढााँचेव गुणों के आनुवांभशक ि◌स्तांतरण की संभावनाओं द्वारा ककया जाता रिा। यद्यवप यि एक बित पूण ि◌या दोषमुकत व्यवस्था नि◌ीं ◌ंि◌ो सकती थी, कफर भी इसनेलंबे समय तक व काफी ि◌द तक वणा–व्यवस्था में घोर असंगनतयों व ववकृनतयों को प्रकट ि◌ोने ◌ेसे रोके रखा।

प्रश्न : इस सारे आनुवांभशकता आहद के वणनि को ि◌म स्वभाव और स्वधम ि◌के संदभ ि◌में ककस प्रकार समझ सकते ि◌ैं?

उत्तर : स्वभाव और स्वधम ि◌का संबंध तो ि◌मारी आममा के ववकास के साथ ि◌ै। जजन सारी शजकतयों आहद की ि◌म चचिा करते ि◌ैं या बािरी ववकास की चचिा करते ि◌ैं वि तो आममा अपनी अभभव्यजकत के अनुसार तय करती ि◌ै। अंतराममा स्वयंअपना पररवेश, मन, प्राण तथा शरीर व उनके गुणों, लक्षणों, क्षमताओं ◌ंआहद सभी का चयन करती ि◌ै। और यहद अंतराममा अभी अधधक ववकभसत न ि◌ो तो ऐसी सिायक सिाएँ ि◌ोती ि◌ैं जो उसे इस चयन में सिायता करती ि◌ैं। और अभभव्यजकत में ककस प्रकार आगे से आगे ववकास ि◌ोता ि◌ै उसकी ि◌मने इससे पूव ि◌चचिाकी ि◌ै। साथ ि◌ी इसमें ि◌में यि भी ध्यान में रखना चाहिये कक साधना के द्वारा बािरी ढाचोँ को ककसी भी ि◌द तक बदला जा सकता ि◌ै अन्यथा साधना का तो कोई अथ ि◌ि◌ी नि◌ीं ◌ंि◌ोता। इसी कारण ि◌म पाते◌ीं कक साधना के द्वारा ऋवषयों के अंदर वे शजकतयााँ उमपन्न ि◌ो जाती थींजजनसे भौनतक ननयमों में भी वे अपनी इच्छानुसार फेर-बदल कर सकते थे। ककसी नेत्रिीन को नेत्र प्रदान करना, ककसी रोगी व्यजकत को ननरोग करना आहद जैसी चीजें उनके भलए सिज ि◌ि जाती ि◌ैं। परंतुजिााँ तक स्वभाव की बात ि◌ै, व्यजकत को सच्चा हदशाननदेश तो केवल सद्गुरु के प्राप्त ि◌ोने पर ि◌ि भमल सकता ि◌ै अन्यथा तो अपनेसच्चे स्वभाव के बारे में सचेतन ि◌ोना बित ि◌ी मुजश्कल ि◌ै।

न तदस्मत पृधृथव्यां ◌ंि◌ा ददवि दिेषज ि◌ा पनजः ।
सत्त्् प्रकृनतजैमुकुजतंयदेसभः मयास्त्रसभाुणैः०।।

४०. न तो पृथ्वी पर और न ही मिगु ुमें दिों के मध्य कोई भी ऐसा प्राणी है जो प्रकृनतजन्य इन तीन गणजों से मक्जत हो।

ब्राह्मणक्षत्रयविशां शूद्राणां ंच परन्तप ।
कमुाणण प्रविभक्तानन मिभािप्रभिैगुणैु : ।। ४१।।

४९. हे परंतप। ब्राह्मणों, क्षत्रयों, िैश्यों और शूद्रों के कमु ुउनके मिभािजन्य गणजों के अनसजार विभक्त हजए हैं।

शमो दममतपः शौचं क्षास्न्तराजिुमि च ।
ज्ञानंविज्ञानमास्मतक्यं ब्रह्मकमु ुमिभािजम् ्।। ४२।।

४२. शांत-स्मथरता, आत्मसंयम, तपमया, शधजचता, सहनशीलता, सरल व्यिहार अथिा मपष्टिाददता, ज्ञान तथा विज्ञान (मूलभूत तथा व्यापक ज्ञान), आध्यास्त्मक सत्य की मिीकृनत तथा उसका अभ्यास ब्राह्मण के कमु ुहैं जो उसके मिभाि से उत्पन्न होतेहैं।

सामान्यतः जब कम िके ववभाजन की बात आती िै तब प्रायः िी िम उन्िें बािरी कमों से या पेशे ंसे मान बैठते िैं। जबकक राह्मण के जजन कमों का गीता यिा ंाँवणनि करती िै उनसे तो सविथा स्पष्ट िो जाता िै कक गीता का कम िके द्वारा अभभप्राय ककसी बािरी पेशे ंसे निींिो सकता अवपतु ये सभी तो आंतररक गुण िैं। 'शांत-जस्थरता, आममसंयम, तपस्या, शुधचता, सिनशीलता, सरल व्यविार अथवा स्पष्टवाहदता, ज्ञान तथा ववज्ञान (मूलभूत तथा व्यापक ज्ञान), आध्याजममक समय की स्वीकृनत तथा उसका अभ्यास' - इन सब में अभ्यास को तो िम बािरी कम िकी श्रेणी में िाल सकते िैं परंतु इसके अनतररकत आमम-संयम, शुधुचता, सिनशीलता आहद तो कोई कम िनिीं िो सकते। अब यहद इन मानदंडों से िम ढूाँढ़ें तो कदाधचत् ्िी िमें कोई राह्मण भमले। केवल राह्मण िी कयों, गीता जजस-जजस प्रकार के गुण चारों वणों के बताती िै उस दृजष्टकोण से तो कदाधचत् ्िी िमें अपनेववशुद्ध रूप में कोई भी वण िहदखाई दे। कयोंकक वण िकेवल आय िव्यवस्था में िी िोतेथे। यि िम पिले भी कि चुके िैं कक आय िका अथ िै वि जो सदा िी अपने आमम-अनतिमण के भलए पररश्रम करता रिता िै और जो अपनी जजस ककसी भी जस्थनत पर, चािे वि ककतनी भी उच्च जस्थनत िी कयों न िो, संतुष्ट िोकर ठिर निीं जाता। इसी आधार पर यहद कोई राह्मण अपनी जस्थनत से संतुष्ट िोकर ठिर जाता िै और आगे जानेकी अभीप्सा निीं ंकरता वि कफर आय ि "किलाने योग्य निीं रिता अवपतु मलेच्छ िो जाता िै। विींकोई शुरु चािे कि ककतनी भी पनतत अवस्था में िी कयों न िो, या कम िकी दृजष्ट से भले वितना भी तुच्छ कम िकयों न करता िो, परंतु यहद उसके अंदर अपनेकम िके प्रनत ककसी प्रकार की कोई जुगुप्सा निींिै और उसके द्वारा वर कपना आमम-अनतिमण साधधत करनेके भलए प्रयास करता िै तो यि आय िै। आगे आने वाले वणनि में भी िम देखगेंें कक ककस प्रकार गीता प्रमयेक वण िके अनुसार जो कम िबताती िै वि कोई बािरी पेशा निीं ंअवपतु ुआंतररक गुण िैं। जिााँबािरी कम िका भी कुछ संकेत िै वि भी वास्तव में उस आंतररक वृवि पर िी आधाररत िै।

शौयं ◌ंतेजो ि◌नृतदुाक्ष्यं ◌ंयद्जिे चाप्यपलायनम् ◌्।

दानमीश्रिभाश्ि क्षात्रं ◌ंकमु ◌ुमिभिाजम् ◌्।। ४३ ।।

४३. शूरिीरता, तेज या साहस-बल, दृढ़ ननश्चयता, दक्षता और यद्जि से पलायन न करना, दान और शासन करना क्षत्त्रय के मिाभाविक कमु ◌ुहैं।

कृवषगौरक्ष्यिाणणज्यं ◌ंिैश्यकमु ◌ुमिभिाजम् ◌्।

पररचयुात्मकं कमु ◌ुशूद्रमयावप मिभिाजम् ◌्।। ४४।।

४४. कृवष, गोपालन और व्यापार िैश्य के मिाभाविक कमु ◌ुहैं; सिा मिभिााले समगत कमु ◌ुशूद्र के मिाभाविक कमु ◌ुहैं।

मिेमिेकमुणुयसभरतः संससद्धिं ◌ंलभतेनरः ।

मिकमुनुनरतः ससद्धिं ◌ंयथा विन्दनत तच्छृणज।। ४५।।

४५. अपने मियंके कमु ◌ुमें ननष्ठापिूकु लगे रहतेहजए मनष्जय ससद्धि को प्राप्त करता है; अपनेकमु ◌ुमें लगा हजआ कोई ककस प्रकार ससद्धि को प्राप्त करता है, िह तू ◌ूसनज।

यतः प्रिृवृत्तभ्ूतुानां ◌ंयेन सिुसुमदं ततम् ◌्।

मिकमुणुा तमभ्यच्यु ◌ुससद्धिं ◌ंविन्दनत मानिः ।। ४६।।

४६. स्जस (परमात्मा) से समगत भूत उत्पन्न होतेहैं, स्जससे यह सब (जगत्) ◌् व्याप्त है, उसकी अपनेकमु ◌ुके द्िारा अभ्यचुना करके मनष्जय ससद्धि को प्राप्त कर लेता है।

श्रेेयान्मिमो विगणज परिमुात्मिनस्जष्ठतात् ◌्।

मिभिाननयतं कमु ◌ुकजिुनुााप्नोनत ककस्ल्बषम् ◌्।। ४७।।

४७. भली प्रकार अनस्जष्ठत ककये गये ककसी परिमु ◌ुसे, अपने-आप में दोषपूणु ◌ुहोतेहजए भी, मिमु ◌ुश्रेेड होता है; अपनेमिान द्िारा ननयत (ककये हजए कमु ◌ुको करने पर मनष्जय पाप को नहीं ◌ंप्रास होतात

सहजंकमु ◌ुकौन्तेय सदोषमवप न त्यजेत् ◌्।

सिुारम्भा दह दोषेण ि◌ूमेनास्ननरिरिृताः ।। ४८।।

४८. हे कौन्तेया सहज (मिभिाजन्य) कमु ◌ुको दोषयक्जत होते हजए भी नहीं ◌ंछोिना चादहये; क्योंकक समगत कायों के आरम्भ दोषों से िैसे ही आच्छाददत रहते हैं जैसे िएजूँ से अस्नन आच्छाददत रहती है।

त्रत्रगुण के क्षेत्र में समस्त कम िि ी अपूण िि ोता ि ै, समस्त मानव-कम िि ी दोष, अशुद्ुधध या सीभमतता से बाध्य ि ोता ि ै; परंतु इस कारण ि में अपनेननज ववभशष्ट कम ि तथा स्वाभाववक कतव्यि का पररमयाग निीं ं कर देना चाहिये। कम िि ोना चाहिये समुधचत रूप से ननयभमत कम,ि 'ननयतं कम'ि, परंतुआंतररक अथवा मूलभूत रूप से अपना ननज कम,ि अपनेअंदर से ववकभसत, अपनी सिा के समय के साथ समस्वर, स्वभाव के द्वारा ननयत, 'स्वभावननयतं कम'ि।

यिा ाँगीता का ठीक-ठीक अभभप्राय कया ि ै? पिले ि म इसे इसके बाह्यतर अथ ि में देखें और इस पर ववचार करें कक गीता ने जजस भसद्धांत का प्रनतपादन ककया ि ै उसे जानत और युग के ववचारों ने कया पुट हदया था - उस पर सांस्कृनतक पररवेश का कया रंग चढ़ा ि ुआ ि ै और उसका प्राचीन अथ ि कया ि ै। ये श्लोक तथा इसी ववषय पर गीता ने पिले जो वचन कि ि ैं वे जानत-भेद-ववषयक आधुननक शास्त्राथों में प्रमाणरूप से उद्धृत ककये जाते रि ि ैं और कुछ लोगों द्वारा इसकी व्याख्या इस रूप में की गई ि ै कक ये वतमिान प्रथा का समथनि करते ि ैं, जबकक दूसूरों के द्वारा इनका प्रयोग जानत-भेद के आनुवांभशक आधार का खंनि करने के भलए ककया गया ि ै। पर वास्तव में गीता के श्लोकों का प्रचभलत जानत-भेद के साथ कोई संबंध निीं ि ै, कयोंकक यि चतुवणि ि के, अथात्ि ्आयजिानत के चार सुस्पष्ट वगों के प्राचीन सामाजजक आदश ि से अमयंत भभन्न वस्तु ि ै, और यि गीता के वणनि के साथ ककसी प्रकार भी मेल निीं खाता। कृवष, गोपालन और प्रमयेक प्रकार के व्यापार को यिााँवैश्य के कम ि बताया गया ि ै; ककंतु बाद की जानत-व्यवस्था में उन लोगों में से, जो व्यापार तथा पशु-ुपालन का काय ि करते थे,े बिुतों को, भशजल्पयों तथा छोटे-मोटे कारीगरों एवं ंअन्य कई को वास्तव में शूरू-वग ि में सजममभलत ककया गया ि ै, - वि भी विााँजिा ाँउन्िें चतुवणि ि के घेरे से त्रबल्कुल बिार िि ी निींकर हदया गया ि ै, - और कुछ एक अपवादों को छोि़कर केवल वणणक-वग ि को िि ी वैश्य की श्ेरेणी में रखा गया ि ै, और वि भी सवत्रि निीं। कृवष, शासन कर और सेवा तो आज राह्मण से लेकर शुरु पयंतं सभी वणों के पेशे ि ैं। और जिा ाँकतव्यि कम ि के आधथकि ववभागों में इतना अधधक घोटाला कर हदया गया ि ैकक उनमें सुधार की कोई संभावना िि ी निीं दीखती, विााँगुण के अनुसार कम ि का ववधान परवती जानत-भेद-प्रथा में और भी कम स्थान रखता ि ै। उसमें तो सब कुछ एक कठोर आचार िि ी ि ै जजसका वैयजकतक प्रकृनत की आवश्यकता से कुछ भी संबंध निीं। उधर यहद ि म इस वववाद के उस धाभमकि पिलूको लें जजसे जानत-भेद के समथकिों ने प्रस्थावपत ककया ि ै तो ि म, ननश्चय िि ी, गीता के शब्दों के साथ ऐसा कोई मूखतिापूण ि ववचार निींजिो़ सकतेकक मनुष्य की प्रकृनत का धम ि यि ि ै कक वि अपनी वैयजकतक प्रवृवि एवं ंक्षमताओंका ववचार ककये त्रबना अपनेमाता-वपता या ननकट या सुदूरू पूवजिों के पेशे ेको िि ी अपनाये, ग्वाले का पुत्र ग्वाला िि ी बनेऔर ि ाकटर का पुत्र ि ाकटर, मोची की संतनत कालचि के आवतनि-पयंतं मोची िि ी बनी रिे: कफर इस ववचार को तो गीता पर और भी कम थोपा जा सकता ि ै कक ऐसा करने से, व्यजकतगत पुकार एवंव्यजकतगत गुणों का ववचार ककये त्रबना दूसूरे की प्रकृनत के धम ि को इस प्रकार वववेक-रहित ि ोकर यंत्रवत् ्दुिोराते रिने ेसे मनुष्य अपनी पूणतिा की ओर सिज िी अग्रसर ि ोता ि ै तथा आध्याजममक स्वातंत्र्य प्राप्त करता ि ै। गीता के शब्द तो चतुवणि ि की प्राचीन व्यवस्था के उस रूप की ओर संकेत करते ि ैं जो अपनी आदश ि शुद्ुधावस्था में ववद्यमान था या ववद्यमान समझा जाता था, कई लोगों का कथन ि ै (और यि कथन कुछ वववादग्रस्त ि ै) कक यि व्यवस्था एक आदश ि या एक साधारण ननयम के अनतररकत और कुछ कभी भी निीं रिी तथा व्यविार में इसका अनुसरण न्यूनाधधक भशधथलता के साथ िि ी

 ककया जाता था, िमें उसी प्रचभलत व्यवस्था को दृजष्ट में रखकर इस पर ववचार करना चाहिए। यिाँभी, इसका
सटीक बाह्य अथ िसमझने में अमयधधक कहठनाई अनुभव िोती ि ै।

जब िम आंतररक अथ िचूक जाते िैं तभी चतुवणि िकी व्यवस्था को जानतवाद समझ बैठने की भूल कर बैठते िैं। और कफर इसके आधार पर जानतगत अभभमान रखना और यि समझना कक गीता जानतगत श्रेष्ठता के अभभमान का समथनि करती ि ै और इसी जानतगत श्रेष्ठता के द्वारा व्यजकत को भागवत् ्प्राजप्त िो सकती ि ै, ये सभी त्रबल्कुल ननराधार बातें िैं। वण ितो सवथिा आंतररक और मनोवैज्ञाननक ववषय ि ै। केवल आंतररक सिा िी ननजश्चत कर सकती ि ै कक व्यजकत की प्रकृनत कया िोगी और उसके बािरी कम िकया िोंगे। उदिारण के भलए राह्मण कुल में िी जन्म लेनेसे यि ननधिाररत निीं ंिो जाता कक व्यजकत में राह्मण के जो गुण बताए गए िैं वे आ जाएँ। विीं समयकाम जाबाल जैसे ककसी उदिारण में संभव ि ै कक व्यजकत को अपनेगोत्र तक का भी पता न िो और कफर भी उसमें राह्मणमव के गुण िों। अतः वण िव्यवस्था से गीता का अभभप्राय प्राचीन वण िव्यवस्था से ि ै जो गुणों पर आधाररत ि ै और जजसका वतमिान जानतप्रथा से कोई संबंध निीं। साथ िी प्रमयेक वण िके कमों के ववषय में गीता का जो वणनि ि ै उससे भी यि स्पष्ट िो जाता ि ै कक वास्तव में ये सभी कम िआंतररक िैं।

गीता के वणनि को यहद बािरी रूप से भी भलया जाए तो गीता गोपालकों, भशजल्पयों और कारीगरों को वैश्य श्रेणी में रखती ि ै जबकक वतमिान व्यवस्था के अनुसार इन्िें शूरू श्रेणी में रखा जाता ि ै। िालाकाँक वास्तव में तो वैश्य बािरी कम िसे निीं अवपतु आंतररक गुण से ननधाररत िोता ि ै। आय िपद्धनत के अनुसार वैश्य में कायकिुशलता, चीजों के बीच परस्पर संबंध का बोध, काय िको करने के उधचत ववधान आहद का बोध िोता ि ै। वि ववभभन्न चीजों के बीच परस्पर संबंध को जानकर उनमें सामंजस्य स्थावपत कर सकता ि ै। विीं शूर में सेवा का अंतननहिित भाव िोता ि ै। यद्यवप प्राचीन वण िव्यवस्था में शूरू को िीन निींमाना जाता था, परंतुकालांतर में जब वण िव्यवस्था को जानत प्रथा मान भलया गया तब शूरू को सबसे ननचले दजे का माना जानेलगा जबकक यहद यि गुण न िो तो इसके अभाव में अन्य सभी वणों की कियाएँ संपाहदत िी निीं िो सकतीं। इसी प्रकार चारों में से यहद कोई एक गुण भी न िो तो उसके अभाव में पूण िकिया साधधत निीं ंिो सकती। ककसी कम िको पूण िरूप से संपाहदत
िोने ेके भलए चारों िी गुणों की समजन्वत किया आवश्यक ि ै। िालाकाँक सभी में कुछ न कुछ मात्रा में चारों िी वृवियाँ
रिती िैं परंतुजब इन सभी का पूण िरूप से ववकास िोता ि ै तब व्यजकत भगवान् ्के मद्भाव की ओर जा सकता िै।
अतः गीता की भशक्षा यिी ि ै कक व्यजकत के अंदर जजस भी शजकत की या स्वभाव की प्रधानता िो उसी के अनुसार वि आरंभ करे। और ज्यों-ज्यों व्यजकत ववकभसत िोता जाता ि ै मयों–मयों स्वभाव के अन्य पक्षों का एवं ंअन्य शजकतयों का भी ववकास िोता जाता ि ै। यहद ककसी को सद्गुरु प्राप्त िो जाएँ तो उसके बाद कफर उसे ककसी भी वण ि प्राचीन वण–व्यवस्था जब अपनी शुद्ध अवस्था में निींरिी तब भी उसका कुछ-न-कुछ अंश अवश्य बना
रिा और प्रमयेक वण िअपने शास्त्रसम्मत कतवियों का ननष्ठापूवकि ननवाि करने का प्रयास करता था। इस प्रकार
या आश्रम आहद की कोई आवश्यकता निीं रिती और तब गुरु-वाक्य िी उसका परम् ्ववधान िोता ि ै और वे िी व्यजकत को यथाशीघ्र उसके सच्चेगंतव्य तक ले जाते िैं।

व्यवस्था के अपभ्रष्ट रूप जानत-प्रथा - में भी जो भयंकर ववकार आए उनमें मुजस्लम और अंग्रेजी आिांताओं के शासन िी प्रधान कारण रिे। इन्िीं शासन कालों के दौरान भारत के उज्ज्वल इनतिास को धूभमल करने ेका कुजमसत प्रयास ककया गया और जानतयों के ववषय में ऐसा धचत्रण प्रस्तुत करने ेका प्रयास ककया गया कक राह्मण अन्य जानतयों के साथ अपनी श्रेष्ठता के अभभमान में ननरंकुश व्यविार करते थे,े क्षत्रत्रय अपनेबल के आधार पर जनता पर अमयाचार करते थे,े वैश्य अपनेव्यापार आहद में दूसूरों के साथ पारदशी व्यविार निीं ंकरते थे, और शूरू सभी जानतयों के द्वारा पददभलत थे ेजजन्िें ककसी प्रकार की भशक्षा, सममान आहद का कोई अधधकार निीं ंथा। परंतु श्रीअरववन्द और स्वामी वववेकानन्द ऐसी सभी बातों को त्रबल्कुल ननराधार बतातेिैं और भारतीय इनतिास का एक बिुत िी उज्ज्वल धचत्र प्रस्तुत करते िैं। जो तथ्य वे सामने लाते िैं उन्िें जानकर ककसी भी व्यजकत में सिज िी भारतीय अतीत पर गौरव और गिरी श्रद्धा का भाव जागृत िो जाएगा। और इनतिास के ववषय में अधधकाधधक अनुसंधान करनेपर िम न केवल उनके कथनों को त्रबल्कुल सटीक पातेिैं अवपतु ुसाथ िी िमें यि आश्चय िभी िोता िै कक सभी प्रचभलत भ्रांनतयों के चलते भी उनकी भारतीय संस्कृनत और उसके अतीत के ववषय में कैसी गिरी समझ और पैनी दृजष्ट रिी िोगी जो प्रतीनतयों के पीछे भी देख सकती थी। परंतुदुभाग्यिवश आज सूचना की ववकभसत तकनीकें िोने के बाद भी भारतीय जन, और ववशेषेकर पाश्चामय प्रभाव में पूरी तरि रंगा युवा वग,ि भारतीय संस्कृनत की इस मिानता के ववषय में सवथिा अनभभज्ञ िै और इसी कारण अपनी संस्कृनत के प्रनत ककसी प्रकार का गौरव अनुभव करने की बजाय वि इसे अवमानना दृजष्ट से देखता िै और पजश्चम की ओर आशा जमाए बैठा िै।

आज जब िम भारत के इनतिास को, जो कक िमारे आिांताओं द्वारा न भलखा गया िो, पढ़ते िैं तो पातेिैं कक भारत सदा िी परम् ्वैभवशाली और संपन्न राष्ट्र रिा िै। दररररता कभी भी भारतीय लक्षणों में निीं ंरिी। जजतने ेभी ववदेशी आिांता यिााँआए वे ेकेवल व्यापार और माधथकि लाभ की दृजष्ट से यिााँआए थे। यि तो एक जाहिर सी बात िै कक यहद जैसी दररररता का धचत्रण िमारे समक्ष प्रस्तुत ककया जाता िै यहद वि सच िोता तो यि एक त्रबल्कुल बेतुकी बात िोती कक सुदूरू देशों से बे आिांता यिा ाँआते? आज िमें रमेश चन्र दि जैसे अनेकों इनतिासकारों द्वारा प्रस्तुत अभभलेख प्राप्त िोता िै जजसमें अंग्रेजी शासन के दौरान अंग्रेज अधधकाररयों द्वारा िी इंग्लैंड भेजे पत्रों आहद के माध्यम से तथा अन्य सूत्रों से यि पता लगता िै कक ककस प्रकार योजनाबद्ध रूप से भारत को सारी संपदा को लूटा गया। यिी निीं, दीघ िकाल तक लगातार एक के बाद एक और एक से एक भीषण मानवननभमति दुभभक्षि पैदा ककये जजनमें करोड़ों लोग भूख से मर गए और पूरे राष्ट्र की व्यवस्था चरमरा गई। ववदेभशयों के सारे प्रयास के पीछे ननहित उद्देश्य था कक पूरी संस्कृनत की कमर तोड़ दी जाए और उसे नष्ट कर हदया जाए।

मिारी संस्कृनत के मूल स्तंभ, वेदों, को भी सवथिा अवमाननत करने का प्रयास ककया गया। दुभाग्यिवश आज भी िम मैकस मयूलर को वेदों के पंडित और भारतीय संस्कृनत के परम् ्हितैषी के रूप में मानकर उसके द्वारा भलखी पुस्तकों का अध्ययन-अध्यापन करते िैं जबकक आज उसके वे पत्र प्रकाश में आ चुके िैं जजनसे यि स्पष्ट िोता िै कक स्वयं भमशनरी न िोते िुए भी उसका काय िभमशनरी भाव से प्रेररत था। यिााँमि के. वी. पालीवाल

की पुस्तक Max Muller: A Secular Christian Missionary and Distorter of the Veda, Hindu Writers Forum, New Delhi, 2006 के कुछ अंश प्रस्तुत करते िैं जजनसे िमें यि त्रबल्कुल स्पष्ट िो जाएगा कक वेदों को नष्ट करनेकी कुजमसत योजना ककस िद तक चल रिी थी।

१८६८ में उसनेआगाइिल के राजकुमार, जो कक भारत के तामकाभलक राज्य-सधचव (Secretary of State) थे,े को भलखा, "भमशनररयों ने इतना काम कर िाला िै जजतना कक वेस्वयंभी उसके बारे में अभभज्ञ निीं ंिोंगे, यिी निीं,ं जो उनका बिुत-सा काम िै उसे तो वे ेस्वीकार िी निीं करेंगे कक वि उन्िोंने ेककया िै। िमारी १९वीं शताब्दी की ईसाइयत शायद िी भारत की ईसाइयत िो पाएगी। ककंतु ुभारत का पुरातन धम ितो अभभशप्त िै - और यहद इसमें ईसाइयत विााँप्रवेश निींकरती तो इसमें दोष ककसका िोगा?" (पृष्ठ २७)

मैकस मूलर का वेदों का अनुवाद भारी रूप से ननहित िेतुओं से प्रायोजजत था परंतु अपनेअंतरंग ननजी पत्रों के अलावा उसनेऐसा खुल तौर पर कभी भी प्रकट निीं ककया। ऐसा िी एक पत्र उसनेअपनी परी को हदसंबर १८६६ में भलखा, "मुझे ेआशा िै कक म ैंअपना वि काम पूरा कर लूंगा और िालाकाँक यि देखने के भलए म ैंजंजदा निीं रिूाँगा, पर कफर भी मुझेववश्वास िै कक मेरा यि संस्करण तथा वेद का अनुवाद आने वाले समय में भारत के भाग्य पर बिुत िद तक प्रभाव िालेगा और उस देश के लोगों के ववकास को प्रभाववत करेगा। यि उनके धम िका मूल िै, और उन्िें यि हदखाना कक वि मूल कया िै, मुझे ेलगता िै, यिी उस सबका उन्मूलन करनेका एकमात्र तरीका िै जो कुछ वपछले तीन िजार वषों के दौरान उसमें से पैदा िुआ िै।" (पृष्ठ २६)

इस पत्र से १० वषों पूव िमैकस मूलर द्वारा भलखे एक दूसूरे पत्र से उसके किजश्चयन भमशनरी िेतुओंके ववषय में कोई संशय शेषे निीं रि जाता। २५.८.१८५६ को भम. बन्सन को वि भलखता िै, "... अंनतम कब्जेके बाद भारत के इलाकों को ववजय करने ेका काम समाप्त िुआ - अब इसके बाद धम िऔर अध्यामम के क्षेत्र में संघष िोगा जजसमें ननश्चय िी राष्ट्रों की हदलचस्पी लगी िुई िै। ईसाइयत के भलए भारत इतना तैयार िै जजतने रोम या ग्रीस भी सटें पॉल के समय भी तैयार निीं थे। उस सिे िुए बेकार पेड़ को कुछ बिारी सिारों से रोके रखा था कयोंकक उसका धगरना (त्ररहटश) सरकार के भलए असुववधाजनक िोता। परंतु यहद अंग्रेजी समुदाय को लगता िै कक देर-सवेर उस पेड़ को अवश्य धगरना िी िै तो कफर ऐसा तय िै। वि कफर ककसी भी प्रकार के बभलदान से निीं चूकेगा चािे वि रकत का िो या भूभम का। इस संघष िके िेतु म ैंअपना जीवन समवपति करना चािता िूाँ। दलीप भसंि बिुत कुछ िमारे समथनि में िैं और ननश्चय िी भारत में वि एक राजनैनतक भूभमका ननभाएँगे। मेरी इच्छा थी कक त्रबल्कुल सामान्य रूप से उनसे संपकि साध पाता। कया कोई ऐसा प्रबंध वप्रंस अल्वटि की सिायता से िो सकता िै या इसमें तुम मेरी कोई मदद कर सकतिो? म ैंभारत में एक भमशनरी के रूप में त्रबल्कुल भी निीं ंजाना चािता , इससे व्यजकत पादररयों-पुरोहितों का मोिताज िो जाता िै, कोई जन सेवक (Civil servant) के तौर पर जाना चािता, कयोंकक उससे म ैंसरकार पर आधश्रत िो जाता िूाँ। ्मैंविााँ दस साल काफी शांनत के साथ रिकर भाषा सीखना चािता िूाँ, संगी-साथी बनाना चािता िैं और तब म ैंदेखूंगा कक म ैंउस काय िमें भाग लेनेिेतु उपयुकत था या निीं जजस काय िसे भारतीय पुरोहित वग िकी पुरानी बदमाशी को उठाकर भरका जा सके तथा सरल ईसाई भशक्षा के

प्रवेश का माग िखोला जा सके, ऐसा प्रवेश जो यि भशक्षा प्रमयेक मानव हृदय में पाती िै, जो पुरोहितों की जालसाजी की सामथ्य िसे तथा दाशननिकों के मनतभ्रम पैदा करने वाले प्रभाव से मुकत िो। जो कुछ भी भारत-मूल में पैदा िोता िै वि शीघ्र िी पूरे एभशया में छा जाता िै, अतः ईसाइयत की प्राण शजकत अपने आप को अन्यत्र किीं इतने भव्य रूप से चररताथ िनिीं कर पाएगी जजतना कक विाँ(भारत में) जिाँ संसार उसे पुनः एक बार उदय िोते देखेगा, िालाँकि पजश्चम में इसका जो रूप िै उससे त्रबल्कुल भभन्न रूप में, ककन्तुकफर भी अपनेसार रूप में यि वैसी िी िोगी।" (पृष्ठ २०-२१)

इसी प्रकार भारतीय भशक्षा प्रणाली को त्रबल्कुल योजनाबद्ध रूप से नष्ट-भ्रष्ट ककया गया। १८५७ के ववरोि से पिले, त्रिटश अधधकाररयों ने सकिय रूप से ईसाई भमशनररयों की धमांतरण की कियाओं को बढ़ावा हदया। इस रणनीनत के पीछे न केवल धाभमकि कट्टरपंथी अवपतु ुउपननवेशकारी ननहित स्वाथ िशाभमल थे। इस संदभ िमें एक मित्त्वपूण िव्यजकत था टी. बी. मैकॉले (१८००-१८५९) - एक भशक्षाववदजो भारत में अंग्रेजी भशक्षा लाने में और उस भशक्षा के साथ िी भारतीय भशक्षा पद्धनत में यूरोपीय ईसाइयत के प्रनत वरीयता का पक्षपात लानेमें माध्यम बना। १९४७ में भमली स्वतंत्रता के बाद भी विी भशक्षा न केवल ज्यों की मयों जारी रिी िै बजल्क वपछले दो दशकों में पूण िरूप से िावी िो गई िै। मैकॉले की आशा थी कक उच्च सुसंस्कृत वगीय भारतीयों के बीच अंग्रेजी भशक्षा का प्रसार ईसाइयत के प्रचार-प्रसार में और उसके पररणामस्वरूप त्रिटश राज का शासन स्थावपत करने ेमें अमयंत सिायक भसद्ध िोगा। भशक्षा बोि िका चेयरमैन िोनेके नाते उसनेअंग्रेजी स्कूलों का एक नेटवकि तैयार करने का काम ककया। भारतीयों द्वारा इन स्कूलों की बिे िी उमंग के साथ स्वीकृनत ने भारत में ईसाइयत की भावी संभावनाओं को लेकर उसकी आशाओं को बिे ेभारी रूप से बढ़ा हदया। १८३६ में अपनेवपता को भलखे एक पत्र में वि किता िै, "िमारी अंग्रेजी स्कूलें बिे ेआश्चयजिनक रूप से फल-फूल रिी िैं। सभी इच्छुक लोगों को िम भशक्षण प्रदान करने ेमें मुजश्कल अनुभव कर रिे िैं - और वास्तव में कुछ स्थानों पर तो भशक्षण संभव िी निीं ंिै। अकेले िुगली नगर में १४०० लिके अंग्रेजी सीख रिे िैं। हिन्दुओंपर इस भशक्षा का प्रभाव अननष्टकारक िुई कोई भी हिन्दू ूजजसनेअंग्रेजी भशक्षा ग्रिण कर ली िै वि कभी भी सच्चाई के साथ अपनेधम िसे जुिा निीं ंरिता। कुछ उसे (हिन्दू ूधम िको) एक नीनत के रूप में अपनाए रिते िैं; बिुत से अपनेआप को शुद्ध देवतावादी बताते िैं और कुछ ईसाइयत अपना लेते िैं। यि मेरा दृढ़ ववश्वास िै कक यहद िमारी भशक्षा योजनाओं का अनुसरण जारी रिा तो ३० साल बाद बंगाल के संभ्रांत वग िमें एक भी मूनतपूजक निीं ंबचेगा। और यि सब धमांतरण करानेके ककन्िीं प्रयासों के त्रबना िी भसद्ध िो जाएगा; वि भी धाभमकि स्वतंत्रता के साथ जरा भी िस्तक्षेप ककए त्रबना, मात्र ज्ञान व धचंतंन की स्वाभाववक किया द्वारा। म ैंिाहदिक रूप से इन भावी संभावनाओंसे आनंहदत िोता िूँ ...." (पृष्ठ १५)

ये सभी तथ्य पढ़कर कोई भी अवाक् रि जाएगा कक ककस प्रकार इस राष्ट्र को उसके प्रमयेक अंग में पूणतिः नष्ट करनेका सुननयोजजत प्रयास ककया गया और दुभाग्यिवश आज भी पाश्चामय संस्कृनत के प्रभाव से प्रभाववत भारतीयों का एक बिा भाग अपनिी मूल को िीन दृजष्ट से देखता िै। परंतु इतना सब िोने ेके बाद भी भारतीय आममा यथावत् ्बनी िुई िै और आज भारतीय आध्याजममकता पूरे ववश्व में अधधकाधधक अपना प्रभाव फैलाती जा रिी िै।

प्राचीन चातुवर्ण्यि–व्यवस्था का त्रत्रववध पिलू था, इसने सामाजजक एवंआधथकि, सांस्कृनतक तथा आध्याजममक स्वरूप ग्रिण ककया। अपने आधथकि पिलू की दृजष्ट से इसने समुदाय के अंदर सामाजजक मनुष्य के चार कतव्यि स्वीकार ककये, धाभमकि एवं ंबौद्धधक, राजनीनतक, आधथकि और सेवासंबंधी काय।ि इस तरि चार प्रकार के कम िैं, धाभमकि पौरोहिमय, साहिमय, भशक्षा और ज्ञान का कम;ि शासन, राजनीनत, प्रशासन और युद्ध का कम;ि उमपादन, धनोपाजनि और ववननमय का कम;ि वैतननक श्रम और सेवा का कम।ि चार सुस्पष्ट वगों के बीच इन चार कायों के ववभाजन के ऊपर समाज की संपूण िव्यवस्था को प्रनतजष्ठत और सुजस्थर करने ेका यमन ककया गया। यि व्यवस्था भारत की कोई ननराली ववशेषेता निींथी, अवपतुककन्िींभेदों के साथ यि अन्य प्राचीन या मध्ययुगीन समाजों में भी सामाजजक ववकास की एक अवस्था का प्रधान लक्षण थी। ये चार कम िसभी सामान्य समाजों के जीवन में अब भी मूलभूत रूप से अंतननहिित िैं, परंतु वे स्पष्ट ववभाग अब किींनिीं िै। पुरानी व्यवस्था सवत्रि भंग िो गयी और उसके स्थान पर एक अधधक अजस्थर व्यवस्था या, जैसा कक िम भारत में देखते िैं, एक अस्त-व्यस्त एवं ंजहटल सामाजजक रूढ़ता एवं ंआधथकि गनतिीनता का जन्म िुआ जो िास को प्राप्त िोकर जानतयों के संकर में पररणत िो गयी। इस आधथकि कम–िववभाग के साथ एक सांस्कृनतक ववचार भी जुिा िुआ था जो प्रमयेक श्ेरेणी को उसका धाभमकि आचार, उसका मान-मयादि का ननयम, नैनतक ववधान, उपयुकत भशक्षा और प्रभशक्षण, चाररत्रत्रक ववशेषेता, पररवारगत आदश िएवं ंअनुशासन- मयादिा प्रदान करता था। जीवन के तथ्य सदा इस ववचार के अनुरूप िी निीं िोतेथे,े - मानभसक आदश िऔर प्राणणक एवंभौनतक व्यविार के बीच एक प्रकार की खाई सदा िी देखने में आती िै, परंतु ुयथासंभव एक वास्तववक संगनत या अनुरूपता बनाये रखनेके भलए अनवरत और कठोर प्रयमन ककया जाता था। इस प्रयमन का मित्त्व, और भूतकाल में सामाजजक मनुष्य के प्रभशक्षण के भलए इसनेजजस सांस्कृनतक आदश िएवं वातावरण की सृजृष्ट की उसका मित्त्व जजतना बखान ककया जाए, थोिा िै; परंतु ुआज एक ऐनतिाभसक, भूतकाभलक एवंववकासाममक अथ िसे अधधक इसका कुछ मित्त्व निीं। अंनतम बात यि िै कक जिा ाँकिींयि वणप्रिथा ववद्यमान थी, विााँइसे कम या अधधक, एक धाभमकि समथनि प्राप्त था (पूव िमें अधधक और यूरोप में बिुत कम) और भारत में तो इसकी एक गंभीरतर आध्याजममक उपयोधगता एवं मिमा भी स्वीकार की जाती थी। यि आध्याजममक अथ िी गीता की भशक्षा का वास्तववक सार-मम िै। जब मानव-चेतना में पतन आता िै तब व्यजकत में यि क्षमता निीं रिती कक वि आंतररक ववधान के अनुसार कमों को कर सके और इसभलए उसे बािरी मानकों या आधारों की आवश्यकता िोती िै। इसीभलए मानव-चेतना में आई धगरावट के कारण जब वण–िव्यवस्था अपना ववशुद्ुध रूप न रख सकी तो आनुवांभशकता को िी भसद्धान्त मानने ेकी आवश्यकता िुई, कयोंकक आंतररक मानक के अभाव में समाज की व्यवस्था के भलए ककसी बािरी मानक का िोना आवश्यक था। परंतु जजससे िम चेतना का पतन या िास किते िैं उसका भी अपना गुह्य कारण था। अतः भारतीय संस्कृनत में आए इन ववभभन्न कालों के अपनेगिरे कारण थे। इसका एक कारण था बदलता युगचि। इसके ववषय में श्रीअरववन्द किते िैं कक, "हिंदुओंकी युगगणना के भसद्धान्त के अनुसार द्वापरयुग में िर चीज ननयमबद्ध, ववधधबद्ध, ववधानबद्ध िो जाती िै।

----

* ननःसंदेि आरंभ में मनुष्य का सामाजजक काय िऔर पद पररजस्थनत, अवसर, जन्म और सामथ्य िके द्वारा िी ननधारिरत िोते थेधाजजक और पद अपेक्षाकृत अव्यवजस्थत समाजों में आज भी देखने में आता िै; परंतु कयोंकक अनतचार त एक अधधक जस्थर ननधारिरत आरंभ िो गया, व्यविार में उसकी पद-मयादिा मुख्यतः यो केवल जन्म के द्वारा ननधारिरत िोने लगी और परवती जानत-प्रथा में जन्म िी पद-मयादिा का एकमात्र ननयामक बन गया।

... यि एक अननवाय िववकास था, कयोंकक बाह्य धचह्न िी एकमात्र ऐसे िोते िैं जजनका ननणयि सिज रूप से तथा सुववधापूवकि ककया जा सकता िै और एक अधधकाधधक यंत्रीभूत, जहटल और लोकाचाराममक समाज-व्यवस्था में जन्म िी वणि-ननधारिण का एक अमयंत सिज और सुववधाजनक लक्षण था। वंशं-परंपरानुगत काय िमें तथा व्यजकत के वास्तववक अंतभूति स्वभाव और सामथ्य िमें जो ववरोध-वैषमय िो सकता था उसे कुछ काल तक तो भशक्षा और प्रभशक्षण के द्वारा दूरू या कम ककया जाता रिा, ककंतु अंत में इस प्रयमन को जस्थर रूप से जारी निीं रखा जा सका और वंशानुगत प्रथा को िी चरम ननयम मान भलया गया।

समययुग में भगवान् ्ववष्णु 'यज्ञरूप' धारण करके मनुष्यों में अवतररत िोतेिैं। 'यज्ञ' श्रद्धा-भजकत तथा आममननवेदन का भाव िै, तथा समययुग में मनुष्यों के हृदयों में यज्ञ का साम्राज्य िोता िै, तथा बािरी ववधध- ववधान (कमकिाण्ड), बािरी यज्ञ-यागाहद, सुववस्तृत ननयम-कानून, शासन प्रणाली, जानतभेद, वगभिेद, धाभमकि मत-मतान्तरों की कोई आवश्यकता िी निीं िोती। मनुष्य अपनी पररशुद्ध प्रकृनत की आवश्यकता के अनुसार तथा अपने समपूण िज्ञान के आधार पर धम ि(ननयम) का पालन करते िैं। ईश्वर का साम्राज्य तथा वेदों का 'उसकी' (ईश्वर की) प्रजा के हृदय में ननवास िोता िै। त्रेतायुग में प्राचीन समयक् व्यवस्था टूटनी शुरू िो जाती िै तथा भगवान् ्ववष्णु 'चिवती राजा' के रूप में, योद्धा तथा शासक के रूप में, अवतररत िोतेिैं, यथा कातवीय,ि परशुराम तथा राम, और शस्त्र तथा शास्त्र, एवं भलणखत वेद, मनुष्यों पर शासन करने के भलए संस्थावपत ककये जाते िैं। ककंतु अभी भी अमयधधक मात्रा में नमनीयता तथा स्वतंत्रता बनी रिती िै तथा एक सीमा के अन्दर मनुष्य अपनी उस प्रकृनत की स्वस्थ प्रववृि का अनुसरण करते िैं, जो अपनी पववत्रता से प्रथम अवननत के कारण थोड़ा सा भ्रष्ट िो गयी िै। द्वापर में आकर चेतना तथा ववचारों के स्थान पर उनके बाह्य रूप तथा ननयम अब धम,ि नैनतकता तथा समाज के शासक बन जाते िैं। तब भगवान् ्ववष्णु'व्यास' का रूप धारण करके अवतार लेते िैं, जो ज्ञान को संहिताबद्ध करनेवाला तथा पद्धनतबद्ध करने ेवाला िै।

द्वापर के अंत में, जब श्रीकृष्ण आए, तब यि मनोववृि अपनेचरम ववकास तक पिुँच चुकी थी, तथा केवल बािरी व्यविार में िी निीं ंअवपतु लोगों के हदलों में भी ववचार का स्थान बािरी रूप लेने लगा था और आंतररक भाव का स्थान ननयम लेनेलगा था। बिरिाल एक ववपरीत ववृि भी आरमभ िो चुकी थी। स्वयं धृतराष्ट्र चीजों के आंतररक अथ िको जाननेके सच्चे जजज्ञासु थे। मिान् ्वेदान्ती उस समय जीववत थे ेतथा भशक्षा दे रिे थे, जैसे ऋवष घोर, जजनके समीप स्वयं श्रीकृष्ण ज्ञान प्राप्त करनेगए थे। श्रीकृष्ण वि बौद्धधक शजकत थे ेजजन्िोंने इन सभी त्रबखरी िुई प्रववृियों को भलया और द्वापर की प्रबल बाह्याचार-ननष्ठता को तोड़कर 'कभल' के काय िके क्षेत्र को तैयार ककया। गीता में वे ेउन लोगों की ननंदा करते िैं जो वेद के बािरी अथ िकी चारदीवारी से बािर निीं

जाते और (साथ िी) वे यज्ञीय प्रणाली के संपूण िभसद्धांत को दाशनिनक अथ िप्रदान करते िैं, वे रूढ़ नैनतक व्यवस्थाओं के ननदेशन को अवज्ञापूवकि अस्वीकार कर देते िैं और आचार-व्यविार के एक आंतररक और आध्याजममक ववधान को प्रनतजष्ठत करते िैं। प्रतीत िोता िै कक अपने समय के बिुत से लोगों को वे एक ववनाशक और संरिकि अपशकुन के समान प्रतीत िुए थे; सभी मिान् ्िाजन्तकारी प्रवतकिों की तरि उन्िें भी भूररश्रवा के द्वारा यि किकर अवमानननत ककया गया कक वे लोगों को भटकाने वाले तथा नैनतक मूल्यों को भ्रष्ट करनेवाले िैं। यि कभलयुग का काय िैि कक वि सभी कुछ पर प्रश्न उठाकर सभी कुछ को नष्ट कर देता िै ताकक पववत्रता और अपववत्रता की शजकतयों के बीच संघष िके पश्चात् ्नए समययुग में जीवन के एक नवीन सामंजस्य और ज्ञान को स्थापना कर सके।" (CWSA 18, 263-64)

इस प्रकार इस दृजष्टकोण से िम समझ सकतिैं कक कयों अपनी शुद्धावस्था में वण िआंतररक गुण थे और ककसी प्रकार कोई बािरी ननयम बाध्यकारी निीं ंथे। परंतु ुज्यों-ज्यों युगचि के साथ-साथ चेतना उन्मुकत न रिकर अधधकाधधक बािरी ववधानों से सीभमत िो गई तब वण िआहद के भी आंतररक की बजाय बािरी मानकों का ििी सिारा लेना पड़ा।

इसे िम एक अन्य दृजष्टकोण से भी समझ सकतिैं। इसे िम आमम-तमव द्वारा उच्चतर से स्थूलतर स्तरों तक के अवरोिण के रूप में, अधधकाधधक स्थूलतर स्तरों तक अभभव्यजकत के रूप में भी देख सकतिैं। अभभव्यजकत के अंदर भगवान् ्का प्रकाश पिले अंतज्ञानि के द्वारा प्रकट िोता िै, उसके बाद वि प्रकाश बुद्धध में आता िै, उसके बार मानभसक स्तर पर, प्राणणक स्तर पर, स्थूलतर प्राणणक स्तर पर और उसके बाद स्थूल भौनतक स्तर पर आता िै। वि प्रकाश, वि परमामम तमव जजस भी स्तर पर काय िकरेगा उसी के अनुसार उसकी अभभव्यजकत िोगी। यि वैसा िी िै जैसे यहद कोई परम् ्ववद्वान् ्भशक्षक भी अधधकाधधक ननचले स्तर की कक्षाओं को पढ़ाए तो भले उसमें ककतनी भी ववद्विा कयों न िो तो भी उसे बालक की सीमाओंको ध्यान में रखना िोता िै और उसी के अनुरूप वि अपनेज्ञान को प्रकट करता िै। उसी तरि जैसे-जैसे परमामम का प्रकाश अधधकाधधक स्थूलतर स्तरों में आता िै वैसे-वैसे उसी के अनुरूप उसकी अभभव्यजकत मयाहिदत िोती जाती िै। इसी अवरोिण के अनुरूप िम अपनी संस्कृनत के ववभभन्न काल देख सकते िैं। आरंभ में जब अंतभासिाममक युग था, तब चूँकक व्यजकत सिज रूप से आंतररक सामंजस्य की जस्थनत में था इसभलए ककन्िीं बािरी रूपों और व्यवस्थाओं की अधधक आवश्यकता निीं ंथी। यि वैहदक काल था। जब आममा का प्रकाश इससे कुछ अधधक मानभसक स्तर पर आया तब िम उपननषद् का काल पातिैं। इसके पश्चात् ्जब समय का अधधक मानसीकरण िुआ तब वेदों के िी समय को छः धाराओं में बाटँ कर षड्दशनिों का प्रादुभाविव िुआ। इसी िम में िम स्मृनतयों और अनेक योगसूत्रों को पातिैं। इसके बाद इन सभी पद्धनतयों का समन्वय साधनेके भलए गीता का प्राकट्य िोता िै। गीता अपने पूव ि की सभी प्रणाभलयों, योग पद्धनतयों आहद का बड़े िी व्यापक रूप से समन्वय साध देती िै। इसके बाद िम अनेक दशनिों, तंत्रों तथा पुराणों का काल पातिैं जब सिा के अधधकाधधक प्राणणक-भौनतक भागों में उस प्रकाश का अवतरण िुआ। तमपश्चात् ्िम काभलदास आहद मिान् ्कववयों का युग पातिैं जब सुखभोगवादी भागों को भी उस प्रकाश से जोड़नेका प्रयास ककया गया। अंत में जब जड़- भौनतक स्तर तक उस प्रकाश को लानेका समय आया

तब श्रीअरववन्द व श्रीमााँ ने अनतमानभसक चेतना के अवतरण के द्वारा भौनतक रूपांतर का दशनि प्रदान ककया। इस प्रकार उच्चतम स्तरों से ज़िभौनतक तक के

स्तरों तक चेतना के अवतरण की यि एक अटूट श्रृंखला िै। [गीता] बाह्य ननयम पर बिुत िी कम बल देती िै जबकक वि उस आंतररक ववधान पर बिुत अधधक बल देती िै जजसे वण िव्यवस्था ने ववधधवत् ्अथवा ननयंत्रत्रत बाह्य अभ्यास में ढालनेका प्रयास ककया। इस प्रकरण में इस ववधान के समजष्टगत एवं ंआधथकि या अन्य सामाजजक एवं सांस्कृनतक मिमव पर निीं, अवपतु ुवैयजकतक एवंआध्याजमममक मूल्य पर िी गीता की ववचार-दृजष्ट जमी िुई िै। गीता ने यज्ञ के वैहदक भसद्धांत को स्वीकार ककया, परंतु उसने इसे एक गंभीर रूप, एक आंतररक, आमममगत एवं ंवैजश्वक अथवा व्यापक अथ,ि एक आध्याजमममक भाव एवं ंहदशा प्रदान की जो इसके सभी

मूल्यों को बदल िालती िै। यिााँभी यज्ञ-भसद्धांत की िी भानााँत यि चार प्रकार के मनुष्यों (बतुवणि)ि के भसद्धांत को

स्वीकार करती िै परंतु इसे एक गंभीर रूप, एक आंतररक, आमममपरक और सावभिौभमक अथ,ि एक आध्याजमममक भाव और हदशा प्रदान कर देती िै। और, उसके ऐसा करने ेसे एकाएक िी इस भसद्धांत के पीछे मूलभूत ववचार के मूल्य में पररवतनि िो जाता िै और वि एक ऐसा स्थायी एवं जीवंत समय बन जाता िै जो ककसी ववभशष्ट सामाजजक प्रणाली एवं ंव्यवस्था के अस्थानयमव से निीं ंबाँधा िोता। गीता जजस चीज से तामपय िरखती िै वि आयों

की उस समाज-व्यवस्था की प्रामाणणकता से निीं िै जो अब ववलुप्त िो चुकी िै या मरणासन्न अवस्था में िै, - यहद यिी इसका संपूण िअभभप्राय िोता तो स्वभाव और स्वधम िके उसके भसद्धांत में कोई स्थायी समय या स्थायी मूल्य की बात न िोती, - अवपतु गीता की रुधच मनुष्य की आंतररक सिा के साथ उसके बाह्य जीवन के संबंध से ि, उसकी अंतरामममा से तथा उसकी प्रकृनत के आंतररक ववधान से उसके कम िके ववकास से िै।

गीता के संबंध में यि बात ववशेष रूप से ध्यान में रखने की िै और इसे जजतनी बार दोिराया जाए उतना िी अच्छा िै, कक जब वि वणि-व्यवस्था या यज्ञ जैसे ककसी ववषय की चचाि करती िै तब उसका आग्रि केवल उनके बाह्य स्वरूप पर निीं ंअवपतु उनके आंतररक ववधान पर अधधक िोता िै। और जजस रूप में गीता अपनेववषय को ववकभसत करती िै उससे उसे एक ऐसा व्यापक रूप प्राप्त िो जाता िै कक कफर वि कोई सामनयक ववषय न रिकर एक सनातन समय बन जाता िै। गीता के सभी ववषयों पर यि बात लागू िोती िै। गीता के ऐसे स्वरूप को केवल श्रीअरववन्द ने िी अपनी टीका के माध्यम से उजागर ककया िै अन्यथा तो िम गीता की इस शैली को चूक जाते िैं।

गीता में ककसी प्रकार की कोई संकुधचतता निीं ंिै। उदािरण के भलए, गीता जब यज्ञ, तप और दान के ववषय में चचाकिरती िै, जजन्िें कक सामान्यतः केवल बाह्य कियाएँ िी मान भलया जाता िै, तब वि इनका सच्चा आंतररक और मनोवैज्ञाननक अथ िऔर मित्त्व प्रकट करती िै, और केवल तभी यि स्पष्ट िो पाता िै कक यज्ञ, तप और दान तो ऐसे मूलभूत तत्त्व िैं जो सृजष्ट की रचना मात्र में अंतननहिित िैं और जजन्िें व्यजकत सचेतन या अचेतन रूप से अवश्य िी करता िै। गीता यज्ञ, तप, दान, वण िआहद सभी पदों को प्रतीक के रूप में लेती िै इसी कारण इन पदों के आंतररक अभभप्राय को चूकने ेके कारण व्यजकत इन्िें केवल बािरी कियाएँ समझ बैठता िै। रूपकों और प्रतीकों के प्रयोग के कारण िी वेदों का गूढ़ आध्याजमममक अथ िमारे भलए प्रमयक्ष निीं िोता। जब तक िम प्रतीकों और रूपकों के पीछे नछपे गूढ अथ िको न देख पाएँ तब तक िम भारतीय संस्कृनत के अधधकांश रिस्य को िी चूक

जाएँगे। अतः गीता से यहद िम यि अथ िलगाएँ कक वि ककसी प्रकार की कोई सामाजजक व्यवस्था प्रदान कर रिी िै, तो यि त्रबल्कुल बेतुकी बात िोगी कयोंकक गीता ककन्िीं बािरी व्यवस्थाओं को निीं ंअवपतु ुआममा के समयों को, आध्याजममक समयों को प्रकट करनेका ग्रंथ िै। और जब गीता स्वयं िी सभी धमों को छोि़कर भगवान् ्की शरण में जानेकी बात किती िै तब उससे भभन्न अथ िलगाकर िम गीता को ककन्िीं बािरी कमों के प्रनतपादन का ग्रंथ कैसे कि सकते िैं या यि अपेक्षा कैसे रख सकतेिैं कक वि ककन्िीं बािरी कियाओं ंके रूप में यज्ञ, तप, दान, वण ि आहद का वणनि करेगी।

और वास्तव में िम देखते िैं कक स्वयं गीता िी अपने इस आशय को अमयंत स्पष्ट रूप में दशािदेती िै जब वि राह्मण और क्षत्त्रय के कम िका वणनि बाह्य कायव्यिापार की शब्दावली में, भशक्षा, पौरोहिमय एवं शास्त्रालोचन या राज्य-काय,ि युद्ध एवं ंराजनीनत की पररभाषा में निीं, अवपतु सवथिा, आंतररक स्वभाव की पररभाषा में करती िै। उसकी भाषा िमारे कानों को कुछ ववधचत्र प्रतीत िोती िै। शांत-जस्थरता, आममसंयम, तपस्या, शुधचता, सिनशीलता, सरल व्यविार, आध्याजममक समय की स्वीकृनत तथा उसके अभ्यास को साधारणतः मनुष्य का किव्यि, कम िया जीवन-व्यवसाय निीं ंकिा जाएगा। तथावप गीता का कथन और तामपय ि ठीक यिी िै, वि किती िै कक ये चीजें, इनका ववकास, आचार-व्यविार में इनकी अभभव्यजकत, साजत्त्वक प्रकृनत के धम िको बाह्य रूप में ढालनेकी इनकी शजकत राह्मण का वास्तववक कम ििै: भशक्षा, धाभमकि पौरोहिमय तथा अन्य बाह्य किव्यि इस कम िका एक अमयंत उपयुकत क्षेत्र मात्र िैं, इस अंतववकिास का एक अनुकूल साधन, इसकी समुधचत आमम-अभभव्यजकत, सुजस्थर आदश िमें और चररत्र की बाह्य सुदृढ़ता में अपनेको प्रनतजष्ठत करने ेकी पद्धनत िै। युद्ध, शासन-काय,ि राजनीनत, नेतृमव और प्रभुमव क्षत्त्रय के भलए उसी प्रकार का क्षेत्र एवं साधन िै: परंतु उसका वास्तववक कम ििै राजोधचत या वीरोधचत सकिय युद्ध-भावना के धम िका ववकास, व्यविार में उसकी अभभव्यजकत, बाह्य रूप में तथा ऊजस्वीि गनतच्छंद में उसे सशकत रूप में ढालना। वैश्य और शूर का कम िबाह्य कतव्यि की पररभाषा में व्यकत ककया गया िै, और इस ववपरीत प्रवृवि का कुछ अथ िो सकता िै। कयोंकक, उमपादन और धनोपाजनि में प्रवृि या श्रम और सेवा के घेरे में आबद्ध प्रकृनत, व्यापाररक और दासोधचत मनोवृवि साधारणतः बहिमुखिी िोती िै, अपनेकम िकी चररत्र-गठन करनेकी शजकत की अपेक्षा उसके बाह्य मूल्य-मित्त्व में िी अधधक ग्रस्त रिती िै, और यि स्वभाव प्रकृनत के साजत्त्वक या आध्याजममक कम िके भलए इतना अनुकूल निीं िै। यि भी एक कारण िै जजससे कक एक व्यावसानयक एवं औद्योधगक युग या कम िऔर श्रम के ववचार में व्यस्त समाज अपने चारों ओर एक ऐसा वातावरण बना लेता िै जो आध्याजममक जीवन की अपेक्षा भौनतक जीवन के अधधक अनुकूल िोता िै, ऊध्वगिामी मन और आममा की सूक्ष्मतर पूणतिा की अपेक्षा प्राण की क्षमता के भलए अधधक उपयुकत िोता िै। तथावप, इस प्रकार की प्रकृनत और इसके कायों का भी अपना आंतररक अथ िएवं आध्याजममक मूल्य िोता िै और इन्िें पूणतिा का साधन व शजकत बनाया जा सकता िै। जैसा कक अन्यत्र किा जा चुका िै, आध्याजममकता, नैनतक पववत्रता और ज्ञान के आदश िसे संपन्न केवल राह्मण िी निीं, और मिमा, वीरता एवं चाररत्रत्रक उच्चता के आदश िसे युकत केवल क्षत्त्रय िी निीं, अवपतु अथाभिभलाषी वैश्य, श्रमपाश में बद्ध शूरू, संकीण,ि सीमाबद्ध एवं ंपराधीन जीवन की भाधगनी स्त्री और पाप के गभ िसे उमपन्न शूरू, 'पापयोनयः', तक

भी इस माग िसे तुरंत उच्चतम आंतररक मिमा एवं आध्याजममक स्वाधीनता की ओर उठ सकतेिैं, भसद्धध की ओर, मानव-सिा के हदव्य तत्त्व की मुकतावस्था एवं पररपूणतिा की ओर आरोिण कर सकते िैं।

गीता किीं ंभी अपनी भशक्षा को बािरी व्यजकतमव से या वण िसे सीभमत निीं ंकरती। गीता के अनुसार प्रमयेक व्यजकत, चािे वि अधम से अधम या पापयोनन में िी उमपन्न कयों न िुआ िो, सीधे िी आध्याजममक स्वतंत्रता की ओर उठ सकता िै, परमामा के पास जा सकता िै। कोई भी पररजस्थनत, कोई भी अवस्था व्यजकत को परमामा तक जाने से निीं रोक सकती। इसी संदभ िमें गीता स्वभाव ननयत कम िका प्रनतपादन करती िै कक व्यजकत अपने स्वभाव के अनुसार कम िकरके सीधे िी परमामा को प्राप्त कर सकता िै। इसके भलए ककसी शूद्र वण िको राह्मण बननेकी आवश्यकता निीं। उसके भलए हदव्य स्वतंत्रता के द्वार उसी वण िमें खुले िैं। इसी की चेतावनी देते िुए गीता किती िै कक ककसी अन्य व्यजकत के धम िका भली प्रकार अनुष्ठान भी कल्याणकारी निीं

.

िोता कयोंकक वास्तव में वि तो अपनी िी सिा के समय का खण्िन िै। अपनी सिा के समय के अनुरूप किया िी व्यजकत के भलए कल्याणकारी िो सकती िै और उसी के द्वारा वि परमामा तक पिुँच सकता िै। अतः भले कोई ककसी भी वण िका िी कयों न िो, उसे अपने अंतननहित स्वभाव के अनुसार किया करने पर आध्याजममक स्वातंत्र्य
प्राप्त िो सकता िै। अपने वतमान वण िके अनुसार किया करते-करते उसमें अवश्य िी यथोधचत रूप से अन्य

प्रश्न : यिा ंदो बातें आई िैं कक प्रमयेक व्यजकत की आंतररक रचना भभन्न-भभन्न िै। और दूसरे यि कक आपभी ककन्िीं भी बािरी तौरतरीकों के द्वारा भी व्यजकत परमामा तक ओर जा सकता िै। इन दोनों िी बातों में सामंजस्य कैसे स्थावपत करें?

उत्तर : इसी के तालमेल के भलए तो स्वभाव ननयत कम िकी व्यवस्था िै। व्यजकत का जो भी आंतररक ढाचाँ िै, उसके अनुसार उसे किया करनी चाहिये। िालाकाँक किया से गीता का अथ िम जजसे प्रचभलत रूप से किया किते िैं वि निीं। श्रीअरववन्द की टीका से तो स्पष्ट िो जाता िै कक गीता जब राह्मण और क्षत्रत्रय के कमों का वणनि करती िै तब वि भी ककन्िीं बािरी कमों के रूप में निीं अवपतुआंतररक गुणों की पररभाषा में करती िै। अतः अपनेआंतररक ढाचोँ के अनुसार व्यजकत अपनेबािरी कम िकर सकता िै और धीरे-धीरे उसमें अन्य सभी वणों का भी ववकास िो जाता िै। इस दृजष्टकोण से प्रमयेक वण िको मद्भाव तक पिुँचने में अपनेननज स्वभाव के अनतररकत अन्य तीन वणों के गुणों का भी ववकास करना िोता िै। इसभलए इससे कोई अंतर निीं ंपड़ता कक शुरू में व्यजकत का वण िकौनसा िै।

इस प्रकरण पर प्रथम दृजष्टपात करते िी तीन वाद या प्रस्थापनाएँ िमारे सामने स्वयमेव उपजस्थत िोती िैं और यिाँ गीता ने जो कुछ भी किा िै उस सब में उन तीनों को अंतननहित समझा जा सकता िै। प्रथम, समस्त कम िअंदर से िी ननधारिरत िोना चाहिए, कयोंकक प्रमयेक मनुष्य के अंदर कोई अपना ननज तत्त्व िोता िै, अपनी प्रकृनत का कोई ववभशष्ट धम िएवं ंसिजात शजकत िोती िै...जो उसको प्रकृनतगत अंतरामा के कियाशील रूप का सृजन करती िै और उसे कम िके द्वारा व्यकत करना और पूण िबनाना, शजकत-सामथ्य,ि आचार-व्यविार और

जीवन में उसे प्रभावोमपादक बनाना ि ी उसका काय ि ै, उसका सच्चा कम ि ै: वि उसे आंतर और बाह्य जीवनचयिा के उधचत माग िका ननदेश करती ि ै तथा उसके और आगे के ववकास के भलए यथाथ िप्रारंभ-स्थल ि ोती ि ै। दूसूरे, मोटे तौर पर मनुष्य की प्रकृनत चार श्रेणणयों की ि ोती ि ै, जजनमें से प्रमयेक का अपना ववभशष्ट कतव्यि, कम िऔर स्वभाव का अपना आदश िननयम ि ै और यि श्रेणी मनुष्य के अपने ववभशष्ट क्षेत्र को सूधचत करती ि ै और इसी को उसके बाह्य सामाजजक जीवन में उसकी यथाथ िकायपिररधध का ननधारिण करना चाहिए। अंत में, मनुष्य चिो जो भी कम िकरे, यहद वि उसकी सिा के धम,ि उसकी प्रकृनत के समय के अनुरूप ककया जाए तो उसे ईश्वरोन्मुख मिो़ा जा सकता ि ै और आध्याजममक मुजकत एवं ंभसद्धध का एक कारगर साधन बनाया जा सकता ि ै। इनमें से प्रथम और अंनतम प्रस्थापनाएँ एक प्रमयक्ष समय एवंधमपिरायणता की द्योतक ि ैं। नन:संदेि मनुष्य के व्यजकतगत और सामाजजक जीवनचयिा का सामान्य ढंग इन भसद्धांतों के ववरुद्ध प्रतीत ि ोता ि ै; कयोंकक ननश्चय ि ी ि म अपने ऊपर बाह्य आवश्यकता, ननयम और ववधान का भयानक बोझ विन करते ि ैं, और आमम-अभभव्यजकत की, जीवन में अपनेसच्चेव्यजकतमव, अपनी सच्ची आममा, अपनेअंतरतम ववभशष्ट स्वधम िके ववकास की ि मारी आवश्यकता को पाररवेभशक प्रभाव द्वारा ि र मिो़ पर बाधाग्रस्त ककया जाता ि ै, व्याघात पिुँचाया जाता ि ै, बलपूवकि अपनेपथ से च्युत कर हदया जाता ि ै, अथवा बिुत ि ी क्षीण अवसर और तुच्छ ववस्तार-क्षेत्र प्रदान ककया जाता ि ै। प्रतीत ि ोता ि ै कक जीवन, राष्ट्र, समाज, पररवार और ि मारे चारों ओर की सभी शजकतयों ने ि मारी आममा पर अपना जुआ लादने के भलए, अपने साचौं में ि में बलात् ्ढालने के भलए, ि म पर अपना यांत्रत्रक स्वाथ िऔर स्थूल तामकाभलक सुख-साधन थोपनेके भलए षि्यंत्र कर रखा ि ै। ि म मशीन के पुजे बन जाते ि ैं; ि म सच्चे अथों में मनुष्य, 'पुरुष', आममा और मन निीं ि ोते ि ैं, आममा की ऐसी मुकत संतनत, ऐसे अमृत् पुत्र निीं ि ोते ि ैं जो अपनी सिा की उच्चतम स्वभावगत पूणतिा का ववकास करने और उसे जानत की सेवा का साधन बनानेमें समथ ि ों और कदाधचत् ्ि ी ि में सच्चे अथों में ऐसे बननेके भलए अवसर ि ी हदया जाता ि ै। ऐसा प्रतीत ि ोगा कक ि म वैसे निीं ि ोते जैसा ि म अपने को बनाते ि ैं, अवपतु वैसे ि ोते ि ैं जैसा ि में बनाया जाता ि ै। परंतु कफर भी, जजतना अधधक ि म ज्ञान में अग्रसर ि ोंगे, उतना ि ै अधधक गीता के ववधान का समय ि म पर अवश्यमेव ि ी प्रकट ि ोगा। बाभलक को भशक्षा ऐसी ि ोनी चाहिए जजससे कक उसकी प्रकृनत के अंदर जो कुछ जी कने श्रेष्ठ, अमयंत शजकतशाली, अमयंत अंतरंग और जीवंत ि ै वि सब बािर प्रकट ि ो जाए; मनुष्य के कम िऔर ववकास को जजस साचोंमें ढलना चाहिए वि उसके स्वभावगत गुण और सामथ्य िके अनुरूप ि ी ि ोना चाहिए। नयी चीजें उसे अवश्य प्राप्त करनी ि ोंगी, पर उन्िें वि, सवश्रेिष्ठ तथा अमयंत प्राणवंत रूप में, अपनिी ववकभसत ककये आदश ितथा सिजात शजकत के आधार पर ि ी प्राप्त कर सकेगा। और, इसी प्रकार मनुष्य के कतव्यि उसकी स्वाभाववक प्रवृवि, प्रनतभा और क्षमताओंके द्वारा ि ी ननधारिरत ि ोने ेचाहिए। जो व्यजकत इस प्रकार स्वतंत्र रूप से ववकभसत ि ोगा वि एक जीवंत आममा और मन ि ोगा और उसके अंदर जानत की सेवा के भलए किीं अधधक मििर शजकत ि ोगी। और, अब ि म अधधक स्पष्ट रूप में यि देख सकते ि ैं कक यि ननयम केवल व्यजकत के संबंध में ि ी निीं,ं अवपतुसमाज और राष्ट्र, सामुदानयक आममा एवं समजष्टगत मानव के संबंध में भी समय ि ै। चार वणों तथा उनके कायों के संबंध में दूसूरा मत अधधक ववकवादास्पद ि ै। यि किा जा सकता ि ै कक यि अमयंत सीधा-सादा और ननश्चयाममक ि ै, कक यि जीवन की जहटलता और मानव-प्रकृनत की नमनशीलता को पयाप्ति रूप से ववचार में निीं लाता, और भसद्धांत या उसकी अंतननहिित

ववशेषेताएँ कुछ भी कयों न िों, उसका बाह्य सामाजजक प्रयोग यांत्रत्रक आचार के ठीक उसी अमयाचार की ओर ले जाएगा जो स्वधम िके समस्त ववधान के सवथिा ववरुद्ध ि।ै परंतु ऊपरी सति के नीचे इसका एक गंभीरतर अथ िभी ैजो इसे एक कम संहदग्ध मूल्य प्रदान करता ि।ै और, चािे िम इसे अस्वीकार भी कर दें, कफर भी तीसरा मत अपनेव्यापक अथ िको भलए िुए अटल रिेगा। जीवन में मनुष्य का कम िएवं कतव्यि कोई भी कयों न िो, यहद वि कम िअंदर से ननधारिरत िो अथवा यहद मनुष्य को ऐसा अवसर प्रदान ककया जाए जजससे वि उस कम िको अपनी प्रकृनत की आमम-अभभव्यजकत बना सके तो वि उसे ववकास तथा भिर आंतररक पूणतिा का साधन बना सकता ै। और, उसका स्वाभाववक कम िकोई भी कयों न िो यहद वि उसे उधचत भावना में संपन्न करे, आदश िमन के द्वारा उसे आलोककत कबरे यहद वि उसकी किया को अपनेअंतःस्थ भगवान् ्के उपयोग में लगा ि,ै ववश्व में अभभव्यकत परमामा की उसके द्वारा सेवा करे अथवा मानवता में भगवान् ्के जो उद्देश्य िैं उनके भलए उसे एका सयेता कये करण बना दे तो वि उसे सवोच्च आध्याजममक पूणतिा और स्वतंत्रता के साधन के रूप में पररणत कर सकता ि।ै

यिा ंाँजो तीन बातें िैं उनमें पिली यि िै कक िमारी समस्त भशक्षा, िमारे कम,ि आचार-व्यविार आहद सभी कुछ एकमात्र िमारे आन्तररक समय को िी ववकभसत और अभभव्यकत करने ेके साधन िोने ेचाहिये। परन्तु वास्तव में ऐसा िो निीं ंपाता कयोंकक िमारी अंतरामा पर बािरी जीवन के ननयमों, पररवार, जानत, समाज, राष्ट्र आहद के ववधानों, भौनतक ववज्ञान के ननयमों आहद के अनेकानेक जुए लदे रिते िैं जजनके कारण उसे सिज रूप से अपने-आप को अभभव्यकत करने ेका अवसर निीं ंभमल पाता। दूसूरी बात यि िै कक मनुष्यों की प्रकृनत की चार श्रेणणयाँ िोती िैं और प्रमयेक मनुष्य का अपनी िी श्रेणी के अनुसार ववभशष्ट कतव्यि, कम िऔर स्वभाव िोता िै और इसी के अनुसार सामाजजक जीवन में उसकी व्याविाररक भूभमका ननधारिरत िोनी चाहिये। इसमें तीसरी बात जो सबसे मित्त्वपूण िै वि यि िै कक व्यजकत की बािरी पररजस्थनतयाँ चािे जो भी िों, िमारे बािरी कम िका स्वरूप जो भी कयों न िो परंतु ये सभी अंतरामा की अभभव्यजकत के साधन बन सकती िैं। मूलतः जजन्िें िम बािरी पररजस्थनतयाँ किते िैं वे भी परम् ्प्रज्ञा द्वारा िी ननधारिरत की जाती िैं और जाने-अनजाने वे सभी िमें आगे की ओर ले जाती िैं। परंतु अज्ञानवश मनुष्य बािरी पररजस्थनतयों को, अपनेपररवेश को, दूसूरे लोगों को, वातावरण को, समाज को या कफर उसे भमली बािरी प्रकृनत को िी कोसता िै कक वे उसकी प्रगनत में बाधक िैं। या कफर व्यजकत भाग्य को कोसता िै कक उसे दुभााग्यिवश प्रगनत के सुअवसर प्राप्त निीं िुए। परंतु ये सभी केवल बिानेमात्र िैं। यहद कोई वास्तव में परमामा की ओर जाना चािे तो सारे ब्रह्मांड िमें ऐसा कुछ निीं ंजो उसे उस ओर जानेसे रोक सके। इस संदभ िमें श्रीमाताजी किती िैं, "कभी मत किो कक 'अमुक व्यजकत यि निींकरता,' 'अमुक व्यजकत तो कुछ और िी चीज करता िै,' 'कक वि तो विी करता िै जो उसे निीं ंकरना चहिये' - इन सब बातों से तुम्िारा कोई प्रयोजन निीं। तुम इस पृथ्वी पर, एक भौनतक शरीर में, एक सुननजश्चत उद्देश्य से लाये गये िो और वि उद्देश्य ैइस शरीर को जजतना संभव िो उतना सचेतन बनाना, इसे भगवान् ्का अमयंत पूण िऔर अमयंत सचेतन यंत्र बनाना। भगवान् ्ने तुम्िें चेतना के सभी क्षेत्रों में - मानभसक, प्राणणक और भौनतक क्षेत्र में - वि तुमसे जो कुछ आशा करते िैं उसके अनुपात में योग्यता और साधन की एक ववशेषे मात्रा प्रदान की िै, और वि जो कुछ तुमसे आशा रखते िैं उसी के अनुपात में तुम्िारे चारों ओर की समस्त पररजस्थनतयाँ भी व्यवजस्थत िैं, और जो लोग

तुमसे यि किते िैं, 'मेरा जीवन भयावि िै, म ैंसंसार में अमयंत दयनीय जीवन यापन करता िूाँ,' वे गधे िैं। प्रमयेक व्यजकत का जीवन ऐसा िै जो उसके सवांगपूण िववकास के उपयुकत िै, प्रमयेक व्यजकत को ऐसे अनुभव प्राप्त िैं जो उसे उसके सवांगपूण िववकास में सिायता देते िैं, और प्रमयेक व्यजकत के सममुख जो कहठनाइयााँ िैं वे भी ऐसी िैं जो उसे उसकी पूण िउपलजब्ध में सिायता देती िैं।

यहद तुम अपनी ओर सावधानी के साथ दृजष्टपात करो तो देखोगे कक तुम सवदिा िी अपनेअन्दर उस सद्गुण के ववपरीत वस्तु को विन करते िो जो तुमिें उपलब्ध करनी िै (यिा ाँम ैं"सद्गुण" शब्द का प्रयोग उसके ववशालतम और उच्चतम अथ िमें कर रिा िूाँ।) तुमिारा एक ववशेष लक्ष्य िै, एक ववशेष उद्देश्य िै, एक ववशेष उपलजब्ध िै, जो तुमिारी अपनी िै, िर एक की व्यजकतगत, और तुम अपनेअंदर अपनी उपलजब्ध को पूण िबनाने े के भलए आवश्यक सभी कहठनाइयों को विन करते िो। सवदिा िी तुम यि देखोगे कक तुमिारे अन्दर अंधकार और प्रकाश समान-रूप से िैं : तुममें एक योग्यता िै, तुममें उस योग्यता का अभाव भी िै। परंतु तुम यहद अपनेअंदर एक बिुत काला नछर, बिुत घना अंधकार देखो तो यि ननजश्चत रूप से जानो कक तुमिारे अंदर किींपर एक मिान् ् प्रकाश भी िै। अब यि तुमिारा काम िै कक तुम यि जानो कक एक का उपयोग दूसूरे की संभसद्धध के भलये ककस प्रकार ककया जाए।" (CWM 4,117-18)

श्रीमाताजी के वचनों से यि स्पष्ट िो जाता िै कक वास्तव में यहद कोई कुछ करना चािे तो कोई उसे रोक निीं ंसकता। सारे रह्माण्ड्में ऐसा कुछ निीं ंजो ककसी व्यजकत को प्रगनत करने ेसे रोक सकता िो कयोंकक वास्तव में उसकी प्रगनत के अनुकूल िी तो सारा रह्माण्ड्बना िै। ऐसी कोई बािरी घटना, कोई बािरी पररजस्थनत या अन्य कुछ भी ऐसा निींिैसकता जो व्यजकत की प्रगनत को रोक सकता िो। इसीभलए गीता का यि भसद्धांत कक ककन्िीं भी बािरी चीजों को आंतररक अभभव्यजकत का साधन बनाया जा सकता िै, एक परम् ्भसद्धांत िै। जब सच्चाई का अभाव िो केवल तभी व्यजकत बािरी पररजस्थनतयों पर दोषारोपण करता िै। यिााँ तक कक दासता की जस्थनत भी व्यजकत को भगवान् ्के पास पिुाँचने से निीं रोक सकती। सूफी संत रात्रबया के जीवन वृिांत से िम देखते िैं कक ककस प्रकार माता-वपता के देिांत के बाद भयंकर अकाल के समय ककसी िूर व्यजकत ने उसे कुछ पैसों के भलए अन्य ककसी व्यजकत को गुलाम के रूप में बेच हदया। जब रात्रबया अपने माभलक के घर में पिुंची तब उसे सारे हदन काम करना पड़ता। परंतु रात के समय वि प्रभु की इबादत करते िुए उनके प्रेम में रोती रिती थी। एक रात उसके रोने की आवाज सुनकर जब उसके माभलक ने उसकी जस्थनत देखी और उसके चारों ओर के अद्भुत प्रकाश को देखा तो वि अवाक् रि गया और भीतर से ववित िो उठा और तुरंत िी उसने उसे मुकत कर हदया। किनेका अथ िै कक यहद भीतर सच्चाई िो तो बािर से गुलामी की अवस्था भी व्यजकत को प्रभु से भमलने से निीं ंरोक सकती। यहद िम सच्चाई के साथ सभी चीजों से मुकत िोना चािें तो ऐसी कोई चीज निींजो िमें रोक सके। अतः पररजस्थनतयों को िम दोष भले िी देते िों, परंतु वास्तव में तो िमें अपनी उस जस्थनत में बड़ा सुख भमलता िै और िम उस अंधकार से ननकलना चािते िी निीं। गीता िमें उसी अंधकार से ननकालने का प्रयास करती िै। वि किती िै कक एक बार जब व्यजकत के यि समझ में आ जाए कक केवल परमाममा िी एकमात्र पाने योग्य िैं तब उसे उनकी प्राजप्त से कोई निीं ंरोक सकता और वि उन्िें अवश्य िी प्राप्त करके रिेगा। गीता के अनुसार ककसी अधम या

नीच या अमयंत दुराचारी व्यजकत में भी यहद यि संकल्प आ जाता ि◌ै तो वि भी साधु मानने ◌ेयोग्य ि◌ै जो कक अपने सारे कुल का भी कल्याण कर देता ि◌ै, विींकोई साजत्त्वक राह्मण जो भगवान् ◌्की भजकत से शून्य ि◌ै, वि स्वयं अपना भी कल्याण निीं ◌ंकर सकता। अतः गीता की भशक्षा भी ककसी प्रकार की भशकायत के भलए कोई स्थान निीं देती।

एक चीज जो ि◌में सदा ध्यान में रखनी चाहिये वि यि ि◌ै कक गीता की दूसूरी प्रस्थापना का, अथाित् ◌् चातुवणि्य ि◌के भसद्धांत का, ि◌म बाकी दो प्रस्थापनाओं से पृथृक् करके ववचार निीं ◌ंकर सकते। कयोंकक गीता का मत मूल रूप से यिी ि◌ै कक व्यजकत की अंतराममा की पूण ि◌अभभव्यजकत संभव ि◌ोनी चाहिये और उसी के अनुसार उसके बािरी कम ि◌ननधाररित ि◌ोनेचाहिये। इस सिज अभभव्यजकत में सामान्यतः बाह्य सामाजजक और व्यजकतगत ननयम बाधा ि◌ालते ि◌ैं, ि◌ालाकााँक उसका भी अपना एक गिन और गुह्य कारण ि◌ै, परंतु ◌ुजब तीसरी प्रस्थापना ववद्यमान ि◌ै, कक ककसी भी 'बािरी पररजस्थनत के अंदर भी व्यजकत सीधे प्रभु के पास पिुाँच सकता ि◌ै. तब कफर तत्त्वतः तो कोई समस्या ि◌ी निीं ◌ंरिती। यहद व्यजकत के भीता आममा का प्रकाश ि◌ै तो ऐसी कोई बािरी शजकत निीं जो उसे प्रस्थानय ि◌ोने से रोक सके। जब व्यजकत में परमाममा के प्रनत लगन लग गई तब ककसी भी बािरी पररजस्थनत में कया सामथ्य ि◌ि◌ो सकती ि◌ै कक उसे रोक सके। जब व्यजकत भीतर से मााँजगदंबा की शरण में ि◌ो, जजनकी ववना इच्छा के कोई पिा तक निीं हिल सकता, तब कफर ककसी प्रकार के अननष्ट की कया संभावना ि◌ै? परंतु ि◌मारा अिं इस पर ि◌में ववश्वास निीं ◌ंकरनेदेता। विीं, ज्यों-ज्यों भीतर से ि◌मारा ज्ञान बढ़ता ि◌ै मयों-मयों ि◌म पातेिं कक पररजस्थनतयााँ तो कभी रुकावट बन ि◌ी निीं ◌ंसकतीं अवपन के तो ि◌मारी प्रगनत के भलये आवश्यक साधन अथवा यंत्र ि◌ैं। सिी चेतना में पररजस्थनतयााँ तो व्यजकत को अवरोध की बजाय अवलंब भसद्ध ि◌ोती ि◌ैं। जजतना ि◌ी मि चैतन्य ि◌ोंगे उतना ि◌ी अधधक ि◌में वे साधन के रूप में नजर आएाँगी न कक ि◌मारे ऊपर लादे गये जुए के रूप में। इस समय को भगवान् ◌्गीता में भभन्न-भभन्न तरीकों से स्थावपत करते ि◌ैं।

श्रीअरववन्द के अनुसार यहद चातुवणि्य ि◌के भसद्धांत को इस अंनतम प्रस्थापना से समजन्वत करके न देखा जाए तो ि◌म गीता की भशक्षा के मूल स्वरूप को ि◌ी ववकृत कर देंगे। आरंभ से ि◌ी ि◌म यि देखते आए ि◌ैं। कक जो ववषय गीता में त्रबल्कुल गौण और देश-काल से सीभमत प्रतीत ि◌ोतेिं वे भी अपनेगिरे अथ ि◌में लेनेपर अपना वि स्वरूप छोि़ कर व्यापक स्वरूप ग्रिण कर लेते ि◌ैं। इसी प्रकार ि◌में यि समझ लेना चाहिये कक गीता कभी भी जानत-प्रथा जैसी ककसी सीभमत चीज का प्रनतपादन निीं ◌ंकर सकती अतः ि◌में इसे इसके व्यापक स्वरूप में लेनेपर िी इसका सिी अथ ि◌समझ में आ सकता ि◌ै।

प्रश्न : यिा ◌ाँटीका में श्रीअरववन्द किते ि◌ैं कक, "यि ननयम केवल व्यजकत के संबंध में ि◌ी निीं, अवपतु समाज और राष्ट्र, सामुदानयक आममा एवं ◌ंसमजष्टगत मानव के संबंध में भी समय ि◌ै।" इसका कया अथ ि◌ि◌ै?

उत्तर : इसका अथ ि◌ि◌ै कक जजस प्रकार ककसी व्यजकत के भलए यि लागू ि◌ोता ि◌ै कक उसके भीतरी स्वभाव के अनुसार उसके बािरी कमों का ननधारिण ि◌ोना चाहिये ताकक उसकी अंतराममा की सिज अभभव्यजकत ि◌ो सके, उसी प्रकार यि बात समजष्टगत आममा पर भी लागू ि◌ोती ि◌ै। ककसी समाज का, ककसी राष्ट्र का अपना स्वतंत्र

 व्यजकतमव िो ता िै और उसकी अपनी आममा िो ती िै जजसे अपनी अभभव्यजकत का उतना िी उसववकार िै जजतना ककसी व्यजकत को। श्रीअरववन्द व स्वामी वववेकानंद, धोनों ने िी अनेकों स्थानों पर इस समय को उजागर ककया िै। पद, याधचयाजममकता िी भारत का अंतननहिित भाव िै, उसकी आममा िै और यहद इस आममा की अवेिलना कर मि पाश्चामय संस्कृनत के मूल्यों को भारत की आममा पर लादने ेका प्रयास करें तो इसका पररणाम सवनिाश िोगा। स्वामी वववेकानंद के शब्दों में, "यहद तुम उस आध्याजममकता को छोड़कर पाश्चामय भौनतकवादी सभ्यता के पीछे जाओगे, तो इसका पररणाम यि िोगा कक तुम तीन िी पीहढ़यों में लुप्त जानत बन जाओगे; कयोंकक इससे जानत की मेरुदण्ड िी टूट जाएगी, और जजस आधार पर ववराट् राष्ट्रीय भवन बनाया गया िै, वि नष्ट िो जाएगा; और इसका पररणाम िोगा िर तरि से संपूण िसवनिाश।" (CWSV 3, 151-53)

प्रश्न : एक स्थान पर श्रीअरववन्द यिााँकितेिं कक प्रतीत िोता िै कक अनेकानेक बािरी शजकतयों ने अपना जुआ िमारे ऊपर थोप कर िमें यंत्रवत् ्चलाने का षियंत्र रच रखा िै जजससे कक िम कोई आममा या 'पुरुष' न रि कर मशीन के पुजों की भााँनत व्यविार करने ेलगते िैं। और इसके भलए ज्ञान को इससे छूट ननकलनेका उपाय बताया गया िै। इस सारे ववषय का अभभप्राय कया िै?

उत्तर : प्रमयेक व्यजकत की अन्तराममा का अपना एक समय िै। इस आंतररक समय की अभभव्यजकत के भलये िमारी बािरी सिा का ननमाणि िोता िै। परन्तु यिा ाँजजस आंतररक समय की बात िो रिी िै वि तो केवल व्यजष्टगत अभभव्यजकत और उसके समय की बात िै जबकक परमाममा केवल व्यजष्टगत िी निीं अवपतु ुवैजश्वक और परामपर भी िैं। अत: व्यजकत केवल व्यजष्टगत अभभव्यजकत से िी सीभमत निीं ंिै, वैजश्वक और परामपर भी उसी के पिलूिैं। इस दृजष्टकोण से जो कुछ भी व्यजष्टगत और समजष्टगत अभभव्यजकत िुई िै वि सब कुछ व्यजकत स्वयं िी िै, और वि स्वयंिी परामपर भी िै। इस पिलू ूको िमें सदा िी ध्यान में रखना चाहिये। अत: यिााँ जजस समय की अभभव्यजकत की बात िै वि तो केवल व्यजष्टगत समय की अभभव्यजकत की बात िै। परंतु व्यजकत केवल इसी से सीभमत निीं ंिो जाता चूंकक वैजश्वक और परामपर भी उसी की सिा के पिलू िैं। अब वैजश्वक पिलू में सभी समजष्टयााँ सजममभलत िो जाती िैं और व्यजष्टगत ववकास के साथ िी साथ समजष्टगत ववकास भी चल रिा िै। गीता में जो चचाि िै वि तो केवल व्यजष्टगत समय की बात िै। यि तो वैसा िी िुआ जैसे कक िम शरीर के ककसी अंग ववशेषे के समय की बात कर रिे िों। अत: जब तक उस अंग ववशेषे की बात िो तब तक तो वि समय लाग िोता िै परंतु ुजब िम पूरे शरीर की बात करें तो उस पर वि उसी प्रकार लागूनिींिो सकता कयोंकक वि अंग एक ििृर समजष्ट का एक भाग िै जजसका अपना ववधान िै। इस दृजष्टकोण से, असंख्यों ब्रह्माण्ड और अनंत स्तरीय अभभव्यजकत भी िम स्वयंिी िैं। अत: इन सभी पिलुओंको सजममभलत रूप से लेनेपर िी िमारी सिा का पूणतिर समय प्रकट िो सकता िै। और जब िम उस समय को चूक जाते िैं तभी िमें यि प्रतीत िोता िै कक समाज, राष्ट्र आहद का ववधान िमारे ऊपर लादा गया िै। श्रीअरववन्द इस ववषय को अन्य स्थानों पर तो स्पष्ट करते िैं परंतु गीता के संदभ िमें िम यि आशा निींकर सकतेकक वे ववषय को छोड़कर अन्य ताजत्त्वक ववषयों का ननरूपण करने लगेंगे। परंतुअपनी कृनत 'मानव-चि' में श्रीअरववन्द इस ववषय पर प्रकाश िालते िैं कक जजस प्रकार मानव व्यजकतमव िोता िै उसी प्रकार ककसी जानत, समाज, राष्ट्र आहद समजष्टयों का भी अपना-अपना पृथक् व्यजकतमव

िोता िै और उन सब का भी िमववकास चल रिा िै और वे ेभी अपनी अधधकाधधक आमम-अभभव्यजकत का

प्रयास

कर रिे िैं। स्वयंपृथ्वी की अपनी एक पृथक् सिा िै, सौर-मंिल की अपनी पृथक् सिा िै। इस प्रकार इन सारी सिाओं का एक िी साथ ववकास चल रिा िै। यिी निीं, इन असंख्यों भौनतक रह्माण्िों के अनतररकत अधधकाधधक सूक्ष्मतर प्राणणक, मानभसक और आंतराजममक जगत् ्िैं वे सब भी व्यजकत में ननहित िैं। अतः अभभव्यजकत में अंत पररणाम उन सभी की किया के समीकरण के अनुसार िोता िै। और चूंकक स्वयंपरमामा िी अभभव्यकत िो रिे िैं

इसभलए प्रतीनत भले कुछ भी िो, परंतु सभी चीजें त्रबल्कुल पूण िऔर समुधचत रूप से िी चल रिी िैं। जजन्िें िम ववषम या प्रनतकूल पररजस्थनतयों की संज्ञा देते िैं, वे भी वास्तव में तो पूण िअभभव्यजकत के दृजष्टकोण से सिायक

िी निीं ंअवपतुआवश्यक िोती िैं। इसभलए ज्यों-ज्यों ज्ञान का ववकास िोता िै मयों–ी-मयों व्यजकत सभी बिारी पररजस्थनतयों आहद को अपनी अभभव्यजकत का साधन बना सकता िै। चूँकक परमामा असीम िैं, अतः वे बुद्धध से

सवथिा परे िैं। ज्ञान और कुछ निीं अवपतु परमामा के ककसी तत्त्व को देखने का एक दृजष्टकोण मात्र िी िै कयोंकक बुद्धध की पकि में आने ेके बाद तो वि तत्त्व सीभमत िो जाता िै इसीभलए परमामा ववस्तृतम और सूक्ष्मतम बुद्धध की पकि से भी अनंततः परे िैं। अतः ज्ञान का जजतना अधधक ववकास िोता िै उतनी िी अधधक पररधध में

वि देख सकता िै। परंतु विी पूण िसमय निींिोता। इसीभलए अंत में भगवान् ्अजुनि को परम् ्वचन कितेिैं कक सभी धमो का पररमयाग कर उनकी शरण ग्रिण कर, कयोंकक अंततः बड़े ेसे बड़ा ज्ञान, बड़े ेसे बड़ा दशनि भी सीभमत िी िोता िै और भगवान ्की उपलजब्ध के बीच एक बाधा िोता िै। इसी कारण भगवान ्जगि-जगि पर ज्ञान को निीं ंअवपतुपेरेम और भजकत को िी परम ्स्थान प्रदान करते िैं। अतः यहद हृदय में भगवान ्के भलए पेरेम िो तब

जिा ंतक वणों की बात िै तो यि तो िम बिुत बार चचाि कर चुके िैं कक जगदंबा की चार शजकतयों के प्रभाव के कारण िी ये चारों उमपन्न िोतिैं। साथ िी, इसमें अनेक बार इस उजकत से कुछ भ्रम पैदा िो जाता िै कक 'जन्मना जायते शूरू, संस्कारात् ्द्ववज उच्यते'। इस उजकत का चातुवण्यि िव्यवस्था से कोई संबंध निीं। यि एक मूल समय िै कक जन्म से तो सभी शूरू अथाति्ननमन चेतना में जन्म लेते िैं, केवल संस्कार, अथात् ि्भशक्षण, के द्वारा िी उनका नवजन्म साधधत िोता िै। इसी संदभ िमें यि उजकत प्रचभलत थी कक शूर को वेदपाठ का अधधकार निीं िै। ऐसा ककसी शूर वण िके संबंध में निींकिा जाता था अवपतु शूरू अथात्िछोटी चेतना के व्यजकत के संबंध में था जजससे कक वेदपाठ का अधधकारी निीं ंसमझा जाता था। यि एक स्पष्ट सी बात िै कक िम ककसी बच्चे के िाथ में घातक िधथयार निीं ंथमाएँगे। उसी प्रकार एक छोटी चेतना के व्यजकत द्वारा वेदपाठ संभव निीं ंिै कयोंकक ऐसा करके वि स्वयं अपनेभलए और दूसरों के भलए ववभ्रम या संकट की जस्थनत पैदा कर सकता िै। इसी वण िव्यवस्था को समझनेका एक और भी गिरा और सूक्ष्म तरीका िै। प्रमयेक व्यजकत के व्यजकतमव में ये चारों िी वण िोतिैं। अपनी आंतररक सिा में सभी द्ववज िोतिैं और अपनी स्थूल भौनतक चेतना में सभी शूरू िोतिैं। इस तरि शूरू वण िका व्यजकत भी अपनी आंतराजममक सिा में द्ववज िोता िै और वण िसे राह्मण िोने पर भी अपनी स्थूल भौनतक सिा में व्यजकत शूरू िोता िै। और इस योजना में प्राण और मन में क्षत्रत्रय और वैश्य के लक्षण िोतिैं। प्राण और मन के अंदर िम लेन-देन, आपसी आदान-प्रदान आहद वैश्य के गुण भी देखते िैं, तो साथ िी सािस,

कफर धचंता का तो कोई ववषय िी निीं ्रि जाता। तब ऐसी कोई चीज निीं रि जाती जो व्यजकत को भगवान ्तक पिुँचने ेसे रोक सके।

शौय,ि समय के भलए संघष िआहद कुछ क्षत्रत्रय संबंधी वृविया ाँभी देखते िैं। इस प्रकार प्रमयेक व्यजकत की सिा के कोषों में इन चारों िी वणों के लक्षण िोतेिैं और चारों का िी ववकास करना और उन्िें परमाममा की ओर मोड़ना आवश्यक िै। व्यजकत परमाममा की ओर अपनेमन, प्राण और शरीर के द्वारा ज्ञानयोग, भजकतयोग या कमयोग में से ककसी एक के द्वारा या कफर सभी की एक साथ किया द्वारा जा सकता िै। और जब वि अंतराममा के द्वारा उनको ओर उन्मुख िोता िै तो यि आध्याजममक योग िो जाता िै। अतः िम वणों से यि अथ िभी लगा सकतेिैं। जब िम इस रूप में गीता को समझें तो पाएँगे कक गीता का अथ िअमयंत गंभीर और व्यापक िै और यहद उसमें ककसी प्रकार की कोई संकीणता प्रतीत िोती िै तो वि भी केवल िमारे दृजष्टकोण की िी संकीणता िै, न कक स्वयं गीता की। कयोंकक गीता की भशक्षा ककसी देश या काल से सीभमत निीं अवपतु ुअपने-आप में वि सनातन िै और सदा-सवदा प्रासंधगक रिती िै।

परंतु यहद इस भशक्षा को िम स्वतः-संपूण िअथ िरखने वाले एक स्वतंत्र उद्धरण के रूप में न लें, जैसा कक बिुधा ककया जाता िै, अवपतु सारे ग्रंथ में और ववशेषेकर अंनतम बारि अध्यायों में वि जो कुछ किती आ रिी िै उसके साथ संबंध में इसे देखें, जैसा कक िमें करना िी चाहिए तो गीता की भशक्षा का अथ िियािाँ और भी गंभीर िै।

जीवन और कमों के ववषय में गीता का दशनि यि िै कक सब कुछ भागवत् ्सत् ्से, ववश्वातीत और ववश्वगत परमाममा से उद्भूत िोता िै।.... और यद्यवप ववश्व की यि परम् ्आममा, यि 'एकमेव' जो सव िैं, िमें माया की शजकत के द्वारा यंत्रारूढ़ की भानाँत संसार-चि पर घुमाता िुआ प्रतीत िोता िै, ककसी कुशल यांत्रत्रक ननयम के द्वारा िमें िमारे अज्ञान में उसी प्रकार गढ़ता हदखायी देता िै जैसे कुमिार एक घड़े ेको गढ़ता िै अथवा जैसे जुलािा कपड़ा बुनता िै, परंतु कफर भी यि आममा िमारी अपनी िी उच्चिम आममसिा िै, और िमारी सिा का जो वास्तववक भाव, िमारा अपनेआप का जो समय िै, जो िमारे अंदर ववकभसत िो रिा िै और जन्म-जन्मांतर में ननत नये और अधधक उपयुकत रूप खोज रिा िै, िमारे पशु,ु मानव और हदव्य जीवन में, जो कुछ िम थे,े जो कुछ

मि िैं और जो कुछ िम िोंगे उस सब में िमारे अंदर ववकभसत िो रिा िै, उसके अनुसार, - उस आंतररक आजममक

समय के अनुसार िमारी यि अंतरस्थ आममा अपनी सवज्ञिानमय सवशिजकतमिा में िमें उिरोिर गहठत करती िै, जैसा कक िमारी आखेंाँ खुल जानेपर िमें पता लग जाएगा। जगत की यि मशीनरी, त्रत्रगुण, मन, देि, प्राण, भावावेग, कामना, संघष,ि ववचार, अभीप्सा और प्रयास की यि उलझी िुई जहटलता, सुख-दुुःख, पाप-पुण्य, प्रयास और सफलता-ववफलता, जीव और पररवेश, स्व और पर की यि परस्पर-ग्रधथत किया-प्रनतकिया तो मेरे अंदर की एक उच्चतर आध्याजममक शजकत का केवल एक बाह्य अपूण िरूप िै; अपनी आममा में म ैंननगूढ़ रूप से जो हदव्य

और

मिान् ्सिा िूँ तथा अपनी प्रकृनत में म ैंप्रकट रूप से जो हदव्य और मिान् ्सिा बनूाँगा उसी की आमम-अभभव्यजकत को उिरोिर साधधत करने के भलए वि आध्याजममक-शजकत अपने सभी उतार-चढ़ावों के बीच ननरंतर यमन करती िै।

प्रमयेक जीव भगवान् ्का एक ववशेषे भाव, एक ववशेषे पिलू िै और उसी के अनुरूप भगवान् ्उसकी बाह्य प्रकृनत को गढ़ रिे िैं। वि ववभशष्ट भाव िी स्वभाव िै और उसे सभभसद्ध करना स्वधम िै। यि आमम-अभभव्यजकत यि किया अपनी सफलता का तत्त्व अपने-आप के भीतर ननहित रखती िै, और वि िै स्वभाव और स्वधम िका तत्त्व।

एक आध्याजममक तत्त्व ि◌ै। इसका ककसी सामाजजक किया से, जानतगत ऊँच-नीच से कोई संबंध निीं। गीता का स्वभाव और स्वधम ि◌तो व्यजकत का वि ववभशष्ट आंतररक ववधान ि◌ै जजसके अनुसार भगवान् ◌् उस व्यजकत को अग्रसर करते ि◌ैं। जब गीता स्वभाव की बात करती ि◌ै तब उसका ककसी प्रकार की वणि–व्यवस्था से कोई संबंध निीं िोता। वि तो बिुत ि◌ी गिरी चीज ि◌ोती ि◌ै। साथ ि◌ी, अंतननिहित सभी स्वभावों को एक-एक कर के सवांगीण रूप से ववकभसत करनेपर व्यजकत मद्भाव में पिुँच जाता ि◌ै। कयोंकक आणखर व्यजकत स्वयं परमाममा ि◌ी तो ि◌ै। इसभलए वास्तव में जो वि ि◌ै विी अंततः उसे बनना ि◌ै। इस दृजष्टकोण से देखने पर ि◌ी ि◌में इस बात का भान ि◌ोता ि◌ै कक गीता ककन्िीं सतिी ववषयों की चचानिीं करती अवपतु अकल्पनीय रूप से व्यापक और गिरे तत्त्वों का ननरूपण करती ि◌ै परंतु चूंकक जजन रूपकों या प्रतीकाममक शब्दों का वि प्रयोग करती ि◌ै उनको उनके स्थूल अथ ि◌में लेनेपर िी ि◌में इसकी भशक्षा सतिी प्रकार की प्रतीत ि◌ोती ि◌ै और ि◌म इसके गंभीर अथ ि◌को चूक जाते ि◌ैं। जजस रूप में अब गीता ने स्वभाव और स्वधम ि◌को पररभावषत ककया ि◌ै उसमें तो ककसी प्रकार के कोई जानतगत ववभाजन आहद का कोई प्रश्न ि◌ी निीं ◌उठता, वि तो गिन आंतराजममक जगतों का ववषय ि◌ै और केवल अनुभूनत से ि◌ी समझ में आ सकता ि◌ै। सभी ववषयों का धीरे-धीरे ववकास करके और किीं भी न रुकते ि◌ुए गीता ि◌में अब यिा ◌ँले आई। कक जजन ककन्िींभी साधना आहद की चचिाम कर आए ि◌ैं वे एक व्याविाररक दृजष्टकोण से तो सिी ि◌ो सकती ि◌ैं, परंतुमूल समय यि ि◌ै कक स्वयं परमाममा ि◌ी अपने-आप को इस अभभव्यजकत में गढ़ रिे ि◌ैं। इस अभभव्यजकत की प्रकिया की यहद ि◌में कोई शैली प्रतीत ि◌ोती ि◌ै तो ि◌म उसे ककसी योग-पद्धनत आहद का नाम दे देते ि◌ैं। परंतु वास्तव में परमामया अपनेआप को अभभव्यकत करने के भलए पूणतिः स्वतंत्र ि◌ैं और ककन्िींभी दो चीजों या व्यजकतयों में अभभव्यजकत का जो ि◌म वे ◌ेअपनातेिैं वि सवथिा भभन्न ि◌ोता ि◌ै। इस तरि से देखने पर तो स्पष्ट ि◌ो जाता ि◌ै कक यि सारा जगत्–प्रपंच तो परमाममा और उनकी पराशजकत की ि◌ीिा मात्र ि◌ै। इसमें न ककसी प्रकार के कोई वणि–ववभाजन ि◌ैं, न ककसी प्रकार की अन्य कोई पद्धनत ि◌ै, न ककसी प्रकार का कोई इंहरयगोचर या आममपरक ववषय िै। श्रीअरववन्द की टीका ि◌ी गीता के तत्त्व को उसकी पराकाष्ठा तक ले जाती ि◌ै अन्यथा तो गीता की भशक्षा को अधधकांशतः ककन्िीं मानभसक सूत्रों या कम ि◌के नैनतक ववधानों आहद से अधधक आगे ले जाया ि◌ी निीं ◌ंजाता। यि तो स्पष्ट ि◌ी ि◌ै कक जो गीता अपनी ऊँची से ऊँची भशक्षा का भी अंत में अनतिमण कर जाती ि◌ै और सभी आधारों, ववधानों, शास्त्रों, योग-पद्धनतयों आहद को सवथिा मयाग कर एकमात्र भगवान् ◌्को पूण ि◌समपणि करनेकी बात करती ि◌ै उसे ि◌म ककन्िींभी सामाजजक ननयमों से कैसे बाधँ सकते ि◌ैं। वि तो ि◌मारे सभी मानभसक धमों का पूणरूपेण पररमयाग करके उन्मुकत रूप से आममा के जगतों में उ़िान भरनेकी बात करती ि◌ै, ऐसे ग्रंथ से ि◌म कैसे आशा कर सकते ि◌ैं कक वि ि◌मारे ककन्िींभी मानभसक ननयमों के तुच्छ दायरे में समा जाए? अतः ि◌में गीता को उसी के शब्दों में और जो ववकासिम वि अपनाती ि◌ै उससे जो सिज अथ ि◌ननकल कर आता ि◌ै, उसी के प्रकाश में समझने ◌ेका प्रयास करना चाहिये तभी ि◌म उससे कुछ ग्रिण कर सकतेिैं अन्यथा तो अधधकांशतः ि◌म उसमें केवल स्वयं अपनी ि◌ी बनी बनाई धारणाओं या पूवाग्रिों को पढ़ रिे ि◌ोते ि◌ैं।

और सवप्रिथम ि◌में यि देखना ि◌ोगा कक उच्चतम आध्याजममक प्रकृनत में स्वभाव का एक अथ ि◌ोता ि◌ै और त्रत्रगुण की ननमन प्रकृनत में वि एक सवथिा दूसूरा ि◌ी रूप और अथ ि◌ले लेता ि◌ै। विाँ भी यि किया तो करता ि◌ै, पर अपने स्वरूप पर इसका पूण ि◌अधधकार निींिोता, मानो यि एक अधूरे प्रकाश में या अंधकार में अपनेसच्चे

धम िकी खोज कर रि ि◌ो, और आमम-उपलजब्ध एवं पूणतिा तक पिुँचनेसे पिले यि अपनेपथ पर अनेक ननमनतर और भमथ्या रूपों, अंतिीन त्रुहुटयों, ववकृनतयों, आममि–ानियों, आमम-प्राजप्तयों, आदश ि◌और ननयम की खोजों से गुजरता ि◌ै। ि◌मारी प्रकृनत यिाँज्ञान और अज्ञान, समय और भमथ्या, सफलता और ववफलता, सिी और गलत, प्राजप्त और ि◌ानन, पाप और पुण्य का एक भमधश्रत ताना-बाना ि◌ै। सदा यि स्वभाव ि◌ी ि◌ोता ि◌ै जो इन सभी चीजों में से आमम-अभभव्यजकत और आमम-उपलजब्ध की खोज करता रिता ि◌ै, 'स्वभावस्तु ◌ुप्रवतति', यि एक ऐसा समय ि◌ै जजससे ि◌में सावभौम उदारता और समदभशतिा का पाठ सीखना चाहिए, कयोंकक ि◌म सभी इस एक ि◌ी कहठनाई और संघष ि◌में ग्रस्त ि◌ैं। ये कियाएँ जीव की निीं ◌ंअवपतु प्रकृनत की ि◌ैं। पुरुषोत्तम इस अज्ञान से सीभमत निीं ि◌ैं; वे ऊपर से इसका संचालन करते ि◌ैं और जीव को उसके पररवतनिों में से माग ि◌िदखातिैं। शुद्ध ननववकिार आमम-सिा को ये कियाएँ छू तक निीं पातीं; वि अपनी अगोचर-अस्पृश्य शाश्वत जस्थनत के द्वारा इस क्षर प्रकृनत को इसके उतार-चढ़ावों में साक्षी-भाव से देखती और आश्रय देती ि◌ै। व्यजकत की वास्तववक आममा, ि◌मारे अंदर की केंरीय सिा, इन चीजों से भिन्न ि◌ै, कफर भी प्रकृनत के अंदर अपने बाह्य ि◌मववकास में वि इन्िें अंगीकार करती ि◌ै। और जब ि◌म इस वास्तववक आममा, ि◌में धारण करनेवाली अपररवतनिशील ववश्वगत आममा, प्रकृनत के संपूण ि◌व्यापार की अध्यक्षता करने ◌ेवाले और पररचालन करनेवाले अपने अंतरस्थ पुरुषोत्तम या परमेश्वर को प्राप्त कर लेते ि◌ैं, तो ि◌म अपने जीवन के धम िके समस्त आध्याजममक मम िका पता पा लेते ि◌ैं। कयोंकक तब ि◌म उन जगदीश्वर के ववषय में सज्ञान ि◌ो जाते ि◌ैं जो अपने अनंत गुणों में, सव ि◌भूतों में अपने को सदैव प्रकट करते रिते ि◌ैं। ि◌म भगवान् ◌् की चतुववधि उपजस्थनत के ववषय में सज्ञान ि◌ो जाते ि◌ैं, वि ि◌ै आमम-ज्ञान और ववश्व-ज्ञान की सिा, बल और शजकत की सिा जो अपनी शजकतयों की खोज करती, उन्िें प्राप्त करती और प्रयोग में लाती ि◌ै, पारस्पररकता एवं सृजष्ट की तथा जीव-जीव के बीच संबंध एवं आदान-प्रदान की सिा, कम िकी सिा जो ववश्व में श्रम करती ि◌ै और प्रमयेक में सबकी सेवा करती ि◌ै और प्रमयेक के श्रम को अन्य सबको सेवा में प्रयुकत करती ि◌ै। ि◌म अपनेअंदर भगवान् ◌्की जो व्यजष्ट-शजकत ववद्यमान ि◌ै उसके प्रनत भी सचेतन ि◌ो उठते ि◌ैं, यि वि शजकत ि◌ै जो इन चतुववधि शजकतयों को सीधे ि◌ी प्रयोग में लाती ि◌ै, आमम-अभभव्यजकत के ि◌मारे प्रयास को ननयत करती ि◌ै, ि◌मारे हदव्य कम ि◌ और पद का ननधारिण करती ि◌ै और इस सबके द्वारा वि ि◌में बिुववधता में भगवान् ◌्के ववश्वाममभाव की ओर उठा से सलती ि◌ै जब तक कक ि◌म इसके द्वारा उनके साथ तथा इस सृजष्ट में वेची कुछ ि◌ै उस सबके साथ अपना आध्याजममक एकमव प्राप्त निींकर लेते।

मिारी ननमन प्रकृनत को ि◌मारे स्वभाव का ज्ञान न ि◌ोने ◌ेके कारण वि अनेकानेक प्रकार के उतार-चढ़ावों से गुजरती ि◌ै। इसीभलए ि◌मारी त्रत्रगुणमय ननमन प्रकृनत में त्रुहुटया,◌ाँ ववकृनतया,◌ाँ समय-असमय आहद सभी एक-दूसूरे से भमले-जुले रितिैं जजनमें मनुष्य भ्रभमत ि◌ोकर भटकता रिता ि◌ै, ठोकरें खाता रिता ि◌ै। ि◌ालाकाँक जीव को भीतर से अपने सच्चे स्वभाव का पता ि◌ोता ि◌ै परंतु सतिी प्रकृनत में उसके ववषय में अनभभज्ञ ि◌ोने के कारण उसे इन सभी उतार-चढ़ावों और थपेिों से गुजरना पिता ि◌ै। और धीरे-धीरे ि◌ी व्यजकत को अपनी सच्ची प्रकृनत का या कफर अपनेस्वभाव का पता लगता ि◌ै। अतः ि◌में सफलता-असफलता, ि◌ष–शोक, लाभ–ानन आहद सभी द्वंद्वों से गुजरना ि◌ोता ि◌ै परंतु ि◌मारी आंतररक प्रकृनत ि◌मारी बाह्य प्रकृनत के इन कियाकलापों से अक्षुब्ध रिती ि◌ै और इसे साक्षी भाव से देखती ि◌ै। परंतु चूँकक यि बाह्य या ननमन प्रकृनत पराप्रकृनत की ि◌ी अभभव्यजकत का क्षेत्र ि◌ै अतः वि

ननमन प्रकृनत और उसके कियाकलापों से भिन्न िोतेिुए भी इसकी किया को स्वयं अपनाती िै। और वास्तव में यहद िमारी ननमन प्रकृनत की कियाओं ंको िमारी आंतररक प्रकृनत का अवलंबन प्राप्त न िो तो वि चल िी निीं सकती। अतः इसी प्रतीयमान ननमन कायि–व्यापार में से भी आंतररक प्रकृनत िमारी बािरी प्रकृनत को िमारे अंतरस्थ परमेश्वर की ओर ननदेभशत करती िै और जब िम उस अंतरस्थ उपजस्थनत के ववषय में सज्ञान िो जाते िैं और उसे प्राप्त कर लेते िैं तब अपनेजीवन के आध्याजममक मम िको जान जाते िैं और साथ िी िम इस बारे में भी सज्ञान िो जाते िैं कक ककस प्रकार भगवान् ्चतुववधि रूप से सभी भूतों में अपनेआप को अभभव्यकत कर रिे िैं। और इन चारों को श्रीअरववन्द ने बिुत िी सुंदर ढंग से प्रकट ककया िै। इससे अब पूणतिः स्पष्ट िो जाता िै कक ककस प्रकार जजन्िें िम चतुवणि िकिते िैं वि तो भगवान् ्का चतुववधि रूप िै जजसका वास्तव में अभभप्राय ककसी बाह्य किया से निींअवपतु भगवान् ्के चार भावों से िै। साथ िी व्यजकत इस ववषय में भी सचेत िो जाता िै कक उसके अंदर भगवान् ्की चतुववधि शजकतयों में से कौनसी शजकत अधधक कियारत िै और वि यि भी जान जाता िै कक विी ववभशष्ट शजकत, जजसे स्वभाव किते िैं, उसके सारे बाह्य कमों आहद को ननयत करती िै। परंतु वि केवल व्यजष्टभाव तक िी निीं ंरुकती अवपतुबुिुववधता में भगवान् ्के ववश्वाममभाव की ओर उठा ले चलती िै अथात्ि् भगवान् ्की अन्य शजकतयों को भी ववकभसत करती िै जब तक कक िम इस सृजष्ट में भगवान् ्जो कुछ भी िैं उस सबके साथ अपना आध्याजममक एकमव प्राप्त निीं कर लेते। अतः अंतरतम रूप से तो व्यजकत स्वयंपरमाममा िी िै इसभलए उसकी किया में ककसी प्रकार का कोई ववभाजन निीं ंिो सकता, केवल बाह्यतर किया में िी चतुवणि िका ववचार आता िै। इसी को श्रीअरववन्द बता रिे िैं।

जीवन में मनुष्यों के चतुवणि िका बाह्य ववचार हदव्य किया के इस समय की बाह्यतर किया से िी समबन्ध रखता िै; वि त्रत्रगुण के कायि–व्यापार में इसकी किया के एक पिलू ूतक िी सीभमत िै। यि सच िै कक इस जन्म में मनुष्य अधधकतर चार श्रेेणणयों में से ककसी एक के अंतगति िोतेिैं - ज्ञानी मनुष्य, बलशाली मनुष्य, उमपादनशील प्राणणक मनुष्य और स्थूल श्रम एवं ंसेवा में परायण मनुष्य। ये आधारभूत ववभाग निीं ंिैं अवपतु िमारे मनुष्यमव में आमम-ववकास की अवस्थाएँ िैं। मनुष्य अज्ञान और ज़िता के पयाप्ति बोझ के साथ शुरू करता िै; उसकी पिली अवस्था उस स्थूल श्रम की िोती िै जो शरीर की आवश्यकताओं, प्राण की प्ेरेरणा एवं ंववश्वप्रकृनत के अलंघ्य ननयम के द्वारा और, आवश्यकता की ककसी सीमा के परे, समाज के द्वारा उस पर थोपी गयी ककसी-न-ककसी प्रकार की प्रमयक्ष या परोक्ष बाध्यता के द्वारा उसके पाशववक तमस् ्पर लादा जाता िै, और जो लोग अभी भी इस तमस् ्के द्वारा शाभसत िोतेिैं वे शूरू िोतेिैं, समाज के दास िोतेिैं जो उसे अपना श्रम दान करते िैं तथा उसके जीवन की बुिुववध िििी में वे अधधक उन्नत मनुष्यों की तुलना में और कुछ भी योगदान निीं ंकर सकतेअथवा यहद कर भी सकतेिैं तो बिुत िी कम। कायि–प्रववृि या गनतशील कम िके द्वारा मनुष्य अपनेअन्दर राजभसक गुण का ववकास करता िै और िमें एक दूसूरी श्रेेणी का मनुष्य प्राप्त िोता िै जो उपयोगी सृजन, उमपादन, संग्रि, उपाजनि, अधधकार और उपभोग की सतत् ्प्ेरेरणा से चाभलत िोता िै, वि मध्यवगीय आधथकि और प्राण-प्रधान मनुष्य, वैश्य, िोता िै। िमारी एक समान िी सावभिौम प्रकृनत के राजभसक या प्रववृिमय गुण का उच्चतर उमकष ििोने ेपर एक कियाशील मानव िमारे देखनेमें आता िै जजसमें एक प्रबलतर संकल्पशजकत एवं अधधक सािसपूण िमित्त्वाकांक्षाएँ िोती िैं, कम िकरने,े युद्ध करने,े अपने संकल्प को कियाजन्वत करने ेऔर, अपने

सबलतम रूप में, नेतृमृव करने, आदेश देने, शासन करने,े जन-समुदायों को अपनेपथ पर चलाने की एक सिज प्रवृवृ िोती िै, वि राजा, क्षत्रत्रय िोता िै। और जि ाँयाधान िोता िै विााँमें राह्मण की प्राजप्त िोती िै, जजसकी प्रवृवृ ज्ञान की प्रधान िोती िै, जो जीवन के अंदर ववचार, धचंतंन, समय की खोज और एक ज्ञानपूण िया उच्चतम जस्थनत में एक आध्याजममक शासन ले आता िै और उसके द्वारा वि अपनी जीवन की धारणा और उसकी शैली को आलोककत करता िै।

बािरी रूप से मनुष्य भले कोई भी वण िका कयों न िो तो भी सामान्य िम में िम देखते िैं कक उस पर तमस् का प्रभाव अधधक रिता िै। मनुष्य के जीवन काल में िम प्रारंभभक समय में देख सकते िैं कक सामान्यतः बालक, यहद वि अनतववभशष्ट िो तब तो अलग बात िै, अज्ञान में िोता िै जजसकी कियाएँ पाशववक प्रकार की िोती िैं। ऐसे व्यजकत को शूरू किा जाता िै। ज्यों-ज्यों चेतना में ववकास िोता िै तब व्यजकत केवल अपनेी ऊपर केंहरत न रिकर दूसूरों की सिा को स्वीकार करता िै और समाज में रिने के भलए या ककसी काय िको करनेके भलए वस्तुओं, व्यजकतयों, पशु–पक्षक्षयों आहद सभी के साथ आवश्यक आदान- प्रदान के ननयम को, उनके बीच तालमेल के ववधान को समझने ेलगता िै। इस प्रकार यि तामभसक चेतना से राजभसक में आरोिण िोता िै। इसी तालमेल, उपाजनि, संचय आहद की प्रवृवृ को वैश्य की संज्ञा दी गई िै। इसी राजभसक प्रवृवृ का जब ववकास िोता िै तब िमें उच्चतर प्राणणक कियाएँ देखनेको भमलती िैं जजसमें व्यजकत सािभसक और प्रबल संकल्पशजकत के काय िऔर अभभयान कर सकता िै। इसी उच्चतर प्राण प्रधान प्रवृवृ को क्षत्रत्रय की संज्ञा दी गई िै। और जब इससे अधधक ववकभसत िोकर व्यजकत में मनःतत्त्व का ववकास िोता िै तब इसके प्रभाव से वि उधचत-अनुधचत, समय-असमय आहद का ववचार करता िै और तब इस साजत्त्वक प्रवृवृ को राह्मण की संज्ञा दी जाती िै। यि श्रेणीकरण या ववभाजन की पद्धनत सवथिा गुणाममक िै जजसका कक केवल आंतररक और मनोवैज्ञाननक आधार िोता िै। इससे स्पष्ट िो जाता िै कक यि सारा चेतना का एक िमववकास िै और इसी संबंध में िमारी संस्कृनत में यि प्रचभलत था कक जन्म से सभी शूरू िी पैदा िोतेिं। अतः यि तकिसममत िो िै कक ककसी शूरू चेतना को ककन्िीं गंभीर समयों के प्रनत उद्घाहटत करने ेके भलए पिले ववकास के िम से गुजरना िोगा अन्यथा वि उन समयों का दुरुपयोग करके स्वयंअपने आप को तथा दूसूरों को संकट की जस्थनत में िाल सकती िै। इसी अथ िमें यि उजकत कक 'जन्मना जायते शूरू' आज भी उतनी िी प्रासंधगक िै जजतनी कक वि अपनेप्राकट्य के समय थी।* िमारे सामान्य जीवन में भी िम देखते िैं कक ककसी को कोई गंभीर बात बतानेमें या ककसी के साथ कोई व्यविार करने में िम अधधकारी-अनधधकारी भेद पर सदा िी ववचार करते िैं।

जब िम चेतना के इस िमववकास के अनुसार मनुष्यों के ववषय में ववचार करते िैं तब अधधकांश मनुष्यजानत तो पिले या दूसूरे ववभाजन तक िी ठिर जाती िै। पिले और दूसूरे की तुलना में तीसरे ववभाग में िमें बिुत िी अल्प संख्या में लोग देखने को भमलते िैं और चौथेववभाग में तो उससे भी बिुत िी कम संख्या में देखने को भमलते िैं जो कक वास्तव में राह्मण िों। जब व्यजकत त्रबल्कुल पाशववक चेतना के िी ननकट िोता िै तब उसके कमों का उमप्रेरण भय या कफर कामना के द्वारा िी िोता िै। यहद इस दृजष्टकोण से देखें तो अधधकांशतः तो मनुष्य इसी भलए कम िकरते हदखाई देते िैं कयोंकक यहद वे ऐसा न करें तो उनका स्वयंका तथा उनके पररवार का भरण-

पोषण निींगिा या कफर इसभलए कयोंकक वे ेकम िन करनेके सिज पररणामों से भयभीत िोतिैं। ऐसे लोग तो बुित िी कम देखने को भमलतिैं जजन्िें इसकी परवाि निीं ंिोती कक कम िके व्यजकतगत पररणाम कया िोंगे या जो ककसी आदश िकी भसद्धध के भलए, ककसी उधचत-अनुधचत के बोध से चाभलत िोकर कम िकरते िैं।

----

*वैहदक ऋवषयों का प्रतीकों के प्रयोगों में सदा िी केवल इसी बात पर ध्यान रिता था कक ककस प्रकार समय का प्राकट्य अधधक से अधधक गिराई के साथ तथा मूनतमिान रूप से िो सके। अतः उनके द्वारा 'जन्मना जायतेशूर' की जो किावत िै उसमें चातुवण्यि िमें प्रयुकत शूर शब्द का उपयोग कर भलया गया परंतु इस एक िी पद का दोनों िी स्थानों पर सवथिा भभन्न-भभन्न अथ िैि। संकुधचत दृजष्टकोण अपनाने पर ब्रिा भ्रम उमपन्न िो जाता िै जजस कारण इस उजकत को कक 'शूर को वेदाध्ययन का अधधकार निीं िै' वणा–व्यवस्था से जोि़ हदया जाता िै जो कक समाज में भारी भेदभाव व दुभाुविना पैदा कर देता िै जबकक यहद इसे 'जन्मना जायतेशूर' से जोिा़ जाये तो इससे कोई ववषमता पैदा निीं की जा सकती कयोंकक इसका समय तो सभीके भलए सदा िीस्पष्ट रूपसे प्रकट िै।

सभी को इस चेतना के िमववकास की अवस्थाओं से गुजरना िोता िै। यहद पूवजिन्म में ककसी ने बुित ववकास साधधत कर भलया िो वि आगामी जन्मों में शीघ्र िी उतनी अवस्था को प्राप्त कर लेगा परंतु चािे ककतना िी शीघ्र कयों न िो तो भी उसे उस ववकासिम से जाना िी िोता िै। **अतः अपनेजीिन के आरंसभक काल में व्यस्क्त शूद्र होता है और उस अिमथा से गजरकर िह आगे का आरोहण करता है। परंत जइसका गीता की िणु–व्यिमथा से कोई संबंि नहीं है। हमारी आन्तररक सत्ता में हम सभी द्विज हैं और बाह्य मथूल भौनतक सत्ता में शूद्र हैं।** जजतनी िी अधधक िमारी आंतररक सिा ववकभसत िोगी िमारी शजकत उतनी िी अधधक िोगी और बाह्य सिा पर उतना िी अधधक वि अपना दबाव िालकर उसे सुसंस्कृत बना सकती िै। और एक सीमा के बाद जब आममा इतनी पयाप्ति रूप से प्रबल िो जाती िै तब वि मुकत रूप से सिा के अन्य भागों को अपने उपकरण के रूप में प्रयोग करती िै और तब उसके ऊपर ककसी प्रकार की कोई बाध्यता निीं रिती। तब व्यजकत कतव्यिंकम िके रूप में कम िकरता िै न कक ककसी प्रकार के भय या कामना के कारण। यि एक सवथिा भभन्न मनोवैज्ञाननक जस्थनत िै जजसको बािरी कमों से बुित अधधक परखा निीं ंजा सकता। बािरी कम िसमान भी िों तो भी मनोवैज्ञाननक जस्थनत सवथिा भभन्न िो सकती िै।

मानव-प्रकृनत में इन चारों व्यजकतमवों का कुछ-न-कुछ अंश सदा िो िोता िै, चािे वि ववकभसत िो या अववकभसत, व्यापक िो या संकुधचत, दबा िुआ िो या ऊपरी सति की ओर उठ रिा िो, परन्तु अधधकांश मनुष्यों में प्रायः इनमें से कोई एक या दूसूरा प्रबल िोता िै और कभी-कभी तो वि प्रकृनत में कम िके समपूण िक्षेत्र को िस्तगत करता प्रतीत िोता िै। और ककसी भी समाज में चारों िी श्रेेणणयााँ िोनी चाहिए, - भले िी, उदािरण के भलए, िम एक ऐसा ननरा उमपादनशील और व्यावसानयक समाज कयों न बना सकते िों जजसके भलए आधुननक युग ने प्रयमन ककया िै, या उसी प्रयोजन के भलए श्रभमकों का, ननमनतम श्रेेणी के लोगों का एक ऐसा शूरू-समाज कयों न बना सकतिैं जैसा कक अमयंत आधुननक मन को आकृष्ट करता िै और जजसे आज यूरोप के एक भाग में आजमाया जा रिा िै तथा अन्य भागों में समथनि ककया जा रिा िै। कफर भी कुछ ऐसे ववचारक तो रिेंगे िी जो समपूण िववषय का के कुछ ऐसे अध्यक्ष और नायक भी रिेंगे जो इस समस्त उमपादक कम िके ववधान, समय और मागदिशकि

ननयम ढ़ूँढ़नेके भलए पे्रेररत िोंगे, उद्योग-व्यवान बिानेसिास, युद्ध, नेतृमृव और प्रभुमव की अपनी माँग को तृसृ करेंगे, बित से ववभशष्ट ननरे उमपादनशील और धनोपाजकि मनुष्य तथा कुछ ऐसे औसत मजदूरू भी रिेंगे िी जो थोड़े ेसे श्रम और उसके पुरस्कार से संतुष्ट िोंगे। परन्तु ये सवथिा बाह्य चीजें िैं, और यहद यिी सब कुछ िो तो, मानवजानत की इस श्रे्रेणी-व्यवस्था का कोई आध्याजममक अथ िनिीं िोगा। अथवा, जैसा कक कभी भारतवष िमें माना जाता था, इसका अथ िअधधक-से-अधधक यि िोगा कक िमें अपने जन्मों में ववकास की इन अवस्थाओं में से गुजरना िोगा; कयोंकक िमें बाध्य िोकर तामभसक, राजस-तामभसक, राजभसक या राजस-साजत्त्वक प्रकृनत से उिरोिर साजत्त्वक प्रकृनत की ओर अग्रसर िोना िोगा, एक आंतररक राह्मणमव, 'राह्मण्य' की ओर आरोिण करना और उसी में दृढ़ रूप से प्रनतजष्ठत िोना िोगा और कफर उस आधार से मोक्ष के भलए यमन करना िोगा। परन्तु ऐसी दशा में, गीता के इस कथन के भलए कोई युजकतसंगत स्थान निीं ंरिेगा कक शूरू या चांिाल भी अपने जीवन को परमेश्वर की ओर मोड़कर सीधे आध्याजममक स्वातंत्र्य और पूणमिव की ओर आरोिण कर सकता िै।

मूलभूत समय यि बाह्य वस्तु निीं,िअवपतु िमारी गनतशील अंतः-सिा ५ की एक शजकत िै, आध्याजममक प्रकृनत की चतुववधि सकिय शजकत का समय िै। अपनी आध्याजममक प्रकृनत में जीव के ये चार पक्ष िोतेिैं - वि एक ज्ञान की सिा, बल की और शजकत की सिा, परस्परभावसंपन्न तथा आदान-प्रदानाममक सिा और कममिय एवं सेवाममक सिा िोता िै, परन्तु कम िमें तथा अभभव्यजकतकारक भाव में कोई एक या दूसूरा पक्ष प्रधान िोता िै और वि देिधारी प्रकृनत के साथ जीवन के व्यविारों को अपना पुट दे देता िै; वि अन्य शजकतयों का नेतृमृव करता तथा उन पर अपनी छाप लगा देता िै और कम,ि प्रवृवि और अनुभूनत की प्रधान धारा या झुकाव के ननभमि उनका प्रयोग करता िै। तब स्वभाव सामाजजक वण–ववभाग में प्रनतपाहदत कियिि-भेद के अनुसार स्थूल और कठोर रूप में निीं अवपतु सूक्ष्म और सिजनमय रूप में इस धारा के धम िका अनुसरण करता िै और इसका ववकास करते िुए अन्य तीन शजकतयों का भी ववकास करता िै।

----

*प्राचीनोंका यिमानना थाकक सभीमनुष्यअपनीननमनतर प्रकृनत में शूरोंकेरूपमें उमपन्न िोतेिैंऔरनैनतक तथाे आध्याजममक संस्कार के द्वारा िी द्ववज बनते िैं, पर अपनी उच्चतम आन्तररक सिा में सभी राह्मण िोते िैं जो पूण ि आममस्वरूप एवं देवमव प्राप्त करने में समथ िोतेिैं, यि एक ऐसा भसद्धान्त िै जो कदाधचत् ्िमारी प्रकृनत के मनोवैज्ञाननक समय से दूरू निीं िै।

इस प्रकार कम िऔर सेवा की सिज-वृवि का ठीक ढंग से अनुसरण ज्ञान को ववकभसत करता, शजकत वद्धिधत करता िै, पारस्पररक घननष्ठता या संतुलन तथा समबन्ध की कुशलता एवं सुश्रृंखला को साधता िै। चतुववधि देवमव का प्रमयेक प्रश्न अपने प्रधान स्वभावाम तत्त्व के ववस्तार और अन्य तीनों के द्वारा समृद्ध िोकर अपनी समग्र पूणतिा की और गनत करता िै। यि प्रगनत त्रत्रगुण के ननयम के अनुसार िोती िै। ज्ञानमय सिा के धम िका अनुसरण करनेका एक तामभसक और राजभसका ढंग भी िो सकता िै, शजकत के धम िका अनुसरण करनेका एक िूर तामभसका तथा उच्च साजमवक ढंग भी िो सकता िै, कम िऔर सेवा के धम िके पालन का एक शजकतपूण ि राजभसक या सुन्दर एवं ंउदाि साजत्त्वक ढंग भी िो सकता िै। आंतररक व्यजकतगत स्वधम िके तथा जीवन-पथ पर

वि िमें जजन कमों की ओर ले जाता िै उनके साजत्त्वक रूप तक पिुँचना पूणतिा प्राप्त करने ेकी प्राथभमक शत िैि। और यि ध्यान देने योग्य िै कक आंतररक स्वधम िकम,ि पेशे ेया कि्वयि के ककसी बाह्य सामाजजक या अन्य रूप से निीं ंबाँधा िोता। उदिारणाथ,ि िमारी कममिय सिा जो सेवा करनेसे िी तृपूत िोती िै या िमारे अन्दर का यि कममिय तत्त्व ज्ञानान्वेषण के जीवन, संघषि–प्रधान और शजकतमय जीवन या पारस्पररक समबन्ध, उमपादन और आदान-प्रदान के जीवन को अपनी श्रम और सेवा की हदव्य पे्रेरणा की तृजृप्त का साधन बना सकता िै।

अतः गीता का ववधान यि िै कक भले बिारी रूप से व्यजकत जजस ककसी भी वण िमें कयों न िो परंतु जो भी उसका आंतररक भाव िोगा उसी के अनुसार गनत करते-करते उसमें अन्य भाव भी ववकभसत िोंगे और व्यजकत इन सभी के साथ मद्भाव में जा सकेगा। उदिारण के भलए बिारी रूप से व्यजकत वैश्य के आदान-प्रदान का काय िकर रिा िो परंतु आंतररक सिा में उसमें गिरा सेवा भाव िो तो वि उसी भाव को ववकभसत करता िै।

---

*व्यजकतमव के इन चार भेदों में सेकोई भी यहद अन्य गुणों का कुछ अंश अपने अन्दर निीं ंलाता तो वि अपने क्षेत्र्े में भी पूण ि निीं िो सकता। उदिारणाथ,ि ज्ञानी मनुष्य स्वतंत्र्ता और पूणतिा के साथ समय की सेवा निीं कर सकता यहद उसमें बौद्धधक और नैनतक सिास, संकल्प एवं ननभयिता, तथा नये राज्यों के द्वार खोलने एवं उन्िें जीतने की सामथ्य िन िो, अन्यथा वि सीभमत बुद्धध का दास बन जाता िै अथवा केवल ककसी प्रनतजष्ठत ज्ञान का एक सेवक या, अधधक-से-अधधक उसका एक कमकाण्िीय पुरोहित बनकर रि जाता िै - अपने ज्ञान को सविोम लाभ के भलये प्रयोग में निीं ंला सकता जब तक कक उसके समयों को जीवन के व्यविाराथ िकियाजन्वत करने के भलये उसके अन्दर अनुकूलनशील कौशल न िो, अन्यथा वि केवल ववचार में िी ननवास करता रिता िै, अपने ज्ञान का पूण िसमपणि निीं कर सकता जब तक कक उसके अंदर मानव जानत के प्रनत, मनुष्य में अवजस्थत भगवान् ्तथा अपनी सिा के स्वामी के प्रनत सेवा का भाव न िो। (इसी प्रकार) शजकतप्रधान मनुष्य (क्षत्र्त्रय) को अवश्य िी अपनी शजकत, अपने बल को ज्ञान के द्वारा, बुद्धध या धम िया आममा के प्रकाश के द्वारा आलोककत, उन्नत और संचाभलत करना चाहिए, अन्यथा वि मिज शजकतशाली असुर बन जायेगा, - उसके अन्दर वि कौशल िोना चाहिये जो उसे अपनी शजकत को प्रयुकत, पररचाभलत एवं ननयमबद्ध करने एवं सजनिशील और फलप्रद रूप देनेमें तथा दूसूरों के साथ उसके समबन्धों के भलये उपयुकत बनाने में सविोम सिायता करे, अन्यथा वि जीवन के क्षेत्र्े के आर-पार शजकत का एक प्रचण्ि प्रविा, एक ऐसेतूफान का रूप ले लेती िै जो प्रबल वेग से आता िै और रचना करनेकी अपेक्षा किा ंँ अधधक ववनाश करके चला जाता िै, - साथ िी वि (क्षत्र्त्रय) आज्ञापालन करने में भी समथ िोना चाहिये और अपनी शजकत का प्रयोग ईश्वर और जगत् ्की सेवा के भलये करना । चाहिये, अन्यथा वि एक स्वाथी शासक, अमयाचारी तथा मनुष्यों की आममाओं ंऔर शरीरों का क्रूर दमनकारी बन जाता िै। उमपादनशील मनोवृवि और कायप्रिवृवि रखने वाले मनुष्य में खुला जजज्ञासाशील मन, उवरि ववचार और ज्ञान िोना चाहिये, अन्यथा वि ववस्तारशील ववकास के त्रबना अपने दैननक काय–ि व्यापार के सीभमत घेरे में िी ववचरण करता रिता िै, उसमें सिास और बिृे ेकाय िका बिा उठाने की वृवि भी िोनी चाहिये, अपने उपाजनि और उमपादन के काय िमें सेवा की भावना लानी चाहिये, ताकक वि केवल उपाजनि िी न करे, अवपतु दान भी कर सके, केवल बटोर करके अपने जीवन के सुखों का िी उपभोग न करे, अवपतुअपने चारों ओर के जीवन की, जजससे ेवि लाभ उठाता ि,ै फलशाभलता और पूण िसमृद्धध में सचेतन रूप से सिायता पिुँचाये। (इसी प्रकार) यहद श्रम और सेवा करनेवाला व्यजकत (शूर) अपने काय िमें ज्ञान, सममान-भावना, अभीप्सा और दक्षता न लाये तो वि एक असिाय श्रभमक एवं समाज का दास बन जाता िै, कयोंकक उकत गुणों को अपने अन्दर लाकर िी वि ऊध्वान्मिुख मन और संकल्पशजकत तथा सद्भावनापूण ि उपयोधगता के द्वारा उच्चतर वणों के धमों की ओर उठ सकता िै। परन्तु मनुष्य की िमिर पूणतिा तभी साधधत िोती िै जब

वि अपने-आप को ववशाल बनाकर इन चारों शजकतयों को अपने अन्दर समाववष्ट कर लेता ि‍ै और अपनी प्रकृनत को चतुववधि आममा की सवतिोमुखी पूणतिा एवं ववराट् शजकत-सामथ्य ि‍की ओर अधधकाधधक खोलता जाता ि‍ै, यद्यवप इन चारों में से कोई एक अन्यों का नेतृमृव भी कर सकती ि‍ै। मनुष्य इन धमों में से ककसी एक की एकांगी प्रकृनत के रूप में गढ़ा ि‍ुआ निीं ि‍ै, अवपतु आरमभ में उसके अन्दर ये सभी शजकतयााँ अनगढ़ एवं अव्यवजस्थत रूप में काय ि‍कर रिी ि‍ोती ि‍ैं, पर उत्तरोत्तर जन्मों में वि ककसी एक या दूसूरी शजकत को रूप प्रदान करता ि‍ै, एक ि‍ी जीवन में ककसी एक से दूसूरी की ओर प्रगनत करके अपने आंतररकअजस्तमव के समग्र ववकास कीओरबढ़ताजाता ि‍ै।

उस सेवा भाव में ि‍ी कोई प्रसंग ऐसा भी उठ ख़िा ि‍ो सकता ि‍ै कक व्यजकत को ककसी की रक्षा करने ‍के भलए क्षात्र तेज भी ववकभसत करना ि‍ो। सेवा करने ‍के ि‍म में ि‍ी व्यजकत को कोई सािभसक काय ि‍करने ‍की भी आवश्यकता ि‍ो सकती ि‍ै और उसी के द्वारा उसमें वि भाव भी ववकभसत ि‍ो सकता ि‍ै। साथ ि‍ी, सच्ची सेवा करने के भलए सच्चा ज्ञान भी ि‍ोना आवश्यक ि‍ै। त्रबना ज्ञान के ि‍म सच्ची सेवा निीं ‍कर सकते। इस प्रकार ि‍म देखतिें कक ककसी एक िी भाव से आरंभ करके व्यजकत धीरे-धीरे अन्य भावों को भी ववकभसत करता ि‍ै। लक्ष्मण जी के उदािरण से ि‍में यिी देखने को भमलता ि‍ै। जब उन्िें राजकाय ि‍के भलए किा गया तब उन्िोंने यि किते ि‍ुए उससे इन्कार कर हदया कक उनका धम ि‍तो सेवा-धम िि‍ै। अब बािरी वण ि‍के अनुसार तो लक्ष्मण जी और भरत जी क्षत्रत्रय ि‍ी थे,‍ परंतु उनका भीतरी भाव सेवा का था और उसी भाव के द्वारा उन्िोंने ‍अपने अन्य भावों को भी ववकभसत ककया। श्रीरामचररतमानस में ि‍म देखते ि‍ैं कक बािरी रूप से परम् ‍शूरूवीर, बलशाली योद्धा ि‍ोते ि‍ुए भी उनका आंतररक भाव श्रीराम के सेवक का था। अतः गीता का यिी ववधान ि‍ै कक जो आंतररक चतुववधि रहा ि‍ै वि ककसी भी भाव से आरंभ कर के अन्य भावों को भी इस शरीर में ववकभसत करेगा।

और अन्त में, इस चतुववधि कम ि‍के हदव्यतम रूप और इसकी अमयंत कियाशील आमम-शजकत को प्राप्त करना सवोच्च आध्याजममक भसद्धध की तीव्रतम और व्यापकतम यथाथतिा का बृित् ‍द्वार ि‍ै। ऐसा ि‍म तभी कर सकतिें यहद ि‍म स्वधम ि‍की किया को अन्तवािसी देव, ववश्वगत परमामम‍ा और परामपर पुरुषोत्तम की पूजा में पररणत कर दें और, अन्ततः, समपूण ि‍कम ि‍उनके ि‍ाथों में समवपति कर दें, 'मनय संन्यस्य कमाणिण'। तब जजस प्रकार ि‍म तीन गुणों के सीमाबंधन से परे चले जाते ि‍ैं उसी प्रकार ि‍म चातुवण्यि–ववभाग से तथा सभी ववभशष्ट धमों की सीमा से भी परे चले जाते ि‍ैं, सवधिमान् ि‍्पररमयज्य। ववश्व-पुरुष व्यजकत को ववश्वगत स्वभाव में उठा ले जाता ि‍ै, ि‍मारे अन्दर की चतुववधि प्राकृत सिा को पूण ि‍बनाता और एक करता ि‍ै और जीव के अन्दर ववराजमान परमेश्वर के हदव्य संकल्प तथा उपलब्ध की गई शजकत के अनुसार अपने आमम-ननधिाररत कमों को संपन्न करता िै।

परमेश्वर के हदव्य संकल्प तथा उपलब्ध की गई शजकत के अनुसार अपनेआमम-ननधारिरत कमों को संपन्न करना ि‍ी गीता का सच्चा अथ िि‍ो सकता ि‍ै कयोंकक इसके तुरंत बाद ि‍ी गीता परम् ‍रिस्य की ओर अग्रसर िोती ि‍ै। गीता ककसी कमकिाण्ि और ककसी सामाजजक व्यवस्था की भशक्षा निीं ‍देती अवपतु ‍ुव्यजकत के अंदर ववराजमान भगवान् ‍की चतुववधि सिा को ववकभसत करके उससे भी परे ले जाती ि‍ै। गीता की वास्तववक भशक्षा अब आरंभ ि‍ोगी जजसे ि‍ी प्रदान करने के भलए शेषे सब तो केवल तैयारी मात्र या भूभमका स्वरूप ि‍ी थीं।

प्रश्न : श्रीअरववन्द किते िै कक इन चारों वणों में से एक को आधार बनाकर व्यजकत आगे बढ़ता िै तो शेषे तीनों वण िउसका समथनि कर उसे पूणतिा की ओर ले जाते िैं। इसका कया अथ ििै?

उत्तर : ऐसा इसभलए िै कयोंकक भगवान् ्के चारों िी गुण अववभाज्य रूप से परस्पर संबद्ध िैं। जैसे ककसी व्यजकत के दोनों िाथ ककसी एक िी दिे के अववभाज्य अंग िैं और दिे के गनत करने पर दोनों िी िाथ साथ-साथ िी गनत करेंगे उसी प्रकार ये चारों िी भगवान् ्की दिे के चतुववधि पिलू िैं जजर्न्िें भभन्न-भभन्न निीं ककया जा सकता। अतः मूलतः तो चारों िी वण िसाथ-साथ िोते िैं इसभलए चारों को पूण िककये त्रबना कोई भी एक अपने आप में पूण ि निीं ंिो सकता। ये तो श्रीमाताजी की चार शजकतयों की तरि िै तथा जो श्रीमाताजी की अनन्त शजकतयों में से ऐसी िैं जो धरती पर प्रमुख रूप से कियारत िैं जजनके द्वारा वे अभभव्यकत िो रिी िैं। इन मिान् ्शजकतयों को, जजनके नाम िमशः मिेश्वरी, मिाकाली, मिालक्ष्मी और मिासरस्वती िैं, िम राह्मण, क्षत्रत्रय, वैश्य एवं ंशूरू वणों की अधधष्ठात्री देववयों के रूप में जान सकते िैं। अतः ककसी एक भी शजकत को छोिा निींजा सकता कयोंकक वे सभी जगज्जननी के एक अखण्ि रूप की िी अभभन्न अंग िैं और ककसी एक को भी छोि़ देने पर तो वि स्वरूप अखण्ि निीं ंरि सकता। इस कारण, बािरी रूप से व्यजकत के जो भी कियाकलाप कयों न िों, परंतु आंतररक रूप से चारों िी शजकतयााँ साथ-साथ गनत करती रिती िैं। गीता का यि एक ऐसा ववलक्षण तत्त्व िै जजसे केवल श्रीअरववन्द िी प्रकट करते िैं।

III. परम् ्रिस्य की ओर

श्रीगुरु और जो कुछ भी किना चािते थे वि सब वे ेकि चुके िैं, वे अपनेसंदेश के सभी प्रधान तत्त्वों, सिायक ननदेशों और ननहित अथों का ननरूपण कर चुके िैं, उसके ववषय में जो मुख्य संशय और प्रश्न उठ सकतेिैं उर्न्िें स्पष्ट कर चुके िैं, और अब उनके भलए प्रकट करनेके भलए जो कुछ शेषे रि जाता िै वि िै अपनी अंतम वाणी, अपने संदेश का मम,ि अपनी भशक्षा के सारतत्त्व मात्र को ननणायिक शब्दों और हृदयस्पशी सूत्र में प्रकट करना। और िम पातेिैं कक वि ननणायिक अंतम और परम वचन, इस ववषय पर पिले जो कुछ भी किा जा चुका िै केवल उसका सार मात्र िी निीं ंिै, अभीष्ट साधना का और इसके समस्त तप और पुरुषाथ िके पररणामस्वरूप प्राप्त िोनेवाली मििर अध्यामम-चेतना का केवल घनीभूत वणनि मात्र िी निीं ंिै वि तो मानो वेगवान् ्रूप से और अधधक आगे की ओर ढ़ि ले जाता िै. बिधकक सीमा तथा ननयम-मयादिा और ववधध-ववधान को तोि़ िालता िै और अनंत अथ िसे गभभति एक ववशाल एवं असीम आध्याजममक समय का इए खोल देता िै। और वि गीता की भशक्षा की गंभीरता एवं व्यापक ववस्तार का तथा उसके भाव की मििमा का एक धचह्न िै। एक साधारण धाभमकि भशक्षा या दाशननिक भसद्धान्त समय के ककर्न्िीं मित् ्और प्राणवंत पिलुओंको अधधकृत करके तथा उर्न्िें मनुष्य के अंतजीवन का और उसके कम िके ववधान और स्वरूप का मागदिशनि करने ेके भलए एक उपयोगी मत-वाद, उपदेश, पद्धनत एवं ंसाधना का रूप देकर िी भली-भानााँत संतुष्ट िो जाता िै; वि इससे आगे

निीं ंजाता, वि अपनी पद्धनत के घेरे के बिार ननकलनेके भलए द्वार निींखोलता, उससे बिार ननकालकर िमें ककसी ववस्तीणतिम स्वतंत्रता और बंधनमुकत ववशालता में निींले जाता। यि सीमाबंधन उपयोगी ि और ननश्चया िी कुछ समय के भलए अननवाय िभी ि। अपनेमन और संकल्प के द्वारा पररसीभमत मनुष्य को अपने ववचार और कम िके संबंध में एक ननयम और ववधान की, एक ननयत-ननधाररत पद्धनत की और एक सुननजश्चत अभ्यासिम की आवश्यकता िोती ि; वि मागाँ करता ि उस एक िी अचूक और कटे-छाँटे माग िकी, जो बिा ककया िुआ एवं सुननहदिष्ट िो और जजस पर पैर रखना सुरक्षक्षत िो, वि चािता ि सीभमत क्षक्षनतज, समावृत प्रिाव । केवल बलवान् ्और ववरले िी व्यजकत िैं जो स्वतंत्रता से स्वतंत्रता की ओर बढ़ सकतिैं। और कफर भी जजन रूपों और प्रणाभलयों में मन संतुष्ट रिता ि और अपना सीभमत सुख लाभ करता ि उनसे अंततः बिार ननकलने का कोई माग िमुकत जीव के भलए िोना िी चाहिए। अपनेआरोिण की सीढ़ी को पार कर जाना, उसके सबसे ऊपर के सोपान पर भी रुक न जाना अवपतु अबाधधत और व्यापक रूप से आममा की ववशालता में ववचरण करना एक ऐसी मुजकत िैजो िमारी पूणतिा के भलए आवश्यक ि; आममा की परम स्वाधीनता िी िमारी भसद्ध अवस्था ि। और गीता िमें इस ओर इस प्रकार ले जाती ि: वि आरोिण के एक सुदृढ़ और ननजश्चत पर अमयंत ववस्तीण िमाग िका, एक मिान् ् धम िका प्रनतपादन कर देती ि, और कफर वि िमें जो कुछ प्रनतपाहदत ककया जा चुका ि उस सबसे बिार ननकालकर, उसके परे, सब धमों के परे अनंततः उन्मुकत आकाशों में ले जाती ि और एक पूण िआध्याजममक स्वाधीनता पर प्रनतजष्ठत परम भसद्धध की आशा िमारे सामने प्रकट कर देती ि, उसके रिस्य में िमारा प्रवेश करा देती ि और वि 'गुह्यतमम्'् रिस्य िी, उसके परम वचन का सार ि, विी गूढ़ तत्त्व और अंतरतम ज्ञान ि।

और सवप्रिथम गीता अपनेसंदेश का स्वरूप पुनः प्रनतपाहदत करती ि। वि उन पंरि श्लोकों की पररभमत पररधध में संपूण िरूपरेखा और सारमम िसंक्षेप म ंवणणति कर देती ि, जजनकी पंजकतयों की भावाभभव्यंजना और अथ ि संक्षक्षप्त एवंघनीभूत ि, जो मूल ववषय के सार का कुछ भी बाकी निींछोिती जो कक अमयंत ववशद यथाथतिा तथा सुबोधता से युकत उजकतयों में व्यकत ककया गया ि। और इसभलए इनका ववश्लेषण बिे ध्यान से करना िोगा, जो कुछ पिले किा जा चुका ि उस सबके प्रकाश में गिराई के साथ इनका अध्ययन करना िोगा, कयोंकक यिाँ स्पष्टतः अभभप्रेत ि कक जजसे स्वयं गीता अपनी भशक्षा का केंरीय भाव समझती ि उसका ननहिताथ िप्रकाभशत ककया जाए।

परमाममा तथा उनका परम् ्समय असीम ि। परंतु मनुष्य जब अपनेसीभमत मन के द्वारा उसे जानने का प्रयास करते िैं तब वे उसे अपने मानभसक सूत्र के दायरे में बाधाँने का प्रयास करते िैं। अपने स्वभाव मात्र में िी मन अखण्और समग्र रूप से उस परम् ्समय को देखने में असमथ िि कयोंकक उसकी प्रवृवि िी ि ककसी चीज को ववभाजजत करके प्रमयेक ववभाजन का ववश्लेषण करने की और उस ववभाजन का ववश्लेषण वि अपनेसीभमत इंहरय आधाररत तरीके से करता ि। इस कारण भले िी ककतना भी ववकभसत मन कयों न िो, कफर भी समय उसकी पकि से छूट ननकलता ि। िमारे ऋवषयों के अनुसार भारतीय मन की यि ववशेषेता रिी ि कक वि अपनेआप को ननरपेक्ष सिा में प्रक्षक्षप्त करता ि और बदले में उसे जो आभास प्राप्त िोतिैं उनसे वि अपनी योग-प्रणाभलयों, धमों, तत्त्वदशनिों आहद का ननमाणि करता ि। परंतु जैसे मानव चेतना से नीचेकी चेतना अपनी ऊँची से ऊँची

कल्पना के द्वारा भी मानव चेतना की थिा निीं पा सकती उसी प्रकार मानव मन की ऊँची से ऊँची ज़िन भी परमामम तत्त्व के अंश मात्र की भी थिा निींपा सकती। परंतु मानव और पाशववक चेतना में एक मूलभूत अंतर िै सचेतन आरोिण की संभावना का। पशु में िमें इस सचेतन आरोिण की संभावना हदखाई निीं ंदेती। मनुष्य में इस सचेतन आरोिण की संभावना ननहित िै और इसका लाभ उठाकर मनुष्य पुनः उस माग िका अनुसरण कर के अपनेस्रोत तक पिुँच सकता िै जजस माग िपर अवरोिण करके परम् ्सिा ने इस मानव सिा को अपनाया िै। और इस आरोिण में सभी सूत्रों, ववधध-ववधानों, तमवदशनिों आहद की तब तक प्रासंधगकता रिती िै जब तक कक मानभसक चेतना के द्वारा आरोिण चलता िै। गीता भी अपनी भशक्षा के ववकासिम में गढ़ तत्त्वों को मानभसक भाषा में ननरूवपत करती िै और इस ववकास को मन की पराकाष्ठा तक ले जाती िै। उसके बाद अपनी भशक्षा का उपसंिार वि 'सवधिमान्पिररमयज्य' के द्वारा कर के सभी मानभसक सूत्रों का सवथिा अनतिमण कर जाती िै और अनतमानस के द्वार तक पिुँच जाती िै। परंतु गीता अपनी भशक्षा को विीं ववराम देती िै और उससे आगे का वणनि निीं ंकरती कयोंकक सभी आधारों का पररमयाग करके जब पूरी तरि हदव्य संकल्प अभभव्यकत िोता िै तब उसके ववधान को ककन्िीं भी मानभसक सूत्रों में व्यकत करना सिज निीं और कदाधचत् ्संभव भी निीं िै कयोंकक तब जो ववधान सकिय िोता िै वि प्रमयेक के साथ परमामम की ववभशष्ट किया िोती िै। यि एक ऐसा क्षेत्र िै जो केवल अनुभव, अनुभूनत आहद के द्वारा िी समझा जा सकता िै। िालाकाँक, श्रीअरववन्द द्वारा प्रनतपाहदत चेतना के ववभभन्न स्तरों की परंपरा में अनतमानस भी आध्याजममक जगतों की श्रेणी में वि पिला िी स्तर िै जजसमें कक आमम-सिा उन्मुकत रूप से स्वयंको अभभव्यकत कर पाती िै। अनतमानस से ऊपर के लोकों में आममा की अधधकाधधक भव्यतर और उन्मुकततर अभभव्यजकत संभव िोती िै जजसमें मानव मन का ककसी प्रकार का कोई प्रवेश निीं अतः िम उनकी ककसी प्रकार की कोई कल्पना तक भी निीं ंकर सकते। परंतु चूँकक मानव आममा में उन सभी हदव्यतर जगतों की वे सारी भव्यताएँ ननहित िैं अतः यि उधचत िी िै कक आममा अपनी उन ननहित भव्यताओं को पुनः प्राप्त करे और उन्िें अभभव्यकत करे। यिी इस ननमन अभभव्यजकत का वास्तववक औधचमय िो सकता िै अन्यथा तो इसका अपनेआप में कोई औधचमय िी निीं िो सकता। और इसी हदव्यतर अभभव्यजकत के भलए श्रीअरववन्द व श्रीमाताजी ने अनतमानभसक अवतरण का उद्घोष ककया और उसे केवल ककसी दशनि तक िी सीभमत निीं रखा अवपतु उसके भलए आजीवन प्रयास कर सूक्ष्म भौनतक जगत् ्में उसका अवतरण साधधत कराया। उनके अनुसार पाधथवि जगत् ्की अचेतनता, अज्ञानता आहद सारी समस्याओं का सच्चा अंत केवल अनतमानभसक रूपांतर के द्वारा िी िो सकता िै। इस दृजष्टकोण से गीता सभी धमों का पररमयाग कर के अनतमानस की ओर जानेका माग िखोल देती िै। जब व्यजकत अपनी अंतरतम सिा में स्वयंपरमामम िै तब वि ककन्िींउच्चतम मानभसक प्रकार के सूत्रों की तो बात िी कया, अवपतु उच्चतम कल्पनीय स्तरों से भी सीभमत निीं िो सकता कयोंकक परमामम के समस्वरूप को सारा रह्माण्ड और अनेकों सजच्चदानंद भी भमलकर वास्तव में अभभव्यकत निींकर सकते। ननरपेक्ष परमामम तत्त्व तो वास्तव में इतना ननरपेक्ष िै कक कोई भी चेतना के उच्चतम स्तर भी उसके भलए बिुत िी गौण ववषय िैं। तो ऐसी ववलक्षण और अद्भुत उपजस्थनत ककन्िीं भी सूत्रों में कैसे बंध सकती िै। इसी संदभ िमें श्रीमाताजी एक स्थान पर किती िैं कक व्यजकत को सदा िी अपने अनुभव की अपेक्षा अधधक उच्च िोना चाहिये। जब अपनी सच्ची सिा में व्यजकत स्वयंपरमामम िै तो कैसे ककसी भी अनुभव

से वि अभभभूत िो सकता िै। उच्चतम अनुभूनत भी उस परमाममा के स्वरूप के वैभव को पूरा अनुभूत निीं कर सकती। इसीभलए सारी योग पद्धनतयों आहद का ननरूपण करनेके बाद गीता सवधिमान्पिररमयज्य का परम् ् मुजकतदायी वाकय प्रदान करती िै। उसके बाद का क्षेत्र केवल उन्िीकिा ववषय िै जजन्िें उस जस्थनत का अनुभव प्राप्त िै। और ये सभी सीमाएँ टूटने के बाद भी जीव आमम-अभभव्यजकत के भलए, हदव्य संकल्प की अभभव्यजकत के भलए जगत् ्में किया करता िै। इस भाव में किया का संपूण िस्वरूप िी बदल जाता िै। कम िके केवल बािरी रूप से तो यि पता लगाना भी संभव निीं िोता कक कम िका उमप्रेरण कामना आहद ननमन िेतुओंके द्वारा िो रिा िै या कफर हदव्य संकल्प द्वारा िो रिा िै।

....पिले पाचाँ श्लोकों में गीता अपना कथन ऐसी भाषा में प्रस्तुत करती िै कक वि आंतररक और बाह्य दोनों प्रकार के संन्यास के मागों पर लागू िो सकता िै और कफर भी वि उसे ऐसी शैली में उपजस्थत करती िै कक उसमें से गीता के द्वारा समधथति पद्धनत का अथ िऔर भाव ननकालने के भलए िमें केवल उन दोनों मागों के कुछ सामान्य शब्दों को एक गंभीरतर तथा अधधक अंतमुखिी अथ िदेना पड़ता िै।

असक्तबद्जधिः सिुतुर स्जतात्मा विगतमपृहः ।
नैष्कम्युसुसद्धिं ंपरमां संन्यासेनाधिगच्छनत ।। ४९।।

४९. सब पदाथों में आसस्क्तरदहत बद्जधि, आत्मजयी तथा कामनारदहत मनष्जय संन्यास के द्ािा नैष्कम्यु ुकी परम ससद्धि को प्राप्त कर लेता है।

संन्यास, आममजय से लब्ध शाजन्त, आध्याजममक ननजष्ियता और कामना से मुजकत का यि आदश ि समस्त प्राचीन प्रज्ञा में सामान्य रूप से पाया जाता िै। गीता िमें अतुलनीय संपूणति और स्पष्टता के साथ इसका मनोवैज्ञाननका आधार प्रदान करती िै।

....सकिय प्रकृनत के गिन बंधन से बािर ननकलने तथा कफर से आध्याजममक स्वातंत्र्य लाभ करने का सीधा और सरलतम माग ियि िै कक जो कुछ भी अज्ञान की कियाशजकत से समबन्ध रखता िै उस सबको पूण िरूप से ननकाल फेंक देना और अंतराममा को शुद्ध आध्याजममक अजस्तमव में रूपांतररत कर देना। इसी को रह्म बनना, 'रह्मभूय' किा जाता िै। इसका अथ ििै ननमनतर मानभसक, प्राणणक और भौनतक अजस्तमव का पररमयाग करना और शुद्ध अध्याममसिा को धारण करना। यि काय िबुद्धध एवं संकल्प शजकत के द्वारा सविोम रीनत से संपन्न ककया जा सकता िै; यि बुद्धध िी िमारा वतमिान उच्चतम तत्त्व िै। इसे ननमन अजस्तमव की चीजों से और प्रथमतः तथा प्रधानतः अपनी कामनारूपी प्रभावी ग्रंधथ से, मन और इजन्रयाँजजन ववषयों के पीछे दौड़ती िैं उनके प्रनत िमारी आसजकत से दूरू िटना िोगा। मनुष्य को सभी वस्तुओं में अनासकत बुद्धधवाला बनना िोगा, 'असकतबुद्धधः सवत्रि'। तब अपनी नीरवता में प्रनतजष्ठत जीव से समस्त कामना दूरू िो जाएगी; वि सब लालसाओं से मुकत, 'ववगतस्पिृ' िो जाएगा। यि अवस्था अपनेसंग ननमनतर स्व की अधीनता और उच्चतर स्व की उपलजब्ध को ले आती िै अथवा उन्िें संभव बना देती िै, वि उपलजब्ध पूण िआमम-प्रभुमव पर ननभरि करती िै,

अपनी पररवतनिशील प्रकृनत पर आमूल ववजय और आधधपमय के द्वारा, 'जजतामम' बननेके द्वारा, उपलब्ध िोती िै। और इस सबका अथ िै वस्तुओंकी कामना का पूण िआंतररक मयाग, 'संन्यास'। संन्यास इस पूणिता का पथ िै और जजस मनुष्य ने इस प्रकार आंतररक रूप से सब कुछ मयाग हदया िै उसका वणनि गीता ने सच्चे संन्यासी के रूप में ककया िै।.... संन्यास माग िकियाशील प्रकृनत से अपनी ननवृवि में बिुत िी आगे बढ़ जाता िै। वि संन्यास से संन्यास के भलए िी आसकत रिता िै और जीवन और कम िके बाह्य मयाग और आममा तथा प्रकृनत की पूण िननस्तब्धता पर बल देता िै। इसके उिर में गीता किती िै कक जब तक िम शरीर में ननवास करते िैं तब तक ऐसा पूण िरूप से संभव भी निीं िै। जिााँतक ऐसा करना संभव िो विााँतक ऐसा ककया जा सकता िै, परंतु कमों का इस प्रकार कठोरतापूवकि न्यूनकरण अननवाय िनिीं ंिै: यिााँतक कक वास्तव में या कम-से-कम सामान्यत: यि उधचत भी निीं ंिै। एकमात्र आवश्यक वस्तु िै पूण िआंतररक ननजष्ियता और विी गीता के नैष्कमय िका संपूण िआशय िै।...

जब एक बार िमने पूणतिम आंतररक ननस्तब्धता को शुद्ुध ननव्यजिकतक आममा में ननवास करने के भलए एक आवश्यक साधन के रूप में मान भलया िै तो इसके बाद जो प्रश्न उठता िै वि यि िै कक कियाममक रूप में ननस्तब्धता से यि पररणाम कैसे उमपन्न िोता िै।

ससद्धिं ंप्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोनत ननबोि मे ।
समासेनैि कौन्तेय ननष्ठा ज्ञानमय या परा ।। ५० ।।

५०. हे कजन्तीपजत्र! इस ससद्धि को प्राप्त कर लेनेपर मनष्जय स्जस तरीके से ब्रह्म को प्राप्त करता है, जो मागु ुज्ञान की परम एकाग्रता का पथ है उस मागु ुको संक्षेप में मझज से सनज।

यिा ंााँजजस ज्ञान से अभभप्राय िै वि िै सांख्यों का योग, - गीता के द्वारा स्वीकृत शुद्ध ज्ञान-योग, 'ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानाम्,् जिााँतक कक यि योग उसके अपनेयोग के साथ एकीभूत िै जजसमें योधगयों का कममिाग िभी सजममभलत िै, 'कमयोिगेन योधगनाम्'्। परन्तु यिााँ कमों की समस्त चचाको वतमिान के भलए स्थधगत रखा गया िै। कयोंकक, यिााँब्रह्म का सवप्रिथम अभभप्राय िै नीरव, ननव्यजिकतक एवं अक्षर सि.... सबके साथ और भगवान् ्तथा उनके ववश्वगत संकल्प के साथ एक िोनेके भलए िमें सबसे पिले ननव्यजिकतक बनना िोगा और अपनेअिं तथा उसके दावों से और अपने-आप को, जगत् ्तथा दूसरों को देखने के अिं के तरीके से मुकत िोना िोगा। और यहद िमारी सिा में व्यजकतमव से या अिं से भभन्न कोई और वस्तु न िो, सव िभूतों के साथ एकीभूत कोई ननव्यजिकतक आममा न िो, तो िम ननव्यजिकतक और अिं-मुकत निीं िो सकते। इसभलए अिं को खोकर यिी ननव्यजिकतक आममा बन जाना, अपनी चेतना में यिी ननगुणि ब्रह्म बन जाना िी इस योग की पिली गनत िै। तो भला यि कैसे ककया जाए?

बद्ुजिया विशद्ुजिया यक्जतो घृत्ृयात्मानंननयम्य च ।
शब्दादीस्न्ृषियांमत्यक्त्िा रागद्ृषेिौ व्यदजमय च ।। ५१ ।।

विविक्तर्सेी लघ्ाशी यतिाक्कायमानसः ।

ध्यानयोगपरो ननत्यं िैरानयं समपजाधश्रतः ।। ५२॥

अहंकारं बलं दषं ंकामं क्रिों पररग्रहम् ्।

विमच्जय ननमुमुः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।। ५३।।

५१-५३. शद्जि की हजई बद्जधि को (अपने भीतर के शद्जि आत्मतत्त्ि के साथ बद्जधियोग के द्िारा) यक्जत करके, अपनी सत्ता को सदृजढ़ और अविचल संकल्य से संति करके, इस्न्द्रयों के शब्द आदद विषयों का पररत्याग करके, मनसे राग एि द्िेष को दूरू हटाकर, ननजुनु मथान में ननिास करते हजए, समताहारी रहतेहजए, मन, शरीर एि िाणी में संयसमत, ननरंतर ध्यानयोगपरायण, िैरानय (ननष्कामता और अनासस्क्त) का पूणुतुया पालन करते हजए, अहंकार, बल, असभमान, कामना, क्रिो और अधिकृत करने ेकी भिाना और सहज-प्ेरेरणा को छोि़कर, सममत मैं-पन और मेरे-पन के भिा से मजक्त, शांत मनजष्य ब्रह्म (मिरूप) बनने के योनय हो जाता है।

गीता किती िै कक सवप्रिथम बुद्धधयोग के द्वारा अपनी ववशुद्ध बुद्धध को अपनेअन्दर के शुद्ध अध्यामम-तत्त्व के साथ योगयुकत करके, 'बुद्धया ववशुद्धया युकतः,' यि काय िसंपन्न करना िोगा। बहिमुखिी और अधोमुखी दृजष्ट से ववमुख िोकर अंतमुखिी और ऊध्वमिुखी दृजष्ट की ओर बुद्धध का यि आध्याजममक झुकाव िी ज्ञानयोग का सार िै। ववशुद्ध बुद्धध को संपूण िसिा का ननयमन करना िोगा, 'आममानंननयमय; उसे िमें एक सुदृढ़ और एक धीर संकल्प के द्वारा, 'धृमृया', जो अपनी एकाग्रता में, पूण िरूप से, शुद्ध आममा की ननव्यजिकतकता की ओर मुिा रिता िै, ननमन प्रकृनत की बहिमुखिी कामनाओं के प्रनत आसजकत से परे िटाना िोगा। इंहरयों को अवश्य िी अपनेववषयों का मयाग करना िोगा, मन को राग-द्वेष अपनेअन्दर से ननकाल फेंकने िोंगे जो कक ये इंहरय ववषय इसमें भिकातिें, कयोंकक ननव्यजिकतक आममा के अन्दर कोई कामनाएँ और जुगुप्साएँ निीं ं िैं; ये तो वस्तुओं के स्पशों के प्रनत िमारे व्यजकतमव को प्राणणक प्रनतकियाएँ िैं, और इन स्पशों के प्रनत मन और इजन्रयों का अनुरूप प्रमयुिर िी इनका आश्रय और आधार िै। मन, वाणी और शरीर पर, यिा ँतक कक प्राणणक और शारीररक प्रनतकियाओं, भूख, सदी-गमी, शारीररक सुख-दुःख, पर भी पूण िननयंत्रण प्राप्त करना िोगा; िमारी संपूण िसिा को तटस्थ, इन द्वंद्वों से अप्रभाववत, समस्त बाह्य स्पशों तथा उनकी आंतररक प्रनतकियाओं एवं प्रमयुिरों के प्रनत सम बनना िोगा। यि सबसे अधधक सीधा और शजकतशाली तरीका िै, योग का सीधा-सटीक और तेज पथ िै। कामना और आसजकत को पूरी तरि से समाप्त िोना िोगा, 'वैराग्य; साधक से ननव्यजिकतक ननजनिता में सुदृढ़ रूप से आधश्रत िोने ेकी और ध्यान द्वारा अंतरतम आममा के साथ सतत् ्ऐकय लाभ करने ेकी मागँ की जाती िै। और कफर भी इस कठोर साधना का उद्देश्य ववश्व-कम िमें भाग लेने के कष्ट से पराङ्गमुख रिनेवाले मुनन और मनीषी के ककसी परम अिमाममक एकांतवास और शाजन्त में आमम-केंहरत िो जाना निीं ंिै; इसका उद्देश्य िै समस्त अिं से मुकत िोना।

ननव्यजिकतकता की यि सवप्रिथम साधना, जजसका गीता ने उपदेश हदया िै, ननःसंदेि अपनेसाथ एक प्रकार की पूणतिम आंतररक ननजष्यिता लाती िै और अपनेअंतरतम भागों में तथा अपनेसाधनाभ्यास के तत्त्वों में यि संन्यास की प्रणाली के िी समरूप िै। और कफर भी एक ऐसा त्रबंदु ुआता िै जिााँकियाशील प्रकृनत और बाह्य जगत् ्के दावों के पीछे िटने ेकी इसकी प्रवृवि रोक दी जाती िै और आंतररक ननजष्यिता पर एक रोकथाम लगा दी जाती िै जजससे कक यि अधधक गिन िोकर कमि-ननषेध और भौनतक ननवृवि" का रूप धारण न कर ले।.... गीता की ववचारधारा के इस ननणाियक मोड़ की और अगले दो श्लोकों में संकेत ककया गया िै, उनमें से पिले का ववचारिम ववशेष रूप से अथिगभभित िै....

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचनत न काङ्क्षनत ।
समः सिेष जभूतेष जमद्भस्क्तं लभतेपराम् ्।। ५४।।

५४. जब मनष्जय ब्रह्म हो जाता है, जब मनजष्य आत्मा में शांत-प्रसन्न हो न शोक करता है न कामना करता है, जब हि सममत प्राणणयों के प्रनत सम हो जाता है तब िह मेरे प्रनत परम् ्प्रेम और पराभस्क्त को प्राप्त करता है।

परंतु ज्ञान के संकीण िमाग िमें भजकत, सगुण (personal) रह्म के प्रनत भजकत, केवल एक ननमन एवं प्रारंभभक गनत िी िो सकती िै; परररणनत अथवा पराकाष्ठा तो िै ननगुिण रह्म के साथ ननववशेष एकमव में व्यजकतमव का लय जजसमें भजकत के भलए कोई स्थान िो िी निींसकताः कयोंकक विााँन कोई उपास्य िोता िै न कोई उपासक; आममा के साथ जीव के ननश्चल-नीरख तादाममय में और सभी कुछ ववलीन िो जाता िै। यि ाँगीता में िमें ऐसा कुछ प्रदान ककया गया िै जो ननव्यजिकतक रह्म से भी ऊाँचा िै, - यिााँ िै एक परम् ्आममा जो परम ईश्वर िै, यिााँ िै परम् ्पुरुष और उनकी परमा प्रकृनत, यिााँ पुरुषोिम जो सव्यजकतक और ननव्यजिकतक से परे िैं और अपनी शाश्वत ऊाँचाइयों पर इन दोनों में सामंजस्य साधधत करते िैं।.... इस दिेरी अनुभूनत में िी, सिा के अननवचिनीय समय के दो पक्षों के इस भमलन में िी, जजनमें से ककसी एक या दोनों के द्वारा मनुष्य अपनी अनंत सिा के पास पिुाँच सकता तथा उसमें प्रवेश पा सकता िै, मुकत पुरुष को ननवास करना तथा कम िऔर अनुभव करना िोगा और इसी में उसे सबके साथ तथा अपनी आममा के आंतर और बाह्य व्यापारों के साथ अपने संबंध ननधाररत करनेिोंगे, या यू ाँ्कि कक अपनी परमोच्च सिा की िमिम शजकत के द्वारा उसे अपने भलए उन संबंधों का ननधारिण कराना िोगा। और, उस एकीकारक अनुभूनत में भी उपासना, प्रीनत और भजकत केवल संभव िी निीं रितीं, अवपतुवे उस उच्चतम अनुभव का एक ववस्तृत, अपररिाय िऔर सवोपरर अंश िोती िैं।

प्रश्न : श्लोक संख्या ४९ में भगवान् ्कित िैं कक 'सब पदाथों में आसजकतरहित बुद्धि, आममजयी तथा कामनारहित मनुष्य संन्यास के द्वारा नैष्कमय िकी परम भसद्धि को प्राप्त कर लेता िै।' और कफर इसी को आगे बढ़ातेिुए श्लोक संख्या ५० से ५३ तक भगवान् ्बताते िैं कक ककस प्रकार व्यजकत रह्म बननेके योग्य िो जाता िै और रह्मस्वरूप िी िो जाता िै तब वि भगवान् ्के प्रनत परम् ्प्रेम और परमा भजकत प्राप्त करता िै। तो जो अक्षर रह्म की जस्थनत को प्राप्त िो जाता िै उसे प्रेम और भजकत प्रदान करने का कया औधचमय िै?

उत्तर : यि एक ब़िी िी ववभशष्ट बात िै। जो तथाकधथत ज्ञानीजन िैं वे भजकत या प्रे्रेम आहद भावों को अवमानना की दृजष्ट से और मनोवैज्ञाननक दुबुलिता के रूप में देखते िैं और ननगुणि अक्षर रह्म की प्राजप्त को िी परम् ्लक्ष्य माननतेिं। परंतु यिााँगीता भजकत को तो रह्म की प्राजप्त के बाद की अवस्था बताती िै। उसके अनुसार व्यजकत जब रह्म िो जाता िै तब वि भगवान् ्की पराभजकत और उनका परम् ्प्रे्रेम प्राप्त करता िै । इसका कारण यि िै कक चािे ककतनी भी ववशाल बुद्धध िो और उसके माध्यम से ककतना भी ववशाल और गंभीर अनुभव कयों न िो, तो भी हृदय समय के अधधक ननकट जा सकता िै। मानभसक अनुभवों में सदा िी एकांधगता रिती िै। शंकराचाय,ि रामानुजाचाय,ि मध्वाचाय िआहद सभी तमवववचारको के अनुभवों के ववषय में श्रीअरववन्द का किना िै कक उन सभी के अनुभव ननश्चय िी त्रबल्कुल सिी थे परंतुवे सभी थे ्एकपक्षीय। श्रीअरववन्द किते िैं कक स्वयं उन्िें भी वे सारे अनुभव प्राप्त िुए िैं परंतु ्इनके अनतररकत उन्िें असंख्यों और अनुभव भी प्राप्त िुए िैं। स्वयं श्रीरामकृष्ण परमिंस के उदािरण में िम देखतेिैं कक ककस प्रकार ननववकिल्प समाधध - जजसे कक योग की पद्धनतयों में उच्चतम समाधध अवस्था मानते िैं, जजसमें जस्थत िोनेपर व्यजकत का शरीर इककीस हदनों तक िी बनेरि सकता िै,

----

* इंहरयों के द्वारा अपने ववषयों का वजनि, 'ववषयांस्मयकमवा', 'मयाग'-रूप िी िोना चाहिए; वि अवश्य िी समस्त ऐंहरय आसजकत, 'रस' का पररमयाग िोना चाहिए, न कक इंहरयों की स्वभावगत आवश्यक किया का ननराकरण। मनुष्य को अपने चारों ओर को वस्तुओं के बीच ववचरना िोगा और इंहरय-क्षेत्र के ववषयों पर इंहरयों के शुद्ध, यथाथ िऔर प्रगाढ़, सिज और ननरपेक्ष व्यापार के साथ किया करनी िोगी जजससे कक इजन्रयााँहदव्य कम िमें आममा के उपयोग में िी आएाँ, 'केवलैररजन्रयैश्वरन्'्, कामना की पूनत िके काम में ककंधचममात्र भी निीं।ं वैराग्य अवश्य िोना चाहिए, पर जीवन से ववरजकत या जगमकम िके प्रनत अरुधच के सामान्य अथ िमें निीं, वरन् ्राग और साथ िी उसके ववपरीत द्वेष के मयाग के अथ िमें। मन और प्राण की समस्त रुधच का और साथ िी उनकी सब प्रकार की अरुधच का भी पररमयाग करना िोगा। ककन्तु गीता िमसेइस के भलए निीं, अवपतु इसभलए करती िै कक एक पूण िसामथ्यप्रिद समता प्रनतजष्ठत िो जाए जजसमें समस्त वस्तुओं के संबंध में सवांगीण और व्यापक हदव्य दृजष्ट को तथा प्रकृनत के बीच सवांगीण हदव्य कम िको एक ननबाधि औरअपररमेय स्वीकृनत दे सके।

उसके पश्चात् ्नष्ट िो जाता िै - में छः मिीनों तक जस्थत रिने ्के बाद जब वे उस समाधध अवस्था से बािर आए तो तुरंत िी मााँ काली के दशनिों के भलए मंहदर में चले गए। तोतापुरी जी, जजन्िोंने कक उन्िें उस समाधध की दीक्षा दी थी, उनके इस व्यविार से असमंजस में प़ि गए कक उच्चतम समाधध अवस्था में रिने ्के बाद भी कैसे कोई व्यजकत देवी-देवताओं की पूजा-भजकत आहद कर सकता िै कयोंकक उनके अनुसार उसे तो परमोच्च अनुभव प्राप्त िो चुका िोता िै जजसके बाद भजकत आहद ककन्िींननमनतर भावों के भलए कोई स्थान िी निीं ्रि जाता। तब श्रीरामकृष्ण जी की कृपा से उन्िें यि समझ में आया कक मााँ जगदमबा िमारी ककन्िींभी समाधध आहद अवस्थाओं से अनंततः ऊपर और परे िैं।

मानभसक चेतना जब वस्तुओंके समय को जानने के भलए असीम ननरपेक्ष सिा में अपने-आप को प्रक्षक्षप्त करती िै तो पररणामस्वरूप उसे जो आभास प्राप्त िोतेिं उन्िें वि रह्म, ईश्वर, सत् ्आहद की संज्ञाएाँ दे देती िै।

परंतु िमें यि समझना चाहिये कक िमारे ऊँचेसे ऊँचे आभास भी बिुत िी सीभमत िोते िैं और वे परमाममा को अपनी पररभाषाओं में बाधँ निींसकते। यि बात तो िम सिज िी समझ सकतेिैं कक यहद कोई पाशववक चेतना मानव चेतना का आकलन करने ेलगे तो वि कभी भी मानव चेतना को समझ कर उसे पररभावषत निीं कर सकती। परंतुअपनेअिं के कारण िमारे भलए अपनी मानभसक चेतना की सीभमतता को स्वीकार करना सिज निीं ंिै। जबकक असीम ननरपेक्ष सिा तो ककन्िीं िभी ऊँचेसे ऊँचेचेतना के स्तरों से भी किीं ंअधधक असीम और ननरपेक्ष िै। इसी कारण भगवान् ्श्रीकृष्ण अनेकों बार यि सूधचत करते िैं कक वे बिा से, ईश्वर आहद सभी से किीं अधधक मिान् ्िैं। वे िी रह्म के आधार िैं। अथात्ि् भगवान् ्की चेतना सभी कुछ से परे िै। गीता का सारा प्रयास यिी िै कक सभी मानभसक सूत्रों को सवथिा मयाग कर उन्िींभिगवान् ्की शरण ग्रिण की जाए। कयोंकक जब तक

व्यजकत की बुद्धध रह्म में, ननवाणि आहद में िी व्यस्त रिती िै तब तक तो वि ककसी सच्ची जस्थनत में निीं ंिोता। सभी तत्त्वरष्टाओं की परमाममा के ववषय में अपनी-अपनी अवधारणाएँ िोती िैं और उन्िें प्रतीत िोता िै कक वास्तव में उन्िींका दशनि सच्चा दशनि िै। और ककसी िद तक उनके भलए वि उपयोगी भी िो सकता िै, परंतु उनकी अवधारणा से समय सीभमत निीं ंिो सकता। परमाममा के ववषय में सभी के अपने-अपनेदृजष्टकोण िो सकतेिैं परंतुवे सारे भमलकर भी परमाममा के समस्वरूप को प्रभाववत निींकर सकते। अतः सबसे पिले व्यजकत को गिरे रूप से यि भान िोना आवश्यक िै कक मानव चेतना में और परमामम चेतना में बिा ववशाल अंतर िै। परमाममा के भलए तो चेतना की जजन ऊँची से ऊँची जस्थनतयों का वणनि भी िमें पढ़नेऔर सुनने ेको भमलता िै

वि

भी एक बिुत िी गौण ववषय िै कयोंकक आणखर िमारी ककन्िीं भी पररभाषाओं में या िमारी ककन्िीं भी अनुभूनतयों

में परमाममा ककसी प्रकार बंध निीं ंसकते। गीता की दृजष्ट एकमात्र उन परमाममा के ऊपर िै इसीभलए त्रबल्कुल व्याविाररक स्तर से आरंभ कर के अपने ववकासिम में सभी योग-पद्धनतयों का ननरूपण और समन्वय साधते िुए अंत में गीता उन सभी का अनतिमण करके एकमात्र प्रभु की शरण ग्रिण करने की भशक्षा देती िै। गीता ननष्काम कमों के प्रनतपादन से आरंभ करती िै, ननष्काम कम िके द्वारा व्यजकत को ज्ञान प्राप्त िोता िै और ज्ञान के द्वारा भजकत प्राप्त िोती िै। और जब व्यजकत को भजकत प्राप्त िोती िै तभी वि परमाममा के समस्वरूप को अधधक अंतरंग रूप से अनुभूत कर सकता िै। िालाकँक सच्चा ज्ञान अपनेसाथ सच्ची भजकत और सच्चा कम िभी भलये रिता िै, और वास्तव में तो तीनों िी अपनेसच्चेरूप में अन्य दो को भी साथ भलये रितेिैं परंतु िमारा हृदय िमारी बुद्धध की बजाय परमाममा के रिस्य को अधधक अंतरंग रूप से जान सकता िै। गीता ने पिले भी यि किा था कक ज्ञाननयों में भी जो भजकत से युकत िै वि श्रेष्ठ िै। अब धीरे-धीरे गीता बिे िी स्पष्ट रूप से भजकत को परम्

िमिा प्रदान कर देती िै। भगवान् ्स्पष्ट िी किते िैं कक 'चूंकक तू मेरा अंतरंग वप्रय िै इसभलए म ैं तुझे सवगिुह्यतम

रिस्य बताऊँगा।' वे ऐसा निींकिते [illegible] मुझेरिस्य बताऊँगा।' ज्ञान के द्वारा तो व्यजकत रह्मस्वरूप िो जात[illegible] प्रनत पे्रेम और परमा भजकत प्राप्त िोतीिैं। इस प्रकार गीता भजकत को परमोच्च स्थान प्रदान करती िै।

५५. अपनी ननज सत्ता के यथाथु ुमिरूप और समग्र तत्त्मिं में जो म ैहूँ और स्जतना हूँ, िैसा भस्क्त के द्ारा िह मझेज जानने ेलगता है; इस प्रकारमझेु जानकर िह मझजमें प्रविष्ट हो जाता है।

[गीता किती ै कक भगवान् ्का पूण िज्ञान] उच्चतम भजकत से आता ै। यि तब प्राप्त ोता ै जब मन वस्तुओंके संबंध में एक अनतमानभसक और उच्च आध्याजममक दृजष्ट के द्वारा अपनेको अनतिम कर जाता ै और इसके साथ–ी-साथ जब हृदय भी प्रेम और भजकत के िमारे अज्ञतर मानभसक रूपों से परे एक ऐसे प्रेम में ऊपर उठ जाता ै जो ववशालतम ज्ञान से प्रदीप्त, शांत और गंभीर ोता ै, (और जब हृदय) भगवान् ्में परम आनंद और अपार भजकत, अववचल िषानितरेक एवं आध्याजममक आनंद में ऊपर उठ जाता ै। जब जीव ने अपना पृथक् व्यजकतत्त्व खो हदया ोता ै, जब वि रह्म बन जाता ै तभी वि सच्चेपुरुष में ननवास कर सकता ै और पुरुषोम के प्रनत परम उद्भासक भजकत लाभ कर सकता ै और उसकी गंभीर भजकत तथा उसके हृद्गत ज्ञान की शजकत के द्वारा उसे पूणरूप से जान सकता ै, 'भकमया मामभभजानजन्त।' यिी समग्र ज्ञान ै जजसमें हृदय की अगाध दृजष्ट मन की चरम अनुभूनत को पूण िबनाती ै, - 'समग्रं मांज्ञामवा ।'... इस प्रकार मुकत पुरुष की अंतराममा एक समन्वयकारी ज्ञान के द्वारा पुरुषोम में प्रवेश करती ै और एक ी साथ ववश्वातीत, व्यजकतगत तथा ववश्वगत भगवान् ्के पूण िआनंद के द्वारा वि उनके अंदर प्रवेश पा लेती ै, 'मांववशतेतदनन्तरम्।्' वि पुरुष अपने आमम-ज्ञान और आममानुभव में, अपनी सिा, चेतना और संकल्प में, अपनेजगत्–्ज्ञान और जगमप्रेरणा में उनके साथ एक ो जाता ै, ववश्व में और ववश्व के सब प्राणणयों के साथ अपनेएकमव में वि उनके साथ एक ो जाता ै और साथ ी जगत् ्और व्यजकत से परे शाश्वत अनंत की परामपरता में भी, 'शाश्वतं पदमव्ययम्,्' वि उनके साथ एक ो जाता ै। परम ज्ञान की सारभूत परम भजकत की चरम पररणनत यिी ै।

और तब यि स्पष्ट ो जाता ै कक ककस प्रकार अववरत और अववजच्छन्न कम,ि जीवन के कायि–कलाप के ककसी भी भाग को कम ककये त्रबना या छोड़े ेकमा सब प्रकार का कम,ि न केवल परम आध्याजममक अनुभव के साई सवथिा संगत ी ो सकता ै, अवपतु वि इस सवोच्च आध्याजममक जस्थनत को प्राप्त करने ेका उतना ी शजकतशाली साधन भी ो सकता ै जजतना कक भजकत या ज्ञान। इस ववषय में गीता का जो कथन ै उससे अधधक स्पष्ट कथन कोई ो ी निीं सकता।

यि एक ब्रिी ी रोचक बात ै कक जजस रह्म के साक्षामकार के भलए व्यजकत सभी कमों का मयाग कर पूरी तरि ननष्कमणि्यि बन जाता ै विी रह्म की प्राजप्त के बाद जब भगवान् ्के प्रनत प्रेम और उनकी पराभजकत लाभ कर लेता ै तब उसके भलए कम िआध्याजममक जस्थनत को प्राप्त करने ेके भलए भजकत और ज्ञान के समान ी शजकतशाली साधन बन जाते ैं। इस प्रकार गीता किीं ंभी कमों के संन्यास का प्रनतपादन निीं ंकरती। वि तो भजकत की प्राजप्त के बाद भी कमों को उससे समजन्वत कर देती ै।

सिुकुमुाण्यवप सदा कजुिाणो मद्यिपाश्रयः ।
मत्प्रसादादिाप्रोनत शाश्तिं पदमव्ययम् ्।। ५६।।

५६. और सिुदा मझज में ननिास करते हजए सभी कमों को करता हजआ भी िह मेरी कृपा से शाश्ति और अविनाशी पद प्राप्त करता है।

इस मोक्षप्रद कम िका स्वरूप उन कमों के जैसा ि जो िमारे अंदर तथा सृजृष्ट के अंदर ववद्यमान भगवान् ् के साथ िमारे संकल्प और िमारी प्रकृनत के सभी कियाशील अंगों के प्रगाढ़ ऐकय में ककये जाते िैं। सबसे पिले यि यज्ञ के रूप में ककया जाता ि, पर अपने-आप के िकिा िोने का भाव अब भी िोता ि। इसके बाद यि इस भाव के त्रबना और इस अनुभूनत के साथ ककया जाता ि कक प्रकृनत िी एकमात्र कती ि। अंत में यि इस ज्ञान के साथ ककया
जाता ि कक वि प्रकृनत भगवान् ्की परमा शजकत ि, और व्यजकत को केवल एक माध्यम मात्र एवं एक यंत्र समझकर सभी कमों का भगवान् ्के प्रनत संन्यास और समपणि करते िुए ककया जाता ि। तब िमारे कम िसीधे मिारे अंदर जस्थत आममा और भगवान् ्से प्रादुभूति िोतिं, अववभाज्य ववश्व-कम िका एक अंग िोते िं, िमारे द्वारा नििं, अवपतु एक बृित् ्परामपर शजकत के द्वारा प्रवनतति और संपाहदत िोतिं। तब िम जो कुछ भी करते िं वि सब सवभूितों के हृदय में आसीन प्रभु के भलए, व्यजकत में अवजस्थत परमेश्वर के भलए और िमारे अंदर उनके संकल्प की भसद्धध के भलए, जगत् ्में ववद्यमान भगवान् ्के भलए. अनभूतों के कल्याण के भलए, जगत्-्कम अिौर
जगत्-्उद्देश्य की पररपूनत िके भलए, या एक शब्द में, पुरुषोम के भलए ककया जाता ि और वास्तव में यि साथ अपनी ववश्व-शजकत के द्वारा वे ेस्वयं िी करते िं। ये हदव्य कम,ि उनका किी रूप-स्वरूप चिो जो भी कयों न िि
कफर भी, ि में बाधाँ निं ं सकते, इसकी बजाय ये तो इस ननमनतर त्रत्रगुणमयी प्रकृनत से परम, हदव्य एवं आध्याजममक प्रकृनत की पूणतिा की ओर उठने का एक शजकतशाली साधन िं। इन भमधश्रत और संकीण िधमों से मुकत िोकर िम उस अमर धम िमें पिुँच जाते िं जो िम पर तब प्रकट िोता ि जब िम अपनी समस्त चेतना और कम िमें अपने को पुरुषोम के साथ एक कर लेते ि। यिािम जो एकमव लाभ करते ि वि विाकाल से परे अमृतमव में उठ जानेकी शजकत अपनेसंग ले आता ि। विाँ िम उनकी ननमय परामपरता में ननवास करते िं।

इस प्रकार ये आठ श्लोक श्रीगुरु के द्वारा पिले िी हदये जा चुके ज्ञान के प्रकाश में ध्यानपूवकि पढ़नेपर गीता के संपूण ियोग का संपूण िमूलभूत ववचार, समग्र केंरीय पद्धनत और संपूण िसार का, भले िी संक्षेप में परंतु कफर भी, एक व्यापक ननदेश करते िं।

IV. परम्-्रिस्य

इस प्रकार भशष्य के सममुख उसके कम िऔर संग्राम के क्षेत्र में भशक्षा और योग का सार प्रकट कर हदया गया ि और अब श्रीगुरु इसे उसके कम िपर लागू करने ेकी ओर अग्रसर िोते िं, परंतु एक ऐसे ढंग से जजससे यि मिारे समस्त कम िपर लागू ूककया जा सकता ि। एक अमयंत मित्त्वपूण िदृष्टांत से संबद्ध और कुरुक्षेत्र के नायक से किे गए ये शब्द बिुत िी व्यापक अथ िरखते िं और जो लोग भी साधारण मानभसकता से ऊपर उठनेतथा उच्चतम आध्याजममक चेतना में ननवास करनेऔर कम िकरनेके भलए तैयार िं उन सभी के भलए ये एक सावभौम

ननयम ि ैं। अि और व्यजकतगत मन के घेरे को ति़ोकर उससे बिार ननकल जाना और प्रमयेक चीज को आममसिा और आममा की ववशालता में देखना, परमेश्वर को जानना और उनके समग्र समय में तथा सभी रूपों में उनकी पूजा करना, प्रकृनत और अजस्तमव की परामपर आममा को अपना सवस्वि समवपति कर देना, भगवच्चेतना को अधधकृत करना तथा उसके द्वारा अधधकृत िोना, प्ेरम, आनंद, संकल्प और ज्ञान की सवि–व्यापकता में उन एकमेवाद्ववतीय के साथ एकमय िोना, उनके अंदर सभी जीवों के साथ एक िोना, एक ऐसे जगत् ्की हदव्य आधारभशला पर आराधना और यज्ञ के रूप में कम िकरना, जजसमें सभी कुछ भगवान् ्िी ि ैं तथा मुकत आममा की हदव्य जस्थनत में आराधना और यज्ञ के रूप में कम िकरना - यिी गीता के योग का तामपय िि ैं। यि ि ै िमारी सिा के दृश्यमान समय से उसके परम आध्याजममक और वास्तववक समय में संमिण, और, पृथृककारी चेतना की अनेक सीमाओंको दूरू कर और आवेग, चंचलता एवं ंअज्ञान के प्रनत, न्यूनतर प्रकाश और ज्ञान तथा पाप और पुण्य के प्रनत, ननमनतर द्वन्द्वाममक ववधान और आदश िके प्रनत मन की आसजकत का पररमयाग करके िी मनुष्य उस समय में प्रवेश कर सकता िै। इसभलए, श्रीगुरु कितेिं..

चेतसा सिुकुमुाणण मनय संन्यमय मत्परः ।

बद्जधियोगमपजाधश्रत्य मस्च्चत्तः सततंभि ।। ५७।।

५७. अपने-आप को पूणुतुया मजझमें अनरजक्त करके, अपने सचेतन मन में अपनेसममत कमों को मझजमें समवुपतु करके बद्जधियोग का आश्रय ग्रहण करके, सदा अपनेहृदय और चेतना में मेरे साथ एक हो।

मस्च्चत्तः सिुदुगुज्ञाणण मत्प्रसादात्तररष्यसस ।

अथ चेत्त्मिहंकारान्न श्रोष्यसस विनक्ष्यसस ।। ५८।।

५८. सिुदुा अपनेहृदय और चेतना में मेरे साथ एक होकर, मेरी कृपा से तू सममत कदठन और संकटपूणु ुमागौं को सरजज्ञक्षत रूप में पार कर जाएगा; परंत जयदद तू ूअहंकारिश नहीं ंसनेजगा, तो तू नष्ट हो जाएगा।

यि एक ब़िी िी रोचक बात ि ै कक जब व्यजकत पूणतिया भगवान् ्में अनुरकत िो चुका िो, सचेतन मन में अपनेसमस्त कम िभगवान् ्को अवपति कर चुका िो और सदा अपने हृदय और चेतना में भगवान् ्के साथ एक िो चुका िो तब कफर कहठन और संकटपूण िमाग िकौनसे रि जाते िैं। कयोंकक जजन पूवजिस्थनतयों की श्रीकृष्ण बात कर रि ि ैं - जैसे कक पूणतिया उनमें अनुरकत िोना, समस्त कमों को भगवान् ्को समवपति करना आहद – उनमें से ककसी एक को भी वास्तव में संभसद्ध करना िी अपनेआप में कोई सिज काय िनिीं, तब कफर यिा ंाँवणणति जब ये सारो िी संभसद्ध िो जाएँ तब तो िमें यिी लगेगा कक आणखर करने ेको शेषे रि कया जाता िै। परंतु भगवान् ्कितेिैं कक ये सब करने ेके बाद 'मेरी कृपा से तू ूसमस्त कहठन और संकटपूण िमागौं को सुरक्षक्षत रूप में पार कर जाएगा। इससे यि स्पष्ट संकेत भमलता ि ै कक हृदय और चेतना में एक िो जानेपर भी जीवन में संकटपूण िमाग ि बनेरितिं परंतु भगवान् ्की कृपा से व्यजकत उन्िं पार कर जाता िै।

यदहंकारमाधश्रत्य न योत्मय इनत मन्यसे ।

समथ्यैष व्यिसायमते प्रकृनतमत्ाि ंननयोक्ष्यनत ।। ५९।।

५९. यदद तेरे अहंकार में तू ूऐसा सोचता है कक "म ैंयद्जि नहींकरूंगा", तो तेरा ननश्चय व्यथु ुहै; तेरीप्रकृनतिसे तझे कमु ुमें ननयक्जत करेगी।

मिभिाजेन कौन्तेय ननबद्ः स्मिेन कमुणा ।

कतं ंजनेच्छसस यन्मोहात्कररष्यमयिशोऽवप तत् ्।। ६०।।

६०. हे कौन्तेय! मोहिश स्जस कमु ुको तू नहीं ंकरना चाहता उसे मिभिाजन्य अपनेकमु ुसे बूँिा हआु तू वििश होकर करेगा।

ईश्िरः सिुभूतानां ंहृद्देशेऽजुजनु नतष्ठनत ।

भ्रामयन्सिुभूतानन यन्त्रारूढानन मायया ।। ६१।।

६१. हे अजुजनु! ईश्िर सममत भूतों के हृदय में अिस्मथत हैं और अपनी माया के द्िारा यन्त्र पर आरूढ़ के समान सममत भूतों को घमजातेरहते हैं।

तमेि शरणंगच्छ सिुभािेन भारत ।

तत्प्रसादात्परां शास्न्तं मथानं प्राप्मयसस शाश्ितम् ्।। ६२।।

६२. हे भारत! अपनी सत्ता के सममत भािों में एकमात्र उन्हींकी शरण ग्रहण कर और उनकी कृपा से तू परा शास्न्त और शाश्ित पद को प्राप्त हो जाएगा।

[५७ से ६२ तक के श्लोकों के].... अन्दर इस योग का अंतरतम मम िननहित िै और वे िमें इसके सवोच्च अनुभव तक ले जाते िैं और इनको िमें इनके अमयंत अंतरतम भाव में और उस सवोच्च अनुभव की संपूण ि ववशालता में समझना िोगा। ये शब्द ईश्वर और मनुष्य के बीच िो सकने ेवाले अधधक-से-अधधक पूण,ि घननष्ठ और जीवंत संबंध को व्यकत करते िैं; जजन ववश्वातीत और ववश्वगत भगवान् ्से मनुष्य उमपन्न िोता िै और जजनमें वि वास करता िै उनके प्रनत उसके अनन्य आराधन, अपनी संपूण िसिा के ऊध्वमिुख समपणि और नन:शेषे एवं पूण िआममदान से जो धाभमकि भाव फूट प़िता िै उसकी घनीभूत शजकत से ये शब्द ओत-प्रोत िैं। गीता ने भजकत, ईश्वर-पे्रम और 'परम' की उपासना को शे्रेष्ठतम कम िकी अंतरतम भावना और पे्ररणा के रूप में तथा शे्रेष्ठतम ज्ञान के मुकुट और सारमम िके रूप में जो उच्च और स्थायी स्थान हदया िै उसके साथ प्रबल भाव पर जोर देना पूण िरूप से संगत िै। यिााँजो शब्द प्रयुकत ककये गये िैं और जजस आध्याजममक भाव से वे अनुप्राणणत िैं वि परमेश्वर के वैयजकतक समय एवं साजन्नध्य को संभवनीय गिनतम प्रमुखता और सवाधिधक भिमा प्रदान करते प्रतीत िोते िैं। यि कोई दाशनिनक की अमूत िननरपेक्ष सिा, सब संबंधों के प्रनत असहिष्णु कोई उदासीन

ननव्यजिकतक उपजस्थनत या अननवचिनीय नीरवता निीं ंिै जजसके प्रनत िमारे सब कमों का इस प्रकार का पूण ि समपणि ककया जा सकता िै और िमारे सचेतन अजस्तमव के सभी भागों में उसके साथ एकमव की इस घननष्ठता और अंतरंगता को िमारी पूणतिा का अननवाय िननयम और ववधान बनाया जा सकता िै, और जजसके कक ये हदव्य सियता अथवा िस्तक्षेप, संरक्षण और मुजकत प्रनतज्ञापूण िआश्वासन िैं। िमारे कमों का प्रभु,ु िमारी अंतराममा का सखा और प्रेमी, िमारे जीवन की अंतरंग आममा, िमारी समस्त वैयजकतक और ननवैयजकतक सिा और प्रकृनत का अंतवासिी और ऊध्ववासिी अधीश्वर िी एकमात्र वि िै जो िमें यि अंतरंग और प्रेरणाप्रद संदेश दे सकता िै। तथावप यि वि सामान्य संबंध निीं ंिै जो धमों के द्वारा साजत्त्वक या अन्य प्रकार के अिं-मानस में रिनेवाले मनुष्य के तथा इष्टदेव के ककसी वैयजकतक रूप एवं पक्ष के बीच स्थावपत ककया जाता िै, इष्टदेव का यि रूप भी उस मन के द्वारा िी गढ़ा जाता िै अथवा यि उसके सीभमत आदश,ि अभीप्सा या कामना को पूण िकरनेके भलए उसके सममुख प्रस्तुत ककया जाता िै। वैसा तो सामान्य मानभसक मनुष्य की धाभमकि भजकत का साधारण आशय एवं वास्तववक स्वरूप िै; परंतु यिााँ एक अधधक व्यापक वस्तु ववद्यमान िै जो मन और उसकी सीमाओंएवं उसके धमों को अनतिम कर जाती िै। मन से अधधक गंभीर कोई सिा िो समपणि करती िै और इष्टदेव से अधधक मिान् ्कोई सिा िी उस समपणि को ग्रिण करती िै।

यिा ाँश्रीअरववन्द एक बिे िी अद्भुत रिस्य को उजागर करते िैं कक समपणि करने वाला और समपणि को ग्रिण करनेवाला दोनों बिुत िी गिरी सिाएाँ िोती िैं। समपणि करनेवाले को जो भी कुछ अनुभव िोता िो, परंतु कोई गंभीर आंतररक तत्त्व िै जो समपणि करता िै। ियालाकाँक मानभसक रूप से व्यजकत का भगवान् ्के ककसी रूप से आकषणि िो सकता िै परंतु श्रीअरववन्द जजस तत्त्व को यिा ाँउजागर कर रिे िैं वि समपणि के ककन्िीं मानभसक
रूपों से परे िै। अतः जो समपणि करता िै वि भी मानभसकता से परे की सिा िै और जो उसे ग्रिण करता िै वि भी इष्टदेवता से किीं ंअधधक मिान् ्सिा िै।

यिा ाँजो समपणि करता िै वि िै जीव, मनुष्य की मूल अंतराममा, उसकी आहद केंरीय और आध्याजममक सिा, व्यजष्ट-पुरुष.... गीता की भशक्षा की यिी गंभीर व्यापकता िै कक जिााँ यि ववश्व-भावापन्न ननव्यजिकतकता के उस समय को स्वीकार करती िै जजसमें िम अिं के ननवाणि , 'रह्म-ननविाण' के द्वारा प्रवेश करते िैं, - ननश्चय िी इसके त्रबना मोक्षप्राजप्त संभव निीं ंया कम-से-कम कोई चरम मुजकत संभव निीं,ं - विााँ यि सवोच्च अनुभव के अंग के रूप में िमारे व्यजकतमव के धचरस्थायी आध्याजममक समय को भी स्वीकार करती िै। िमारे अन्दर की यि प्राकृत सिा निींअवपतु वि हदव्य और केंरीय सिा िी सनातन जीव िै। ईश्वर एवं वासुदेव िी, जो कक सब कुछ िैं, मिारे मन, प्राण और शरीर को ननमन प्रकृनत के उपभोग के भलए ग्रिण करते िैं; परा प्रकृनत, परम् ्पुरुष की आद्या आध्याजममक प्रकृनत िी ववश्व को संगहठत ककये िुए िै और इसके अन्दर जीव के रूप में प्रकट िोती िै। अतः यि जीव पुरुषोिम की मूल हदव्य अध्यामम-सिा का एक अंश िै, जीवंत सनातन की एक जीवंत शजकत िै। वि केवल ननमन प्रकृनत का एक अस्थायी रूप निीं ंिै, अवपतु ुअपनी परा प्रकृनत में अवजस्थत परमदेव का एक सनातन अंश िै, हदव्य अजस्तमव की एक शाश्वत धचन्मय रजश्म िै और उतना िी धचरस्थायी िै जजतनी कक वि परा प्रकृनत।

और जो िमारे समपणि को ग्रिण करता िै वि कोई सीभमत देवता निीं,ं वरन् ्पुरुषोत्तम िै, एकमेव शाश्वत देव, जो कुछ भी िै उसकी और समस्त प्रकृनत की एकमेव परम् ्आममा, जगत् ्की आहद परामपर अध्यामम-सिा िै... जो अननवचिनीय रह्म िै और साथ िी सुहृद्, ईश्वर, प्रकाशदाता और प्रेमी भी िै, विी, इस पूणतिम भजकत और शरणागनत का, इस अमयंत घननष्ठ आंतररक संभूनत और समपणि का पात्र िै...

केवल रह्म की ऐकांनतक ननव्यजिकतकता परमोच्च रिस्य निीं ंिै। परमोच्च रिस्य तो िै यि मिान् ् चममकार कक परम् ्पुरुष और प्रतीयमान बृित् ्ननव्यजिकतक सिा - ये दोनों एक िी िैं, सब वस्तुओंका एक अक्षर परामपर आममा और वे परम् ्पुरुष जो यिाँअपने-आप को सृजृष्ट के आधार तक में सवत्रि कायरित एक अनंत और बुिववध व्यजकतमव के रूप में अभभव्यकत करते िैं, - एक आममा और पुरुष जो िमारे चरम, अंतरंगतम और गंभीरतम अनुभव में एक नन:सीम सत्–्स्वरूप पुरुष के रूप में प्रकाभशत िोते िैं, जो िमें स्वीकार करते िैं और िमें अपने समीप ले जाते िैं, ककसी ननराकार अजस्तमव के शून्य में निीं अवपतु अमयंत प्रमयक्ष, गंभीर तथा अद्भुत रूप से और अपनी तथा िमारी सचेतन सिा के सभी भावों के साथ अपने संपूण िननजस्वरूप में ले जाते िैं। यि उच्चतम अनुभूनत और देखने का यि व्यापक तरीका िमारी प्रकृनत के भागों, िमारे ज्ञान, संकल्प, हृदय के प्रेम और उपासना की एक गंभीर, ममस्पिशी और अनंत साथकिता प्रकट कर देते िैं, जो कक तब नष्ट या न्यून िो जाती यहद िम केवल ननव्यजिकतक पर िी एकांगी बल देते, कयोंकक जो प्रवृवियाँ और शजकतयाँ िमारी गंभीरतम प्रकृनत का एक अंश िैं उनकी गिनतम पररपूनत िको, उन प्रगाढ़ और तेजोदीप्त जस्थनतयों को, जो िमारे आममानुभव के अंतरतम मूल तंतुओंसे बाँधी िुई िैं, वि एकांगी बल दबा देता िै या लघु-से-लघु कर देता िै या कफर संपन्न िी निीं िोने ेदेता। ज्ञान का तप िी एकमात्र वि निीं िै जो िमारी सियता कर सकता िै; उस हृदय के प्रेम और अभीप्सा के भलए भी स्थान िै और अनंत स्थान िै जो ज्ञान के द्वारा, अधधक गुह्य रूप से सुस्पष्ट, अधधक मिान् ्एवं शांत रूप से भावावेगपूण िज्ञान के द्वारा आलोककत और ऊपर उठा िुआ िै। अपनी हृदय-चेतना, मनश्चेतना, समग्र-चेतना के सतत् ्एकीभूत साजन्नध्य के द्वारा िी, सततंमजच्चत:, िम सनातन के साथ अपने एकमव का ववशालतम, गंभीरतम एवं ंपूणतिम अनुभव प्राप्त करते िैं। यिा ँयि उपदेश हदया गया िै कक समस्त सिा में अंतरंगतम एकमव िी, जो ववश्वभाव के बीच भी, परामपरता के भशखर पर भी हदव्य आवेग के साथ प्रगाढ़ रूप से व्यजकतगत िोता िै, मानवाममा के भलए परम देव की प्राजप्त का पथ िै और साथ िी जजस पूणतिा एवं हदव्य चेतना की ओर उसकी प्रकृनत उसे आममा के रूप में पुकारती िै उसे उपलब्ध करने का भी यिी माग िि ै। बुद्धध और संकल्प को िमारे संपूण िअजस्तमव को उसके सब भागों में ईश्वर की ओर, उस समस्त अजस्तमव के हदव्य आममा एवं प्रभु की ओर फेर देना िोगा, बुद्धधयोगमुपाधश्रमय । हृदय को अन्य समस्त आवेग को उनके साथ एकमव के आनन्द में पररणत करना िोगा, सवभिूतों में अवजस्थत उनके प्रनत प्रेम में पररणत करना िोगा। इंहरयों को अध्याममभाववत िोकर सवत्रि उन्िीं को देखना, सुनना और अनुभव करना िोगा। जीवन को पूण िरूप से जीव के अन्दर उन्िीं का जीवन बनना िोगा। समस्त कमों को संकल्प, ज्ञान, कमेजन्रयों, ज्ञानेजन्रयों, प्राणणक भागों तथा दिे में ववद्यमान उनकी अनन्य शजकत एवं ंअनन्य प्रेरणा से िी उद्भूत िोना िोगा। यि माग िगिरे रूप से ननवैयैजकतक िै कयोंकक इसमें ववश्वभाव तथा पुन: ववश्वातीत भाव में प्रनतजष्ठत आममा के भलए अिं की पृथकता भमट जाती िै। और कफर भी यि घननष्ठ रूप से व्यजकतगत िै कयोंकक यि अंतननवििास तथा िकमव के लोकोिर आवेश एवं शजकत की ओर

ज़िन लेता ै। मानभसक तक की कठोर मागाँ के अनुसार आममननवाणि का स्वरूप ननववशिेषे लय ो सतकि ै, ककन्तु वि लय परम रिस्य का, 'रिस्यमिुमम्' ् का अंनतम वचन निीं ै।

मिारी सिा में ननवैयैजकतक भाग भी ैं और सव्यजकतक भाग भी ैं। और चूंकक प्रमयेक भाग परमाममा से िी आया ुआ ै इसभलए प्रमयेक भाग अपनी तुजष्ट और पररपूनत ेचािता ै। यहद व्यजकत केवल संन्यास, ननवाणि, ननवृवि आहद पर ी बल दे तो उसके उन भागों को तो स्वयंको तुष्ट और पररपूण करने का अवसर ी निीं भमल पाता जो परमाममा के सव्यजकतक सगुण पक्ष का स्पश चािते ैं। इसभलए केवल ककसी एक पक्ष को ी तुष्ट करना कभी परम् रिस्य निीं ो सकता। अधधकांश प्रचभलत योग प्रणाभलयाँ ननवृवि पर बल देती ैं कयोंकक उनका मानना ै कक संन्यास, ननवृवि आहद के द्वारा व्यजकत को जब संपकि प्राप्त ो जाता ै तब कफर उसे उसी में जस्थत रिना चाहिये और अन्य भागों को उनके अपनेिाल पर छोड़ देना चाहिये ताकक धीरे-धीरे उन भागों की वृवियाँ या तो शांत ो जाएँगी या नष्ट ो जाएँगी या पोषण के अभाव में क्षीण ो जाएँगी। परंतु जब प्रमयेक भाग को भगवान् का संस्पश प्राप्त ोता ै केवल तभी पूरी सिा की पररपूणतिा की पराकाष्ठा ोती ै। अतः ईश्वर की सिा व्यजकतमवशून्य निीं ो सकती। यहद ईश्वर व्यजकतमवशून्य ोतेतो किीं भी कोई व्यजकतमव आ ी कैसे सकता था। व्यजकतमव और ननव्यजिकतमव के ववषय में योगी श्रीकृष्णप्रेम द्वारा भलखे पत्र बिे ी प्रकाशक ैं। वे कित ैं, "व्यजकतमव तथा ननव्यजिकतमव जैसे झगड़ों से अपनेको व्यधथत मत करो। व्यजकतमव का अपनेठीक ववपरीत ननव्यजिकतमव से अलग अपने-आप में कोई अथ निीं और ऐसा ी ननव्यजिकतमव के साथ ै। वे तो मानभसक शब्द ैं और ववचार में सदा ी एक दूसूरे से संयुकत ककये जाने चाहिये। चेतना में ककसी एक पर अनतशय बल देने का अथ ै दूसूरे की घातक प्रनतच्छाया द्वारा परेशान ककये जाना। दोनों ी कियाओं के प्रनत ग्रिणशील रिो, और कृष्ण, जजनसे दोनों ी उमपन्न ोतीं, आममा को फलप्रद बनाएँगे।" (योगी श्रीकृष्णप्रेम, पृषूठ २१६)

एक अन्य स्थान पर वे कितीं कक, "म ैं स्वयंपूणतिः सुननजश्चत ूँ कक श्रीकृष्ण को पूण मूततिा या ठोस रूप में अनुभव ककया जा सकता ै। जैसा कक म ैं सोचता ूँ कक मनैं एक बार पिले भी यि बताया था, वे तो सभी मूततिाओं के परम् मूत ैं न कक मिज़ कोई कोिरेनुमा धुधाँले अमूत या काल्पननक रूप ैं। वे ककसी ननराकार रह्म में से कोई अथ–काल्पननक प्रक्षेपण निीं ैं, वरन् वि सद्वस्तु ैं जो अन्य सभी कुछ को अवलंब प्रदान करती ै। म ैं ननववशिेषे रह्म के अनुभव की समयता को अस्वीकार निीं कर रिा अवपतु यि कि रिा ूँ कक उसे देखना तो सूयप्रकाश को देखने के समान ै जबकक कृष्ण को देखना स्वयंसूय को देखना ै।

म ैं तुमसे सवथिा सिमत ूँ कक श्रीकृष्ण का प्रेम ककसी भी मात्र ननयजकतक आनंद से किीं अधधक पररपूरक या तुजष्टप्रद ै और जो कोई ऐसे प्रेम की कामना करने के स्तर तक भी पिुँच गया, वि उससे कम में कभी भी संतुष्ट निीं ो सकता। परंतु विींदूसूरी ओर, म ैं यि भी अनुभव करता ूँ कक िमें उन पर यि मागाँ भी निीं लादनी चाहिये कक िमारे प्रेम को ग्रिण करने के भलए उन्ें अपने-आप को हदखाना चाहिये। इसमें ककसी प्रकार का कोई संदेि निीं ै कक वे ऐसा कर सकतीं और करते ी ैं, और वि भी उतने ठोस रूप में जजतना कक कोई उनसे कामना कर सकता था, परंतु मुझे लगता ै कक व्यजकत को यि पूण रूप से उन्ीं पर छोड़ देना चाहिये और - यहद

यिी उनकी इच्छा िो तो - त्रबना ककसी प्रनतफल के अथवा यिा ाँतक ककसी दशनि के त्रबना भी उनसे पे्रम करने ेमें

संतुष्ट रि। जब तक ऐसा निींिो जाता तब तक िमारा पे्रम स्वाथ िमें रंगा रिता िै। गोपीपे्रम कृष्ण का रस लेनेया उनका भोग करनेकी कामना निीं िै बजल्क वि तो उनकी सेवा करनेऔर उनके द्वारा उपभोग ककये जाने की कामना िै। व्यजकत को कोई भी मागाँ और कोई भी सौदेबाजी या मोलभाव निीं ंकरना चाहिये। परंतु इसके साथ िी इसका यि अथ िनिीं िै, जैसा कक कुछ आध्याजममकरण करनेवाले लोग भशक्षा देते िैं, कक कृष्ण का पे्रम तो इस प्रकार सिज रीनत से ननःस्वाथतिा को अवस्था को प्रनतजष्ठत करनेका मिज़ एक साधन िै और यि कक जब वि प्राप्त िो जाए तो कफर सगुण-साकार व्यजकतगत कृष्ण की आगे और कोई आवश्यकता निीं ंिै। बात तो इससे े ठीक उल्टी िै। ननःस्वाथतिा तो उन्िें प्राप्त करनेका साधन िै और उनके अपनेसमय पर वे अपनेभकत के पे्रम को उतने िी व्यजकतगत और यथाथ िरूप में स्वीकार करते िैं जजतना कक कोई उनसे कामना कर सकता था, और मि

कल्पना भी कर सकें उससे भी किीं ंअधधक वास्तववक रूप से वे स्वीकार करते िैं। वे ेतो, जैसा कक तुम कितेिो, 'दृजष्टपटल पर पड़े ेसूयप्रिकाश' से भी अधधक वास्तववक और अधधक जीवंत िैं। िम आध्याजममक यथाथतिाओं को

अस्पष्ट और भारिीन मानने के इतनेअभ्यस्त िो चुके िैं कक यि बोध करनेमें सवथिा असफल रिते िैं कक िमारे इंहरयानुभवों में जो भी 'यथाथतिा' और 'जीवंतता' िम पातेिैं वि तो और कुछ निींकेवल उनकी जीवंतता की एक क्षीण-सी छाया िी तो िै। श्रीकृष्ण के आभलंगंन पुरुष और प्रकृनत के ववषय में कोई बेकार रूपक निीं िैं। और स्वयंगीता भी रह्म ननवाणि आहद जस्थनतयों से गनत करते िुए अंत में भगवान ्के सव्यजकतक स्वरूप पर भगवान ्के भलये हदलीप, यि याद रखो कक कृष्ण के चरण तुमिारे अपने पैरों से अधधक यथाथ िअथवा वास्तववक िी आती िै। अपनी सिा को प्रनतजष्ठत करते िुए भगवान ्स्पष्ट रूप से कितेिैं कक सब कुछ का पररमयाग कर के िैं।" (योगी श्रीकृष्णपे्रम, लेखकः हदलीप कुमार रॉय, श्रीअरववन्द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट, पृष्ठ १६९-७०) मेरी शरण में आ जा। स्वयंश्रीअरववन्द भी अपनी साधना में इसी पक्ष पर बल देते िैं। श्रीरामकृष्णजी की जीवनी में भी िमें देखनेको भमलता िै कक छः मिीनेननववकिल्प समाधध में जस्थत रिने के बाद भी समाधध अवस्था से बािर आते िी उन्िोंने माँ काली के मंहदर में जाकर उन्िें प्रणाम ककया। प्रचभलत योग पद्धनतयों के अनुसार तो रह्म के अनुभव के बाद व्यजकत को उच्चतम जस्थनत प्राप्त िो जाती िै और उसके बाद ककसी सव्यजकतक स्वरूप की आवश्यकता िी निीं रिती। परंतु श्रीरामकृष्णजी ने स्वयंयि भसद्ध कर हदया कक रह्म आहद अनुभूनतया ाँतो माँाँजगदंबा की िी कृपा से प्राप्त िोती िैं और जगदंबा स्वयंइन सभी अनुभूनतयों आहद से सवथिा ऊपर और परे बनी रिती िैं। सारा भारतीय तंत्र भी इसी सव्यजकतक स्वरूप पर आग्रि रखता िै। वास्तव में परमाममा सव्यजकतक और ननव्यजिकतक की िमारी सभी अवधारणाओंसे सवथिा परे िैं और दोनों िी पक्ष भमल कर िी िमारे भलए उनके स्वरूप को पररपूण िबनानेकी तरफ गनत कर सकतेिैं।

अपनेभगवजन्नयोजजत कम िमें प्रवृ िोने ेसे अजुनि का इन्कार उसके अंदर के अिंकार के कारण िुआ था। परंतु इसके पीछे था साजत्त्वक, राजभसक और तामभसक अिं के ववचारों और प्रवृवियों का भमश्रण, उनकी अस्तव्यस्तता और ववषम भ्रांनत, प्राणणक प्रकृनत का पाप और उससे िोनेवाले व्यजकतगत पररणामों का भय, हृदय का व्यजकतगत शोक और संताप से पीछे िटना, आच्छाहदत बुद्धध का धम िऔर पुण्य की आममप्रवंचनामय

समयाभासी पुकारों के द्वारा विकारमय आवेगों के समथनि का आवरण, िमारी प्रकृनत का भगवान् ्की कायशिैभैलयों से अज्ञानपूवकि इसभलए भसकुिना कयोंकक वे ेमनुष्य की शैभैलयों से भभन्न प्रतीत िोती िैं और उसके स्नायववक तथा भावावेगमय अंगों पर एवं ंउसकी बुद्धध पर भीषण और अवप्रय चीजों को लादती िैं। अब जब कक एक उच्चतर समय, कम िका एक भिन्न तरीका और भाव उसके समक्ष प्रकट ककया जा चुका िै, कफर भी यहद वि अपनेविभाव पर दृढ़ रिकर कम िन करने के व्यथ िऔर असंभव ननश्चय पर िटे रिता िै, तो इसके आध्याजममक पररणाम पिले की अपेक्षा अब और भी अनंतगुना अननष्टकारी िोंगे। कयोंकक यि एक भमथ्या ननश्चय िै, एक व्यथ िपराङ्गमुखता िै, कयोंकक यि केवल एक अस्थायी दुबुलिता से, उसके अंतरतम स्वभाव की शजकत के ववधान से एक प्रबल पर अस्थायी रूप में ववचभलत िोनेसे उमपन्न िुआ िै जो कक उसकी प्रकृनत का सच्चा संकल्प और पथ निीं िै। यहद अब वि अपनेअस्त्र-शस्त्र फेंक दे तो भी जब वि देखेगा कक युद्ध और संिार उसके त्रबना भी चल िी रिे िैं, उसकी पराङ्गमुखता के फलस्वरूप उन सब चीजों की, जजनके भलए उसनेजीवन त्रबताया िै, पराजय िो रिी िै, जजस ध्येय की सेवा के भलए उसका जन्म िुआ था वि अपने नायक की अनुपजस्थनत या अकमण्यिता के कारण दुबुलि और पथभ्रांत िो रिा िै, स्वाथपिरायण अधम िऔर अन्याय के समथकिों की ववद्वेषपूण िऔर वववेकिीन शजकत के द्वारा पराजजत और उमपीड़ित िो रिा िै तो उसे उसकी अपनी प्रकृनत िी पुनः शस्त्र उठाने के भलए वववश कर देगी। और इस वापसी से कोई आध्याजममक लाभ निींिोगा। यि केवल विमय मन की धारणाओं ं और भावनाओं का संभ्रम िी था जजसने उसे इन्कार करने के भलए प्रेररत ककया था; विमय मन की ववभशष्ट धारणाओं और भावनाओं की पुनः प्रनतष्ठा के द्वारा काय िकरती िुई उसकी प्रकृनत िो उसे अपने इन्कार को रद्द करने ेके भलए वववश करेगी। परन्तु चािे ककसी भी हदशा में कयों न िो, इस प्रकार अभी भी वि के वश में रिने का अथ िोगा और भी बुरा, और भी घातक अध्यामम-ननषेध, 'ववनजष्ट; कयोंकक यि, ननमन प्रकृनत के अज्ञान में [इस प्रकार युद्ध करनेया निीं ंकरनेमें] उसनेअपनी सिा के जजस समय का अनुसरण ककया िै उसकी अपेक्षा एक भिन्न समय से [जो उसके सामने हदव्य गुरु द्वारा प्रकट ककया जा चुका िै। एक ननजश्चत पतन िोगा। उसे एक उच्चतर चेतना में, एक नये आमम-साक्षामकार में प्रवेश प्राप्त िो चुका िै, विकारमय कम िके स्थान पर हदव्य कम िकरने ेकी संभावना उसे हदखायी जा चुकी िै; एक ननरे बौद्धधक, भावनाप्रधान, ऐजन्रय और प्राणणक जीवन के स्थान पर एक हदव्य आध्याजममक जीवन के द्वार उसके सामने खोल हदए गये िैं। उसे आह्वान प्राप्त िो चुका िै कक वि अब और एक मिान् ्अंधा यंत्र न रिे अवपतु एक सचेतन आममा तथा भगवान् ्की एक ज्ञानदीप्त शजकत एवं उनका पात्र बने।

अचेतनतावश यहद कोई त्रुहट करता िै तो उसके अपने पररणाम िैं। परंतु विीयहद व्यजकत सचेतन िोकर त्रुहट करता िै तब उसके पररणाम तो अनंतगुना अधधक अननष्टकारी िोतेिैं। अतः जजन लोगों को अपनेजीवन में ककसी गिरी चीज की कोई अनुभूनत निीं ंिुई िै, जजनमें ककसी मित् ्काय िके प्रनत या ककसी उच्चतर उद्देश्य के प्रनत कोई अभीप्सा निीं िै उनके भलए तो सिज िी िै कक वे सुचारू रूप से अपना प्राणणक-भौनतक जीवन जीते रिें जजसमें कक कामना िी सवोपरर चालक शजकत िोती िै। ऐसे लोग यहद अपनी सुखभोगवादी प्रववृियों की तुजष्ट करते िैं तो वि तो उनकी प्रकृनत के भलए सिज िी िै। परंतु यहद व्यजकत को ककसी गिरी चीज का, ककसी गिरे भाव का, ककसी गंभीर अभीप्सा का संस्पश िया स्पंदन प्राप्त िो चुका िै और कफर भी वि उसकी उपेक्षा करके उन्िीं

ननमनतर प्रवृवृियों की िी तुजष्ट में लगा रिता िै तब उसके भलए इसके ब्रे िी गंभीर पररणाम उमपन्न िोतेिैं। अतः सचेतनता आने ेके साथ व्यजकत का दानयमव बढ़ जाता िै। जीवन में भी िम देखतेिैं कक एक अबोध बालक की त्रुहट को िम अनदेखा कर सकतेिैं विीं ककसी वयस्क की त्रुहट के भलए िम उसके सुधार या दण्िकी हदशा में आवश्यक कदम उठाते िैं। चेतना की दृजष्ट से भी िम देखते िैं कक जजसकी चेतना अमयधधक ववकभसत िोती िै उसके ऊपर सिज िी हदशाननदेश का, मागदिशनि का कायभिार आ जाता िै। इसी कारण भारतीय संस्कृनत में ऋवष शीषस्थि व्यजकत िोता था। चूंकक वि स्वयंअपनेआममा के ववधान द्वारा शाभसत िोता था जजससे ववचभलत िोने के अपने भयंकर अननष्टकारी पररणाम िोते थे अतः उस पर ककन्िींबािरी ननयमों को लादने ेका कोई ववधान िी निीं ंथा कयोंकक यि सुववज्ञात था कक ककसी द्ववज के ऊपर या ककसी ववप्र आहद के ऊपर उसकी आममा का ववधान ककन्िींभी बािरी ववधानों से किीं अधधक बाध्यकारी िोता िै। इसीभलए श्रीअरववन्द किते िैं कक अब जबकक अजुनि की सभी जजज्ञासाओं को शान्त कर हदया गया िै, उसे चेतना में ववकभसत ककया जा चुका िै तब यहद वि कम िन करने ेके अपने अिमय ननश्चय पर िटा रिता िै तो उसके भयंकर रूप से अननष्टकारी आध्याजममक पररणाम िोंगे। यहद निीं, अपनी प्रकृनत द्वारा बाध्य िोकर जब उसे अवश रूप से युद्ध करना पिेगा तो उसमें भी कोई आध्याजममक हित निींिोगा कयोंकक बािरी पररजस्थनतयों से बाध्य िोकर कम िकरने ेमें ककसी प्रकार का कोई श्रेष्ठ हित निीं ंिो सकता। जिााँभगवान् ्के प्रेम से अभीभूत िोकर कम िकरने से व्यजकत को परम् ्आनन्द प्राप्त िोता िै और सारी सिा उससे पुलककत िो उठती िै और शजकतयों का ऊध्व िआरोिण िोता िै, विींयहद बाध्य िोकर व्यजकत को कम िकरना पिे ेतो यि उसकी सिा की शजकतयों को क्षीण कर देता िै और उसके अपनेअंदर िी एक प्रकार का द्वंद्व उमपन्न कर देता िै। सचेतन रूप से कम िकरने में और बाध्य िोकर कम िकरने में यिी अंतर िै अन्यथा कम ि तो बोझेका पशु भी बिुत करता िै परंतु उसमें ककसी प्रकार का कोई आध्याजममक श्रेय निींिोता। यहद कम िका अभभप्राय बािरी कियाओंसे िी मानें तब तो िमें पशु ुको भी कमयोगी की संज्ञा देनी चाहिये, परंतु उसके कम िको िम योग निीं ंकिते ेकयोंकक योग तो एक सिष िसचेतन आममदान की किया िै जो ककसी भी बािरी कारण से बाध्य िोकर कम िकरनेtilde 7 निीं ंिो सकती। अतः कम िके बािरी स्वरूप से निींअवपतु उसकी चालक शजकत के ऊपर उसका भीतरी पररणाम ननभरि करता िै। अजुनि ने भी अपनी ननमन प्रकृनत के दबाव के कारण युद्ध से मना कर हदया था और उसी ननमन प्रकृनत से बाध्य िोकर यहद वि कम िमें प्रवृि िोता िै तो इसमें ककसी प्रकार से कोई श्रेयस्कर काय िनिीं ंिोगा।

प्राणीमात्र के हृदय में अवजस्थत ईश्वर िी िमें िमारी अज्ञानावस्था के समस्त आंतररक और बाह्य कम ि में ननमन प्रकृनत की इस माया के पहिये पर यंत्रारूढ़ की भानाँत घुमाते आ रिे िैं। और चािे अज्ञान में तमसाच्छन्न अवस्था में िो या ज्ञान में उद्दीप्त, िमारे अन्दर तथा जगत् ्के अन्दर अवजस्थत उन ईश्वर के भलए िी िमारा अजस्तमव िै। इस ज्ञान और इस समय में सचेतन तथा सवांगीण रूप से ननवास करने ेका अथ िैं अिं से मुकत िोना तथा माया के घेरे को तोिकर उससे बािर ननकलना। अन्य सभी उच्चतम धम िइस धम िके भलए एक तैयारी मात्र िैं, और समस्त योग केवल एक साधन िै जजसके द्वारा िम अपनी सिा के अधीश्वर और परम् ्पुरुष एवं ंआममा के साथ पिले ककसी-न-ककसी प्रकार का भमलन और अंत में, यहद पूण िज्योनत प्राप्त िो तो, सवांगीण भमलन लाभ कर सकते िैं। मिानतम योग िै अपनी प्रकृनत की सब दुववधाओंऔर कहठनाइयों से छुटकारा पाने के भलए संपूण ि

प्रकृनत के उन अंतवासिी ईश्वर की शरण लेना, अपनी संपूण िसिा सहित, प्राण, शरीर, इंहरय, मन, हृदय और बुद्धध सहित, उसी के प्रनत अवपति अपनेसंपूण िज्ञान, संकल्प और कम िके सहित, 'सवभािवेन', अपनेसचेतन स्वमव और यंत्राममक प्रकृनत के सभी भावों के सहित उन्हींअंतवासिी ईश्वर की ओर मुिना। और जब िम सदा-सवदिा तथा पूण ि रूप से ऐसा कर सकेंगे, तब हदव्य ज्योनत, प्रेम और शजकत िमें अपने अधधकार में कर लेगी, िमारी सिा और िमारे उपकरणों को दोनों को पररपूण िकर देगी और िमारे अंतःकरण तथा जीवन को घेरनेवाले समस्त संदिेों, कहठनाइयों, दुवुवधाओंऔर ववपदाओं में से िमें सुरक्षक्षत ले चलेगी, िमें परा शांनत और िमारे अमर एवंशाश्वत पद की आध्याजममक स्वतंत्रता की ओर ले जाएगी, परा शाजन्तम्, ् स्थानं शाश्वतम्। ्

प्रश्न : यिा ॉश्लोक संख्या इकसठ में भगवान् ्किते िैं कक 'ईश्वर समस्त भूतों के हृदय में अवजस्थत िैं' परंतु वे िी भगवान् ्माया में िालकर समस्त भूतों को यन्त्र पर आरूढ़ के समान घुमातेरिते िैं। तो व्यजकत को करने ेका काय िि ै 'तमेव शरणंगच्छ' अथात् ि्'उसी की शरण ग्रिण कर'। अब इसमें दो बातें िैं- यहद भगवान् ्स्वयं िी भीतर ववराजमान िैं तो कफर सभी भूतों को भ्रम में कयों िाल रखा िै और दूसूरे सवभािवेन उनकी शरण ग्रिण करने ेसे कया अथ िि ै?

उत्तर : जब व्यजकत उस उपजस्थनत के ववषय में सज्ञान निीं िोता तभी उसे यंत्रवत् ्चलाया जाता िै। परंतु जब वि उस उपजस्थनत के ववषय में सचेतन िो जाता िै और उसके प्रनत भाव रखनेलगता िै तब वि सचेतन रूप से उन ईश्वर के पास जा सकता िै। यि अंतर वैसा िी िै जैसे कक कोई या तो प्रेम के कारण ककसी की सेवा करे या कफर केवल ककसी लाभ की आशा से बाध्य िोकर सेवा करे। दोनों की भावना में ब़िा भारी अंतर िोगा। और जब सवभािवेन व्यजकत ईश्वर की शरण ग्रिण कर लेता िै तब वि सभी भयों, प्रताि़नाओंआहद से मुकत िोकर पराशाजन्त और शाश्वत पद प्राप्त कर लेता िै।

इनत ते ेज्ञानमाख्यातं गह्जयाद्गह्जयतरं मया ।
विमृशूयैतदशेषेण यथेच्छसस तथा कजरु ।। ६३।।

६३. यह मनैं तजझे ेगद्जि से भी गच्जचतर ज्ञान कहा है; इस पर पूणुतुया विचार करके जैसी तेरी इच्छा हो िैसा कर।

सिुगुह्जयतमं ंभूयः शृणु जमे परमं िचः ।
इष्टोऽसस मे दृढसमनत ततो िक्ष्यासम ते दहतम् ्।। ६४ ।।

६४. और भी, मेरे परम िचन को, सबसे गजह्यतम सत्य को सनज; तू मेरे सलए अंतरंग वप्रय है, इससलए इसे म ैंतेरे उच्चतम कल्याण के सलए इसे कहता हूँ।

कयोंकक, समस्त धमों का और अपनेयोग के गिनतम सार का प्रनतपादन करने ेके बाद, यि बतानेके बाद कक आध्याजममक ज्ञान के रूपांतरकारी प्रकाश के द्वारा मानव-मन के समक्ष प्रकाभशत सभी प्राथभमक रिस्यों के परे, 'गुह्यात्'्, यि एक और भी गंभीर एवं गुह्यतर समय िै, 'गुह्यतरम्'्, गीता एकदम िी यि किती िै कक

अभी भी एक परम वचन, 'परमंवचः', ि जो उसे किना ि, और अभी भी एक सवाधिधक गुह्य समय ि, 'सवगिुह्यतमम्'्। यि रिस्यों का रिस्य श्रीगुरु अजुनि को उसके सवोच्च कल्याण के रूप में बतलाएँगे कयोंकक वि उनकी चुनी िुई और वप्रय आममा ि, उनका 'इष्ट' ि। कयोंकक स्पष्ट िी, जैसा कक उपननषद् पिले िी घोवषत कर चुका ि, अपने वास्तववक स्वरूप को, 'तनुं स्वाम्'्, प्रकाभशत करनेके भलए परमाममा के द्वारा चुना िुआ कोई ववरला जीव िी इस रिस्य में प्रवेश पा सकता ि, कयोंकक केवल विी हृदय, मन और प्राण में परमेश्वर के इतना पयाप्ति ननकट िोता ि कक वि अपनी सारी सिा में उन्िें सच्चे रूप में प्रमयिुर दे सकता ि अथवा उनके अनुकूल िो सकता ि तथा उसे अपना जीवंत अभ्यास बना सकता ि। गीता का अंनतम उपसंिार-रूप परम वचन, जो उच्चतम रिस्य को प्रकट करता ि, दो संक्षक्षप्त, सुस्पष्ट और सरल श्लोकों में किा गया ि और इनकी और आगे व्याख्या या ववस्तार ककये त्रबना इन्िें मन के भीतर गिरे जाकर आममा की अनुभूनत में अपना पूण िअथ िप्रकाभशत करने के भलए छोड़ हदया गया ि। कयोंकक एकमात्र यि ननरन्तर ववस्तृत िोनेवाली आन्तररक अनुभूनत िी ि जो ऊपर से इतने साधारण एवं सीधे-सादे लगनेपर भी जजस अनंत अथ–गौरव से ननमयगभभत ये शब्द िैं उसे स्पष्ट कर सकती ि। और जब ये शब्द उच्चाररत िोते िैं तो िमें अनुभव िोता ि कक यिी चीज ि जजसके भलए भशष्य की आममा को इस पूरे समय में तैयार ककया जा रिा था और शेषे सब तो केवल एक ज्ञानोद्दीपक और सामथ्यप्रिद साधना एवं भशक्षा थी। यि ि रिस्यों का रिस्य, ईश्वर का सवोच्च स्पष्टतम संदेश।

जब गीता 'सवगिुह्यतमं' वाकय प्रदान करने की बात करती ि तब इससे यि स्पष्ट िो जाता ि कक बाकी गीता तो इस रिस्य तक पिुँचने की एक तैयारी मात्र थी। वि तो इस जस्थनत तक लाने के भलए अजुनि को पयाप्ति रूप से ववकभसत कर रिी थी ताकक उसे यि परम् ्वचन हदया जा सके। अब अजुनि को जो उपदेश हदया जाना ि वि सभी मानभसक ननयमों को नछन्न-भभन्न करके उनसे सवथिा परे चला जाता ि। बाकी सारी भशक्षा तो केवल मानभसक धरातल पर चल रिी थी, जबकक जो ज्ञान अब आने वाला ि वि मन से अगम ि जजसे मन से निीं समझा जा सकता और न िी उसकी कोई कल्पना िी की जा सकती ि। और मन से मुकत िोने पर व्यजकत मनुष्यता से ऊपर उठ जाता ि।

प्रश्न : श्लोक इकसठ में भगवान् ्किते िैं कक ईश्वर सब भूतों को यंत्रारूढ़ के समान घुमातिे और दो श्लोकों बाद िी भगवान् ्अजुनि को किते िैं कक तेरी इच्छा िो वैसा कर, तो जो यंत्रवत् ्चलता ि वि अपनी इच्छा से ननणयि कैसे कर सकता ि?

उत्तर : वास्तव में तो केवल ईश्वर की िी इच्छा कायाजिन्वत िोती ि परंतु मूढ़ जनों को यि भ्रम िो जाता ि कक वे स्वयं कुछ कर रिे िैं। इसीभलए भगवान् ्अजुनि से कितिे कक जो िोना ि वि तो तय ि और उसे तो केवल ननभमि बनना ि, परंतु इतनेपर भी यहद अपनी ननमन प्रकृनत के अिवश वि अपनेिठ पर बना रिता ि तो उसी प्रकृनत द्वारा वि युद्ध करनेको बाध्य िोगा। परंतु इस बाध्यतावश युद्ध करने में कोई श्रेय निीं िोगा। अब इसमें देखने की बात यि ि कक भगवान् ्ने अजुनि के ननणयि की कोई प्रतीक्षा ककये त्रबना िी उसे अपना सवगिुह्यतम वचन प्रदान कर हदया चूंकक वि उनका अंतरंग था। इसमें यहद मान लें कक भगवान् ्अजुनि के उिर

की प्रतीक्षा करते, तो भी नन:संदे वि भी भगवद्प्रेरेरणा से प्रेरेरत िोकर युद्ध में प्रवि ृ िोने का चयन करता परंतु तब कदाधचत् ्परम् ्वचन को सुनाने ेका अवसर िी उमपन्न न िोता जजसके भलए कक सारी गीता एक तैयारी मात्र िी थी। इसीभलए भगवान् ्बीच में कोई भी अवसर प्रदान ककये त्रबना सीधे िी अपनी भशक्षा का सवगुि्ह्यतम समय उद्घाहटत कर देते िैं।

मन्मना भि मद्भक्तो मद्याजी मां नममकजरु ।
मामेैष्यसस सत्यं ंते प्रनतजाने वप्रयोऽसस मे ।। ६५।।

६५. मेरे मनिाला, मेरा प्रेेमी और उपासक, मेरे प्रनत यज्ञ करनेिाला बन, मझेजनममकार करः तू ननश्चय ही मझेज प्राप्त होगा, यह तझेजमेरा िचन और मेरी प्रनतज्ञा है क्योंकक तू मझेजप्रय है।

िसिुमुान्पररत्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्िा सिुपुापेभ्यो मोक्षनयष्यासम मा शचजः ।। ६६।।

६६. सममत िमों का पररत्याग कर और एकमात्र मेरी शरण ग्रहण कर। म ैंतझेज ेसममत पाप और बरजाई से मक्जत कर दूँगा, शोक मत कर।

जजसे भगवान् ्अपना सवगुि्ह्यतम वचन किते िैं वि सति ी रूप से सुनने ेमें ऐसा सिज लगता िै कक त्रबना गिरे अनुभव के इसे और इससे पूव िकी गीता की भशक्षा की गिराई में भेद कर पाना संभव िी निीं ंिै। केवल श्रीअरववन्द की टीका िी इस परम् ्रिस्य को उजागर करती िै अन्यथा भगवान् ्के द्वारा स्वयंिि स्पष्ट रूप से किे जाने पर भी कक उनका सवगुि्ह्यतम वचन कया िै, अधधकांश टीकाकार तो गीता के प्रारंभभक अध्यायों को िी गीता का सारमम िघोवषत कर देते िैं। और यि त्रुहट करना सिज िी िै कयोंकक इस वचन के ननहिताथ िया इसके गूढ़ाथ ितो साधना आहद सभी पद्धनतयों की पररणनत िैं इसीभलए ये िमारे ऊँचे से ऊँचे अनुभवों से भी छूट ननकलतिैं। और जब श्रीअरववन्द किते िैं कक संपूण िगीता केवल इन दो श्लोकों को प्रदान करने ेके भलए तैयारी मात्र थी, तो सामान्यतः इस कथन में अनतशयोजकत प्रतीत िोती िै कक जिा ँपूव िमें भगवान् ्गंभीर तत्त्वज्ञान, ववभभन्न योग पद्धनतयों आहद का ननरूपण कर चुके िैं उनकी तुलना में तो यि उजकत त्रबल्कुल सीधी-सरल प्रतीत िोती िै। और यहद भगवान् ्को अंततः यिी किना था कक सभी कुछ का पररमयाग करके मेरी शरण में आ जा, तो यि बात तो वे आरंभ में िी कि सकतेथे। कफर इतनी योग पद्धनतयों आहद का ननरूपण करने की आवश्यकता िी कया थी। जजसे भगवान् ्परम रिस्य कि रिे िैं उसमें तो कोई रिस्य की बात िी प्रतीत निीं ंिोती, अवपतु यि तो एक बिुत िी सीधी-सीधी बात प्रतीत िोती िै कक सब कुछ भगवान् ्को समवपति कर दो। यि उजकत तो बिुत िी सामान्य प्रकार की उजकत िै जो प्रायः िी िमें ककसी सामान्य व्यजकत से भी सुनने ेको भमल सकती िै। तब कफर भगवान् ्को इसे इतने ेसनसनीखेज तरीके से बतानेकी कया आवश्यकता थो। और यहद यिी किना था कक सभी कुछ का पररमयाग कर दो, तब कफर यि तो अन्य योग-साधनाओं की तुलना में बिुत िी सरल माग ििै जजसमें कुछ भी श्रम की आवश्यकता निीं ंिै अन्यथा तो योग पद्धनतयों में बिुत िी अधधक श्रम िोता िै। यिी निीं, ं इससे आगे

भगवान् ्किते िैं कक जो तप से या भजकत से ववीन िै, जजसे सुनने की इच्छा नर्िीं अथवा जो उनकी ननन्दा करता िै और उन्िें गौण समझता िै उसे यि ज्ञान निींदेना चाहिये। और इन मानकों के आधार पर तो इस ज्ञान का कदाधचत् ्िी कोई सच्चा अधधकारी भमलेगा। और आणखर इसमें ऐसा कौनसा रिस्यमय तत्त्व िै जजसे कक अनधधकारी को निीं ंदेना चाहिये? इसका कारण तो स्पष्ट िै कक अनधधकारी को यि ज्ञान देनेपर वि अपने पुरुषाथ िको भी छोड़ देगा जजसके उसके भलए गंभीर पररणाम िो सकते िैं। इसीभलए िमारे ऋवष आध्याजममक पथ को छुरे की धार पर चलनेके समान दुषुकर काय िबतातेथे। अतः अनधधकारी को यि परम् ्वचन देनेपर तो उसका सारा संतुलन िी त्रबगड़ सकता िै। साथ िी िमें यि ध्यान रखना चाहिये कक गीता अपने इस परम् ्वचन के द्वारा पूव िवणणति सभी योग पद्धनतयों की उपेक्षा निींकर रिी िै।

तब कफर आणखर इसमें ऐसा कया िै जो इसे सभी रिस्यों में भी सवगुिह्यतम बना देता िै कयोंकक िमारी सामान्य बुद्धध को इन श्लोकों की भाषा में तो कोई रिस्यमय सूत्र प्रतीत निीं ंिोता। परंतु साथ िी यि भी ननजश्चत िै कक गीता अनावश्यक रूप से ककसी ववशेषण का प्रयोग निीं ंकरती। यहद वि इसे सवगुिह्यतमं ंबताती िैतो अवश्य िी इसका वैसा स्वरूप िै। अतः इसमें यि धचंतंन करने की आवश्यकता िै कक आणखर इस कथन में ऐसी कया ववलक्षणता िै और इसके ननहिताथ िकया िैं।

गीता शुरू से अंत तक जजन चीजों पर बल देती आ रिी िै वे िैं – योग की एक मिान् ्और सुननभमति साधना-प्रणाली, एक व्यापक और सुस्पष्ट रूप से प्रनतपाहदत दाशननिक पद्धनत, स्वभाव और स्वधम,ि जीवन का साजत्त्वक ववधान जो मनुष्य को एक आमम-अनतिमणकारी उन्नयन के द्वारा अपनेघेरे से बािर ननकालकर एक अमयंत सुववशाल, यिााँ तक कक इस उच्चतम गुण की सीमा के भी परे ऊाँचेउठे िुए अमर अजस्तमव के मुकत आध्याजममक धम िकी ओर ले जाता िै, पूणति प्राप्त करने के अनेक ननयम, साधन और अननवाय िजस्थनतयााँ, और (इन सब पर जोर दे चुके िोनेके बाद) अब गीता एकाएक अपनी िी संरचना को तोड़कर उससे बािर ननकलती प्रतीत िोती िै और मानव आममा से किती िै, "सब धमों का पररमयाग कर दे, अपने-आप को एकमात्र भगवान् ्के प्रनत, अपने ऊपर, चारों ओर और अन्दर रिने वाले परमेश्वर के प्रनत अपणि कर दे : तुझे ेकेवल यिी करने ेकी आवश्यकता िै, यिी समयतम और मिमम पथ िै, यिी वास्तववक मुजकत िै।" कुरुक्षेत्र के हदव्य सारधथ और हदव्य गुरु के रूप में सवलोक-मिेश्वर ने मनुष्य के समक्ष ईश्वर, पुरुष और आममा की भव्य यथाथताओं अथवा समयों को, इस जहटल जगत् ्की प्रकृनत और परमाममा के साथ मनुष्य के मन, प्राण, हृदय और इंहरयों के संबंध को और उस ववजयी साधन को प्रकाभशत कर हदया िै जजसके द्वारा वि अपने िी आध्याजममक साधनाभ्यास और पुरुषाथ ि के बल पर मृमृयुशीलता से अमरता में और अपनेसीमाबद्ध मानभसक जीवन से अपनेअसीम आध्याजममक जीवन में उठ सकता िै। और अब मनुष्य में तथा सभी वस्तुओंके अन्दर ववद्यमान आममा और भगवान् ्के रूप में बोलते िुए वे ेउससे किते िैं, "यहद तू मेरे प्रनत पूण िसमपणि कर सके, अपनेअन्दर तथा सब भूतों के अन्दर अवजस्थत आममा और परमेश्वर पर िी ननभरि रि सके और एकमात्र उन्िींके मागदिशनि पर भरोसा रख सके, तो अंत में इस सब वैयजकतक पुरुषाथ िऔर आमम-साधना की आवश्यकता निीं ंरिेगी, ननयम-धम िके समस्त अनुसरण एवं सीमाबंधन को अंततः बाधक और भारस्वरूप समझकर मयागा जा सकता िै। अपना संपूण िमन

मेरी ओर फेर दे और इसे मेरे तथा मेरी उपजस्थनत के ववचार से भर दे। अपनेसंपूण िहृदय को मेरी ओर लगा दे, अपनेप्रमयेक कम िको, वि चािे जो भी कयों न िो, मेरे प्रनत यज्ञ और भेंट के रूप में पररणत कर। ऐसा कर लेनेपर, तुमिारे जीवन, अंतरामम और कम िका मुझे ेमेरी अपनी इच्छानुसार प्रयोग करने देे; अपनेमन, हृदय, जीवन और कम–कलाप के साथ िोनेवाले मेरे व्यविारों से दुःणखत या ववभ्रांत मत िो और न इसभलए िी व्यधथत िो कक ये उन ननयमों और धमों का पालन निीं ंकरते प्रतीत िोतेजजन्िें मनुष्य अपनी सीभमत बुद्धध और इच्छाशजकत के मागदिशनि के भलए अपनेऊपर लादता िै। मेरी काय–शैभैलयााँ एक पूण िज्ञान, शजकत एवं प्रेम की काय–शैभैलयााँ िैं जो सभी वस्तुओं को जानता िै और सवांगपूण िचरम पररणाम को लक्ष्य में रखकर अपनी सब गनतयों को संयुकत करता िै; कयोंकक वि एक समग्र पूणतिा के अनेक सूत्रों को पररष्कृत करता और आपस में गूाँथता िै। म ैंयिााँयुद्ध के रथ में तेरे साथ अवजस्थत िूाँ, तेरे अंदर और बािर जगत् ्के अधीश्वर के रूप में प्रकहटत िूाँ, और म ैंइस चरम आश्वासन एवं अमोघ प्रनतज्ञा को पुनः दोिराता िूाँ कक म ैंतुझे ेसमस्त दुःख और पाप से उबारकर इनके परे अपनी ओर ले चलूाँगा। चािे जो भी कहठनाइयााँऔर दुववधाएाँ कयों न उमपन्न िों, इस बारे में आश्वस्त रि कक म ैंतुझे े ववश्व-सिा के अंदर पूण िजीवन की ओर तथा ववश्वातीत आमम के अंदर अमर जस्थनत की ओर ले चल रिा िूाँ।"

यहद िम गीता के परम् ्रिस्य की उमकृष्टता तथा उसकी परम् ्मिमा का कुछ आभास प्राप्त करना चािें तो उसके भलए आवश्यक िै कक हदखने में जो त्रबल्कुल सिज से श्लोक प्रतीत िोतेिैं उनकी वास्तववक गंभीरता को समझने ेका प्रयास करें जजन्िें प्रदान करने ेके भलए सारी गीता का ववकास ककया गया िै। गीता का आरंभ िोता िै दूसूरे अध्याय के सातवें श्लोक से जब अजुनि किता िै कक 'भशष्यस्तेऽिं शाधध मांमवांप्रपन्नम्' ्अथात् ्'म ैंआपका भशष्य िूाँ और आपकी शरण में आया िूाँ, मुझे ेज्ञानोद्दीप्त कीजजये।' और वि अपनी भशक्षा की समाजप्त पूण ि समपणि के स्वर के साथ करती िै। समपणि िी साधना का प्रथम स्वर िै। योगी श्रीकृष्णप्रेम किते िैं कक समपणि "त्रबना ककसी दावे के, त्रबना ककसी मागाँ के और अपने-आप को दे देनेकी अनुमनत लाभ करने ेकी इच्छा के अनतररकत अन्य ककसी इच्छा के त्रबना अपने-आप को चरम और पूण िरूप से श्रीकृष्ण को सौंप देना िै। वे सभी काय िजो इस दान में सिायता करते िैं या इसके प्रतीक िैं वे सब साधना िैं। इस दान के पररणामस्वरूप सभी काय ि उनकी हदव्य लीला के अंग िैं।" (योगी श्रीकृष्णप्रेम, १६५) परंतु आणखर गीता के इन श्लोकों में उमिम् ्रिस्यं की कया बात िै कयोंकक प्रायः अधधकांश योग पद्धनतयााँ समपणि के ऊपर िी बल देती िैं। और कफर यहद भगवान् ्को समपणि का िी उपदेश करना था तो दूसूरे अध्याय में िी वे ऐसा कर सकते थे। यिी निीं, अनेक स्थानों पर श्रीकृष्ण ने 'सवभिावेन भारत' आहद पदों से इस समपणि की ओर संकेत ककया भी िै। वे ेयि भी कि चुके िैं कक देवताओं को पूजने ेवाले देवताओं के पास जाते िैं, यक्षों, गंधवी आहद को पूजने ेवाले उन-उन के पास जाते िैं। और 'मुझे'े पूजने वाले मेरे पास आते िैं। विींएक अन्य स्थान पर वे ेकिते िैं कक जो ऐसा जानता िै कक वासुदेव िी सब कुछ िैं ऐसा मिामम बिुत िी दुलभि िै। अतः इस ओर भगवान् ्बार-बार संकेत करते िी रिे िैं। अतः यहद भगवान् ्स्वयंइसे सवगिुह्यतम रिस्य न किते तो इस वचन की प्रतीत िोती सादगी के कारण कदाधचत् ्िम इसे चूक िी जाते। इसके ववषय में ककसी का दृजष्टकोण यि िो सकता िै कक गीता यिा ाँसमपणि की एक ऐसी अवस्था का संकेत करती प्रतीत िोती िै जिा ाँककसी प्रकार की कोई व्यजकतगत साधना या पुरुषाथ िआहद की कोई बात निीं। इसे वि एक ऐसी जस्थनत के रूप में देख सकता िै जिााँस्वयं भगवान् ्िमारे अंदर आनंद लेनेलगते िैं और िमारी सिा को स्वयं

के उपयोग में लेनेलगते िैं। उस जस्थनत में आवश्यक निीीं किक स्वयं उस व्यजकत को भी उस किया का कुछ पता
िीि िो सकता िै भगवान् ्उसके द्वारा जजस प्रकार अभभव्यकत िोते िों, उसके मन, प्राण, शरीर को जजस प्रकार
जजस काय िया जजस अभभव्यजकत के भलए उपयोग में लेते िों उसे देखकर स्वयंवि व्यजकत गिरे आश्चय िका

भाव
रखता िो कयोंकक वि किया उसके ककन्िीं भी मानदंडों से सवथिा परे िोती िै जजसका अपना िी ववधान िोता
िै। उस
जस्थनत में स्वयंभगवान् ्िी उसके द्वारा बोल रिे िोतेिैं, सोच रिे िोतेिैं, कम िका संचालन कर रिे िोते िैं। और
जजस मुकत रूप से वे उसके द्वारा किया करते िैं, संभव िै उसे देखकर स्वयं वि व्यजकत भी आश्चयचिककत िो या
ववचभलत िो। परंतु यहद िम इस रिस्य का इस रूप में अथ िलगाएँ तो इसमें िमें यि ध्यान रखना चाहिये कक

गीता
में यिा ाँभगवान् ्ऐसा निींकि रिे कक यि स्वतः िी प्राप्त िोने वाली जस्थनत िै अवपतु वे अजुनि को ऐसा करने के
भलए कि रिे िैं। वे ेकिते िैं 'मन्मना भव' अथात्ि्मेरे मन वाला बन। इसके आगे वे किते िैं मुझे ेनमस्कार कर,
सभी धमों का पररमयाग कर। अतः यहद िम यि दृजष्टकोण रखें कक यि अवस्था स्वतः िी आ जाती िै तो िमें
गीता के वचनों पर भी ध्यान देना चाहिये कक वि अजुनि से ऐसा सब करने ेको कि रिी िै। इसी संदभ िमें िम पातेिैं
कक पांडिचेरी जस्थत आश्रम में श्रीमाताजी व श्रीअरववन्द के प्रनत बिुतों की यि धारणा थी कक चूंकक वे तो अवतार िैं
और मानवीय चेतना से बिुत परे िैं इसभलए उन्िें मानवीय समस्याओं को निीं ंझेलेना पिता अतः उनके भलए उन
समस्याओं से ऊपर उठने का उपदेश करना आसान िै। परंतु ुसामान्य मनुष्यों को तो सभी समस्याओं को झेलेना
पिता िै। इसके उिर में श्रीअरववन्द जो किते िैं वि बिुत िी प्रकाशक िै। वे किते िैं, "तुम किते िो कक यि तरीका
(उधचत मनोभाव बनाए रखना) तुमिारे भलए या तुमिारे जैसों के भलए बिुत कहठन िै और केवल मेरे या श्रीमाँ जैसे
'अवतार' िी िैं जो ऐसा कर सकतेिैं। यि एक ववधचत्र गलत धारणा िै, कयोंकक कहठन निीं ंउल्टे यि तो सबसे
सरल, सबसे सिज और सबसे सीधा तरीका िै और कोई भी इसे कर सकता िै यहद वि अपनेमन को और प्राण को
शांत कर ले, तुमसे दसवें हिस्से की योग्यता वाले भी इसे कर सकते िैं। इससे भभन्न जो धचंतां और तनाव और
कठोर उद्यम का तरीका िै वि कहठन िै और उसमें तपस्या की मित् ्शजकत की आवश्यकता िोती िै। जिाँतक
श्रीमाँ की और स्वयंमेरी बात िै, िमें तो सभी तरीकों को प्रयोग कर देखना पिा िै, सभी पद्धनतयों का अनुसरण
करके देखना पिा िै, समस्याओं के पिािों को पार करना पिा िै, तुमने या आश्रम में अन्य ककसी ने या आश्रम से
बािर ककसी ने जजतना विन ककया िोगा उससे किींअधधक भारी बोझ, किींअधधक मुजश्कल पररस्थनतयाँ विन
करनी पिी िैं, किीं अधधक संग्राम लिने पिे िैं, और किीं अधधक घावों को सिन करना पिा िै, अभेद्य दलदल
और मरुभूभम और जंगल से चीर कर माग िबनानेपिे िैं, ववरोधी समुदायों को जीतना पिा िै, एक ऐसा काम
जजसके बारे में म ैं सुननजश्चत िूँ कक िमसे पिले ककसी और को निींकरना पिा िै। कयोंकक जैसा काय िमनेभलया िै
वैसे काय िमें 'माग िके नेता' को न केवल भगवान् ्को नीचे उतार लाना तथा उनका प्रनतननधधमव करना और उन्िें
मूत िरूप िी प्रदान करना िोता, अवपतु मानवजानत के आरोिी तत्त्व का भी प्रनतननधधमव करना िोता िै और
मानवता के बोझ को पूरी तरि विन करना िोता िै और केवल एक िोि या लीला के रूप में िी निीं ंअवपतु
त्रबल्कुल ववकट रूप से पथ पर संभव समस्त बाधा, कहठनाई, ववरोध से चककत और बाधधत िोते िुए और केवल
धीरे-धीरे ववजयी िोतेश्रम के रूप में अनुभव करना िोता िै।" (CWSA 32, 94)

यिी निीं, ं श्रीअरववन्द के बिुत से अन्य पत्रों से, उनकी अन्य कृनतयों में आए अनेक संदभों से तथा उनके 'ररकॉि िऑफ योग' ग्रंथों से स्पष्ट रूप से यि पता लगता ि ै कक श्रीअरववन्द ने कैसी अकल्पनीय तकलीफों को सिन ककया, कैसा अभूतपूव िश्रम ककया और योग संबंधी सभी संभव तरीकों की ककस प्रकार जाचाँ-परख करके उन्ि अनुभवभसद्ध ककया। श्रीअरववन्द ने अपनी साधना को आंरभ से िी समपणि पर आधाररत ककया। अपनेगुरु, ववष्णु भास्कर लेले के ववषय में श्रीअरववन्द बतातिैं कक भले िी लेले बुद्धध, भशक्षा और योग्यता में स्वयंउनकी तुलना में अमयंत अवर थे परंतु कफर भी उनके पीछे उन्िोंने (श्रीअरववन्द ने) एक हदव्य शजकत देखी जजसके कारण उन्िोंने स्वयं को पूण िरूप से उनके मागदिशनि के प्रनत समवपति कर हदया। स्वयं लेले उनके समपणि से इतने प्रभाववत िुए कक उन्िोंने दूसूरों को भी इसके ववषय में बताया कक इतना पूण, ि ननववविाद और ननःशेषे समपणि उन्िोंने इससे पिले कभी निींदेखा था। इसी पूण िसमपणि के पररणामस्वरूप श्रीअरववन्द को श्रृंखलागत रूप से अनेकों ऐसे रूपांतरकारी अनुभव िुए जो कक स्वयंलेले के अनुभव से परे थे। इस कारण लेले ने स्वयंअपने मागदिशनि से मुकत करते िुए श्रीअरववन्द को उनके अपनेभीतरी हदव्य मागदिशकि का िी अनुसरण करने को किा। और श्रीअरववन्द ने सदा यिी ककया भी। परंतु इस समपणि को िम श्रीअरववन्द की ऊपर किी बात से जोि़ कर देखें कक उन्ि जीवन में जजन संकटों से गुजरना पड़ा वैसे संकट कदाधचत् ्िी ककसी को सिन करने ेपड़े िोंगे तब इससे यि कुछ-कुछ स्पष्ट िोता ि ै कक जजस समपणि की बात की जा रिी ि ै वि ककतनी िी गंभीर चीज ि।ै स्वयं

श्रीमाताजी की बात करें तो उनके बारे में भी जन्मों से ऊपर उठी हुई आयु में भी मनुष्यता से ऊपर

िोने ेपर भी तथा अनेकों जन्मों से पूव िमें तैयार ककया गया अनतववभशष्ट व्यजकतमव प्राप्त िोने पर भी उन्ि जिन भीषण संघषों से गुजरना पड़ा उन्ि तो केवल स्वयंमााँ जगदंबा िी सिन कर सकती थीं अन्य ककसी मानव में तो वैसी पीड़ा सिन करने का कोई सामथ्य िनिीं िोता। श्रीमाताजी के समपणि के ववषय में श्रीअरववन्द किते ि ैं कक श्रीमााँ ने स्वयं को अपनी भौनतक सिा तक में भी पूण िरूप से उन्ि समवपति कर हदया था और अपनेआप को एक कोरे कागज की भानााँत उनके सममुख प्रस्तुत कर हदया था। अमल ककरण की पुस्तक 'आवर लाइट एंि डिलाइट' में मिें यि संदभ िभमलता ि ै जिााँ श्रीअरववन्द किते ि ैं कक, "जब भमरा ने अपनेआप को मुझे ेसमवपति ककया उससे पिले 'समपणि' के अथ िका मुझे ेकभी भी पता निीं था।" इसी संदभ िमें जब उनसे पूछा गया कक श्रीमाताजी को प्रथम बार देखकर उन्ि किया मिसूस िुआ, तो इसके उिर में वे आगे किते ि ैं कक, "पिली बार मुझे ेपता चला कक भौनतक कोभशका मात्र तक भी पूण िसमपणि मानवीय रूप से संभव था; जब श्रीमााँ आई और मुझेप्रणाम ककया तब उस पूण िननःशेषे समपणि को मनैं ेकियाजन्वत िोतेदेखा।" (पृषृठ ७-८)

इन सब बातों पर ववचार करनेसे िमें यि आभास िोने लगता ि ै कक गीता की जो उजकत िमें यों सिज प्रतीत िोती ि ै उसके वास्तववक अथ िबिुत िी गंभीर िैं। साथ िी गीता के संदभ िमें िमें यि भी ध्यान रखना चाहिये कक समपणि करनेका अथ िननजष्क्रिय या ननश्चेष्ट िो जाना भी निीं ि,ै जैसा कक समपणि शब्द से बिुत बार अथ ि लगाया जाता ि,ै कयोंकक इसके बाद तो अजुनि को अभी भीषण युद्ध में प्रवृि िोना बाकी ि।ै अतः यि रिस्य कोई सीधी रेखा निीं ि ै अवपतु बिुत िी सूक्ष्म और बिुआयामी चीज ि।ै

गीता के इस परम् ्वचन को देखने के अनेक संभव दृजष्टकोण िो सकते िैं। अतः आगे चलने से पिले उन दृजष्टकोणों में से कुछ को चचिा करना और उन पर ववचार करना लाभप्रद िोगा। एक दृजष्टकोण तो यि िो सकता िै कक सामान्यतः जब िम समपणि की बात करते िैं तो ऐसा मात्र किने के भलए िोता िै जबकक व्यविार में व्यजकत समपणि की ज़िो में आवश्यक श्रम से बचना चािता िै और यि चािता िै कक सभी कुछ भगवान् ्िी कर दें ताकक उसे स्वयं कुछ न करना पि़े।े अधधकांशतः व्यजकत समपणि का केवल नाम िी लेता िै जबकक वास्तव में तो वि अपनेअिं की तथा अपनी सिा के नननम भागों की तुजष्ट में िी लगा रिता िै। और यि भी आवश्यक निीं ंिै कक व्यजकत स्वयं भी इस बारे में पूणतिः सचेतन िो कक वि किता एक चीज िै और व्यविार में करता कुछ और िै कयोंकक िमारे मन और प्राण िमारे अपनेकृमयों के भलए इस प्रकार के लुभावने ेस्पष्टीकरण देते िैं कक व्यजकत को वास्तव में िी लगता िै कक उसने सच्चा समपणि कर हदया िै और स्वयं भगवान् ्िी उसके समपणि को स्वीकार कर उसके द्वारा किया कर रिे िैं। अतः इस प्रकार का समपणि केवल किने भर को िी समपणि िोता िै जबकक वास्तव में इसका समपणि से ककसी प्रकार का कोई संबंध निीं िोता और समपणि की ज़िो में अधधकांशतः केवल धोखा िी िोता िै। यिाँ जजस समपणि की बात की जा रिी िै वि लगता तो सिज िै परंतुवास्तव में व्यविार में उसे कर पाना अमयंत दुषु्कर िै।

इसे देखने का एक अन्य दृजष्टकोण भी िो सकता िै। अब तक गीता ने अनेकों योग-पद्धनतयों की बातें की िैं, कमों का, ज्ञान का और भजकत का समन्वय साधा िै, अनेकों धमों की बातें की िैं। यहद कुछ गिरे दृजष्टकोण से देखें तो ववकास की ककसी अवस्था पर आकर व्यजकत को यि अनुभव िो जाता िै कक उसे िोने वाले सभी अनुभव उसकी सीभमत मानभसक, प्राणणक और भौनतक संरचना के दायरे में िी िोतेिैं जो कक परम् ्समय के अनुपात में बिुत िी संकीण ििोते िैं और साथ िी उसे कुछ-कुछ यि अनुभव िो जाता िै कक उसकी संरचना के अनुसार उसके मन का ककन्िीं ववभशष्ट भसद्धांतों, आधारों या धमों पर आग्रि रिता िै। इसभलए जब तक यि संकीणिता रिती िै तब तक व्यजकत उन्मुकत रूप से उस परम् ्सिा में ननवास निीं कर सकता। अतः जब गीता सभी धमों के पररमयाग करनेकी बात करती िै तब उससे यि भी अथ िलगाया जा सकता िै कक यि उस संकीण िसंरचना ववशेषे के मयाग के भलए कि रिी िै। और भले िी यि पररमयाग सुनने ेमें सिज प्रतीत िोता िो परंतु इसकी चररताथतिा अमयंत जहटल और कहठन िै। और जब व्यजकत यि पररमयाग कर सके तब उसकी सिा को भगवान् ्मुकत रूप से अपनी किया का यंत्र बना सकतेिैं। साथ िी यि माग िसभी के भलए निीं ंअवपतु केवल चयननत आममाओं के भलए िी िोता िै। श्रीअरववन्द किते िैं कक यि रिस्य श्रीगुरु अजुनि को प्रकट करते िैं, "कयोंकक वि उनकी चुनी िुई और वप्रय आममा िै, उनका 'इष्ट' िै। कयोंकक स्पष्ट िो, जैसा कक उपननषद् पिले िी घोवषत कर चुका िै, अपने वास्तववक स्वरूप को, 'तनुंस्वाम्'्, प्रकाभशत करने ेके भलए परमामभा के द्वारा चुना िुआ कोई ववरला जीव िी इस रिस्य में प्रवेश पा सकता िै, कयोंकक केवल विी हृदय, मन और प्राण में परमेश्वर के इतना पयाप्ति ननकट िोता िै कक वि अपनी सारी सिा में उन्िें सच्चेरूप में प्रमयुिर दे सकता िै अथवा उनके अनुकूल िो सकता िै तथा उसे अपना जीवंत अभ्यास बना सकता िै।"

जजस गुह्य तत्त्व, 'गुह्यम्' ़, को समस्त गंभीर अध्याममज्ञान िमारे समक्ष प्रकाभशत करता िै, जो वववववध भशक्षाओंमें प्रनतत्रबंत्रबत हदखाई देता िै तथा आममा की अनुभूनत के द्वारा प्रमाणभसद्ध िोता िै वि, गीता की दृजष्ट में, िमारे अंदर प्रच्छन्न अध्यामम-सिा का रिस्य िै, मन और बाह्य प्रकृनत उस सिा की अभभव्यजकतयााँ या रूप मात्र िैं। वि गुह्य तत्त्व पुरुष और प्रकृनत के ननमय संबंधों का रिस्य िै, उन अंतयािमी ईश्वर का रिस्य िै जो समस्त जगत् ़के प्रभु िैं और इसके रूपों तथा कियाओं के अंदर िमसे छुपे िुए िैं। ये समय िैं जजन्िें अनेक तरीकों से वेदांत, सांख्य और योग द्वारा उपदेभशत ककया गया िै और गीता के शुरू के अध्यायों में समजन्वत ककया गया िै। अपनेसब भभन्न बाह्य भेदों या प्रतीनतयों के िोतेिुए भी ये एक िी समय िैं और योग के सब ववभभन्न माग ि आध्याजममक साधना के वववववध साधन िैं जजनके द्वारा िमारे अशांत मन तथा अंधे िुए प्राण को शांत-जस्थर ककया जाता िै और इन बिुपक्षीय एकमेव की ओर मोि़ हदया जाता िै और आममा तथा ईश्वर के ननगूढ़ समय को िमारे भलए इतना वास्तववक एवं ़अंतरंग बना हदया जाता िै कक या तो िम उसमें सचेतन रूप से जीवन यापन कर सकतेएवं ननवास कर सकतेिैं अथवा िम अपनी पृथक् सिा को सनातन में खो दे सकते िैं और तब िम पिले की तरि मानभसक अज्ञान के जरा भी वशीभूत निींरिते।

यि सांख्ययोधगयों या ज्ञानमाधगियों का माग ििै जो ऐसा जानकर कक गुण गुणों के अंदर किया कर रिे िैं संसार के प्रनत शांत-जस्थर या उदासीन भाव अपनाकर अपनी इंहरयों को संयभमत और शांत करके, अपनेमन, प्राण की वृवियों का ननरोध अथवा संयम करके, साक्षी भाव अपनाकर अक्षर रह्म अथवा अपनी अध्यामम-सिा की ओर अपने ध्यान को लगाकर ववश्व प्रपंच से अपने आप को त्रबलग कर उसी जस्थनत में अपनेआप को अवजस्थत करनेका प्रयास करते िैं। श्री अरववन्द कितेिैं कक यि गुह्य रिस्य िै। रिस्य इसभलए िै कयोंकक संसार में रितेिुए िम बाह्य प्रतीनतयों से इतने अभभभूत रिते िैं कक सामान्यतः िमें यि आभास िी निींिोता कक यि सारा दृश्य प्रपंच िै और इसके पीछे एक गूढ़ समय या परमामम सिा िै जो इस सारे दृश्य प्रपंच को अनुप्राणणत करती िै। भले िी िम पुस्तकों आहद के माध्यम से यि पढ़ या सुन लें कक इन सब प्रतीनतयों के पीछे हदव्य शजकत काय िकरती िै, कक सारा संसार आममा की शजकत के द्वारा चाभलत िोता िै, परंतु कफर भी िमारी श्रद्धा िमारे इंहरय-ववषयों पर आधाररत और उनमें इतनी अधधक संलग्न और भलप्त िोती िै कक उसे इस समय पर ववश्वास िी निीं ़आ पाता। अतः भीतर इस समय के प्रनत ककसी प्रकार की श्रद्धा का जागृत िोना भी एक बिा भारी पग िै कयोंकक एक बार यहद यि ववश्वास जागृत िो जाए तो व्यजकत सकिय रूप से उस हदशा में प्रयमन करता िै, अपने धचि की वृवियों पर, मन, प्राण की इच्छाओं, लालसाओं, कामनाओं, पूवधिारणाओं, पूवाग्रििों आहद का साक्षक्षमव करता िै और उन्िें संयभमत करनेका पूरा प्रयास करता िै। और जब मन और प्राण के उद्वेग कुछ शांत िोतेिैं तब व्यजकत को इस दृश्य प्रपंच से भभन्न सिा का कुछ-कुछ आभास िोने ़लगता िै जजसमें कक शाश्वतता िै, अक्षरमव िै। यि एक ऐसा अनुभव िै जो बिुत िी मिान् ़िै और अनेकों लोगों को यि अनुभव िुआ भी िै। एक बार यि अनुभव िोनेपर व्यजकत एक भभन्न पायदान पर आरोहित िो जाता िै। िालाकाँक इसके बाद भी अनंत यात्रा अभी बाकी रिती िै, परंतु कफर भी इससे व्यजकत घोर क्षरमव से कुछ मुकत िो जाता िै। भावी भववतव्यताओं के दृजष्टकोण से तो यि अनुभव और यि अवस्था गुह्य तत्त्व में एक प्रवेश मात्र िै। परंतु यहद

मिारे वतमिान जीवन के दृजष्टकोण से देखा जाए तो यि अनुभव एक बिुत िी मिान् ्पग िै। और बिुत सी योग पद्धनतयों में तो इसे बिुत िी उच्च जस्थनत मानतीं, कुछ में तो इसे लगभग अंनतम जस्थनत िी मानते िैं जजसमें कक व्यजकत का रह्म-ननवाणि साधधत िो जाता िै या कफर जो रह्म में लीन िो जाता िै और केवल साक्षी भाव से िी इस पाधथवि जीवन को व्यतीत करता िै। परंतु चूँकक िमारे वतमिान बद्ध पाधथवि जीवन के भलए तो यि आभास या अनुभव कर पाना भी एक मिान् ्पग िै कक इस दृश्य प्रपंच के पीछे ककसी गिर सिा की ववद्यमानता िै, इसीभलए इसे गुह्य ज्ञान किा गया िै। और जब व्यजकत को यि गुह्य ज्ञान िो जाता िै तब वि पाता िै कक पाधथवि अभभव्यजकत में जो चीजें िमें गोचर िोती िैं वे तो मानो उन गिर जगतों के वैसे िी ववकृत प्रनतत्रबंब मात्र िैं जैसे ववकृत प्रनतत्रबंब ककसी गंदे पानी में बना करते िैं। परंतु गीता की ववलक्षणता यि िै कक अन्य योगों से अलग गीता के अनुसार यि राह्मी जस्थनत शरीर में रिते िुए भी प्राप्त की जा सकती िै। गीता ने सबसे पिले इसी अक्षर रह्म को स्थावपत करके अपनी भशक्षा का आरंभ ककया था। गीता इस रिस्य के परे एक गुह्यतर तत्त्व की बात करती िै। गीता द्वारा ववकभसत इससे भी अधधक गुह्य तत्त्व, 'गुह्यतरम्' ्, उन भगवान् ्पुरुषोिम का गंभीर समन्वयकारी समय िै, जो एक िी साथ आममा भी िैं और पुरुष भी, पररह्म भी िैं और एकमेव, अंतरंग, रिस्यमय, अननवचिनीय परमेश्वर भी। यि गुह्यतर तत्त्व िमारे धचंतंन को चरम ज्ञान के भलए एक ववशालतर तथा अधधक गिरे रूप से समझने वाला आधार प्रदान करता िै, और साथ िी िमारी आध्याजममक अनुभूनत को यि एक गिर तथा अधधक पूण िरूप से समन्वयकारी तथा व्यापक योग प्रदान करता िै। यि गंभीरतर रिस्य परा आध्याजममक प्रकृनत और जीव के रिस्य पर आधाररत िै, जीव उस शाश्वत तथा इस व्यकत प्रकृनत में भगवान् ्का सनातन अंश िै और अपनी अक्षर आमम-सिा में उनके साथ आममतः और मूलतः एक िै। यि गंभीरतर ज्ञान आध्याजममक अनुभूनत द्वारा ककये गए परामपर तत्त्व और इिलोक के बीच आरंभभक भेद से परे ननकल जाता िै। कयोंकक, जगतों के परे जो परामपर िै वि साथ–ी-साथ वासुदेव भी िै जो सब लोकों की सभी वस्तुएँ बना िुआ िै, वि प्रमयेक प्राणी के हृदय में अवजस्थत ईश्वर तथा सवभूतों का आममा िै और अपनी प्रकृनत में उसनेजो कोई भी चीज प्रकट की िै उसका उद्गम एवं ंहदव्य अथ िैि। वि अपनी ववभूनतयों में प्रकट िुआ िै, वि कालगत पुरुष िै जो जगत् ्के किया-व्यापार को चलायमान करता िै, वि समस्त ज्ञान का सूय,ि जीव का प्ेरेमी और वप्रयतम, समस्त कमों और यज्ञ का स्वामी िै। इस गंभीरतर, समयतर, गुह्यतर रिस्य की ओर अंतरतम उद्घाटन का फल िोता िै गीता का समग्र ज्ञान, समग्र कम िऔर समग्र भजकत का योग। यि एक िी साथ आध्याजममक ववश्वमयता और मुकत तथा पूणतिाप्राप्त आध्याजममक व्यहटभाव का अनुभव िै, यि परमेश्वर के साथ पूण िरूप से एक िोने का अनुभव िै और साथ िी उन्िें जीव की अमरता का आधार तथा जगत् ्और दिे में िमारे मुकत कम िका आश्रय एवं शजकत जानते िुए उनके अंदर पूण िरूप से ननवास करने ेका अनुभव भी िै।

यि अनुभव गुह्य से भी गुह्यतर िै कयोंकक यि एक अधधक गिर समय िै। इससे पूव िका जो अनुभव था उसमें व्यजकत को अपनी जस्थनत बनाए रखनेके भलए बिुत िी सतकि रिना पड़ता िै। उसे अपनेआप पर भारी संयम रखते िुए सभी चीजों से ननभलप्ति रिना पड़ता िै अन्यथा ककसी भी चीज में भलप्त िोकर उसकी अपनेपथ से च्युत िोनेकी, योगभ्रष्ट िोने ेकी आशंका बनी रिती िै। उस जस्थनत को बनाए रखनेके भलए उसे अधधकांश

समय एक प्रकार की समाधध अवस्था में रिना िोता ि‍ै जिााँ केवल शरीर को बनाए रखनेके भलए मूलभूत कियाओं को िी ककया जाता ि‍ै और अन्य सभी प्रकार के कमों को लगभग बंद िी कर हदया जाता ि‍ै कयोंकक कम ि बंधनस्वरूप प्रतीत िोतेिैं जो कक व्यजकत को पुनः इस प्रपंच से बाधाँ देते िैं। इसभलए भले िी सामान्य पाधथवि जीवन के दृजष्टकोण से यि जस्थनत ब्रिी िी मिान् ्प्रतीत िो परंतु कफर भी स्पष्ट िी ि‍ै कक यि ककसी प्रकार के पूणमिव की जस्थनत निीं ंिो सकती। इससे आगे भगवान् ्एक ऐसी जस्थनत का वणनि करते िैं जो क्षर और अक्षर दोनों से िी परे ि‍ै। िालाकाँक आरंभ में तो वे 'अिं', 'माम्' ् आहद पदों से अपनी सिा को प्रनतपाहदत करते िैं परंतु वास्तव में यि प्रकट निींकरते कक वे िैं कौन। पंरिवें अध्याय में आकर िी स्पष्ट रूप से वे ेअपनी सिा को प्रकट करते िुए अक्षर और क्षर से परे पुरुषोिम के रूप में स्वयंको प्रनतजष्ठत करते िैं। जब उन्िें पुरुष और प्रकृनत के भेद से देखा जाता ि‍ै तब वे पुरुषोिम िैं, जब उन्िें जीव और आममा के रूप में देखा जाता ि‍ै तब वे परमामभा िैं, जब ईश्वर और उनकी शजकत के रूप में देखा जाता ि‍ै तब वे परमेश्वर िैं और जब उन्िें ब्रह्म और सृजृष्ट या माया के रूप में देखा जाए तो वे परंरह्म िैं। अतः स्वभाव और स्वधम िकी चचिामें भगवान् ्किितेिैं कक व्यजकत को पिले सतिी भाव से अपने आंतररक स्वभाव की ओर जाना िोता ि‍ै और विााँ से कफर भगवान् ्के भाव में जाना िोता ि‍ै, 'मद्भावमागता'। जब व्यजकत भगवान् ्के भाव में प्रनतजष्ठत िो जाता ि‍ै तब वि क्षर और अक्षर दोनों से िी परे पिुाँच जाता ि‍ै। इस संदभ िमें स्वयंअपना उदािरण देते िुए भगवान् ्बताते िैं कक ककस प्रकार वे स्वयंसभी कमों को करते िुए भी उनसे बद्ध निींिोतेअवपतुसमस्त कमों के अधीश्वर रितेिैं। इसभलए पुरुषोिम भाव िी ऐसा भाव ि‍ै जजसमें व्यजकत क्षर और अक्षर दोनों िी भावों में ववजयी रूप से ननवास और किया करते िुए भी उनसे सीभमत या बद्ध निीं िोता अवपतु उनसे परे पुरुषोिम के भाव में प्रनतजष्ठत िो सकता ि‍ै। यिी सच्ची पूणतिा ि‍ै। इसमें कफर कोई कम िबंधनकारी निीं ंिोते अवपतु ुसमस्त कम िमात्र उसके संकल्प से िी िोतेिैं। इसीभलए वि घोर से घोर कमों को करते िुए भी सवथिा उनसे परे अकतिा बना रिता ि‍ै। इसी पुरुषोिम की ओर गनत करने ेके भलए गीता पूण िभजकत, पूण िज्ञान और पूण िकमों के समन्वय की बात करती ि‍ै। इसके भलए व्यजकत अपने स्वभाव के अनुसार ककसी भी एक से आरंभ कर सकता ि‍ै और ज्यों-ज्यों वि माग िमें ववकभसत िोता जाता ि‍ै मयोंमयों अन्य दूसूरे भी उसमें सजममभलत िोतेजाते िैं कयोंकक कोई भी पूण िकम िउस कम िके ववषय में ज्ञान िुए त्रबना और जजसके भलए कम िककया जा रिा ि‍ै उसके प्रनत भाव िुए त्रबना संपन्न निींिो सकते। साथ िी, जब अपनेप्रेमी के समस्वरूप का सच्चा ज्ञान िो जाता ि‍ै तब व्यजकत कम िककये त्रबना रि िी निींसकता। तो इस प्रकार, व्यजकत अपनेस्वभाव अनुसार भले ककसी भी एक से आरंभ करे परंतुपूणमिव लानेके भलए अन्य दूसूरे अंग स्वतः िी सजममभलत िो जाते िैं। पुरुषोिम की चेतना िी ववजयी रूप से किया करनेका आधार िो सकता ि‍ै और विी वि सच्ची जस्थनत िो सकती ि‍ै जजसमें व्यजकत को सतकि रूप से अपने चारों ओर ककन्िीं संयमों या ननयमों की बाि निीं ंकरनी पिती ताकक वि ककसी भी प्रकार अपनी जस्थनत को बनाए रख सके और उससे च्युत न िो जाए। जब तक व्यजकत एक ऐसी अपूण िऔर संहदग्ध जस्थनत में रिता ि‍ै जिााँप्रमयेग पग पर उसे सतकि रिना पिे ेऔर जीवन से सवथिा ननभलप्तिता रखनी पिे ेताकक वि अपनी जस्थनत से धगर निीं जाए तब तक उसे इस जगत् ्को भमथ्या-माया मानना पिता ि‍ै कयोंकक यहद वि ऐसा कोई कृत्रत्रम भेद न करे तो अपनो जस्थनत को बनाए रखनेका उसके पास कोई मनोवैज्ञाननक आधार िी निीं बचेगा। इसीभलए उसे एक तीक्ष्ण ववभेद करना पिता ि‍ै और उसी के सिारे

अपनी संहदग्ध जस्थनत को बनाए रखना िोता िै। परंतु ऐसा करने ेसे अभभव्यजकत का सारा उद्देश्य िी ननष्फल ुआ प्रतीत िोता िै कयोंकक इसमें तो सिा के ववभभन्न भागों को शांत कर हदया जाता िै परंतुऐसा कर के उन्िें सभी प्रकार की अभभव्यजकत के आनंद से िी वंधचत कर हदया जाता िै। जबकक इस दूसूरी जस्थनत में व्यजकत को सवत्र जगदंबा की किया हदखाई देती िै और व्यजकत स्वयं उसी का यंत्र िोता िै जजसमें उसके प्रमयेक भाग को अभभव्यजकत का पूरा अवसर प्राप्त िोता िै। यि एक ऐसी जस्थनत िै जजसमें व्यजकत को अपने चारों ओर ककसी प्रकार की बाि़ा निीं ंकरनी िोती अवपतुवि सभी कमों को जगदंबा की अभभव्यजकत के रूप में करता िै। और इस पूरी प्रकिया में उसकी संपूण िसिा को अपनी पूण िचररताथतिा का आनंद प्राप्त िोता िै। परंतुबिुत सी योग प्रणाभलयों का मानना िै कक स्वयंईश्वर भी जब पृथ्वी पर अपनी किया करते िैं तब उन्िें भी गुणों आहद से बद्ध िोकर किया करनी िोती िै और वे ेमुकत निीं िोते। इसभलए उनके अनुसार कम िमात्र िी बंधन का कारण िै। परंतु इसी गुमथी को सुलझाते िुए गीता सातवें अध्याय में परा और अपरा प्रकृनत के भेद को स्पष्ट करते िुए किती िै कक स्वयं पराप्रकृनत िी जीव के रूप में प्रकट िोती िै। इसमें भी कुछ इसकी व्याख्या इस रूप में करते िैं कक पराप्रकृनत जीव के रूप में सीभमत िो जाती िै। परंतु इसमें ध्यान देने की बात यि िै कक पराप्रकृनत जीव बन कर भी केवल जीव भाव से बद्ध निींिो जाती अवपतु वि तो जीव के अनतररकत भी जो कुछ िै वि सभी कुछ बनी रिती िै। मनुष्य की आममा िी वि कड़ी िै जो परा और अपरा प्रकृनत को जोड़ती िै। इस तरि इस सूक्ष्म भेद को बताकर गीता यि स्पष्ट करती िै कक ककस प्रकार यि पराप्रकृनत इस दृश्यमान अपरा प्रकृनत में अपनी किया करती िै। और यिी वि रिस्य िै जो कक इस पाधथवि अभभव्यजकत में हदव्य कमों को संभव बना देता िै। अतः जब व्यजकत अपनेआप को उठाकर हदव्य चेतना के साथ संयुकत कर देता िै तब कफर वि चेतना उसके द्वारा अभभव्यकत िो सकती िै। और यिी वास्तव में इस पाधथवि अभभव्यजकत का सच्चा उद्देश्य िै। अन्यथा इसका कोई कारण समझ निीं ंआता कक परमेश्वर की ऐसी कया बाध्यता िो सकती िै जो अपने आप को ककसी ऐसी बद्ध जस्थनत में िाल दें जिा ाँसे ककसी प्रकार बािर ननकलना िी उनका एकमात्र उद्देश्य िो। अतः उस जस्थनत में पिुाँचने ेका पूरा ववधान गीता में वणणति ककया गया िै जिा ाँव्यजकत मुकत रूप से कम िकर सकता िै। परंतुयि सब ववधान आहद की चचा कर चुके िोने ेके बाद गीता इससे भी आगे ननकल जाती िै। वि किती िै कक अवश्य िो यि प्रतीनत िोती िै कक भगवान् ्ककन्िीं ववधानों के द्वारा आममा को ऊध्व– यि रोहित करते िैं परंतु ुवास्तव में तो जब परमाममा स्वयंिी गनत कर रिे िैं तो उसमें िमें ककन्िीं भी ववधानों की प्रतीनत भले िी िो, परंतुचूंकक उनकी ननज सिा के अनतररकत अन्य ककसी का कोई अजस्तमव िी निीं ंिै तो उनके ऊपर ककसी भी प्रकार का कोई ववधान लागू िी कैसे िो सकता िै। इसीभलए सभी योगों का ननरूपण करनेके बाद गीता जानती िै कक भले िी अपनेआप में ये सभी योग-प्रणाभलयााँ ककतनी भी ऊाँची कयों न िो,ाँ परंतुतो भी िैं मानभसक ववधान िी, और परमाममा ऐसे ककन्िीं भी ववधानों से सीभमत निीं िो सकते। अतः वि इन सभी ववधानों को तोड़ कर अपना गुह्यतम वचन प्रदान करती िै।

और अब आता िै परम वचन तथा सबसे गुह्य तत्त्व, 'गुह्यतमम्' ्, वि यि िै कक परमाममा एवं ंभगवान् ् 'अनंत' िैं जो धमों से मुकत िैं, और यद्यवप वे जस्थर ननयमों के अनुसार जगत् ्का पररचालन करते िैं और मनुष्य को उनके अज्ञान और ज्ञान, पाप और पुण्य, सत् ्और असत्, ् राग और द्वेष और उदासीनता, सुख और दुुःख, िष ि और शोक के धमों के द्वारा तथा इन द्वंद्वों के पररमयाग के द्वारा, उसके भौनतक और प्राणणक, बौद्धधक,

भाववक, नैनतक और आध्याजममक रूपों, ननयमों एवं आदशों के द्वारा ले चलते ैं, तथावप परमाममा तथा भगवान् ्
इन सब चीजों से परे ैं, और यहद म भी धमों के समस्त अवलंबन को मयाग सकें, इन मुकत और सनातन
परमाममा के प्रनत अपनेको समवपति कर सकें और अपने-आप को केवल इनकी ओर पूण ितथा अनन्य भाव से
खुला रखने का ी ध्यान रखते ुए, अपने अंतःस्थ भगवान् ्की ज्योनत, शजकत और आनंद पर भरोसा रख सकें
और भय तथा शोक न करते ुए, केवल उन्ीं का मागदिशनि स्वीकार कर सकें, तो यि समयतम और मिम
मुजकत ै और इससे में अपनी सिा एवं ्प्रकृनत की चरम और अटल पूणतिा प्राप्त ोती ै। यि ै वि माग िजो
परम आममा द्वारा चयननतों के भलए प्रदभशति ककया गया ै, - केवल उन लोगों के भलए जजनमें भगवान् ्
अधधकतम आनंद लेते ैं, कयोंकक वे लोग उनके ननकटतम ैं एवं उनके साथ एकमव लाभ करने के भलए सवाधिधक
योग्य ैं और, प्रकृनत की उच्चतम शजकत एवं ्किया के साथ स्वतंत्रतापूवकि सिमत तथा सुसंगत ोतेुए, उन्ीं
की भानाँत आममा की चेतना के अंदर ववश्वमय और अध्याममसिा के अंदर ववश्वातीत बननेमें सवाधिधक समथ िैं।
कयोंकक, आध्याजममक ववकास में एक समय ऐसा आता ै जब में यि ज्ञात ो जाता ै कक मारा
समस्त पुरुषाथ िऔर कम िमारे अंदर और मारे चारों ओर ववद्यमान एक मिर उपजस्थनत के शांत और गूढ़
आग्रि के प्रनत मारी मानभसक एवं ्प्राणणक प्रनतकियाएँ मात्र ी ैं। में यि स्पष्ट ो जाता ै कक मारा समस्त
योग, मारी अभीप्सा और मारा उद्यम एक बृिर समय के अशुद्ध या अधसिमय रूप ैं, कयोंकक ये मन के
संसगाोँ, मागोँ, पूवि–ननणियों, पक्षपातों द्वारा ववकृत या कम-से-कम उनसे सीमाबद्ध ोते ैं। मारे ववचार,
अनुभव तथा प्रयास मिम चीजों की मानभसक प्रनतमूनत मात्र ैं जो कक मारे अंदर जस्थत उस शजकत द्वारा
अधधक पूण,ि प्रमयक्ष, स्वतंत्र एवं ्ववशाल रूप से तथा वैजश्वक एवं सनातन संकल्प के साथ अधधक समस्वरता से
संपाहदत ो सकतींै यहद म अपने-आपको सवोच्च एवंपरम् ्शजकत एवं प्रज्ञा के ाथों में यंत्रवत् ्समवपति कर
सकें। वि शजकत मसे पृथक् नीं ्ै; वि मारी अपनी ी आमम-सिा ै जो अन्य सब की आमम-सिा के साथ एक
ै और साथ–ी-साथ एक ववश्वातीत सिा और अंतरस्थ पुरुष भी ै। मारा जीवन, मारा कम िइस मिम सिा
में समाहित ोकर व्यजकतगत रूप से मारा अपना नीं रिेगा, जैसा कक अब में मानभसक पाथकिय में यि प्रतीत
ोता ै। यि एक अनंतता एवं अंतरंग अननवचिनीय उपजस्थनत की एक बृित् ्गनत ोगा; वि मारे अंदर इस गिन
वैजश्वक आममा एवं ्इस ववश्वातीत पुरुष की एक सतत् ्स्वयं-स्फूत िरचना एवं प्राकट्य ोगा। गीता यि इंधगत
करती ै कक ऐसा पूण िरूप से ो, इसके भलए समपणि ननःशेषे रूप से ोना ोगा; मारे योग, मारे जीवन तथा
अंतः-सिा की अवस्था का ननधारिण मुकत रूप से इस जीवंत 'अनंत' के द्वारा ोना ोगा, न कक इस या उस धम ि
या ककसी भी धम िके ऊपर मारे मन के पूविाग्रि द्वारा। तब योग के हदव्य ईश्वर, 'योगेश्वरः कृष्णः' स्वयं मारे
योग को अपने ाथों में लेंगे और में मारी उच्चतम संभव पूणतिा तक ऊपर उठा ले जाएँगे, ककसी बाह्य या
मानभसक आदश िया बंधनकारी ननयम की पूणतिा तक नींअवपतुएक ववशाल और व्यापक तथा मन के भलए
अपररमेय पूणतिा तक। वि एक ऐसी पूणतिा ोगी जो सवदिशी प्रज्ञा के द्वारा पिले तो ननःसंदेि मानव स्वभाव के
समग्र समय के अनुसार, ककंतु बाद में उस मिर वस्तु के समग्र समय के अनुसार ववकभसत ोगी जजसकी ओर
मारा स्वभाव उद्धाहटत ोगा, - (वि मिर वस्तु ै) एक असीम, अमर, मुकत तथा सवरूपांतरकारी आममा एवं
शजकत तथा एक हदव्य और अनंत प्रकृनत की ज्योनत और दीजप्त।

सब कुछ उस रूपांतरण के आवश्यक रव्य के रूप में समवपति कर देना िोगा। एक सवज्ञि चेतना िमारे ज्ञान और अज्ञान, िमारे समय और असमय को अपनिेाथ में लेकर उनके अपयाप्ति रूपों को दूरू कर देगी, 'सवधिमान्ि्पररमयज्य', और सब कुछ को अपनी अनंत ज्योनत में रूपांतररत कर देगी। एक सवसिमथ िशजकत िमारे पुण्य और पाप, उधचत और अनुधचत, बल और दुबुलिता को अपनिेाथ में लेकर उनके उलझे िुए रूपों को सुलझा देगी, 'सवधिमिान् ्पररमयज्य' और उन सबको अपनी ववश्वातीत पववत्रता एवं सावभिौम शुभु एवं अमोघ शजकत में रूपांतररत कर देगी। एक अननवचिनीय आनंद िमारे क्षुर िष िऔर शोक, िमारे संघषरित सुख और दु्ःख को अपने ाथि में लेकर उनके ववसंगत एवं ंत्रुहुटपूण िलयों को दूरू कर देगा, 'सवधिमान्ि्पररमयज्य', और उन सब को अपने ववश्वातीत एवं ववश्वगत अकल्पनीय आनंद में रूपांतररत कर देगा। समस्त योग जो कुछ कर सकते िैं वि सब और उससे भी अधधक ककया जाएगा; परंतु यि एक मिर दृजष्ट से ककया जाएगा, जो कुछ कोई मानव गुरु, संत या ज्ञानी प्रदान कर सके उसकी अपेक्षा किीं अधधक मिर प्रज्ञा एवंसमय के साथ ककया जाएगा। जजस आंतररक आध्याजममक जस्थनत तक यि परम् ्योग िमें ले जायेगा, वि जो कुछ इस संसार में िै उस सब से ऊपर िोगी और कफर भी इस जगत् ्या अन्य लोकों की सभी वस्तुओंको अपनेअंदर समाववष्ट करेगी, परंतुत्रबना सीभमत िुए व त्रबना बंधन के सभी का आध्याजममक रूपांतरण करते िुए 'सवधिमान्ि्पररमयज्य'। भगवान् ्का अनंत सत्,् चेतना (धचत्)् एवं आनंद अपनी शांत ननश्चल-नीरवता तथा उज्ज्वल, अपार किया के साथ विााँ िोगा, वि उस जस्थनत का में इस प्रकार

ताजत्त्वक, आधारभूत और बवक्षमत उपादान, साचााँ एवं स्वरूप िोगा। तब, अनंतता के उस साचों प्रकट िुए भगवान् ्पिले की तरि अपनी योगमाया के द्वारा आच्छाहदत िोकर निीं, अवपतु प्रमयक्ष रूप से ननवास करेंगे और जब-जब तथा जजस प्रकार वे चािेंगे तब-तब तथा उस प्रकार वे िमारे अंदर अनंत के चािे जो आकार गहठत कर लेंगे और अपने आमम-पररपूनतकारी संकल्प एवं अमर आनंद के अनुसार ज्ञान, ववचार, पे्रेम, आध्याजममक आनंद, शजकत और कम िके ज्योनतमयि रूपों का ननमाणि कर लेंगे। विााँमुकत आममा एवं अप्रभाववत प्रकृनत पर कोई भी बंधनकारी प्रभाव निीं पड़ेगो, न िी इस या उस ननमनतर धम िके अंदर ऐसा दृढ़ीकरण िोगा ि्पररमयज्य', में परमाममा की

जजसको बािर ननकाला जा सके। क्योंकक, आमम के 'परमधाम' में तो कुछ 'सवधिमान् शजकत द्वारा ननषकासन िो सके। ववश्वातीत आममा में, परमधाम में अधधवचल ननवास् िी इस आध्याजममक जस्थनत का आधार एवं आश्वासन िोगा। ववश्वसिा और सवभिूतों के साथ एक घननष्ठ बोधपूण िएकता िी, जो भेदमूलक मन की बुराई और दु्ःख-ताप से मुकत पर सच्चेभेदों की ओर ज्ञानपूवकि ध्यान देनेवाली िोगी इस जस्थनत की ननयामक शजकत िोगी। एक अखंडआनंद, तथा वे जो कुछ भी िैं उस सबके साथ यिा ाँसनातन जीव का एकमव एवं सामंजस्य िी इस सवांगीण मुजकत का फल िोगा। िमारे मानव अजस्तमव की चकरा देनेवाली समस्याएाँ, अजुनि की समस्या जजनका एक तीव्र दृष्टांत िै, अज्ञान के अंदर िमारे भेद-जनक व्यजकतमव के द्वारा उमपन्न िोती िैं। यि योग चूंकक परमेश्वर तथा जगत्–जीवन के साथ मानव आममा का यथाथ िसंबंध स्थावपत करता िै, िमारे कम िको भगवान् ्का कम,ि उसे गहठत एवं पररचाभलत करनेवाले ज्ञान एवं संकल्प को भगवान् ्का ज्ञान एवं संकल्प तथा िमारे जीवन को हदव्य आमम-अभभव्यजकत का एक गनतच्छंद बना देता िै, इसभलए, यि उन समस्याओं का पूण िरूप से ननराकरण करने ेका वास्तववक माग िै।

इदं ते नातपमकाय नाभक्ताय कदाचन ।

न चाशश्रूजषि िाच्यं ंन च मांयोऽभ्यसूयनत ।। ६७।।

६७. तेरे द्िारा इस ज्ञान को उसे नहीं ंबताया जाना चादहए जो तप से या भस्क्त से विहीन है, और न ही उसे स्जसे सनजने ेकी इच्छा नहीं ंहै अथिा जो मेरी ननन्दा करता है और मझेज ेगौण समझता है।

य इमंपरमं गजहां मद्भक्तेष्सिभिामयनत ।
भस्क्तं मनय परांकृत्िा मामेिैष्यत्यसंशयः ।। ६८।।

६८. जो मनष्जय मझको परम् ्भस्क्त रखकर इस परम् ्गोपनीय रहमय को मेरे भक्तों के बीच में कहेगा िह ननमसंदेह ही मझको ेप्राप्त होगा।

न च तममान्मनष्जयेष जकस्श्न्मे वप्रयकृत्तमः ।
भविता न च मे तममादन्यः वप्रयतरो भवजि ।। ६९।।

६९. उसकी अपेक्षा मेरा अनतशय वप्रय कमु ुकरनेिाला संपूणु ुमनष्जयों में दूसरा कोई भी नहीं ंहोगा और पृथ्िी पर

मझ ेउससे अधिक वप्रय दूसरा नहीं ंहोगा।

अध्येष्यते च य इमंम्यिु ुसंिादमािायोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहसमष्टः मयासमनत मे मनतः ।। ७०॥

७०. और जो मनष्जय हमारे इस पवित्र संिाद को अध्ययन करेगा उससे म ैंज्ञानयज्ञ के द्िारा अधुचतु हूँगा, ऐसा मेरा मत है।

श्रद्िािाननसूयश्ि शृणृयजादवप यो नरः ।
सोऽवप मक्जतः शभजााँल्लोकान्प्राप्नयजात्पण्जयकमुणाम् ्।। ७१।।

७१. जो मनष्जय श्रद्िा से पूणु ुऔर दोषदृस्ष्ट से रदहत होकर इसका श्रिण करेगा िह मक्जत होकर पण्जय कमु ुकरनेिाले मनजष्यों को प्राप्त होनेिाले श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त करेगा।

कस्च्चदेतच्छजतं पाथु ुत्ियैकाग्रेण चेतसा ।
कस्च्चदज्ञानसंमोहः प्रनष्टमते िनञ्जय ।। ७२।।

७२. हे पाथु!ु क्या इसे एकाग्र धचत्त के साथ तेरे द्िारा सनजा गया है? हे िनञ्जय! तेरा जो अज्ञानजन्य मोह था, क्या िह नष्ट हजआ है?

अजुनुज उिाच नष्टो मोहः ममृनृतलुब्ध्िा त्ित्प्रसादान्मयाच्यजत ।

स्मथतोऽस्मम गतसन्देहः कररष्ये िचनं ति ।। ७३।।

७३. अजुजनु ने कहाः हे अच्यजत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और मजझे ेममृत प्राप्त हो गई है, म ैं संशयरदहत हजआ दृढ़स्मथत हूँ। म ैंआपके िचन के अनसजार ही कमु ुकरूँगा।

संपूण ियोग का प्रकाशन कर हदया गया िै, भशक्षा का परम वचन दे हदया गया िै, और चुनी िुई मानव आममा अजुनि एक बार पुनः, अपनेअिमय मन के साथ निीं, वरन् ्इस ििमि आमम-ज्ञान के साथ, कम िकी ओर मुि गया िै। भगवान् ्की ववभूनत अजुनि मानवजीवन के अंदर हदव्य जीवन के भलए तैयार िो गया िै, उसकी सचेतन आममा मुकत जीव के कमों, 'मुकतस्य कम'ि के भलए प्रस्तुत िो गयी िै। मन का मोि नष्ट िो चुका िै; अपनेस्वरूप और अपनेसमय के ववषय में, जो कक िमारे जीवन के भ्रांनतजनक दृश्यों एवं रूपों के कारण इतने े काल तक छुपा िुआ था, जीव को स्मृनत पुनः प्राप्त िो गयी िै तथा उसकी सामान्य चेतना का अंग बन गयी िैः समस्त भ्रम-संशय दूरू िो गया िै, वि आदेश के पालन में प्रवृि िो सकता िै और िमारी सिा के स्वामी, काल और ववश्व में अभभव्यकत ववश्व-पुरुष एवं ंपरमेश्वर उसे अपनेभलए तथा जगत् ्के भलए जजस भी कम िमें ननयुकत करें, जो भी काम सौंपें उसे ननष्ठापूवकि संपन्न कर सकता िै।

सञ्जय उिाच

इत्यहं िासदेजिमय पाथुमुय च महात्मनः ।
संिादिसमममश्रौषमद्भतंज रोमहषुणुम् ्।। ७४।।

७४. सञ्जय ने कहाः इस प्रकार मनैं िासदेजि के और महात्मा अजुनुज के इस अद्भतज रोमांचकारी संिाद को सनजा।

व्यासप्रसादाचुतिानेतद् गजह्यमहं योगंपरम् ्।
योगेश्िरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः मियम् ्।। ७५।।

७५. मनैं ेव्यासजी की कृपा से मियंसाक्षात् ्योगेश्िर श्रीकृष्ण के द्िाराकहतेहुए इस परम गह्जय योग को सनजा है।

राजन्संममृतृ्य संममृतृ्य संिादिसमममद्भतजम् ्।
केशिाजुजनुयोः पण्जयं ंहृष्यासम च महजजमुहुजजः ।। ७६।।

७६. हे राजन् ्! भगिान् ्श्रीकृष्ण और अजुजनु के इस अद्भतज और पवित्र संिाद को ज्यों-ज्यों म ैंबार-बार ममरण करता हूँ त्यों-ही-त्यों म ैंबारंबार हषु ुसे रोमांधचत हो जाता हूँ।

तच्च संममृतृ्य संममृतृ्य रूपमत्यन्द्भतंज हरेः ।
विममयो मे महान् ्राजन्हृष्यासम च पनजः पनजः ।। ७७।।

७७. और हे राजन् ्! भगिान् ्श्रीहरर (कृष्ण) के उस अत्यंत अद्भतज रूप को स्जतना ही म ैंममरण करता हूँ उतना ही अधिक मझेज आश्चयु ुहो रहा है और म ैंबार-बार हषु ुसे पलजकायमान होता हूँ।

यत्र योगेश्िरः कृष्णो यत्र पाथो ि निुजरः ।
तत्र श्रीविजुयो भूनतध्रिजा नीनतमुनुतमुमु ।। ७८।।

७८. जहा ूँकहीं ंभी योगेश्िर भगिान् ्श्रीकृष्ण हैं और जहा ूँकहींभी िनिुजारी पाथु ुहैं िहाूँ ननश्चय ही श्री, विजय और समृद्धि और सत्य का अचल िमु ुहै - ऐसा मेरा विश्िासि है।

गीता के संदेश को, इसके हदव्य गुरु के उपदेश को सार-रूप में इस प्रकार कि सकते िैं, "कम िका रिस्य समस्त जीवन एवं ंअजस्तमव के रिस्य के साथ एक िै। जगत्–अजस्तमव प्रकृनत का एक यंत्र मात्र निीं ंिै, ननयम का एक ऐसा पहिया निीं िै जजसमें जीव एक क्षण के भलए या युगों के भलए फाँसा िुआ िै; यि तो परमाममा की एक सतत् ्अभभव्यजकत िै। जीवन केवल जीवन के भलए निींवरन् ्परमेश्वर के भलए िै, और मनुष्य का जीवाममा भगवान् ्का सनातन अंश िै। कम िआमम-खोज, आमम-पररपूणतिा एवं ंआमम-साक्षामकार के भलए िै न कक केवल उसके अपने तमकाल या भववष्य में प्राप्त िोने ेवाले बाह्य एवं ंप्रमयक्ष फलों के भलए। सभी वस्तुओंका एक आंतररक ववधान एवं ं अथ ििै जो अध्याममसिा की परम प्रकृनत तथा व्यकत प्रकृनत पर अवलंत्रबत के अथ िका वास्तववक समय उसी के अन्दर ननहित िै और मन तथा उसके कम िके बाह्य आकारों में तो उस समय को केवल यदा-कदा िी, अपूण िरूप से तथा अज्ञान द्वारा प्रच्छन्न रूप में िी प्रकट ककया जा सकता िै। अतः, कम िका अमोच्च, ननदोष एवं व्यापकतम ववधान िै ककसी बाह्य आदश िएवं धम िका अनुसरण न करके अपनी उच्चतम तथा अंतरतम सिा का समय ढूाँढ़ ननकालना और उसमें ननवास करना। जब तक ऐसा निीं ंिो जाता तब तक समस्त जीवन एवं ंकम िएक अपूणतिा, एक कहठनाई, एक संघष िएवंएक समस्या िी बना रिेगा। केवल अपनी सच्ची आममा को ढूाँढ़ने ेतथा उसके सच्चेसमय एवं वास्तववक स्वरूप के अनुसार जीवन त्रबताने से िी उस समस्या को अंनतम रूप से िल ककया जा सकता िै, उस कहठनाई एवं संघष िको पार ककया जा सकता िै और उपलब्ध की जा चुकी आममा एवंअध्याममसिा की सुरक्षक्षत जस्थनत में तुमिारे कम िपूणतिा को प्राप्त िोकर वास्तववक हदव्य कम ि में पररणत िो सकतिैं। इसभलए अपनी आममा को जानो; अपनी वास्तववक आममा को ईश्वर समझो और उसे अन्य सबकी आममा के साथ एक जानो; अपनी अंतराममा को परमेश्वर का एक अंश जानो। और कफर जो जानते िो उसी ज्ञान में ननवास करो; अपनी आममा में जस्थत रिो, अपनी परा आध्याजममक प्रकृनत में ननवास करो, भगवान् ्के साथ योगयुकत िोओ और भगविुल्य बनो। सवप्रिथम, अपनेसभी कम ियज्ञ-रूप में उनके प्रनत अवपति करो जो तुमिारे अन्दर परमोच्च और एकमेव सिा के रूप में ववराजमान िैं और जगत् ्में भी परमोच्च और एकमेव सिा के रूप में ववराजमान िैं; अन्त में, जो कुछ तुम िो और जो कुछ तुम करते िो वि सब उन्िीं के िाथों में सौंप दो जजससे कक वे परम और ववश्वगत भगवान् ्इस जगत् ्में तुमिारे द्वारा अपनेसंकल्प और अपनेकमों को संपन्न करें। यिी िै वि समाधान जो म ैंतुमिारे सामने रखता िूाँ और अन्त में तुम पाओगे कक इसके अनतररकत और कोई समाधान िै िी निीं।"

यि एक बिुत िी मित्त्वपूण िबात िै कक "कम िका परमोच्च, ननदोष एवं व्यापकतम ववधान िै ककसी बाह्य आदश िएवं धम िका अनुसरण न करके अपनी उच्चतम तथा अंतरतम सिा का समय ढूाँढ़ ननकालना और उसमें ननवास करना।" ककसी भी बाह्य ववधान की अपेक्षा व्यजकत को अपनी अंतरतम सिा से जो प्रेेरणा आती िै उसे िी सिज रूप से अभभव्यकत करना चाहिये। ऐसा करने ेमें मनुष्य की तकि बुद्धध कापाँ उठती िै कयोंकक तब कम ि तकिबुद्धध की पकि में आने वाले ववधानों को अविेलना कर भीतरी प्रेेरणा के आधार पर चलता िै। िमारी तकि बुद्धध ककसी ऐसे कम िको तो स्वीकृत कर सकती िै जो कक ककन्िीति ववधानों के अनुसार चले या जो उसके भलए ग्राह्य िो, परंतु जब बुद्धध से परे ककसी उच्चतर तथा गिनतर ववधान की किया लागू िोती िै तब तकिबुद्धध के सारे मापदंडों की उपेक्षा िो जाती िै। ऐसे में कोई भी आधार न भमलने के कारण तकिबुद्धध कापाँ उठती िै।

अतः जीवन का सार यिी िै कक अपनेसभी कमों को, अपने भावों को, अपनी संपूण िसिा को पूरी तरि भगवान् ्के िाथों में सौंप हदया जाए और तब वे िमारे साथ जैसा चािें वैसा व्यविार करें। िालाकाँक यि उजकत कक 'सब कुछ भगवान् ्के िाथों में सौंप दो' सुनने में तो सिज प्रतीत िोती िै परंतु इसके वास्तववक कियान्वयन में बिे भारी धोखे िैं। व्यजकत को पग-पग पर अनेकानेक प्रलोभनों, संदेिों, संशयों आहद के द्वारा गुजरना िोता िै। व्यजकत को बीच के ककसी भी पड़ाव पर यि भ्रम िो सकता िै कक वि अपने गंतव्य तक पिुाँच गया िै। यि एक बिुत िी आम बात िै। साधना के माग िमें ककसी क्षुर से अनुभव में िी व्यजकत का अिं फूल सकता िै और उसी पड़ाव को वि अंनतम मानकर विााँठिर सकता िै। साधना के माग िमें ऐसे धोखों से बचना लगभग असंभव िै। यि व्यजकत की सच्चाई और ननष्कपटता पर ननभरि िै कक वि ककस िद तक धोखों से बच सकता िै। व्यजकत में जजतनी िी अधधक सच्चाई िोगी धोखों की आशंका उतने अनुपात में कम िोगी। परंतु कफर भी सच्चा मनोभाव तो यि िै कक भले ककतने भी जाल-घात कयों न िों, ककतनेभी ववचलन या ककतनी भी ल़िख़िािटें कयों न िों, व्यजकत एकननष्ठ रूप से अपने माग िपर चलता िी रिेगा। इसी संदभ िमें श्रीमाताजी किती िैं, "... यि मत भूलो कक तुम यहद सच्चे प्रयमन भी करते िो तो भी तुम इन सब कहठनाइयों के अंत तक एक हदन में, एक मिीनेमें, एक वष िमें निीं ंपिुाँच जाओगे। जब तुम आरंभ करते िो तब तुम्िें एक अटूट धैय िके साथ आरंभ करना चाहिये। तुम्िें यि किना िोगा, 'भले इसमें पचास वष िलगें, भले इसमें सौ वष िलगें, यिा ाँतक कक चािे इसमें अनेक जीवन भी कयों न लगें, तो भी म ैंजो कुछ प्राप्त करना चािता िूाँ उसे म ैंअवश्य प्राप्त करूंगा।'

एक बार यहद तुमने ेऐसा करने ेका ननश्चय कर भलया, एक बार यहद तुम त्रबल्कुल सचेतन िो चुके िो कक चीजें ऐसी िी िैं और यि लक्ष्य सतत् ्और स्थायी रूप से प्रयमन करनेका कष्ट उठाए जानेयोग्य िै, तो तुम आरंभ कर सकते िो। अन्यथा, कुछ समय बाद तुम कलांत िो जाओगे; तुम ननरुमसाहित िो जाओगे, तुम अपने-आप से किोगे, "ओि! यि तो बिा कहठन िै - म ैंइसे करता िूाँ और यि चौपट िो जाता िै, म ैं- कफर करता िूाँ और यि कफर चौपट िो जाता िै, और कफर म ैंइसे दुबुारा करता िूाँ और यि िमेशा िी चौपट िो जाता िै...। कफर कया ककया जाए? कब म ैंविााँ पिुाँचूाँगा?" अतएव व्यजकत में प्रचुर धैय िोना चाहिये। यि काय िसौ बार चौपट िो सकता िै, और तुम इसे कफर से एक सौ एकवीं बार करोगे; यि िजार बार चौपट िो सकता िै और तुम कफर से इसे एक िजार एकवीं बार करोगे जब तक कक अंततः यि चौपट निीं िोगा। और अंत में यि चौपट निीं ंिोता।" (CWM 4, 334-35)

इस प्रकार अठारहीूँ अध्याय 'मोक्षसंन्यासयोग' समाप्त होता है।

पररभशष्ट

I. श्रीकृष्ण की ऐनतिाभसकता और उनकी आध्याजममक यथाथतिा

अंतरस्थ भगवान् ्मनुष्य में सनातन अवतार िैं; मानव अभभव्यजकत तो बाह्य जगत् ्में उसका धचह्न और उसका ववकास िै.... यि सिी िै कक भौनतक रूप में ईश्वर के अवतार का गीता में बिुत अधधक ववस्तार निीं िै,

परंतु ननश्चय िी गीता की भशक्षा की श्रृंखला में इसका एक सुननजश्चत स्थान िै और ऐसा गीता की संपूण ियोजना में अंतननिहित िै, जजसकी कक संपूण िरूपरेखा िी यि िै कक अवतार एक ववभूनत को, उस मनुष्य को जो मिज मानवता की उच्चतम अवस्था तक पिुँच चुका िै, हदव्य जन्म और हदव्य कमों की ओर ले जा रिे िैं। इसमें भी कोई संदेि निीं कक मानव जीव को अपने-आप में उठाने के भलये भगवान् ्का आंतररक अवतरण मुख्य बात िै - आन्तररक कृष्ण, बुद्ध या ईसा का िी वास्तववक मित्त्व िै। परंतुजजस प्रकार आन्तररक ववकास के भलए बाह्य जीवन का अमयंत मित्त्व िै, ठीक उसी प्रकार इस मिान् ्आध्याजममक अभभव्यजकत के भलए बाह्य अवतार का भी कोई कम मित्त्व' निीं। मानभसक और शारीररक प्रतीक की पररपूणतिा आंतररक सद्वस्तु के ववकास में सिायक िोती िै; बाद में यिी आंतररक सद्वस्तु और भी अधधक शजकत के साथ बािरी जीवन के द्वारा अपने-आप के और अधधक पूण िप्रतीक के रूप में अपने-आप को प्रकट करती िै। आध्याजममक सद्वस्तु और मानभसक तथा भौनतक अभभव्यजकत इन दोनों के बीच, सतत् ्रूप से एक दूसूरे पर परस्पर किया-प्रनतकिया के द्वारा मानवजानत में भागवत् ्अभभव्यजकत ने सदा नछपाव एवं ंप्रकटन के चिों में गनत करना स्वीकार ककया िै ।

प्रश्न : जब श्रीअरववन्द किते िैं कक 'अंतरस्थ भगवान् ्मनुष्य में सनातन अवतार िैं', तो इस दृजष्टकोण से तो सभी अवतार िी िुए?

उत्तर : सनातन अवतार का पिलू तो ठीक िै, परंतुयिा ाँउसकी बाह्य अभभव्यजकत की बात कर रिे िैं। गीता तो इस बारे में त्रबल्कुल असंहदग्ध रूप से अवतार के रूप में जन्म ग्रिण और जीव के रूप में जन्म ग्रिण में भेद करती िै। अवतार के रूप में जन्म ग्रिण करने ेमें वे अपनी पराप्रकृनत को अपने वशीभूत करके, उस पर अधधजष्ठत िोकर जन्म ग्रिण करते िैं जबकक जीव के रूप में जन्म ग्रिण करने ेमें वे ेअपनी प्रकृनत के वशीभूत िोकर जन्म ग्रिण करते िैं। अंतरस्थ भगवान् ्का मनुष्य में जो सनातन अंश िै वि वास्तव में अवतार के आने से फलीभूत िोता िै। जब अवतार आते िैं तब जजनका भी उनसे संपकि साधधत िोता िै उनकी आममा के भलए वि अवतार स्वयं इस प्रकार संकल्प कर सकता िै मानो वि संकल्प स्वयं उस आममा ने िी ककया िो। इससे व्यजकतगत साधना का सारा भार िी समाप्त िो जाता िै। श्रीअरववन्द आश्रम, पाजण्चेरी में भी सभी यि जानते थे कक व्यजकत को केवल अपने आप को श्रीमाताजी के प्रनत खुला रखना िै, शेष सभी कुछ तो श्रीमााँ स्वयंिी करती िैं। जीव की प्रगनत का इससे मवररत, प्रभावशाली और शजकतशाली तरीका निीं ंिो सकता। यिी अवतार का सबसे मित्त्वपूण िकाय ििै। इस पुस्तक के प्रथम भाग के पररभशष्ट में श्रीमाताजी ने भागवत् ्अवतारों का यिी रिस्य बताया िै।

---

*अवश्य िी पाधथवि चेतना के भलए यि तथ्य मात्र भी कक भगवान् ्अपने-आप को अभभव्यकत करते िैं, सभी वैभवों में मिानतम वैभव िै। यिााँ व्याप्त अंधकार को देखो और सोचो कक इसका कया िाल िोता यहद भगवान् ्इसमें सीधे िस्तक्षेप निीं करते ेऔर अंधकार में से ज्योनतयों की ज्योनत प्रस्फुहटत निीं िोती - कयोंकक यिी तो अभभव्यजकत का अथ ििै।

***

इनतिास में चार मिान् ्घटनाएाँ िैं, ट्रॉय की घेराबंदी, ईसा का जीवन-चररत व उन्िेंसूली पर चढ़ाए जाना, वृंदावन में कृष्ण का ननवासिन तथा कुरुक्षेत्र की भूभम पर अजुनि-कृष्ण संवाद। ट्रॉय की घेराबंदी ने िेलस (Hellas) को जन्म हदया, वृन्दावन में प्रवास ने भजकतमय धम िको जन्म हदया कयोंकक उससे पिले केवल ध्यान-धचंतंन व आराधना िी थे,े अपने सूलीकरण से ईसा ने यूरोप को मानवीय बनाया और कुरुक्षेत्र का संवाद अभी भी मानवजानत को मुकत करेगा। और कफर भी किा जाता िै कक इन चारों में से कोई भी घटना कभी घहटत िी निीं िुई।

लोग किते िैं कक ईसा की भशक्षाएाँ फजी िैं और कृष्ण कववयों का एक सृजन िैं। (यहद ऐसा िै) तो इन फजजयों के भलए भगवान् ्का लाख-लाख शुकक्रया अदा करो और इन रचनयता कववयों के आगे प्रणाम करो।

***

नन:संदेि ऐनतिाभसक श्रीकृष्ण भी थे। पिले-पिल यि नाम िम छांदोग्य उपननषद् में पातेिं जिााँ इनके बारे में िम जो कुछ पता कर पातेिं वि इतना िी िै कक आध्याजममक परंपरा में वे ेएक रह्मववो के रूप में सुप्रभसद्ध थे,े अपनेव्यजकतमव और अपने जीवन चररत में नन:संदेि इतने सुप्रभसद्ध थे ेकक केवल देवकी-पुत्र कृष्ण किकर उन्िेंसंबोधधत करना भर पयाप्ति था कक लोग जान जाते थे कक ककसकी चचाि िो रिी िै। इसी उपननषद् में िम ववधचत्रवीय िके पुत्र राजा धृतराष्ट्र के नाम का उल्लेख भी पातेिं, और, चूाँकक परंपरा ने इन दोनों नामों को इतने घननष्ठ रूप से एक-दूसूरे से संबद्ध ककया िै कक ये दोनों िी मिाभारत के प्रमुख व्यजकत िैं, इसभलए मि यि भली-भानााँत ननष्कष िननकाल सकतेिं कक ये दोनों वास्तव में समकालीन थे और यि कक इस मिाकाव्य में अधधकतर ऐनतिाभसक पात्रों की िी चचाि िो रिी िै और कुरुक्षेत्र के युद्ध के संबंध में एक ऐसी िी ऐनतिाभसक घटना का उल्लेख िै जजसकी छाप इस जानत के स्मृनत-पट पर दृढ़ रूप से अंककत थी। िम यि भी जानते िैं कक ईसा-पूव ि की शताजब्दयों में श्रीकृष्ण और अजुनि धाभमकि पूजा के पात्र थे;े और, यि मान लेनेका कुछ कारण तो िै कक यि पूजा ककसी ऐसी धाभमकि या दाशननिक परंपरा के संबंध के कारण िी िोती िोगी, जिााँसे गीता ने अपनेबिुत-से तत्त्वों को, यिााँ तक कक ज्ञान, कम िऔर भजकत के समन्वय के आधार को भी भलया िोगा, और कदाधचत् ्यि भी माना जा सकता िै कक ये मानव कृष्ण िी इस संप्रदाय के प्रवतकि, पुनः-संस्थापक या कम-से-कम प्रारंभभक आचायों में से एक रिे िोंगे। इसभलए भले िी गीता का बाद का रूप जैसा भी बदल गया िो, तो भी यि भारतीय धचंतंन में श्रीकृष्ण के िी उपदेश के पररणाम को प्रस्तुत करता िै और संभवतः इस उपदेश का ऐनतिाभसक श्रीकृष्ण के साथ तथा अजुनि और कुरुक्षेत्र के युद्ध के साथ संबंध केवल नाटकीय कल्पना से बढ़कर भी कुछ िो सकता िै। मिाभारत में श्रीकृष्ण को एक ऐनतिाभसक व्यजकतमव और अवतार के रूप में प्रस्तुत ककया गया िै; इसका अथ ििै कक उनकी उपासना और उनके अवतार-तत्त्व की मान्यता उस समय तक – स्पष्ट रूप से पाचााँवीं से पिली शताब्दी ईसा पूव ितक - अवश्य िी प्रनतजष्ठत िो चुकी थी जब भरतवंभशयों की प्राचीन कथा और कववता या मिाकाव्य-परंपरा नेअपना वतमिान रूप ग्रिण ककया। इस काव्य में अवतार की बाल-वृंदावन-लीला की कथा या ककंवदंती का भी संकेत िै जजसे पुराणों ने इतने तीव्र और शजकतशाली आध्याजममक प्रतीक के रूप में वणणति ककया िै और जजसने भारत के धाभमकि मन पर बिा गिरा प्रभाव िाला िै। िररवंश में भी श्रीकृष्ण के जीवनचररत का वणनि िै, जो बिुत िी स्पष्ट रूप से ऐसे उपाख्यानों से भरा िै जो कदाधचत् ्पुराणों में आए वणनिों का आधार बनेिं।

***

जानत की प्रनतभा तथा एक राष्ट्र की चेतना के ववषय में यि सब स्पष्टीकरण, कक वि देवताओं और उनके रूपों की सृजृष्ट करती िै, एक बिुत िी अपूण,ि बिुत-कुछ नछछला और अपने-आप में एक भ्रमोमपादक समय िै। मनुष्य का मन एक मूल स्रष्टा निीं ंिै, वि तो एक मध्यस्थ िै; सृजन करना आरंभ करने ेके भलये उसे ववश्व-चेतना से एक प्रवतनिकारी 'अंतःप्ेरेरणा', कोई संदेश या कोई संकेत अवश्य प्राप्त िोना चाहिये और उसे लेकर वि जो कुछ कर सकता िै वि करता िै। ईश्वर िैं, परंतुईश्वर के संबंध में मनुष्य की अवधारणाएाँ उसकी अपनी मानभसकता में कभी तो भगवान् ्की, कभी अन्य सिाओं और शजकतयों की प्रनतत्रबमब िोती िैं और मनुष्य के पास

जो सूचनाएँ आती िैं वे तब तक साधारणतया बुित अपूण िऔर आंभशक िोती िैं जब तक कक वे अभी भी मानभसक िोती िैं, जब तक कक मनुष्य एक उच्चतर और समयतर, एक आध्याजममक या गुह्य ज्ञान तक निीं पिुँच गया िोता। देवताओं का अजस्तमव पिले से िी िैं, वे मनुष्य के द्वारा रचे ेनिींगए िैं, भले िी वि उनकी अवधारणा स्वयं अपनी िी प्रनतमूनत िमें करता प्रतीत िोता िै; - मूलभूत रूप से, ववश्वगत 'सद्वस्तु' से वि देवताओं के ववषय में जो समय ग्रिण करता िै उसे िी यथाशजकत आकार प्रदान करता िै। ककसी कलाकार या ककसी भकत को देवताओं का एक दशनि प्राप्त िो सकता िै और वि दशनि उस जानत की चेतना में जस्थर और सवसािमान्य बन सकता िै और उस अथ िमें यि समय िो सकता िै कक मनुष्य देवताओं को उनके आकार प्रदान करता िै; परंतुवि इन आकारों का आववष्कार निीं करता, वि तो जो कुछ देखता िै बस उसे िी अंकक्त करता िै; जो आकार वि उन्िें देता िै वे स्वयं उसे प्राप्त िोते िैं। श्रीकृष्ण के "परंपरागत" रूप में मनुष्यों ने वि सब मूनतमिान् ्ककया िै जो कुछ अंश वे उनके शाश्वत सौंदय िका देख पाये और जो कुछ उन्िोंने देखा िै वि समय भी िो सकता िै और सुन्दर भी, वि उस रूप का कुछ अंश प्रकट करता िै, परंतु यि काफी कुछ ननजश्चत िी िै कक यहद उस शाश्वत सौंदय िका कोई शाश्वत रूप िै तो उस रूप का जो कुछ भी अंश देखने में अब तक मनुष्य समथ िुिआ िै उससे वि िजार गुना अधधक सुन्दर िै। भारत माता भूभम का कोई खण्ड निीं; वि एक शजकत िै, एक देवी िै कयोंकक सभी राष्ट्रों की ऐसी एक देवी िोती िै जो उनके पृथक् अजस्तमव को थामे रखती िै व उन्िें अजस्तमवमान बनाए रखती िै। ऐसी सिाएँ उन लोगों, जजन्िें ये प्रभाववत करती िैं, जजतनी िी यथाथ िया उनसे भी अधधक स्थायी रूप से यथाथ िोती िैं। परंतुवे ेएक उच्चतर लोक की िोती िैं, वैजश्वक चेतना व सिा का अंग िोती िैं और यिाँपृथ्वी पर मानव चेतना को, जजस पर कक ये अपना प्रभाव िालती िैं, गढ़कर अपना काय िकरती िैं। मनुष्य के भलए, जो केवल अपनी िी वैयजकतक, राष्ट्रीय या जातीय चेतना को कायरित देखता िै और यि निींदेखता कक कौन-सी चीज उसकी चेतना पर काय िकरती और उसका गठन करती िै, यि सोचना स्वाभाववक िी िै कक सभी कुछ उसके स्वयं के द्वारा सृजजत िोता िै और उसके पीछे कोई भी ववश्वमय तथा स्थिर चीज निीं। श्रीकृष्ण-चेतना एक यथाथतिा िै, परंतुयहद कोई कृष्ण िी न िो तो कफर कोई कृष्ण चेतना भी निीं ंिो सकती; ककसी मनमानी ताजत्त्वक सूक्ष्मकल्पना के अनतररकत, ककसी सचेतन पुरुष के त्रबना कोई चेतना िो िी निींसकती। व्यजकत िी िै जो व्यजकतमव को मूल्य और यथाथतिा प्रदान करता िै, वि उसके अंदर स्वयंको अभभव्यकत करता िै पर उसके द्वारा गहठत निीं ंिोता। श्रीकृष्ण एक सिा िैं, एक पुरुष िैं और हदव्य पुरुष के रूप में िी िम उनसे भमलते, उनकी वाणी सुनते,े उनसे बातें करते और उनकी उपजस्थनत को अनुभव करते िैं। कृष्ण की चेतना के ववषय में ऐसे चचिा करना कक वि कृष्ण से पृथक् कोई चीज िै, उस मन की एक भूल िै जो सदा िी अववभेद्य को ववभकत करता रिता िै और जजसमें ननराकार को िी, कयोंकक वि अमूत िै, साकार से अधधक मिान्,् अधधक समय और अधधक स्थायी मानने ेकी प्रववृि रिती िै। ऐसे ववभेद मन के अपनेप्रयोजनों के भलए उपयोगी िो सकतेिैं, परंतु यि यथाथ िसमय निीं ंिै; यथाथ िसमय में सिा या व्यजकत तथा उसकी ननव्यजिकतकता अथवा सिा की अवस्था एक िी यथाथतिा िैं।

प्रश्न : इस पंजकत का कया अथ ििै: "देवताओं का अजस्तमव पिले से िी िैं, वे मनुष्य के द्वारा रचे निीं गए िैं, भले िी वि उनकी अवधारणा स्वयंअपनी िी प्रनतमूनत ि\mathfrak{F} करता प्रतीत िोता िै; - मूलभूत रूप से,

ववश्वगत 'सद्वस्तु' से वि देवताओं के ववषय में जो समय ग्रिण करता िै उसे िी यथाशजकत आकार प्रदान करता िै।"

उत्तर : मनुष्य जब देवताओं की कल्पना करता िै तब वे उसके भलए बिुत कुछ मानवीय आकार में प्रकट िोतेिैं। वे मानव रूप से कुछ-कुछ भभन्न िो सकतेिैं, जैसे कक गणेश का मुख मानव आकार से भभन्न िै, कुछ देवताओं के दो िाथों की बजाय अनेक िाथ िोतेिैं, आहद-आहद। परंतु कफर भी मोटे तौर पर सभी देवताओं का रूप मनुष्य के समान िी िोता िै। अतः मनुष्य को प्रतीत िोता िै कक देवताओंको वि अपनी मानभसक धारणा के आधार पर आकार प्रदान करता िै। परंतु वास्तव में तो देवताओं की प्ेरेरणा से िी मनुष्य वैसी कल्पना कर पातेिैं कयोंकक देवताओं का स्वरूप िमें जो प्रतीत िोता िै केवल उसी से सीभमत निीं िो सकता। श्रीकृष्ण का स्वरूप ककन्िींभी पुराणों आहद में आज तक भी जैसा वणणतत िुआ िै उसी से त्रबल्कुल भी सीभमत निीं ंिो सकता। अतः मनुष्य जो कुछ भी कल्पना करते िैं और आगे भी कर सकतेिैं, उस सब को भमलाकर भी ककसी देवता का पूरा स्वरूप उजागर निीं ंिो सकता। साथ िी, जो रूप िमें हदखाई देता िै वि िमें अपनेसामूहिक अवचेतन के कारण भी वैसा हदखाई देता िै। कोई हिन्दुस्ुतानी ककसी देवता को जजस रूप में देखेगा उसी देवता को कोई यूनानी ककसी अन्य रूप में देखेगा। अतः जानत भेद के कारण भी यि भेद उमपन्न िो जाता िै। िमारा मन तो केवल उस रूप के ववषय में संकेतों को ग्रिण करता िै, वि उन रूपों का स्रष्टा निींिोता। इस अथ िमें, स्वयं देवता िी उसे जो रूप हदखाना चािते िैं वैसा उसके समक्ष या उसकी कल्पना में प्रकट करते िैं। देवता िी निीं, अवपतु ुककसी राष्ट्र की आममा भी ककसी मानव व्यजकतमव में अपने आप को प्रकट करके अपनी बात को उद्घोवषत कर सकती िै जैसा कक भारत की आममा ने स्वामी वववेकानंद के और श्रीअरववन्द के द्वारा तथा अतीत में अन्य कुछ लोगों के द्वारा अपनेआप को प्रकट ककया। यिी निीं, िमारी सभी छोटी-बिी घटनाओं के पीछे, इच्छा, कामना, लालसा, िोध, रोग आहद के पीछे सूक्ष्म सिाएँ िोती िैं जो अपने आप को िमारे द्वारा अभभव्यकत करती िैं। चूंकक िमारी दृजष्ट बिुत िी संकीण िै इसभलए िमें सूक्ष्म जगतों का आभास कदाधचत् ्िी िोता िै इसीभलए िम इन सब चीजों को देख और समझ निींपाते। परंतु मनुष्य में यि संभावना िै कक वि इतना ववकभसत िो जाए कक उन सिाओं की कठपुतली न रिकर उनका स्वामी बन जाए।

कृष्ण की ऐनतिाभसकता आध्याजममक दृजष्ट से गौण मित्त्व की िै और कोई अननवाय िचीज निीं ंिै, परंतु कफर भी इसकी भारी मिमा िै। मुझेनिीं लगता कक इसमें कोई युजकतयुकत संदेि उठ सकता िै कक मनुष्य रूपी कृष्ण कोई पौराणणक या कोई काव्याममक आववष्कार निीं िैं अवपतुवे वास्तव में पृथ्वी पर ववद्यमान थे और भारत के अतीत में अपनी एक भूभमका ननभाई धौ। दो तथ्य स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आते िैं, एक यि कक वे एक मित्त्वपूण िआध्याजममक व्यजकतमव मानेजाते थे, ऐसे व्यजकतमव जजनका आध्याजममक ज्ञान प्राप्त करना एक उपननषद् में अभभभलणखत िै, और दूसरे यि कक वे परंपरागत रूप से एक हदव्य मनुष्य माने जाते थे, जो अपनी मृमयु के पश्चात् ्एक देवता के रूप में पूजे गये िैं; यि मिाभारत और पुराणों की किानी के अलावा िै। यि मानने का कोई कारण निीं ंिै कक भागवत् ्धम,ि जो कक भारतीय आध्याजममकता के प्रवाि में एक मित्त्वपूण िधारा िै, के साथ उनके नाम का संबंध मिज ककसी पौराणणक कथा या कवव-कल्पना के आववष्कार के ऊपर आधाररत था।

मिाभारत एक काव्य िै, इनतिास निीं िै परंतु स्पष्ट रूप से यि एक ऐसा काव्य िै जो एक मिान् ्ऐनतिाभसक घटना पर आधाररत िै जजसे कक परंपरा से स्मृनत में सुरक्षक्षत रखा गया िै; इससे संबंधधत कुछ व्यजकत, जैसे धृतराष्ट्र, परीक्षक्षत आहद ननश्चय िी ववद्यमान थे ्और एक नेता, योद्धा और राजनीनतज्ञ के रूप में कृष्ण ने जो भूभमका ननभाई थी उसकी कथा का अपने-आप में संभाव्य तथा बाह्य रूप में एक ऐसी परंपरा पर आधाररत िोना स्वीकार कर सकतेिैं जजसे ऐनतिाभसक मूल्य हदया जा सकता िै और जो एक पौराणणक या मिज काव्याममक आववष्कार का िी िाव-भाव निींरखती। बस, सैद्धांनतक युजकततकि की दृजष्ट से मानवरूपी कृष्ण के ऐनतिाभसक व्यजकत िोनेके ववषय में ननजश्चत रूप से इतना िी किा जा सकता िै; परंतु मेरी दृजष्ट में इसमें इससे और बिुत अधधक बात िै और मनैं ेसदा िी भगवान् ्के अवतार को एक समय घटना के रूप में स्वीकार ककया िै; और कृष्ण की ऐनतिाभसकता को उसी तरि स्वीकार ककया िै जैसे कक ईसा की ऐनतिाभसकता को माना िै।

श्रीकृष्ण ऐनतिाभसक रूप से रिे िैं या निीं ंउससे अधधक मित्त्वपूण िितथ्य तो यि िै कक वे आज भी सूक्ष्म रूप से ववद्यमान िैं। वे ऐनतिाभसक रिे भी िों तो भी उससे िमें कया प्रयोजन िो सकता िै यहद आज िमें उनकी जीवंत उपजस्थनत मिसूस न िोती िो। आज यहद िम उनकी उपजस्थनत को अनुभव न कर पातेतब तो उनका प्रभाव वैसा िी ननष्प्रभावी िोता जैसा ककसी भी अन्य ऐनतिाभसक व्यजकतमव का िोता िै। इसी तरि इससे कोई फकि निीं पड़ता यहद भगवान् ्शंकर ने कोई भौनतक शरीर न धारण ककया िो, परंतु उनका पाधथवि चेतना में जजतना सकिय प्रभाव िै उसे तो नकारा िी निीं ंजा सकता। और यि उपजस्थनत िी िै जो सबसे अधधक मित्त्वपूण ि चीज िै।

वृंदावन की किानी एक दूसरा िी मामला िै; यि मिाभारत की मुख्य किानी में निींआती और इसका उद्गम पौराणणक िै और यि बात किी जा सकती िै कक इस किानी के एक प्रतीकाममक स्वरूप के िोनेकी बात को आरंभ से िी माना जाता रिा िै। एक समय मनैं ेभी उस व्याख्या को स्वीकार ककया था, पर बाद में मुझे ेइसे छोड़ना पड़ा; पुराणों में ऐसी कोई चीज निींजो ऐसे ककसी आशय की झलक देती िो। मुझे ेऐसा प्रतीत िोता िै कक यि किानी ककसी ऐसी चीज से संबंधधत िै जो वास्तव में किीं ंघटी थी या घहटत िोती िै। गोवपयााँ पुराणों के भलये वास्तववक व्यजकत िैं न कक प्रतीक। यि उनके भलये कम-से-कम एक गुह्य समय था, तथा गुह्य और प्रतीकाममक एक िी चीज निीं; प्रतीक एक अथपूिण िमानभसक रचनामात्र अथवा एक काल्पननक आववष्कारमात्र िो सकता िै, परंतु गुह्य एक ऐसी यथाथ िवस्तु िै जो किीं पर, मानो भौनतक दृश्य के पीछे, वास्तववक िै, और जजसका पाधथवि जीवन के भलये अपना समय िो सकता िै तथा पाधथवि जीवन पर जो उसका प्रभाव पड़ता िै वि यिााँअपने-आप को मूनतमिान् ्भी कर सकता िै। गोवपयों की लीला को इस प्रकार कजल्पत ककया गया लगता िै मानो वि हदव्य गोकुल में ननरंतर चल रिी िै और जजसने अपने-आप को पाधथवि वृंदावन में प्रक्षक्षप्त कर अभभव्यकत ककया और इसे सदा िी अनुभूत ककया जा सकता िै तथा इसके अथ िको अंतराममा के अंदर कियाजन्वत अथवा यथाथ िबनाया जा सकता िै। यि बात मानी जा सकती िै कक पुराणों के लेखकों ने ऐसा मान भलया था कक वि लीला वास्तव में अवतार कृष्ण के जीवन में पृथ्वी पर प्रक्षक्षप्त िुई थी और भारत के धाभमकि मन द्वारा भी इसे इसी रूप में स्वीकार ककया गया िै।

इन प्रश्नों का और जजन अटकलों को इन्गिनिजन्म हदया ि ै उनका आध्याजममक जीवन के साथ कोई अननवाय िसंबंध निीं ि ै। विााँ जो चीज मायनेरखती ि ै वि ि ै कृष्ण के साथ संपकि और कृष्ण-चेतना की ओर ववकास, आममा में उनकी उपजस्थनत, उनसे आध्याजममक संबंध और उनके साथ भमलन; और जब तक वि प्राप्त निीं ंिो जाता तब तक उसकी अभीप्सा बनाये रखना, भजकत में अग्रसर िोते रिना तथा पथ पर जजतना भी ज्ञान प्राप्त ककया जा सके उसे प्राप्त करना। जजसे ये सब चीजें प्राप्त िो चुकी िैं, जो कृष्ण के साजन्नध्य में रि चुका ि ै, उनकी वाणी सुन चुका ि ै, उनको सखा या प्ेरेमी, मागदिशकि, गुरु, प्रभु ुके रूप में जान चुका ि ै अथवा, उससे भी अधधक, अपनी समूची चेतना उनके संपकि से पररवनतति कर चुका ि ै, अथवा अपनेभीतर उनकी उपजस्थनत को अनुभूत कर चुका ि ै, उसके भलए ऐसे प्रश्नों में केवल एक बािरी और सतिी रुधच िी शेष रिती ि ै। इसी तरि, जजसे आंतररक वृंदावन और गोवपयों की लीला के साथ संपकि प्राप्त िो चुका ि ै, जो आममसमपणि कर चुका ि ै, जो आनंद और सौन्दय िके सममोिन के वशीभूत िो चुका ि ै अथवा केवल वंशी की ध्वननमात्र की ओर िी मुि चुका ि ै, उसके भलये शेष सबका कदाधचत् ्िी कोई मूल्य िोता ि ै। परंतुदूसरे दृजष्टकोण से, यहद कोई अवतार की ऐनतिाभसक समयता को स्वीकार कर सके तो उसे यि मिान् ्आध्याजममक लाभ प्राप्त िोगा कक उसे इस ववश्वास के कारण किीं ंअधधक ठोस अनुभूनत प्राप्त करने का आश्रय-स्थल भमल जायेगा कक कम-से-कम एक बार भगवान् ्ने प्रमयक्ष रूप में इस धरा का स्पश िककया था, पूण िअभभव्यजकत को संभव बनाया था, हदव्य पराप्रकृनत के भलए इस मिववकसनशील पर अभी भी बुित अपूण िपाधथवि प्रकृनत में अवतररत िोना संभव बनाया था।

***

तुम मुझसे यि आशा निीं कर सकतेकक म ैंश्रीकृष्ण की तुलना में मेरी अपनी आध्याजममक मिमा बताने के भलए बिस करूाँ। स्वयंयि प्रश्न िी केवल तभी प्रासंधगक िोगा यहद अरववंदंवाद और वैष्णववाद जैसे कोई दो परस्पर ववरोधी कट्टरपंथी धमसंप्रिदाय िोतेजो प्रमयेक अपनिी देव की मिमा पर आग्रि कर रिे िोते। यिा ंाँऐसी कोई बात निीं ि ै। और कफर ककस कृष्ण की सिा को म ैंचुनौती दूाँ या ललकारूाँ, गीता के उन कृष्ण को जो परामपर देवाधधदेव, परमाममा, पररह्म, पुरुषोिम, ववश्वमय देव, जगमपनत, वासुदेव िैं जो सब कुछ िैं, सभी प्राणणयों के हृदय में अंतयामी िैं, या उन परमदेव को जो वृंदावन, द्वारका और कुरुक्षेत्र में अवतररत थे और जो मेरे योग के पथप्रदशकि थे ेऔर जजनके साथ मनैं ेतादाममय प्राप्त ककया था? और यि सब मेरे भलए कोई दाशननिक या मानभसक बात निीं ंि ै अवपतु हदन-प्रनतहदन की और िर-एक घंटे की अनुभूनत की और मेरी चेतना के रव्य के भलए
अंतरंग बात ि ै।

***

तब भगवान् ्ने मेरे िाथों में गीता रख दी। मेरे अंदर उनकी शजकत प्रवेश कर गई और म ैंगीता की साधना करने ेमें समथ िुआ। मुझेकेवल बौद्धधक रूप से िी निीं, अवपतु अनुभूनत द्वारा यि जानना था कक श्री कृष्ण की अजुनि से कया मागाँ थी और वे ेउन लोगों से कया मागाँ करते िैं जो उनका काय िकरने की अभीप्सा रखते िैं, घृणा और कामना-वासना से मुकत िोना, फल की इच्छा न रखकर भगवान् ्के भलए कम िकरना, अपनी स्वेच्छाचाररता

का मयाग करना और भगवान् ्के िाथों में एक ननश्रेष्ट तथा सच्चा यंत्र बनकर रिना, ऊँच और नीच, भमत्र और शत्रु, ु सफलता और ववफलता के प्रनत समदृजष्ट रखना और यि सब िोतेिुए भी भगवान् ्के काय िमें लापरवािी न करना।

II. गीता तथा श्रीअरववन्द का संदेश

यि एक तथ्य निीं ंिै कक गीता श्रीअरववन्द की संपूण िभशक्षा का आधार प्रदान करती िै; कयोंकक गीता जगत् ्में जन्म ग्रिण करने से छुटकारे को चरम उद्देश्य या कम-से-कम योग की चरम पररणनत के रूप में स्वीकार करती प्रतीत िोती िै; वि आध्याजममक िमववकास के ववचार को या उच्चतर स्तरों और अनतमानभसक समय-चेतना को तथा पाधथवि जीवन के पूण िरूपांतर के साधन के रूप में उस चेतना को नीचेउतार लानेके ववचार को सामने निींलाती।

श्रीअरववन्द के ववेचन के अनुसार अनतमानस, समय-चेतना का ववचार ऋग्वेद में िै और उपननषदों के एक या दो संदभों में िै, ककंतु उपननषदों में यि केवल मानभसक, प्राणणक और भौनतक पुरुष को अनतिम करने े वाले ववज्ञानमय पुरुष की अवधारणा में बीजरूप में िै; ऋग्वेद में यि ववचार िै अवश्य परंतुकेवल भसद्धांत रूप में, इसका ववस्तार या ववकास निीं ंककया गया िै और स्वयं यि भसद्धांत भी हिन्दू ूपरंपरा से लुप्त िो चुका िै।

अन्य चीजों के साथ ये बातें भी िैं जो हिंदु ुपरंपरा के साथ तुलना में श्रीअरववंद के संदेश की नवीनता या उसकी पृथकता का गठन करती िैं - यि ववचार कक संसार न िी कोई माया की सृजष्ट िै या भगवान् ्की केवल लीलामात्र िै, या अज्ञान के अंदर जन्मों का कोई ऐसा चि िै जजससे िमें छूट ननकलना िै, अवपतु ुयि तो अभभव्यजकत का एक क्षेत्र िै जजसमें ज़ितत्त्व में आममा एवं प्रकृनत का एक उिरोर िमववकास िै, जो ज़ितत्त्व के द्वारा प्राण और मन से िोते िुए मन से परे तब तक िोता िै जब तक कक यि जीवन में सजच्चदानंद के पूण ि प्रकाशन तक निीं ंपिुँच जाता। यिी िै जो श्रीअरववंद के योग का आधार िै और जीवन को एक नया अथ िप्रदान करता िै।

***

संदभ िसूची

इस पुस्तक में गीता के श्लोकों पर प्रस्तुत की गई टीका श्रीअरववन्द व श्रीमााँकी कृनतयों से ली गई िै। जजन श्लोकों के भलए टीका दी गई िै, उनकी श्लोक संख्याओं के सामने उन टीकाओंके संदभ िहदये गये िैं।

प्रस्तावना व पररभशष्ट में उद्धरण जजस पुस्तक से भलये गये िैं उनकी खण्ड संख्या तथा पृषूठ संख्या दी गई िै।

(S) का अथ िै The Synthesis of Yoga (CWSA 23- 24), (L) का अथ िै Letters on Yoga (CWSA 28 - 31) , (Svt.)

का अथ िै Savitri (CWSA 33-34), जिा ाँसंदभों के भलए खण्ड संख्या निीं दी गई िै वे े सभी उद्धरण

Essays on

the Gita (CWSA 19) से भलए गए िैं। श्रीअरववन्द की अन्य पुस्तकों के संदभों के भलए खण्ड संख्या तथा पृषूठ संख्या (CWSA vol no : page no.) दी गई िै। श्रीमााँ की कृनतयों से भलए गए उद्धरणों के भलए खण्ड संख्या तथा पृषूठ संख्या (CWM vol no : page no.) दी गई िैं।

चूंकक यिााँ मूहलत उद्धरणों का तथा श्लोकों का अनुवाद अनुवादक द्वारा िी ककया गया िै अथवा अन्य स्थानों पर मूल ववचार को अधधक सुगम, स्पष्ट व सटीक बनाने के उद्देश्य से उपलब्ध अनुवाद में संशोधन व पररवतनि ककए गए िैं इसभलए उद्धरणों के भलए मूल स्रोतों की िी सूची दी गई िै।

अध्याय आठ

:291

16:297-98

3:291-92

21:298-99

4:292-94, 292

22:299

6:294,295-96

23:299

10:296

27:299-300

13:297

पादटीका

1:297

2:S556-57

3:299

CWSA: Complete Works of Sri Aurobindo CWM: Collected Works of The Mother 550

अध्याय नौ

1:301,309

3:309-11,316-18

4:311-12

5:318-19

6:319

8:320

10:320-22

II:322-23, 324 - 25

11:325-26

12:326

13:327

14:327

15:327-28

16:328-29

17:329

19:329-30

21:330-31

22:331-32

24:332-33

25:333

26:S163,333
27:333, S111-14

28:333-34

29:334, CWM(7)243

31:334-35

32:335-36

33:336

34:336

पादटीका

1:Svt. 648

2:Svt. 657

3:329

4:CWM(8)234-35

5:L(ii) 70-71

6:CWSA(2)218

अध्याय दस

I:337,343-44

15:356-57,357-58

I:344-45

5:345, 346, 347-51

II:351-54

18:358-59

19:360-61

42:361-62, 361,373-76

II:355-56

पादटीका

1:Svt. 61

2:346-47

3:347

4:Svt.311-12

5:360

अध्याय ग्यारह

I:377 I:377
4:377-78
7:378
30:381-83
31:383-84
32:384-86
34:384
35:388

36:389-90
37:390
40:391
46:391-93
47:393-94
54:394-95
55:395

पादटीका

1:CWSA(12)499
2:S600-02
3:S110

अध्याय बारह

:396-99,398
1:399-400
2:400
4:341,400
5:400-01
7:401-02
8:402 9:402
10:402-03
11:403
12:403-04
19:405
20:405-06

पादटीका

1:CWM(7)247

अध्याय तेरह

:409
I:409-10
3:412
7:412-14
12:414-15
13:S298, 415, CWSA(21)39,
CWSA(21)38
16:416-17
17:CWSA(22)353,
CWSA(21)79
19:S304-06

21:417-18 22:S99-100
23:S431-35
24:CWSA(22)361-62,418
27:Svt. 63 28:Svt. 66-67
29:418-19 30:S215
32:419 35:420

पादटीका

1:412
2:CWSA(21)33
3:CWSA(21)85, CWSA(12)107 4:S305

अध्याय चौदह

:421
2:423-24
4:424
5:425-27, S684-87
9:430-31
10:430
18:190-93
19:S238-39
25:S239,433
27:434

पादटीका

1:422 2:421-22
3:S232 4:S235
5:L(i) 47, S241

अध्याय पंद्रह

:435, 228-30, 442-43
5:444 6:444-45
7:445-46 10:446
11:446 15:447

16:437,439-40
18:440-41,447
20:447-49

पादटीका

1:443-44
2:S275

अध्याय सोलह

:450, 461-65, S689, 467-70
5:470-71 6:471 20:473-74
24:475-76

पादटीका

1:370 2:467
3:468 4:L451-52,
L463 5:L465-66
6:472 7:473

अध्याय सत्रह

:477,478,479,480-81
2:483-84 3:482, S628
7:484-85 10:485
11:487-88 12:486-87
13:485-86,489
17:489-90 19:490
20:491 23:491
28:492

अध्याय अठारह

1:493
2:494-95
3:495
7:495-96

पादटीका

पररसशष्ट

I:15, 167, CWSA(12)427-28, 15-16, L481-484, CWSA(35)431-32, CWSA(8)5-6
II:L(ii), 444-45,

पादटीका

1:L471

श्रीकृष्ण के नाम व उनके अथ ि

अच्युत	ननष्पाप, अटल, अमोघ	1:21, 11:42, 18:73
अजम् ्	अजन्मा	10:12
अनन्त	अनन्त, असीम	
		11:11, 11:37
अनन्तरूप	अनन्त रूप वाले	
अनन्तवीय ि	अथिा परिामी, अनन्त तेजयुकत	11:38
	अतुलनीय तेज या प्रभाव वाले	
अप्रनतमप्रभाव		11:40
	अभमत, जजसे नापा न जा सके	
अप्रमेय		
		11:43
	अनन्त परिामी	
अभमत वविमः		
	शत्रुओुं का संिार करने ेवाले	11:17
अररसूदन		
	मूल या आहद देवता	
आहददेवम् ्		11:40
	ईश्वर या प्रभु	
ईशम् ्	कमल के पत्र के समान नेत्र वाले	2:04
	जो सभी कुछ को अपनी ओर आकृष्ट	
		10:12
		11:44
कमलपत्राक्ष		11:02
कृष्ण		
		1/28, 1/32, 1/41, 5/1, 6/34, 6/37

	करते िैं, समस्त प्राणणयों को आकृष्ट	6:39, 11:41, 17:1, 18/75.18 / 78
	करने ेवाले, श्याम वण ि	
	सुंदर, लंबे या अमयलंकृत केश वाले	
केशव		1:31 2/54, 3/1 10:14, 11:35, 13:1, 18:76
केभशननसूदन	केभश राक्षस का संिार करनेवाले	18:01
गोववन्द	गोवंश या प्रकाश के संरक्षक	
		1:32, 2:9
जगमपते	जगत् ्के ईश्वर	
		10:15
जगत्रत्रवास	जगतों के ननवासस्थान,	
	समस्त जगतों के आश्रय	
		11/25, 11/37, 11/45
	लोगों को कष्टदेनेवाला, दुःखदायी,	
	कष्टकारी, पीिा देना	
जनादिन	हदव्य पुरुष	1/36, 1/39, 1/44, 3/1, 10/18
	ईश्वर, देवता	11:51
	सभी देवों के देव	
हदव्यंपुरुषम् ्		10:12
	मिान् ्देव	
देव		11:15, 11:44
	देवताओं के स्वामी	
देवदेव		
	सनातन धमों के संरक्षक	10:15, 11:13
देववर		
	परमोच्च जस्थनत, परम धाम	11:31
देवेश		
	परम रह्म	
धमगिोप्ता		11:25, 11:37, 11:45
परंधाम		
		11:18
परंराह्म		
		10:12, 11:38
परमेश्वर		
परमंअक्षरं		10:12
	परम ईश्वर	11:03
	परम अक्षर या अपररवतनीय	
		11:18

परमंपववत्रम् ्	परमोच्च पववत्रता	10:12
पुरुषं ्शाश्वतम् ्	शाश्वत पुरुष पुरातन	
		10:12
पुराणः पुरुषः	पुरुष परमोच्च पुरुष	
		11:38
पुरुषोिम		
प्रभो		
		8:1, 10:15, 11:3, 15:18, 15:19
भगवन् ्		
	प्रभु	11:4, 14:21
भूतभावन		
	श्रीभगवान् ्	10:14, 10:17
भूतेश		
मधुसूदन	भूतों अथवा प्राणणयों के उद्गम	10:15
	प्राणणयों के ईश्वर	
मिाममन् ्		
		10:15
मिाबािो		
	मधु राक्षस के संिारक	1:35, 2:1, 2:4, 6:33, 8:2
मिायोगेश्वर		
	मिान् ्आममा, प्रतापी आममा	
		11:12, 11:20, 11:37, 11:50
माधव		
यादव	शजकतशाली भुजाओंवाले	
		6:38, 11:23, 18:1
योधगन् ्		
	योग के मिान् ्ईश्वर	11:9
योगेश्वर		
	लक्ष्मीपनत, मधुर, यदुवुंश में मधु के वंशज	
		1:14, 1:37
वासुदेव		
	यदु ्वंश के वंशज	
वाष्र्णेय		
		11:41
	योगी	
ववभुं		
	योग के ईश्वर	10:17
	वसुदेव के पुत्र, सवव्यािपी पुरुष	
		11:4, 18:75, 18:78
	वृष्णीवंश के वंशज	
		10:37, 11:50, 18:74
		1:41, 3:36
	सवव्यािपी प्रभु	10:12
ववश्वमूते	ववश्वमय रूप	11:46

ववश्वरूप	ववश्वमय रूप	11:16
ववश्वेश्वर	ववश्व के ईश्वर	11:16
ववष्णो		
विा	सवव्यापी प्रभु	11:24, 11:30
वेदववत् ्	ज्ञाता	11:38
वेदान्तकृत् ्	वेद के ज्ञाता	
	वेदान्त के रचनयता या प्रणेता	15:15
वेद्यम् ्	जो जानने योग्य ै	15:15
सनातन पुरुषः	सनातन अथवा ननमय पुरुष	11:38
सिस्रबािो	सिस्र भुजाओं वाले	
रिर		11:18
हृषीकेश	ववष्णु का नाम	
	इंहरयों के स्वामी	11:46
		11:9, 18:77
		1:15, 1:21, 1:24, 2/9.2 / 10 11:36, 18:1

अजुनि के नाम व उनके अथ ि

अनघ	ननष्पाप	3:3, 14:6, 15:20
अजुनि	साजत्त्वक अथवा पववत्र और प्रकाश से पररपूण िआममा	1:4, 1:47, 2:2, 2:45, 3:7, 4:5, 4:9, 4:37, 6:16, 6:32, 6:46, 7:16, 7:26, 8:16, 8:27. 9:19. 10:39, 10:42, 11:4711:54, 18:9, 18:34, 18:61
कवपध्वज	जजसकी ध्वजा पर कवप निुमान का धचह्न िै	1:20
ककरीटी	मुकुट से सुशोभभत मनुष्य	11:35
कुरुनन्दन	कुरु को आनन्द देनेवाले	2:41, 6:43, 14:13
कुरुप्रवीर	कुरुओं ंमें अग्रणी	11:48
कुरुश्रेष्ठ	कुरुओं ंमें श्रेष्ठ	10:19
कुरुसिम	कुरुओं ंमें सविोम	4:31
कौन्तेय	कुन्ती पुत्र	1:27, 2:14, 2:37, 2:60, 3:9, 3:39, 5:22, 6:35, 7:8, 8:6, 9:7, 9:10, 9:23, 9:27, 9:31, 13:2, 13:32, 14:4, 14:7, 16:20, 16:22, 18:48, 18:50, 18:60
गुिाकेश	जजसने ेननरा को जीत भलया िै	1:24, 2:9, 10:20, 11:7
धनञ्जय	धन-संपदा को जीतने वाला	1:15, 2:48, 2:49, 4:41, 7:7, 9:9, 10:37, 11:14, 12:9, 18:29,18:72
परंतप	शत्रुओुं का दमन करने वाला	2:3, 4:2, 4:5, 4:33, 7:27, 9:3,

		10:40, 11:54,18:41
पाण्वि	पाण्ु का पुत्र	1:14, 1:20, 4:35, 6:2, 11:55, 14:22, 16:5
पाथ ि	पृथा (कुन्ती) का पुत्र	1:26, 2:3, 2:21, 2:32, 2:39, 2:42, 2:55, 2:72, 3:16, 3:22, 3:23, 4:11, 4:33, 6:40, 7:1, 7:10, 8:8, 8:14, 8:22, 8:27, 9:13, 9:32, 10:24, 11:5, 12:7, 16:4, 16:6, 17:26, 17:28, 18:6, 18:30, 18:3, 18:32, 18:33, 18:34, 18:35, 18:72
पुरुषषभि	मनुष्यों में श्रेष्ठ	2:15
पुरुषव्याघ्र	मनुष्यों में व्याघ्र के समान भरतवंभशयों में सवश्रेष्ठ भरतवंभशयों में श्रेष्ठ भरतश्रेष्ठ	18:4
भरतषभि		17:12 3:41, 7:11, 7:16, 8:23, 13:27, 14:12, 18:36
भरतसिम	भरतवंभशयों में सवश्रेष्ठ	18:4
भारत	भरतवंश में उमपन्न िुआ	2:14, 2:18, 2:28, 2:30, 3:25, 4:7, 4:42, 7:27, 11:6, 13:3, 13:34, 14:3, 14:8, 14:9, 14:10, 15:19, 15:20, 16:3, 17:3, 18:62
मिाबािो	शजकतशाली भुजाओंवाला	2:26, 2:68, 3:28, 3:43, 5:3, 5:6, 6:35,7:5, 10:1, 14:5, 18:13
सव्यसाधचन् ्	दोनों िाथों से बाण चलाने में ननपुण	11:33

श्रीअरविन्द गीता के संदेश को उस महान् ् आध्यास्त्मक गनत का आिार मानतेहैं जो मानिजानत को अधिकाधिक उसकी मस्जक्त की ओर, अथुात् ्समथ्यात्ि और अज्ञान से ननकलकर सत्य की ओर ले गई है, और
आगे भी ले जाएगी।

अपनेप्रथम प्राक्य के समय से ही गीता का अनतविशाल आध्यास्त्मक प्रभिा रहा है; परंतजजो र्निन व्याख्या श्रीअरविन्द ने उसे प्रदान की है, उसके साथ ही उसकी प्रभिाशासलता अत्यधिक बढ़ गई है और ननणायक बन गई है।

- श्रीमाँ